

GOVERNMENT OF INDIA

DEPARTMENT OF ARCHAEOLOGY

CENTRAL ARCHÆOLOGICAL  
LIBRARY

BP 3 / Maj / sen

CALL NO.

ACQ. NO.

8736

D.G.A. 79

GIVEN—S4—2D, G. Arch. N. D./57—23-8-54—1,00,000.











महाबोधि-ग्रन्थमाला—१ पुष्प

सुत्त-पिटकका

# मज्झिम-निकाय

Majjhima Nikāya

[ बुद्ध-वचनमृत-१ ]

अनुवादक

विभिट्ठकाचार्य राहुल सांकृत्यायन

~~3116~~

8736

BPa3  
Maj/San

प्रकाशक

महाबोधि सभा

सारनाथ (बनारस)

मुद्राब्द २४०३

१९३३ ई०

वेस्टरम

मूल

प्रकाशक  
महाचारी देवप्रिय, बी० ए०  
प्रधान-मंत्री, महाबोधि समा  
सारनाथ ( बनारस )

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL  
LIBRARY, NEW DELHI.

Acc. No. 8736  
Date 17.4.59  
Call No. 8 Pa 3  
Maj/San



~~CENTRAL ARCHAEOLOGICAL  
LIBRARY, NEW DELHI.~~

~~380  
5/8/59  
891.30/4(3) / Maj/San~~

मुद्रक  
महेन्द्रनाथ पाण्डेय  
इलाहाबाद की वर्नक प्रेस, प्रयाग

### समर्पण

भारतमें बुद्ध-धर्मके प्रचरुद्धारक, निर्माकता और  
हृदय संकल्पकी साकार मूर्ति, लोकान्तरगत  
मिच्छु श्री देवमित्र धर्मपालकी  
प्रणय-स्मृतिमें ।



## प्राक्-कथन

( १ )

त्रिपिटक ( पाठी ) के हिन्दी अनुवादके साथ त्रिपिटक कालीन इतिहास, भूगोल, सामाजिक रीति-रिवाज तथा इसी तरहको और बातोंपर कुछ लिखना आवश्यक है; किन्तु इस विषय पर प्रत्येक पुस्तकमें अलग अलग लिखनेमें अपूर्णता रहेगी, इसीलिये मैं इसपर कुछ विशेष तौरसे लिखनेको आगेके लिये छोड़ता हूँ। यहाँ इतनाही कहना है।—

बुद्धकी पर्यटन भूमि। बुद्ध भास्तेके किन किन स्थानोंमें पहुँचे थे, इसका ज्ञान हमें प्रत्येक सूत्रके आरम्भमें आये—“एक समय भगवान्” ( स्थान )में “विहार करते थे”—वाक्यसे मिल सकता है। सारे त्रिपिटकके सूत्रोंकी इस दृष्टिसे जानकारी करनेसे मालूम होता है, कि वह पश्चिम में यमुनाके पार नहीं गये। यदि गये भी होंगे, तो मथुरा तक ही। मथुरामें भगवान्का किया उपदेश कोई नहीं मिलता। लेकिन एक बार उन्हें हम मथुरा और वेरंजा<sup>१</sup> के रास्ते पर जाते पाते हैं, हमें यह भी मालूम है, कि वेरंजा नगर डल रास्ते पर था, जो पश्चिमसे वेरंजा—सोरंज्य—संक्रात्य—कशीजको जाता था। कुछ देशके कम्मासदम्<sup>२</sup> और गुलकोटित<sup>३</sup> ( राजधानी ) कल्पोंमें बुद्ध गये थे। किन्तु यह नगर यमुना और गंगाके बीच वाले प्रदेश ( वर्तमान मेरठ, मुजफ्फरनगर-सहारन-पुरके जिलों )में ही कहेंगे। इस पार जानेपर इन्द्रप्रस्थ जरूर पड़ता। पूर्वमें बुद्ध कजंगलामें<sup>४</sup> गये थे, और सम्भवतः यही उनके जानेका अन्तिम स्थान था। कजंगलाकी देशान्तर रेखाहीमें कहीं पर कोसी गंगामें मिलती थी। कोसीके पश्चिम तथा गंगाके उत्तरमें अंगुत्तराप प्रदेश था। भाषाकी दृष्टिसे आजकी तरह तब भी वह अंगका ही अंग था। अंगुत्तरापके आपण कल्पमें बुद्धका जाना हमें मालूम है, और हम यह भी जानते हैं, कि वहाँ मगध-राज बिम्बसार<sup>५</sup> का शासन था। अंगुत्तरापके पूर्वी सीमा तक पहुँचने पर भी, वह कोसीके पूर्व तो कदापि गये नहीं मालूम होते। दक्षिण दिशामें—दशार्ण ( पश्चिमी बुन्देलखंड )में उनके जानेका पता नहीं मिलता। केदोंमें भी अधिकसे अधिक विन्ध्य और गंगाके बीचके ही स्थानोंमें गये होंगे। भर्ग ( दक्षिणी निर्वाणपुर, बनारस जिलों )में जाना तो स्पष्ट ही है, किन्तु यहाँ भी वह विष्णुगट्टी और उसके दक्षिण नहीं जा सके थे। बिहार प्रान्तमें उनकी विचरण भूमिकी सीमा काहाबाद और गधा जिलोंको छेते, कुछ ही दूर तक हजारीबाग और संवाल-पर्वनाके जिलोंमें घुसी थी। बुद्धकी-विचरण भूमि पाठी साहित्यमें मध्यमण्डलके नामसे प्रसिद्ध है।

मध्यमंडलके शासक—कोसल-राज्य। विस्तार और प्रभावमें भी यह उस समय सबसे बड़ी शक्ति थी। अंगुलिमाल-सुत्त ( पृष्ठ ३५४ )से मालूम होता है, कि वैशालीके लिच्छवि और

<sup>१</sup> बुद्धचर्या, पृष्ठ २३७, २४४। <sup>२</sup> पृष्ठ ३५। <sup>३</sup> पृष्ठ ३३०। <sup>४</sup> पृष्ठ ३४४। <sup>५</sup> पृष्ठ ३८२।



मगधराज अजातशत्रु इसके पड़ोसी प्रतिद्वन्द्वी थे। हम जानते हैं, कि कोसलके पूर्वमें शाल्य (मेतल्ल, सामगाम, कपिलवस्तु), कोलिय (देवदह), और मल्ल (कुसीनारा, पावा, जनूपिया) के प्रजातन्त्र थे। सम्भवतः शाक्य और कोलिय प्रजातन्त्र भी नौ सल्लोंमें हीसे थे। लिच्छवियोंको पड़ोसी प्रतिद्वन्द्वी बनानेसे, यह भी सिद्ध होता है, कि मल्ल प्रजातन्त्र कोसल-राज्यके प्रभावके अन्तर्गत थे। इस बातकी पुष्टि हमें कुसीनारा निवासो ग्रन्थमल्ल<sup>१</sup> के कोसलके सेनापति जैसे महत्वपूर्ण पदपर प्रतिष्ठित होनेसे भी होती है। शाक्योंके ऊपर कोसलका कितना अधिकार था, यह कोसलराजके साधारण सैनिकोंके तौरपर बिना किसी विशेष तथ्यारोके नगरकसे शाक्योंके मेतल्ल कस्बेमें चले जानेसे मालूम होता है। दक्षिणमें कोसल राज्यकी सीमा काशी देश होते गंगा तक पहुँचती थी। काशियोंकी राष्ट्रीयताको सन्तुष्ट रखनेके लिये स्वयं प्रसेनजित्वा लोटा भाई नाम मात्रका "काशिराज"<sup>२</sup> बन वाराणसीमें बैसे ही रहता था; जैसे मगधोंके हाथमें चले जानेपर भी कोई अंग-राज<sup>३</sup> संभवता चम्पामें रहता था। पश्चिममें कोसल-राज्यकी सीमा पाली त्रिपिटकसे निश्चित नहीं की जा सकती। उत्तर पंचालके किसी नगर में बुद्धका जाना नहीं मिलता। लखनऊ कमिश्नरीके उत्तरी जिले और खेलसंडमें बहुत घने जंगल बरकर थे; तो भी वहाँ अनुश्रुतियोंकी वस्तु बिल्कुल नहीं हो सकती। बल्कि बोधा संकलने कारवाँ (= सार्व) के साथ चले जावकका, तक्षशिलासे राजगृह जाते वक्त साकेत<sup>४</sup> (अयोध्या) में पहुँचना तो बतलाता है, कि इसी प्रदेशसे होकर उत्तरी भारतका एक महान् वर्षिक-पथ जाता था, और इसी लिये इस रास्ते पर कुछ व्यापारिक नगरोंका होना भी आवश्यक था। उत्तरी पंचालमें किसी राज-शक्तिका नाम न आनेसे ज्ञान पड़ता है, यह कोसलोंके आधीन था, और इसी लिये गंगा ही कोसलकी पश्चिम-सीमा रही होगी। कोसल-राज्य अपने प्रभावान्तर-पाती प्रजातन्त्रोंके लिये गंगा, महो (वर्तमान गंडक) और हिमालयसे घिरा मालूम होता है।

कोसल राज-परिवारमें मालिकाना पटरानी थी। वासमन्वसिन्वाको प्रसेनजित्ने शाक्योंसे धनिष्ठता पैदा करनेके लिये ब्याहा था<sup>५</sup>, इसीसे सेनापति विह्वल पैदा हुआ था। विह्वल द्वारा पिताका पदव्युत्त होना अट्ठकथा<sup>६</sup> में मालूम है, और यह भी मालूम है, कि कैसे शाक्योंका सर्वनाश करके लौटते वक्त अचिरवती (= रापती) की आकस्मिक बाढ़में वह भी सैन्य हुब मरा। प्रसेनजित्की एक मात्र कन्या चित्रिणी थी<sup>७</sup> जिसका ब्याह अजातशत्रुसे हुआ। विह्वलके बाद कोसल-राज्य पर अजातशत्रुका अधिकार हो जाना स्वाभाविक था।

मगध-राज्य। कोसल-राज प्रसेनजित् और वत्सरज उद्यमकी भाँति मगध-राज विजसार भी बुद्धका समवयस्क था। अंगुत्तराप (= भागलपुर मुंगेर जिलोंका गंगासे उत्तरीय भाग) विजसारके अधीन था। पूर्व और दक्षिणकी सीमापर इसके कोई वैसे प्रभावशाली राज्य न थे। अजातशत्रुके शासनकालमें मगधकी तीन प्रतिद्वन्द्वी शक्तियाँ थीं—कोसल राज्यके बारेमें हम कह चुके हैं, जो विस्तृत और चिरप्रतिष्ठित होते भी अवनतिकी ओर जा रहा था। लिच्छवि प्रजातन्त्रकी शक्ति-शालिताका पता तो इसीसे मिलता है, कि उसके सैनिक गंगा पार हो, मगधके भीतर पाटलिग्राम (पटना) में महीनों जापती बाले बैठे रहते थे<sup>८</sup>। अजातशत्रु और लिच्छवियोंकी सीमापर हिमालयसे व्यापा-

<sup>१</sup> पृष्ठ ४७३-७५। <sup>२</sup> बुद्धचर्या, पृष्ठ ३०७। <sup>३</sup> पृष्ठ ३९३। <sup>४</sup> बुद्धचर्या, पृष्ठ २९९।

<sup>५</sup> बुद्धचर्या, पृष्ठ ४०९, ४७५।

<sup>६</sup> बुद्धचर्या, पृष्ठ ४७५-७६।

<sup>७</sup> वही पृष्ठ ४४०।

<sup>८</sup> वही पृष्ठ ४७७-८०।

<sup>९</sup> बुद्धचर्या, पृष्ठ ५२७।

रियोंका कोई भारी<sup>१</sup> जाता था, जिसकी हथौड़े के लिये दोनों शक्तियोंमें बहुत वैमनस्य<sup>२</sup> था। हीमांत प्रदेश अंगुचराय और विदेहहीकी संधि पर मालूम होता है। इससे यह भी मालूम होता है कि पुराने विदेहके एक भागका नाम विदेह होने पर भी वह लिच्छवियोंके प्रजातंत्र के अन्तर्गत था। मगधका दूसरा प्रतिद्वन्द्वी अवन्तिराज प्रद्योत था, जो एक बार स्वयं राजगृह पर चढ़ाई करना चाहता था, जिसके लिये मगधका प्रधानमंत्री वर्षकार सेनापति उपनन्दके साथ राजगृहकी मोर्चाबन्दी<sup>३</sup> करवा रहा था। प्रद्योतके राज्यकी सीमा मगधसे सीधी कहीं मिलती थी, इसे ठीकसे नहीं कहा जा सकता। यदि पलासू—रांची जिलेके दुर्गम जंगलोंमें मिलती हो, तो निर्जन होनेसे उसका उतना महत्त्व न था। अधिकतर संभव मालूम होता है, यह संपर्क गङ्गा उपत्यकाके लिये हो था। प्रद्योतके दामाद वत्सराजकी प्रद्योतसे धनिलता होनेसे स्वाभाविक थी। प्रद्योतका दौहित्र बोधि राजकुमार मगधके ही लिये, सुसुमारगिरि ( सुनार ) में डटा हुआ था। इस प्रकार प्रद्योत इधरसे आक्रमण कर सकता था। उस समय अपन्ती और मगधकी शक्तियाँ ही सारे उत्तरी भारतकी प्रधानताके लिये उद्योग कर रही थीं। वज्जियों और कोसलके प्रातिपूर्ण विजयने अजातशत्रुके पल्लेको भारी कर दिया और इस प्रकार उज्जयिनीकी गङ्गा पाटलिपुत्रकी प्रथम भारतीय साम्राज्यकी राजधानी बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

लिच्छवि-प्रजातंत्र। कोसल और मगधकी शक्तियोंसे घिरा यह पराक्रमी प्रजातंत्र विलुप्त स्वतंत्र था। इसके डरके सारे मगधराज पाटलिग्राममें सुदृढ़ दुर्ग बनवानेके लिये मजबूर हुये<sup>४</sup>। कोसलराजकी भी इनकी चिन्ता कम न थी<sup>५</sup>। इसकी राजधानी वैशाली ग्रीसकी एपेन्स थी, जिसकी नागरिकताका अनुकरण मगधकी राजधानी ( राजगृह ) तक करती थी। इसके लिये मगध मेलेदोनिया और अजातशत्रु फिलिप् था। फिलिप् और ग्रीस-प्रजातंत्रोंकी कस्मकस्मका गटक भारतमें एक शताब्दी पूर्व लिच्छवियों और अजातशत्रुके बीच अभिनीत हुआ था। उस समयकी ऐतिहासिक सामग्रो वर्यपि बहुत थोड़ी मिलती है; तो भी उससे इस गौरवशाली प्रजातंत्रके इतिहासका एक अच्छा रूप खड़ा किया जा सकता है। स्पष्ट है, कि अभी तक इस तरफ अभिशोका प्यान डटना नहीं गया। कुछ शक्तियोंमें इसके बारेमें लिखना मैं अन्याय समझता हूँ, इसलिये इसे आगेके लिये छोड़ता हूँ।

वत्स-राज्य। पूर्व और दक्षिणमें इसके मगध और अपन्तीकी शक्तियाँ थीं। वत्सके अतिरिक्त मग और पेदी देशोंका कुछ भाग इसके आधीन था। इसके पश्चिममें दक्षिण पंचाल था, जो संभवतः वत्सहीके आधीन था। पंचालकी वत्सके आधीन मान लेने पर, पश्चिममें इसके दो ठे पड़ोसी राजा दिलाई पड़ते हैं।—एक तो सूरसेनका राजा माधुर अवन्ती-पुत्र—जो उदयनकी नौ वासवदत्ता या बोधि राजकुमारकी मल्लकी बहिनका पुत्र तथा प्रद्योतका दौहित्र था। प्रभवतः यह माधुर राजा भी प्रद्योतके प्रभावके अन्तर्गत था। उत्तरमें धुलकोट्टिका राजा कौरव्य<sup>६</sup> था, जो बुद्धके समय बहुत बड़ा हो चुका था<sup>७</sup>; यह कौरव्य कोई कुरुवंशीय ही राजा रहा होगा, जिस वंशका ही प्रवान पुरुष उस समय वत्सराज उदयन था। इससे यदि ( पूर्व ) कुरु-वत्सके प्रभावके अन्तर्गत रहा हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। और फिर सूरसेनका भी, कमसे कम प्रद्योतके प्रभावके पहिले, वत्ससे अछूता रहना सम्भव नहीं। जान पड़ता है, कोसलकी भौति ही

<sup>१</sup> संभवतः जयनगर ( वर्मा ) से बनकुय जानेवाला मार्ग होगा।

<sup>२</sup> बुद्धचर्या पृष्ठ ५२०।

<sup>३</sup> पृष्ठ ४५५, ४५७।

<sup>४</sup> बुद्धचर्या पृष्ठ ५२७।

<sup>५</sup> पृष्ठ ३४५।

<sup>६</sup> पृष्ठ ३३४।

<sup>७</sup> पृष्ठ ३३५।



वल्स-राज्य भी बहुत विशाल था, और उसीकी भाँति यह भी अपने ईंगलै राजाके स्वभाव, मर्यादकी प्रतिद्वन्द्विताका शिकार हो रहा था। जान पड़ता है, दूसरी पीढ़ीमें वल्स वैसे अवन्तीका घास बन गया, जैसे कौसल मगधका; और फिर विशरी प्रतिद्वन्द्विता अवन्ती मगध दो ही महाशक्तियोंमें केन्द्रित हो गई।

( २ )

मज्झिम-निकायके १५२ सुत्तन्त तीन पण्णासकों (= पचासों)में विभक्त हैं। हाँ, तृतीय या उपरि-पण्णासकमें ५० की जगह ५२ सुत्तन्त हैं। प्रत्येक पण्णासकमें दस दस सुत्तन्तोंके पाँच वग्ग हैं; उपरि-पण्णासकका चौथा ( विमंग- ) वग्ग इसका अपवाद है, जिसमें कि १२ सुत्तन्त हैं। वग्गों (= वगों)के नामोंमें कोई कोई तो किसी सुत्तन्तके नामके कारण हैं, जैसे सुल-परि-वाय-वग्ग; कोई कोई वर्णित विषयके कारण जैसे सल्लायतन-वग्ग; कोई कोई सूत्रमें अधिकतर सम्बोधित व्यक्तिकी श्रेणी पर हैं; जैसे—परिव्याजक-वग्गमें परिव्याजक सम्बोधित किये गये हैं, राजवग्गमें राजा और राजकुमार, ब्राह्मण-वग्गमें ब्राह्मण, गृहपति-वग्गमें गृहपति (= वैश्य)।

भगवान् बुद्ध अपने उपदेशोंमें कितने ही सुन्दर दृष्टान्त या उपमायें दिया करते थे; हमने अन्तमें इनकी एक प्रत्यक्ष सूची लगा दी है।

मज्झिम-निकाय सुत्तन्त (= सूत्र) बुद्धके ही कहे हुये हैं; लेकिन उनमें कुछ ऐसे भी हैं, जिन्हें बुद्धके शिष्य सारिपुत्त महाकात्यायन आदिने कहे। माधुरिय-सुत्तन्त, बोधिसुत्त-सुत्तन्तकी भाँति भगवान्के निर्वाणके बादके भी कुछ सुत्तन्त हैं।

( ३ )

धम्मपदके प्रकाशनके वक्त मैंने लिखा था, कि मज्झिम-निकायका हिन्दी अनुवाद इसी खर्चमें पाठकोंकी सेवामें पहुँच जायेगा। यद्यपि इसके विषयमें मुझे सन्देह उतना नहीं हो रहा था, जितना कि परिस्थितियाँ प्रकट कर रही थीं। लिखने पढ़नेकी आसानीके लिये ही अथकी गर्मियोंमें मैं लड़ाख गया। पहिले आशा रखता था, कि खर्चमें कितनी लिखनेवालेको ले जाऊँगा। किन्तु वैसा प्रबंध न हो सका। मैं २५ जूनको लेह ( लदाख ) पहुँचा, और १६ सितम्बर तकके समयमें दो बार ही दिन इधर उधर गया। यदि सिर्फ मज्झिम-निकायका अनुवाद होता, तो समय काफी था; किन्तु वहाँके पौद्धोंकी दुःखनीय अवस्था तथा कुछ बंधुओंके आग्रहने मुझे वहाँके लड़कोंके लिये तिब्बती भाषाकी चार पुस्तकें लिखने पर मजबूर किया। उधर कुछ और मित्रोंकी प्रेरणाने 'तिब्बत में बौद्ध-धर्मका इतिहास' को संक्षेपसे लिखवाया। अपनी तिब्बती और युरोप-यात्राओंको भी वहीं समाप्त करनी पड़ी। यह निश्चय ही है, कि इतने कामोंके लिये उतना समय पर्याप्त न था। एक दो बार तो मैंने अपने मित्रोंको लिख भी दिया कि चायपद मैं आधे ही ग्रंथको लदाखमें समाप्त कर सँझूँ।

अनुवादमें समय इस प्रकार लगा—

जुलाई ५—१५

१—२६ सुत्तन्त

अगस्त २१—३१

३८—९८ सुत्तन्त

सितम्बर १—२, ४—९, ११—१४

९९—१५२ सुत्तन्त

नवंबर ४—७

२७—३७ सुत्तन्त

लदाखमें अनुवाद करते वक्त मालूम हुआ, कि मेरी पाली प्रतिमें ११ सुत्तन्त (= सूत्र) गुप्त हैं, इसीलिये उनका अनुवाद कौटुकर प्रयागमें हुआ। इस प्रकार यह सारा ग्रंथ ३८ दिन

अनुवादित हुआ। जल्दीके लिये अफसोस करनेकी आवश्यकता नहीं, जब कि मैं जानता हूँ, कि कामोंकी अधिकतके कारण, दूसरा कोई उपाय ही नहीं; अथवा एक अनिश्चित समयके लिये इस कामको स्थगित कर रखना पड़ता।

त्रिपिटक-वाद-मयमें मज्झिम-निकायका स्थान सर्वोच्च है। विद्वान् लोग इसीके बारेमें कहते हैं, कि यदि सारा त्रिपिटक और बौद्ध-साहित्य नष्ट हो जाये, तब भी मज्झिम-निकाय ही बचा रहे; तो भी इसकी मददसे हमें बुद्धकी व्यक्ति, उनके दर्शन और अन्य शिक्षाओंके तत्त्वको समझनेमें कठिनाई न होगी। इसी कारणसे "बुद्धचर्या" और "धम्मपद"के बाद मैंने इसमें हाथ लगाया।

अनुवाद करनेमें आवेगके साथ शब्दोंका भी पूरा ख्याल रखा गया है, इसीलिये भाषा कुछ कठिनसी हो गई है; किन्तु, अनुवादकों ऐतिहासिकों, भाषा-तत्त्वज्ञों तथा दूसरे अन्वेषकोंके लिये भी उपयोगी बननेके लिये वैसा करना अनिवार्य था। शब्दोंका एक विस्तृत कोश मैंने ग्रंथके अन्तमें दे दिया है, और स्थल स्थलपर कोष्ठकमें भी सरल पर्याय देता गया हूँ। पाठकोंको कठिनाई मालूम होगी, कुछ बौद्ध दार्शनिक परिभाषाओंके कारण। किन्तु, संक्षेप और स्पष्ट होनेके लिये पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग करना ही पड़ेगा। बहुतसे पुनरुक्तोंको भी मैंने (०) चिह्न देकर हटा दिया है, इससे भी कहीं कहीं कुछ दिक्कत होगी, किन्तु उनके लिये मैं फुटनोटमें संक्षेप भी करता गया हूँ। यदि सभी पाठक प्रत्येक शब्द के समझनेका आग्रह न करेंगे, तो आशा है, वह अनुवादको सन्तोष-जनक पायेंगे। यह अन्तिम अनुवाद तो है नहीं, यदि इससे भविष्यके अनुवादकोंके काममें सहायता पहुँचेगी, तो यह भी इसकी एक उपयोगिता होगी।

त्रिपिटकके कुछ ग्रंथोंको पालीमें अनुवाद करनेकी बात मैंने "धम्मपद"के छपते तक लिखी थी। मैंने अगले चार वर्षोंके वर्षा-वासोंको इस प्रकार हिन्दी-अनुवाद-कार्यमें लगानेका निश्चय किया है—

पातिमोक्ख + महावग्ग + जुलवग्ग ( वित्तप-पिटक )	१९३४ ई०
दीघ-निकाय	१९३५ "
संयुक्त-निकाय	१९३६ "
सुत्तनिपाट + उदान + मिल्हिन्द पण्ड	१९३७ "

अपने ज्येष्ठ सम्प्रदायचारी मदनलाल आनन्द कौसल्यायन, तथा शीघ्र ही लघु सम्प्रदायचारी बनने वाले एक दूसरे तरुणसे आशा रखता हूँ, कि इन्हीं चार वर्षोंमें वह सम्पूर्ण जातकोंका भी हिन्दी अनुवाद कर देंगे। यदि ऐसा हुआ, तो मूल बौद्ध-साहित्यके अनुवादमें हिन्दीका स्थान भारतीय भाषाओंमें ही प्रथम नहीं हो जायेगा; बल्कि हमारी मातृभाषा युरोपीय भाषाओंसे टकर लेने लगेगी।

पुस्तकके साथ मज्झ-अव्वल (= आश्वीन मन्थदेश ) का एक मानचित्र भी दे दिया गया है, जिससे तत्कालीन भूगोलके समझनेमें आसानी होगी। ध्यानसे जीवनेपर भी जनपदों और राज्यों की सीमायें चितनी ही जगह गलत हो सकती हैं।

"धम्मपद"के अनुवादको समाप्त करते समय मैंने अश्वेय भिक्षु देवमित्र धर्मपालसे कहा था—मैंने अपनी प्रथम पुस्तक बुद्धचर्या अपने पिताको समर्पित की, दूसरी अपने उपाध्यायको; और अब यह तीसरी मैं आपको समर्पित करूँगा। उन्होंने कहा—काम होना चाहिये, अपने लिये समर्पणको मैं बेकार समझता हूँ। बेकार हो, चाहे ल-कार, अब वह बेकारका शब्द ही अब उन पतले जोड़ोसे सुननेको मिलेगा !!

अनुवादका काम तो मेरे हाथका था, चाहे रातको तीन बजता, चाहे चार, उसे मैं पूरा कर



सकता था, किन्तु १९३३ ई० के भीतर छाप देनेकी समस्या आसान न थी। महाबोधि समाजके प्रधान भन्नी ब्रह्मचारी देवप्रियमे कई आर्थिक अवघटनें कि रहते भी छापना स्वीकार कर, उस कठिनाईको हल कर दिया। दूसरी कठिनाई थी एक मासके अल्प समयमें प्रायः आठ सौ पृष्ठोंकी सारी पुस्तकको छाप कर निकाल देना। जिस कठिनाईको दूर करनेके लिये ला-जर्नल-प्रेसके मैनेजर पंडित कृष्णप्रसाद दूर, तथा पंडित सीताराम गुटे, पं० महेन्द्रनाथ पांडेय, श्री राजनाथ और श्री बच्चलाल विशेषतया धन्यवादके पात्र हैं। पंडित उदयनारायण त्रिपाठी, साहित्य-रत्न, M. A. और उनकी दारामाताकी शिष्य-मंडली तथा बानू बलदेवसिंह, "विचारद" यदि प्रूफ देखनेमें सहायता न करते, तो काम बहुत कठिन हो जाता। इसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

यदि पाठकोंकी सहायता प्राप्त होगी, तो आशा है अगले संस्करणमें ग्रंथकी बहुतसी त्रुटियाँ दूर हो जायेंगी।

प्रयाग  
१५-१२-३३

राहुल सांकृत्यायन

## भूमिका

### बुद्धके मूल सिद्धान्त\*

बुद्धके उभदेशोंके समझनेमें सहायता मिलेगी, यदि पाठक बुद्धके इन मूल चार सिद्धान्तों—तीन अस्वीकारात्मक और एक स्वीकारात्मक—को पहले जान लें। ये चार सिद्धान्त ये हैं—

( १ ) ईश्वरको नहीं मानना; अन्यथा 'मनुष्य स्वयं अपना भालिक है'—इस सिद्धान्तका विरोध होगा।

( २ ) आत्माको नित्य नहीं मानना; अन्यथा नित्य एक रस भानेपर उसकी परिशुद्धि और मुक्तिके लिए गुंजाइश नहीं रहेगी।

( ३ ) किसी ग्रन्थको स्वतःप्रमाण नहीं मानना; अन्यथा बुद्धि और अनुभवकी प्राप्ति-कता जाती रहेगी।

( ४ ) जीवन-प्रवाहको इसी शरीर तक परिमित न मानना; अन्यथा जीवन और उसकी विचित्रताएँ कार्यकारण नियमसे उत्पन्न न होकर, सिर्फ भावस्थिक घटनाएँ रह जायेंगी।

चौद्वयमें चार बातें सर्वमान्य हैं। इन चार बातोंपर हम यहाँ अलग विचार करते हैं।

#### ( १ ) ईश्वरको न मानना

ईश्वरवादी कहते हैं—'चूँकि हर एक कार्यका कारण होता है, इसलिये संसारका भी कोई कारण होना चाहिए; और वह कारण ईश्वर है—लेकिन प्रश्न किया जा सकता है—ईश्वर किस प्रकारका कारण है? क्या उपादान-कारण, जैसे घड़ेका कारण मिट्टी; कुंडलका सुवर्ण? यदि ईश्वर जगत्का उपादान-कारण है, तो जगत् ईश्वरका रूपान्तर है। फिर संसारमें जो भी गुराई-भलाई, सुख-दुःख, दया-क्रूरता देखी जाती है, वह सभी ईश्वरसे और ईश्वरमें है। फिर तो ईश्वर सुखसमयकी अपेक्षा दुःखसमय अधिक है, क्योंकि दुनियामें दुःखका पलका भारी है। ईश्वर दयालुकी अपेक्षा क्रूर अधिक है, क्योंकि दुनियामें चारों तरफ़ क्रूरताका राज्य है। यदि वनस्पतिको जीवधारी न भी माना जाय, तो भी सूक्ष्मबीजणसे द्रष्टव्य कीटाणुओंसे लेकर कीड़े-मकोड़े, पक्षी, भूछली, साँप, छिपकली, भेड़, भेड़िया, सिंह-ब्याघ्र, सम्य-असम्य मनुष्य—सभी एक-वृत्तके जीवनके प्रादुर्भाव हैं। ध्यानसे देखनेपर दृश्य-अदृश्य, साक्षात् ही जगत् एक हीमाँचकारी युद्धक्षेत्र है, जिसमें विचल प्राणी

\* यह पहिले १९३२ ई० के "विशाल-भारत" में लेख-रूपसे निकला था।

सबलोक के शासक बन रहे हैं। पुनर्जन्म न माननेवाले धर्मोंको तो इसे बिना आनाकानी के स्वीकार करना पड़ेगा। पुनर्जन्मवादो कह सकते हैं कि सभी मुसीबतें पूर्व के कर्मोंके फल हैं, लेकिन यह भी चिन्त्य है। अच्छे-बुरे कर्मोंकी जवाबदेही जानकारको ही हो सकती है। पागल या नशेमें बेहोश या अन्धोष बालकको दूसरेकी हत्याका दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इससे इनकार किसको हो सकता है कि मनुष्यके अतिरिक्त दूसरे प्राणी—जो अपने अच्छे-बुरे कर्मोंके जानेकी समझ नहीं रखते, और जिनका जीवन दूसरोंकी हत्यापर ही निर्भर है—अपने कर्मोंके जिम्मेवार नहीं हो सकते? मनुष्योंमें भी बालक, पागल आदि अलग कर देनेपर दायित्व रखनेवालोंकी संख्या बहुत कम रह जायगी। यदि दुनियामें जवाबदेह आदमियोंकी संख्या डेढ़ अरब मान ली जाय, तो फल भोगनेवाले इतने कहाँसे आर्यें, जिनकी संख्या अपार है। डेढ़ अरबसे अधिक तो कहलें ही होंगे, जो आदमोंसे अधिक दोर्मजोवी हैं, और कीटप्राणों तथा हाथी, छेले आदि जैसे विशालकाय जन्तुओंके धारोंमें कहना ही क्या?

उपादान-कारण है, तो निर्विकार कैसे हो सकता है? यदि ईश्वरको निमित्त-कारण माना जाय, अर्थात् यह जगत्को वैसे ही बनाता है, जैसे कुम्हार धड़ेको, सुनार कुंडलको, तो प्रश्न होगा, क्या वह बिना किसी उपादान-कारणके जगत्को बनाता है, या उपादान-कारणसे? यदि बिना उपादान-कारणके, तो अभावसे भावकी उत्पत्ति माननी होगी, और कार्य-कारणका सिद्धान्त ही गिर जायगा, तब फिर जगत्को देखकर उसके कारण ईश्वरके माननेकी जरूरत क्या? यदि इन्द्रजालकी तरह उसने जगत्को बिना कारण आयास्य उत्पन्न किया है, तो प्रत्यक्षके मायासय होनेपर ईश्वरके होनेका अनुमान ही किस सामग्रीके धलपर होगा? यदि उपादान-कारणसे बनाता है, तो कुम्हारकी भाँति जगत्से अलग रहकर बनाता है, या उसमें ध्यास होकर? अलग रहनेपर वह सर्वव्यापक नहीं रहेगा, और सृष्टि करनेके लिए उसे दूसरे-सहायकों और साधनोंपर निर्भर होना पड़ेगा। विद्युत्कणोंसे भी सूक्ष्म नवकणों (Neutrons) तक पहुँचने और उनके मिश्रणसे क्रमशः स्थूलतर चीज़ोंके बनानेके लिए वह कौनसा इधियार, सुनारकी सँझासोकी तरह, प्रयोग करेगा? और फिर सर्वशक्तिमान् कैसे रहेगा? यदि उसे उपादान-कारणमें सर्वव्यापक मान लिया जाय, तो भी उपादान-कारणके बिना उत्पादन-करनेमें अक्षम होनेपर सर्वशक्तिमान् नहीं। ऐसी अवस्थामें अपवित्रता, क्रूरता आदि बुराइयोंका खोल होनेका भी वह दोषी होगा।

इस प्रकार न वह उपादान-कारण हो सकता है, न निमित्त-कारण। जगत्का कोई आदि-कारण होना ही चाहिए, यह कोई जरूरी नहीं। यदि 'उसका कारण कौन, उसका कारण कौन?'—पूछनेपर जगत्की किसी सूक्ष्मतम वस्तु या उसकी विशेष शक्तिपर नहीं रुकने दिया जाय, तो ईश्वर तब ही क्यों रुका जाय? क्यों न ईश्वरका भी कोई दूसरा कारण माना जाय? इस प्रकार ईश्वरका आदिकारण मानना युक्तियुक्त नहीं।

कर्ता-अर्थात् ईश्वर होनेपर, मनुष्य उसके हाथकी कठपुतली है, फिर वह किसी अच्छे-बुरे कामके लिए जवाबदेह नहीं हो सकता। फिर दुनियामें उसका सत्तापा जाना क्या ईश्वरकी दया-लुताका स्रोतक है?

ईश्वर सृष्टिकर्ता है, यह मानना भी ठीक नहीं। यदि सृष्टि बनादि है, तो उसको किसी कर्ताकी जरूरत नहीं, क्योंकि कर्ता होनेके लिए उसे कार्यसे पहले उपस्थित रहना चाहिए। यदि सृष्टि सादि है, तो करोड़ दो करोड़, बरब दो स्रब वर्ष नहीं, अचिन्त्य अनन्त वर्षोंसे लेकर सृष्टि उत्पन्न होनेके समय तक उस किया-रहित ईश्वरके होनेका प्रमाण क्या? किया ही तो उसके अस्तित्वमें प्रमाण हो सकती है?



ईश्वरके माननेपर, जैसा कि पहले कहा गया, मनुष्यको उसके अधीन मानना पड़ेगा, तब मनुष्य आप ही अपना स्वामी है, जैसा चाहे, अपनेको बना सकता है—यह नहीं माना जा सकता। फिर मनुष्यको बुद्धि और सुकिके लिए प्रयत्न करनेकी गुंजाइश कहाँ? फिर तो धर्मके प्रतापे रास्ते, और धर्म भी निष्फल। ईश्वरके न माननेपर, मनुष्य जो कुछ वर्तमानमें है, वह अपने ही कियेले, और जो भविष्यमें होगा, वह भी अपनी ही करवीसे। मनुष्यके काम करनेकी स्वतन्त्रता होने ही पर धर्मके प्रतापे रास्तों और धर्मकी सार्थकता हो सकती है। ईश्वरवादीनों द्वारा सद्बुद्धियोंसे धर्मके लिए अशान्ति और धर्मकी धारणें बहाई जा रही हैं, फिर भी ईश्वर क्यों नहीं निपटारा करता? वस्तुतः ईश्वर मनुष्यकी मानसिक सृष्टि है।

( १ ) आत्माको नित्य न मानना

यहाँ पहले हमें यह समझ लेना है कि बौद्ध अनात्मताको कैसे मानते हैं। बुद्धके समय माहाण, परिभाजक तथा दूसरे मतोंके आचार्य मानते थे कि शरीरके भीतर और शरीरसे भिन्न एक नित्य चेतनशक्ति है, जिसके आनेसे शरीरमें उष्णता और ज्ञानपूर्वक चेष्टा देखनेमें आती है। जब वह शरीर छोट कर कर्मानुसार शरीरान्तरमें चली जाती है, तो शरीर शीतल, चेष्टा रहित हो जाता है। इसी नित्य चेतनशक्तिको वे आत्मा कहते थे। सामीय (Semitic) धर्मोंका भी, पुनर्जन्मको छोट कर, वही मत है। इनके अलावा बुद्धके समयमें दूसरे भी आचार्य थे, जिनका कहना था—शरीरसे पृथक् आत्मा कोई चीज़ नहीं; शरीरमें भिन्न-भिन्न परिमाणमें मिश्रित रसोंके कारण उष्णता और चेष्टा पैदा हो जाती है, क्योंकि परिमाणमें कमी-बेसी होनेसे वह चली जाती है। इस प्रकार आत्मा शरीरसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है। बुद्धने एक ओर आत्माका नित्य कूटस्थ मानना, दूसरी ओर शरीरके साथ ही आत्माका विनाश हो जाना—इन दोनों चरम बातोंको छोट मध्यका रास्ता लिया। उन्होंने कहा—आत्मा कोई नित्य कूटस्थ वस्तु नहीं है, बल्कि स्वयं कारणोंसे स्कन्धों (भूत, मन) के ही योगसे उत्पन्न एक शक्ति है, जो अन्य बाह्य भूतोंकी सँति क्षण-क्षण उत्पन्न और विलीन हो रही है। चित्तके क्षण-क्षण उत्पन्न होने और विलीन होनेपर भी चित्तका प्रवाह तब तक इस शरीरमें जारी रहता है, तब तक शरीर स्जीव कहा जाता है। हमारे अध्यात्म-परिवर्तन और शरीरके परिवर्तनमें बहुत समानता है।

हमारा शरीर क्षण-क्षण बदल रहा है। चालीस वर्षका यह शरीर नहीं है, जो पाँच वर्ष और बीस वर्षकी अवस्थामें था, और न साठवें वर्षमें वही रह जायगा। एक-एक अणु, जिससे हमारा शरीर बना है, प्रति क्षण अपना स्थान नवोत्पत्तिके लिए छोटी कर रहा है; ऐसा होने पर भी हर एक विगत शरीर-निर्माणक परमाणुका उत्तराधिकारी बहुतेरी बातोंमें सदा होता है। इस प्रकार यद्यपि हमारा पहले वर्षवाला शरीर दसवें वर्षमें नहीं रहता, और बीसवें वर्षमें दस वर्षवाला भी ज़रूर हुआ रहता है, तो भी सदा परिवर्तनके कारण मोटे तौरपर हम शरीरको एक कहते हैं। इसी प्रकार आत्मा भी क्षण-क्षण बदल रहा है, लेकिन सदा परिवर्तनके कारण उसे एक कहा जाता है। आप अपने ही जीवनको ले लीजिए। दो वर्ष पूर्व दूसरे भी आपको सिगरेटका पुर्वा नागवार था, और अब उसे चायसे पीते हैं। दो वर्ष पूर्व चिन्मोंको स्वयं मार कर फफफाते देखना, आपके लिए मनोरंजनकी चीज़ थी, लेकिन अब आप दूसरे द्वारा मारी जाती चिन्मोंको फफफाते देख स्वयं फफफामे लगते हैं। यदि आपको अपने मनके झुकाव और उसकी प्रवृत्तियोंको लिखते रहनेका अभ्यास है, तो आप अपनी पिछली दस वर्षोंकी कायरी उठा कर पढ़ डालिये। वहाँ आपको कितने ही विचार ऐसे मिलेंगे, जिन्हें दस वर्ष पूर्व आप अपना कहते थे, किन्तु दस वर्ष बाद आज यदि कोई आपके ही शब्दोंमें आपके पूर्व विचारोंको आपके सामने रखे, तो आप

सब्र इनकार कर देंगे कि 'यह मेरा विचार नहीं है, न मेरा विचार कभी ऐसा था।' वस्तुतः आपका ऐसा कहना ठीक भी है, क्योंकि आपके पिछले दस वर्षके अनुभवोंमें आपको बदल दिया है।

आप कह सकते हैं—मन बदलता है, आत्मा थोड़े ही बदलता है। हमारा कहना है, मनसे परे आत्मा कोई चीज़ नहीं। चित्त, विज्ञान, आत्मा—एक ही चीज़ है। जिस प्रकार चक्षु, श्रोत्र, ग्राण, जिह्वा और त्वक् इन्द्रियोंको हम प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं, वैसे मनको नहीं। हमें मनकी सखा क्यों स्वीकार करनी पड़ती है? जॉर्जें इमली देखती हैं, और जिह्वासे पानी टपकने लगता है। नाक दुर्गन्ध सूँघती है, और हाथ नाकपर पहुँच जाता है। आप देखते हैं, जॉर्ज और जिह्वा एक नहीं हैं, न वे एक दूसरेसे मिली हुई हैं। इसलिए इन दोनोंको मिलानेके लिए एक तीसरी इन्द्रिय चाहिए, और वह मन है। पाँचों ही इन्द्रियाँ अपने-अपने ज्ञानको जहाँ पहुँचाती हैं, और जहाँसे शरीरके भिन्न भिन्न अंगोंको गतिका अनुपासन मिलता है, वह मन है। वही ग्रहण, चिन्तन और निर्णय करता है। वह ग्रहण आदि कैसे करता है? फ्रोजके कमाण्डरकी तरह अलग बैठ कर नहीं, बल्कि जैसे पाँच द्यूबोंमें लाल, पीले, हरे, नीले, काले रंगका चूर्ण पड़ा हुआ हो, और नीचे एक ऐली काँचकी गलीसे पानी बह रहा हो, जिसमें पाँचों द्यूबोंके सुँह मिले हुए हों, और द्यूबोंका सुँह घारी घारीसे सुल रहा हो। जिस समय जो रंग पानीपर पड़ेगा, पानी उसी रंगका हो जायगा। इसी तरह जब आँख काले साँपकी ओर लगती है, तो काले साँपका हमें दर्शन होता है। फिर यह ज्ञान तुरन्त मनमें पहुँचता है। उस क्षणका मन, जो अपने कारणभूत पुराने धर्मोंके अनुभवोंका बीज अपनेमें रखता है, इस नये ज्ञानरूपी चूर्णके गिरनेसे तदाकार हो, मयके रंगमें रँग जाता है। यदि एक क्षण ही साँपको देख हमें रुक जाना हो, तो भी झिंझ कर छोड़ दिये पहिलेकी नाँति कई क्षण तक एक-एकके बाद उत्पन्न होनेवाला मन उस रंगमें रँग जायगा। यद्यपि हर द्वितीय क्षणके मनपर उसका अंतर फौका पड़ता जायगा। और यदि साँप कई क्षणों तक दिखाई देता रहा, और आपकी तरफ़ भी आता रहा, तो क्षण-क्षण उत्पन्न होनेवाले मनपर मयका संचार अधिक होता जायगा। जो यात मयप्रद विषयोंके घारेंमें हैं, वही प्रीतिप्रद तथा दूसरे विषयोंके घारेंमें भी समझनी चाहिए।

अस्तु, उक्त कारणसे चक्षु आदि इन्द्रियोंके अतिरिक्त हमें उनके संबोजक एक भीतरी इन्द्रियको खाननेकी ज़रूरत पड़ती है, जिसे मन कहते हैं। इससे परे आत्माकी क्या आवश्यकता? यदि कहें कि पुराने अनुभवोंको स्मृतिके रूपमें रखनेके लिए, क्योंकि मन तो क्षणिक है (यद्यपि यह बात वे नहीं कह सकते, जिनके मतसे मन क्षणिक नहीं), तो हम कहेंगे—मन क्षणिक है, किन्तु वह अपने परवर्ती मनका कारण भी है। आनुवंशिक नियमके अनुसार जैसे माता-पिताकी बहुतसी बातें पुत्र-पौत्रमें आती हैं, उसी प्रकार पूर्व मन अपने अनुभवोंका बीज या संस्कार पिछले मनके लिए बराबरतमें छोड़ जाता है, और वही स्मृतिका कारण है। वस्तुतः संस्कारका ठप्पा तो क्षणिक वस्तुपर ही लग सकता है। आत्माको यदि कृतस्थ नित्य मानें, तो वह अमन्तकाल तक एक रस रहनेवाला होगा। मला, सदाके लिए एक रस रहनेवाले आत्मापर अनुभवोंका ठप्पा कैसे पड़ सकता है? यदि पड़ सकता है, तो ठप्पा पड़ते ही उसका रूप-परिवर्तन हो जायगा। आत्मा कोई जड़ पदार्थ नहीं है, जिसके सिर्फ़ बाह्य अवयवपर ही काँटन लगेगा। वह तो चेतनमय है, इसलिए ऐसी अवस्थामें इन्द्रिय-जनित ज्ञान उसमें सर्वत्र प्रविष्ट हो जायगा। फिर वह राग, द्वेष, मोह—नामा प्रकारोंमेंसे किसी एक रूपवाला हो जायगा। तब फिर वह वही आत्मा नहीं हो सकता, जो ठप्पा लगनेसे पहले था। अतएव वह एक रस भी नहीं हो सकता। फिर आत्मा नित्य है कैसे? यदि थोड़ी देरके लिये मान भी लें कि ठप्पा लगता है, तो वह अभौतिक संस्कार भी नित्य आत्मा



में लगकर अविचल हो जायगा। तब फिर बुद्धि या मुक्ति की आशा कैसे की जा सकती है ?

यदि कहें—कोई नित्य आत्मा नहीं है, तो मनके क्षणिक होनेसे, शरीरके नष्ट हो जानेपर अच्छे-बुरे कर्मोंका विपाक कैसे होगा ? यहाँ पहले यह समझ लें कि यौद्ध विपाक कैसे मानते हैं। वे यह नहीं मानते कि हम जो कुछ भले-बुरे काम करते हैं, उसे लिखनेके लिए ईश्वरने हमारे पीछे द्रुत लेखक लगा रखे हैं। हम अच्छे या बुरे जैसे भी कायिक-वाचिक कर्म करते हैं, सभी कर्मोंका उद्गम हमारा मन है। अतः श्रेष्ठतम काम करनेके लिए मनको श्रेष्ठतम बनना पड़ता है; रागयुक्त काम करनेके लिए मनको रागयुक्त बनना पड़ता है। मनकी उस पनाकटकी, उस ध्वनिकी गूँज तब तक जारी रहती है, जब तक वह स्वयंसे या विरोधी ध्वनिके आकर टकरानेसे नष्ट नहीं हो जाती। आधुनी एक दिनमें मर नहीं बन जाता। आपरेशन करनेवाले डाक्टरको भी धीरे-धीरे अपने मनको कड़ा करना पड़ता है, फिर सूतीकी तो घात ही क्या ? जब किसी असहाय, निरपराध बालिकाको पीटते देख दुर्गाकोंका मन अभावित हुए बिना नहीं रहता (यद्यपि वह दूसरी दिशामें—कड़वाकी ओर), तो स्वयं मारनेवालेका मन सकल हुए बिना कैसे रह सकता है ? सुतराँ हम जो काम करते हैं, उसका असर तत्काल मनपर पड़ता है। जितना ही मन कड़ा होता जाता है, उतना ही उसमें सूक्ष्म मानसिक चिन्तन और विकासकी योग्यता कम होती जाती है।

अच्छे-बुरे मनोभाव धन और ऋणकी तरह हैं। यदि धनकी राशि अधिक रही, ऋणकी कम, तो धनका पलड़ा भारी रहेगा। यह हिसाब मनकी क्षण-क्षणकी वनापटमें स्वयं होता रहता है। यहाँ हिसाबका टोटल महीनों, हफ्तों, दिनोंके बाद नहीं, बल्कि तुरन्त-का-तुरन्त होता रहता है। अनुभव क्या है, अपने पिछले भले-बुरे अनुभवोंका पूर्ण योग। दूसरे क्षण उत्पन्न होनेवाले मनकी पल्लवसी घातें अपने-जनक मनसे वरासतमें मिलती हैं। यह वरासतका सिलसिला हमारे लवकपनसे बृद्धपन तक रहता है—इसे समझनेमें अड़चन नहीं होगी। लेकिन बुद्धकी शिक्षा के अनुसार यह सिलसिला जन्मसे पहले भी था, और मृत्युके बाद भी रहेगा। अपने पिछले अनुभवोंसे घने हुए मनकी उपमा, मृत्यु-क्षणमें जिस वक्त वह इस शरीरको छोड़नेके लिए तैयार रहता है, उस तब लौह-धारसे दी जा सकती है, जो एक ऐसी नालीके सहारे नीचे गहती चली आई हो, जो एक टीलेके पास आ कर रुक जाती हो। उस टीलेके दूसरी ओर एक ऐसी दूसरी नाली है, जिसके आरम्भपर पर्याप्त पुण्यक-राशि है, तो वह झरूर इस धारको गढ़े नालीमें डालनेके लिए समर्थ होगी। इसी प्रकार मृत्युके समय चित्त-प्रवाह अपनी संस्कार-राशिके साथ इस जीवनके डोरपर खड़ी रहती है। वह संस्कार-राशिरूपी पुण्यक समान धर्मवाले समीपतम शरीरमें खींच कर फिर उसकी वही पुरानी कार्रवाई शुरू करा देता है। यही कम तब तक जारी रहता है, जब तक तृण्यके क्षयसे यह सन्तति किण्वलित हो, निर्वाणको नहीं प्राप्त हो जाती। इस प्रकार कर्म, कर्म-फल और जन्मान्तर होता है।

जीवको नित्य ज्ञाननेमें बहुतसे दोष होते हैं। यदि आप उसे नित्य मानते हैं, तो उसे सिर्फ अमर ही नहीं, अजन्मा भी मानना होगा। फिर सामीप्य धर्मोंमें भी तो, जहाँ पुनर्जन्म नहीं मानते, यह मानना होगा कि जीव अरब-अरब वर्ष नहीं, बल्कि अनादि कालसे आज तक चुपचाप निश्चेष्ट पड़ा रहा। अब एक, पचास, या सौ वर्ष तकके लिए, बिना किसी पूर्व कर्मके, इस दुनियामें जन्मान्ध या नेत्रवान्, जन्मरोगी या स्वस्थ, भन्दबुद्धि या प्रतिभाशाली बन कर उत्पन्न हो गया है, और मरनेके बाद फिर अनन्तकाल तकके लिए अपने कुछ वर्षोंके बुरे-भले कर्मोंके कारण स्वर्ग या नरकमें डाल दिया जायगा। क्या इस तरहकी निष्पत्ता बुद्धिपुक्त मानी जा सकती है ? जो लोग पुनर्जन्म भी मानते हैं, और साथ-साथ आत्माको नित्य भी, उनकी ये दोनों बातें परस्पर



विरोधी हैं। जब वह निरुप है, तो कूटस्थ भी है, अर्थात् सदा एक-रस रहेगा; फिर ऐसी एक-रस वस्तुको यदि परिशुद्ध मानते हैं, तो वह जन्म-मरण के फेरमें कैसे पड़ सकती है? यदि अशुद्ध है, तो स्वभावतः अशुद्ध होनेसे उसकी शुक्ति कैसे हो सकती है? निरुप कूटस्थ होनेपर संस्कारकी जाय उसपर नहीं पड़ सकती, यह हम पहले कह चुके हैं। यदि छापके लिए मनको मानते हैं, तो आत्माको माननेकी जरूरत ही क्या रह जाती है?

प्रश्न हो सकता है कि यदि मन तथा आत्मा एक है, और वह क्षणिक है, तो अनेकतामें—'मैं' पहले था, मैं अब हूँ—ऐसी एकताका मान क्यों होता है? इसका उत्तर है कि समुदायमें एकत्वकी बुद्धि दुनियाका यह सार्वभौमिक नियम है। हम संसारकी जिस किसी चीज़को ले लें, सभी हज़ारों अणुओंसे बनी है, जिनके बीच काफ़ी अन्तर है। यह घात लोहे, प्लेदिनम, हीरे—सभी दोस-से-दोस वस्तुकी है। यदि हमारी दृष्टि उतनी सूक्ष्म होती, तो हम उन्हें ऐसे ही जलग-अलग देखते, जैसे पास जानेपर जंगलके वृक्ष। इस प्रकार दुनियाके सभी दृश्य पदार्थोंके मूलमें अनेकता होनेपर भी एकताका व्यवहार किया जाता है। अनगिनत टुकड़ोंके घने हुए शरीरको हम एक शरीर कहते हैं। अनेक वृक्षोंके घने जंगलको एक जंगल कहते हैं। अनेक तारोंके झुरमुटको एक तारा कहते हैं। हाँ, एक एक जरूर है। जहाँ शरीर, वन, तारोंमें अंश और अंश एक कालमें और एक देशमें मौजूद रहते हैं, वहाँ मन अति क्षण एकके बाद एक उत्पन्न होता रहता है। इसके लिए अच्छा उदाहरण बनेठी, चलते बायुयानका पंखा, या चलती पिचलीका पंखा ले सकते हैं। बनेठीकी रोशनी, या पंखेका पंज़ जल्दी-जल्दी इतने सूक्ष्म कालमें एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पहुँचता है कि हम उसे ग्रहण नहीं कर सकते, और काल एक स्वतन्त्र मान घन उभे चक्के रूपमें ला रखता है। इसी प्रकार मन भी इतना शीघ्र अपनी जगहपर दूसरे मनको उपस्थित कर रहा है कि बीचके अन्तरको हम नहीं ग्रहण कर पाते, और हमें चक्की एकताका मान होने लगता है। नदीकी धाराको भी तो आप एक कहते हैं, किन्तु क्या वह जल हज़ारों बिन्दुओंसे, और बिन्दु अगणित उद्बजन, ओषधजनके परमाणुओंसे, और परमाणु अनेक घनकण विद्युत्कणोंसे (जिनके भीतर चक्कर घाटनेके लिए काफ़ी अन्तर है), और फिर सूक्ष्मतम अनेकों न्यूट्रनोंसे नहीं बने है? वस्तुतः संसारमें सभी जगह समुदायहीको एक कहा जा रहा है। जब हमारी भाषाका यह एक सार्वभौमिक प्रयोग है, तब क्षणिक मनकी सन्तति (= प्रवाह)को साधारण दृष्टिसे हम एक कहने लगे, तो आश्चर्य क्या है? आश्चर्य तो यह है कि सारी दुनियामें एक कही जानेवाली चीज़ोंको समूहित देखते हुए भी पूछते हैं—समूहित है, तो आत्मा क्यों एक मालूम होती है? सवाल हो सकता है—जब आत्मा क्षणिक है, दूसरे क्षण वह रहता ही नहीं, तो उसकी पूर्णता और परिशुद्धि कैसे? उत्तर यह है कि हम मनको क्षणिक मानते हुए भी मनकी सन्ततिको क्षणिक नहीं मानते। रंगका धानी, उसका आधार, दोनों कुल और बाल सभी परावर बहल रहे हैं, तो भी सड़का प्रवाह बना रहता है, जिसे हम एक मान रंगा कहते हैं। इसी चित्त-सन्ततिकी परिशुद्धि और पूर्णता करनी होती है। जितनी ही चित्त-सन्तति राग, द्वेष, मोहके मलोंसे मुक्त होती है, उतना ही उस पुरुषके कायिक, वायिक, मानसिक कर्म परिशुद्ध होते जाते हैं, जिसके फलस्वरूप वह व्यक्ति अपने-परायेका उपकार करनेमें समर्थ होता है। जब उसमें राग-द्वेषका रंग नहीं रह जाता, तो व्यक्तिगत स्वार्थके केन्द्रपर केन्द्रित तृष्णा क्रमशः परिवार, ग्राम, देश, भूमंडल, प्राणिमात्रके स्वार्थको अपना बना, अपनी परिधिको अनन्त तक पहुँचा देती है। उस वक्त अनन्त परिधिवाली वह तृष्णा बन्धन-रहित हो तृष्णा ही नहीं रह जाती, उस पुरुषके लिए निर्वाणका मार्ग उन्मुक्त हो जाता है, और वह दुःखके फंदेसे छूट जाता है। मुक्ति तक पहुँचनेके लिए पुरुषको निजी स्वार्थकी सीमा पार कर लोकहितार्थ सब कुछ

उत्सर्ग करना पड़ता है ( आप ज्ञातकी को सुन्दर कहानियोंमें देखेंगे, पूर्णताके लिए बोधितत्वको कितना उत्सर्ग करना पड़ता है ) । तृष्णाको छोड़ना दुःखके मार्गको रोकता है, क्योंकि दुनियामें अधिकतर दुःख तृष्णा और स्वार्थके कारण ही तो हैं ?

इस प्रकार मनके क्षणिक होने पर, चूँकि चित्त-सन्तति क्षणिक नहीं है, इसलिए उसकी पूर्णता और परिशुद्धि करनी पड़ती है । वस्तुतः यदि आत्माको नित्य कृत्स्न आत्मा न मान, उसके स्थान पर क्षण-क्षण उत्पन्न होनेवाले चित्तोंको सन्ततिको माना जाय, तो शब्द पर हमारा कोई आग्रह नहीं है । चूँकि आप शब्द नित्य चेतन वस्तुके लिए व्यवहार होता था, इसलिए बुद्धने अनु-आत्म शब्दका प्रयोग किया ।

( ३ ) किसी ग्रन्थको स्वतः प्रमाण न मानना

स्वतः प्रमाण होनेका दावा करनेवाला सिर्फ एक ग्रन्थ नहीं है । सभी धर्मवाले अपने-अपने ग्रन्थको स्वतः प्रमाण मानते और मनवानेको कोशिश करते हैं । ब्राह्मण वेदको स्वतः प्रमाण मानते हैं, जिसकी बहुतसी बातें अन्य धर्मवालोंकी पुस्तकों एवं विज्ञानकी कितनी ही प्रयोग द्वारा सिद्ध बातोंके विरुद्ध पड़ती हैं । फिर ऐसा ग्रन्थ स्वतः प्रमाण कैसे माना जा सकता है ? यदि कहो कि वेद विज्ञानके प्रयोग-सिद्ध सिद्धान्तोंके विरुद्ध नहीं, तो सवाल होगा—यह कैसे मानें ? इसकी सिद्धिके लिए अन्तमें बुद्धिका ही आश्रय लेना पड़ेगा । फिर क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि वेदकी प्रामाणिकता भी बुद्धिपर निर्भर है ? फिर तो वेदकी अपेक्षा बुद्धि ही स्वतः प्रमाण हुई । जो बात यहाँ वेदके बारेमें कहो गई, वही बाइबिल, अंजोल, कुरान आदि स्वतः प्रमाण मानी जाने-वाली पुस्तकोंके बारेमें भी समझना चाहिए । वस्तुतः जब ईश्वर ही नहीं, तो ईश्वरकी पुस्तक कहाँसे होगी ?

पुस्तकोंके स्वतः प्रमाण माननेसे दुनियामें कितने भयंकर अत्याचार हुए हैं । गैलेलियो-की वह दुर्गति न होती, यदि बाइबिलको स्वतः प्रमाण नहीं माना जाता । और भी कितने ही वैज्ञानिकोंको जानसे हाथ न घोना पड़ता, यदि बाइबिलको स्वतः प्रमाण न माना जाता । वचन सत्यचेताओंके सहस्राब्दोंके परिष्कृत ग्रन्थरूपमें जिस सिकन्दरियाके पुस्तकालयमें सुरक्षित थे, उनको जलाकर खाक न किया गया होता, यदि सुसलमान विजेता कुरानको स्वतः प्रमाण न मानते । किसी ग्रन्थका स्वतः प्रमाण मानना अतर्हिण्युताका कारण होता है; इसने दुनियामें हजारों वर्षोंसे अनुपपन्न-जातिको धर्मान्धता, मिथ्या-विश्वास और मानसिक दास्यताके गर्दमें ही नहीं गिरा रखा है, बल्कि इसने ज्ञानके प्रसारमें रुकावट पैदा करनेके साथ जूनसे भी धरतीको रैगनेमें मगद दी है । ईसाई धर्मयुद्ध क्या थे, बाइबिल और कुरानके स्वतः प्रमाण होनेके लगभगके परिणाम ।

किसी ग्रन्थका स्वतः प्रमाण मानना, उसमें वर्णित विषयोंपर सन्देह न कर आगेकी जिज्ञासाको रोक देना है । जिज्ञासा ही दुनियाके बड़े-बड़े वैज्ञानिक आविष्कारोंके करनेमें कारण हुई है । यदि गैलेलियो बाइबिलके कहे अनुसार पृथिवीको चिपटी मान लेता, तो उसे पृथिवीके गोल होनेके प्रमाणोंका मान न होता । यदि केप्लर बाइबिलके सूर्यग्रहणको मिथ्या मान लेता, तो पृथिवीके घूमनेके अपने ही नियमोंका कहाँसे आविष्कार करता ? वस्तुतः ग्रन्थके स्वतः प्रमाण माननेपर न्युटन गुरुत्वाकर्षणका पता न लगा सकता, और न आइन्स्टाइन उसके संशोधक सापेक्षताके महान् सिद्धान्तका आविष्कार कर सकता । वस्तुतः संसारमें विद्या, सत्यता सम्बन्धी जितनी भी प्रगति हुई है, वह ग्रन्थोंके स्वतः प्रमाणके इनकारसे हुई है । व्यवहारमें कौन अनुपम अपने धर्म-ग्रन्थकी स्वतः प्रामाणिकता मानता है ? ग्रन्थ अपने-अपने समयकी रुढ़ियों, अन्ध-विश्वासों और अज्ञताओंसे जकड़े होते हैं । वह अपने समयके धार्मिक, सामाजिक एवं राज-



नैतिक व्यवहारोंके परिपोषक होते हैं। सहस्राब्दियों बाद वह बातें मरी हुई रहती हैं, तो भी वह मरे सुर्वेको गले भड़ना चाहते हैं। सेन्टपालके समय बियोंका सिर डकना उस समयके कैंशनके अनुसार अच्छा समझा जाता हो, किन्तु उस लिवाकटके कारण आज युरोपकी बियोंको गिरजेमें और न्यायालयमें कलम खाते वक्त टोपी लगानेपर मजबूर क्यों किया जाय, जब कि दूसरी जगह समाज उसकी आवश्यकता नहीं समझता है।

ग्रन्थके स्वतः प्रमाण होनेके लिए उसके कर्तोंको सर्वज्ञ मानना पड़ेगा—सर्वज्ञ भी सभी देश, सभी काल, सभी वस्तुके सम्बन्धमें। फिर यदि कोई सर्वज्ञ हमारे पैदा होनेसे हजार वर्ष पूर्व हमारे द्वारा किये जानेवाले अच्छे-बुरे सभी कर्मोंको जानता था, तब तो हम आज वैसा करनेपर मजबूर हैं, अन्यथा उसकी सर्वज्ञता झूठ हो जायगी। फिर अनुपपत्ति ऐसे सर्वज्ञके हाथमें क्या कठपुतली मात्र नहीं है? फिर कठपुतलीको अपने लिये अच्छा-बुरा काम चुनने और करनेका क्या अधिकार? और तब ऐसे धर्म उसके ग्रन्थ और उसमें कही गई शिक्षाओंका प्रयोजन क्या?

परिशुद्ध और मुक्त बननेके लिए कर्म करनेमें अनुपपत्ति स्वतन्त्र होना जरूरी है। कर्म करनेकी स्वतन्त्रताके लिए बुद्धि का स्वतन्त्र होना जरूरी है। बुद्धि-स्वातन्त्र्यके लिए किसी ग्रन्थको परतन्त्रताका न होना आवश्यक है। वस्तुतः किसी ग्रन्थकी प्रामाणिकता उसके बुद्धिपूर्वक होनेपर निर्भर है, न की बुद्धिकी प्रामाणिकता ग्रन्थपर।

उक्त तीम अस्वीकारात्मक बातें हैं, जिन्हें बुद्ध-धर्म मानता है।

( ४ ) जीवन-प्रवाहको इस शरीरके पूर्व और पश्चात् भी मानना

यद्येकी उत्पत्तिके साथ उसके जीवनका आरम्भ होता है। क्या क्या है? शरीर और मनका समुदाय। शरीर भी कोई एक इकाई नहीं है, बल्कि एक कालमें भी अत्यन्त अणुओंका समुदाय। वह अणु हर क्षण बदल रहे हैं, और उनकी जगह उनके समान दूसरे अणु उत्पन्न हो रहे हैं। इस प्रकार क्षण-क्षण शरीरमें परिवर्तन हो रहा है। यहाँ बाद वस्तुतः यही शरीर नहीं रहता, किन्तु परिवर्तन सहस्र परमाणुओं द्वारा होता है, इसलिए हम कहते हैं—वह वही है। जो बात यहाँ शरीरकी है, वही मनपर भी लागू होती है, फर्क यही है कि मन सूक्ष्म है, उसका परिवर्तन भी सूक्ष्म है, और पूर्वापर रूपोंका भेद भी सूक्ष्म है, इसलिए उस भेदका समझना दुष्कर है। आत्मा और मन एक ही हैं, और आत्मा क्षण-क्षण बदल रहा है, वह हम दूसरी जगह कह आये हैं।

शरीर और मन (= आत्मा) दोनों बदल रहे हैं। किसी क्षणके बालकके जीवनको ले लीजिए, वह अपने पूर्वके जीवनीशके प्रभावसे प्रभावित मिलेगा। क ज सीछनेसे लेकर घोचकी ओगियंमिं होता हुआ जब वह एम० ए० पास हो जाता है, उसके मनकी सभी परवर्ती अवस्था उसकी पूर्ववर्ती अवस्थाका परिणाम है। वहाँ हम किसी विचली एक कवीको छोज नहीं सकते। बिना मेट्रिकसे गुजरे कैसे कोई एफ० ए० में पहुँच सकता है? इस प्रकार कार्य-कारण-श्रृंखला जन्मसे मरण तक अटूट दिखाई पड़ती है। प्रश्न है, जब जीवन इसने छम्बे समय तक कार्य-कारण-सम्बन्धपर अवलम्बित आलस होता है और वहाँ कोई स्थिति आकस्मिक नहीं मिलती, तो जीवनके आरम्भमें उसमें कार्य-कारण नियमको अस्वीकार कर क्या हम उसे आकस्मिक नहीं मान रहे हैं? आकस्मिकता कोई सिद्धान्त नहीं है, क्योंकि उसमें कार्य-कारणके नियमोंसे ही इनकार कर देना होता है, जिसके बिना कोई बात सिद्ध नहीं की जा सकती। यदि कहें—माता-पिताका शरीर जैसे अपने अनुरूप पुत्रके शरीरको जन्म देता है, वैसे ही उनका मन तदनुसार पुत्रके मनको जन्म देता है, तो कुछ हद तक ठीक होनेपर भी यह बात सर्वोपार्थम्य की नहीं जैचती। यदि ऐसा होता, तो मन्दबुद्धि माता-पिताओंकी प्रतिभाशाली पुत्र, ऐसे ही प्रतिभाशाली माता-पिताओंकी



मन्दबुद्धि पुत्र न उत्पन्न होते। पंडितकी सन्तान मूर्ख बहुत देखी जाती है। ये दिकते हट जाती हैं, यदि हम जीवन-प्रवाहको इस शरीरके पहलेसे मान लें। फिर तो हम कह सकते हैं, हर एक पूर्व जीवन परवर्ती जीवनको निर्माण करता है। जिस प्रकार प्लानसे निकला लोहा, पिघलाकर बना कच्चा लोहा और अनेकों बार डंडा और गरम करके बना फौलाद तीनों ही लोहे हैं, तो भी उनमें संस्कारकी भाँति जैसी क्रम-उत्पाद है, उसीके अनुसार हम उन्हें कम-अधिक संस्कृत पाते हैं। प्रतिभाशाली बालककी बुद्धि फौलादकी तरह पहलेके चिर-अभ्याससे सुसंस्कृत है। मानसिक अभ्यासका यद्यपि स्मृतिके रूपमें सर्वथा उपस्थित रहना अत्यावश्यक नहीं है, परन्तु तदनुसार न्यूनधिक संस्कृत होना तो बहुत जरूरी है। इस जन्ममें भी कालेज छोड़नेके बाद, कुछ ही वर्षोंमें पाठ्य-पुस्तकोंके खटे हुए बहुतसे नियम, सूत्र भूल जाते हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि सारे अध्ययनका परिश्रम व्यर्थ जाता है। सारे वर्षोंमें कुछ दिन रखकर निकाल लिये गये धोकी भाँति, भूल जानेपर भी जो विद्याध्ययन-संस्कार मनके भीतर समा गया रहता है, वही शिक्षाका फल है। कालेज छोड़े वर्षों हो जाने, एवं पढ़ी बातोंको भूल जानेपर भी, जैसे मनुष्यकी मानसिक संस्कृति उसके पूर्वके विद्याभ्यासको प्रमाणित करती है; उसी प्रकार शैशवमें झलकनेवाले प्रतिभाको क्यों न पूर्वके अभ्यासका परिणाम माना जाय? वस्तुतः आनुवंशिकता और वातावरण मानसिक शक्तिके बितने अंशके कारण नहीं हैं—और ऐसे अंश काफी हैं (मेधाविता-मन्दबुद्धिता, भद्रता-दुर्गन्धता आदि कितने ही अप्रैत गुण मनुष्यमें अक्सर दिखाई पड़ते हैं) उनका कारण इससे पूर्वके जीवन-प्रवाहमें ईदना पड़ेगा। एक तरफ़ बड़ी तपस्यासे अध्ययन कर जिस समय उत्तम श्रेणीमें एम.ए. पास करता है, उसी समय अपने परिश्रमका पारितोषिक पाये बिना उसका यह जीवन समाप्त हो जाता है; उसके इस परिश्रमको शरीरके साव विनष्ट हो गया माननेकी अपेक्षा क्या यह अच्छा नहीं है कि उसे प्रतिभाशाली शिशुके साथ जोड़ दिया जाय? अशिक्षित माता-पिताके असाधारण गणितज्ञ, संगीतज्ञ शिशु देखे गये हैं। उक्त क्रमसे विचारनेपर हमें मालूम होता है कि हमारा इस शरीरका जीवन-प्रवाह एक सुदीर्घ जीवन-प्रवाहका छोटासा बीचका अंश है, जिसका पूर्वकालीन प्रवाह चिरकालसे आ रहा है, और परकालीन भी चिरकाल तक रहेगा। चिरकाल हो हम कह सकते हैं, क्योंकि अनन्तकाल कहनेपर अनन्तकालसे संचित शक्तिमें कुछ वर्षोंका संचित संस्कार कोई विशेष प्रभाव नहीं रख सकता, जैसे सारे समुद्रमें एक छोटीसी मिश्रीकी कड़ी। जीवनमें हम प्रभाव होता देखते हैं, और व्यक्ति और समाज बेहतर बननेकी इच्छा रखकर तभी प्रयत्न कर सकते हैं, यदि जीवनकी संस्कृतिको अनन्तकालसे प्रयत्नका नहीं, बल्कि एक परिमित कालके प्रयत्नका परिणाम मान लें। वस्तुतः अनन्तकाल और अकाल दोनों ही भिन्न-भिन्न मानसिक संस्कृतियोंके भेदको आकस्मिक बना देते हैं। जीवन-प्रवाह इस शरीरसे पूर्वसे आ रहा है, और पीछे भी रहेगा, तो भी अनादि और अनन्त नहीं है। इसका आरम्भ तृष्णा या स्वार्थपरतासे है, और तृष्णाके क्षयके साथ इसका क्षय हो जाता है।

जीवन-प्रवाहको इस शरीरसे पूर्व और पश्चात् काल भी माननेपर हम निकम्मे-से-निकम्मे आदर्शोंको भी बेहतर बननेकी आशा दिला सकते हैं। किसी ऊँचे आदर्शके लिए, लोक, समाज या दूसरे व्यक्तिके उत्कर्षके लिए, तभी अपने इस जीवनका उत्सर्ग तक कर देनेवाले पुरुषोंकी पर्याप्त संख्या मिल सकती है। तभी मनुष्य अपने अच्छे-बुरे कर्मोंके दायित्वको पूरी तरह समझकर दूसरेके अपकारसे अपनेको रोकनेके लिए तैयार हो सकता है। समाजके हितके लिए व्यक्तियोंका आत्म-बलिदानके लिए तैयार रहना एवं समाजके अपकार करनेसे व्यक्तियोंका आत्म-तिग्रह ये दोनों बातें लोकको बेहतर बनानेके लिए अनिवार्यतया आवश्यक हैं। लोकशक्ति वस्तुतः इन्हीं दो

बातोंपर निर्भर है। इसी शरीरको आदिम और अन्तिम मान लेनेपर उन दोनों बातोंके लिए आदमीको प्रेरक वस्तुका अत्यन्ताभाव यदि नहीं, तो इतना अभाव जरूर हो जायगा, जिससे ऊपर बड़नेकी गति रुक जायगी, और फलतः पीछेकी ओर गिरावट आरम्भ हो जायगी।

बुद्धकी शिक्षा और दर्शन इन चार सिद्धान्तोंपर अवलम्बित हैं। पहले तीनों सिद्धान्त बौद्धधर्मको दुनियाके अन्य धर्मोंसे प्रभेद करते हैं। ये तीनों सिद्धान्त जगत्वाद और बुद्ध-धर्ममें समान हैं, किन्तु चौथी बात, अर्थात् जीवन-प्रवाहको इसी शरीर तक परिलोमित न मानना, इसे जगत्वादसे प्रभेद करता है, और साथ ही व्यक्तिके लिए भविष्यको आशामय बनानेका यह एक सुन्दर उपाय है, जिसके बिना किसी आदर्शवादका कार्यरूपमें परिणत होना दुष्कर है।

चारों सिद्धान्तोंमें पहले तीन, तीन बड़ी परम्पराओंसे मनुष्यको सुकृष्ट करते हैं। चौथा आशामय भविष्यका सन्देश देता है और शील-सदाचारके लिए नींव धनता है। चारोंका जिसमें एकत्र सम्मेलन है, वही बुद्ध-धर्म है।

राहुल सांकृत्यायन

## सुत्तन्त( = सूत्र )-सूची

नाम	विषय	पृष्ठ
<b>१-मूल-परिपासक</b>		<b>१-२०१</b>
१ ( १ ) मूल-परिपासक-वग्ग		३-४०
१ ( १ ) मूलपरिपासक-सुत्तन्त	अज्ञानियोंकी दृष्टि	३
२ ( २ ) सन्धासव	चित्त-मलका दमन । अनात्मवाद ।	६
३ ( ३ ) धम्मदापाद्	धर्मके वारिस बनो, विसर्ग नही । भ्रष्टम मार्ग ।	१०
४ ( ४ ) मयभेरव	मय-भूत । संभोहन । विद्यावै ।	१३
५ ( ५ ) अगङ्गण	चित्त-मलवाले चार व्यक्ति । मिथुपनका ध्येय ।	१७
६ ( ६ ) आर्कखेय्य	मिथु-नियमोंका ग्रहण । ध्यान । प्रज्ञा । भवसागरके बंधन ।	२२
७ ( ७ ) वत्थ	चित्त-मलोंका दुस्परिणाम । उपक्लेश । मैत्री आदि भावनायें । तीर्थ स्नान अर्थ ।	२४
८ ( ८ ) सल्लेख	यथार्थ तप	२७
९ ( ९ ) सम्मादिट्ठि	दुष्ण, पाप अष्टांगिक मार्ग । प्रतीत्य-समुत्पाद् ।	३०
१० ( १० ) सतिपट्ठान	काय, मन आदिकी भावनायें । बोधिलामके ढंग । आर्यसत्य ।	३५
२ ( १ ) सीहनाद-वग्ग		४१-८८
११ ( १ ) चूल-सीहनाद	उपादान या आसक्तिका त्याग । निदान या प्रतीत्य-समुत्पाद् ।	४१
१२ ( २ ) महा-सीहनाद	बुद्ध-जीवनी ( तपस्यायें । अचेलक-व्रत । आहार-शुद्धि ) ।	४४
१३ ( ३ ) महा-दुक्खवत्तन्ध	भोगोंके दुस्परिणाम । राज-दंड ।	५३
१४ ( ४ ) चूल-दुक्खवत्तन्ध	भोगोंके दुस्परिणाम । भोगोंके कारण दुष्कर्म । सुखसे सुख अप्राप्य-मतवाद ।	५७
१५ ( ५ ) अनुमान	दुर्वचनके कारण और उनके हटानेके उपाय ।	६१
१६ ( ६ ) चेतोषिल	चित्तके काँटे । ऋद्धिर्दा ।	६५
१७ ( ७ ) वनपत्थ	कैसा अरण्य-वास करना चाहिये ?	६८
१८ ( ८ ) मधु-पिडिक	विषयोंके स्पर्श, उत्पत्ति और परिणाम ।	७०



[ भ ]

क्रमांक	नाम	विषय	पृष्ठ
१९	( ९ ) द्वेषावितर्क	चित्तमल्लोंका शमन । ध्यान । अहोमिक मार्ग ।	७४
२०	( १० ) चित्तक-संशान	राग-द्वेष-मोहके हटानेका उपाय ।	७७
	३ ( १ ) ज्ञापन-वग्ग		७९-१२६
२१	( १ ) ककचूपम	भारेसे चीरे जाने पर भी शांत रहना, ज्ञाति है ।	७९
२२	( २ ) जलजम्बूदूपम	साँप पकड़नेकी सावधानी उपदेश ग्रहणमें भी अपेक्षित है । अनात्मवाद ।	८२
२३	( ३ ) वमिक	पुरुषकी निर्वाण-प्राप्तिमें बाधाएँ	९२
२४	( ४ ) रथविनीत	ब्रह्मचर्यके गौण और मुख्य उद्देश्य । विशुद्धियाँ ।	९४
२५	( ५ ) निवाप	संसारके शिकार होनेसे बचनेका उपाय ।	९८
२६	( ६ ) पासराशि	बुद्ध-जीवनी ( शृङ्खलागते धर्म-चक्र प्रवर्तन तक ) ।	१०२
२७	( ७ ) चूल-इत्थिपदोपम	यथार्थ गुरु और उसकी मोक्षोपयोगिनी शिक्षाएँ ।	१११
२८	( ८ ) महा-इत्थिपदोपम	उपादान-स्कंधोंमें मुक्ति । प्रतीत्य-समुत्पाद ।	११७
२९	( ९ ) महा-सारोपम	मिथु-जीवनका वास्तविक उद्देश्य ।	१२१
३०	( १० ) चूल-सारोपम	" "	१२४
	४ ( ४ ) महा-वमक-वग्ग ।		१२७-१३७
३१	( १ ) चूल-गोसिग	अनुरुद्ध आदिकी सिद्धाई ।	१२७
३२	( २ ) महा-गोसिग	कैसे पुरुषसे तपोभूमि शोभित होती है ?	१३०
३३	( ३ ) महा-गोपालक	बुद्ध-धर्ममें सफलभूत होनेके लिये आवश्यक व्यावह धारें ।	१३३
३४	( ४ ) चूल-गोपालक	सुमुमुक्षुओंकी श्रेणियाँ ।	१३६
३५	( ५ ) चूल-सत्तक	आत्मवाद-मंडन, अनात्मवाद-मंडन ।	१३८
३६	( ६ ) महा-सत्तक	कायाकी साधना नहीं, मनकी साधना ।	१४४
३७	( ७ ) चूल-तण्हा-संखय	तृष्णाके क्षयका उपाय ।	१४८
३८	( ८ ) महा-तण्हा-संखय	" ( अनात्मवाद, धर्म वेदोंकी भाँति पार होनेके लिये है, पकड़ रखनेके लिये नहीं है । प्रतीत्य-समुत्पाद । जीवन-प्रवाह—गर्भ, वाल्य, यौवन, संन्यास, शील-समाधि ) ।	१५१
३९	( ९ ) महा-अस्सरपुर	अमण-आरक्षण बननेका उपाय ।	१६१
४०	( १० ) चूल-अस्सरपुर	" "	१६५
	५ ( ५ ) चूल-वमक-वग्ग ।		१६८-२०१
४१	( १ ) सालेय	काय-वचन-मनके सदाचार और दुराचार से सुगति, दुर्गति ।	१६८
४२	( २ ) वेरजक	" "	१७२
४३	( ३ ) महावेदल	प्रज्ञाहीन, प्रज्ञावान् । प्रज्ञा, विज्ञान । वेदना, संज्ञा, शील, समाधि, प्रज्ञा, जायु, उप्पा और विज्ञान ।	१७३

# [ म ]

क्र	नाम	विषय	पृष्ठ
४४	( ४ ) चूल-वेदल	आत्मवाद-त्याग । उपादान-संकट । अष्टांगिक- भार्य । संज्ञावेदित-निरोध । स्पर्श, वेदना, अनुभूति ।	१७९
४५	( ५ ) चूल-धम्म-समादान	चार प्रकारके धर्मानुयायी ।	१८४
४६	( ६ ) महाधम्म-समादान	धर्मानुयायियोंके भेद ।	१८५
४७	( ७ ) वीमंसक	गुरुकी परीक्षा ।	१८९
४८	( ८ ) कोसंबिय	मेल-जोलके लिये उपयोगी छः बातें ।	१९१
४९	( ९ ) ब्रह्म-निमंतमिक	बुद्धद्वारा सृष्टिकर्ता ईश्वर-ब्रह्माका अपमान ।	१९४
५०	( १० ) भार-उत्तमोप	मान-अपमानका त्याग (= ककुत्स्थ-बुद्धका उपदेश) । महाभौत-गुणधर्मका भारको फटकारना ।	१९८

## २—संज्ञिक-पराकासक

क्र	( १ ) गद्य-विषय	पृष्ठ
५१	( १ ) कन्दुरक	स्मृति-ग्रन्थान । आत्मतप आदि चार पुरुष ।
५२	( २ ) अट्टक नागर	महारह अमृत द्वार ( ध्यान )
५३	( ३ ) सेव	सदाचार, इन्द्रिय संयम । परिमित भोजन । जागरण । सद्धर्म । ध्यान ।
५४	( ४ ) पोतलिय	अपहार (= संसारके बंधन )के उच्छेदके उपाय ।
५५	( ५ ) जीवक	मांस-भोजनमें नियम
५६	( ६ ) उपासि	भक्त हो प्रधान, काया और चचन मीन ।
५७	( ७ ) कुक्कुल-वटिक	निरर्थक मत । चार प्रकारके कर्म
५८	( ८ ) अभय राजकुमार	लाम्बदायक अश्रिय सत्यको भी बोलना चाहिये ।
५९	( ९ ) बह्वेदनीय	नीर-श्रीरसा मेल-जोल । संज्ञा वेदित-निरोध ।
६०	( १० ) अपण्णक	द्विविधा-रहित धर्म । अश्रियवाद आदि मत-वाद । आत्मतप आदि चार पुरुष ।

क्र	( २ ) भिक्षु-वर्ग	पृष्ठ
६१	( १ ) अम्यलट्टिक-राहुलोवाद	सिन्धवा भाषणकी निम्ना
६२	( २ ) महा-राहुलोवाद	प्राणायाम । कायिक भावना । भौरी आदि भावनायें ।
६३	( ३ ) चूल-मालुङ्क	बुद्धने क्यों कुछ बातोंको न व्याख्येय, और कुछ को व्याख्येय कहा ।
६४	( ४ ) महा-मालुङ्क	संसारके बंधन और उनसे मुक्ति ।
६५	( ५ ) महालि	नियमित जीवनकी उपयोगिता । कर्मणः शिक्षा ।
६६	( ६ ) लङ्कटिकोपम	जोटी बात भी भारी हानि पहुँचा सकती है ।
६७	( ७ ) चातुम	भिक्षुपत्रके चार विध ।
६८	( ८ ) मलकपान	मुमुक्षुके कर्तव्य ।
६९	( ९ ) गुल्लितानि	अरण्य-वात अर्थ, यदि संयम नहीं ।



क्रमांक	नाम	विषय	पृष्ठ
७०	( १० ) कौटिलि	संयम । सात प्रकारके पुरुष । लोभी गुरु	२७५
	८ ( २ ) परिभाषक-वग्ग		२७५-२७४
७१	( १ ) तेलिज्ज-वच्छगोत्त	बुद्ध अपनेको सर्वज्ञ नहीं मानते । तीन विचार्ये । सुगतिके उपाय ।	२७५
७२	( २ ) अग्नि-वच्छगोत्त	असत्वादोंका खंडन । १० अ-व्याख्येय । आगके बुझने जैसा निर्वाण ।	२८३
७३	( ३ ) महा-वच्छगोत्त	निर्वाणत्वामो मार्ग और निर्वाण प्राप्तिका उपाय ।	२८३
७४	( ४ ) दीघनख	असत्वादोंका दुराग्रह । काया अपनी नहीं । सभी अनुभव अनित्य ।	२८५
७५	( ५ ) भागन्दिष	इन्द्रिय-संयम । ऊपर जानेपर नीचेका सुख कोका ।	२९२
७६	( ६ ) सन्दक	धर्म और असन्तोषकर संन्यास । अ-क्रियावाद वादि मत । विचार्ये । अर्हत्का ज्ञान ।	२९५
७७	( ७ ) महा-सकुलुदासि	उपदेशमें वास्तविक अज्ञा कैसे होती है ? बुद्धपद के उपयोगी धर्म ।	३०५
७८	( ८ ) समण-मंडिक	सुकर्मों पुरुष ।	३१४
७९	( ९ ) चूळ-सकुलुदासि	जैनोंका सिद्धान्त । परिभाषकोंका सिद्धान्त । सुखसय छौंफका मार्ग ।	३१८
८०	( १० ) वेत्थणत	परिभाषकोंका सिद्धान्त । पूर्वान्त, अपरान्तके सिद्धान्त ।	३२३
	९ ( ४ ) राज-वग्ग		३२५-७२
८१	( १ ) छटिकार	त्याग-मय गृहस्थ-जीवन ।	३२५
८२	( २ ) रुद्धपाण	त्याग-मय भिक्षु-जीवन । भोगोंकी अस्मरता ।	३३०
८३	( ३ ) मत्थादेव	कल्याण-मार्ग ।	३३८
८४	( ४ ) माधुरिय	वर्ण-व्यवस्था ( = जातिवाद ) का खंडन ।	३४०
८५	( ५ ) बोधि राजकुमार	बुद्ध-जीवनी ( गृहत्यागसे बुद्धत्व-प्राप्ति तक ) ।	३४४
८६	( ६ ) अंगुलिमाल	अंगुलिमालका जीवन-परिवर्तन ( सखेरेका भूला ग्रामको रास्ते पर ) ।	३५३
८७	( ७ ) पिद्य-जातिक	प्रियोंसे ओक, दुःखकी उत्पत्ति ।	३५८
८८	( ८ ) वाहोविष	बुद्ध निन्दित कर्म नहीं कर सकते ।	३६१
८९	( ९ ) धम्मवेतिय	भोगोंके दुष्परिणाम । बुद्धकी प्रज्ञा ।	३६४
९०	( १० ) कण्णस्थलक	सर्वज्ञता अत्यन्त । वर्ण-व्यवस्था-खंडन । देव, मत्था ।	३६८
	१० ( ५ ) आक्षय-वग्ग		३७३-४२३
९१	( १ ) मझाबु	महापुरुष-लक्षण । बुद्धका रूप, गमन, घरमें प्रवेश, भोजनका ढंग । आक्षय, वेदगू आदिकी व्याख्या	३७३
९२	( २ ) सेल	बुद्धके गुण । सेल आक्षयका सन्वाप्त ।	३८१
९३	( ३ ) अस्सलायण	वर्ण-व्यवस्थाका खंडन ।	३८६

क्रमांक	नाम	विषय	पृष्ठ
९४ ( ३ )	घोटमुख	आत्मतप आदि चार पुरुष ।	३९१
९५ ( ५ )	चंद्रि	बुद्धके गुण । ब्राह्मणोंके वेद और ऋषि । सत्यको रक्षा और प्राप्ति ।	३९५
९६ ( ६ )	फासुकारि	वर्ण-व्यवस्थाका खंडन ।	४०५
९७ ( ७ )	धर्मजानि	अपना अपना किया अपने अपने साथ ।	४०७
९८ ( ८ )	वालेट्ट	वर्ण-व्यवस्थाका खंडन ।	४०९
९९ ( ९ )	सुम	गृहस्थ और संन्यासकी तुलना । ब्रह्मलोकका मार्ग ।	४१४
१०० ( १० )	संगारव	बुद्धकी तपश्चर्या ।	४२३

## ३-उपरि-परिच्छासक ।

४२५-६०९

११ ( १ ) देवदह-वग्ग

४२५-६५५

१०१ ( १ )	देवदह	कायिक तपस्याकी निष्सारता । मानस तप ही लाभ-प्रद । भिक्षु-आश्रमका सुख ।	४२७
१०२ ( २ )	पंचत्तव	आत्मवाद आदि नामा मतवाद ।	४३३
१०३ ( ३ )	किन्ति	मेघ-जोलका डङ्ग ।	४३८
१०४ ( ४ )	सामगाम	बुद्धके मूल-उपदेश । संघमें विवाद होनेका कारण । सात प्रकारके फल । मेघ-जोलका डङ्ग ।	४४१
१०५ ( ५ )	सुनक्कथ	ध्यान । चित्त-संयम ।	४४५
१०६ ( ६ )	आनंजलसंपाद्य	भोग निस्तार हैं ।	४४९
१०७ ( ७ )	कणक-मोमालान	कमलः धर्ममें प्रगति ।	४५२
१०८ ( ८ )	गोपक-भोगालान	बुद्धके बाद भिक्षुओंका मार्ग-देष्टा	४५५
१०९ ( ९ )	महा-पुण्यम	स्कंध । आत्म-वाद-खंडन	४६०
११० ( १० )	मूल-पुण्यम	सत्पुरुष और अ-सत्पुरुष	४६३

१२ ( २ ) अगुपर-वग्ग

४६६-५००

१११ ( १ )	अनुपद	सार्वित्रिकके गुण—ग्रन्था, समाधि आदि	४६६
११२ ( २ )	उच्चिसोपन	अर्हत्की पहिचान	४६९
११३ ( ३ )	सत्पुसि-धम्म	सत्पुरुष और अ-सत्पुरुष	४७१
११४ ( ४ )	सेवितव्व-नसेवितव्व	सेवनीय, अ-सेवनीय	४७५
११५ ( ५ )	बहुभातुक	धान्य । दधि-प्राप्त पुरुष । स्थान-अस्थानका जानकार	४७९
११६ ( ६ )	इत्तिगिलि	ऋषिगिरिके प्रत्येकबुद्ध	४८३
११७ ( ७ )	महा-वत्तारीसक	ठोक समाधि आदि	४८६
११८ ( ८ )	आनापान सति	प्राणायाम । ध्यान	४९०
११९ ( ९ )	कायगता सति	कायायोग	४९४
१२० ( १० )	संसारुपति	पुण्य-संस्कारोंका विपाक	४९८

१३ ( ३ ) सुप्पता-वग्ग

५०१-५४२

१२१ ( १ )	मूल-सुप्पता	चित्तकी शुद्धताका योग ।	५०१
१२२ ( २ )	महा-सुप्पता		५०४

नाम	विषय	पृष्ठ
१२३ ( ३ ) अष्टारिय धम्म	कुल कहाँ और कैसे उत्पन्न होते हैं ?	५०९
१२४ ( ४ ) धक्कुल	धक्कुलका त्यागभय मिट्टु-जीवन ।	५१२
१२५ ( ५ ) वन्त भूमि	चित्तकी एकाग्रता । संयमकी शिक्षा ।	५१५
१२६ ( ६ ) भूमिज	उचित रीतिसे पालन किया ब्रह्मचर्यही सफल होता है ।	५२०
१२७ ( ७ ) असुक्क	मातृता-योग ( अ-प्रमाणा चेतो-विमुक्ति ) ।	५२३
१२८ ( ८ ) उपत्तिकलेस	कलहका कारण और चिकित्सा । योग-युक्तियाँ ।	५२७
१२९ ( ९ ) बाल-संघित	नरक । पापी मूर्खके कर्म । स्वर्ग । चक्रवर्ती राजा ।	५३२
१३० ( १० ) देवकृत	नरक वर्णन ।	५३९
१३ ( ४ ) विमंग-वग्गा		५४३-५८१
१३१ ( १ ) भदेकरत्त	भूत-भविष्यकी चिन्ता को वर्तमानमें लगे ।	५४३
१३२ ( २ ) आनन्द-भदेकरत्त	"	५४५
१३३ ( ३ ) महाकायापन-भदेकरत्त	" ( सविस्तर )	५४६
१३४ ( ४ ) लोमसकगिघ-भदेकरत्त	"	५४७
१३५ ( ५ ) पूल-कम्मविमंग	कर्मोंका फल	५५२
१३६ ( ६ ) महा-कम्मविमंग	"	५५५
१३७ ( ७ ) सलायतन-विमंग	आश्रयन । कामना और निष्कामना । स्मृति-प्रस्थान	५६०
१३८ ( ८ ) उदसे-विमंग	इन्द्रिय-संयम । ध्यान । अ-परिग्रह ।	५६४
१३९ ( ९ ) अरण-विमंग	सुसुप्तकी चर्चा ।	५६७
१४० ( १० ) धातु-विमंग	धातुओंका विभाग । मनकी साधना ।	५७२
१४१ ( ११ ) सस-विमंग	चार आर्य-सत्य ।	५७८
१४२ ( १२ ) वक्खिणा-विमंग	संघ, व्यक्तिसे ऊपर है ।	५७९
१५ ( ५ ) सलायतन-वग्गा		५८१-६०९
१४३ ( १ ) अनाथ-पिडिकोवाद	अनाथ-पिडिककी श्रुत्यु । अनासाक योग ।	५८२
१४४ ( २ ) छज्जोवाद	अनात्म-वाद । छज्जकी आत्म-हत्या ।	५८५
१४५ ( ३ ) पुण्णोवाद	धर्म-प्रचारककी सहिष्णुता और त्याग ।	५८८
१४६ ( ४ ) सन्दकोवाद	अनात्म-वाद । बोध्यंग ।	५९०
१४७ ( ५ ) पूल राहुलोवाद	अनात्म-वाद ।	५९५
१४८ ( ६ ) छ-ज्जक	इन्द्रिय, विषय, विज्ञान और तीनोंका समागम ।	
	अनात्मवाद ( सविस्तर ) ।	५९७
१४९ ( ७ ) महा-सलायतन	वृष्णा और दुःख ।	६०१
१५० ( ८ ) नगर-विन्देय्य	सत्कारके पात्र ।	६०३
१५१ ( ९ ) पिडपात-वारिमुत्ति	विषयोंका त्याग । स्मृति-प्रस्थान आदि भावनाएँ ।	६०५
१५२ ( १० ) इन्द्रियमायना	इन्द्रिय-संयम ।	६०७



# सुत्तन्त-( = सूत्र ) अनुक्रमणी

	संख्या		संख्या
अंगुलिमात्र सुत्तन्त	८६	कायगता धति	११९
अच्छरिय-धम्म	१२३	किति	१०३
अट्टक भागर	५२	कीटागिरि	७०
अर्त्तगण	५	कुङ्कुरवत्तिय	५७
अनापपिडिकोवाद्	१७३	कोसंबक	१८
अनुपद्	१११	मुल्लिप्पानि	६९
अनुमान	१५	गोपालक । चूल-	३४
अनुरुत्त	१२७	" । महा-	३३
अपण्णक	६०	गोसिंग । चूल-	३१
अमयराजकुमार	५८	" । महा-	३२
अरणविभंग	१३९	घट्टिकार	८१
अलगद्	२२	घोटमुख	९४
अम्बरपुर । चूल-	४०	संकि	९५
" । महा-	३५	अत्तारीसक । महा-	११७
अस्सलायण	९३	धातुम	६४
आरुत्तेय्य	६	केतोविल	१६
आनंजसपाय	१०६	लुल्लङ्कक	१४६
आनाधानसति	११८	ऊजोवाद्	१४४
इन्द्रियमाक्का	१५०	ऊज्झिमोघन	११२
इसिगिलि	११६	ओषक	५५
उद्देसविंग	१३८	तण्हासंस्तय । चूल-	३७
उपक्खिलेस	१२८	" । महा-	३८
उपालि	५६	दक्खिणाविभंग	१४२
कक्कप्पम	२१	दन्तभूमि	१२५
कण्णत्थल्लक	९०	दीघमख	७४
कम्परक	५१	दुक्खसंघ । चूल-	१५
कम्मविभंग । चूल-	१३५	" । महा-	१३
" । महा-	१३६	देवदह	१०१

	संख्या		संख्या
देवदूत	१३०	अधुपिदिक	१८
हेषावितक	१९	भार्गदिव	७५
धम्मचेतिय	८९	भापुरिय	८४
धम्मदावाद	३	भार-तज्जनिय	५०
धम्मसमादान । तुल-	५५	भालुक्क । तुल-	६३
" । महा-	७६	" । महा-	६४
आधुविभंग	१४०	मूलपरिवाय	१
आनंजानि	९७	भोग्गालान । गणक-	१०४
जगर विदेस	१५०	" । गोपक-	१०८
नन्दकोवाद	१४६	रट्टपाल	८२
नल्लपान	६८	रजविनीत	२४
निवाप	२५	राहुकोवाद	१४०
एवलय	१०२	" । अयलट्टिका-	६१
पासरासि	२६	" । महा-	६२
पिडपात-पासिसुहि	१५१	लङ्कटिकोपम	६६
पियजासिक्क	८४	सुच्छमोस । भग्गि-	७२
पुण्णम । तुल-	१३०	" । तेविज्ज	७१
" । महा-	१०९	" । महा-	७३
पुण्णोवाद	१४५	वत्थ	७
पोतलिय	५७	वनपत्थ	१४
फासुकारि	९६	वम्मिक	२३
सक्कल	१२४	वासेट्ट	९८
सहुबगुक्क	११५	वितनकसंठान	२०
सहुवेधनीय	५९	वीसेसक	४७
पाल-पडित	१२९	वेत्थणस	८०
पाहोतिय	८८	वेदह । तुल-	४४
पोचिराज्जुमार	८५	" । महा-	४३
सद्धानिसंतणिक	७९	वेरंजक	४२
सङ्गायु	९१	सङ्कलदायि । तुल-	७९
सराणि	६५	" । महा-	७७
सरेकरत्त	१३१	संस्कारपति	१२०
" । धम्मन्-	१३२	संगारव	१००
" । महाकल्पावन-	१३३	सक्क । तुल-	३५
" । लोमसकेगिय-	१३४	" । महा-	३६
समभेरव	४	सहविभंग	१४१
सुविज	१२६	सतिपट्टान	१०
सप्पादेव	८३	संदुक	७६

[ प ]

संख्या		संख्या
सत्पुत्रिस्त-धम्म	११३	" । महा— १२
सुब्बासय	२	सुब्बासा । वूल— १२१
समणसंदिक्	७८	" । महा— १२२
सम्मादिट्ठि	९	सुत्तकवण १०५
सुत्तेव	८	सुत्त २९
सुत्तासतयविभंग	१३७	सुत्त (= वूलकम्मविभंग ) १३५
सुत्तासतमिक् । महा—	१५९	सेव ५३
सामगाम	१०४	सेल ९२
सारोपम वूल—	३०	सेवित्तव्य-त सेवित्तव्य ११४
" । महा—	२९	हत्तिपदोपम ( वूल— २७
सात्तेव्यक	२१	" । महा— २८
सीहनाद । वूल—	११	



## वर्ग-अनुक्रमणी

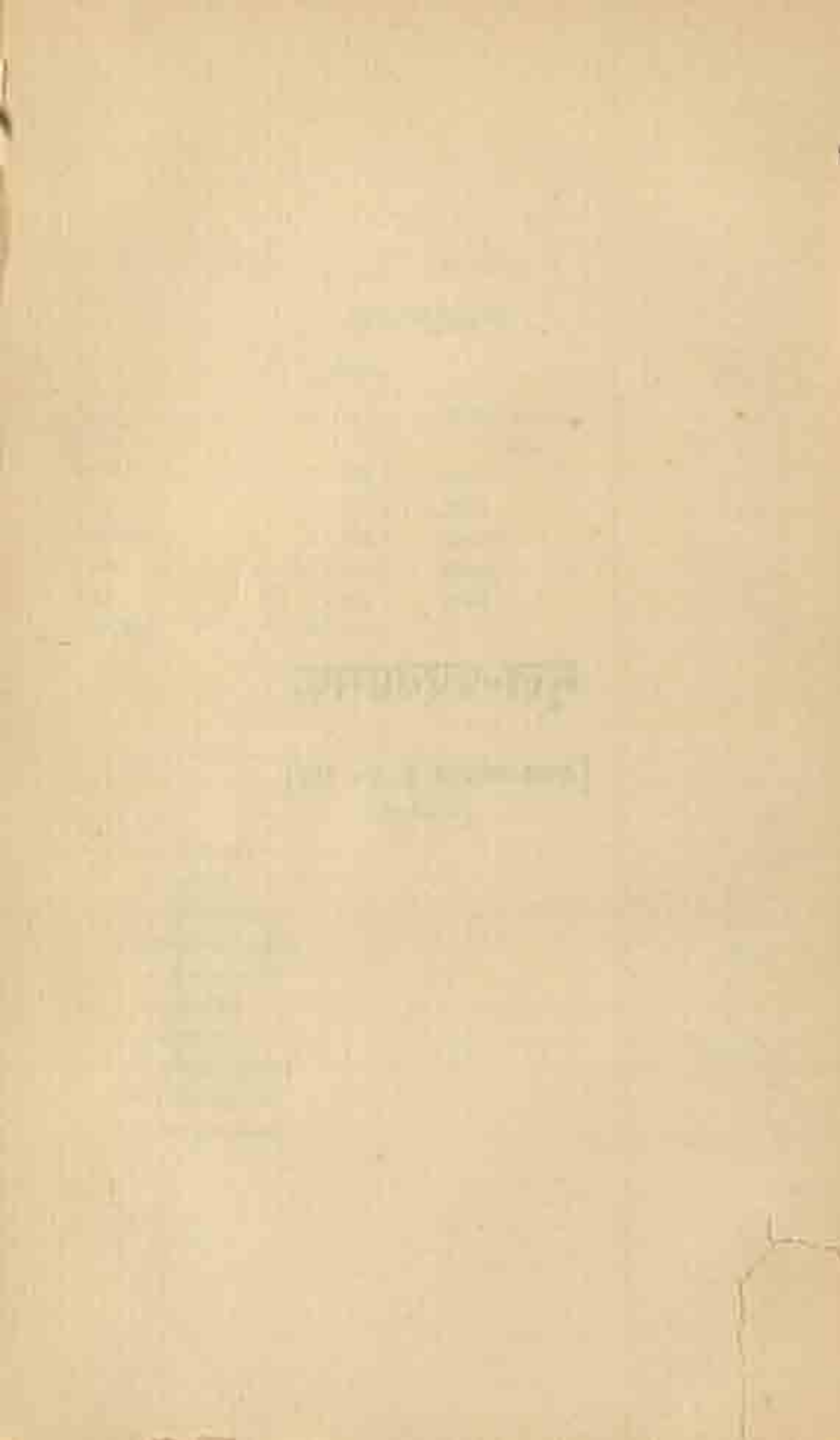
	संख्या		संख्या
अनुपद	१२ ( ३।२ )	धर्मक । चूड—	५ ( १।५ )
ओपम्भ	३ ( १।३ )	" महा—	४ ( १।४ )
गङ्गपति	६ ( २।१ )	राज	९ ( २।४ )
देवदह	११ ( ३।१ )	विभंग	१२ ( ३।४ )
परिव्याजक	८ ( २।३ )	सव्यावतन	१५ ( ३।५ )
वाङ्मय	१० ( २।५ )	सीहनाव	२ ( १।२ )
मिक्कु	७ ( २।२ )	मुष्णता	१३ ( ३।३ )
मूलपरिचाय	१ ( १।१ )		

## विषय-सूची

१—प्राङ्-कथन	६—४
२—सूक्तिका	७—५
३—सुत्तन्त-सूची	८—६
४—सुत्तन्त-अनुक्रमणी	९—७
५—वर्ग-अनुक्रमणी	१०—८
६—नाम-चित्र	११—९
७—संधानुवाद	१२—१०
८—उपमा-अनुक्रमणी	१३—११
९—नाम-अनुक्रमणी	१४—१२
१०—शब्द-अनुक्रमणी	१५—१३

# मूल-परणासक

[प्रथम-पञ्चाशक १-५५ सूत्र]





## मज्झिम-निकाय

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा संबुद्धस

### १-मूलपरियाय-सुत्तन्त (१।१।१)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् उक्कट्टाके सुभगावनमें स्यालरुज्जके नीचे विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भदन्त !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! सारे धर्मोंके मूल नामक (= मूलपरियाय) ( उपदेश) को तुम्हें उपदेशता हूँ। उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें ( धारण ) करो, कहता हूँ ।”

“हाँ, भन्ते !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! आर्योंके दर्शनसे वंचित, आर्यधर्मसे अपरिचित, आर्यधर्ममें अविनीत (= न पहुँचे); सत्पुरुषों के दर्शनसे वंचित, सत्पुरुषोंके धर्मसे अपरिचित, सत्पुरुषोंके धर्ममें अविनीत, अश्रुतवान् (= अज्ञ), पृथग्जन (= अवाची) पृथ्वीको पृथ्वीके तौरपर समझता है, पृथ्वीको पृथ्वीके तौरपर समझकर पृथ्वी मानता है, पृथिवी-द्वारा मानता है, पृथिवीसे मानता है, पृथ्वी मेरी है—मानता है, पृथ्वीका अभिनन्दन करता है। तो किसलिये ?—उसे दीकसे भाव्य नहीं है—कहूँगा। पानीको पानीके तौरपर समझता है \*। तेजको तेजके तौरपर समझता है \*। वायुको वायुके तौरपर समझता है \*। भूतों (= मूल-प्रेतों)को भूतके तौरपर समझता है \*। देवताओंको देवताके तौरपर समझता है \*। प्रजापतिको प्रजापतिके तौरपर समझता है \*। ब्रह्माको ब्रह्माके तौरपर समझता है \*। आभास्वर ( देवताओं)को आभास्वरके तौरपर समझता है \*। सुभकिण्ड ( = शुभकृत्स्न देवताओं)को, सुभकिण्डके तौरपर समझता है \*। वेहप्फल ( = वेहप्फल देवताओं)को वेहप्फलके तौरपर समझता है \*। अभिभू ( देवता)को अभिभूके तौरपर समझता है \*। आकासान्धावतन (= अनन्त आकाशके निवासी देवताओं)को आकासान्धावतनके तौरपर समझता है \*। विज्जार्णन्धावतन (= अनन्त विज्ञान जिनका घर है, उन देवताओं)को विज्जार्णन्धावतनके तौरपर समझता है \*। आकिञ्चव्धावतन (= जिनका आवतन कुछ नहीं है, उन देवताओं)को आकिञ्चव्धावतनके तौरपर समझता है \*। नेवसज्जानासज्जायतन [ = जिनको न संज्ञा (= होश) है, न असंज्ञा, उन देवताओं]को नेवसज्जानासज्जायतनके तौरपर समझता है \*। इष्ट ( = देखे)को इष्टके तौरपर समझता है \*। श्रुत ( = सुने)को श्रुतके तौरपर समझता है \*। स्मृत ( = यादमें आवे)को स्मृतके तौरपर समझता है \*। विज्ञात

\* जहाँ ( . ) चिन्ह हो, वहाँ पहिले ओंके तात्पर्यमूलको दुहरना चाहिये।

(=जाने गये)को विज्ञातके तौरपर समझता है ० । एकत्त्व (=अकेलेपन)को एकत्वके तौरपर समझता है ० । नानात्त्व (=अनेकपन)को नानात्वके तौरपर समझता है ० । सर्व (=सारे)को सर्वके तौरपर समझता है ० । निर्वाणको निर्वाणके तौरपर समझता है, निर्वाणको निर्वाणके तौरपर समझकर निर्वाणको मानता है, निर्वाणद्वारा मानता है, निर्वाणसे मानता है, निर्वाण मेरा है—मानता है, निर्वाणको अभिनन्दन करता है । सो किसलिये ?—उसे ठीकसे मालूम नहीं है—कहूँगा ।

अश्रुतपाल् पृथग्जनके द्वारा प्रथम भूमिपरिच्छेद ।

“मिथुओ ! वह मिथु भी, जोकि सेख (=शैक्ष्य) = जिसको अभी सीखना बाकी है) पहुँचे-हुये-जनवाला नहीं है, सर्वोत्तम योगक्षेम (=कल्याणकारी पद)की चाहमें विहरता है; वह भी पृथ्वीको पृथ्वीके तौरपर समझता है; पृथ्वीको पृथ्वीके तौरपर समझकर या तो पृथ्वी मानता है, या पृथ्वीद्वारा मानता है, या पृथ्वीसे मानता है, या पृथ्वी मेरी है—ऐसा मानता है, या पृथ्वीका अभिनन्दन करता है । सो किसलिये ?—(अभी) उसे ठीकसे मालूम करना है—कहूँगा । पानीको ० । तेजको ० । वायुको ० । भूतोंको ० । देवताओंको ० । प्रजापतिको ० । ब्रह्माको ० । आभास्वरोंको ० । शुभकृत्स्नोंको ० । बृहत्फलोंको ० । अभिमृको ० । आकासानन्वायतनको ० । विष्णानन्वायतनको ० । आकिञ्चनायतनको ० । नेवसम्मानसम्भायतनको ० । दृष्ट ० । श्रुत ० । स्मृत ० । विज्ञात ० । एकत्त्व ० । नानात्त्व ० । सर्व ० । निर्वाण ० ।

शैक्ष्यके द्वारा द्वितीय भूमिपरिच्छेद ।

“मिथुओ ! वह मिथु भी, जोकि अर्हत् है, क्षीणाक्षव (=राग आदिसे मुक्त), (ब्रह्मचर्य-)वास-समाप्त-कर-चुका, कृतकारणोप, न अवहितभार (=भारको फेंक चुका), सन्ने-पदार्थको-या चुका, भव (=संसार)के बंधनोंको काट चुका, यथार्थ ज्ञानद्वारा मुक्त हो चुका है; वह भी पृथ्वीको पृथ्वीके तौर पर पहिचानता है; पृथ्वीको पृथ्वीके तौर पर पहिचानकर न पृथ्वीको मानता है, न पृथ्वीद्वारा मानता है, न पृथ्वीसे मानता है, न ‘पृथ्वी मेरी है’—मानता है, न पृथ्वीको अभिनन्दन करता है । सो किस हेतुसे ?—उसे (यह) ठीकसे मालूम है—कहूँगा । पानी ० । तेज ० । ० ।

क्षीणाक्षवके द्वारा पहिले प्रकारसे तृतीय भूमिपरिच्छेद ।

“मिथुओ ! वह मिथु भी, जोकि अर्हत् क्षीणाक्षव है ० ; वह भी पृथ्वीको पृथ्वीके तौर पर पहिचानता है ० पहिचानकर न पृथिवीको मानता है, ० । सो किस हेतुसे ?—रागके नष्ट हो जानेसे, दोषराग होनेसे—कहूँगा । पानी ० । ० ।

क्षीणाक्षवके द्वारा द्वितीय प्रकारसे चतुर्थ भूमिपरिच्छेद ।

“मिथुओ ! वह मिथु भी, जोकि अर्हत् क्षीणाक्षव है ० ; वह भी पृथिवीको पृथिवीके तौर पर पहिचानता है, ० पहिचानकर न पृथिवीको मानता है ० । सो किस वजहसे ?—द्वेषके नष्ट हो जानेसे, वीतद्वेष होनेसे—कहूँगा । पानी ० । ० ।

१ शैक्ष्य शब्दोंमें मनुष्योंके दो विभाग किये गये हैं । जोकि सम्यग्पर दृष्टा पूर्वेक आरुढ़ नहीं हुये हैं, उन्हें पृथग्जन कहते हैं । जो सम्यग् पर दृष्टापूर्वक आरुढ़ हैं, उन्हें आर्य कहते हैं । आर्योंमें किन्हीं अभी करना और सीखना है, उन्हें शैक्ष्य (=सीतनापत्र, सकृदागामी, अन्यागामी) कहते हैं, और जो मुक्त, कृतज्ञ हैं, उन्हें अशैक्ष्य वा अर्हत् कहते हैं ।

श्रीणास्त्वके द्वारा तृतीय प्रकारसे पंचम भूमिपरिच्छेद ।

“भिषुओ ! वह भिषुओ, जोकि अर्हत् श्रीणास्त्व है ० ; वह भी पृथिवीको पृथिवीके तौर पर पहिचानता है, ० पहिचानकर न पृथिवीको मानता है ० । सो किस वजहसे ?—मोहके नष्ट हो जानेसे, बीतमोह होनेसे—कहूँगा । पानी ० । ० ।

श्रीणास्त्व-द्वारा चौथे प्रकारसे षष्ठ भूमिपरिच्छेद ।

“भिषुओ ! तयागत<sup>१</sup> अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध (= यथार्थ परमज्ञानी ) भी पृथिवीको पृथिवीके तौर पर पहिचानते हैं, ० पहिचानकर न पृथिवीको मानते हैं ० । सो किस वजहसे ? तयागतने डीकसे ज्ञान लिया है—कहूँगा । पानी ० । ० ।

शास्ता (= उपदेष्टा=दुद्ध )-द्वारा पहिले प्रकारसे सप्तम भूमिपरिच्छेद ।

“भिषुओ ! तयागत ० भी, ० पहिचानकर न पृथिवीको मानते हैं ० । सो किस वजहसे ? मग्दी (= मृष्टा ) दुःखका मूल है—वैसा ज्ञानकर, ‘भव (= संसार ) में जन्मने वालेको जरा और मरण ( अवश्यभावी ) है’ । इसलिये भिषुओ ! तयागत सारी ही मृष्टाओंके श्रय, विराम, निरोध, त्याग, विसर्जनसे, सर्वोत्तम सम्यक्-संबोधि (= यथार्थ परमज्ञान ) के ज्ञानकार (= अभिरुद्ध=संबुद्ध ) हैं—कहता हूँ । पानी ० । ० ।”

शास्ता-द्वारा दूसरे प्रकारसे अष्टम भूमिपरिच्छेद ।

—भगवान्ने यह कहा, ( किन्तु ) उस भिषुओने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन नहीं किया ।<sup>१</sup>

<sup>१</sup> तया=वैसे ( अन्य दुद्ध संसारमें जोये, भाते हैं, या आवेगे, वैसे ही जो ), तयागत = आया ।



## २-सन्ध्यासव-सुत्तन्त (१।१।२)

ऐसा गैने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनार्थपिण्डिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“अनन्त !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! सारे आस्रवों ( = सन्ध्यासव )के संवर ( = रोक ) नामक ( उपदेश )को तुम्हें उपदेशता हूँ। उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें ( धारण ) करो, कहता हूँ।”

“हाँ भन्ते !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! जानते हुये देखते हुये, मैं आस्रवों ( = मलों )के रूप ( के बारेमें ) कहता हूँ, बिना जाने बिना देखे नहीं। भिक्षुओ ! क्या जान क्या देख, आस्रवोंका क्षय होना है ?—योनिसोमनसिकार ( = ठीकसे मनमें धारण करना ), और अयोनिसोमनसिकार ( = बेठीकसे मनमें धारण करना )। बेठीकसे मनमें ( धारण ) करनेसे, न-उत्पन्न आस्रव उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न आस्रव बढ़ते हैं। ठीकसे मनमें ( धारण ) करनेसे, न-उत्पन्न आस्रव उत्पन्न नहीं होते, और उत्पन्न आस्रव नष्ट होते हैं।

“भिक्षुओ ! ( १ ) ( कोई कोई ) आस्रव दर्शन ( = विचार )से प्रहातव्य ( = त्यागे जा सकते ) हैं; ( २ ) ( कोई कोई ) संवरने त्यागे जा सकते हैं; ( ३ ) ( कोई कोई ) आस्रव प्रतिसेवन ( = सेवन )से त्यागे जा सकते हैं; ( ४ ) ( कोई कोई ) आस्रव अधिचासन ( = स्वीकार ) करने से त्यागे जा सकते हैं; ( ५ ) ( कोई कोई ) आस्रव परिवर्जन ( = छोड़ने )से त्यागे जा सकते हैं; ( ६ ) ( कोई कोई ) आस्रव विनोदन ( = हटाने )से त्यागे जा सकते हैं; ( ७ ) ( कोई कोई ) आस्रव ( हैं, जो ) भावनासे त्यागे जा सकते हैं।

१. “भिक्षुओ ! कौनसे आस्रव दर्शनसे प्रहातव्य हैं ?—भिक्षुओ ! अन्न, अनादी<sup>१</sup> ( जन ) मनमें ( धारण ) करने योग्य धर्मों ( = पदार्थों )को नहीं जानता, ( और ) न मनमें न ( धारण ) करने योग्य धर्मोंको जानता है। वह मनसिकरणीय ( = मनमें धारण करने योग्य ) धर्मोंको न जान, अ-मनसिकरणीय धर्मोंको न जान; जो धर्म मनसिकरणीय नहीं हैं, उन्हें मनमें ( धारण ) करता है, और जो धर्म अमनसिकरणीय हैं, उन्हें मनमें नहीं करता।

क. भिक्षुओ ! कौनसे धर्म न मनसिकरणीय हैं, जिन्हें कि वह मनमें करता है ?—भिक्षुओ ! ( जिन ) धर्मोंके मनमें करनेसे उसके ( भीतर ) अनुत्पन्न काम-आस्रव ( = कामका रूपी मल )

<sup>१</sup> देखो सूत्र ३।

उत्पन्न होता है, और उत्पन्न काम-आश्रय बढ़ता है; अनुत्पन्न भय-आश्रय (= जन्मनेकी इच्छा रूपी मल) उत्पन्न होता है, और उत्पन्न भय-आश्रय बढ़ता है; अनुत्पन्न अविद्या-आश्रय (= अज्ञान रूपी मल) उत्पन्न होता है ० । ये धर्म अनसिकरणीय नहीं हैं, जिनको कि वह मनमें करता है ।

ख. "मिथुनो ! कौनसे धर्म अनसिकरणीय हैं, जिनको कि वह मनमें नहीं करता ?—मिथुनो ! ( जिन ) धर्मोंको मनमें करनेसे, उस ( मनुष्यके भीतर ) अनुत्पन्न काम-आश्रय उत्पन्न नहीं होता, और उत्पन्न नष्ट हो जाता है; अनुत्पन्न भय-आश्रय ० ; अनुत्पन्न अविद्या-आश्रय ० नष्ट हो जाता है ।—ये धर्म अनसिकरणीय हैं, जिनको कि वह मनमें नहीं करता ।

ग. "अ-अनसिकरणीय धर्मोंके मनमें करनेसे, ( तथा ) अनसिकरणीय धर्मोंके मनमें न करनेसे, उस ( पुरुषके भीतर ) अनुत्पन्न आश्रय उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न आश्रय वृद्धिको प्राप्त होते हैं । वह ( पुरुष ) इस प्रकार बेटीक तरहसे मनमें ( चिन्तन ) करता है—( क ) क्या मैं अतीतकालमें था ? क्या मैं नहीं था अतीतकालमें ? मैं क्या था अतीतकालमें ? मैं कैसा था अतीतकालमें ? अतीतकालमें मैं क्या होकर क्या हुआ था ? ( ख ) क्या मैं भविष्यकालमें होऊँगा ? क्या मैं भविष्यकालमें न होऊँगा ? मैं भविष्यकालमें क्या होऊँगा ? मैं भविष्यकालमें कैसा होऊँगा ? मैं भविष्यकालमें क्या होकर क्या होऊँगा ? ( ग ) अब ( इस ) वर्तमानकालमें अपने भीतर तर्क-वितर्क करता है—मैं हूँ न ? नहीं हूँ न ? मैं क्या हूँ ? मैं कैसा हूँ ? यह सत्य (= प्राणी ) कहाँ से आया है ? वह कहाँ जानेवाला होगा ?

—“इस प्रकार बेटीक तौरसे मनमें ( धारण ) करनेसे छ दृष्टियों (= चारों, भक्तों )में से कोई एक दृष्टि उसे उत्पन्न होती है—( १ ) 'मेरा आत्मा है', इस प्रकारकी दृष्टि सत्य और दृढ़ ( सिद्धान्त )के रूपमें उत्पन्न होती है । या ( २ ) 'मेरे ( भीतर ) आत्मा नहीं है', इस प्रकारकी ० । ( ३ ) 'आत्माको ही आत्मा समझता हूँ', ० । ( ४ ) 'आत्माको ही अनात्मा समझता हूँ', ० । ( ५ ) 'अनात्माको ही आत्मा समझता हूँ', ० । अथवा ( ६ ) उसकी दृष्टि (= मत ) होती है—'जो यह मेरा आत्मा अनुभवकर्ता ( वेदक ), ( तथा ) अनुभव होने योग्य है, और वहाँ वहाँ ( अपने ) भले बुरे कर्मोंके विपाकको अनुभव करता है; वह यह मेरा आत्मा विलय-ध्रुव-शाश्वत, अपरिवर्तन-शील (= अविपरिणामधर्मा ) है, अनन्त वर्षों तक वैसा ही रहेगा' ।

—“मिथुनो ! इसे कहते हैं दृष्टि-मत (= मतवाद ) दृष्टि-गहन (= दृष्टिका घना जंगल ), दृष्टिकी भङ्गमूर्ति (= दृष्टिकान्तर ), दृष्टिका काँटा (= दृष्टि-विशूक ), दृष्टिकी कुदाम, दृष्टिका फँदा (= दृष्टि-खंभोजन ) । मिथुनो ! दृष्टिके फँदेमें कैसा भङ्ग अनादी ( पुरुष ) जन्म, जरा, मरण, शोक, रोदन-कंदन, दुःख-दुर्मनस्कता और हैरानियोंसे नहीं छूटता, दुःखसे परिमुक्त नहीं होता—कहता हूँ ।

“और मिथुनो ! जो आर्थिक दर्शनको प्राप्त, आर्यधर्मसे परिचित, आर्यधर्ममें नीत (= प्राप्त ) है; सत्पुरुषके दर्शनको प्राप्त, सत्पुरुष-धर्मसे परिचित, सत्पुरुष-धर्ममें नीत, बहुभुत आर्य-श्रावक (= सम्मार्थ पर आर्य पुरुष ) है, वह अनसिकरणीय धर्मोंको जानता है, और अ-अनसिकरणीय धर्मोंको ( भी ) जानता है । वह अनसिकरणीय और अ-अनसिकरणीय धर्मोंको जान, जो धर्म अनसिकरणीय नहीं हैं, उन्हें अनसिकरणीय नहीं करता; जो धर्म अनसिकरणीय हैं, उन्हें अनसिकरणीय करता है ।

क. "मिथुनो ! कौनसे धर्म अनसिकरणीय नहीं हैं—मिथुनो ! ( जिन ) धर्मोंके



मनमें करनेसे उस ( पुरुषके भीतर ) अनुत्पन्न काम-आस्रव उत्पन्न होता है ०<sup>१</sup> । ये धर्म मनसि-  
करणीय नहीं हैं, जिनको कि वह मनमें नहीं करता ।

ख. “भिक्षुओ ! कौनसे धर्म मनसिकरणीय हैं, जिनको कि वह मनमें करता है ? ०<sup>१</sup> । ये  
धर्म मनसिकरणीय हैं, जिनको कि वह मनमें करता है ।

ग. “अ-मनसिकरणीय धर्मोंको मनमें न करनेसे, ( तथा ) मनसिकरणीय धर्मोंको मनमें  
करनेसे, उस ( पुरुषके भीतर ) न-उत्पन्न आस्रव उत्पन्न नहीं होते, और उत्पन्न आस्रव नष्ट होते  
हैं । ( तब ) वह वह ठीकसे मनमें ( ज्ञान ) करता है—यह दुःख है, यह दुःख-समुदय  
( = दुःखका कारण ) है, यह दुःख-निरोध ( = दुःखका विनाश ) है, यह दुःख-निरोध की  
ओर लेजानेवाला मार्ग ( = प्रतिपद् ) है । इस प्रकार मनमें करनेपर उसके तीन संयोजन  
( = फंदे, बंधन )—( १ ) सत्कायदृष्टि ( = कायके भीतर एक निल आत्माकी सत्ताको मानना ),  
( २ ) विचिकित्सा ( = संशय ), ( ३ ) शीलव्रत-परामर्श ( = शील और व्रतका अभिमान )—  
टूट जाते हैं । —भिक्षुओ ! यह दर्शनसे प्रहातव्य आस्रव कहे जाते हैं ।

१. “भिक्षुओ ! कौनसे संवर ( = ढाँके, संयम करने ) द्वारा प्रहातव्य आस्रव हैं ?—  
भिक्षुओ ! यहाँ ( कोई ) भिक्षु ठीकसे ज्ञान ( = प्रतिसंयमान ) कर, चक्षु ( = आँख ) इन्द्रियमें  
संयम करके विहरता है । ( तब ) चक्षु-इन्द्रियमें असंयम करके विहरनेपर, जो पीड़ा और दाह  
देनेवाले आस्रव उत्पन्न होते, वह—संयम करके विहरनेपर उत्पन्न नहीं होते हैं । ० श्रोत्र-इन्द्रिय ० ।  
० घ्राण-इन्द्रिय ० । ० जिह्वा-इन्द्रिय ० । ० काय-इन्द्रिय ० । ० मन-इन्द्रियमें संयम करके ० पीड़ा  
और दाह देनेवाले आस्रव ० उत्पन्न नहीं होते ।

“भिक्षुओ ! यह संवर-द्वारा प्रहातव्य आस्रव कहे जाते हैं ।

३. “भिक्षुओ ! कौनसे प्रतिसेवन ( = सेवन ) द्वारा प्रहातव्य आस्रव हैं ?—( क ).  
भिक्षुओ ! यहाँ ( कोई ) भिक्षु ठीकसे जानकर ( उसना ही ) चीवर ( = वस्त्र ) का सेवन करता  
है, जितना कि सर्दी-गर्मीकी पीड़ा, और मक्खी-मच्छर-हवा-धूप-सरीसृप ( = साँप बिच्छू ) के  
आघातके रोकनेके लिये ( आवश्यक ) है; जितना काजधर्म ढाँकेके लिये ( आवश्यक ) है । ( ख ).  
ठीकसे जानकर भिक्षान्न ( = पिंडपात ) सेवन करता है; क्रीड़ा, मद्य, मंडन-विभूषणके लिये न करके  
( उसना ही भिक्षान्न सेवन करता है ) जितना कि इस शरीरकी स्थितिके लिये ( आवश्यक है );  
( भूखके ) प्रकोपके शमन करने तथा ब्रह्मचर्यमें सहायताके लिये ( आवश्यक है ) । ( यह  
सोचते हुये— ) पुरानी ( कर्म-विपाक रूपी ) वेदनाओं ( = पीड़ाओं ) को स्वीकार करूँगा, नई  
वेदनाओंको न उत्पन्न करूँगा; मेरी ( शारीर- ) यात्रा निर्दोष होगी, और विहार निर्द्वन्द्व होगा ।  
( ग ). ठीकसे जानकर ( वैसीही ) निवास-नोद ( = शयनासन ) का सेवन करता है; जोकि सर्दी,  
गर्मी ०<sup>२</sup> के आघातके रोकनेके लिये ( आवश्यक ) है । जो जसुकी पीड़ाको हटाने और एकांत  
चिन्तनके लिये ( उपयोगी ) है । ( घ ). ठीकसे जानकर रोगीके लिये ( उपयुक्त ) पथ औषधकी  
वस्तुओंका सेवन करता है, जिससे कि उत्पन्न व्याधियाँ और पीड़ानें दूर हो परम निरोगताको प्राप्त  
हो । भिक्षुओ ! जिसके न सेवन करनेसे दाह और पीड़ा देनेवाले आस्रव उत्पन्न होते हैं, और सेवन  
करनेसे—( वह ) उत्पन्न नहीं होते; यह प्रतिसेवनद्वारा प्रहातव्य आस्रव कहे जाते हैं ।

४. “भिक्षुओ ! कौनसे आस्रव अधिवासन ( = स्वीकृति ) द्वारा प्रहातव्य हैं ?—भिक्षुओ !  
यहाँ ( एक ) भिक्षु ठीकसे जानकर, सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, मक्खी-मच्छर-हवा-धूप-सरीसृपोंके



आवातको सहनेमें समर्थ होता है; वागीसे निकले दुर्बचन, तथा शरीरमें उत्पन्न ऐसी दुःखमय, तीव्र, तीक्ष्ण, कटुक, अवाञ्छित, असंचिद्ध, प्राणहर पीड़ाओंको स्वागत करनेवाले स्वभावका होता है। जिनके कि भिक्षुओ ! न अधिवासन (= स्वीकार) करनेसे दाह और पीड़ा देनेवाले आस्रव उत्पन्न होते हैं, और अधिवासन करनेसे... ( वह ) उत्पन्न नहीं होते;... वह अधिवासन-द्वारा प्रहातव्य आस्रव कहे जाते हैं।

५. "भिक्षुओ ! कौनसे परिवर्जन ( बँचने ) द्वारा प्रहातव्य आस्रव हैं ?—भिक्षुओ ! यहाँ ( एक ) भिक्षु ठीकसे जानकर, चण्ड (= झुर ) हाथीको ( दूरसे ) बँचता है, चण्ड घोड़े..., चण्ड बैल..., चण्ड कुत्ते..., सौंप, खाई, काँटेकी घाटी, दह, जलप्रपात, चन्दनिका ( गवहा ), ओलिगह (= गवही ) से ( बँचता है )। जैसे अनुचित आसनपर बैठे, जैसे अनुचित विचरण स्थानपर विचरते, जैसे पुरे मित्रोंको सेवन करते ( देख ) जानकर, समग्रचारी (= एक जैसे अतपर आरूढ़ गुरुभाई ) बुरे स्थानोंमें चले जायें, ठीकसे जानकर, वैसे अनुचित आसन, वैसे अनुचित विचरण-स्थान, वैसे बुरे मित्रोंके सेवनसे, बँचता है। भिक्षुओ ! जिसके परिवर्जन न करनेसे दाह और पीड़ा देनेवाले आस्रव उत्पन्न होते हैं, और परिवर्जन करनेसे... ( वह ) उत्पन्न नहीं होते; भिक्षुओ ! वह परिवर्जन द्वारा प्रहातव्य आस्रव कहे जाते हैं।

६. "भिक्षुओ ! कौनसे विनोदन (= हटाने ) द्वारा प्रहातव्य आस्रव हैं ?—भिक्षुओ ! यहाँ ( एक ) भिक्षु ठीकसे जानकर, उत्पन्न हुये काम-वितर्क (= काम-वासना संबंधी संकल्प-विकल्प ) का स्वागत नहीं करता, ( उसे ) छोड़ता है, हटाता है, अलग करता है, मिटाता है, उत्पन्न हुये त्यापाद-वितर्क (= द्रोहके क्याल ) का ०; उत्पन्न हुये चिह्निसा-वितर्क (= प्रतिहिंसाके क्याल ) का ०; पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाले पापी विचारों (= धर्मों ) का ०। भिक्षुओ ! जिसके न हटानेसे दाह और पीड़ा देनेवाले आस्रव उत्पन्न होते हैं, और विनोदन करनेसे... ( वह ) उत्पन्न नहीं होते;... यही ( वह ) विनोदनद्वारा प्रहातव्य आस्रव कहे जाते हैं।

७. "भिक्षुओ ! कौनसे भावना (= चिंतन, ध्यान ) द्वारा प्रहातव्य आस्रव हैं ?—भिक्षुओ ! यहाँ ( एक ) भिक्षु ठीकसे जानकर, विकल्प-युक्त, विराग-युक्त, निरोध-युक्त, मुक्ति-परिणामवाले स्मृति-संबोध्यांग<sup>१</sup> की भावना करता है; ठीकसे जानकर, ० धर्मविचय-संबोध्यांगकी ०; ० वीर्य-संबोध्यांगकी ०; ० प्रीति-संबोध्यांगकी ०; प्रश्रान्धि-संबोध्यांगकी ०; ० समाधि-संबोध्यांगकी ०; उपेक्षा-संबोध्यांगकी ० भावना करता है। भिक्षुओ ! जिसकी भावना न करनेसे ०;... यही ( वह ) भावनाद्वारा प्रहातव्य आस्रव कहे जाते हैं।

"भिक्षुओ ! जब भिक्षुके दर्शन-द्वारा प्रहातव्य आस्रव दर्शनसे नष्ट होगये, संवर-द्वारा प्रहातव्य संवरसे ०, प्रतिसेवन-द्वारा प्रहातव्य प्रतिसेवनसे ०, अधिवासन-द्वारा प्रहातव्य अधिवासनसे ०, परिवर्जन-द्वारा प्रहातव्य परिवर्जनसे ०, विनोदन-द्वारा प्रहातव्य विनोदनसे ०, भावना-द्वारा प्रहातव्य भावनासे नष्ट होगये, तो भिक्षुओ ! वह भिक्षु सारे आस्रवों (= सञ्ज्ञासूत्र ) के संवरसे युक्त हो विहर रहा है; उसने तृष्णाको छिन्न कर दिया, संयोजन (= बंधन ) को भानाऽभिसम्भय (= अभिमानके दर्शन ) से अच्छी तरह हटा दिया; ( उसने ) दुःखका अन्त कर दिया।"

भगवान्ने वह कहा; तन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया।

<sup>१</sup> संबोधि=परमबोधन, उसके द्विजे उपयोगी अंग, संबोध्यांग। वह सात है—स्मृति, धर्मविचय आदि।

धर्म-विचय=धर्म-अन्वेषण। वीर्य=उद्योग। प्रीति=सन्तोष। प्रश्रान्धि=शान्ति। समाधि=विचरकी एकाग्रता।

### ३-धम्मदायाद-सुत्तन्त (१।१।३)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् आश्वस्तोमं अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भदन्त !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! ( तुम ) मेरे धर्म-दायाद<sup>१</sup> ( = धर्मकी वरासत पाने-वाले ) होओ, आमिष-दायाद ( = धन-वित्तकी वरासत पानेवाले ) मत बनो। तुमपर मेरी अनुकम्पा है। सो क्या ?—( यही कि ) मेरे शिष्य धर्मदायाद होवें, आमिष-दायाद नहीं। यदि भिक्षुओ ! तुम मेरे आमिषदायाद होगे, धर्मदायाद नहीं, तो तुम लोभ भी ताना भारे जाओगे—‘शास्ता ( = उपदेष्टा, गुरु ) के श्रावक ( = शिष्य ) आमिष-दायाद होकर विहरते हैं, धर्मदायाद होकर नहीं।’ मैं भी उसके कारण ताना भारा जाऊँगा—‘शास्ताके श्रावक आमिषदायाद होकर विहरते हैं ०।’ यदि भिक्षुओ ! तुम मेरे धर्मदायाद होगे, आमिषदायाद नहीं, तो तुम भी ताना भारे जाओगे, ( और लोग कहेंगे )—‘शास्ताके श्रावक धर्मदायाद होकर विहरते हैं, आमिष-दायाद, होकर नहीं।’ इससे मैं भी ताना भारा जाऊँगा, ( और लोग कहेंगे )—०। इसलिये भिक्षुओ ! ( तुम ) मेरे धर्मदायाद होओ ०। तुमपर मेरी अनुकम्पा है। ०।

“भिक्षुओ ! ( मान लो ) मैं इस समय भली प्रकार, परिपूर्ण, यथेच्छ, तृप्त्यनुसार भोजन कर चुका हूँ, और मेरे पास अधिक भिक्षान्न वच गया हो। तब भूखकी दुर्बलतासे पीड़ित दो भिक्षु आवें। उनको मैं यह कहूँ—‘भिक्षुओ ! मैं ० तृप्त्यनुसार भोजन कर चुका हूँ, और मेरे पास ०। यदि इच्छा हो, तो खाओ। अगर तुम न खाओगे, तो मैं अब इसे तृणरहित ( स्थान ) में डाल दूँगा, या प्राणिरहित जलमें छोड़ दूँगा’। तब एक भिक्षुके ( मनमें ) हो—‘भगवान् ० तृप्त्यनुसार भोजन कर चुके हैं, और वह भिक्षान्न अधिक वच गया है। यदि हम न खावेंगे, तो भगवान् इसे तृणरहित ०। किन्तु, भगवान्का यह कहा हुआ है—भिक्षुओ ! मेरे धर्मदायाद होओ ०। और यह भिक्षान्न तो एक आमिष ही है। क्यों न मैं इस भिक्षान्नको बिना खाये ही, इस भूखकी दुर्बलताके साथ इस दिन रातको बिता दूँ।’ ( ऐसा सोच ) वह उस भिक्षान्नको बिना खाये, उस भूखकी दुर्बलताके साथ उस दिन-रातको बिता दे। और दूसरे भिक्षुके ( मनमें ) हो—‘भगवान् तृप्त हो भोजन कर चुके हैं ०। तृणरहित ०। क्यों न मैं इस भिक्षान्नको खाकर, भूखकी दुर्बलताको दूरकर इस दिन रातको बिताऊँ।’ ( तब ) वह उस भिक्षान्नको खाकर भूखकी दुर्बलता दूरकर उस दिन रातको बिताये। तो ( उनमें ), वह पहिला ही भिक्षु मुझे पूज्यतर और प्रशंस-

<sup>१</sup> दायाद=उत्तराधिकारी।



नीयतर है। तो किसलिये ?—भिक्षुओं ! वैसा ( करना ) चिरकाल तक अछोभ, सन्तोष, सख्खे ( = तप ), सुमरता ( = सुगमता ) और उद्योगपरायणताके लिये उन भिक्षुको ( उपकारी ) होगा। इसलिये, भिक्षुओं ! मेरे धम्मदायाद होओ०। तुमपर मेरी अनुकम्पा ०।०।”

भगवान् ने यह कहा। यह कहकर सुगत ( = बुद्ध ) भासनसे उठकर विहार ( = कुटी ) के अन्दर चले गये।

तब भगवान् के चले जानेके प्रतीति ही देर बाद, आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको संबोधित किया—

“आवुसो,<sup>१</sup> भिक्षुओं !”

“आवुस !” ( कह ) उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया।

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा—“आवुसो ! किन ( कारणों )से श्रावक ( = शिष्य ) शास्ता ( = गुरु ) से अलग हो विहरते, विवेक ( = एकान्तचिन्तन ) की शिक्षा नहीं ग्रहण करते; और किनसे श्रावक शास्तासे अलग हो विहरते विवेककी शिक्षा ग्रहण करते हैं ?”

“आवुस ! दूरसे भी इस भाषणका अर्थ जाननेके लिये हम आयुष्मान् सारिपुत्रके पास आते हैं। अच्छा हो, आयुष्मान् सारिपुत्र ही इस वचनका अर्थ कहें। आयुष्मान् सारिपुत्र ( के मुख ) से ( उसे ) सुनकर भिक्षु धारण करेंगे।”

“तो, आवुसो ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ।”

“अच्छा, आवुस !” ( कह ) उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया।

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा—“आवुसो ! यहाँ ( कोई ) शिष्य, गुरुसे अलग हो विहरते विवेककी शिक्षा नहीं ग्रहण करते, जिन बातों ( = चर्चों ) को शास्ता ( = गुरु ) ने छोड़नेको कहा, उन्हें नहीं छोड़ते। जोड़ने-बटोरनेवाले होते हैं। भागनेमें पहिले, और एकान्त-चिन्तनमें जुवा-गिरा देनेवाले होते हैं। इसमें स्वविर ( = बुद्ध ) भिक्षु तीन कारणोंसे निन्द्यके पात्र होते हैं—( १ ) गुरुसे अलग हो विहरते, शिष्य विवेककी शिक्षा नहीं ग्रहण करते; यह पहिला कारण है, स्वविर भिक्षुओंके निन्दनीय होनेका। ( २ ) जिन बातोंको शास्ताने छोड़नेको कहा, उन्हें नहीं छोड़ते; यह दूसरा कारण है ०। ( ३ ) जोड़ने-बटोरनेवाले होते हैं ०, यह तीसरा कारण है ०।

“आवुसो ! इन तीन कारणोंसे स्वविर भिक्षु निन्दनीय होते हैं। आवुसो ! वहाँ मध्यम ( वयस्क ) भिक्षु तीन कारणोंसे ०। नव ( -वयस्क ) भिक्षु तीन कारणोंसे निन्दनीय होते हैं—( १ ) गुरुसे अलग ०। इन कारणोंसे आवुसो ! शास्ताके अभावमें विहार करते शिष्य विवेककी शिक्षा ग्रहण नहीं करते।

“आवुसो ! किन कारणोंसे शास्ताके अभावमें विहरते शिष्य विवेककी शिक्षाको ग्रहण करते हैं ?—आवुसो ! यहाँ शास्ताके अभावमें विहरते श्रावक विवेककी शिक्षा ग्रहण करते हैं। जिन बातोंको शास्ताने छोड़नेको कहा, उन्हें छोड़ते हैं। जोड़ने-बटोरनेवाले नहीं होते। भागनेमें जुवा गिरा देनेवाले होते हैं; और एकान्त-चिन्तन ( = प्रविवेक ) में पहिले होते हैं। यहाँ, आवुसो ! स्वविर भिक्षु तीन बातोंसे प्रशंसनीय होते हैं—( १ ) शास्ताके अभावमें ० शिक्षा ग्रहण करते हैं, यह पहिली बात है, जिससे स्वविर ०। ( २ ) जिन बातोंको शास्ताने छोड़नेको कहा, उन्हें छोड़ते

<sup>१</sup> रोड सुनक संशोधन है जो पहिले दफ्ते के लिये भी प्रयुक्त किया जाता था, किन्तु दुबारा निर्वाणके बाद छोड़ने के लिये ही रह गया।



है ० । ( ३ ) जोड़ने-बटोरनेवाले नहीं होते ० । आवुसो ! स्वविर भिक्षु इन तीन बातोंसे प्रशंसनीय होते हैं । वहाँ मध्यम ( -वयस्क ) भिक्षु ० । नव ( -वयस्क ) भिक्षु तीन बातोंसे प्रशंसनीय होते हैं ० । आवुसो ! इन तीन बातोंसे भिक्षु प्रशंसनीय होते हैं । इन ( बातों ) से शास्ताके अभावमें विरहते आक विचेत्तकी शिक्षा ग्रहण करते हैं ।

“आवुसो ! लोभ बुरी ( वस्तु ) है, और द्वेष बुरी ( वस्तु ) है । लोभ और द्वेषके विनाशके लिए आँख देनेवाली, ज्ञान देनेवाली मध्यमा-प्रतिपद् ( = बीचका मार्ग ) है, जो कि शांति, दिव्यज्ञान, संबोधि ( = परमज्ञान ) और निर्वाण ( के प्राप्त करने ) के लिये है । आवुसो ! कौन है वह आँख देनेवाली ० मध्यमा प्रतिपद् ( जो कि ) ० निर्वाणके लिये है ?—वही आर्यअष्टांगिक-मार्ग; जैसे कि—सम्यग् ( = ठीक )-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यग्-वचन, सम्यक्-कर्मांत ( = कार-बार ), सम्यग्-आजीव ( = रोजी ), सम्यग्-आवासा ( = उद्योग ), सम्यक्-स्मृति, और सम्यक्-समाधि । यह है आवुसो ! वह आँख देनेवाली ० मध्यमाप्रतिपद्, ( जो कि ) ० निर्वाणके लिये है ।

“आवुसो ! वहाँ कोप बुरी ( चीज ) है, और उपनाह ( = पाखंड ) बुरी चीज है ०; अश्र ( = अमरश्र ) ०; प्रदामा ( = पलास-निष्ठुरता ) ०; ईर्ष्या ०; आत्सर्य ( = कंजुसी ) ०; माया ( = धोखा देना ) ०; शाठ्य ( = शठता ) ०; अम्भ ( = जड़ता ) ०; सारम्म ( = हिंसा ) ०; मान ०; अतिमान ०; मद ०; प्रमाद ( = भूल ) बुरी ( चीज ) है । मद और प्रमादके विनाशके लिये आँख देनेवाली ० मध्यमा प्रतिपद् है ० । आवुसो कौन है ० ।”

आयुष्माण् सारिपुत्तने यह कहा; ( और ) सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्तके आशयका अभिनन्दन किया ।

## ४-भयभैरव-सुत्तन्त (१।१।४)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आश्रम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब जानुस्सोणि ब्राह्मण, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जा कर भगवान्से “यथायोग्य (कुशल प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठकर जानुस्सोणि ब्राह्मणने भगवान्से यह कहा—

“हे गौतम ! जो यह (सारे) कुल-पुत्र आप गौतमको (नेता) मान, श्रद्धापूर्वक घरसे बेघर हो प्रव्रजित (= संन्यासी) हुये हैं; आप गौतम उनके अग्रगामी हैं, ० बहु-उपकारी हैं, ० उप-देष्टा हैं; यह जनसमुदाय आप गौतमके देखे (मार्ग) का अनुगमन करता है ।”

“ऐसा ही है, ब्राह्मण ! ऐसा ही है, ब्राह्मण ! जो यह कुल-पुत्र सुके (नेता) मानकर ० ।”

“हे गौतम ! कठिन है अरण्य वन-खंड, और सूनी कुटियाँ (= शयनासन); दुष्कर है एकान्त रमण (= प्रविवेक); समाधि न प्राप्त होने पर अभिरमण न करनेवाले मिश्रके मतको, अकेला या (यह) वन मानों हर लेते हैं ।”

“ऐसा ही है, ब्राह्मण ! ऐसा ही है, ब्राह्मण ! कठिन है अरण्य ० । ब्राह्मण ! सम्बोधि (= परमज्ञान) प्राप्त होनेसे पहिले, बुद्ध न होनेके वक्त, जब मैं बोधिसत्त्व\* (ही था), तो सुझे भी ऐसा होता था—‘कठिन है अरण्य ० ।

“तब, ब्राह्मण ! मेरे ( मनमें ) ऐसा हुआ—जो कोई अशुद्ध कायिक कर्मसे युक्त श्रमण (= संन्यासी ) ब्राह्मण अरण्य, वनखण्ड, और सूनी कुटियोंका सेवन करते हैं; अशुद्ध कायिक कर्मके दोषके कारण, वह आप श्रमण-ब्राह्मण डुरे भय-भैरव (= भय और भीषणता) का आह्वान करते हैं; (लेकिन) मैं तो अशुद्ध कायिक कर्मसे युक्त हो अरण्य ० सेवन नहीं कर रहा हूँ । मेरे कायिक कर्म (= कर्मान्त) परिशुद्ध हैं, जो परिशुद्ध कायिक कर्मवाले आर्य अरण्य ० सेवन करते हैं, मैं उनमेंसे एक हूँ । ब्राह्मण ! अपने भीतर इस परिशुद्ध कायिक कर्मके भावको देखकर, सुझे अरण्यमें विहार करनेका और भी अधिक पल्लोम (= उत्साह) हुआ ।

“तब, ब्राह्मण ! मेरे ( मनमें ) ऐसा हुआ—जो कोई अशुद्ध वाचिक कर्मवाले श्रमण-ब्राह्मण अरण्यमें ० । ० अशुद्ध मानसिक कर्मवाले श्रमण ब्राह्मण ० । ० अशुद्ध आजीविकावाले श्रमण-ब्राह्मण अरण्यमें ० । (लेकिन) मैं तो अशुद्ध आजीविकासे युक्त हो अरण्य ० सेवन नहीं कर रहा हूँ ० । ० । ब्राह्मण ! अपने भीतर इस परिशुद्ध आजीविका (= रोजी) की विद्यमानताको देखकर, सुझे अरण्यमें विहार करनेका और भी अधिक उत्साह हुआ ।

\* अपने अनेक कर्मोंके परिश्रमसे पुण्य और ज्ञानका जो इतना संचय कर चुका है, कि आगे चल कर उसका बुद्ध होना निश्चित है ।

“तव, ब्राह्मण ! मेरे ( मनमें ) ऐसा हुआ—जो अमण ब्राह्मण लोभी काम ( -वासनाओं ) में तीव्र राग रखनेवाले ( हो ) अरण्यमें ० । ( लेकिन ) मैं तो लोभी और कामोंमें तीव्र राग रखनेवाला न हो अरण्यमें ० । ० । ब्राह्मण ! अपने भीतर इस निर्लोभिता ( = अन्-अभिध्यालुता ) को देख ० ।

“तव, ब्राह्मण ! ० हिसादुक्त चित्तवाले और मनमें दुष्ट संकल्प रखनेवाले ० । ० ।

“तव, ब्राह्मण ! ० स्त्यान ( = शारीरिक आलस्य )—मृद्व ( = मानसिक आलस्य ) से प्रेरित हो ० । ० ।

“तव, ब्राह्मण ! ० उद्धत और अशान्त चित्तवाले हो ० । ० ।

“० लोभी, कोलावाले और संशयालु ( = विचिकित्सी ) हो ० । ० । ० ।

“० अपना उत्कर्ष ( चाहने )वाले तथा दूसरोंको निन्दनेवाले हो ० । ० ।

“० जड़ और भीरु प्रकृतिवाले हो ० । ० ।

“० लाभ, सत्कार और प्रशंसाकी चाहना करते ० । ० ।

“० आलसी उद्योग हीन हो ० । ० ।

“० नष्टसृति और सूक्ष्म ( = सम्पत्ति ) से वंचित हो ० । ० ।

“० व्यग्र ( -चित्त ) और विभ्रान्त-चित्त हो ० । ० ।

“० दुःप्रज्ञ भेद-गुणे ( जैसे ) हो ० । ० ।

“ब्राह्मण ! तव मेरे ( मनमें ) ऐसा हुआ—जो वह सम्मानित ( = अभिज्ञात ) = अभि-लक्षित शक्तियाँ हैं, ( जैसे कि ) पक्षकी चतुर्दशी ( = अमावास्या ), पूर्णमासी ( = पंचदशी ) और अष्टमीकी रातें, वैसी रातोंमें, जो वह भयप्रद रोमांचकारक आराम-चैत्य<sup>१</sup>, वन-चैत्य, वृक्ष-चैत्य हैं, वैसे शयनासनो ( = वासस्थानों ) में विहार करूँ, शायद तब ( कुछ ) भय-भेरव देखूँ । तब, ब्राह्मण ! दूसरे समय ० सम्मानित ० रातोंमें ० वैसे शयनासनोमें विहार करने लगा । तब, ब्राह्मण ! वैसे विहरते ( समय ) मेरे पास ( जब कोई ) छग आता था, या मोर काठ गिरा देता था, या हवा पल्लवोंको फरफराती, तो मेरे ( मनमें ) होता—जूरर, यह वही भय-भेरव आ रहा है । तब, ब्राह्मण ! मेरे ( मनमें ) यह होता—ज्यों मैं दूसरेमें भयकी आकांक्षासे विहर रहा हूँ ? क्यों न मैं जिस जिल अवस्थामें रहते, जैसे मेरे पास वह भय-भेरव आता है, वैसी वैसी अवस्थामें रहते उस भय-भेरवको हटाऊँ । जब, ब्राह्मण ! टहलते हुये मेरे पास वह भय-भेरव आता, तब मैं ब्राह्मण ! न खड़ा हो जाता, न बैठता, न खेड़ता, टहलते हुएही उस भय-भेरवको हटाता । जब ० खड़े हुये रहते मेरे पास वह भय-भेरव आता ० । ० बैठे रहते ० । ० । ० खेड़े रहते ० । ० ।

“ब्राह्मण ! कोई कोई ऐसे अमण-ब्राह्मण हैं, ( जो ) रात होनेपर भी ( उसे ) दिन अनुभव करते हैं, दिन होनेपर भी ( उसे ) रात अनुभव करते हैं । इसे मैं उन अमण-ब्राह्मणोंके लिये संमोह ( Hypnotization ) का विहार कहता हूँ । मैं तो ब्राह्मण ! रात होने पर ( उसे ) रात ही अनुभव करता हूँ, और दिन होने पर दिन ० । जिसके धारमें ब्राह्मण ! यथार्थमें कहते वक्त कहना चाहिये—लोकमें बहुत जनोंके हितार्थ, बहुत जनोंके सुखार्थ, लोकानुसंगार्थ, देव-मनुष्योंके अर्थ-हित-सुखके लिये सम्मोह-रहित पुरुष उत्पन्न हुआ है । सो वह यथार्थमें कहते वक्त मेरे लिये ही कहना होगा—लोकमें ० ।

<sup>१</sup> चैत्य—देवताओं भूतोंके चैरे, जिनकी पूजा उस समय बहुत प्रचलित थी । मूर्तिके अभावमें लोग स्तंभों चैत्योंकी पूजा करते थे ।



“ब्राह्मण ! मैंने न दूधनेवाला बौर्य (= इयोंग ) आरम्भ किया था, ( उस समय ) मेरी असुषित स्मृति जागृत थी, ( मेरा ) शान्त काय अभ्यस (= अस्तरय ) था, समाधिनिष्ठाचित्त एकाग्र था । ( १ ) सो मैं ब्राह्मण ! कामोंसे रहित बुरी बातों (= अकुशलवर्त्तों ) से रहित, विवेकसे उत्पन्न स-चित्तक और स-विचार प्रीति और सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा । ( २ ) ( फिर ) चित्तक और विचारके शान्त होने पर भीतरी शान्त तथा चित्तकी एकाग्रता वाले चित्तकरहित विचाररहित प्रीति-सुखवाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा । ( ३ ) ( फिर ) प्रीतिसे विरक्त हो, उपेक्षक धन स्मृति-संप्रज्ञप्त्य (= होश और अनुभव ) से युक्त हो शरीरसे सुख अनुभव करते, जिसे कि कार्य उपेक्षक, स्मृतिमान् सुख-विहारी कहते हैं; उस तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा । ( ४ ) ( फिर ) सुख और दुःखके परित्यागसे सीमन्तस्य (= चित्तोल्लास ) और दौर्भेनस्य (= चित्तसंताप ) के पहिले ही अस्त हो जानेसे, सुख-दुःख-रहित—जिसमें उपेक्षासे स्मृतिकी छुट्टि हो जाती है, उस चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा ।

“ ( १ ) “सो इस प्रकार चित्तके एकाग्र, परिशुद्ध = पर्यवदात, अंगण-रहित = उपकलेश (= मल )-रहित, सुदुभूत = कार्योपयोगी, स्थिर = अचलता प्राप्त ( और ) समाधिपुक्त हो जाने पर, पूर्व जन्मोंकी स्मृतिके ज्ञान (= पूर्वनिवासानुस्मृति ) के लिये मैंने चित्तको झुकाया । फिर मैं अनेक पूर्व-निवासोंको स्मरण करने लगा, जैसे कि एक जन्मको भी, दो जन्मको भी, तीन, चार, पाँच, दस, बीस, सौ, चालीस, पचास, सौ, हजार, सौ हजार..... अनेक संवर्त (= प्रलय ) कल्पोंको भी, अनेक विवर्त (= सृष्टि- ) कल्पोंको भी, अनेक संवर्त विवर्त-कल्पोंको ( भी ) स्मरण करने लगा—( तबमैं ) अमुक स्थानपर इस नाम-गोत्र-वर्ण-आहारवाला अमुक प्रकारके सुख दुःखको अनुभव करता इतनी आयु तक रहा । यहाँसे च्युत हो अमुक स्थानमें उत्पन्न हुआ । यहाँ भी इस नाम-गोत्र ० । फिर यहाँ से च्युत हो ( अब ) यहाँ उत्पन्न हुआ—इस प्रकार आकार और ब्रह्मेश्वरके सहित अनेक प्रकारके पूर्व-निवासोंको स्मरण करने लगा । ब्राह्मण ! इस प्रकार प्रमाद रहित, तत्पर ( तथा ) आत्मसंयमयुक्त विहरते हुये, रातके पहिले याममें सुप्ते यह पहली विद्या प्राप्त हुई, अविद्या नष्ट हुई, विद्या उत्पन्न हुई, तम नष्ट हुआ, आलोक उत्पन्न हुआ ।

( २ ) “सो इस प्रकार चित्तके समाहित (= एकाग्र ), परिशुद्ध = पर्यवदात ०<sup>१</sup> होने पर प्राणियोंके स्मृति (= स्मृत्यु ) और उत्पत्तिके ज्ञानके लिये चित्तको झुकाया । सो मैं अ-मानुष, विशुद्ध, दिव्य चक्षुसे अच्छे दूर, सुवर्ण-दुर्बर्ण, सुगतिवाले, दुर्गतिवाले प्राणियोंको भरते उत्पन्न होते देखने लगा, कर्मानुसार गतिको प्राप्त होते प्राणियोंको पहिचानने लगा—यह आप प्राणधारी ( लोग ) कायिक दुराचारसे युक्त, वाचिक दुराचारसे युक्त, मानसिक दुराचारसे युक्त, आर्थिक निन्दक, मिथ्यामत-स्वीकृतवाले, (= मिथ्या-दृष्टि ), मिथ्या-दृष्टि ( से प्रेरित ) कर्मको करनेवाले थे । यह काया छोड़नेपर मरनेके बाद अपाय = दुर्गति, पतन, नर्क (= निरय ) में प्राप्त हुये हैं । यह आप प्राणधारी ( लोग ) कायिक, वाचिक, मानसिक सदाचार (= सुचरित ) से युक्त, आर्थिक अ-निन्दक सम्मग्-दृष्टिक (= सच्चे सिद्धान्तवाले ), सम्मग्-दृष्टि-संबंधी कर्मको करनेवाले ( थे ); यह काया छोड़नेपर मरनेके बाद सुगति, स्वर्गलोकको प्राप्त हुये हैं । इस प्रकार अ-मानुष, विशुद्ध दिव्य चक्षुसे ० । ब्राह्मण ! ० रातके मन्थम याममें यह सुप्ते दूसरी विद्या प्राप्त हुई ० ।

<sup>१</sup> यहाँ तीन विचारों हैं ।

<sup>२</sup> देखो ऊपर ।

( ३ ) "० ० आस्रवोंके क्षयके ज्ञानके लिये चित्तको मुक्ताया । फिर मैंने—'यह दुःख है' इसे यथार्थसे जान लिया, 'यह दुःख-समुद्ब ( = दुःखका कारण ) है' ०, 'यह दुःख-निरोध है' ०, 'यह दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद् है' इसे यथार्थसे जान लिया । 'यह आस्रव' है' ०, 'यह आस्रव-समुद्ब है' ०, 'यह आस्रव-निरोध है' ०, 'यह आस्रवनिरोधगामिनी प्रतिपद् है' ० । सो इस प्रकार देखते, इस प्रकार जानते मेरा चित्त काम ( = काम-वासना रूपी ) आस्रवोंसे मुक्त हो गया, ० भव ( = जन्म ले लेनेके श्रोत्र रूपी ) आस्रवोंसे ०, अ-विद्या-आस्रवोंसे मुक्त हो गया । छूट ( = विमुक्त हो ) जानेपर 'छूट गया' ऐसा ज्ञान हुआ । 'जन्म क्लम होगया, ब्रह्मचर्य पूरा होगया, करना था सो कर लिया, अब यहाँ करनेके लिये कुछ ( शेष ) नहीं है'—इसे जान लिया । ब्राह्मण ! ० रातके अन्तिम घाममें यह सुखे तीसरी विद्या प्राप्त हुई ० ।

'ब्राह्मण ! शायद तेरे ( मनमें ) ऐसा हो—'आज भी श्रमण गौतम अ-वीतराग, अ-वीत द्वेष, अ-वीतमोह है, इसीलिये शरण्य, वनखंड तथा सूनी कुटियाका सेवन करता है' । ब्राह्मण ! इसे इस प्रकार नहीं देखना चाहिये । ब्राह्मण ! दो बातोंके लिये मैं शरण्य ० सेवन करता हूँ— ( १ ) इसी शरीरमें अपने सुखविहारके ब्यालसे; और ( २ ) जानेवाली जनतापर अनुकम्पाके लिये ( जिसमें ) मेरा अनुसमनकर वह भी सुफल-भागी हो । "

"आप गौतम द्वारा जानेवाली जनता अनुकम्पित सो है, जो कि आप गौतम सम्यक् संशुद्धने अनुकम्पाकी । आश्रव ! भो गौतम ! आश्रव ! भो गौतम ! जैसे औंधेको सीधा कर दे, टिकेको उधाव दे, भूलेको रास्ता बतला दे, अंधकारमें तेलका प्रदीप रख दे—जिसमें कि आँखवाले रूपको देखें, ऐसीही आप गौतमने अनेक प्रकार ( = पर्याय ) से धर्मको प्रकाशित किया; यह मैं आश्रव गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और निबु-संघकी भी । आप गौतम आजसे सुखे अंजलि-वद् शरणागत उपासक स्वीकार करें । "



## ५-अनङ्गण-सुत्तन्त (१।१।५)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिटिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको संबोधित किया—“आयुसो ! भिक्षुजो !”

“आयुस” — ( कह ) उन भिक्षुजोंने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया ।

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा—

“आयुसो ! लोकमें चार ( प्रकारके ) पुरुष ( = व्यक्ति ) विद्यमान हैं । कीमसे चार ?—

( १ ) आयुसो ! एक व्यक्ति अंगण- ( = वित्तमल )-सहित होता हुआ भी, मेरे भीतर अंगण है, इसे ठीकसे नहीं जानता । ( २ ) यहाँ कोई व्यक्ति अंगण-सहित होता हुआ, मेरे भीतर अंगण है, इसे ठीकसे जानता है । ( ३ ) यहाँ कोई व्यक्ति अंगण-रहित होता हुआ, मेरे भीतर अंगण नहीं है, इसे ठीकसे नहीं जानता है । ( ४ ) यहाँ कोई व्यक्ति अंगण-रहित होता हुआ, मेरे भीतर अंगण नहीं है, इसे ठीकसे जानता है ।

“आयुसो ! इनमेंसे जो वह व्यक्ति अंगणरहित होता हुआ भी, मेरे भीतर अंगण है—इसे ठीकसे नहीं जानता, वह इन अंगणसहित दोनों व्यक्तियोंमें हीन ( = नीच ) पुरुष कहा जाता है । और आयुसो ! इनमेंसे जो वह व्यक्ति अंगण-सहित होता हुआ, मेरे भीतर अंगण है—इसे ठीकसे जानता है, वह इन अंगण सहित दोनों व्यक्तियोंमें श्रेष्ठपुरुष कहा जाता है । आयुसो ! यहाँ जो वह व्यक्ति अंगणरहित होता हुआ, मेरे भीतर अंगण नहीं है—इसे ठीकसे नहीं जानता, वह इन अंगणरहित दोनों व्यक्तियोंमें हीन ( = नीच )-पुरुष कहा जाता है । और आयुसो ! अंगण-रहित होता हुआ, ० इसे ठीकसे जानता है, वह ० श्रेष्ठ पुरुष कहा जाता है ।”

ऐसा कहोपर आयुष्मान् महामीदुग्गल्यायनने आयुष्मान् सारिपुत्रसे यह कहा—

“आयुस सारिपुत्र ! क्या हेतु है, क्या कारण है, जो अंगण-सहित होते हुए इन दोनों व्यक्तियोंमें एक कहा जाता है हीन पुरुष, और एक कहा जाता है श्रेष्ठ पुरुष । और आयुस सारिपुत्र ! ० क्या कारण है, जो अंगण-रहित होते हुए इन दोनों व्यक्तियोंमेंसे एक कहा जाता है हीन पुरुष, और एक कहा जाता है श्रेष्ठ पुरुष ?

“आयुस ! यहाँ जो वह व्यक्ति अंगणसहित होता भी ० ठीकसे नहीं जानता; उससे आशा होगी, कि वह इस अंगण ( = वित्त-मल ) के विनाशके लिये न प्रयत्न करेगा, न उसीग करेगा, न वीर्यारम्भ ( = प्रयत्न ) करेगा, वह राग-युक्त, द्वेष-युक्त, मोह-युक्त, अंगण-युक्त, मलिन-चित्त ही सुत्तुको प्राप्त करेगा । जैसे आयुस ! कोसेकी बाड़ी ( = कंसपाती ) रज और मलसे श्लिष्ट ( ही ) सुफावसे वा कसेरेंके घरसे लाई जाये, ( और ) मालिक न उसका उपयोग करे, न पर्यवदायन ( = साफ ) करे, ( तथा ) कचरेमें उसे डाल दे । इस प्रकार आयुस ! वह कोसेकी बाड़ी, कालान्तरमें और भी



अधिक कलुटी, मल-गृहीत हो जायेगी ( न ) ?”

“हाँ, आबुस !”

“ऐसेही आबुस ! जो वह व्यक्ति अंगण-सहित होता भी ० ठीकसे नहीं जानता, उससे आशा होगी ०” मलिन चित्तही मृत्युको प्राप्त करेगा । आबुस ! इनमें जो वह व्यक्ति अंगण-सहित होता ० ठीकसे जानता है, उससे आशा होगी, कि वह उस अंगणके विनाशके लिये प्रयत्न ०, उद्योग ०, वीर्यारम्भ करेगा; वह राग-रहित, द्वेष-रहित, मोह-रहित, अंगण-रहित निर्मल-चित्त हो मृत्युको प्राप्त होगा । जैसे आबुस ! रज और मलसे लिल काँसेकी धाली दूकानसे वा कसेरेके घरसे लाई जाये, और मालिक उसका उपयोग करें, साफ करें, और कचरेमें न डालें । इस प्रकार आबुस ! वह काँसेकी धाली कालान्तरमें अधिक परिशुद्ध ( तथा अधिक ) निर्मल हो जायेगी ( न ) ?”

“हाँ, आबुस !”

“ऐसेही आबुस ! जो वह व्यक्ति अंगण-सहित होते ० हुये ठीकसे जानता है, उससे आशा होगी ० निर्मल-चित्त हो मृत्युको प्राप्त होगा । आबुस ! वहाँ जो वह व्यक्ति अंगण-रहित होता हुआ, मेरे भीतर अंगण नहीं है—इसे ठीकसे नहीं जानता, उससे उम्मीद होगी, ( कि ) वह शुभ-निमित्त ( = वस्तुके एकतरफा सौन्दर्यकी ओर अधिक झुकाव ) को मनमें करेगा, शुभ-निमित्तके मनमें करनेसे उसके चित्तमें राग चिपट जायेगा, ( इस प्रकार ) वह राग-द्वेष-मोह-सहित, अंगण ( = राग, द्वेष, मोह यह तीन चित्त मल )-सहित, ( और ) मलिन-चित्त ( हो ) मृत्युको प्राप्त होगा । जैसे, आबुस ! ( कोई ) परिशुद्ध और निर्मल काँसेकी धाली दूकानसे लाई जाये, उसे मालिक न उपयोग करें, न साफ रखें ( धक्कि ) कचरेमें डाल दें । इस प्रकार आबुस ! वह काँसेकी धाली कालान्तरमें और भी अधिक कलुटी, मल-गृहीत हो जायेगी ( न ) ?”

“हाँ, आबुस !”

“ऐसेही आबुस ! ० ० । आबुस ! इनमें जो वह व्यक्ति अंगण-रहित होता उसे ठीकसे जानता है, उससे आशा होगी, ( कि ) वह शुभ-निमित्तको मनमें न करेगा, शुभ-निमित्त को मनमें न करनेसे, राग उसके चित्तमें न चिपटेगा, ( इस प्रकार ) वह राग-द्वेष-मोह-रहित, अंगणरहित ( एवं ) निर्मल-चित्त ( रह ) मृत्युको प्राप्त होगा । जैसे आबुस ! ( कोई ) परिशुद्ध और निर्मल काँसेकी धाली दूकानसे ० लाई जाये, ( और ) मालिक उसका उपयोग करें, साफ रखें, ( और उसे ) कचरेमें न डालें । इस प्रकार आबुस ! वह काँस-पाती कालान्तरमें और भी अधिक परिशुद्ध और निर्मल हो जायेगी ( न ) ?”

“हाँ, आबुस !”

“ऐसेही आबुस ! ० ० । आबुस भोग्गलान ! यह हेतु है, यह कारण है, जो अंगण-सहित होते हुये उन दोनों व्यक्तियोंमें ०<sup>१</sup> । यह हेतु है ० जो अंगणरहित होते हुये भी उन दोनों व्यक्तियोंमें ०<sup>१</sup> ।”

“आबुस ! ‘अंगण, अंगण’ कहा जाता है । आबुस ! यह अंगण किस ( चीज ) का नाम है ?”

“आबुस ! पापकों ( = करावियों ), दुराश्रयों ( = अकुशलों ) और इच्छाकी परतंत्रताओंका नाम ( ही ) यह अंगण है ।

( क ). हो सकता है, आवुस ! कि यहाँ एक भिक्षुके ( मतमें ) इच्छा उत्पन्न हो—‘मैं, अपराध ( = आपत्ति ) करूँ, ( लेकिन ) मेरे वारेमें भिक्षु न जानें कि इसने आपत्ति की है ।’ हो सकता है, आवुस ! कि इस भिक्षुके वारेमें ( दूसरे ) भिक्षु जान वायें—‘इसने आपत्ति की है ।’ फिर वह ( भिक्षु )—‘( सारे ) भिक्षु मेरे वारेमें जानते हैं, कि मैंने अपराध किया है’—यह ( सोच ), कुपित होवे, अप्रतीति ( = नाराज ) होवे । आवुस ! यह जो कोप है, यह जो अ-प्रत्यय ( = नाराजगी ) है, दोनों ही भ्रमण हैं । ( ख ). हो सकता है, आवुस ! कि यहाँ एक भिक्षुके ( मतमें ) इच्छा उत्पन्न हो—‘मैं अपराध करूँ, ( लेकिन ) भिक्षु मुझे अकेलेमें दोषी ठहरावें, संघमें नहीं ।’ हो सकता है, आवुस ! कि भिक्षु, इस भिक्षुको संघके बीचमें अपराधी ठहरावें, अकेलेमें नहीं । फिर वह ( भिक्षु )—‘भिक्षु मुझे संघके बीच में अपराधी ठहराते हैं, अकेलेमें नहीं’—यह ( सोच ) कुपित होवे ० । यह जो कोप है ० । ( ग ). हो सकता है, आवुस !—‘मैं अपराध करूँ, ( किन्तु ) सप्रतिपुद्गल ( = बराबरका स्पर्श ) मुझे दोषी ठहरावें, स-प्रतिपुद्गल नहीं ।’ ० । ( घ ). ०—‘शास्ता ( = बुद्ध ) मुझे ही पूछ पूछ कर भिक्षुओंको धर्मोपदेश करें, दूसरे भिक्षुको पूछ पूछ कर भिक्षुओंको धर्मोपदेश न करें ।’ हो सकता है, आवुस ! कि शास्ता दूसरे भिक्षु को पूछ पूछ कर भिक्षुओंको धर्मोपदेश करें, उस भिक्षुको पूछ पूछ कर नहीं ० । फिर वह ( भिक्षु )—‘शास्ता, मुझे पूछ पूछ कर भिक्षुओंको धर्मोपदेश नहीं करते, दूसरे भिक्षुको पूछ पूछ कर ० करते हैं’—यह ( सोच ) कुपित होवे ० । ० । ( ङ ). ०—‘अहो ! मुझे ही आगे करके भिक्षु गाँवमें भोजनके लिये प्रविष्ट होवें, दूसरे भिक्षुको आगे करके नहीं’ ० । ( च ). ०—‘अहो ! भोजनके समय मुझे ही अन्न ( = प्रथम )-आसन, अन्न-उदक, अन्न-पिब ( = प्रथम परोसा ) मिले, दूसरे भिक्षुको नहीं’ ० । ( छ ). ०—‘अहो ! भोजन समाप्त हो जानेपर, मैं ही ( अन्नदाताके दानके पुण्यका ) अनुमोदन करूँ, दूसरा भिक्षु नहीं’ ० । ( ज ). ०—‘अहो ! मैं ही आराम ( = चाश्रम ) में जाये भिक्षुओंको धर्मोपदेश करूँ, दूसरा भिक्षु नहीं’ ० । ०—‘अहो ! मैं ही आराममें जाई भिक्षुणियोंको ० । ० । ० आराममें जाये उपासकोंको ० । ० । ० आराममें जाई उपासिकाओंको धर्मोपदेश करूँ, दूसरा भिक्षु नहीं’ ० । ( झ ). ०—‘अहो ! भिक्षु मेरा ही स्तकार-गुरुकार, मान और पूजा करें, दूसरेका नहीं’ ० । ० भिक्षुणियाँ ० उपासक ० । ० । ० उपासिकायें मेरा ही स्तकार ० करें, दूसरेका नहीं’ ० ।

( झ ). ०—‘अहो ! मैं ही उत्तम चीवरों ( = वस्त्रों ) का पानेवाला होऊँ’ ०—‘उत्तम भिक्षाओंका’ ०—‘उत्तम वास स्थानोंका’ ०—‘रोगियोंके उत्तम पथ्य-औषधकी चीजोंका पानेवाला होऊँ, दूसरा भिक्षु नहीं’ ० । आवुस ! इन्हीं पापकों-बुराईयों ( और ) इच्छाकी परतंत्रताओंका नाम अङ्गण है । आवुस ! जिस किसी भिक्षुके यह पापक-बुराईयाँ, इच्छाकी परतंत्रतायें अविनष्ट दिव्याईं पवती हैं, सुनाई देती हैं, चाहे वह धनवासी, एकान्त कुटी निवासी, भिक्षाश्रमोवी ( = पिंडपात्री ), विना-ठहरे-भिक्षाचारी, वासुकूलिक ( = फँके चीखोंको सोकर पहननेवाला ), ( और ) स्त्रवीचरधारी ही क्यों न हो, ( किन्तु ) स-अन्नचारी ( = एक वस्त्रके वस्ती ) उसका स्तकार-गुरुकार, मान, पूजा नहीं करते । सो किस लिये ?—वह देखते और सुनते हैं, कि इस आयुष्मान् की वह ० बुराईयाँ ० नष्ट नहीं हुई । जैसे आवुस ! एक परिशुद्ध, निर्मल काँसे की थाली दुकान या कसेरेके घरसे लाई गई हो । ( फिर ) मात्तिक उसमें सुर्वे सॉप, सुर्वे कुत्ते, या सुर्वे मनुष्य ( के मालको ) भरकर, दूसरी काँसेकी थालीसे ढाँककर धाजार ( आपण-दुकान ) में रख दें । उसे देखकर लोग कहें—‘अहो ! यह क्या चमचमाता हुआ रक्ता है ?’ फिर उसे उठाकर देखें । उसे देखते ही उनके ( मतमें ) पूजा, प्रतिकूलता जुगुप्सा उत्पन्न हो जाये । नृवोंको



भी खानेकी इच्छा न हो, पेटभरनेकी तो बात ही क्या ? इसी प्रकार आवुस ! जिस किसी भिक्षुकी वह बुराइयाँ ० नष्ट नहीं हुई ०, तो चाहे वह खनवालो ० ही क्यों न हो, ० । आवुस ! जिस किसी भिक्षुकी वह ० बुराइयाँ ० नष्ट हो गई हैं, तो चाहे वह ग्राममें रहनेवाला, निमंत्रण खाते-वाला, गृहस्थों ( के दिये गये ) चीवरोंको पहिनेवाला ही क्यों न हो, तोभी स-यज्ञचारी उसका सत्कार-पूजा करते हैं । सो जिस लिये ?—वह देखते और सुनते हैं, कि इस आवुष्मान्की वह ० बुराइयाँ ० नष्ट हो गई हैं । जैसे, आवुस ! एक स्वच्छ निर्मल काँसेकी थाली दुकान या कसेरेके घरसे लाई गई हो । ( फिर ) मालिक उसमें साफ किये थालीके चावलको थोड़े प्रकारके सूप ( = दाल आदि तिर्यैन् ) और अन्नके साथ सजाकर एक दूसरी कंसपातीसे ढाँककर बाजारमें रख दें । उसे देखकर लोग कहें—‘अहो ! यह क्या चमत्कामता रक्ता है !’ फिर उसे उठाकर कोल कर लेंगे । उसे देखते ही उनके ( मनमें ) प्रसन्नता, अनुकूलता और अ-तृप्तता उत्पन्न हो जाये । पेटभरनेको भी खानेकी इच्छा हो आये, भूखोंकी तो बात ही क्या ? इसी प्रकार आवुस ! जिस किसी भिक्षुकी वह ० बुराइयाँ ० नष्ट हो गई हैं ० । ० । ”

ऐसा कहतेपर आवुष्मान् मौद्गल्यायन ( = मोग्गलान ) ने आवुष्मान् सारिपुत्र ( = सारि-पुत्र ) को यह कहा—“आवुस सारिपुत्र ! ( इसी संबंधमें ) मुझे एक उपमा ( = उदात्त ) सूझ रही है । ”

“उसे कहो, आवुस मौद्गल्यायन ! ”

“आवुस ! एक समय मैं राजगृह, गिरिब्रजमें विहार कर रहा था । तब मैं पूर्वाह्णके समय ( पक्ष ) पहिन, ( भिक्षा- ) पात्र और चीवर लेकर राजगृहमें भिक्षाटनके लिये प्रविष्ट हुआ । उस समय सामिति यानकारपुत्त, रथके ( चक्केकी ) पुट्टीको गड़ रहा था, और उसके पास भूत-पूँव यानकार-वैशिक पंगुपुत्त आजीवक<sup>१</sup> उपस्थित था । तब ० पंगुपुत्त आजीवकके चित्तमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—अहो ! ( अच्छा हो जो ) यह सामिति यानकार-पुत्त इस पुट्टीके इस बंक ( = टेढ़ापन ) = इस विषय, इस दोषको गड़ डाले, और इस प्रकार यह पुट्टी ( = नेमि ) बंक-विषय-दोषसे रहित हो, ठीक सारमें प्रतिष्ठित हो जाये । आवुस ! जैसा जैसा ० पंगुपुत्त आजीवकके चित्तमें वितर्क होता था, वैसाही वैसा सामिति यानकारपुत्त उस पुट्टीके बंक ० को गड़ता था । तब आवुस ! ० पंगुपुत्त आजीवक प्रसन्न चित्त हो बोल उठा—‘हृदयमे ( मेरे ) हृदय की ( बात ) को जानकर मानो गड़ रहा है’ । ऐसे ही आवुस ! जो पुद्गल ( = व्यक्ति ) अश्रद्धालु है, जो ( धर्ममें ) श्रद्धाले नहीं वरिष्ठ जीविकाके लिये घरसे बेघर बन प्रव्रजित हुये हैं, जोकि गठ, मायावी, पाचंडी ( = केदुमी ), उद्धत, कमिमानी ( = डकल ), चपल, सुचल, असंयतभाषी, असंयत-इन्द्रिय, भोजनकी भाषाको न जाननेवाले, जागरणमें न तत्पर, श्रामण्य ( = संन्यासके आवर्ध ) की पवाह न करनेवाले, भिक्षुओं की शिक्षाके प्रति तीव्र आदर न रखनेवाले, जोधने बदोसे वाले, भागनेमें अग्रगामी, एकान्त चिन्तनमें थुरा ( = जुना ) फेंक देनेवाले, आलसी ( = कुसीली ), अनुद्योगी, मुषित-स्मृति, बेसमझ, विभ्रान्त-चित्त, दुष्टप्रज्ञ, मूँगे-भेष जैसे ( पुरुष ) हैं, इस उपदेश द्वारा उनके हृदयको हृदयसे जान कर मानो आवुष्मान् सारिपुत्र गड़ रहे हैं । और जो कुलपुत्र अद्वार्पक घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुये हैं, जोकि अ-गठ, अ-मायावी, पाचंड-बहित, अनुद्धत, अ-अभिमानी, अ-चपल, अ-सुचल संयत-भाषी, संयत-इन्द्रिय, भोजनकी भाषा जाननेवाले, जागरणमें तत्पर, श्रामण्यका कयाल रखनेवाले, शिक्षा के प्रति तीव्र आदर आव रखने

<sup>१</sup> इस समयके नये साधुओंका एक सम्प्रदाय ।



वाले, न जोड़ने घटोरनेवाले, भ्रामनेमें लुना फेंक देनेवाले, एकान्त-चिन्तन (= प्रविष्टि) में  
अग्रगामी, निरास, उद्योगी, संयमी (= पद्धितज्ञ), स्मृति-संयुक्त, समझदार, सम्बद्ध-एकाग्र-  
चित्त, प्रज्ञावान्, गूँगे-और-भेड़से नहीं हैं, वह आयुष्मान् सारिपुत्रके इस धर्मापदेशको सुनकर  
मानो वचन और मनसे पान कर रहे हैं, आहार कर रहे हैं। क्या लूष ? ( आपने ) सप्रज्ञचारियों-  
को तुराइयोंसे उड़ाकर भलाइयोंमें स्थापित कर दिया। जैसे, आयुस ! श्रीकीन अल्पवयस्क तरुण  
की या पुरुष शिरसे स्नान कर, कमलकी माला, या जूहीकी माला, या भोगरे (= अतिमुक्तका )  
की मालाको या दोनों हाथोंसे उसे ग्रहण कर, ( अपने ) उत्तम-अंग-शिरपर रखे; इसी प्रकार  
आयुस ! जो कुल-पुत्र अद्यापूर्वक घरसे प्रवर्जित हुये हैं<sup>१</sup> गूँगे-और-भेड़ से नहीं हैं; वह,  
आयुष्मान् सारिपुत्रके इस धर्मापदेशको सुनकर मानो वचन और मनसे पानकर रहे हैं ० ।"

इस प्रकार दोनों महानागों (= महावीरों ) ने एक दूसरेके सुभाषितका अनुमोदन किया ।

## ६-आकङ्खेय्य-सुत्तन्त (१।१।६)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भदन्त !” ( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! शील सम्पन्न होकर विहारो; प्रतिमोक्ष-संवर (= सदाचार-नियम रूपी संरक्षण) से संरक्षित हो विहारो; आचार-गोचर (= चर्याचरण) से संयुक्त हो, छोटी सी भी बुराईसे भयजाले शिक्षापदों (= आचार-नियमों) को ग्रहणकर, उनका अभ्यास करो। भिक्षुओ ! यदि भिक्षु चाहता है कि वह क्षम्यचारी (= गुरुभाई ) भिक्षुओंका प्रिय = मनाप और सम्मान-भाजन होवे; तो वह शीलोंका पूरा करनेवाला बने, भीतरसे चित्तको शमन करनेमें तत्पर, लक्ष्यहित ध्यान ( तया ) विषययना (= प्रज्ञा) से युक्त हो, सुने वरोंकी शरण ले।

“भिक्षुओ ! यदि भिक्षु चाहता है, कि वह चीवर (= वस्त्र), पिंडपात (= भिक्षान्न), शयनासन (= वासस्थान) ( और ) स्नान-प्रत्यय-<sup>१</sup>पत्र्य-परिष्कार ( रोगीके पत्र्य और औषधकी चीज़ें ) का पाने वाला हो, तो वह शीलोंका ही पूरा करनेवाला बने ०।

“भिक्षुओ ! यदि भिक्षु चाहता है, कि जिनके चीवर, पिंडपात, शयनासन, स्नान-प्रत्यय-भेषज-परिष्कारका मैं उपयोग करता हूँ, उनके वह ( दान- ) कार्य महाफलवाले=महानुशंसवाले हों, तो वह शीलोंका ही पूरा करनेवाला बने ०।

“ ० जो मेरे जातिवाले रक्त-संबंधी मृत-प्रेत ( लोकान्तर-प्राप्त ) हैं। ( और जोकि ) प्रसन्न-चित्तसे मेरी याद करते हैं, उनका वह कर्म महाफल=महानुशंस होवे, तो वह ०।

“ ० मैं अ-रति (= उचाट) को हरानेवाला होऊँ, अ-रति सुखी न हरा सके, उत्पन्न अ-रति को मैं पराजित करके विहूँ; तो वह ०।

“ ० मैं भय-भैरवको हरानेवाला होऊँ ०; तो वह ०।

“ ० इसी जन्ममें सुख-पूर्वक विहार करनेवाला, चित्त-सम्बन्धी चारों ध्यानोंका पूर्णतया विना विकृत और कठिनाईके लाभी (= पानेवाला) होऊँ; तो वह ०।

“ ० जो वह रूप ( -लोक )<sup>१</sup> से परे आरूप्य (= लोक-संबन्धी) शान्त विमोक्ष (= मुक्ति ) हैं, उन्हें मैं कायासे प्राप्त कर विहूँ; तो वह ०।

<sup>१</sup> इस संसारसे परे लोक जहाँ तेजोमय प्राणी निवास करते हैं, उससे भी परे अ-रूप-लोक है।

“० तीनों संयोजनों<sup>१</sup> के क्षयसे क्रोत-आपन्न धन पतन-रहित, त्रियत, संबोधि (= परमज्ञान)-परायण होई; तो वह ० ।

“० तीनों संयोजनों के क्षयसे, राग-द्वेष-मोह के क्षीण होनेसे सहृदयता गामी होई, इस लोकमें एक ही धार और नाकर दुःखका अन्त करे; तो वह ० ।

“० पाँच अक्षरभागीय संयोजनों के क्षयसे औपपातिक (= दिव्ययोगि-उत्पन्न) उस (अगले जन्म लेनेवाले) लोकमें निर्वाण प्राप्त करनेवाला होई, उस लोकसे फिर लौटकर ( यहाँ ) आनेवाला न होई, तो वह ० ।

“० मैं अनेक प्रकारकी अद्विष्टोंका अनुभव करूँ—एक होकर अनेक हो जाऊँ, आविर्भाव, तिरोभाव, दीवार-प्राकार-पर्वतमें मिलिंस हो वैसे ही चले, जैसे आकाशमें पक्षी उड़ते हैं, पृथिवीमें वैसे ही दूँई उतराई, जैसे पानीमें, पानी पर (भी) वैसे ही विना भीगे। चले, जैसे पृथिवी पर; आकाशमें आसन भास्कर वैसे ही चले, जैसे पक्षी = शकुन; ऐसे महाअद्विष्टवाले=महानुभाव इन चाँद और सूर्यको भी हाथसे छूई, परिमार्जन करे; ( इसी ) कायासे ब्रह्मलोकपर्यन्त ( सब ) को अपने वशमें कर ले; तो वह ० ।

“० मैं अ-मानुष विभु दिव्य ओम्-इन्द्रियसे उभय प्रकारके शब्दोंको सुनूँ—दिव्य ( शब्दों )को भी, और मानुष ( शब्दों )को भी, दूरवालेको भी और समीप वाले ( शब्द )को भी; तो वह ० ।

“० मैं दूसरे सबों दूसरी व्यक्तियोंके चित्तोंको ( अपने ) चित्तसे देखकर जानलूँ—सराग चित्त होने पर ‘सराग चित्त है’—जान जाऊँ, वीतराग चित्त०, स-द्वेषचित्त०, वीत-द्वेष चित्त०, स-मोह चित्त०, वीत-मोह चित्त०, संक्षिप्त (= एकाग्र )-चित्त०, विक्षिप्त चित्त०, महद्गत (= विमल ) चित्त०, अ-महद्गत चित्त०, स-उत्तर (= जितने बढ़कर भी कोई हो ) चित्त०, अनुत्तर (= अनुपम ) चित्त०, समाहित चित्त०, अ-समाहित, चित्त०, विमुक्त चित्त०, अ-विमुक्त चित्त०; तो वह ० ।

“० अनेक प्रकारके पूर्व-निवासों (= पूर्वजन्मों )को जानूँ, जैसे कि—एक जन्मको भी ०<sup>२</sup>; तो वह ० ।

“० मैं अ-मानुष विभु दिव्य चक्षुसे अन्धे-बुरे, सुवर्ण-दुर्वर्ण<sup>३</sup> प्राणियोंको<sup>४</sup> देखूँ—यह आप प्राणी ०<sup>५</sup>; तो वह ० ।

“० मैं आत्मवोंके क्षयसे जो आक्षय-रहित चित्तकी विमुक्ति है, प्रज्ञाद्वारा विमुक्ति (= मुक्ति ) है, इसे इसी जन्ममें स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर, विहार करे; तो वह ० ।

“भिक्षुओ ! शील<sup>६</sup>-सम्पन्न हो विहरो ०<sup>७</sup> ।

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्के भाषणका अनुमोदन किया ।

<sup>१</sup> मानसिक बंधन ।

<sup>२</sup> दे०, पृष्ठ, १५ ।

<sup>३</sup> दे०, पृष्ठ, १५, १६ ।

<sup>४</sup> हिंसा आदि आठ पापकर्मोंसे वितर होना । <sup>५</sup> दे०, पृष्ठ १६ ।



## ७-वत्थ-सुत्तन्त (१।१।७)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् धावस्तीमें अनाथपिटिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भदन्त !” ( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! जैसे कोई मैला कुचैला वस्त्र ( = वत्थ ) हो, उसे रंगरेज ( = रजक ) ले जाकर जिसकिसी रंगमें डाले—चाहे नीलमें, चाहे पीतमें, चाहे लोहित ( = लाल ) में, चाहे भाविष्ट ( = मज्जीठके रंग )में; वह वदरंग ही रहेगा, अशुद्धवर्ण ही रहेगा। सो किस लिये ?—भिक्षुओ ! वस्त्रके अशुद्ध होनेसे। ऐसे ही भिक्षुओ ! चित्तके मलिन होनेसे सुगति अ-निवार्य है ।

“जैसे, भिक्षुओ ! उज्जला साफ वस्त्र हो, उसे रंगरेज ले जाकर जिसकिसी ही रंगमें डाले, वह सुरंग निकलेगा, शुद्धवर्ण निकलेगा। सो किस लिये ?—भिक्षुओ ! वस्त्रके शुद्ध होनेके कारण। ऐसे ही भिक्षुओ ! चित्तके अन्-उपह्रिष्ट ( = निर्मल ) होने पर सुगति अ-निवार्य ( = लाजिम्मी ) है ( = प्रातिकार्ष्या ) ।

“भिक्षुओ ! कौनसे चित्तके उपक्लेश ( = मल ) हैं ?—( १ ) अभिष्या = विषम लोभ चित्तका उपक्लेश है; ( २ ) व्यापाद ( = द्रोह ) ०, ( ३ ) क्रोध ०, ( ४ ) उपनाह ( = पाखंड ) ०; ( ५ ) अक्ष ( = अमरक ) ०; ( ६ ) प्रदाश ( = निष्ठुरता ) ०; ( ७ ) ईर्ष्या ०; ( ८ ) मात्सर्य ( = कंजुसी ) ०; ( ९ ) माया ( = वंचना ) ०; ( १० ) शाद्व ०; ( ११ ) स्तम्भ ( = जड़ता ) ०; ( १२ ) सारम्भ ( = हिंसा ) ०; ( १३ ) मान ०; ( १४ ) अतिमान ०, ( १५ ) मद ०; ( १६ ) प्रमाद ० ।

“भिक्षुओ ! जो भिक्षु—‘अभिष्या = विषम लोभ चित्तका उपक्लेश है’—यह जानकर अभिष्या ० चित्तके उपक्लेशको त्यागता है। ‘व्यापाद चित्तका उपक्लेश है’—यह जानकर ० । क्रोध ० । उपनाह ० । अक्ष ० । प्रदाश ० । ईर्ष्या ० । मात्सर्य ० । माया ० । शाद्व ० । स्तम्भ ० । सारम्भ ० । मान ० । अतिमान ० । मद ० । प्रमाद ० ।

“भिक्षुओ ! जब भिक्षुने—‘अभिष्या = विषमलोभ चित्तका उपक्लेश है,—यह जानकर चित्तके उपक्लेश अभिष्या ० को त्याग दिया है। व्यापाद ० । क्रोध ० । उपनाह ० । अक्ष ० । प्रदाश ० । ईर्ष्या ० । मात्सर्य ० । माया ० । शाद्व ० । स्तम्भ ० । सारम्भ ० । मान ० । अतिमान ० । मद ० । प्रमाद ० । तो वह बुद्धमें अत्यन्त अद्वा ( = प्रसाद ) से युक्त होता है—‘वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध ( = परमज्ञानी ), विद्या-और-आचरणसे संपन्न ( = परिपूर्ण ), सुगत ( = सुन्दर गतिको प्राप्त ) लोकविद्, पुरुषोंको दमन करने ( = सम्भारणपर लाने ) के लिये अनुपम चातुर्क सवार, देव-अनुष्योंके शास्ता ( = उपदेशक ) बुद्ध ( = ज्ञानी ) भगवान् है’ । वह

धर्ममें अत्यन्त अढ़ासे युक्त होता है—‘भगवान्का धर्म स्वाक्यात ( सुन्दररीतिसे कहा गया ) है, ( वह ) सादृष्टिक ( = इसी दारीरमें फल देनेवाला ), अकालिक ( = कालान्तरमें नहीं, सद्यः फलप्रद ), एहिपदिक ( = यहीं दिखाई देनेवाला ), औपनयिक ( = निर्वाणके पास लेजानेवाला ), विज्ञ ( पुरुषों ) को अपने अपने भीतर ( ही ) विदित होनेवाला है’ । वह <sup>१</sup> संघमें अत्यन्त अढ़ासे युक्त होता है—‘भगवान्का भावक ( = शिष्य-संघ ) सुभागांरुद्ध ( = सुप्रतिपन्न ) है, ० कञ्ज-प्रतिपन्न ( = सरल मार्गपर आरुद्ध ) है, ० न्याय ( मार्ग )-प्रतिपन्न है, ० सामोचि-प्रतिपन्न ( = ठीक मार्गपर आरुद्ध ) है, यह जो चार पुरुष-युगल ( = खोतनापन्न, सकुदागामी, अनागामी, अर्हत् ), आठ पुरुष-युगल ( = स्त्री पुरुष भेदसे खोत आपन्न आदि आठ ) है, यही भगवान्का भावकसंघ है, ( जो कि ) आह्वान करने योग्य है, पातुना बनने योग्य, दक्षिणेश ( = दानदेने योग्य ), हाथ जोड़ने योग्य, और लोकके लिये पुण्य ( वीने ) का श्रेष्ठ है’ ।

“जब उसके वह ( मल ) त्यक्त, वसित, मोचित, नष्ट, विसर्जित होते हैं; ( और )—‘मैं बुद्धमें अत्यन्त अढ़ासे युक्त हूँ’—वह ( सोचकर ) वह अर्थ-वेद ( = अर्थज्ञान ), धर्मवेद ( = धर्म-ज्ञान ) को पाता है, ( और ) धर्मवेद संबंधी प्रमोद ( = प्रामोद्य ) को पाता है । प्रसुद्धि ( पुरुष ) को प्रीति ( = संतोष ) होती है । प्रीतिमान्की काया शान्त होती है, प्रब्रव्यकाय सुख अनुभव करता है । सुखीका चित्त एकाग्र होता है—‘मैं धर्ममें अत्यन्त अढ़ासे युक्त हूँ’—वह ( सोचकर ) वह ० । ‘मैं संघमें अत्यन्त अढ़ासे युक्त हूँ’—वह ( सोचकर ) वह ० । जब उसके वह ( मल ) त्यक्त ० होते हैं, तो वह अर्थवेद को, धर्मवेद को पाता है ० । सुखीका चित्त एकाग्र होता है ।

“भिक्षुओ ! वह ऐसे शीलवाला, ऐसे धर्मवाला, ऐसी प्रज्ञावाला, भिक्षु चाहे काली ( सुखी आदि ) पुनकर बने शालीके भातको, अनेक सूप और व्यंजनके साथ खाये, तो भी उसको अन्तराय ( = विघ्न ) नहीं होगा । भिक्षुओ ! जैसे झैला कुचैला वस्त्र तच्छ जलको प्राप्त हो शुद्ध साफ हो जाता है; उल्कासुष्ण ( = भट्टीकी चट्टिया ) में पड़कर सोना शुद्ध साफ हो जाता है; ऐसेही भिक्षुओ ! ऐसे शीलवाला, ऐसे धर्मवाला, ऐसी प्रज्ञावाला भिक्षु चाहे ० शालीके भातको ० ।

“वह मैत्री-युक्त चित्तसे एक दिशाको परिपूर्णकर विहरता है, वैसे ही दूसरी दिशाको, वैसे ही तीसरी ०, ० चौथी ० । इस प्रकार ऊपर नीचे आड़े-बेड़े, सधका विचार रखनेवाला, सबके अर्थ, विपुल, महान्, प्रमाणरहित, वैररहित, व्यापार-रहित, मैत्री-युक्त चित्तसे सारे लोकको पूर्ण-कर विहार करता है ।

“वह करुणा-युक्त चित्तसे एक दिशाको ० । मुदिता-युक्त चित्तसे एक दिशाको ० । उपेक्षा-युक्त चित्तसे एक दिशाको ० ।

“वह जानता है कि ‘वह निरुद्ध है’, ‘वह उत्तम ( = प्रणीत ) है’—इन ( लौकिक ) संज्ञाओंसे ऊपर निस्सरण ( = निःकास ) है । ऐसा जानते, ऐसा देखते हुये, उसका चित्त काम ( वासना रूपी ) आस्रवसे मुक्त हो जाता है, भव-आस्रवसे ०, अविद्या-आस्रवसे ० । युक्त ( = दृष्ट ) जानेपर, ‘मुक्त होगया हूँ’—वह ज्ञान होता है; और जानता है—जन्म शीघ्र होगया, मज्जचर्या-वास समाप्त होगया, करना या मो कर लिया, अब दूसरा याही ( कुछ करनेको ) नहीं है । भिक्षुओ ! यह भिक्षु स्नान करे बिना ही स्नात ( = नहाया ) कहा जाता है ।”

<sup>१</sup> यही तीनों वाक्य समूह त्रिरत्न ( = बुद्ध-धर्म-संघ ) की अनुसृष्टि ( = स्मरण ) कही जाती है ।



उस समय सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण भगवान्‌के अविदूस्में बैठा था। तब सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मणने भगवान्‌से यह कहा—

“क्या आप गौतम स्नानके लिये बाहुकानदी चलेंगे ?”

“ब्राह्मण ! बाहुकानदीसे क्या ( लेना ) है ? बाहुकानदी क्या करेगी ?”

“हे गौतम ! बाहुकानदी लोकप्रान्थ ( = लोक-संमत ) है, बाहुकानदी बहुत अनोद्वारा पवित्र ( = पुण्य ) मानी जाती है। बहुतसे लोग बाहुकानदीमें ( अपने ) किये पापोंको बहाते हैं।”

तब भगवान्‌ने सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मणको गाथाओंमें कहा—

“बाहुका, अविकक, गया, और सुन्दरिकामें।

सरस्वती, और प्रयाग तथा बाहुमती नदीमें।

काले कर्मोंवाला मूढ़ चाहे नित्य नहाये, ( किन्तु ) शुद्ध नहीं होगा।

क्या करेगी सुन्दरिका, क्या प्रयाग, और क्या बाहुलिका नदी ?

( वह ) पापकर्मों = कृतकिल्बिष दुष्ट नरको नहीं शुद्ध कर सकते।

शुद्ध ( नर ) के लिये सदाही फल्गु है, शुद्धके लिये सदा ही उपोसथ<sup>१</sup> है।

शुद्ध और शुचिकर्मोंके अंत सदा ही पूरे होते रहते हैं।

ब्राह्मण ! यही नहा, सारे प्राणियोंका क्षेम कर।

यदि तू लूट नहीं चोखता, यदि प्राण नहीं मारता।

यदि पिना दिया नहीं लेता, ( और ) श्रद्धावान् भस्तर-रहित है।

( तो ) गया जाकर क्या करेगा, क्षुद्र जलाशय ( = उदपान ) भी तेरे लिये गया है।”

ऐसा कहने पर सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मणने भगवान्‌को यह कहा—

“आश्चर्य ! हे गौतम !! आश्चर्य ! हे गौतम !!<sup>२</sup> यह मैं भगवान् गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आप गौतमके पास मैं प्रव्रज्या ( = संन्यास ) पाऊँ, उपसम्पदा<sup>३</sup> पाऊँ।”

सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मणने भगवान्‌के पास प्रव्रज्या, उपसम्पदा पाई। उपसम्पदा पानेके बाद, आयुष्मान् भारद्वाज एकान्तमें प्रमादरहित, उद्योगयुक्त, आत्मनिग्रही हो विहरते, ओपे हो समयमें जिसके लिये कुलपुत्र घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, उस अनुपम ब्राह्मणत्वके अन्त ( = निर्वाण )को, इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात्कर, प्राप्तकर विहरने लगे। ‘जन्म क्षीण होगया’<sup>४</sup> नहीं है—जान लिया। आयुष्मान् भारद्वाज अर्हतामेंसे एक हुये।

<sup>१</sup> शतका दिन। <sup>२</sup> देखो पृष्ठ १६। <sup>३</sup> भिक्षु संघमें प्रवेशकी प्रक्रिया। <sup>४</sup> देखो पृष्ठ १६।



## ८-सल्लेख-सुत्तन्त ( १।१।८ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब आमुष्मान् महासुन्द सायंकालमें प्रतिसल्लयन (= ध्यान ) से उठकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठकर आमुष्मान् महा-सुन्दने भगवान्को यह कहा—

“भन्ते ! जो यह आत्मवाद-संघर्षी वा लोकवाद-संघर्षी जमेक प्रकारकी दृष्टियाँ (= दर्शन, मत ) दुनियामें उत्पन्न होती हैं; भन्ते ! इस प्रकार ( इनके ) आदिको ही मनमें ( विचार ) करनेसे इन दृष्टियोंका प्रहाण (= नाश ) होता है, इन दृष्टियोंका परित्याग होता है ? ”

“सुन्द ! जो यह० दृष्टियाँ दुनियामें उत्पन्न होती हैं; ( उनको ) जहाँ यह दृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं, जहाँ यह आशय ग्रहण करती हैं, जहाँ पर व्यपकृत होती हैं, ( वहाँ )—“यह मेरा नहीं”, “न यह मैं हूँ”, “न मेरा यह आत्मा है”—इसे इस प्रकार धर्मात् तौरपर ठीकसे जानकर देखनेपर, इन दृष्टियोंका प्रहाण होता है, इन दृष्टियोंका परित्याग होता है ।

“हो सकता है, सुन्द ! यहाँ कोई भिक्षु कामोंसे विरहित<sup>१</sup>० प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरे । उसके ( मनमें ) ऐसा हो—“मैं सल्लेख (= तप ) के साथ विहर रहा हूँ” । लेकिन, सुन्द ! आर्य-विनय (= आर्यधर्म ) में इन्हें सल्लेख नहीं कहा जाता; आर्यविनयमें इन्हें दृष्टधर्म-सुखविहार (= इसी जन्ममें सुखपूर्वक विहार करना ) कहते हैं ।

“हो सकता है, सुन्द ! यहाँ कोई भिक्षु वितर्क और विचारके शान्त होनेपर ०<sup>१</sup> द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरे । उसको ऐसा हो—० । इन्हें आर्यविनयमें दृष्टधर्म-सुखविहार कहते हैं ।

“हो सकता है, सुन्द ! यहाँ कोई भिक्षु प्रीतिसे विरक्त हो<sup>०१</sup> तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरे । ० । ० ।

“हो सकता है, सुन्द ! ० ०<sup>१</sup> चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरे । ० । इसे आर्यविनयमें दृष्टधर्म-सुखविहार कहते हैं ।

“हो सकता है, सुन्द ! यहाँ कोई भिक्षु रूप-संज्ञा (= रूपके विचार ) को सर्वथा छोड़नेसे, प्रतिष (= प्रतिहिंसा ) की संज्ञाओंके सर्वथा अस्त हो जानेसे, मानापनकी संज्ञाओंको मनमें न करनेसे, “आकाश अमन्त है”—इस आकाश-आनन्द-आयतनको प्राप्त हो विहरे । उसको ऐसा हो—“मैं सल्लेखके साथ विहर रहा हूँ” । लेकिन, सुन्द ! आर्य विनयमें इन्हें सल्लेख नहीं कहा जाता; आर्यविनयमें इन्हें शान्तविहार कहते हैं ।

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ १५ ।

“होसकता है, चुन्द ! ० आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर ‘विज्ञान अनन्त है’—इस विज्ञान-आनन्द-आयतनको प्राप्त हो विहरे । ० इन्हें शान्तविहार कहते हैं ।

“० ० विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर, ‘कुछ नहीं’—इस आर्किचम्य (= न-कुछ-भी-पना) आयतनको प्राप्त हो विहरे । ० ० ।

“० ० आर्किचम्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर, नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतन (=जहाँ न संज्ञाही हो न असंज्ञा ही) को प्राप्त हो विहरे । ० ० ।

“किन्तु, चुन्द ! यहाँ सल्लेख (= तप) करना चाहिये—( १ ) दूसरे हिंसक (= विहिंसक ) होंगे, हम यहाँ अहिंसक रहेंगे—यह सल्लेख करना चाहिये । ( २ ) दूसरे प्राण मारनेवाले होंगे, हम यहाँ प्राण मारनेसे विरत रहेंगे—यह सल्लेख करना चाहिये । ( ३ ) दूसरे शिवा विषा लेनेवाले ० । ( ४ ) दूसरे अ-आश्वचारी ० । ( ५ ) दूसरे मृषा (= झूठ )-वादी ० । ( ६ ) दूसरे पिशुनभाषी (= झुलझोर ) ० । ( ७ ) दूसरे परुष (= कठोर )-भाषी ० । ( ८ ) दूसरे स्वप्नभाषी (= बकवादी ) ० । ( ९ ) दूसरे अभिष्यालु (= लोभी ) ० हम यहाँ अनभिष्यालु रहेंगे । ( १० ) दूसरे भ्यापन्न (= हिंसक )चित्त ० अन्ध्यापन्न चित्त ० । ( ११ ) दूसरे मिथ्या-दष्टि ० सम्यग्दष्टि ० । ( १२ ) दूसरे मिथ्या-संकल्प ० सम्यक्-संकल्प ० । ( १३ ) दूसरे मिथ्याभाषी ० सम्यग्-भाषी ० । ( १४ ) दूसरे मिथ्या-कर्मन्त (= कार्याकर्म ) ० सम्यक्-कर्मन्त ० । ( १५ ) ० मिथ्या-आजीव (= अनुचितरीतिसे रोजी कमानेवाले ) सम्यग्-आजीव ० । ( १६ ) ० मिथ्या-व्यावाम (= प्रयत्न ) ० सम्यग्-व्यावाम ० । ( १७ ) ० मिथ्या (= अनुक्त )-व्युत्ति ० सम्यक्-व्युत्ति ० । ( १८ ) ० मिथ्या-समाधि ० सम्यक्-समाधि ० । ( १९ ) ० मिथ्या-जानी ० सम्यग्-जानी ० । ( २० ) ० मिथ्या-विमुक्ति ० सम्यग्-विमुक्ति ( = मुक्ति ) ० । ( २१ ) ० स्वान = मृद (= शरीर और मनके आलस्य )-संयुक्त ० स्वान-मृद-रहित ० । ( २२ ) ० उद्धत ० अनुद्धत ० । ( २३ ) ० विचिकित्सक (= संशयालु ) ० विचिकित्सा पारंगत ० । ( २४ ) ० कोषी ० अकोषी ० । ( २५ ) ० उपनाही (= पाजडी ) ० अनुपनाही ० । ( २६ ) ० स्रक्षी (= कौनावाले ) ० अस्रक्षी ० । ( २७ ) ० प्रदाशी (= निष्ठुर ) ० अ-प्रदाशी ० । ( २८ ) ० ईर्ष्यालु ० ईर्ष्यारहित ० । ( २९ ) ० मत्सरी ० अ-मत्सरी ० । ( ३० ) ० शठ ० अ-शठ ० । ( ३१ ) ० मायावी (= वंचक ) ० अ-मायावी ० । ( ३२ ) ० स्रब्ध (= जड़ ) ० अ-स्रब्ध ० । ( ३३ ) ० अतिमानी (= अभिमानी ) ० अनतिमानी ० । ( ३४ ) ० दुर्वेषा ० सुवेषा ० । ( ३५ ) ० पाप-भिन्न (= बुरोंको दोस्त बनानेवाले ) ० कल्याण-भिन्न ० । ( ३६ ) ० प्रमत्त ० अ-प्रमत्त ० । ( ३७ ) ० अव्यदालु ० श्रद्धालु ० । ( ३८ ) ० निर्लज्ज ० लज्जावान् ० । ( ३९ ) ० अनपन्नपी (= उचित भयको भी न माननेवाले ) ० अपन्नपी ० । ( ४० ) ० अव्यभुत (= अशिक्षित ) ० बह्वभुत ० । ( ४१ ) ० कुसीद (= आलसी ) ० उद्योगी ० । ( ४२ ) ० मृद-स्रुति ० उपस्थित-स्रुति ० । ( ४३ ) ० दुस्प्रज्ञ ० प्रज्ञा-सम्पन्न ० । ( ४४ ) दूसरे सान्दष्टि (= पैहिल्लाभ )-परामर्षी (= सोच करनेवाला ) आधान-ग्राही (= हठी ), दुःप्रतिनिस्सर्गी (= कठिनाईसे त्याग करनेवाले ) होंगे, हम यहाँ अ-सान्दष्टि-परामर्षी अनाधान-ग्राही सुप्रतिनिस्सर्गी रहेंगे—यह सल्लेख करना चाहिये ।

“चुन्द ! अच्छी बातों (= धर्मों ) के विषयमें विचारके उत्पन्न होनेको भी मैं हितकर कहता हूँ, काया और अचनसे ( उनके ) अनुष्ठानके धारमें तो कहना ही क्या है ? चुन्द ! ( १ ) दूसरे हिंसक होंगे, और हम अहिंसक रहेंगे—यह विचार उत्पन्न करना चाहिये ० । ( ४४ ) दूसरे सान्दष्टि-परामर्षी—यह विचार उत्पन्न करना चाहिये ।

“जैसे, चुन्द ! कोई ! विषम (= कठिन ) मार्ग है, और उसके परिक्रमण (= फेर खाने )-



के लिये दूसरा सम-आर्ग हो; जैसे सुन्द ! विषम तीर्थ (= नावका घाट) हो, और उसके परिक्रमण-के लिये दूसरा सम तीर्थ हो; ऐसे ही सुन्द ! ( १ ) हिसक पुरुष पुद्गल (= व्यक्ति) को अहिंसा परिक्रमणके लिये होती है । ० । ( ४४ ) सान्दष्टि-परामर्षी आधान-ग्राही दुष्प्रतिनिस्सर्गी पुरुषपुद्गलको असान्दष्टिता अ-परामर्षिता अनाधान-ग्राहिता सुप्रतिनिस्सर्गिता परिक्रमणके लिये होती है ।

“जैसे सुन्द ! जो कोई भी अकुशल धर्म (= बुरे काम) है, वह सभी अधोभाव (= अधोगति) को पहुँचानेवाले हैं; जो कोई भी कुशल धर्म (= अच्छे काम) है, वह सभी उपरि-भावको पहुँचानेवाले हैं; जैसे ही सुन्द ! ( १ ) हिसक पुरुष = पुद्गलको अहिंसा ऊपर पहुँचानेवाली होती है । ० । ( ४४ ) सान्दष्टिपरामर्षी आधात-ग्राही दुष्प्रतिनिस्सर्गी पुरुष = पुद्गलको असान्दष्टिता, अ-परामर्षिता अनाधान-ग्राहिता सुप्रतिनिस्सर्गिता ऊपर पहुँचानेवाली होती है ।

“सुन्द ! जो स्वयं गिरा हुआ है, वह दूसरे गिरे हुएको उठावेगा, यह सम्भव नहीं है; किन्तु, जो सुन्द ! अपने गिरा हुआ नहीं है, वह दूसरे गिरे हुएको उठावेगा, यह सम्भव है । सुन्द ! जो स्वयं अदान्त (= मनके संयमसे रहित), अ-विनीत, अ-परिनिर्वृत (= निर्वाणको न प्राप्त) है, वह दूसरेको दान्त, विनीत, परिनिर्वृत करेगा, यह सम्भव नहीं; किन्तु, जो सुन्द ! स्वयं दान्त, विनीत, परिनिर्वृत है, वह दूसरेको दान्त, विनीत, परिनिर्वृत करेगा, यह सम्भव है । ऐसेही सुन्द ! ( १ ) हिसक पुरुषके लिये अहिंसा परिनिर्वाणके लिये होती है । ० । ( ४४ ) सान्दष्टि-परामर्षी आधानग्राही दुष्प्रतिनिस्सर्गी पुरुष-पुद्गलको असान्दष्टिता-अपरामर्षिता अनाधान-ग्राहिता सुप्रतिनिस्सर्गिता परिनिर्वाण (= दुःखविनाश) के लिये होती है ।

“यह मैंने सुन्द ! सल्लोख-पर्याय (= सल्लोक नामक धर्मोपदेश) उपदेशा, त्रिसुव्याद-पर्याय उपदेशा, परिक्रमण-पर्याय उपदेशा, उपरिभाव-पर्याय उपदेशा, परिनिर्वाण-पर्याय उपदेशा ।

“सुन्द ! आकाशों (= शिष्यों) के हितैषी, अनुकम्पक, साक्षात् (= उपदेशक) को अनुकम्पा करके जो करना चाहिये, वह तुम्हारे लिये मैंने कर दिया । सुन्द ! यह वृक्षमूल है, यह सूने घर है, ध्यानरत होओ । सुन्द ! मत प्रभाव (= गफलत) करो, मत पीछे अफसोस करनेवाले बनना—यह तुम्हारे लिये हमारा अनुशासन (= उपदेश) है ।”

भगवान् ने यह कहा, समुत्पन्न हो आयुष्मान् सुन्दने भगवान् के भाषणका अनुमोदन किया । ( बालीस पदी और पाँच संधिती मैं ( जो ) उपदेश गया । सागरसमान-मंजीर ( यष्ट ) सल्लोक नामक पद्यान्त है । )



## ६-सम्मादिट्ठि-सुत्तन्त ( १।१।६ )

ऐसा मैंने सुना—

एक सम्यग् भगवान् श्रावस्तीमें अनायपिण्डिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको संबोधित किया—“आवुसो भिक्षुओ !”

“आवुस !” ( कह ) उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया ।

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा—“आवुसो ! सम्यग्-दृष्टि ( = सम्मादिट्ठि ) सम्यग्दृष्टि कही जाती है, आवुसो ! कैसे आर्यभावक ( = आर्यधर्मी ) सम्यग्दृष्टि ( = ठीक सिद्धांतवाला ) होता है ? उसकी दृष्टि सीधी, वह धर्ममें अत्यन्त श्रद्धावान्, ( और ) इस सबमेंको प्राप्त ( होता है ) ।”

“आवुस ! इस भाषणका अर्थ जाननेके लिये हम दूरसे भी आयुष्मान् सारिपुत्रके पास आते हैं । अच्छा हो, आयुष्मान् सारिपुत्र ही इस वचनका अर्थ कहे । आयुष्मान् सारिपुत्र ( के मुख )से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे ।”

“तो आवुसो ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो कहता हूँ ।”

“अच्छा आवुस !” ( कह ) उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया ।

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा—“जय, आवुसो ! आर्यभावक अकुशल ( = बुराई ) को जानता है, अकुशल-मूलको जानता है; कुशल ( = भलाई, पुण्य ) को जानता है; कुशलमूलको जानता है; इतनेसे आवुसो ! आर्यभावक सम्यग्-दृष्टि होता है । उसकी दृष्टि सीधी ( होती है ), वह धर्ममें अत्यन्त श्रद्धावान्, ( और ) इस सबमेंको प्राप्त होता है ।

“क्या है, आवुसो ! अ-कुशल ? क्या है अ-कुशलमूल ? क्या है कुशल ? क्या है कुशल-मूल ?—आवुसो ! ( १ ) प्राणातिपात ( = हिंसा ) अकुशल है; ( २ ) अदत्तादान ( = चोरी ) अकुशल है; ( ३ ) काम ( = स्त्री-संसार ) में मिथ्याचार ( = बुराचार ) ०; ( ४ ) मृषावाद ( = झूठ बोलना ) ०; ( ५ ) पिशुनवचन ( = चुगली ) ०; ( ६ ) परुषवचन ( = क्रोध भाषण ) ०; ( ७ ) संप्रलाप ( = बकवाद ) ०; ( ८ ) अभिघ्ना ( = छालच ) ०; ( ९ ) व्यापाद ( = प्रतिहिंसा ) ०; ( १० ) मिथ्यादृष्टि ( = झूठी धारणा ) ० ।—यह आवुसो ! अकुशल कहा जाता है । क्या है आवुसो ! अकुशल-मूल ?—( १ ) लोभ अकुशल-मूल है, ( २ ) द्वेष ० ( ३ ) मोह अकुशल-मूल है ।—यह आवुसो ! अकुशल-मूल कहा जाता है । क्या है आवुसो ! कुशल ?—( १ ) प्राणातिपातसे विरति ( = विरत होना ) कुशल है; ( २ ) अदत्तादानसे विरति ०; ( ३ ) कामोंमें मिथ्याचारसे विरति ०; ( ४ ) मृषावादसे विरति ०; ( ५ ) पिशुनवचनसे विरति ०; ( ६ ) परुषवचनसे विरति ०; ( ७ ) संप्रलापसे विरति ०; ( ८ ) अन्-अभिघ्ना ०; ( ९ ) अ-व्यापाद ०; ( १० ) सम्यग्दृष्टि कुशल है ।—यह आवुसो ! कुशल कहा जाता है । क्या है आवुसो ! कुशलमूल ?—( १ ) अ-लोभ कुशल-मूल

है; (२) अ-दोष ०; (३) अ-मोह कुशल-मूल है।—यह आहुसो ! कुशल-मूल कहा जाता है। जब आहुसो ! आर्यभावक इस प्रकार अकुशलको जानता है, इस प्रकार अकुशल-मूलको जानता है। इस प्रकार कुशलको जानता है। इस प्रकार कुशलमूलको जानता है; ( ४ ) वह राग-अनुभाव (= ० मूल ) का परित्यागकर, प्रतिष (= प्रतिहिंसा ) अनुशयको हटाकर, अस्मि (= मैं हूँ ) इस इष्टि-मान (= धारणाके अभिमान )-अनुशयको उन्मूलन कर, अविद्याको मष्ट कर, विद्याको उत्पन्न कर, इसी जन्ममें दुःखोंका अन्त करनेवाला होता है। इतनेसे भी आहुसो ! आर्य-भावक सम्प्रादिष्टि होता है ० ।

“ठीक आहुस !” ( कह ) उन भिक्षुओंमें आहुस्मान् सारिपुत्रके भाषणका अभिनन्दन कर अनुमोदन कर, आहुस्मान् सारिपुत्रसे आगेका प्रश्न पूछा—“क्या आहुस ! और भी पयाँष (= प्रकार ) है, जिससे कि आर्यभावक सम्प्रादिष्टि होता है ० ?”

“है, आहुसो ! जब आहुसो ! आर्यभावक आहारको जानता है, आहार-समुदय (= आहारकी उत्पत्ति )को जानता है, आहार-निरोध ०, आहार-निरोध-गामिनी प्रतिपद् (= आहारके विनाशको ओर ले जानेवाले मार्ग )को जानता है। इतनेसे आहुसो ! आर्यभावक सम्प्रादिष्टि होता है ० । क्या है आहुसो ! आहार, क्या है आहार-समुदय, ० आहार-निरोध, ० आहार निरोध गामिनी प्रतिपद् ?—आहुसो ! सखोंकी स्थिति ( और ) होने वालोंकी सहायताके लिये भूतों (= प्रणियों )के यह चार आहार हैं। कौनसे चार ?—( १ ) सूक्ष्म वा सूक्ष्म कर्तृलंकार (= प्राप्त-करके खाया जानेवाला ) आहार, ( २ ) स्पर्श दूसरा ( ३ ) मनकी संवेतना (= ब्यास ) तीसरा, ( ४ ) विज्ञान चौथा। तृष्णाका समुदय (= उत्पत्ति ) ( ही ) आहारका समुदय है। तृष्णाका निरोध आहारका निरोध है। यह आर्य-अष्टांगिक मार्ग आहार-निरोध गामिनी प्रतिपद् है; जैसे कि—( १ ) सम्प्रादिष्टि (= ठीक धारणा ), ( २ ) सम्पक्-संकल्प, ( ३ ) सम्पक्-वचन, ( ४ ) सम्पक्-कर्माल ( = कर्म ) ( ५ ) सम्पक्-आजीव, ( ६ ) सम्पक्-उपाय ( = उद्योग ), ( ७ ) सम्पक्-स्मृति, ( ८ ) सम्पक्-समाधि । जब आहुसो ! आर्यभावक इस प्रकार आहारको जानता है ०, तो वह सर्वथा रागानुशयका परित्याग कर ०<sup>१</sup> दुःखोंका अन्त करनेवाला होता है। इतने से आहुसो !

“ठीक आहुस !” यह ( कह ) उन भिक्षुओंमें ०<sup>१</sup> आगेका प्रश्न पूछा—०<sup>१</sup> ।”

“है, आहुसो ! जब आहुसो ! आर्यभावक दुःख को जानता है, दुःख-समुदय (= दुःखकी उत्पत्ति, या कारण )को जानता है, दुःख-निरोधको जानता है, ( और ) दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपद्को जानता है; तब आहुसो ! आर्यभावक सम्प्रादिष्टि होता है ०<sup>१</sup> । क्या है आहुसो ! दुःख, क्या है दुःख-समुदय, क्या है दुःख-निरोध, क्या है दुःख निरोध-गामिनी प्रतिपद् ?—जाति (= जन्म ) भी दुःख है, जरा भी दुःख, व्याधि भी दुःख, मरण भी दुःख, प्रोक्त परिदेव (= रोना-काँदना ) दुःख-दौर्मनस्य (= मनःसंताप ) उपायास (= परेशानी ) भी दुःख है, क्लृप्ति ( चीज )की इच्छा करके उसे न पाना ( यह ) भी दुःख है; संश्लेषमें पाँचों उपादान (= विषयके सौर पर ग्रहण करने योग्य ) स्कन्ध ( ही ) दुःख हैं। इसे आहुसो ! दुःख कहा जाता है। क्या है आहुसो ! दुःख-समुदय ? यह जो नन्दी उन उन ( भोगों )का अभिनन्दन करनेवाली, रागसे संयुक्त, फिर फिर जन्मने की तृष्णा है; जैसे कि—( १ ) काम (= इन्द्रिय-संयोग )की तृष्णा, ( २ ) भव (= जन्मने )की तृष्णा, ( ३ ) विभव (= धन )की तृष्णा।—यह आहुसो ! दुःख-समुदय कहा



जाता है। क्या है आबुसो ! दुःख-निरोध ?—जो उस तृष्णाका संपूणतया विराग, निरोध, स्वाग-अतिनिस्सर्ग, मुक्ति, अमालय (= उसमें क्षीन न होना ) ।—यह कहा जाता है आबुसो ! दुःखनिरोध । क्या है आबुसो ! दुःखनिरोध-गामिनी प्रतिपद् ?—यह आर्य-अष्टांगिक-मार्ग ० है । (४) जैसे कि (१) सम्यग् दृष्टि ०<sup>१</sup> (८) सम्यक्समाधि । जब आबुसो ! आर्य-आवक इस प्रकार दुःखको जानता है ० । ० । इतनेसे आबुसो ! ० ।

“ठीक, आबुस ! ०<sup>१</sup> ।”

“है, आबुसो ! जब आबुसो ! आर्य-आवक जरा-भरणको जानता है, ० समुदय ०, ० निरोध ०, ० निरोध गामिनी प्रतिपद्को जानता है, तब आबुसो ! आर्य-आवक ०<sup>१</sup> । क्या है आबुसो ! जरा-भरण, ० समुदय, ० निरोध, ० निरोध-गामिनी प्रतिपद् ?—जो उन उन प्राणियोंकी उन उन प्राणि-शरीरोंमें जरा (= बुढ़ापा) जोर्णता, खाण्डल (= दाँत टूटना), पालित्य (= घास पचना), कलित्वकृता (= झुर्री पड़ना), आबु-क्षय, इन्द्रिय-परिपाक (= ० विकार) ।—यह कही जाती है आबुसो ! जरा क्या है आबुसो ! भरण ?—जो उन उन प्राणियोंकी उन उन प्राणि-शरीरोंसे प्युति = च्यवन होना, भेद (= विधोष), अन्तर्धान, मृत्यु, भरण-कालक्रिया, स्कन्धोंका विलग होना, फलेवरका निक्षेप (= पतन) ।—यह कहा जाता है आबुसो ! भरण । इस प्रकार यह जरा और यह भरण ( दोनों मिलकर ) जरा-भरण होते हैं । जाति-समुदय (= जन्मका होना) जरा-भरण-समुदय है, जाति-निरोध ( होनेसे ), जरा-भरण-निरोध होता है । यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग जरा भरण निरोध गामिनी प्रतिपद् है; जैसे कि ०<sup>१</sup> । जब आबुसो ! ०<sup>१</sup> ।”

“ठीक आबुस ! ०<sup>१</sup> ।”

“है, आबुसो ! जब आबुसो ! आर्य-आवक तृष्णाको जानता है, ० समुदय ०, ० निरोध ०, ० निरोध-गामिनी प्रतिपद्को जानता है; तब आबुसो ! आर्य-आवक ०<sup>१</sup> । क्या है, आबुसो ! तृष्णा, ० समुदय, ० निरोध, ० निरोध-गामिनी प्रतिपद् ?—आबुसो ! तृष्णाके यह छः आकार (= काय, = समुदाय ) हैं—रूप-तृष्णा, शब्द-तृष्णा, गन्ध-तृष्णा, रस-तृष्णा, स्पर्श-तृष्णा (= त्वक्का विषय )-तृष्णा, धर्म (= मनके विषयकी )-तृष्णा । वेदना (= अनुभव, महसूस-करना )-समुदय ( ही ) तृष्णा-समुदय है, वेदना-निरोध ( ही ) तृष्णा-निरोध है । यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग तृष्णा-निरोध गामिनी प्रतिपद् है; जैसे कि ०<sup>१</sup> । जब आबुसो ! ०<sup>१</sup> ।”

“ठीक, आबुस ! ०<sup>१</sup> ।”

“है, आबुसो ! ० वेदनाको जानता है, ० समुदय ०, ० निरोध ०, ० निरोध-गामिनी प्रतिपद्को जानता है । तब आबुसो ! आर्य-आवक ०<sup>१</sup> । क्या है, आबुसो ! वेदना, ० समुदय, ० निरोध, ० निरोध गामिनी प्रतिपद् ?—आबुसो ! वेदनाके यह छः आकार हैं—(१) चक्षुः-संस्पर्शजा (= चक्षुके संयोगसे उत्पन्न ) वेदना (= एहसास, अनुभव ), (२) श्रोत्र-संस्पर्शजा वेदना, (३) घ्राण-संस्पर्शजा वेदना, (४) जिह्वा-संस्पर्शजा वेदना, (५) काय-संस्पर्शजा वेदना, (६) मनः-संस्पर्शजा वेदना । स्पर्श (= इन्द्रिय और विषयका संयोग )-समुदय ( से ही ) वेदना-समुदय ( होता है ), स्पर्श-निरोध से वेदना-निरोध होता है । यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग-वेदना-निरोध गामिनी प्रतिपद् है, जैसे कि ०<sup>१</sup> । जब आबुसो ०<sup>१</sup> ।

“ठीक आबुस ! ०<sup>१</sup> ।”



“हे, आवुसो ! ० स्पर्श (= इन्द्रिय और विषयका संयोग ) को जानता है, ० समुदय, ०० । तब आवुसो ! आर्यभावक ० । क्या है आवुसो ! स्पर्श, ० समुदय, ०० ?—आवुसो ! स्पर्शके यह प्रकार ( या समुदाय ) हैं—( १ ) चक्षुः-संस्पर्श, ( २ ) श्रोत्र-संस्पर्श, ( ३ ) घ्राण-संस्पर्श, ( ४ ) जिह्वा-संस्पर्श, ( ५ ) काय-संस्पर्श, ( ६ ) मनः-संस्पर्श । यह आयतन (= चक्षुः, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय या त्वक् और मन यह छः इन्द्रियाँ )-समुदय ( ही ) स्पर्श-समुदय है । षडायतन-निरोध ( से ) स्पर्श-निरोध ( होता है ) । यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग स्पर्श-निरोध-गामिनी प्रतिपद है, जैसे कि ० । तब आवुसो ० ।

“ठीक आवुस ! ० ”

“हे, आवुसो ! ० षडायतनको जानता है, ० समुदय ० । ०० । तब आवुसो ! आर्यभावक ० । क्या है आवुसो ! षडायतन, ० निरोध, ०० ?—आवुसो ! यह छ आयतन (= इन्द्रिय ) हैं—( १ ) चक्षुः-आयतन, ( २ ) श्रोत्र-आयतन, ( ३ ) घ्राण-आयतन, ( ४ ) जिह्वा-आयतन, ( ५ ) काय-आयतन, ( ६ ) मन-आयतन । नाम-रूप (= विज्ञान और रूप Mind and matter )-समुदय, षडायतन-समुदय है, नाम-रूप-निरोध ( ही ) षडायतन-निरोध है । यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग ० । ० ।

“ठीक आवुस ! ० ”

“हे, आवुसो ! ० नाम-रूपको जानता है, ० समुदय ०, ०० । तब आवुसो ! आर्यभावक ० । क्या है आवुसो ! नाम-रूप, ० निरोध, ०० ?—( १ ) वेदना (= विषय और इन्द्रियके संयोगसे उत्पन्न मन पर प्रथम प्रभाव ), ( २ ) संज्ञा (= वेदनाके अनंतरकी मनकी अवस्था ), ( ३ ) चेतना (= संज्ञाके अनंतरकी मनकी अवस्था ) ( ४ ) स्पर्श, मनस्विकार (= मनपर संस्कार ),—यह आवुसो ! नाम है । चार महाभूत और चार महाभूतों को लेकर ( घने ) रूप, यह आवुसो रूप कहा जाता है । इस प्रकार यह नाम, ( और ) यह रूप, ( दोनों मिलकर ) आवुसो ! नाम-रूप कहा जाता है । विज्ञान-समुदय नाम-रूप-समुदय है । विज्ञान-निरोध, नाम-रूप-निरोध है । यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग ० । ० ।

“ठीक आवुस ! ० ”

“हे, आवुसो ! ० विज्ञानको जानता है, ० समुदय, ०० । तब आवुसो ! आर्यभावक ० । क्या है आवुसो ! विज्ञान, ० समुदय, ०० ?—आवुसो ! यह छ विज्ञानके समुदाय (= काय ) हैं—( १ ) चक्षुः-विज्ञान, ( २ ) श्रोत्र-विज्ञान, ( ३ ) घ्राण-विज्ञान, ( ४ ) जिह्वा-विज्ञान, ( ५ ) काय-विज्ञान, ( ६ ) मनो-विज्ञान । संस्कार-समुदय विज्ञान-समुदय है, संस्कार-निरोध विज्ञान-निरोध है । यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग ० । ० ।

“ठीक आवुस ! ० ”

“हे, आवुसो ! ० संस्कारोंको जानता है । ० समुदय, ०० । तब आवुसो ! आर्य-भावक ० । क्या है आवुसो ! संस्कार, (= क्रिया, गति ) ० समुदय, ०० ?—आवुसो ! यह तीन संस्कार हैं—( १ ) काय-संस्कार, ( २ ) वचन-संस्कार, ( ३ ) चित्त-संस्कार-निरोध है । यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग ० । ० ।

“ठीक आवुस ! ० ”

“हे, आवुसो ! ० अविद्याको जानता है, ० समुदय, ०० । तब आवुसो ! आर्यभावक ० ।

क्या है आबुसो अविद्या, ० समुदय, ०० ?—आबुसो ! जो यह दुःखके विषयमें अज्ञान, दुःख समुदयके विषयमें अज्ञान, दुःख-निरोधके विषयमें अज्ञान, दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद्यके विषयमें अज्ञान, इसे आबुसो ! अविद्या कहा जाता है । आसव-समुदय अविद्या-समुदय है । आसव-निरोध अविद्या-निरोध है । यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग ०<sup>१</sup> । ०<sup>१</sup> ।

“ठीक आबुस ! ०<sup>१</sup>”

“है, आबुसो ! ० आसव (= विसमल ) को जानता है, ० समुदय, ०० । तब आबुसो ! आर्य-आसव ०<sup>१</sup> । क्या है आबुसो ! आसव, ० समुदय, ०० ?—आबुसो ! यह तीन आसव हैं—( १ ) काम-आसव, ( २ ) भव- (= जन्मनेका ) आसव, ( ३ ) अविद्या-आसव । अविद्या-समुदय आसव-समुदय है, अविद्या-निरोध आसव-निरोध है । यही आर्य-अष्टांगिक-मार्ग ०<sup>१</sup> ।

इतनेसे आबुसो ! आर्य-आसव सत्य-दृष्टि होता है, उसकी दृष्टि सीधी ( होती है ), वह धर्ममें अत्यन्त अद्वाचार, ( और ) इस सद्धर्मको प्राप्त होता है ।”

आबुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने आबुष्मान् सारिपुत्रके भाषण-का अभिनन्दन किया ।

## १०—सति-पट्टान-सुत्तन्त (१।१।१०)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् कुरु<sup>१</sup> ( देश )में कुरुओंके निगम ( =कथा ) कम्मास-दम्भमें विहार करते थे ।

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भदन्त !” ( कह ) भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

“भिक्षुओ ! यह जो चार स्मृति-अस्त्रान ( = सति-पट्टान ) हैं, वह सर्वोंके—शोक कष्टकी विशुद्धि के लिए, दुःख = दीर्घमनस्यके अतिव्रजनके लिये, न्याय ( = सत्य )को प्राप्तिके लिये, निर्वाण-को प्राप्ति और साक्षात्करणके लिये, एकाग्र ( = जकेला ) मार्ग है । कौनसे चार ?—भिक्षुओ ! वहाँ ( इस धर्ममें ) भिक्षु कायामें<sup>२</sup> काय-अनुपश्यी हो, उद्योगशील अनुभव ( = संप्राप्त्य ) ज्ञान-युक्त, स्मृति-मान, लोक ( = संसार या शरीर )में अभिष्या ( = लोभ ) और दीर्घमनस्य ( = दुःख )-को हटाकर विहरता है । वेदनाओं ( = सुखादि )में<sup>३</sup> वेदानुपश्यी हो ० विहरता है । चित्तमें चित्तानुपश्यी ० । धर्ममें धर्मानुपश्यी ० ।

“भिक्षुओ ! कैसे भिक्षु कायामें, कायानुपश्यी हो विहरता है ?—भिक्षुओ ! भिक्षु अरण्यमें, वृक्षके नीचे, या शून्यागारमें, जासन मारकर, शरीरको सीधाकर, स्मृतिको सामने रखकर बैठता है । वह स्मरण रखते साँस छोड़ता है, स्मरण रखते ही साँस लेता है । लम्बी साँस छोड़ते वक्त, ‘लम्बी साँस छोड़ता हूँ’—जानता है । लम्बी साँस लेते वक्त, ‘लम्बी साँस लेता हूँ’—जानता है । छोटी साँस छोड़ते, ‘छोटी साँस छोड़ता हूँ’—जानता है । छोटी साँस लेते ‘छोटी साँस लेता हूँ’—जानता है । सारी कायाको जानते ( = अनुभव करते ) हुये, साँस छोड़ना सीखता है । सारी कायाको जानते हुये साँस लेना सीखता है । कायाके संस्कार ( = गति, क्रिया )को शांत करते साँस छोड़ना सीखता है । कायाके संस्कारको शांत करते साँस लेना सीखता है । जैसे कि—भिक्षुओ ! एक चतुर खरादकार ( = भ्रमकार ) या खरादकारका अन्तेवासी लम्बे ( काष्ठ )को रंगते समय ‘लम्बा रंगता हूँ’—जानता है । छोटोको रंगते समय ‘छोटा रंगता हूँ’—जानता है । ऐसेही भिक्षुओ ! भिक्षु लम्बी साँस छोड़ते ०, लम्बी साँस लेते ०, छोटी साँस छोड़ते ०, छोटी साँस लेते ० जानता है । सारी

<sup>१</sup> कुरुके बारेमें देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ११८ ।

<sup>२</sup> शरीरको उसके असत् स्वरूप केअ-नस-मज-मूत्र

आदि रूपमें देखनेवाला ‘काये कायानुपश्यी’ कहा जाता है ।

<sup>३</sup> सुःख, दुःख, न सुःख न दुःख इन

तीन चित्तकी अवस्था रूपी वेदनाओंको वैसा ही वैसा देखनेवाला ‘वेदनामे वेदानुपश्यी ० ।’

<sup>४</sup> यही

आनापान ( = प्राणापान ) कहलाता है ।



कायाको जानते (= अनुभव करते) हुये साँस छोड़ना सीखता है, ० साँस लेना ० । काय-संस्कारको शांत करते साँस छोड़ना सीखता है, ० साँस लेना ० । इस प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है । कायाके बाहरी भागमें ० । कायाके भीतरी और बाहरी भागमें कायानुपश्यी विहरता है । कायामें समुदय (= उत्पत्ति) धर्मको देखता विहरता है । कायामें व्यय (= खर्च, विनाश) धर्मको देखता विहरता है । कायामें समुदय-व्यय (= उत्पत्ति-विनाश) धर्मको देखता विहरता है । 'काया है'—यह स्मृति, ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये उपस्थित रहती है । (तृष्णा आदिमें) अ-लक्ष हो विहरता है । लोकमें कुछ भी (मैं, और मेरा करके) नहीं ग्रहण करता । इस प्रकार भी भिक्षुओ ! भिक्षु कायामें काय बुद्धि रखते विहरता है ।

“<sup>११</sup> फिर भिक्षुओ ! भिक्षु जाते हुये 'जाता हूँ'—जानता है । बैठे हुये 'बैठा हूँ'—जानता है । सोये हुये 'सोया हूँ'—जानता है । जैसे जैसे उसको काया अवस्थित होती है, वैसेही उसे जानता है । इसी प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है; कायाके बाहरी भागमें कायानुपश्यी विहरता है । कायाके भीतरी और बाहरी भागमें कायानुपश्यी विहरता है । कायामें समुदय-(= उत्पत्ति)-धर्म देखता विहरता है, ० व्यय-(= विनाश) धर्म ०, ० समुदय-व्यय-धर्म ० । ० ।

“<sup>१२</sup> और भिक्षुओ ! भिक्षु जानते (= अनुभव करते) हुये गमन-आगमन करता है । जानते हुये आलोकन-विलोकन करता है । ० सिकोड़ना फैलाना ० । संघाटी, पात्र, चौवरका धारण करता है । जानते हुये आसन, पान, खादन, आस्वादन, करता है । ० पाखावा (= उच्चार), पेशाब (= परसाव), करता है । चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, धौलते, चुप रहते, जानकर करनेवाला होता है । इस प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है । ० ।

“<sup>१३</sup> और भिक्षुओ ! भिक्षु पैरके तलवेसे ऊपर, केश-मलकसे नीचे, इस कायाको नाना प्रकार-के मलोंसे पूर्ण देखता (= अनुभव करता) है—इस कायामें हैं—केश, रोम, नख, दाँत, त्वक् (= चमड़ा), मांस, स्नायु, अस्थि, अस्थि (के भीतरकी) मज्जा, वृक्क, हृदय (कलेजा), धकृत, क्लोमक, व्रीहा (= तिछी), फुफ्फुस, अँत, पतली अँत (= अंत-गुण), उदरस्थ (वस्तुयें), पाखावा, पित्त, कृक, पीष, लोह, पत्तीना, मेद (= वर), आँसू, घसा (= चर्बी), क्षार, नासा-मल, कलिका, और सूत्र । जैसे भिक्षुओ ! नाना अनाज पाली, व्रीहो (= घान), मूँग, उद्व, तिल, तण्डुलसे दोनों मुखमरी छेदरी (= मुडोली, पुडोली) हो, उसको जौलवाका पुरुष खोलकर देखे—यह चाली है, यह मोही है, यह मूँग है, यह उद्व है, यह तिल है, यह तंडुल है । इसी प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु पैरके तलवेके ऊपर केश-मलकसे नीचे इस कायाको नाना प्रकारके मलोंसे पूर्ण देखता है—इस कायामें हैं ० । इस प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है । ० ।

“<sup>१४</sup> और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु इस कायाको (इसकी) स्थितिके अनुसार (इसकी) रचनाके अनुसार देखता है—इस कायामें हैं—पृथिवी धातु (= पृथिवी महाभूत), आप (= जल)-धातु, तेज (= अग्नि) धातु, वायु-धातु । जैसे कि भिक्षुओ ! द्वा (= चतुर) गो-धातक या गो-धातकका अन्ते-वासी, गावको मारकर छोटी बोंटी काटकर चौरस्तेपर बैठा हो । ऐसे ही भिक्षुओ ! भिक्षु इस कायाको स्थितिके अनुसार, रचनाके अनुसार देखता है । ० । इस प्रकार कायाके भीतरी भागको ० ।

<sup>१</sup> यही ईशो-पय है । <sup>२</sup> यही संघजन्य है । <sup>३</sup> भिक्षुओंकी दोहरी चादर । <sup>४</sup> प्रतिकूल-मनसिकार ।

<sup>५</sup> गेदुनी आदि जोड़ोंमें स्थित तरक पदार्थ । <sup>६</sup> धातु-मनसिकार ।

“और भिक्षुओ ! भिक्षु एक दिनके भरे, दो दिनके भरे, तीन दिनके भरे, फूले, नीले पत्र गये, पीप-भरे, (मृत)-शरीरको श्मशानमें फेंकी देसे। (और उते) वह इसी (अपनी) कायापर घटावे—यह भी काया इसी धर्म (= स्वभाव)-वाली, ऐसी ही होनेवाली, इससे न बच सकनेवाली है। इस प्रकार कायाके भीतरी भाग ० । ० ।

“और भिक्षुओ ! भिक्षु कौओंसे खाये जाते, चीन्होंसे खाये जाते, गिहोंसे खाये जाते, कुत्तोंसे खाये जाते, नाभा प्रकारके जीवोंसे खाये जाते, श्मशानमें फेंके (मृत)-शरीरको देवे। वह इसी (अपनी) कायापर घटावे—यह भी काया ० । ० ।

“और भिक्षुओ ! भिक्षु मौस-लोह-नखोंसे बँधे हड्डो-कंकालवाले शरीरको श्मशानमें फेंका देसे ० । ० ।

“० मौस-रहित लोह-लगे, नखोंसे बँधे ० । ० । ० मौस-लोह-रहित नखोंसे बँधे ० । ० । ० बंधन-रहित हड्डियोंको दिशा-विदिशामें फेंकी देसे—कहीं हाथकी हड्डी है, ० पैरकी हड्डी ० ० जंघाकी हड्डी ०, ० उरकी हड्डी ०, कमरकी हड्डी ०, ० पीठके काँटे ०, ० खोपड़ी ०, और इसी (अपनी) कायापर घटावे ० । ० ।

“और भिक्षुओ ! भिक्षु शंखके समान सफेद वर्णके हड्डीवाले शरीरको श्मशानमें फेंका देसे ० । ० । ० वर्षों-पुरानी जमाकी हड्डियोंवाले ० । ० । ० सभी पूर्ण होगई हड्डियोंवाले ० । ० ।

“कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु वेदनाओंमें वेदनानुपपत्ती ( हो ) विहरता है ?—भिक्षुओ ! भिक्षु सुख-वेदनाको अनुभव करते ‘सुख-वेदना अनुभव कर रहा हूँ’—जानता है। दुःख-वेदनाको अनुभव करते ‘दुःख-वेदना अनुभव कर रहा हूँ’—जानता है। अदुःख-असुख वेदनाको अनुभव करते ‘अदुःख-असुख-वेदना अनुभव कर रहा हूँ’—जानता है। स-आमिष (= भोग-पदार्थ-सहित) सुख-वेदनाको अनुभव करते ० । निर्-आमिष सुख-वेदना ० । स-आमिष दुःख-वेदना ० । निर्-आमिष दुःख-वेदना ० । स-आमिष अदुःख-असुख-वेदना ० । निर्-आमिष अदुःख-असुख-वेदना ० । इस प्रकार कायाके भीतरी भाग ० । ० ।

“कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु चित्तमें चित्तानुपपत्ती हो विहरता है ?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु स-राग चित्तको ‘स-राग चित्त है’—जानता है। विराम (= राग-रहित ) चित्तको ‘विराम चित्त है’—जानता है। स-द्वेष चित्तको ‘स-द्वेष चित्त है’—जानता है। वीत-द्वेष (= द्वेष-रहित ) चित्तको ‘वीत-द्वेष चित्त है’—जानता है। स-मोह चित्तको ० । वीत-मोह चित्तको ० । संश्लिष्ट चित्तको ० । विशिष्ट चित्तको ० । महद्-गत (= महापरिमाण ) चित्तको ० । अ-महद्-गत चित्तको ० । स-उत्तर ० । अन्-उत्तर (= उत्तम ) ० । समाहित (= एकाम ) ० । अ-समाहित ० । विमुक्त ० । अ-विमुक्त ० । इस प्रकार कायाके भीतरी भाग ० । ० ।

“कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु धर्मोंमें धर्मानुपपत्ती हो विहरता है ?—भिक्षुओ ! भिक्षु पाँच नीवरण धर्मोंमें धर्मानुपपत्ती ( हो ) विहरता है। कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु पाँच धर्मानुपपत्ती हो विहरता है ?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु विद्यमान भीतरी काम-च्छन्द (= कामुकता ) को ‘मेरेमें भीतरी काम-च्छन्द विद्यमान है’—जानता है। अ-विद्यमान भीतरी काम-च्छन्दको ‘मेरेमें भीतरी काम-च्छन्द नहीं विद्यमान है’—जानता है। अन्-उत्पन्न काम-च्छन्दकी जैसे

\* श्मशान ।

\* बौद्ध (२) कायानुपपत्तिना समाप्त ।

\* (३) वेदनानुपपत्तिना ।

\* (४) चित्तानुपपत्तिना ।

\* (५) धर्मानुपपत्तिना ।

\* पाँच नीवरण—काम-च्छन्द, व्यापार,

स्वानुपपत्ति, औदम-बौद्ध, विचिकित्सा ।



उत्पत्ति होती है, उसे जानता है। जैसे उत्पन्न हुये कामच्छन्दका प्रहाण (= विनाश) होता है, उसे जानता है। जैसे विनष्ट कामच्छन्दको आगे फिर उत्पत्ति नहीं होती, उसे जानता है। विद्यमान भीतरी व्यापाद (= प्रोह) को—'मेरेमें भीतरी व्यापाद विद्यमान है'—जानता है। अविद्यमान भीतरी व्यापाद को—'मेरेमें भीतरी व्यापाद नहीं विद्यमान है'—जानता है। जैसे अन्-उत्पन्न व्यापाद उत्पन्न होता है, उसे जानता है। जैसे उत्पन्न व्यापाद नष्ट होता है, उसे जानता है। जैसे विनष्ट व्यापाद आगे फिर नहीं उत्पन्न होता, उसे जानता है। विद्यमान भीतरी स्थान-भृद ( = धीन-मिद = शरीर-मनको अलक्षता ) ० । ० ।

० भीतरी औदत्य-कौटल्य ( = उदय-कुक्कुच = उदय-शेध, ) ० । ० ।

० भीतरी विचिकित्सा ( = संशय ) ० । ० ।

“इस प्रकार भीतर धर्मोंमें धर्मानुपश्यो हो विहरता है। बाहर धर्मोंमें ( भो ) धर्मानुपश्यो हो विहरता है। भीतर-बाहर ० । धर्मोंमें समुदय ( = उत्पत्ति ) धर्मका अनुपश्यो ( = अनुभव करेवाला ) हो विहरता है । ० ध्यय ( = विनाश )-धर्म ० । ० उत्पत्ति-विनाश-धर्म ० । स्मृतिके प्रमाणके लिये ही, 'धर्म है'—यह स्मृति उसकी परावर विद्यमान रहती है। यह ( तृप्ता आदिमें ) अलक्ष हो विहरता है। लोकमें कुछ भो ( मैं और मेरा ) करके ग्रहण नहीं करता। इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यो हो विहरता है।

“और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु पाँच उपादान रक्ष्य धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यो हो विहरता है। कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु पाँच उपादान रक्ष्य धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यो हो विहरता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु ( अनुभव करता है )—'यह रूप है', 'यह रूपको उत्पत्ति ( = समुदय )', 'यह रूपका अस्त-गमन ( = विनाश ) है' । ० संज्ञा ० । ० संस्कार ० । ० विज्ञान ० । इस प्रकार अध्यात्म ( = शरीरके भीतरी ) धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यो हो विहरता है। बहिर्धा ( = शरीरके बाहरी ) धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यो ० । शरीरके भीतरी-बाहरी धर्मों ( = वस्तुओं )में समुदय ( = उत्पत्ति )—धर्मको अनुभव करता विहरता है। वस्तुओंमें विनाश ( = ध्यय )—धर्मको अनुभव करता विहरता है। वस्तुओंमें उत्पत्ति-विनाश-धर्मको अनुभव करता विहरता है। सिर्फ ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये ही 'धर्म है'—यह स्मृति उसकी परावर विद्यमान रहती है। यह अलक्ष हो विहरता है। लोकमें कुछ भी नहीं ग्रहण करता। इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु पाँच उपादान-रक्ष्यधर्मोंमें धर्म ( = स्वभाव ) अनुभव करता ( = धर्म-अनुपश्यो ) विहरता है।

“और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु छः आध्यात्मिक ( = शरीरके भीतरी ), बाह्य ( = शरीरके बाहरी ) आप्तन धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है। कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु छः भीतरी बाहरी आप्तन ( -रूपी ) धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है ?—भिक्षुओ ! भिक्षु चक्षुको अनुभव करता है, रूपोंको अनुभव करता है, और जो इन दोनों ( = चक्षु और रूप ) करके संयोजन उत्पन्न होता है, उसे भी अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्-उत्पन्न संयोजनकी

<sup>१</sup> रक्ष्य—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान ।

<sup>२</sup> आप्तन—चक्षु, श्रोत्र, ज्ञान ( = वासिक ), जिज्ञा ( = रसना ), काय ( = स्पर्श ), मन । इनमें पहिले पाँच बाह्य आप्तन हैं, मन आध्यात्मिक ( = शरीरके भीतरका ) आप्तन है ।

<sup>३</sup> संयोजन दस पद है—प्रतिष ( = प्रतिष्ठिता ), मान ( = अभिमान ), इष्टि ( धारणा, मत ), विचिकित्सा ( = संशय ), शील-जल-परामर्श ( = शील और जलका स्वाद ), मय-नाम ( आवागमन-धर्म ), ईर्ष्या, मात्सर्य और अविद्या । संयोजनका शब्दार्थ बन्धन है ।



व्यक्ति होती है, उसे भी जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न संयोजनका ग्रहण (= विनाश) होता है, उसे भी जानता है। जिस प्रकार प्रहीण (= विनष्ट) संयोजनकी भाँति फिर उत्पत्ति नहीं होती, उसे भी जानता है। श्रोत्रको अनुभव करता है; शब्दको अनुभव करता है ०। घ्राण (सूँसनेकी शक्ति, घ्राण-इन्द्रिय)को अनुभव करता है। गंधको अनुभव करता है ०। चिद्धा ० र ०। ०। काया (= त्वक्-इन्द्रिय, डंका गर्म आदि जाननेकी शक्ति) ०, स्पृष्ट्य ( = ठंढा गर्म आदि ०। ०। मनको अनुभव करता है। धर्म (= मनके विषय)को अनुभव करता है। दोनों (= मन और धर्म) करके जो 'संयोजन उत्पन्न होता है, उसको भी अनुभव करता है। ०। इस प्रकार जन्मात्म ( = शरीरके भीतर) धर्मों (= पदार्थों)में धर्म (= स्वभाव) अनुभव करता विहरता है, बहिर्धर्मों (= शरीरके बाहर) ०, जन्मात्म-बहिर्धर्मों ०। धर्मोंमें उत्पत्ति-धर्मको ०, ० विनाश-धर्मको ०, ० उत्पत्ति-विनाश-धर्मको ०। सिद्ध ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये ०। इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु शरीरके भीतर और बाहर वाले छः आद्यतन धर्मों (= पदार्थों) में धर्म (= स्वभाव) अनुभव करता विहरता है।

“और भिक्षुओ ! भिक्षु सत्त 'बोधि-अज्ञ धर्मों (= पदार्थों) में धर्म (= स्वभाव) अनुभव करता विहरता है। कैसे भिक्षुओ ! ० ! भिक्षुओ ! भिक्षु विद्यमान भीतरी (= जन्मात्म) स्मृति संबोधि-अज्ञको 'मेरे भीतर स्मृति संबोधि-अज्ञ है'—अनुभव करता है। अ-विद्यमान भीतरी स्मृति संबोधि-अज्ञको 'मेरे भीतर स्मृति संबोधि-अज्ञ नहीं है'—अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्-उत्पन्न स्मृति संबोधि-अज्ञकी उत्पत्ति होती है; उसे जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न स्मृति संबोधि-अज्ञकी भावना परिपूर्ण होती है; उसे भी जानता है। ० भीतरी धर्म-विषय (= धर्म-अन्वेषण) संबोधि-अज्ञ ०। वीर्य ०। ० प्रीति ०। ० प्रसन्न्य ०। ० समाधि ०। विद्यमान भीतरी उपेक्षा संबोधि-अज्ञको 'मेरे भीतर उपेक्षा संबोधि-अज्ञ है'—अनुभव करता है। अ-विद्यमान भीतरी उपेक्षा संबोधि-अज्ञको 'मेरे भीतर उपेक्षा संबोधि-अज्ञ नहीं है'—अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्-उत्पन्न उपेक्षा संबोधि-अज्ञकी उत्पत्ति होती है; उसे जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न उपेक्षा संबोधि-अज्ञकी भावना परिपूर्ण होती है; उसे जानता है। इस प्रकार शरीरके धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता; शरीरके बाहर ०, शरीरके भीतर-बाहर ०। ०। इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु शरीरके भीतर और बाहर वाले सात संबोधि-अज्ञ धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है।

“और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु चार 'आर्य-सत्त धर्मोंमें धर्म अनुभव करते विहरता है। कैसे ० ! भिक्षुओ ! 'यह दुःख है'—ठीक ठीक (= यन्माभूत = जैसा है वैसा) अनुभव करता है। 'यह दुःखका समुदय (= कारण) है'—ठीक ठीक अनुभव करता है। 'यह दुःखका निरोध

१ संयोजन दश यह है—अविष्य (= प्रतिहिता), मान (= अभिमान), इष्टि (= धारणा, मत), विचिकित्सा (= संशय), शील-व्रत-परामर्श (= शील और व्रतका स्वात्म), भव-राग (= आवागमन-मेम), ईर्ष्या, मात्सर्य और अ-विद्या। संयोजनका अर्थार्थ बनन है।

२ सात बोध्य-स्मृति, धर्म-विषय (= धर्म-अन्वेषण), वीर्य (= वीर्य), प्रीति (= हर्ष), प्रसन्न्य (= शान्ति), समाधि, उपेक्षा। संबोधि = बोधि (= परम ज्ञान) प्राप्त करनेमें यह परम साहायक है, इसलिये इसे बोधि-अज्ञ कहा जाता है।

३ आर्य-सत्त चार है—दुःख, समुदय, निरोध, निरोध-गामिनी-अतिपद।

( = विनाश ) है—ठीक ठीक अनुभव करता है । 'यह दुःखके निरोधकी ओर ले जानेवाला मार्ग ( = दुःख-निरोध गामिनो-प्रतिपद् ) है'—ठीक ठीक अनुभव करता है ।

“इस प्रकार भीतरी धर्मोंमें धर्मानुपश्यो हो विहरता है । ० । अ-लभ्य हो विहरता है । लोकमें कियो ( वस्तु ) को भी ( मैं और मेरा ) करके नहीं ग्रहण करता । इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु चार आर्य-सत्य धर्मोंमें धर्मानुपश्यो हो विहरता है ।

“जो कोई भिक्षुओ ! इन चार स्मृति-प्रस्थानोंकी इस प्रकार सात वर्ष भावना करे, उसको दो कलोंमें एक फल ( अवश्य ) होना चाहिये—इसी जन्ममें आर्ज्जा ( = अर्हत्व ) का साक्षात्कार, या 'उपाधि दोष होनेपर अनागामी-भाव । रहने दो भिक्षुओ ! सात वर्ष, जो कोई इन चार स्मृति-प्रस्थानोंको इस प्रकार छः वर्ष भावना करे ० । ० पाँच वर्ष । चार वर्ष ० । ० तीन वर्ष ० । ० दो वर्ष ० । ० एक वर्ष ० । ० सात मास ० । ० छः मास ० । ० पाँच मास ० । ० चार मास ० । ० तीन मास ० । ० दो मास ० । ० एक मास ० । ० अर्द्ध मास ० । ० सप्ताह ० ।

“भिक्षुओ ! वह जो चार स्मृति-प्रस्थान हैं; वह सर्वोंके शोक-कष्टकी विशुद्धिके लिये, दुःख दौर्भाग्यके अतिक्रमणके लिये, म्याय ( = सत्य ) की प्राप्ति के लिये, निर्वाण की प्राप्ति और साक्षात् करनेके लिये, एकाग्रता मार्ग है ।' वह जो ( मैंने ) कहा, इसी कारणसे कहा ।”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो, उन भिक्षुओंने भगवाणके भाषणको अभिनन्दित किया ।<sup>१</sup>

१—इति मूलपरिचायवग्ग ( १११ )

<sup>१</sup> ( दुःखका कारण तृष्णा आदि ) । <sup>२</sup> धीरेसे अंश की अधिकतासे यही सूत्र, दीघनिकायका महासत्तिपट्ठान-सुत्त ( २।२२ ) है ( देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ११८-२० ) ।



## ११-चूल-सीहनाद-मुत्तन्त (१।२।१)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“मदन्त !” ( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! वहाँ ही प्रथम अमण ( = संन्यासी महात्मा ) ( १ ), वहाँ द्वितीय अमण, यहाँ तृतीय अमण, वहाँ चतुर्थ अमण है, दूसरे मत ( = प्रवाद ) अमणोंसे शून्य है।—इस प्रकार भिक्षुओ ! अच्छी तरहसे सिंहनाद ( = सीहनाद ) करो।

“हो सकता है भिक्षुओ ! अन्य तैर्यिक ( = दूसरे मतवाले ) यह कहें—‘आयुष्मानोंको क्या आश्वास = क्या बल है, जिससे कि तुम आयुष्मान् यह कहते हो—यहाँ ही अमण है, ०’। ऐसा कहनेवाले अन्य मतानुयायियोंको भिक्षुओ ! तुम ऐसा कहना—‘आयुसो ! उन भगवान् जाननहार, देखनहार, अर्हत् सम्पक् संखुदने हमें चार धर्म ( = बात ) बतलाये हैं, जिनको हम अपने भीतर देखतेहुये ऐसा कहते हैं—‘यहाँ ही अमण है ०। कौनसे चार ?—आयुसो ! ( १ ) हमारी शास्ता ( = उपदेशक ) में अद्वा ( = अस्वाद ) है, ( २ ) धर्ममें अद्वा है, ( ३ ) शील ( = सदाचार ) में परिपूर्ण कारिता ( = पूरा करनेवाला होना ), ( ४ ) सहधर्मी गृहस्थ और प्रव्रजित हमारे प्रिय = मनाप है। आयुसो ! उन भगवान् ० सम्पक्-संखुदने हमें यह चार धर्म बतलाये हैं, जिनको हम अपने भीतर देखतेहुये ऐसा कहते हैं—यहाँ ही अमण ०।’

“हो सकता है, भिक्षुओ ! अन्य मतानुयायी यह कहें—‘आयुसो ! ( १ ) जो हमारा शास्ता ( = गुरु ) है, ( उस ) शास्तामें हमारी भी अद्वा है; जो हमारा धर्म है, ( उस ) धर्ममें हमारी भी अद्वा है; ( २ ) जो हमारे शील ( = सदाचार ) है, ( उन ) शीलमें हमारी भी परिपूर्णकारिता है। हमारे भी सहधर्मी गृहस्थ और प्रव्रजित प्रिय = मनाप हैं। आयुसो ! तुम्हारे और हमारेमें यहाँ क्या विशेष = नाना-करण = अधिप्याय है ? ऐसा कहनेवाले अन्यमतानुयायियोंको भिक्षुओ ! तुम ऐसा कहना—‘आयुसो ! क्या ( आप लोगोंकी ) एकनिष्ठा है, या पृथग् ( = अलग ) निष्ठा ?’ ठीकसे उत्तर देनेपर भिक्षुओ ! अन्यमतानुयायी यह उत्तर देंगे—‘एक निष्ठा है आयुसो ! पृथग् निष्ठा नहीं है।’ ‘आयुसो ! वह निष्ठा क्या सरागके सम्बन्धमें है, या वीतरागके सम्बन्धमें ?’ ठीकसे उत्तर देनेपर अन्यमतानुयायी यह कहेंगे—‘वीतरागके सम्बन्धमें है वह निष्ठा, आयुसो ! सरागके सम्बन्धमें नहीं।’ ‘आयुसो ! वह निष्ठा क्या सहेषके सम्बन्धमें है या वीतहेषके सम्बन्धमें ?’ ‘० वीतहेषके सम्बन्धमें ०।’ ‘० ससोहके सम्बन्ध में, या वीतसोहके ० ?’ ‘० वीतसोहके सम्बन्धमें ०।’ ‘० स-तृष्णके सम्बन्धमें, या वीत-तृष्णके ० ?’ ‘० वीततृष्णके सम्बन्धमें ०।’ ‘० स-उपादान ( = बटोरनेवाले ) के सम्बन्धमें, या अनुपादानके



सम्बन्धमें ० ।' ० विदुसु (= ज्ञानी ) ० वा अ-विदुसुके ० ?' ० 'विदुसुके सम्बन्धमें ० ।'  
 '० अनुसुद्ध = प्रतिविस्मृके सम्बन्धमें वा अनु-अनुसुद्ध = अप्रतिविस्मृके ० ?' ० '० अनुसुद्ध =  
 अप्रतिविस्मृके सम्बन्धमें ० ।' ० प्रपंचाराम = प्रपंचरतिके सम्बन्धमें वा निस्पपंचारामके ० ?  
 ० '० निस्पपंचारामके सम्बन्धमें वह निष्ठा है आनुसो ! प्रपंचाराम = प्रपंचरतिके सम्बन्धमें नहीं ।'

“भिक्खुओ ! दो प्रकारकी दृष्टियाँ (= धारणायें ) हैं—भव (= संसार )-दृष्टि, विभव (= अ-संसार )-दृष्टि । भिक्खुओ ! जो कोई भ्रमण ब्राह्मण भवदृष्टिमें लीन, भवदृष्टिको प्राप्त, भवदृष्टिमें तत्पर है, वह विभवदृष्टिसे विरुद्ध है, और, भिक्खुओ ! जो भ्रमण ब्राह्मण विभवदृष्टिमें लीन, विभवदृष्टिको प्राप्त, विभवदृष्टिमें तत्पर है, वह भवदृष्टिसे विरुद्ध है । भिक्खुओ ! जो भ्रमण ब्राह्मण इन दोनों दृष्टियोंके समुदय (= उत्पत्ति ) अस्तगमन, आत्मावाद, आदिनव (= परिणाम ) निस्सरण (= निकाल ) को व्यवार्थतया नहीं जानते, वह सराग ( ई ), सद्देय, समोह, सत्तृष्णा, स-उपादान, अ-विदुसु (= अज्ञानी ), अनुसुद्ध = प्रतिविस्मृ, प्रपंचाराम प्रपंचरत, हैं; वह जाति, जराभरण, शोक-परिदेय (= श्रद्धा )-गुण-उपायालोसे नहीं छूटे हैं—यह मैं कहता हूँ । ( और ) भिक्खुओ ! जो भ्रमण ब्राह्मण इन दोनों दृष्टियोंके समुदय ० को व्यवार्थतया जानते हैं, वह वीतराग ( ई ), वीतद्देय ० निस्पपंचरत हैं, वह जाति, जराभरण, ० से छूटे हैं—यह मैं कहता हूँ ।

“भिक्खुओ ! यह चार उपादान (= आग्रह, ग्रहण ) हैं । कौनसे चार ?—( १ ) काम (= इन्द्रियभोग )-उपादान । ( २ ) दृष्टि (= धारणा )-उपादान, ( ३ ) शील-व्रत-उपादान; ( ४ )-आत्मवाद-उपादान ।

भिक्खुओ ! कोई कोई भ्रमण ब्राह्मण ( अपनेको ) सर्व-उपादान-परिज्ञावादी (= सारे उपादानोंके त्यागका भय रखनेवाले ) कहतेहुये भी, वह ठीक तौरसे सारे उपादानोंके परिज्ञा (= परित्याग ) को प्रज्ञापित नहीं करते । काम-उपादान की परिज्ञाको कहते हैं, ( किन्तु ) दृष्टि ०, शील-व्रत ०, आत्मवाद-उपादानकी परिज्ञाको नहीं प्रज्ञापित करते । सो किस कारण ?—यह आप भ्रमण ब्राह्मण ( उन ) तीन बातों (= स्थानों ) को ठीकसे नहीं जानते, इसीलिये वह भ्रमण ब्राह्मण ( अपनेको ) सर्व-उपादान-परिज्ञावादी कहते भी ०, आत्मवाद-उपादानकी परिज्ञाको नहीं प्रज्ञापन करते ।

“भिक्खुओ ! कोई कोई भ्रमण ब्राह्मण ( अपनेको ) सर्व-उपादान-परिज्ञा-वादी कहते भी ० । काम ०, ( और ) दृष्टि-उपादानकी परिज्ञाको प्रज्ञापते हैं, ( किन्तु ) शीलव्रत ०, ( और ) आत्मवाद-उपादानकी परिज्ञाको नहीं प्रज्ञापते । सो किस कारण ?—० उन दो बातोंको ठीकसे नहीं जानते ० ।

“भिक्खुओ ! कोई कोई ० कहते भी ० । काम ०, दृष्टि ०, ( और ) शीलव्रत-उपादानकी परिज्ञा (= परित्याग ) को प्रज्ञापते (= वतलाते ) हैं, ( किन्तु ) आत्मवाद-उपादानकी परिज्ञा नहीं प्रज्ञापते । सो किस कारण ?—० इस एक बातको ठीकसे नहीं जानते ० ।

“भिक्खुओ ! इस प्रकारके धर्मविनय (= भय ) में जो ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें अज्ञा है, वह सम्यग्गत (= ठीक स्थानमें ) नहीं कही जाती; जो धर्ममें अज्ञा ०; जो शीलमें परिपूर्ण-कारिता ०; जो सहचर्मियोंमें प्रिय-अनापत्ता है, वह सम्यग्गत नहीं कही जाती । सो किस कारण ? क्योंकि वह ऐसे धर्म-विनय (= भय ) के विषयमें है, ( जो कि ) दुराख्यात (= ठीकसे नहीं व्याख्यान किया गया ) दुरप्रवेदित (= ठीकसे न जाना गया ), अ-नैर्वाणिक (= न पार करानेवाला ), अनु-उपशम-संवर्तनिक (= शक्तिको न प्राप्त करानेवाला ), अ-सम्यक्-संशुद्ध-प्रवेदित (= व्यवार्थज्ञानी द्वारा नहीं जाना गया ) है ।

“भिक्खुओ ! तत्रागत अर्हत् सम्यक्-संशुद्ध ( अपनेको ) सर्व-उपादान-परिज्ञावादी कहतेहुये,

ठीक तौरसे सभी उपादानोंकी परिक्षाको प्रज्ञापते हैं—काम-उपादान ०, इष्टि ०, शीलवत् ०, ( और ) आत्मवाद ( = आत्मा कोई नित्यवस्तु है, यह सिद्धान्त )-उपादानको परिक्षाको प्रज्ञापते हैं । भिक्षुओ ! ऐसे धर्ममें जो शास्ताके सम्बन्धमें खड़ा है, वह सम्यग्मत ( = ठीक स्थानमें ) कही जाती है; ० ० । सो किस हेतु ?—स्वोंकि यह ऐसे धर्मके विषयमें है, ( जो कि ) सु-आत्मवाद, सुप्रवेदित, नैर्घाणिक, उपशम-संवर्तनिक ( और ) सम्यक्-संतुष्ट-प्रवेदित है ।

“भिक्षुओ ! यह चार उपादान किस निदान ( = कारण )वाले = किस समुदयवाले, किस जातिवाले = किस प्रभव ( = उत्पत्ति )वाले हैं ?—यह चारों उपादान तृष्णा-निदानवाले, तृष्णा-समुदयवाले, तृष्णा-जातिवाले, ( और ) तृष्णा-प्रभववाले हैं ।

“भिक्षुओ ! तृष्णा किस निदानवाली है, ० ?—वेदना-निदानवाली ० ।

“ ० वेदना किस निदानवाली, ० ?—स्पर्श-निदानवाली ० ।

“ ० स्पर्श किस निदानवाला, ० ?—षडायतन<sup>१</sup>-निदानवाला ० ।

“ ० षडायतन किस निदानवाला, ० ?—नाम-रूप-निदानवाला ० ।

“ ० नामरूप किस निदानवाला, ० ?—विज्ञान-निदानवाला ० ।

“ ० विज्ञान किस निदानवाला, ० ?—संस्कार-निदानवाला ० ।

“ ० संस्कार किस निदानवाले, ० ?—अविद्या-निदानवाले ० ।

“अब भिक्षुओ ! भिक्षुकी अविद्या नष्ट हो जाती है, और विद्या उत्पन्न हो जाती है; अविद्या के विनाशसे ( तथा ) विद्याकी उत्पत्तिसे न काम-उपादान पकड़ा ( = उपात्त ) जाता है, न इष्टि-उपादान, ० न आत्मवाद-उपादान पकड़ा जाता है; उपादान ( = पकड़ना ) न करनेसे भयभीत नहीं होता, भयभीत न होनेपर इसी शरीरसे निर्वाणको प्राप्त हो जाता है । ‘उन्म छीण हो गया, मल्लवर्चवात पूरा हो गया, करना या सो कर लिया, और अब यहाँ कुछ ( करने को ) नहीं है’—यह जान लेता है ।”

भगवान्ने यह कहा । सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया ।



## १२—महासीहनाद-सुत्तन्त ( १।२।२ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् वैशालीमें अचरपुर-वन-संडमें विहार करते थे ।

उस वक्त सुनस्वत्त लिच्छविपुत्रको इस धर्मको डोढ़कर चले गये थोड़ाही समय हुआ था । वह वैशालीमें परिषद्में इस प्रकार कहता था—“अमण गौतमके पास आर्य-ज्ञान-दर्शनकी पराकाष्ठा, उत्तरमनुष्यधर्म (= दिव्य-शक्ति ) नहीं है । विमर्य (= चिन्तन ) से सोचे, अपने प्रति-भासे जाने, तर्कसे प्राप्त धर्मको ( ही ) अमण गौतम उपदेशता है । जिस ( मनुष्य ) के लिये धर्म उपदेशता है, वह अपने दुःख-अमरको प्राप्त होता है ।”

तब आयुष्मान् सारिपुत्र पूर्वाह्न समय पहिन कर पात्र-चौघर (= शिक्षापात्र, वस्त्र ) ले वैशालीमें भिक्षाके लिये प्रवृत्त हुये । आयुष्मान् सारिपुत्रने सुनस्वत्त (= सुनक्षत्र ) लिच्छविपुत्र को वैशालीमें परिषद्के बीचमें यह वचन बोलते सुना—“अमण गौतमके पास ० (= दिव्य शक्ति ) नहीं ० ।

तब आयुष्मान् सारिपुत्र वैशालीमें पिढचार करके, भोजनके पदवान् भिक्षाछसे निवृत्त हो, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिनन्दनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठकर आ.सारिपुत्रने भगवान्से यह कहा—

“भन्ते ! हालहीमें इस धर्मको डोढ़कर भया हुआ, सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र, वैशालीमें परिषद्के बीचमें यह वचन बोल रहा है—“अमण गौतमके पास ० ( दिव्य शक्ति ) नहीं है ० ।”

१—“सारिपुत्र ! सुनस्वत्त मोघ-पुरुष (= फुल्लका आत्मा ) कीधी है, कीधसे ही उसने यह वचन कहा होगा । सारिपुत्र ! निन्दा करनेके ब्वालसे ( बोलते हुये ) भी सुनस्वत्त मोघपुरुषने तत्थागतकी प्रशंसा ही करी । सारिपुत्र ! यह तत्थागतकी प्रशंसा ही है, जो कोई ऐसा कहे—जिसके लिये धर्म उपदेशता है, वह अपने दुःख क्षयको प्राप्त होता है ।” सारिपुत्र ! सुनस्वत्त मोघपुरुषका यह भी सुझमें धर्म-सम्बन्ध नहीं—“वह भगवान् अर्हत् ०” बुद्ध भगवान् हैं ।” सारिपुत्र ! सुनस्वत्त मोघपुरुषका यह भी ० नहीं—“इस प्रकार वह भगवान् अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंका अनुगत करते हैं—एक होकर अनेक हो जाते हैं ०” । कायासे ब्रह्मलोक पर्यन्तको अपने वशमें कर लेते हैं ।” सारिपुत्र ० !—“वह भगवान् अमानुष विशुद्ध दिव्य ओशोंसे उभय प्रकारके शब्दोंको सुनते हैं ०” । सारिपुत्र ! ० —“वह भगवान् दूसरे सध्वों-दूसरे व्यक्तियोंके चित्तोंको ( अपने ) चित्तसे देखकर जान लेते हैं—०” अविमुक्त चित्त होनेपर ‘अविमुक्त चित्त है’—जान लेते हैं ।”

२—“सारिपुत्र ! तत्थागतके यह दश तत्थागत-बल हैं, जिसको प्राप्तकर तत्थागत उच्च

१ देखो पृष्ठ २४ ।

२ देखो पृष्ठ २३ ।



(= सार्वभ) स्थानको पाते हैं, परिषद्में सिहनाद करते हैं, ब्रह्मचरक (= धर्मचक्र) को चलाते हैं, कौनसे दस ?—( १ ) सारिपुत्र ! तत्थागत स्थानको स्थानके तौरपर, और ज-स्थानको अ-स्थानके तौरपर, सवार्थतया जानते हैं । जो कि सारिपुत्र ! तत्थागत स्थानको जानते हैं, यह भी तत्थागत के लिये तत्थागत-बल है, जिस बलको प्राप्त कर ० ब्रह्मचक्र चलाते हैं ।

“( २ ) और फिर सारिपुत्र ! तत्थागत अतीत, भविष्य और वर्तमानके किये कथोंके विपाकको स्थान, और हेतुपूर्वक ठीकसे जानते हैं ० । ब्रह्मचक्र चलाते हैं ।

“( ३ ) और फिर सारिपुत्र ! तत्थागत सर्वश्रम्यामिनी प्रतिपद् (= मार्ग, ज्ञान) को ठीकसे जानते हैं ० । ब्रह्म ० ।

“( ४ ) और फिर सारिपुत्र ! तत्थागत अनेक धातु (= ब्रह्मांड ) नागा धातुवाले लोकोको ठीकसे जानते हैं ० । ब्रह्म ० ।

“( ५ ) ० नाना अधिमुक्ति (= स्वभाव) वाले स्वर्गों (= प्राणियों) को ठीकसे जानते हैं ० । ० ।

“( ६ ) ० दूसरे स्वर्गों = दूसरे पुद्गलोंको इन्द्रियोंके परस्व-अपरस्व (= प्रचलता पुर्णलता) को ० । ० ।

“( ७ ) ० ध्यान, विमोक्ष,<sup>१</sup> समाधि, समापत्ति,<sup>२</sup> के संक्लेश (= मल), व्यवधान (= निर्मल-करण), उत्थान, को ० । ० ।

“( ८ ) ० अनेक प्रकारके पूर्व-निवासको याद करते हैं ०<sup>३</sup> इस प्रकार जाकार और उद्देश्य सहित अनेक प्रकारके पूर्व-निवासोंको स्मरण कर सकते हैं ० ।

“( ९ ) ० अमानुष विशुद्ध दिव्य-चक्षुसे ०<sup>४</sup> प्राणियोंको उत्पन्न होते करते ०<sup>५</sup> स्वर्गलोक को प्राप्त हुये हैं ० ।

“( १० ) और फिर सारिपुत्र ! आस्रवों (= चित्तमलों) के शयने आस्रव-रहित चित्तकी विमुक्ति (= मुक्ति) प्रज्ञाको विमुक्तिको इसी जन्ममें साक्षात्कार कर प्राप्त कर विहरते हैं । जो कि सारिपुत्र ! तत्थागत आस्रवोंके शयने ० प्राप्त कर विहरते हैं; यह भी तत्थागतके लिये तत्थागत-बल है, जिस बलको प्राप्त कर तत्थागत उत्पन्न स्थानको पाते हैं, (और) परिषद्में सिहनाद करते हैं, ब्रह्म-चक्र चलाते हैं ।

“सारिपुत्र ! तत्थागतके यह दस तत्थागत-बल हैं, जिन धर्मोंको प्राप्त कर ० ब्रह्म चक्र चलाते हैं ।

“सारिपुत्र ! ऐसे जाननेवाले, ऐसे देखनेवाले मुझे जो कहे—‘अमण गौतमके पास ०’ इत्य-मनुष्य-धर्म नहीं हैं ० । तर्कसे प्राप्त धर्मको अमण गौतम उपदेशता है । सारिपुत्र ! यदि वह उस वचनको न छोड़े, उस चित्त (= ब्याल) को न छोड़े, उस दृष्टिको वितर्जित न करे, तो नर्कमें डाला जैसा होगा । जैसे सारिपुत्र ! शील-सम्पन्न (= सदाचारयुक्त), समाधि-सम्पन्न, प्रज्ञा-सम्पन्न, भिक्षु इसी जन्ममें आज्ञा (= मोक्ष) को पाये, वैसेही इस सम्पद्को भी मैं सारिपुत्र ! कहता हूँ, कि यदि ( वह ) उस वचनको न छोड़े ० नर्कमें डाला जैसा होगा ।

३—“सारिपुत्र ! यह बार तत्थागतके वैशारद्य हैं, जिन वैशारद्यों (= विचारद्वयन) को

<sup>१</sup> विमोक्ष आठ है—, देखो शब्दानुक्रमणी ।

<sup>२</sup> एक प्रकारका ध्यान ।

<sup>३</sup> देखो पृ० १५ ।

<sup>४</sup> देखो पृष्ठ ४४ ।

प्राप्त कर तथागत ० परिषद् में सिंहावाद करते हैं ० । कौनसे चार ?—( १ ) 'अपनेको सम्यक् सम्बुद्ध कहनेवाले मैंने इन धर्मों ( बातों ) को नहीं धोष किया, सो उनके विषयमें कोई भ्रमण, मात्सर्य, द्वेष, मार, शस्त्र या लोकमें कोई ( दूसरा ) धर्मानुसार पूछ न बैठे'—मैं ऐसा कोई कारण सारिपुत्र ! नहीं देखाता । सारिपुत्र ! ऐसे किसी कारणको न देखते मैं क्षेमको प्राप्त हो, अभयको प्राप्त हो, वैशारद्यको प्राप्त हो, विहरता हूँ । ( २ ) 'अपनेको क्षीणाश्रय ( = अहंत्वं ) कहनेवाले मेरे यह आश्रय ( = चित्त-धोष ) क्षीण नहीं हुए, सो उनके विषयमें कोई भ्रमण ० धर्मानुसार पूछ न बैठे'—ऐसा कोई कारण ० विहरता हूँ । ( ३ ) 'जो अन्तराय-धर्म ( = विघ्नकारी कर्म ) कहे गये हैं, उन्हें सेवन करनेसे वह अन्तराय ( = विघ्न ) नहीं कर सकते' ० यहाँ उनके विषयमें कोई भ्रमण ० धर्मानुसार पूछ न बैठे'—ऐसा कोई कारण ० विहरता हूँ । ( ४ ) 'जिस मतलबके लिये धर्म उपदेश किया, वह ऐसा करनेवालेको भली प्रकार दुःख-शयकी ओर नहीं ले जाता—इसके विषयमें कोई भ्रमण ० धर्मानुसार पूछ न बैठे'—ऐसा कोई कारण सारिपुत्र ! नहीं देखता । ० विहरता हूँ ।

सारिपुत्र ! यह चार तथागतके वैशारद्य हैं ० जिन वैशारदोंको प्राप्त कर ० तथागत परिषद् में सिंहावाद करते हैं, ब्रह्मचक्र चलाते हैं ।

“सारिपुत्र ! ऐसा जाननेवाले, ऐसा देखनेवाले मुझे जो कहे—‘भ्रमण गौतम ०’ जैसा होगा । जैसे सारिपुत्र ! बिल सम्पन्न ०” ।

३—“सारिपुत्र ! यह आठ परिषद् ( = सभा ) हैं । कौनसी आठ ?—( १ ) श्रवण-परिषद्, ( २ ) मात्सर्य-परिषद्, ( ३ ) गृहपति ( = वैश्य )-परिषद्, ( ४ ) भ्रमण-परिषद्, ( ५ ) धातुर्महाराजिक-परिषद्, ( ६ ) आर्याशिक्षा-परिषद्, ( ७ ) मार-परिषद्, ( ८ ) मत्त-परिषद् । सारिपुत्र ! यह आठ परिषद् हैं । सारिपुत्र ! इन चार वैशारदोंको प्राप्तकर तथागत इन आठ परिषदोंमें जाते हैं, अवगाहन करते हैं । जानता हूँ, सारिपुत्र ! मैं अनेकशत श्रवण-परिषदोंमें जानेको और वहाँ पर भी, पहिले भाषण किये जैसा, पहिले भाये जैसा साक्षात्कार ( होता है ) । सारिपुत्र ! ऐसी कोई बात देखनेका कारण नहीं पाता, कि वहाँ मुझे भय या चकराहट हो । क्षेमको प्राप्त हो अभयको प्राप्त हो, वैशारद्यको प्राप्त हो, मैं विहार करता हूँ । जानता हूँ सारिपुत्र ! मैं अनेक शत मात्सर्य-परिषदोंमें जानेको ० । ० गृहपति-परिषदोंमें ० । ० भ्रमण ० । ० ० मत्तकी परिषदों में ० ।

“सारिपुत्र ! ऐसा जाननेवाले, ऐसा देखनेवाले मुझे ०” ।

४—“सारिपुत्र ! यह चार योनियाँ हैं । कौनसी चार ?—( १ ) अंजज योनि, ( २ ) जरायुज योनि, ( ३ ) स्वेदज योनि, ( ४ ) औपपातिक योनि । क्या है सारिपुत्र ! अंजज-योनि ?—सारिपुत्र ! जो प्राणी अण्डके कोशको फोड़ कर उत्पन्न होते हैं, वह सारिपुत्र ! अण्डज-योनि कही जाती है । क्या है सारिपुत्र ! जरायुज-योनि ?—सारिपुत्र ! जो प्राणी वटिकोष ( = वरायु ) को फोड़कर उत्पन्न होते हैं ० । क्या है सारिपुत्र ! स्वेदज-योनि ?—सारिपुत्र ! जो प्राणी सभी मच्छलोंमें उत्पन्न होते हैं, सवे मुँहमें उत्पन्न होते हैं, सवे कुल्माष ( = दाढ़ ) में ०, चन्दनिका ( गव्हे ) में, या ओलगिह ( = गव्ही ) में उत्पन्न होते हैं ० । क्या है सारिपुत्र ! औपपातिक-योनि ?—सारिपुत्र ! देवता, नरफले जीव, कोई कोई मनुष्य और कोई कोई विनिपातिक ( = नीचे गिरनेवाले ) ; वह सारिपुत्र ! औपपातिक-योनि कही जाती है ।



“सारिपुत्र ! ऐसा जाननेवाले ०” ।

६—“सारिपुत्र ! यह पाँच गतियाँ हैं । कौनसी पाँच—(१) नरक, (२) तिर्यग् (= पशु पक्षी आदि) योनि, (३) प्रेत्य-विषय (= प्रेत), (४) मनुष्य, (५) देवता । सारिपुत्र ! मैं नरकको जानता हूँ, नरकगामी मार्गको = निरयमाभिनी प्रतिपदको भी जैसे (मार्गपर) आरुढ़ हो काया छोड़नेपर, मरनेके अनन्तर (प्राणी) अपाय = दुर्गति = विनिपात नरकमें उत्पन्न होते हैं, उसको जानता हूँ । सारिपुत्र ! मैं तिर्यग्-योनिको जानता हूँ, तिर्यग् योनिगामी मार्ग ० उसको जानता हूँ । सारिपुत्र ! मैं प्रेत्य-विषयको जानता हूँ, प्रेत्य-विषयगामी मार्ग ० उसको जानता हूँ । सारिपुत्र ! मैं मनुष्यको जानता हूँ ० । ० । ० देवोंको जानता हूँ, देवलोकगामी मार्गको = देवलोकगामिनी प्रतिपदको भी, जैसे मार्गपर आरुढ़ हो काया छोड़नेपर मरनेके बाद सुगति स्वर्गलोकमें उत्पन्न होते हैं, उसको जानता हूँ । सारिपुत्र ! मैं निर्वाणको जानता हूँ, निर्वाणगामी मार्गको = निर्वाणगामिनी प्रतिपदको, जैसे मार्गपर आरुढ़ हो आस्योके क्षय, चित्तकी विमुक्तिको इसी शरीरमें जान कर साक्षात् कर = प्राप्त कर विहरता है; उसे भी जानता हूँ ।

(क) “सारिपुत्र ! यहाँ मैं किसी व्यक्ति (= पुद्गल) को इस प्रकार चित्तसे परख करके जानता हूँ; कि यह पुद्गल जैसे मार्गपर आरुढ़ है, जैसी चालढाल रखता है, उस मार्गपर आरुढ़ हो, काया छोड़नेपर मरनेके बाद जैसे अपाय = दुर्गति = विनिपात नरकमें उत्पन्न होगा । फिर दूसरे समय अ-मातुष दिव्य चिह्नद चक्षुसे, उसे काया छोड़, मरनेके बाद ० नरकमें उत्पन्न हो अत्यन्त दुःखमय, तीव्र कटु वेदना (= यातना) को अनुभव करते देखता हूँ । जैसे कि सारिपुत्र ! पुरुष-भर (= पोरिया) से अधिक ऊँचा लौ-विना, भूमविना, अंगारोंका ढेर हो । (कोई) घाम (= धूप) में तप्त घामसे पीड़ित, धका, प्यासा पुरुष एकाग्र मन मार्गसे उसी अंगारका ध्यान करके आये । उसको (कोई) आँखवाला पुरुष देखकर यह कहे—‘यह पुद्गल जैसे मार्गपर आरुढ़ है, जैसी चालढाल रखता है, ऐसे मार्गपर आरुढ़ हो, इन्हीं अंगारोंमें पहुँचेगा’ । फिर दूसरे समय उसे अंगारोंमें गिरकर अत्यन्त दुःख-मय ० वेदनाको अनुभव करते देखे; ऐसेही सारिपुत्र ! यहाँ किसी व्यक्ति को इस प्रकार चित्तसे परख करके जानता हूँ ० । ० अनुभव करते देखता हूँ ।

(ख) “सारिपुत्र ! यहाँ मैं किसी व्यक्ति को इस प्रकार चित्तसे परखकर जानता हूँ, यह पुद्गल जैसे मार्गपर आरुढ़ है ०” मरनेके बाद तिर्यग्-योनिमें उत्पन्न होगा । फिर दूसरे समय अ-मातुष ० देखता हूँ । जैसे कि सारिपुत्र ! पुरुष-भरसे अधिक ऊँचा ० । ० अनुभव करते देखता हूँ ।

(ग) “सारिपुत्र ! यहाँ मैं किसी व्यक्ति को इस प्रकार चित्तसे परखकर जानता हूँ, ० ०” मरनेके बाद प्रेत्यविषयमें उत्पन्न होगा । फिर दूसरे समय अ-मातुष ० दिव्य चक्षुसे, उसे काया छोड़ मरनेके बाद प्रेत्य-विषयमें उत्पन्न हो दुःखमय तीव्र, कटु वेदना अनुभव करते देखता हूँ । जैसे कि सारिपुत्र ! (किसी) विषम (= प्रतिवृत्त) भूमिमें उत्पन्न पत्र = पलाश से कुदा कवरी छाया (= कनी छाया नहीं) वाला वृक्ष हो । तब कोई घाम में तप्त ० पुरुष एकाग्र मन मार्ग (= एक मात्र मार्ग) से उसी वृक्षका ध्यान करके आये । उसको (कोई) आँखवाला पुरुष देखकर यह कहे—‘यह पुद्गल जैसे मार्गपर आरुढ़ है, जैसी चालढाल रखता है, ऐसे मार्गपर आरुढ़ हो (यह) इसी वृक्षके पास आयेगा’ । फिर दूसरे समय (उसे) उस वृक्षकी छाया में बैठे या लेटे दुःखमय वेदना अनुभव करते देखे । ऐसे ही सारिपुत्र ! यहाँ किसी व्यक्ति को इस प्रकारसे चित्तसे परखकर जानता हूँ, ० ० वेदना अनुभव करते देखता हूँ ।



(घ) "सारिपुत्र ! यहाँ किसी व्यक्तिको इस प्रकार चित्तसे परस्पर जानता हूँ, ०<sup>१</sup> मनुष्यों में उत्पन्न होगा । ० अमालुष ० दिव्य-चक्षुसे ०<sup>२</sup> उत्पन्न हो बहुत सुखमय वेदना अनुभव करते देखता हूँ । जैसे सारिपुत्र ! ( किसी ) सम ( = अनुकूल ) भूमिमें उत्पन्न बहुत पत्र = पलाशयुक्त घनी छायावाला वृक्ष हो । तब घाममें तप्त ० पुरुष एकाग्र मन मार्गसे उसी वृक्षका ख्याल करके आये ०<sup>३</sup> । फिर दूसरे समय उस वृक्षकी छायामें बैठे या लेटे बहुत सुखमय वेदना अनुभव करते देखे । ऐसे ही सारिपुत्र ! यहाँ किसी व्यक्तिको इस प्रकार चित्तसे परस्पर जानता हूँ, ० वेदना अनुभव करते देखता हूँ ।

(ङ) "सारिपुत्र ०, ०<sup>४</sup> सुगति स्वर्गलोकमें उत्पन्न होगा । ० अमालुष ० दिव्य-चक्षुसे ० उत्पन्न हो बहुत सुखमय वेदना अनुभव करते देखता हूँ । जैसे सारिपुत्र ! एक प्रासाद हो, जिसमें लिपायुता शीत ( = निवात ), कपाटयुक्त, जंगलेश्वर कृतागार ( = ऊपरी तलका भवन ) हो, उसमें चैलके घमड़ेके चिड़ोनेवाला, पटिक ( = गलीचे ) पटलिक चिड़ोनेवाला पलंग हो, जिसपर उत्तरेच्छद ( ऊपरसे ढाँकनेकी छद ) सहित कादलिमृग ( = समूरी चर्म ) का श्रेष्ठ प्रत्यस्तरण ( = लिहाफ ) हो, ( गिरहाने, पैरहाने ) दोनों ओर लाल तकिये हों । तब कोई घाममें तप्त ० पुरुष एकाग्र मन मार्गसे उसी प्रासादका ख्याल करके आये । उसको कोई आँसुवाला पुरुष देखकर यह कहे—“ ० वह इसी प्रासादके पास आयेगा । ” फिर दूसरे समय ( इसे ) उसी प्रासादमें, उसी कृतागारमें, उसी पलंगपर बैठकर या लेटकर एकान्त सुखमय वेदनाको अनुभव करते देखे । ऐसेही सारिपुत्र ! यहाँ किसी व्यक्तिको ०, ० वेदना अनुभव करते देखता हूँ ।

(च) "सारिपुत्र ! ०, ०<sup>५</sup> आत्माओंके क्षय = चित्तकी विमुक्ति प्रज्ञाकी विमुक्तिको इसी शरीर में जानकर साक्षात् कर = प्राप्त कर विहरेंगा । फिर दूसरे समय उसे आत्माओंके क्षय चित्तकी विमुक्ति प्रज्ञाकी विमुक्तिको इसी शरीरमें जानकर, साक्षात् कर, प्राप्त कर विहरते हुये देखता हूँ, एकान्त सुखमय वेदनाको अनुभव करते देखता हूँ । जैसे सारिपुत्र ! ( कोई ) स्वच्छ जलवाली, शीतल जलवाली, सुन्दर जलवाली, सन्तुष्ट सुन्दर घाटवाली, रमणीय पुष्करिणी हो, उसके तीरपर करीबमें वन लण्ड हो । तब कोई घाममें तप्त ० पुरुष ० उसी पुष्करिणीका ख्याल करके आये ० । फिर दूसरे समय उसे उस पुष्करिणीमें प्रविष्ट हो स्नानकर, पानकर, सारी पीड़ा-यकावटको दूर कर, निकल कर, उसी वन लण्डमें बैठे या लेटे नितान्त सुखमय वेदनाको अनुभव करते देखे । ऐसेही सारिपुत्र । ० ० ।

"सारिपुत्र ! ऐसा जाननेवाले ०<sup>६</sup> ।

०—"सारिपुत्र ! मैं चतुरंग ( = चार भगों ) से युक्त ब्रह्मचर्यका पालन करना जानता हूँ—( १ ) तपस्वियोंमें मैं परम तपस्वी होता था; ( २ ) रक्षाचारियोंमें मैं परम रक्षाचारी ( = कर्ण ) होता था; ( ३ ) जुगुप्सुओंमें मैं परम जुगुप्सु ( = अनुकम्पा रखनेवाला ) होता था; ( ४ ) प्रविविक्तों ( = एकान्तसेविषों, शिवेककर्त्ताओंमें मैं परम विविक्त था ।

( १ ) वहाँ सारिपुत्र ! मेरी यह तपस्विता ( = तपश्चर्या ) थी—मैं अ-वेत्तक ( = नग्न ) था, मुष्काधार ( = सरभंग ), हलाऽपलेखन ( = हाथ-बट्टा ), न-पृथिव्यादन्तिक ( = हुलाई भिक्षाका त्यागी ), न-तिष्ठ-भदन्तिक ( = ठहरिये कह, दो गई भिक्षाका त्यागी ) था, न अभिहट ( = अपने लिये की गई भिक्षा ) को, न ( अपने ) उद्देश्यसे किये गयेको ( और ) न निमग्नणको

खाता था; न कुम्भी (= घड़े) के मुखसे ग्रहण करता था, न खलोपी (= पथरी) के मुखसे ०, न (दो) पटरोंके बीचसे ०, न (दो) बंदोंके बीचसे ०, न सुल्लोंके बीचसे ०, न दो भोजन करने वालोंका (०) न गर्भिणीका (०), न (तृण) पिलातीका (०), न अन्य पुरुषके पास गईका (०) न संकिची (= चंदावाले)में (०), (वहाँसे) जहाँ (कि) कुत्ता खड़ा हो; न (वहाँ) जहाँ (कि) मक्खी भनभन रही हो; न मछली, न मांस, न सुरा (= अर्ध उतारी शराब), न मेरु (= कच्ची शराब), न तुषोदक (= चावलकी शराब ?) पीता था, सो मैं एकागारिक (= एकही घरमें भिक्षा करनेवाला) होता था; या एक कवल (= भर) खानेवाला होता था; या द्वि-आगारिक दो (= बार) आहार करनेवाला होता था; या दो कवल खानेवाला होता था, (०) सप्त-आगारिक (= सात घरोंसे भिक्षा लेनेवाला) होता था, या सात कवल खानेवाला; एक कलही (= दूती) भर भोजनसे भी गुजारा करता था; दो कलही ०; (०); सात कलही ०; एकाहिक (= एक दिनमें एक बार) आहार करता था; द्वाहिक (= दो दिन में एकबार) आहार करता था; सप्ताहिक आहार करता था; इस प्रकार अर्धमासिक चारी चारीसे भोजन ग्रहण करता विहरता था; शाकाहारी था, सैवामोजी भी था; मीवार (= तिथी) भक्षी भी था; वृषुल (= कोदो ?) भक्षी था, ऋतु (= एक वृण) भक्षी था; कण (= खेतमें छुटे हुये अनाजके दानोंका) भक्षी था; आचाम (= मीठ) भक्षी था; पिप्पल (= लली) भक्षी था; तृण-भक्षी था; गोघर-भक्षी था; वनमूल फलदारसे गुजारा करता था, (जमीन पर) गिरे फलोंका खानेवाला था; सनके वस्त्र धारण करता था, इमशान (= वस्त्र) भी धारण करता था; सुदके कपड़ेको धारता था; पांसुकुल (= फेंके कपड़े) भी धारता था; तिरोट (= एक छाल) भी धारता था; अजिन (= सूगधर्म) भी धारता था; अजिनक्षिप (= सूगधर्म बंड) भी धारता था; कुदाचोरको भी धारता था, वल्ल चोर भी धारता था; (काष्ठ-) फलक-चोर भी धारता था; केश-कम्बल भी ०; बाल-कम्बल भी ०; उल्ल-प्रसक्तों भी ०; केश-दाही नोचनेवाला था, केश-दाही नोचनेके व्यापारमें लग्न होते उन्मट्टिक (= खे-सरी) भी था; आसन-त्यागी वन उकड़ बैठनेवाला भी था; उकड़ बैठनेके व्यापारमें लग्न हो कटि पर सोनेवाला भी था; कंटकके प्रभय (= छाट) पर शयन करता था, वामको जल शयनके व्यापारमें लग्न होता था।—ऐसे अनेक प्रकारसे कायाके आतापन सन्तापनके व्यापारमें लग्न हो विहरता था, सारिपुत्र ! यह मेरी तपस्विता (= तपश्चर्या) थी।

(२) "वहाँ सारिपुत्र ! यह मेरा कक्षाचार था।—पथरी पड़े अनेक वर्षके मैलको शरीरमें संचित किये रहता था; सारिपुत्र ! जैसे पथरी पड़ा अनेक वर्षोंका तिन्दुका फाट हो, इसी प्रकार सारिपुत्र ! पथरी पड़े ०। वैसा होते (भी) मुझे यह न होता था—अहोवत ! इस अपने मैलको अपने हाथसे परिमार्जित करूँ, या दूसरे मेरे इस मैलको (अपने) हाथसे परिमार्जित करें—मुझसे यह भी सारिपुत्र ! न होता था। यह सारिपुत्र ! मेरा स्थाचार था।

(३) "वहाँ सारिपुत्र ! यह मेरी लुप्ला (= असुकम्पा) थी;—मैं सारिपुत्र ! (प्राणिपोंकी) याद करते जाता था, याद करते जाता था; अलके विन्दु तकमें मुझे दया बनी रहती थी—विषम (स्थानोंमें) स्थित क्षुद्र प्राणिपोंको कहीं मार न दूँ। यह सारिपुत्र ! मेरी असुकम्पा थी।

(४) "वहाँ सारिपुत्र ! यह मेरा प्रविवेक (= एकान्त सेवन) था। मैं सारिपुत्र ! किसी अरण्य-स्थानमें प्रवेश कर विहरता था। जय मैं (किसी) गोपालक (= ग्वाले)को या पशु-पालकको, या गृणहारक (= घसियारे)को, या काष्ठहारक (= लकड़हारे)को, या वनकर्मिक (= वनमें काम करनेवाले)को देखता; तो (एक) वनसे (दूसरे) वनमें, गहनसे गहनको, निम्न (= सड़क)से निम्नको, स्थलसे (दूसरे) स्थलको, चला जाता था। तो किस कारण ?—'यह



सुखे न देखें, और मैं उन्हें न देखूँ । जैसे सारिपुत्र ! आरण्याक सुग मनुष्यको देखकर वनसे वनको ० चला जाता है; ऐसे ही सारिपुत्र ! जब मैं ( किसी ) गोपालकको ० । यह सारिपुत्र ! मेरा प्रविचेक था ।

“सो मैं सारिपुत्र ! छिपकर ( = चतुर्गुणित ) उन गोष्टोंमें जाता था, जिससे गायें और गोपाल चले गये होते । जाकर जो वह तरुण ( = बहुत छोटे ) वृष पीनेवाले बछड़ोंके गोधर होते उन्हें खाता; यहाँ तक कि सारिपुत्र ! सुखे अपना ही मूत्र-करीष ( = मल ) भी त्याज्य न होता; अपने ही मूत्र-करीषका आहार करता । यह सारिपुत्र ! मेरा विक्त भोजन था ।

“सो मैं सारिपुत्र ! एक भीषण वन-खण्डमें प्रवेश कर विहरता था । सारिपुत्र ! उस भीषण वन-खण्डकी भीषणता यह थी; कि जो कोई अ-बीतराग ( पुरुष ) उस वन-खण्ड में प्रवेश करता, ( उसके ) रोम बहुत अधिक लड़े हो जाते थे । सो मैं सारिपुत्र ! हेमन्तकी हिमपात समय वाली अन्तराष्टक रातोंमें रात भर चौड़ेमें विहरता था, ( और ) दिनको वनखण्डमें । भीषणके अन्तिम भागमें दिनको चौड़ेमें विहरता और रातको वनखण्डमें । ( उस समय ) सारिपुत्र ! अधुत पूर्व यह अद्भुत गाथा सुखे प्रतिभासित हुई—

“अकेला भीषण वनमें ( भीष्म )-तप्त ( और ) शीत-पीडित वह नम्र आगके-पास-न-पैठा, एषणा ( = हृच्छाओं ) से दूर मुनि ।”

“सो मैं सारिपुत्र ! सुदृक्की हड्डियोंका सिरहाना बना स्मशानमें क्षयन करता था । ( उस समय ) सारिपुत्र ! गोम्रण्डल ( = चरवाहे ) पास जाकर ( मेरे ऊपर ) धूकते भी थे, मृतते भी थे, भूल भी फेंकते थे, कर्ण-छिद्रोंमें सींक भी करते थे, ( तो भी ) सारिपुत्र ! उनके विषयमें सुखे कोई कुरा भाव उत्पन्न होता नहीं सालूम होता । यह सारिपुत्र ! मेरा उपेक्षा-विहार था ।

८—“सारिपुत्र ! कोई कोई क्षमण आग्रण आहारसे मुक्ति होती है”—इस वाद ( = मत ) वाले इस प्रकारकी दृष्टिवाले होते हैं । ‘मैं बेरसे गुजारा करूँगा’—कह, वह बेरको खाते हैं, बेर-पूर्ण खाते हैं, बेरके शर्बतको पीते हैं; अनेक प्रकारके बेरसे घने भोजनको खाते हैं । ( एक समय ) मैं भी सारिपुत्र ! एक बेरके घरावर आहरको ही जानता था । शाघद सारिपुत्र ! तुम्हारे मनमें हो—‘उस समय बेर बड़ा होता होगा’ । सारिपुत्र ! ऐसा नहीं क्वाल करना चाहिये । उस समय भी बेर इतना ही बड़ा होता था, जितना कि आजकल । सो सारिपुत्र ! एक बेर ( भर ) आहार करनेसे मेरा शरीर अत्यन्त कुश हो गया । उस अल्पाहारस्तासे वैसे मेरे अंग प्रत्वंग हो गये थे, जैसे आसीतिका ( = अस्सी वर्षके बूढ़े ) के पोर ( = पर्व ) या काल ( = वृक्ष ) के पर्व । ० जैसे ऊँटका पाँव, वैसे मेरे कूड़े हो गये थे, । ० जैसे तटनावली ( = रस्सीकी टूँठन ) वैसे ही उन्नत-अवनत मेरे पीठकी ( हड्डीवाले ) काँटे हो गये थे । ० जैसे पुरानी शालामें कड़ियाँ अवलमन-विलमन ( = खिसकी ) होती हैं, वैसे ही मेरी पसलियाँ हो गईं । ० जैसे गहरे कूँवे ( = उदपान ) में ( कूँवकी ) गहराईके कारण आकाशिक ( = तारे ) दिखाई पड़ते हैं, वैसे ही अक्षि-कूपों ( = आँखके गहवों ) में भीचे पैंस जानेके कारण आँखकी पुतलियाँ दिखाई पड़ती थी । ० जैसे सारिपुत्र ! कच्चा ही तोड़ा कढ़वा अलान ( = लौका ) घूप हवासे समुठित ( = चिबुक ) हो जाता है, सुखा जाता है, ऐसे ही मेरे शिरका चमड़ा हो गया था । ० जब मैं सारिपुत्र ! पेटके चमड़ेको पकवता तो पीठके काँटेकी ही पकव लेता था; पृष्ठकटकों को पकवते तक पेटके चमड़ेकी ही पकव लेता था । मेरे पेटका चमड़ा



सारिपुत्र ! छूट-कंठक से सद गया था । ० सो मैं सारिपुत्र ! मल-मूत्रके परित्याग करनेके लिये उठना चाहता था, तो वहीं झूझकर गिर जाता था । ० उसी अल्पाहसताके कारण सो मैं सारिपुत्र ! उस शरीरको सहारा देते मांसको ( जव ) हाथसे सहारा तो सबी जड़वाले लोभ शरीरसे उलझ पड़ते थे ।

“सारिपुत्र ! कोई कोई भ्रमण ब्राह्मण, ‘आहारसे बुद्धि होती है’—इस तरहके वादवाले, इस तरहकी दृष्टिवाले होते हैं । ‘मूँग पर गुजारा करूँगा’ ०<sup>१</sup> । ‘तिलसे गुजारा करूँगा’—०<sup>२</sup> । ‘तंदुलसे गुजारा करूँगा’—कह, वह तंदुल खाते हैं, तण्डुल चूर्ण खाते हैं, तण्डुलका पानी पीते हैं, ० तण्डुलसे बने अनेक प्रकारके आहारको खाते हैं । मैं भी सारिपुत्र ! ( एक समय ) तण्डुल बराबर आहारको ही जानता था । शायद सारिपुत्र ! ०<sup>३</sup> लोभ शरीरसे उलझ पड़ते थे ।

“सारिपुत्र ! उस ईर्ष्या ( = आचार ) से भी, उस दुष्कर-कारिका ( = तपस्या ) से भी मैं उत्तर-मनुष्य-धर्म ( = दिव्य-शक्ति ) जलमार्ग-ज्ञान-दर्शन ( = उत्तम ज्ञान-दर्शनकी पराकाष्ठा ) को नहीं पा सका । सो किस हेतु ?—इसी आर्य-प्रज्ञा ( = उत्तम ज्ञान ) के न पानेसे, जो यह आर्य प्रज्ञा किये, मिलनेपर, वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दुःख-सखकी ओर ले जाती है ।

९—“सारिपुत्र ! कोई कोई भ्रमण ब्राह्मण—‘संसारके ( = जन्म धरण ) से बुद्धि होती है’—इस तरहके वादवाले इस तरहकी दृष्टिवाले होते हैं । ( किन्तु ) सारिपुत्र ! ऐसा संसार सुलभ नहीं है, जिसमें इस दीर्घ कालमें मैंने बाल न किया हो; सिवाय शुद्धावास देवतानोंके; यदि शुद्धावास देवतानोंमें मैं संसरण करता, तो सारिपुत्र ! मैं इस लोकमें न जाता ।

१०—“सारिपुत्र ! कोई कोई भ्रमण ब्राह्मण—‘व्यपत्ति से बुद्धि होती है’—० दृष्टिवाले होते हैं ०<sup>४</sup> न जाता ।

११—“०—‘आवाससे बुद्धि होती है’—० दृष्टिवाले ०<sup>५</sup> ।

१२—“०—‘यज्ञसे बुद्धि होती है’—० दृष्टिवाले होते हैं । किन्तु सारिपुत्र ! ऐसा यज्ञ सुलभ नहीं, जिसमें मैंने इस दीर्घ कालमें न किया हो; और उसे ( दूसरे ) सूर्याभिषिक्त क्षत्रिय राजाने या महाशाल ( = महाधनी ) ब्राह्मणने किया हो ।

१३—“०—‘अतिपरिचर्या ( = हवन ) से बुद्धि होती है’—०<sup>६</sup> ।

१४—“०—‘जब तक यह पुरुष दहर ( = तथ्य ) युवा बहुत ही काले केशवाला प्रथम वयस सुन्दर यौवनसे युक्त होता है; तब ( यह ) परम प्रज्ञा ( और ) नैपुण्यसे युक्त होता है । जब यह पुरुष जीर्ण—वृद्ध—महलक्ष—अध्वगत—वयःप्राप्त जन्मसे ८०, ९० वा सौ वर्षका हो जाता है; तो उस प्रज्ञा ( और ) नैपुण्यसे व्युत्त होता है । लेकिन सारिपुत्र ! इसे इस तरह नहीं देखना ( = मानना ) चाहिये । मैं सारिपुत्र ! इस समय जीर्ण—वृद्ध ० वयःप्राप्त, मेरी आयु ८० को पहुँच गई है; यहाँ सारिपुत्र ! मेरे चार भावक ( = शिष्य ) शतवर्ष आयुवाले—वयःप्राप्त-जीवी, ( जो कि ) परम गति, स्मृति, मति, स्मृतिसे युक्त, तथा परम प्रज्ञा—नैपुण्य ( = वैयक्त्य ) से सम्पन्न हैं । जैसे सारिपुत्र ! शिक्षित—कृतहस्त—कृत-उपासन, बलवान् धनुर्ग्राही ब्रीह, बिना भ्रम ( वाण ) फेंके तिनहीं टाल-छायाका अतिक्रमण—अतिपात न करदे; ऐसे ही सारिपुत्र ! ० मति, स्मृति, स्मृतिसे युक्त ०, इस प्रकार परम प्रज्ञा—नैपुण्यसे युक्त हैं । ( यदि वह ) चारों स्मृतिप्रस्थानों<sup>७</sup> को लेकर ( मुझसे ) भ्रम पूछे । पूछनेपर मैं उनका उत्तर हूँ । मेरे उत्तरको वह धारण करें । फिर दूसरी बार आगे पूछें; सारिपुत्र ! अशन—पान—आदस—नापन ( के समय ) को छोड़, मल-मूत्र-त्याग

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ ५०, बेरकी जगह । <sup>२</sup> देखो ऊपर ( ९ ) । <sup>३</sup> देखो ऊपर ( ९ ) । <sup>४</sup> देखो ऊपर ( १२ ) । <sup>५</sup> देखो पृष्ठ १५ ।

( के समय )को छोड़, निद्रा-धकावटके दूर करनेके समयको छोड़ तत्थागतकी धर्मदेखना अखंड ही रहेगी, सारिपुत्र ! तत्थागतका धर्मपद—व्याख्यान अखंड ही रहेगा तत्थागतका प्रश्नोत्तर० । फिर वह मेरे शतवर्ष आयुवाले०<sup>१</sup> चार आकव सौ वर्षके अनन्तर मृत्युके प्राप्त होवें; ( तो भी ) सारिपुत्र ! किसी तरह मुझे निद्रा नहीं कर सकते, तत्थागतकी प्रज्ञा-नैपुण्यमें फरक नहीं आसकता ।

“सारिपुत्र ! ठीक कहते हुये यह कहे—‘सम्मोह धर्मसे रहित ( एक ) सत्त्व ( = व्यक्ति ) लोकमें बहुजनोके हितार्थ, बहुजनोके सुखार्थ, लोकपर अनुकम्पार्थ, देव-मनुष्योंके अर्थ, हित और सुखके लिये उत्पन्न हुआ है’ ( तो ) वह ठीकसे कहते हुये मेरे ही लिये कहे—सम्मोह धर्मसे रहित ० ० उत्पन्न हुआ है ।”

उस समय आयुष्मान् नागसमाल भगवान्की पीठकी ओर खड़े होकर भगवान्को पंखा झल रहे थे । तब आयुष्मान् नागसमालने भगवान्को यह कहा—“आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! भन्ते ! इस धर्मपर्याय ( = धर्मोपदेश )को सुनकर रोमांच हो गया । भन्ते ! इस धर्मपर्यायका नाम क्या है ?”

“तो नागसमाल ! यूँ इस धर्मपर्यायको लोमहर्षण-पर्याय ही समझ ।”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो आयुष्मान् नागसमालने भगवान्के भाषणका अभि-  
नन्दन किया ।

## १३—महादुक्खखण्ड-सुत्तन्त (१।२।३)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिट्टिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब बहुतसे भिक्षु पूर्वाह्नके समय पहिनकर पात्रचीवर ले श्रावस्तीमें पिण्डचारके लिये प्रविष्ट हुये । तब उन भिक्षुोंको हुआ—श्रावस्तीमें भिक्षाचार करनेके लिये अभी बहुत सवेरा है, क्यों न हम जहाँ अन्यतैर्थिक (= दूसरे मतवाले ) परित्राजकोंका आराम है, वहाँ चलिं । तब वह भिक्षु जहाँ अन्यतैर्थिक परित्राजकों<sup>१</sup> का आराम था, वहाँ गये, जाकर अन्य तैर्थिक परित्राजकोंके साथ ( सहायोग्य कुशल प्रश्न पूछ ) एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे उन भिक्षुओंसे अन्य तैर्थिक परित्राजकोंने यह कहा,—

“आहुसो ! श्रमण गौतम कामों (= भोगों ) के परित्यागको कहते हैं, हम भी कामोंके परित्यागको कहते हैं । आहुसो ! श्रमण गौतम रूपोंके परित्यागको कहते हैं, हम भी ० । वेदनाके परित्यागको कहते हैं । यहाँ आहुसो ! हमारे और श्रमण गौतमके धर्मोपदेशमें या धर्मोपदेशके अनुशासन करनेमें क्या विशेष (= भेद ) है, क्या अधिक है, क्या नावाकरण (= अन्तर ) है ?”

तब उन भिक्षुओंने उन अन्यतैर्थिक परित्राजकोंके भाषणका न अनुमोदन (= अभिनन्दन ) किया, न प्रतिवाद (= प्रतिकोश ) किया । बिना अनुमोदन किये, बिना प्रतिवाद किये वह ( सोचकर ) आसनसे उठकर चल दिये, कि भगवान्के पास इस भाषणका अर्थ समझेंगे । तब वह भिक्षु श्रावस्तीमें भिक्षाचार करके, भोजनोपरान्त पिण्डपातसे निवृत्तकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठकर उन भिक्षुओंने भगवान्से यह कहा—

“भन्ते ! ( आज ) हम पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्रचीवर ले श्रावस्तीमें पिण्डचारके लिये प्रविष्ट हुये ०<sup>१</sup>, कि भगवान्के पास इस भाषणका अर्थ समझेंगे ।”

“भिक्षुओ ! वैसा कहनेवाले अन्यतैर्थिकोंको तुम्हें यह कहना चाहिये—‘आहुसो ! क्या है कामो (= भोगों ) का आस्वाद, क्या है परिणाम (= आदिनव ), क्या है निस्सरण (= निकास ) ? क्या है रूपोंका आस्वाद ० ? क्या है वेदनाओंका आस्वाद ० ?’ ऐसा कहनेपर भिक्षुओ ! अन्यतैर्थिक परित्राजक नहीं ( उत्तर ) दे सकेंगे, और ( इस ) पर विषाद (= रोष )को प्राप्त होंगे । सो किस हेतु ?—क्योंकि भिक्षुओ ! वह ( उनका ) विषय नहीं है । भिक्षुओ ! देव, मार (= प्रजापति देवता ), ब्रह्मा सहित सारे लोकमें, श्रमण ब्राह्मण देव-मानुष सहित सारी प्रजामें, मैं उस ( पुरुष )को नहीं देखता, जो इन प्रश्नोंका उत्तर दे चित्तको समुत्तुष्ट करे, सिवाय सहायत या सहा-

<sup>१</sup> देखो ऊपर ।



गतके शिष्य या यहाँसे मुझे हुयेके ।

१—“मिथुओ ! क्या है कामोंका दुष्परिणाम ? मिथुओ ! यहाँ कुल-पुत्र जिस ( किसी ) शिष्य से—चाहे मुद्रासे, या गणनासे, या संख्यानासे, या कृपिसे, या वाणिज्यसे, गो-पालनसे, या वाण-अन्वसे, या राजाकी मौकरीसे, या किसी अन्य शिष्यसे— शीत-उष्ण-पीडित, डंस-मच्छर-इन्दी-पुष्प-सरीसृप ( = सर्प विषट् ) के स्पर्शसे उत्पीडित होता, मूख-म्यासले भरता, जीविका करता है । मिथुओ ! यह कामोंका दुष्परिणाम है । इसी जन्ममें कामके हेतु = काम-निदान, कामके अधिकरण ( = विषय ) में ( यह लोक ) दुःखोंका पुत्र है । मिथुओ ! उस कुलपुत्रको यदि इस प्रकार उद्योग करते = उत्थान करते, मेहनत करते, वह भोग नहीं उत्पन्न होते, ( तो ) वह शोक करता है, दुःखी होता है, चिन्ताता है, जाती पीठकर कंदन करता है, मूर्छित होता है—“हाय ! मेरा प्रयत्न व्यर्थ हुआ, मेरी मेहनत निष्फल हुई !” मिथुओ ! यह भी कामोंका दुष्परिणाम है ० । दुःखका पुत्र है । यदि मिथुओ ! उस कुलपुत्रको इस प्रकार उद्योग करते ० वह भोग उत्पन्न होते हैं, तो वह उन भोगोंकी रक्षाके लिये दुःख = दौर्मनस्य झेलता है—“कहीं मेरे भोगको राजा न हर ले, चोर न हर ले जायें, आग न बाहे, पानी न बहा ले जाये, अग्नि न जला द न ले जायें” उसके इस प्रकार रक्षा = गोपन करते उन भोगोंको राजा हर ले जाते हैं ०; चोर शोक करता है ०—“जो भी मेरा था, वह भी मेरा नहीं है” । मिथुओ ! यह भी कामोंका दुष्परिणाम ० ।

“और फिर मिथुओ ! कामोंके हेतु = काम-निदान, कामोंके विषयमें, कामोंके लिये राजा भी राजाओंसे झगड़ते हैं; क्षत्रिय लोग क्षत्रियोंसे झगड़ते हैं; ब्राह्मण ब्राह्मणोंसे ०; गृहपति ( = वैश्य ) गृहपतियोंसे ०; माता पुत्रके साथ झगड़ती है; पुत्र भी माताके साथ ०; पिता भी पुत्रके साथ ०; पुत्र भी पिताके साथ ०; भाई भाईके साथ ०; भाई भगिनियोंके साथ ०; भगिनी भाईके साथ ०; मित्र मित्रके साथ झगड़ते हैं । वह यहाँ कलह = विग्रह = विवाद करते, एक दूसरेपर हाथों से भी आक्रमण करते हैं, क्लोंसे भी ०, डंडोंसे भी ० शस्त्रोंसे भी आक्रमण करते हैं । वह यहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, या मृत्यु-समान दुःखको । मिथुओ ! यह भी कामोंका दुष्परिणाम ० ।

“और फिर मिथुओ ! कामोंके हेतु बाल-तलवार ( = अस्त्र-धर्म ) लेकर, तीर-धनुष चढ़ाकर, दोनों ओरसे धूँह रहे, संग्राममें दौड़ते हैं । बाणोंके चलाये जातेमें, शक्तियोंके फेंके जातेमें, तलवारोंकी चकाचौंधमें, वह बाणोंसे बिद्ध होते हैं, शक्तियोंसे ताड़ित होते हैं, तलवारसे शिरच्छिन्न होते हैं । वह यहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, या मृत्युसमान दुःखको । यह भी मिथुओ ! कामोंका दुष्परिणाम ० ।

“और फिर मिथुओ ! कामोंके हेतु ०, बाल-तलवार लेकर, धनुषाण चढ़ाकर, भोगों-लिये प्राकारों ( = उपकारी = शहर-पनाह ) की ओर दौड़ते हैं । बाणोंके चलाये जाते में ० ।

“और फिर मिथुओ ! कामोंके हेतु ० सेंध भी लगाते हैं, ( गाँव ) उजाड़ कर ले जाते हैं, चोरो ( = एकामारिक, एक घरमें घुसकर चुराना ) भी, रहजमी ( = परिपन्थ ) भी करते हैं, परस्त्री-गमनभी करते हैं । तब उन्हें राजा लोग पकड़कर नाना प्रकारके दंड ( = क्रमकरण ) देते हैं—चाडुकसे भी पिटाते हैं, बेंतसे भी ०, गुमाँवा भी करते हैं, हाथ भी काटते हैं, पैर भी काटते हैं, हाथ-पैर भी काटते हैं, कान भी ०, नाक भी ०, कान-नाक भी ०, बिलंग-थालिक<sup>१</sup> भी करते

<sup>१</sup> डेखो ऊपर का पैरा ।

<sup>२</sup> खोपड़ी इत्यादि शिरपर तब लोहेका-बोला रखना ।

है, शंखमुंडिका<sup>१</sup> भी ०, राहुमुख<sup>२</sup> भी ०, उयोतिमालिका<sup>३</sup> भी ०, हस्त-प्रज्योतिका<sup>४</sup> भी ०, परकवर्तिका<sup>५</sup> भी ०, चौरकवासिका<sup>६</sup> भी ०, ऐण्यक<sup>७</sup> भी ०, वज्रिशर्मसिका<sup>८</sup> भी ०, कार्पाणक<sup>९</sup> भी ०, स्त्रारपतच्छिका<sup>१०</sup> भी ०, परिचपरिवर्तिका<sup>११</sup> भी ०, पलाल-पीठक<sup>१२</sup> भी ०, तथाये वेदसे भी नडुलाते हैं, कुत्तोंसे भी कटवाते हैं, जीतेजी शूलीपर चढ़ाते हैं, तलवारसे शिर कटवाते हैं । वह वहाँ मरणको प्राप्त होते हैं, मरण समान दुःखको भी ० । यह भी भिक्षुओ ! कामोंका दुष्परिणाम ० ।

“और फिर भिक्षुओ ! कामके हेतु कायासे दुश्चरित (= पाप ) करते, वचनसे ०, मनसे दुश्चरित करते हैं । वह काय ०-वचन ० मनसे दुश्चरित करके, शरीर कोषसे पर करनेके बाद, अपाय=दुर्गति=विनिपात, निरय (= नष्ट ) में डटपड़ होते हैं । भिक्षुओ ! यह कामोंका जन्मान्तरमें दुष्परिणाम दुःख-पुल्ल काम-हेतु=काम-निदान ( ही है ) कामोंका श्रमणा कामों (= भोगों ) हीके लिये होता है ।

१—“क्या है भिक्षुओ ! कामोंका निस्सरण (= निवारण ) ?—भिक्षुओ ! जो यह कामोंसे छन्द=रागका हटाना, छन्द=रागका परित्याग, यह कामोंका निस्सरण है । भिक्षुओ ! जो कोई श्रमण ब्राह्मण इस प्रकार कामोंके आस्वाद, कामोंके आदिनिध (= दुष्परिणाम ), दुष्परिणामसे निस्सरण, निस्सरणसे उसे यथाभूत (= उसके स्वरूपको यथार्थ से ) नहीं जानते, वह स्वयं कामोंको छोड़ेंगे या दूसरोंको वैसा ( करनेके लिये ) शिक्षा देंगे, जिसपर चलकर कि यह ( पुरुष ) कामोंको छोड़ेगा, यह सम्भव नहीं । भिक्षुओ ! जो कोई श्रमण वा ब्राह्मण इस प्रकार कामोंके आस्वाद, आस्वादसे दुष्परिणाम, दुष्परिणामसे निस्सरण, निस्सरणसे उसे यथाभूत जानते हैं, वह स्वयं कामोंको छोड़ेंगे, ० यह सम्भव है ।

“क्या है भिक्षुओ ! वेदनाओंका आस्वाद ?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु कामोंसे विरहित, बुरी बातोंसे विरहित, सवितर्क और सविचार, विवेकसे उत्पन्न प्रीति और सुखवाले ०<sup>१</sup> प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहसने लगता है । जिस समय भिक्षुओ ! भिक्षु कामोंसे विरहित ० प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहस्ता है, उस समय न अपनेको पीड़ित करनेका ख्याल रखता है, न दूसरेको पीड़ित करनेका ख्याल रखता है, न ( अपने और पराये ) दोनोंको ० । व्याधाधा (= पीका पहुँचाने )

<sup>१</sup> शिरका नमका आदि हटाकर उसे शंख समान बनाना ।

<sup>२</sup> कामों तक मुँहको फाड़ देना ।

<sup>३</sup> शरीरभरमें तैल-सिक्त कपड़ा लपेट बसी लगाना ।

<sup>४</sup> हाथमें कपड़ा लपेट कर चलाना ।

<sup>५</sup> गर्दन तक खाल बाँधकर घसीटना ।

<sup>६</sup> कपड़ोंको बाँधकर कमरपर छोड़ना, और नीचेकी छालको बुझीपर छोड़ देना ।

<sup>७</sup> केतुनी और घुटनेमें लोह-शलाका ठीक उनके मल मूत्रपर सापितकर आग लगाना ।

<sup>८</sup> कंशिके तरबूके लोह-अंकुशोंको मुँहसे बाँधकर निकालना ।

<sup>९</sup> पैसे पैसे मरके मांसके टुकड़ोंको सारे शरीरसे काटना ।

<sup>१०</sup> शरीरमें पावकर छार लगाना ।

<sup>११</sup> दोनों कामोंसे काला पारकर, उसे जमीनमें गाड़, पैर पकड़ उसीके चारोंओर घुमाना ।

<sup>१२</sup> मुँहमेंसे छड़ीको भीतर की भीतर चूरकर, शरीरको मांस-पुंजसा बना देना ।

<sup>१३</sup> देखो पृष्ठ १५ ।



से रहित वेदना हीकी उस समय अनुभव करता है, भिक्षुओ ! वेदनाओंके आस्वादको अव्यावाधता पर्यन्त, मैं कहता हूँ ।

“और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु वितर्क और विचारके शान्त होनेपर भीतरी शान्ति तथा चित्तकी एकाग्रतावाले वितर्क-रहित-विचार रहित प्रीति सुखवाले द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ०<sup>१</sup> तृतीय-ध्यानको ० । ०<sup>२</sup> चतुर्थ-ध्यानको ० । जिस समय भिक्षुओ ! भिक्षु सुख और दुःखके परित्यागने, तौमनस्य ( = चित्तोल्लास ) और दीर्घमनस्य ( = चित्त-सन्ताप ) के पहिले ही अस्त हो जानेसे, सुख-दुःख-विरहित उपेक्षासे स्मृतिकी झुझिवाले चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगता है, उस समय न वह अपनेको पीड़ित करता है ० । भिक्षुओ ! वेदनाओंका आस्वादको अव्यावाधता पर्यन्त मैं कहता हूँ ।

“क्या है भिक्षुओ ! वेदनाओंका दुष्परिणाम ?—जो कि भिक्षुओ ! वेदना अनित्य, दुःख और विपरिणाम ( = विकार ) स्वभाववाली है; यही वेदनाओंका आदिनव ( = दुष्परिणाम ) है ।

“क्या है भिक्षुओ ! वेदनाओंका निस्सरण ?—जो कि भिक्षुओ ! वेदनाओंसे छन्द=रागका हटाना, छन्द = रागका प्रहाण ( = त्याग ) यही वेदनाओंका निस्सरण है ।

“भिक्षुओ ! जो कोई अमण ब्राह्मण इस प्रकार वेदनाओंके आस्वादको आस्वादन करते, आदिनवको आदिनवकी भाँति, निस्सरणको निस्सरणकी भाँति ठीक तौरसे नहीं जानते; वह स्वयं वेदनाओंको त्यागेंगे, और वृत्तोंको यँसा करनेके लिये अनुशासन करेंगे, यह सम्भव नहीं । किन्तु, भिक्षुओ ! जो कोई अमण ब्राह्मण इस प्रकार वेदनाओंके आस्वादको आस्वादन न करते, आदिनवको आदिनवकी भाँति ० जानते हैं; वह स्वयं वेदनाओंको त्यागेंगे ० यह सम्भव है ।”

भगवान्ने यह कहा; सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया ।



## १४-चूल-दुक्ख-क्खन्ध-सुत्तन्त (१।२।४)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् शाक्य ( देश )में कपिलवस्तुके न्यग्रोधाराममें विहार करते थे ।

तब महानाम शाक्य वहाँ भगवान् थे, वहाँ आया । आकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठा । एक ओर बैठे महानाम शाक्यने भगवान्से कहा—

“भन्ते ! दीर्घ-रात्र ( = बहुत समय )से भगवान्के उपदिष्ट धर्मको मैं इस प्रकार जानता हूँ—लोभ चित्तका उपक्लेश ( = भल ) है, द्वेष चित्तका उपक्लेश है, मोह चित्तका उपक्लेश है । तो भी एक समय लोभ-वाले धर्म मेरे चित्तको चिपट रहते हैं । तब मुझे भन्ते ! ऐसा होता है—कौन सा धर्म ( = वात ) मेरे भीतर ( = अण्वात्म )से नहीं छूटा है, जिससे कि एक समय लोभधर्म ० ?”

“महानाम ! वही धर्म तेरे भीतरसे नहीं छूटा, जिससे कि एक समय लोभ-धर्म तेरे चित्तको ० । महानाम ! यदि वह धर्म भीतरसे छूटा हुआ होता, तो तू घरमें वास न करता, कामों-पयोग न करता । चूंकि महानाम ! वह धर्म तेरे भीतरसे नहीं छूटा, इसलिये तू गृहस्थ है, कामों-पयोग करता है । ( यह ) काम ( = भोग ) अ-प्रसन्न करनेवाले, बहुत दुःख देनेवाले, बहुत अपायाम ( = परेशानी ) देनेवाले हैं । इनमें आदिनव ( = दुष्परिणाम ) बहुत हैं । महानाम ! जब आर्य-आवक यथार्थतः अच्छी प्रकार जानकर इसे देख लेता है, तो वह कामोंसे अकुशल ( = बुरे )-धर्मोंसे, अलगहीमें प्रीति-सुख या उससे भी अधिक शान्ति ( सुखको ) नहीं पाता, वह कामोंमें 'लौटने वाला' होता है । महानाम ! आर्य-आवकको जब काम, ( = भोग ) अ-प्रसन्न करनेवाले, बहुत दुःख देनेवाले, बहुत परेशानी करनेवाले मालूम होते हैं, 'इनमें आदिनव बहुत हैं' इसे महानाम ! जब आर्य-आवक यथार्थतः अच्छी प्रकार जानकर इसे देख लेता है, तो वह कामोंसे अलग, अ-कुशल धर्मोंसे पृथक् ही, प्रीति सुख या उससे शान्ति ( सुख ) पाता है, तब वह कामोंकी ओर 'न-लौटनेवाला' होता है ।

“सुखें भी महानाम ! संशोषि ( मार करने )से पूर्व दुःख न हो, शोषितत्व होते समय, वह अप्रसन्न करनेवाले, बहु दुःख, बहुत परेशानी करनेवाले काम ( होते थे ), तब 'इनमें दुष्परिणाम बहुत हैं'—यह ऐसा यथार्थतः अच्छी प्रकार जानकर मैंने देखा, किंतु कामोंसे अलग, अकुशल धर्मोंसे अलग, प्रीति-सुख, या उससे शान्ति ( सुख ) नहीं पा सका । इसलिये मैंने उतनेसे कामोंकी ओर 'न लौटने वाला' ( अपने को ) नहीं जाना । जब महानाम ! काम अप्रसन्नकर बहु-दुःखद, बहु-आपासकर हैं, इनमें दुष्परिणाम बहुत हैं' यह ऐसा ० । तो कामोंसे, अकुशलधर्मोंसे अलग ही प्रीति-सुख ( तथा ) उससे भी शान्ति ( सुख ) पाया; तब मैंने ( अपनेको ) कामोंकी ओर 'न लौटनेवाला' जाना ।

“महानाम ! कामोंका आस्वाद (= स्वाद ) क्या है ?—महानाम ! वह पाँच काम-गुण ० । कौनसे पाँच ? ( १ ) इष्ट, कांत, रुचिकर, प्रिय-रूप, काम-युक्त, ( चित्तको ) रञ्जित करनेवाला, चक्षुसे विज्ञेय (= जानने योग्य ) रूप । ( २ ) इष्ट कान्त ० श्रोत्र-विज्ञेय शब्द । ( ३ ) ० ग्राण-विज्ञेय गंध । ( ४ ) ० जिह्वा-विज्ञेय रस । ( ५ ) ० काय-विज्ञेय स्पर्श । महानाम ! वह पाँच काम-गुण हैं । महानाम ! इन पाँच काम गुणोंके कारण जो सुख या सौमनस्य (= दिलकी खुशी ) उत्पन्न होता है, वही कामोंका आस्वाद है ।

“महानाम ! कामोंका आदिनव (= दुष्परिणाम ) क्या है ? महानाम ! कुल-पुत्र जिस किसी शिल्पसे—चाहे सुद्रासे, या गणनसे, या संस्त्रानसे, या कृषिसे, या वाणिज्यसे, गोपालन से, या वाण-अश्वसे, या राजाकी नौकरी (= राज-पोरिस ) से, या किसी ( अन्य ) शिल्पसे, शीत-उष्ण-पीडित (= ० पृस्कृत ), ईश-मच्छर-हवा-भूष-सरीसृप (= साँप बिच्छू आदि ) के स्पर्शसे उत्पीडित होता, भूख प्याससे मरता, जीविका करता है । महानाम ! वह कामोंका दुष्परिणाम है । इसी जन्ममें ( यह ) दुःखोंका पुंज (= दुःख-स्कंध ) काम-हेतु = काम-निदान, काम-अधिकरण (= ० विषय ) कामोंको कारण है । महानाम ! उस कुल-पुत्रको यदि इस प्रकार उद्योग करते= उत्थान करते, मेहनत करते, वह भोग नहीं मिलते ( तो ) वह शोक करता है, दुःखी होता है, चिन्हाता है, घाती पीटकर कंदन करता है, मूर्छित होता है—‘हाय ! मेरा प्रयत्न व्यर्थ हुआ, मेरी मेहनत निष्फल हुई !’ महानाम ! यह भी कामोंका दुष्परिणाम ०, इसी जन्ममें दुःख-स्कंध ० । यदि महानाम ! उस कुलपुत्रको इस प्रकार उद्योग करते ० वह भोग मिलते हैं । तो वह उन भोगोंकी रक्षाके विषयमें दुःख = दौर्मनस्य झेलता है—‘कहीं मेरे भोगको राजा न हर लेजायें, चोर न हर लेजायें, आग न डाहे, पानी न बहावे, अ-प्रिय-दायाद न लेजायें’ । उसके इस प्रकार रक्षा-गोपन करते उन भोगोंको राजा लेजाते हैं ०; वह शोक करता है ०—‘जो भी मेरा था, वह भी मेरा नहीं है’ । महानाम ! यह भी कामोंका दुष्परिणाम ० ।

“और फिर महानाम ! कामोंके हेतु = कामनिदान, कामोंके श्रमवे (= अधिकरण ) से कामोंके लिये राजा भी राजाओंसे झगड़ते हैं, क्षत्रिय लोग क्षत्रियोंसे ०, ब्राह्मण ब्राह्मणोंसे ०, गृहपति (= वैश्य ) गृहपतियोंसे ०, माता पुत्रके साथ ०, पुत्र भी माताके साथ ०, पिता भी पुत्रके साथ ०, पुत्र भी पिताके साथ ०, भाई भाईके साथ ०, भाई भगिनीके साथ ०, भगिनी भाईके साथ ०, भ्रूज भ्रूजके साथ झगड़ते हैं । वह वहाँ कलह = विग्रह = विवाद करते, एक दूसरे पर हाथोंसे भी आक्रमण करते हैं, पैरोंसे भी ०, दंडोंसे भी ०, शस्त्रोंसे भी आक्रमण करते हैं । वह वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, या मृत्यु-समान दुःखको । महानाम ! यह भी कामोंका दुष्परिणाम ० ।

“और फिर महानाम ! कामोंके हेतु ० बाल-तलवार (= असि-चम्म ) लेकर, धनुष (= धनुष-कलाप = धनुष-लकड़ी ) चढ़ाकर, दोनों ओरसे व्यूह रचे संग्राममें दौड़ते हैं । पाणोंके चलाये जाते-में, शक्तियोंके फेंके जातेमें, तलवारोंकी चम्मकमें, वह पाणोंसे किड़ होते हैं, शक्तियोंसे ताड़ित होते हैं, तलवारसे शिर-छिन्न होते हैं । वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, या मृत्यु-समान दुःखको । यह भी महानाम ! कामोंका दुष्परिणाम ० ।

“और फिर महानाम ! कामोंके हेतु ०, तलवार लेकर, धनुष चढ़ाकर, भोगे-लिये हुये प्राकारों (= उपकारी = शहर-पनाह ) को दौड़ते हैं । पाणोंके चलाये जातेमें ० । वह वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं ० । यह भी महानाम ! कामोंका दुष्परिणाम ० ।

“और फिर महानाम ! कामोंके हेतु ० संघ भी लगाते हैं, ( गाँव ) उजाड़ कर लेजाते हैं, खोरी (= एकागारिक = एक घरको घेरकर सुराहा ) भी करते हैं, रहजनी (= परिपन्थ )



हैं, पर-स्त्री-गमन भी करते हैं। तब उसको राजा लोग पकड़ कर नाना प्रकारकी सजा (= कर्म-करण) कराते हैं—बाहुकसे पिटाते हैं, बेंतसे भी ०, सुमांगा करते हैं, हाथ भी काटते हैं, पैर भी काटते हैं, हाथ पैर भी काटते हैं। कान भी ०, नाक भी ०, कान-नाक भी ० 'विलंगव्यालिक भी करते हैं, शंख-सूर्यिका भी ०, राहुमुख भी ०, ज्योतिर्मालिका भी ०, हस्त-प्रज्ज्योतिका भी ०, परक-वर्तिका भी ०, चीरक-वासिका भी ०, ऐशेयक भी ०, वडिश-भासिका भी ०, कार्पापणक भी ०, क्षारापनच्छिक भी ०, परिघ-परिवर्तिका भी ०, पलाल-पीठक भी ०, तपाये तेलसे भी नहलाते हैं, कुत्तोंसे भी कटवाते हैं, जीते जी शूलोपर चढ़वाते हैं, तलवारसे शीश कटवाते हैं। वह वहाँ मरणको प्राप्त होते हैं, मरण-समान दुःखोंको भी। यह भी महानाम ! कामोंका दुष्परिणाम ०।

“और फिर महानाम ! कामके हेतु ० कायासे दुष्परित (= पाप) करते हैं, वचनसे ०, मनसे ० यह वह काय ०-वचन ०-मनसे दुष्परित करके, शरीर छोड़नेपर मरनेके बाद, जन्माय = दुर्गति = विनिपात, निरव ( नर्क ) में उत्पन्न होते हैं। महानाम ! जन्मान्तरमें यह कामोंका दुष्परिणाम दुःख-पुंज काम-हेतु = काम-निदान, कामोंका अगवा कामों हीके लिये होता है।

एक समय महानाम ! मैं राजगृहमें गृध्रकुट पर्वतपर विहार करता था। उस समय बहुतसे निर्गन्ध (= जैन-साधु) क्षपिगिरिकी कालशिलापर खड़े रहने (का मत) ले, आसन छोड़, उपवास करते, दुःख, कष्ट, तीव्र, वेदना झेल रहे थे। तब मैं महानाम ! सायंकाल ध्यानसे उत्थन, तहाँ क्षपिगिरिके पास कालशिला थी, जहाँपर कि वह निर्गन्ध थे, वहाँ गया। जाकर उन निर्गन्धोंसे बोला—‘आवुसो ! निर्गन्धो ! तुम यहाँ क्यों हो, आसन छोड़ें’ दुःख, कष्ट, तीव्र वेदना झेल रहे हो !’ ऐसा कहनेपर उन निर्गन्धोंने कहा—‘आवुस ! निर्गन्ध नाथपुत्त (= जैनतीर्थंकर महावीर ) सर्वज्ञ-सर्वदर्शी, आप अखिल (= अपरितोष) ज्ञान = दर्शनको जानते हैं—‘छलते, खड़े, सोते, जागते, सदा निरन्तर (उनको) ज्ञान = दर्शन उपस्थित रहता है’। यह ऐसा कहते हैं—‘निर्गन्धो ! जो तुम्हारा पहिलेका किया हुआ कर्म है, उसे इस कड़वी दुष्कर-किया (= तपस्या) से नाश करो, और जो इस वक्त यहाँ काय-वचन-मनसे संवृत (= पाप न करनेके कारण रक्षित, गुप्त) हो, यह भविष्यके लिये पापका न करना हुआ। इस प्रकार पुराने कर्मोंका तपस्यासे अन्त होनेसे, और नये कर्मोंके न करनेसे, भविष्यमें चित्त अन्-आख्य (= निर्मल) होगा। भविष्यमें आत्मन न होनेसे, कर्मका क्षय ( होगा ), कर्म-क्षयसे दुःखका क्षय; दुःख-क्षयसे वेदना (= झेलना) का क्षय, वेदना-क्षयसे सभी दुःख-नष्ट होंगे। इन्हीं वह ( विचार ) रुचता है = समता है, इससे हम संतुष्ट हैं।’

‘ऐसा कहनेपर मैंने महानाम ! उन निर्गन्धोंसे कहा—‘क्या तुम आवुसो ! निर्गन्धो ! जानते हो ‘हम पहिले थे ही, हम नहीं न थे ?’ ‘वहीं आवुस !’ ‘क्या तुम आवुसो ! निर्गन्धो ! यह जानते हो—‘हमने पूर्वमें पापकर्म किये ही हैं, नहीं नहीं किये ?’ ‘नहीं आवुस !’ ‘क्या तुम आवुसो ! निर्गन्धो ! यह जानते हो—असुक असुक पाप कर्म किये हैं ?’ ‘नहीं आवुस !’ ‘क्या तुम आवुसो ! निर्गन्धो ! जानते हो, इतना दुःख नाश होगया, इतना दुःख नाश करना है, इतना दुःखनाश होनेपर सब दुःख नाश हो जायेगा ?’ ‘नहीं आवुस !’ ‘क्या तुम आवुसो ! निर्गन्धो ! जानते हो—इसी जन्ममें अकुशल (= धुरे ) धर्मोंका प्रहाण (= विनाश ), और कुशल (= अच्छे ) धर्मोंका लाभ ( होगा है ) ?’ ‘नहीं आवुस !’ ‘इस प्रकार ० निर्गन्धो ! तुम नहीं जानते—हम पहिले थे, या नहीं ०। इसी जन्ममें अकुशल धर्मोंका प्रहाण, और कुशल धर्मोंका



लाभ (होना है) । ऐसा ही होने (ही)से तो आबुस ! निर्गंठो ! जो लोकमें रुढ़ (= भयंकर) खून-रंते-हाथवाले, दूर-कर्मों, मनुष्योंमें बीच जातिवाले (= पशुजाता) हैं, वह निर्गंठोंमें साधु बनते हैं । 'आबुस ! गौतम ! सुखसे सुख प्राप्य नहीं है, दुःखसे सुख प्राप्य है । आबुस ! गौतम ! यदि सुखसे सुख प्राप्य होता, तो राजा मागध श्रेणिक विषसार सुख प्राप्त करता । राजा मागध श्रेणिक विषसार आयुष्मान् (= आप) से बहुत सुख-विहारी है । 'आयुष्मान् निर्गंठोंने अवश्य, बिना विचारे जल्दीमें यह बात कही । 'आबुस ! गौतम ! सुखसे सुख नहीं प्राप्य है, दुःखसे सुख प्राप्य है । सुखसे यदि आबुस ! गौतम ! सुख प्राप्त होता, तो राजा मागध श्रेणिक विषसार सुख प्राप्त करता, राजा मागध श्रेणिक विषसार आयुष्मान् गौतमसे बहुत सुख-विहारी है । (आप लोगोंको) तो सुख ही पूछना चाहिये—आयुष्मानोंके लिये कौन अधिक सुख विहारी है, राजा ० विषसार या आयुष्मान् गौतम ? 'अवश्य आबुस ! गौतम ! हमने बिना विचारे जल्दीमें बात कही । नहीं आबुस ! गौतम ! सुखसे सुख प्राप्य है ० । जाने दीजिये इसे, अब हम आयुष्मान् गौतमसे पूछते हैं—आयुष्मानोंके लिये कौन अधिक सुख-विहारी है, राजा ० विषसार या आयुष्मान् गौतम ? 'तो आबुसो ! निर्गंठो तुमको ही पूछते हैं, जैसा तुम्हें ज्ञेय, वैसा उत्तर दो । तो क्या मानते हो आबुसो ! निर्गंठो ! क्या राजा ० विषसार कायासे बिना हिले, वचनसे बिना बोले, सात रात-दिन केवल (= एकांत) सुख अनुभव करते विहार कर सकता है ? 'नहीं आबुस ! 'तो क्या मानते हो, आबुसो ! निर्गंठो ! ० छः रात-दिन केवल सुख अनुभव करते विहार कर सकता है ? 'नहीं आबुस ! '० पाँच रात-दिन ० '० चार रात-दिन ० '० तीन रात-दिन ० '० दो रात-दिन ० '० एक रात-दिन ० ? 'नहीं आबुस ! 'आबुसो ! निर्गंठो ! मैं कायासे बिना हिले, वचनसे बिना बोले एक रात-दिन ०, दो रात-दिन ०, तीन रात-दिन ०, चार ०, पाँच ०, छः ०, सात रात-दिन केवल-सुख अनुभव करता विहार कर सकता हूँ । तो क्या मानते हो आबुसो ! निर्गंठो ! ऐसा होनेपर कौन अधिक सुख-विहारी है । राजा मागध श्रेणिक विषसार, या मैं ? 'ऐसा होनेपर तो राजा मागध श्रेणिक विषसारसे आयुष्मान् गौतम ही अधिक सुख-विहारी हैं ।"

भगवान् ने, यह कहा, महानाभ धावयने सन्तुष्ट हो भगवान् के भाषणका अभिनन्दन किया ।

## १५-अनुमान-सुचन्त (१।२।५)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय आयुष्मान् महामौद्गल्यायन आर्या<sup>१</sup> ( देव ) में, सुंस्तुमार-गिरि<sup>२</sup> के भेषकलावन भुगदावमें विहार करते थे। वहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने भिक्षुओंको संबोधित किया—  
“आवुसो भिक्षुओ !”

“आवुस !” ( कह ) उन भिक्षुओंने आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको उत्तर दिया ।

आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने यह कहा—

१—“चाहे आवुसो ! भिक्षु ( जधानी ) यह कहता भो हे—आयुष्मान् कहें, मैं आयुष्मानोंके वचन ( = दोष दिखानेवाले शब्द ) का पात्र हूँ; किन्तु यदि वह दुर्वचनी है, दुर्वचन पैदा करनेवाले धर्मोंसे युक्त है; और अनुशासन ग्रहण-करनेमें अ-श्रम ( = असमर्थ ) अ-प्रवृत्ति-प्राही ( = उत्साह-रहित ) है। तो फिर स-ब्रह्मचारी न तो उसे ( शिक्षा ) वचनका पात्र मानते हैं, न अनुशासनीय मानते हैं; न उस व्यक्तिमें विद्यालोत्पन्न करना ( उचित ) मानते हैं।

“आवुसो ! कौनसे हैं दुर्वचन पैदा करनेवाले धर्म ?—यहाँ आवुसो ! भिक्षु पापेच्छ ( = चदनीय ) हो, पापिका ( = बुरी ) इच्छाओंके बसीभूत होता है। जो कि आवुसो ! भिक्षु ० पापिका इच्छाओंके बसीभूत है, वह भी आवुसो ! दुर्वचन पैदा करनेवाला धर्म ( = पात ) है।

“और फिर आवुसो ! भिक्षु आत्मोत्कर्षक ( = अपनी उन्नति या प्रशंसा चाहनेवाला ) होता है, और दूसरोंकी पतन ( या निंदा ) चाहनेवाला । ० वह भी आवुसो दुर्वचन पैदा करनेवाला धर्म है।

“और फिर आवुसो ! भिक्षु क्रोधी होता है, क्रोधके बसीभूत ० । ० ।

“ ० भिक्षु क्रोधी होता है, क्रोधके हेतु उपमाह ( = डोंग ) से युक्त होता है ० । ० ।

“ ० भिक्षु क्रोधी होता है, क्रोधके हेतु अभिपंग ( = डाह ) से युक्त होता है ० । ० ।

“ ० भिक्षु क्रोधी होता है, क्रोधपूर्ण वाणीका निकालनेवाला होता है ० । ० ।

“ ० भिक्षु दोष दिखलानेपर दोष दिखलानेवालेके लिये प्रतिस्फुरण ( = प्रतिहिंसा ) करता है ० । ० ।

“ ० भिक्षु दोष दिखलानेसे, दोष दिखलाने वाले को नाराज करता है ० । ० ।

“ ० भिक्षु दोष दिखलानेसे, दोष दिखलानेवालेपर उल्टा आरोप करता है ० । ० ।

<sup>१</sup> सर्व आचक्यके मिर्जापुर जिलेका गंगासे दक्षिणी भाग और कुछ आसपासका प्रदेश है, रसकी सोमा-गंगा-दोस-कर्मनाश नदियाँ एवं विष्णुपर्वतका कुछ भाग रहा होगा ।

<sup>२</sup> वर्तमान नुसार ( वि० मिर्जापुर, युक्त प्रान्त ) ।



“० मिथु दोष दिखलानेपर दोष दिखलानेवालेके साथ दूसरी दूसरी ( बात ) ले लेता है, बातको ( प्रकरणसे ) बाहर ले जाता है; कोप, द्वेष, अप्रत्यय ( = नाराजगी ) उत्पन्न करता है ० । ० ।

“० मिथु दोष दिखलानेपर, दोष दिखलानेवालेके साथ अपदान ( = साथ छोड़ना ) अन्तःप्रापण ( = अ-स्वीकार ) करता है ० । ० ।

“और फिर आतुसो ! मिथु घसी ( = अमरली ) और प्रदाशी । ( = निष्ठुर ) होता है ० । ० ।

“० ईर्ष्यालु और मत्सरी होता है ० । ० ।

“० शठ और मायावी ० । ० ।

“० सख ( = जड़ ) और अतिमानवी ( = अभिमानवी ) ० । ० ।

“० संदृष्टिपरामर्षी ( = तुरस्त लाभ चाहनेवाला ) और आपानग्राही ( = हठी ) और दुष्प्रति निस्सर्गी ( = न त्यागनेवाला ) होता है ० । ० ।

२—“बाहे आतुसो ! मिथु ( = यह न भी कहता है—‘आयुष्मान् कहे’ ०; किन्तु यदि वह सुवचनी है, और सुवचन पैदा करनेवाले धर्मोंसे युक्त है; और वह अनुशासन ग्रहण करनेमें भ्रम ( = समर्थ ) प्रदक्षिण-ग्राही ( = उत्साहसे ग्रहण करनेवाला ) है; तो फिर समग्रधारी उसे ( उप-देशयुक्त ) वचनका पात्र मानते हैं, अनुशासनीय मानते हैं, उस व्यक्तिमें विश्वास उत्पन्न करना ( उचित ) मानते हैं ।

“आतुसो ! कौनसे हैं सुवचन पैदाकरनेवाले धर्म ?—यहाँ आतुसो ! मिथु न पापेच्छ होता है, न बुरी इच्छाओंके वशीभूत । जो कि आतुसो ! मिथु न पापेच्छ है, न बुरी इच्छाओंके वशी-भूत; वह भी आतुसो ! सुवचन पैदाकरनेवाला धर्म है ।

“और फिर आतुसो ! मिथु न आत्मोत्कर्षक होता, न पर-अपकर्षक । ० यह भी आतुसो ! सुवचन पैदा करनेवाला धर्म है ।

“० न कोपी होता है, न कोषादभिभूत ० । ० ।

“० न कोपी ० न कोषके हेतु उपनाही ० । ० ।

“० न कोपी ० न कोषके हेतु अभिपंगी ० । ० ।

“० न कोपी ० न कोषपूर्ण बातोंका करनेवाला होता है ० । ० ।

“० दोष दिखलानेपर दोष दिखलानेवालेको प्रतिस्फरण ( = प्रतिहिंसा ) नहीं करता है ० । ० ।

“० न ० नाराज करता है ० । ० ।

“० न ० द्रष्टा आरोप करता है ० । ० ।

“० न ० दूसरी दूसरी बात ले लेता है, न बातको प्रकरणसे बाहर लेजाता है, न कोप, द्वेष, अप्रत्यय उत्पन्न करता है ० । ० ।

“० न ० अपदान अन्तःप्रापण करता है ० । ० ।

“० न घसी न प्रदाशी होता है ० । ० ।

“० न ईर्ष्यालु और न मत्सरी होता है ० । ० ।



“० न शठ और न मायावी ० । ० ।

“० न स्वयं (= जड़ ) और न अतिमानी (= अभिमानी ) ० । ० ।

“० न सन्दृष्टिपरामर्शी न आधानग्राही (= हठी ) और ० सुप्रति-निस्सर्ग होता है ।

३—“वहाँ आबुसो ! भिक्षु अपने ही अपनेको इस प्रकार समझावे (= अनुमान करे ) जो व्यक्ति पापेच्छ है, पापिका इच्छाके वशीभूत है, वह पुद्गल सुखे अप्रिय = अमनाप है । और मैं भी तो पापेच्छ हूँ, पापिका इच्छाके वशीभूत हूँ; ( इसलिये ) मैं भी दूसरोंको अप्रिय = अमनाप होऊँगा—यह जानते हुये आबुसो ! भिक्षुको ऐसा चित्त उत्पन्न करना चाहिये—मैं पापेच्छ नहीं होऊँगा, मैं पापिका इच्छाओंके वशीभूत नहीं होऊँगा ।

“जो पुद्गल आत्मोत्कर्षक होता है, और पर-अपकर्षक, वह सुखे अप्रिय = अमनाप होता है, और ( यहाँ ) मैं ही आत्मोत्कर्षक, और पर-अपकर्षक हूँ; ( इसलिये ) मैं भी दूसरोंको अप्रिय = अमनाप होऊँगा—यह जानते हुये आबुसो ! भिक्षुको ऐसा चित्त उत्पन्न करना चाहिये—मैं आत्मोत्कर्षक नहीं होऊँगा, मैं पर-अपकर्षक नहीं होऊँगा ।

“जो पुद्गल क्रोधी होता है, क्रोधके वशीभूत ० ।

“० क्रोधी होता है, क्रोधके हेतु उपनाही ० ।

“० क्रोधी ० क्रोधके हेतु अभिपंगी ० ।

“० क्रोधी ० क्रोध-पूर्ण वचन निष्कामनेवाला ० ।

“जो पुद्गल दोष दिखाये जानेपर, दोष दिखलानेवालेको प्रति-स्फरण करता है ० ।

“० दोष दिखलानेवालेको नाराज कराता है ० ।

“० दोष दिखलानेवालेपर उल्टा आरोप करता है ० ।

“० दूसरी दूसरी बात ले लेता है, बातको प्रकरणसे बाहर ले जाता है; क्रोध, द्वेष अप्रत्यय (= नाराजगी ) उत्पन्न करता है ० ।

“० अपह्वान और सम्प्रायण करता है ० ।

“० झूठी और प्रदायी होता है ० ।

“० ईर्ष्यालु और अस्वसरी होता है ० ।

“० शठ और मायावी होता है ० ।

“० स्वयं और अतिमानी होता है ० ।

“जो पुद्गल सन्दृष्टि-परामर्शी आधानग्राही और सुप्रति-निस्सर्ग होता है, वह पुद्गल सुखे अप्रिय है (= अमनाप है ) और यहाँ मैं ही हूँ, सन्दृष्टि-परामर्शी ०; ( इसलिये ) मैं भी दूसरोंको अप्रिय = अमनाप होऊँगा—यह जानते हुये आबुसो ! भिक्षुको ऐसा चित्त उत्पन्न करना चाहिये—मैं सन्दृष्टि-परामर्शी ० नहीं होऊँगा ।

४—“वहाँ आबुसो ! भिक्षुको अपने आप इस प्रकार प्रत्यवेक्षण (= परीक्षण ) करना चाहिये—ज्या मैं पापेच्छ हूँ, पापिका इच्छाओंके वशीभूत हूँ । यदि आबुसो ! भिक्षु प्रत्यवेक्षण करते देखे, कि वह पापेच्छ है, पापिका इच्छाओंके वशीभूत है; तो आबुसो ! उस भिक्षुको उन बुरे = अकुशल धर्मों (= बातों ) के परित्यागके लिये उद्योग करना चाहिये । परन्तु यदि आबुसो ! भिक्षु प्रत्यवेक्षण करते देखे, कि वह पापेच्छ नहीं है, पापिका इच्छाओंके वशीभूत नहीं है; तो आबुसो ! उस भिक्षुको उसी प्रीति = प्रामोद्य (= खुशी ) के साथ रात दिन कुशल धर्मों (= अच्छी बातों ) को सीखते विहार करना चाहिये ।

“और फिर आबुसो ! भिक्षुको अपने आप इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—ज्या मैं

आत्मोत्कर्षक हूँ, पर-अपकर्षक । यदि ० ।

“ ० — क्या मैं कोधी, कोधके वशीभूत हूँ ० ।

“ ० — क्या मैं कोधी, कोध-हेतु उपनाही हूँ ० ।

“ ० — क्या मैं कोधी, ० अभिषंसी ० ।

“ ० — क्या मैं कोधी, ० कोध-पूर्ण वचन निकालनेवाला ० ।

“ ० — क्या मैं दोष दिखाने जानेपर, दोष दिखानेवालेका प्रतिस्फुरण (= प्रतिहिंसा) करता हूँ ० ।

“ ० — ०, दोष दिखानेवालेको नाराज करता हूँ ० ।

“ ० — ० दोष दिखानेवालेपर उफ्टा आरोप करता हूँ ० ।

“ ० — ० दूसरी दूसरी बात ले लेता हूँ, बातको प्रकरणसे बाहर ले जाता हूँ, कोप, ईर्ष्या, अप्रसन्न उत्पन्न करता हूँ ।

“ ० — ० अपदान और सम्प्राप्ति करता हूँ ० ।

“ ० — ० भ्रष्टी और प्रदासी हूँ ० ।

“ ० — ० ईर्ष्यालु और भ्रष्टरी हूँ ० ।

“ ० — ० शठ और मायावी हूँ ० ।

“ ० — ० सन्ध और अतिमायी हूँ ० ।

“ ० — ० सन्ध-परामर्शी, आधानग्राही और दुष्प्रति-निस्कर्षी हूँ ० रात दिन कुशल धर्मोंको सीखता विहार करना चाहिये ।

“यदि आनुसो ! भिक्षु प्रत्यवेक्षण करते अपनेमें सभी पापक = अकुशल-धर्मों (= बुराइयों) को अप्रहीण (= अ-परिलक्ष्य) देखे, तो आनुसो ! उस भिक्षुको उन सभी पापक = अकुशल धर्मोंके प्रहाण (= नाश) के लिये प्रयत्न करना चाहिये । किन्तु यदि आनुसो ! भिक्षु प्रत्यवेक्षण करते अपनेमें सभी बुरे = अकुशल धर्मोंको प्रहीण समझे, तो आनुसो ! उस भिक्षुको उसी प्रीति = प्रामोद-के साथ रात दिन कुशल धर्मोंका अभ्यास करते विहार करना चाहिये ।

“जैसे आनुसो ! वृद्ध (= कमसिन) युवा शौकीन स्त्री पुरुष परिशुद्ध उज्जल आदर्श (= दर्पण) या स्वच्छ जलपात्रमें अपने मुखके प्रतिविम्बको देखते हुये—यदि वहाँ रज (= मैल) = अंगणको देखता है, तो उस रज या अंगणके प्रहाण (= दूर करने) की कोशिश करता है; यदि वहाँ रज या अंगण नहीं देखता, तो उसीसे सन्तुष्ट होता है—‘अहो ! लाभ है मुझे ! परिशुद्ध है मेरा ( मुख ) !!!’ ऐसेही आनुसो ! यदि भिक्षु प्रत्यवेक्षण कर अपने सभी पापक = अकुशल धर्मोंको अप्रहीण देखे, तो ० प्रयत्न करना चाहिये । किन्तु यदि आनुसो ! ० सीखते विहार करना चाहिये ।”

आयुष्मान् महाभौद्गल्यायनने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने जा. महाभौद्गल्यायन के भाषणका अभिनन्दन किया ।



## १६-चेतोखिल-सुत्तन्त ( १।२।६ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।  
वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भवन्त” — ( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

१—भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! जिस किसी भिक्षुके पाँच चेतोखिल ( = चित्तके कौल ) यह ( = प्रहीण ) नहीं हुये, पाँच चित्तमें यह हैं, छिन्न नहीं हैं, वह इस धर्म-विनय ( = बुद्ध-धर्म )में वृद्धि = विरुद्धिको प्राप्त होगा, यह सम्भव नहीं । कौनसे इसके पाँच चेतोखिल अप्रहीण हों ?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु सास्ता ( = आचार्य )में काशा = विचिकित्सा ( = संदेह ) करता है, ( संशयसे ) मुक्त नहीं होता, प्रसङ्ग ( = अद्वास्तु ) नहीं होता, ( इसलिये ) उसका चित्त आतप्य ( = तीव्र उद्योग ) के लिये, अनुयोग, सातत्त्व ( = निरन्तर अभ्यास ) ( और ) प्रधान ( = इदं उद्योग ) के लिये नहीं शुकता । जो कि उसका चित्त आतप्यके लिये नहीं शुकता, यह उसका प्रथम चेतोखिल अ-प्रहीण है ।

“और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु धर्ममें ० <sup>१</sup> द्वितीय ० ।

“और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु संघमें ० <sup>१</sup> तृतीय ० ।

“ ० शीलमें ० <sup>१</sup> चतुर्थ ० ।

“ ० समग्रचारियोंके विषयमें कुपित, अत्यन्तुष्ट, दूषित-चित्त, शिलजात ( = काँटा बना ) होता है । जो कि भिक्षुओ ! जो वह भिक्षु समग्रचारियोंके विषयमें ० शिलजात होता है, ( इसलिये ) उसका चित्त तीव्र उद्योगके लिये नहीं शुकता, जो कि उसका चित्त तीव्र उद्योग ० के लिये नहीं शुकता, यह उसका पंचम चेतोखिल अप्रहीण है ।

“यह इसके पाँचों चेतोखिल अप्रहीण होते हैं ।

“कौनसे इसके पाँच चित्त-बन्धन ( जेतसोविनिबन्ध ) अ-स्मुच्छिन्न ( = न कटे ) होते हैं ?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु कामों ( = भोगों )में अ-वीतराग = अ-वीतच्छन्द = अ-वीत-प्रेम, अविगतपिपास ( = जिसकी प्यास इटी नहीं ), अ-विगत-परिदाह ( = जिसकी जलन गई नहीं ), अ-विगत-वृष्णा होता है । जो कि भिक्षुओ ! भिक्षु कामोंमें ० अविगत वृष्णा होता है, इसलिये उसका चित्त ० नहीं शुकता; यह उसका प्रथम चित्त-बन्धन छिन्न नहीं हुमा है ।

“और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु कायामें अ-वीत-राग ० <sup>१</sup>; यह उसका द्वितीय ० ।

“ ० रूपमें अवीतराग ०० <sup>१</sup>; यह तृतीय ० ।

<sup>१</sup> ऊपरके पैरा जैसा ।



“और फिर भिक्षुओं ! यथेष्ट उदरपूर भोजन करके शय्या-सुख, स्पर्श-सुख, सृष्ट ( = जालस्य )-सुखमें फैला विहरता है । जो कि, भिक्षुओं ! ०<sup>१</sup>; यह उसका चतुर्थ ० ।

“और फिर भिक्षुओं ! भिक्षु किसी देव-निकाय देवयोगिका प्रणिधान ( = एह कामना ) करके ब्रह्मचर्य चरण करता है—इस शील, मत्त, तप, या ब्रह्मचर्यसे मैं देवता या देवतामेंसे कोई हों । जो कि भिक्षुओं ! ०<sup>२</sup>; यह उसका पंचम चित्त-बंधन छिन्न नहीं हुआ है ।

“यह उसके पाँच चेतसो-विनिबंध ( = चित्त-बंधन ) अ-समुच्छिन्न होते हैं । भिक्षुओं ! जिस किसी भिक्षुके यह पाँच चेतोखिल अग्रहीण हैं, यह पाँच चित्त-विनिबन्धन अ-समुच्छिन्न हैं, यह इस धर्ममें वृद्धि-विरुद्धिको प्राप्त होगा, यह संभव नहीं ।

२—“भिक्षुओं ! जिस किसी भिक्षुके पाँच चेतोखिल ग्रहीण हैं, पाँच चेतसो विनिबंध समुच्छिन्न हैं । यह इस धर्ममें वृद्धि-विरुद्धिको प्राप्त होगा, यह संभव है ।

“कौनसे इसके पाँच चेतोखिल ग्रहीण हैं ? ० यहाँ भिक्षुओं ! भिक्षु शास्त्रात्मं काशा-विचिकित्सा नहीं करता, ( संशय- ) मुक्त होता है, प्रसन्न होता है; ( इसलिये ) उसका चित्त आतप्य ०<sup>३</sup> के लिये झुकता है । जो कि उसका चित्त तीन उपयोगके लिये झुकता है; यह उसका प्रथम चेतोखिल ग्रहीण हुआ ।

“और फिर भिक्षुओं ! भिक्षु धर्ममें ०<sup>१</sup>; ० द्वितीय ० ।

“ ० संघमें ०<sup>२</sup>; ० तृतीय ० ।

“ ० शिक्षामें ०<sup>३</sup>; ० चतुर्थ ० ।

“ ० सव्यवहारियोंके विषयमें कुपित, असन्तुष्ट, दूषित-चित्त, खिलजात ( = काँटे सा ) नहीं होता; जो वह ०<sup>४</sup>; पंचम ० ।

“यह उसके पाँच चेतोखिल ग्रहीण होते हैं ।

“कौनसे इसके पाँच चेतसो-विनिबंध ( = चित्तके बंधन ) समुच्छिन्न होते हैं ?—यहाँ भिक्षुओं ! भिक्षु कामोंमें वीतराग=वीतच्छन्द=वीतप्रेम, विगत-विषास, विगत-परिदाह, विगत-मृण होता है; जो कि भिक्षुओं ! भिक्षु कामोंमें वीतराग ० होता है; इसलिये उसका चित्त आतप्य ०<sup>५</sup> झुकता है; यह उसका प्रथम चेतसो-विनिबंध समुच्छिन्न हुआ ।

“और फिर भिक्षुओं ! भिक्षु कायामें वीतराग ०<sup>१</sup> द्वितीय ० ।

“ ० रूपमें वीतराग ०<sup>२</sup> तृतीय ० ।

“ ० यथेष्ट उदरपूर भोजन करके शय्या-सुख, स्पर्श-सुख, सृष्ट-सुखमें फैला नहीं विहरता । जो कि भिक्षुओं ० चतुर्थ ० ।

“और फिर भिक्षुओं ! भिक्षु किसी देव-निकाय<sup>६</sup> का प्रणिधान करके ब्रह्मचर्य चरण नहीं करता—०<sup>१</sup> । जो कि भिक्षुओं ! ० यह उसका पंचम चेतसो विनिबंध छिन्न हुआ ।

“यह उसके पाँच चेतसो-विनिबंध समुच्छिन्न हुये ।

“भिक्षुओं ! जिस किसी भिक्षुके पाँच चेतोखिल ग्रहीण हैं, पाँच चेतसो-विनिबन्ध समुच्छिन्न हैं, यह इस धर्ममें वृद्धि-विरुद्धिको प्राप्त होगा, यह सम्भव है ।

“यह (१) छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कार-शुक्ल श्रद्धिपाद<sup>७</sup> की भावना करता है; (२) यह

<sup>१</sup> ऊपरके पैरा जैसा । <sup>२</sup> देखो पृष्ठ ६५ । <sup>३</sup> ऊपरके पैरा जैसा । <sup>४</sup> भिक्षुओं पृष्ठ ६५ ।

<sup>५</sup> ऊपरके पैरा जैसा । <sup>६</sup> भिक्षुओं ऊपर । <sup>७</sup> यही चार श्रद्धिपाद या श्रद्धिर्वी है, पंचम कसोढ़ि है ।

वीर्य-समाधि=प्रधान-संस्कार-युक्त कद्विपाद की भावना करता है; (३) वह चित्त समाधिके प्रधान संस्कारसे युक्त ०; (४) वह समाधि-इन्द्रियके प्रधान संस्कारसे युक्त कद्विपादकी भावना करता है। विमर्श समाधिके प्रधान-संस्कारसे युक्त कद्विपादकी भावना है। ( यह ) पाँचवाँ ( विमर्श समाधि-प्रधान संस्कार युक्त कद्विपाद, उत्सोदि (= उत्साह ) है। भिक्षुओ ! सो वह भिक्षु उत्सोदिके पन्द्रह अंगोंसे युक्त निर्वेद (= वैराग्य ) के लिये योग्य है, संघोधि (= परमज्ञान ) के लिये योग्य है, सर्वोपम (= अनुत्तर ) योगक्षेम (= निर्वाण ) की प्राप्तिके लिये योग्य है।

“जैसे भिक्षुओ ! आठ, दस या बारह सुर्गोंके ध्वज हों, वह सुर्गोंद्वारा भली प्रकार सेये-परिस्तेदित, परिभावित हों; चाहे सुर्गोंकी यह इच्छा न भी हो—‘अहोवत ! मेरे चूजे (=कुच्छुट-पोतक) पादनखसे या मुखतुंडसे अंडेको फोड़कर स्वस्तिपूर्वक निकल जायें।’ तो भी वह चूजे पादनखसे, या मुखतुंडसे अंडेको फोड़कर स्वस्तिपूर्वक निकल जानेके योग्य हैं, ऐसे ही भिक्षुओ ! उत्सोदिके पन्द्रह अंगोंसे युक्त भिक्षु निर्वेदके लिये योग्य है, सम्बोधिके लिये योग्य है, अनुत्तर योगक्षेमकी प्राप्तिके लिये योग्य है।”

भगवान्ने यह कहा, उन भिक्षुओंने सन्तुष्ट हो, भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया।



## १७-वनपत्य-सुत्तन्त (१।२।७)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तोमें अनाथपिण्डिकके आराम जैतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“अदन्त” ( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! वनपत्य-परियाय ( = नामक उपवेश ) को तुम्हें उपदेशता हूँ; इसे सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ?”

“ऐसा ही मन्ते !” ( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने कहा—“भिक्षुओ ! यहाँ ( कोई ) भिक्षु वनप्रस्थ ( = जंगल ) का आश्रय लेकर विहरता है। वनप्रस्थका आश्रय ले विहरते ( भी ) उसकी अनुपस्थित स्मृति उपस्थित नहीं होती; असमाहित चित्त, समाहित ( = एकाम्र ) नहीं होता; अपरिक्षीण आश्रय ( = मल ) परिक्षीण ( = गृष्ट ) नहीं होते; अलब्ध अनुत्तर योग-क्षेम ( = निर्वाण ) उपलब्ध नहीं होता। प्रव्रजित ( = सन्त्यासी ) के लिये जो यह अपेक्षित सामग्रियाँ हैं—चीवर ( = वस्त्र ), पिण्डपात ( = भिक्षान्न ), शयनासन, ग्लान-प्रत्यय-भेषज्य ( = रोगीके पथ्य औषध ) के सामान, वह ( भी ) कठिनाईसे जुटते हैं। भिक्षुओ ! उस भिक्षुको इस प्रकार सोचना चाहिये—‘मैं इस जंगलमें विहर रहा हूँ; किन्तु इस वनमें विहरते ( भी ) मेरी अनुपस्थित स्मृति उपस्थित नहीं होती • जुटते हैं’; और भिक्षुओ ! उस भिक्षुको रातके वक्त या दिनके वक्त उस वनसे चला जाना चाहिये, ( वहाँ ) नहीं बसना चाहिये।

“यहाँ भिक्षुओ ! ( एक ) भिक्षु वनप्रस्थका आश्रय लेकर विहरता है। • उसकी अनुपस्थित स्मृति उपस्थित नहीं होती •<sup>१</sup>, अलब्ध अनुत्तर योग-क्षेम उपलब्ध नहीं होता; किन्तु प्रव्रजितके लिये जो यह अपेक्षित सामग्रियाँ हैं—चीवर • वह आसानीसे जुट जाती है। भिक्षुओ ! उस भिक्षुको इस प्रकार सोचना चाहिये—‘मैं इस वनप्रस्थको आश्रय लेकर • जुट जाती हूँ; लेकिन मैं चीवरके लिये घरसे बेघर हो प्रव्रजित नहीं हुआ, न पिण्डपातके लिये •, न शयनासनके लिये •, न ग्लान-प्रत्यय-भेषज्यके लिये •। और इस वनप्रस्थका आश्रय लेकर विहरते मेरी अनुपस्थित स्मृति उपस्थित नहीं होती •।’ भिक्षुओ ! उस भिक्षुको • उस वनसे चला जाना चाहिये •।

“यहाँ, भिक्षुओ ! • अनुपस्थित स्मृति उपस्थित होती है, असमाहित चित्त समाहित होता है, अपरिक्षीण आश्रय परिक्षीण होते हैं; अप्राप्त अनुत्तर योगक्षेम प्राप्त होता है; किन्तु

<sup>१</sup> पिछले पेरसे भिक्षुओ।

प्रव्रजितके लिये जो वह अपेक्षित सामप्रियाँ हैं—<sup>१</sup>०, वह कठिनाईसे जुटती हैं। भिक्षुओ ! उस भिक्षुको इस प्रकार सोचना चाहिये—०; लेकिन मैं चीवरके लिये घरसे बेघर हो प्रव्रजित नहीं हुआ ० । ० मेरी अनुपस्थित स्मृति उपस्थित होती है ०<sup>१</sup> । भिक्षुओ ! उस भिक्षुको वह जानकर उस वनप्रस्थमें बसना चाहिये, नहीं जाना चाहिये ।

“० उसकी अनुपस्थित स्मृति उपस्थित होती है ०, प्रव्रजितके लिये अपेक्षित साम-प्रियाँ—० आसानीसे मिल जाती हैं । भिक्षुओ ! उस भिक्षुको जीवन भर उसी वनमें बसना चाहिये, नहीं जाना चाहिये ।

“यहाँ भिक्षुओ ! ( यदि ) भिक्षु किसी ग्रामका आश्रय लेकर विहरता है ०<sup>१</sup> । निगम (= कथा ) ०<sup>१</sup> । ० नगर ०<sup>१</sup> । ० व्यक्ति ( = पुरुष ) ०<sup>१</sup> । ० भिक्षुओ ! उस भिक्षुको जीवन भर उस व्यक्तिके साथ रहना चाहिये हटानेपर भी छोड़कर नहीं जाना चाहिये ।”

भगवान्ने यह कहा, समुत्तु हो उन भिक्षुओने भगवान्के सापणका अभिनन्दन किया ।

<sup>१</sup> वनप्रस्थकी तरह यहाँ भी पाठ सुहराना चाहिये ।

## १८—मधुपिंडक-सुत्तन्त (१।२।८)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् शाक्य ( देश )में कपिलवस्तुके न्यग्रोधाराममें विहार करते थे । तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्रचीवर ले कपिलवस्तुमें पिंडधारके लिये प्रविष्ट हुये । कपिल-वस्तुमें पिंडधार करके भोजनोपरान्त पिंडपातसे तिष्ठकर, जहाँ महावन था, वहाँ दिनके विहारके लिये गये । जाकर महावनमें प्रविष्ट हो वेलुव-लट्टिका ( = बाँस ) वृक्षके नीचे बैठे । दण्डपाणि शाक्य भी टहलने ( = वर्षा विहार )के लिये, जहाँ महावन था वहाँ गया । जाकर, महावनमें प्रविष्ट हो, जहाँ वेलुव-लट्टिका ( = वेणुवटिका ) थी, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्के साथ..... ( यथायोग्य कुशल प्रश्न पूछ ) लण्डेके सहारे एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े हो दण्डपाणि शाक्यने भगवान्से यह कहा—

“श्रमण ( आप ) किस वादके माननेवाले, किस ( सिद्धान्त )के वक्ता हैं ?”

“आवुस ! जिस वादका मानने वाला, देव-भार-ब्रह्मासहित सारे लोकमें श्रमण-ब्राह्मण-देव मानुष सारी प्रजामें, लोकमें किसीके साथ विग्रह न करके रहता है; जैसे कामोंसे रहित विहरते हुये उस अकर्मकर्म, छिन्न-कौकृत्य ( = संदेह-रहित ), भव-जन्ममें तृणारहित उस ब्राह्मणको संज्ञा ( = सोच ) नहीं पीछा करती; आवुस ! मैं ऐसे वाद-वाला ऐसे ( सिद्धान्तका ) वक्ता हूँ ।”

ऐसा कहनेपर दण्डपाणि शाक्य शिरको हिला, जीभ चला, ललाटपर तीन बलें चढ़ाकर, डंडा उठा चल दिया ।

तब भगवान् सायंकाल प्रतिसंख्यन ( = एकान्तचिन्तन )से उठकर जहाँ न्यग्रोधाराम था वहाँ गये, जाकर बिछे आसनपर बैठे । बैठ कर भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

“भिक्षुओ ! आज मैं पूर्वाह्न समय पहिन कर पात्रचीवर ले ०<sup>१</sup> डंडा उठा चल दिया ।”

ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्से यह कहा—“भन्ते ! क्या वादी हैं भगवान्, कि, देव-भार-ब्रह्मासहित सारे लोकमें ०<sup>१</sup> संज्ञा नहीं पीछा करती ?”

“भिक्षुओ ! जिसके कारण पुरुषको प्रपंच संज्ञाका ज्ञान ( = संख्या ) आती है, जहाँ अभि-तन्दन योग्य नहीं, अभिवादन योग्य नहीं, शवेषण योग्य नहीं, वही है अन्त राग-अनुशयो ( = रागरूपी मर्ल ) का; ० प्रतिघ ( = प्रतिहिंसा )-अनुशयो का; ० दृष्टि-अनुशयो ०; ० विचिकित्सा-अनुशयो ०; ० मान-अनुशयो ०; ० भयराग-अनुशयो ०; ० अविद्या-अनुशयो ०; वही अन्त है दण्डग्रहण, शस्त्रग्रहण, कलह, विग्रह, विवाद, ‘तू तू मैं मैं’, विभुनता ( = जुगल ),

<sup>१</sup> ऊपर आयेकी पुनरावृत्ति ।



और सुधावाद (= शूठ) का। वहाँ यह पापक=अकुशल धर्म (= बुराईयाँ) निःशेषतया नष्ट हो जाते हैं।”

भगवान् ने यह कहा, यह कहकर सुगत (= बुद्ध) आसनसे उठकर विहार (= कोठरी) में चले गये।

तब, भगवान् के जानेके धोबी ही देर बाद उन भिक्षुओंको यह हुआ—“आहुसो ! भगवान्—“भिक्षुओ ! जिसके कारण ० नष्ट हो जाती है।” इसे संक्षेपसे गिनाकर, विस्तारसे अर्थको बिना विभाजित किये ही आसनसे उठकर विहारमें चले गये। कौन है, जो इस संक्षेपसे कहे “विस्तार से न विभाजित किये ( उपदेश) का विस्तारसे अर्थ-विभाग करेगा ?”

तब उन भिक्षुओंको हुआ—“यह आयुष्मान् महाकात्यायन शास्ता (= बुद्ध) द्वारा प्रशंसित, विज्ञ सम्राट् चारियोंद्वारा सम्मानित है। आयुष्मान् महाकात्यायन शास्ताद्वारा इस संक्षेपसे कहे “विस्तारसे न विभाजित किये (उपदेश) का विस्तारसे अर्थ-विभाग करनेमें समर्थ है। क्यों न हम आयुष्मान् महाकात्यायनसे इसके अर्थको पूछें।”

तब वह भिक्षु वहाँ आ. महाकात्यायन थे, वहाँ गये। जाकर आ. महाकात्यायनके साथ— (वथायोग्य कुशल प्रश्न पूछ) एक ओर—“पैठकर—आ. महाकात्यायनसे यह बोले—“आहुस कात्यायन ! भगवान्—“भिक्षुओ ! जिस कारणसे ०”, जो यह संक्षेपसे कह विस्तारसे विभाजित किये बिना ही ० विहारमें चले गये। सब आयुस कात्यायन ! भगवान् के जानेके धोबी ही देर बाद ०। तब हमें हुआ—यह आयुष्मान् महाकात्यायन ० पूछें। आयुष्मान् कात्यायन ( आप ) इसका विभाजन करें।”

“जैसे, आहुसो ! सारार्थी, सारगोपी पुरुष सारको ओजते, सारवाले सबे महावृक्षके मूलको छोड़, स्कन्धको छोड़, शाखा-पत्रको छोड़, सार खोजना चाहे; ऐसे ही अब शास्ता (= बुद्ध) के सामने रहनेपर उन भगवान् को छोड़ आयुष्मानोंकी हम लोगों ( जैसे )से पूछनेकी इच्छा है। आहुसो ! वह भगवान् जानकार हैं, देखनहार हैं। वह भगवान् चक्षुर्भूत (= आँख समान), शान्भूत, धर्मभूत, अज्ञभूत ( हैं )। वक्ता प्रवक्ता ( हैं )। अर्थके निर्णेत, अमृतके दाता, धर्म-स्वामी, तथागत हैं। इसीका काल था, कि भगवान् को ही इसका अर्थ पूछते, जैसे भगवान् इसका व्याख्यान करते, वैसे धारण करते।”

“ठीक आयुस कात्यायन !—“भगवान् जाननहार हैं ०” वैसे धारण करते। आयुष्मान् महाकात्यायन भी सो शास्ताद्वारा प्रशंसित ०” विस्तारसे अर्थ विभाग करनेमें समर्थ हैं। आयुष्मान् कात्यायन ( आप ) इसे सरल करके विभाजन करें।”

“तो आहुसो ! सुनो अच्छी तरह समझें करो, कहता हूँ।”

“अच्छा आयुस !” ( कह ) उन भिक्षुओंने आयुष्मान् महाकात्यायनकी उत्तर दिया।

आ. महाकात्यायनने यह कहा—“आहुसो ! हमारे भगवान्—“भिक्षु ! जिस कारणसे ०”, जो यह संक्षेपसे कह, विस्तारसे विभाजित किये बिना ही ० विहारमें चले गये। आहुसो ! भगवान् के इस संक्षेपसे कहे विस्तारसे न विभाजित किये उपदेशका अर्थ मैं इस प्रकार जानता हूँ। आहुसो ! चक्षु करके, रूपमें चक्षु-विज्ञान उत्पन्न होता है। तीनों ( = चक्षु-इन्द्रिय, रूप-विषय और

<sup>१</sup> देखो ऊपर।

<sup>२</sup> देखो ऊपर।

<sup>३</sup> देखो ऊपर।

<sup>४</sup> पूरे पैर वैसे।

<sup>५</sup> देखो ऊपर।

विज्ञान) का समागम स्पर्श ( कहा जाता है ) । स्पर्श करके वेदना ( होती है ) । जिसे वेदना ( = अनुभव ) करता है, उसका संज्ञान ( = समझना ) करता है । जिसे संज्ञान करता है, उसके ( धारमें ) वितर्क करता है । जिसे वितर्कता है, उसे प्रपंचन करता है । इसके कारण पुरुषको भूत भविष्य-वर्तमान संबंधी चक्षु-द्वारा-विलेय रूपोंमें प्रपंच-संज्ञाका संख्यान आता है । आबुसो ! श्रोत्र करके शब्दमें-श्रोत्र विज्ञान उत्पन्न होता है । तीनोंका समागम स्पर्श है ० । ० घ्राण करके गंधमें ० । ० जिह्वा करके रसमें ० । ० काया करके स्पृष्टव्यमें काय-विज्ञान उत्पन्न होता है । ० । ० मन करके धर्ममें ० मनो-विज्ञान ० ।

“आबुसो ! यदि चक्षु, रूप और चक्षुर्विज्ञान हैं, तभी स्पर्शका प्रज्ञापन ( = जानना ) संभव है । स्पर्शकी प्रज्ञप्ति होनेपर वेदनाका प्रज्ञापन संभव है । ० संज्ञाका प्रज्ञापन संभव है । ० वितर्क प्रज्ञप्ति ० । वितर्क-प्रज्ञप्ति होनेपर प्रपंच-संज्ञा संख्या-समुदाचरण-प्रज्ञप्ति ( = ज्ञानके उपचारका जानना ) संभव है । आबुसो ! श्रोत्र, शब्द, और श्रोत्रविज्ञानके होनेपर स्पर्शकी प्रज्ञप्ति है । ० घ्राण, गंध और घ्राण-विज्ञान ० । ० जिह्वा, रस, और जिह्वा-विज्ञान ० । ० काया, स्पृष्टव्य, और काय-विज्ञान ० । ० मन, धर्म और मनोविज्ञानके होनेपर स्पर्शकी प्रज्ञप्ति संभव है । स्पर्शकी प्रज्ञप्ति होनेपर वेदनाका प्रज्ञापन संभव है । ०<sup>१</sup> संज्ञा ० । ० वितर्क ० । ० प्रपंच-संज्ञा-संख्या-समुदाचरण-प्रज्ञप्ति संभव है ।

“आबुसो ! चक्षु, रूप और चक्षुर्विज्ञानके न होनेपर स्पर्शकी प्रज्ञप्ति संभव नहीं । स्पर्श-प्रज्ञप्ति के बिना वेदना-प्रज्ञप्ति संभव नहीं । ० संज्ञा-प्रज्ञप्ति संभव नहीं । ० वितर्क-प्रज्ञप्ति ० वितर्क-प्रज्ञप्ति के बिना प्रपंच-संज्ञा-संख्या-समुदाचरण-प्रज्ञप्ति संभव नहीं ।

“आबुसो ! श्रोत्र, शब्द, और श्रोत्रविज्ञानके न होनेपर ०<sup>२</sup> । ० घ्राण ०<sup>३</sup> । ० जिह्वा ०<sup>४</sup> । ० काय ०<sup>५</sup> । ० मन ०<sup>६</sup> । ० समुदाचरण-प्रज्ञप्ति संभव नहीं ।

“आबुसो ! भगवान्—“भिक्षु ! जिस कारणसे ०<sup>७</sup>; जो यह संक्षेपसे कह, विस्तारसे विभाजित किये बिना ही ० विहारमें चले गये । आबुसो ! ०<sup>८</sup> उपदेशका अर्थ मैं इस प्रकार जानता हूँ । चाहें, तो आप आबुधम्मन् भगवान्के पास भी जाकर इस अर्थको पूछें; जैसा हमारे भगवान् व्याख्यान करें, वैसा धारण करें ।”

तब वह भिक्षु आ. महाकाल्यायनके भाषणका अभिनन्दन = अनुमोदन कर आत्मनसे उठ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादन कर—“एक ओर बैठ—” वह बोले—

“भन्ते ! भगवान्—“भिक्षु जिस कारणसे ०<sup>९</sup> नष्ट हो जाती है, जो यह संक्षेपसे कह, विस्तारसे विभाजित किये बिना ही ० विहारमें चले गये । तब भगवान्के जानेके थोड़ी ही देर बाद ०<sup>१०</sup> महाकाल्यायनसे ( इस ) अर्थको पूछें । तब हम भन्ते ! जहाँ आ. महाकाल्यायन थे, वहाँ गये ०<sup>११</sup> आ. महाकाल्यायनसे इस अर्थको पूछा । हमारे वैसा पूछने पर आ. महाकाल्यायनने इन आकारोंसे, इन पदोंसे, इन अक्षरोंसे अर्थ-विभाग किया ।”

“भिक्षुओ ! पंडित है महाकाल्यायन, महाप्राज्ञ है ० । यदि भिक्षुओ ! तुमने सुने इस अर्थको पूछा होता, तो मैं भी वैसेही इसका व्याख्यान करता, जैसे कि महाकाल्यायनने इसका अर्थ व्याख्यान किया । यही इसका अर्थ है, ऐसे ही इसे धारण करो ।”

<sup>१</sup> देखो ऊपर । <sup>२</sup> ऊपरके पैरा जैसा । <sup>३</sup> पूर्वके पैरा जैसा । <sup>४</sup> देखो पृष्ठ ७१ ।

<sup>५</sup> देखो ऊपर । <sup>६</sup> देखो पृष्ठ ७१ । <sup>७</sup> देखो पृष्ठ ७१ ।

ऐसा कहने पर आद्युष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

“जैसे मन्ते ! मूखकी दुर्बलतासे पीडित पुरुष मधु-पिड (= लड्डू) पा जाये; वह जहाँ जहाँसे लाये ( वहीँ वहीँसे उसमें ) स्वादु, रुचि-कर रसको पाये, ऐसेही मन्ते ! चेतक (= होशियार ) दर्भजातिक (= कुशाग्र-बुद्धि ) मिथु इस धर्मपर्याय (= धर्मोपदेश ) के अर्थको जिधर जिधरसे प्रज्ञासे परखे; उधर उधरसे ही सन्तोषको पावेगा, चित्तकी प्रसन्नताको ही पावेगा । मन्ते ! क्या नाम है, इस धर्मपर्यायका ?”

“तो आनन्द ! तू इस धर्मपर्यायको मधु-पिड-धर्मपर्यायहीके नामसे धारण कर ।”

“भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो आद्युष्मान् आनन्दने भगवान्के भाषणको अभिनन्दित किया ।



## १६-द्वेधा-वितर्क-सुत्तन्त ( १।२।६ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—भिक्षुओ !”

“भदन्त !” ( कइ ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया !

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! संबोध ( = बुद्धत्व-प्राप्ति )से पूर्वभी, बोधि-सत्त होते वक्त मेरे ( मनमें ) ऐसा होता था—‘क्यों न दो दूक ( = द्वेधा ) वितर्क करते करते मैं विहर्कूँ ।’ सो भिक्षुओ ! जो काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क, विहिंसा-वितर्क ( = हिंसाके विषयमें मनमें तर्क वितर्क ) इन ( तीनों )को मैंने एक भागमें किया; और जो नैष्काम्य ( = फलकी इच्छासे रहित कर्म करना )-वितर्क, अव्यापाद-वितर्क, अवि-हिंसा वितर्क इन ( तीनों )को एक भागमें किया ।

“भिक्षुओ ! सो इस प्रकार प्रमाद-रहित, आतापी ( = उद्योगी ), प्रहितत्ता ( = आत्म संयमी ) हो विहरते ( भी ) मुझे काम-वितर्क उत्पन्न होता था। सो मैं इस प्रकार जानता था—उत्पन्न हुआ यह मुझे काम-वितर्क, और यह आत्म-व्याघादा ( = अपनेको पीड़ित करने )के लिये है, पर-व्याघादाके लिये है, उन्मय ( = आत्म-पर- ) व्याघादाके लिये है। ( यह ) प्रज्ञा-निरोधक ( = ज्ञानका नाशक ), विघात-पक्षिक ( = हानिके पक्षका ), निर्वाणको नहीं ले जानेवाला है। आत्म-व्याघादाके लिये है—यह सोचते भिक्षुओ ! ( वह ) अल हो जाता था। पर-व्याघादाके लिये है ०। उन्मय-व्याघादाके लिये है ०। प्रज्ञा-निरोधक, विघात-पक्षिक, न-निर्वाण-संवर्तनिक—यह सोचते भिक्षुओ ! ( वह ) अल हो जाता था। सो मैं भिक्षुओ ! बार बार उत्पन्न होनेवाले काम-वितर्कोंको छोड़ता ही था, हटाता ही था, अलग करता ही था।

“भिक्षुओ ! सो इस प्रकार ०<sup>१</sup> व्यापाद-वितर्क उत्पन्न होता था ० ।”

“भिक्षुओ ! सो इस प्रकार ०<sup>१</sup> विहिंसा-वितर्क ०<sup>१</sup> ।

“भिक्षुओ ! भिक्षु जैसे जैसे ही अधिकतर अनुवितर्क ( = वितर्क ) करता है, अनुविचार ( = विचार ) करता है; वैसे ही वैसे चित्तको झुकना होता है। यदि भिक्षुओ ! भिक्षु काम-वितर्कोंको अधिकतर अनुवितर्क करता है, अनुविचार करता है; तो वह निष्काम ( = कामना-रहित वितर्क )को छोड़ता है, और काम-वितर्कोंको बढ़ाता है; ( और ) उसका चित्त काम-वितर्कोंको ओर झुकता है। यदि भिक्षुओ ! भिक्षु व्यापाद-वितर्क ०; तो वह अ-व्यापाद वितर्कोंको छोड़ता है; ०। यदि भिक्षुओ ! भिक्षु विहिंसा ( = हिंसा )-वितर्कोंको ०, तो वह अ-विहिंसा ( = अहिंसा )-वितर्कोंको छोड़ता है; ०। जैसे भिक्षुओ ! वर्षोंके अन्तिम मासमें शरद-कालमें ( जब चारों ओर )

<sup>१</sup> ऊपरके पैरा कैसा पाठ ।

फलस भरी रहती है (उस समय) स्वाला (अपनी) गायोंको रखवाली करता है, वह उन गायोंको वहाँ वहाँसे ढंकेसे ढँकता है, मारता है, रोकता है, निवारता है। सो किस हेतु ?—मिश्रुओ ! वह स्वाला उस ( जेतोंमें चरने ) के कारण घघ, यन्धन, हानि या निन्दा (होने)को देखता है; ऐसे ही मिश्रुओ ! मैंने अकुशल-धर्मों ( = बुराईयों ) के दुष्परिणाम, अपकार, संक्लेष ( = मँल ) को; ( और ) कुशल-धर्मों ( = अच्छे कामों ) की निष्कामतामें सुपरिणाम ( = आनन्दस्य ) और परिशुद्धताका संरक्षण देखता था।

“मिश्रुओ ! सो इस प्रकार प्रमाद-रहित ०<sup>१</sup> विहरते निष्कामता-वितर्क उत्पन्न होता था। सो मैं इस प्रकार जानता था—‘उत्पन्न हुआ वह मुझे निष्कामता-वितर्क; और वह न आत्म-व्यापाधा ( = आत्म-पीड़ा ) के लिये है, न पर-व्यापाधा के लिये है, न उभय ( = आत्म-पर ) व्यापाधा के लिये है। यह प्रज्ञा-वर्जक है, अ-विचार ( = अ-ज्ञान )-पक्षिक, और निर्वाणको ओर ले जानेवाला है। रातको भी मिश्रुओ ! यदि मैं उसे अनुवितर्क करता, अनुविचार करता, ( तो भी ) उसके कारण भय नहीं देखता। दिनको भी ०। रात-दिनको भी ०। किन्तु, बहुत देर तक अनुवितर्क, अनुविचार करते मेरी काया क्लान्त ( = थकी ) हो जाती, कायाके क्लान्त होने पर चित्त अपहृत ( = शिथिल ) हो जाता; चित्तके अपहृत होने पर चित्त समाधिसे दूर ( हट ) जाता था। सो मैं मिश्रुओ ! अपने भीतर ( = अध्यात्म ) ही चित्तको स्थापित करता था, पैदाता था, एकाग्र करता था, समाहित करता था। सो किस हेतु ?—मेरा चित्त ( कहीं ) अपहृत न हो जाये।

“सो इस प्रकार प्रमाद-रहित ०<sup>१</sup> विहरते अ-व्यापाद-वितर्क उत्पन्न होता था ०<sup>२</sup>। ०<sup>३</sup> अ-विहिंसा-वितर्क उत्पन्न होता था ०<sup>४</sup>।

“मिश्रुओ ! मिश्रु जैसे-जैसे ही अधिकतर अनुवितर्क करता है ०<sup>५</sup>, यदि मिश्रुओ ! मिश्रु निष्कामता-वितर्कका अधिकतर अनुवितर्क करता है ०<sup>६</sup>, तो वह कामवितर्कको छोड़ता है, और निष्कामता-वितर्कको बढ़ाता है; ( और ) उसका चित्त निष्कामता-वितर्कको ओर झुकता है। यदि मिश्रुओ ! मिश्रु अ-व्यापाद-वितर्क ०, तो वह व्यापाद-वितर्कको छोड़ता है, और अ-व्यापाद-वितर्क को बढ़ाता है; और उसका चित्त अ-व्यापाद-वितर्ककी ओर झुकता है। यदि मिश्रुओ ! मिश्रु अ-विहिंसा-वितर्क ०, तो वह विहिंसा-वितर्कको छोड़ता है, और अ-विहिंसा-वितर्कको बढ़ाता है; और उसका चित्त अ-विहिंसा-वितर्ककी ओर झुकता है। जैसे मिश्रुओ ! ग्रीष्मके अन्तिम मासमें, जब सभी फल ( = सस्य ) जमाकर गाँवमें खली जाती है, स्वाला गायोंको रखता है, वृक्षके नीचे या चौबेमें रह कर उन्हें केवल वाद रखना होता है—‘यह गाने हैं’, ऐसे ही मिश्रुओ ! वाद रखना ( मात्र ) होता था—‘यह धर्म हैं’। मिश्रुओ ! मैंने न वचनेवाला वीर्य ( = उद्योग ) आरम्भ कर रखा था, न भूलनेवाली स्मृति ( मेरे ) सम्मुख थी, शरीर ( मेरा ) अर्धचाल, शान्त था, चित्त समाहित = एकाग्र था।

“सो मैं मिश्रुओ ! कामोंसे विहरित ०<sup>१</sup> प्रथम-ध्यानको प्राप्तहो विहरने लगा। ०<sup>२</sup> द्वितीय ध्यानको ०<sup>३</sup>। तृतीय-ध्यानको। ०<sup>४</sup> ०<sup>५</sup> चतुर्थ-ध्यानको ०<sup>६</sup>। ०<sup>७</sup> ( = पूर्व-निवासाऽनु-स्मृति ) ०<sup>८</sup>। ०<sup>९</sup> प्राणिपोंके ध्युति-उत्पादके ज्ञानके लिये ०<sup>१०</sup>। ०<sup>११</sup> आश्विनके क्षयके ज्ञानके लिये ०<sup>१२</sup>।

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ ७४। <sup>२</sup> ऊपरके पैरा जैसा। <sup>३</sup> ऊपरके पैरा जैसा। <sup>४</sup> देखो पृष्ठ ७४।

<sup>५</sup> देखो पृष्ठ ८५।



“जैसे भिक्षुओ ! ( किरी ) महावनमें गहरा महान् जलाशय ( = पल्ल ) हो, ( और ) उसका आश्रय ले महान् सुगोंका समूह विहार करता हो । कोई पुरुष उस ( सुग-समूह ) का अनर्थ-आकांक्षी अ-हित-आकांक्षी = अ-योग-क्षेम-आकांक्षी उत्पन्न होवे । वह उस ( सुग-समूह ) के क्षेत्र ( = सुरक्षित ), कल्याणकारक, प्रीतिपूर्वक गन्तव्य मार्गको बन्द कर दे, और अकेले चलने लायक ( = एक चर ) कुमारको खोल दे, और एक-चारिका ( = जाल ) रख दे । इस प्रकार वह महान् सुगसमूह दूसरे समयमें विपत्तिमें तथा क्षीणताको प्राप्त होवे । और भिक्षुओ ! उस महान् सुगसमूहका कोई पुरुष हिताकांक्षी = योग-क्षेमकांक्षी उत्पन्न होवे । वह उस ( सुग-समूह ) के क्षेत्र ० मार्गको खोल दे, एक-चर कुमारको बन्द कर दे और एक चारिका ( = जाल ) का नाश कर दे । इस प्रकार वह महान् सुगसमूह दूसरे समय बुद्धि = विरुद्धि ( और ) विपुलताको प्राप्त होवे ।

“भिक्षुओ ! अर्थके समझाने ( = विज्ञापन ) के लिये मैंने उपमा ( = इष्टान्त ) कही । यहाँ यह अर्थ है । भिक्षुओ ! ‘गहरा महान् जलाशय’ यह कामों ( = कामनाओं, भोगों ) का नाम है । ‘महान् सुगसमूह’ यह प्राणियोंका नाम है । अनर्थाकांक्षी अहिताकांक्षी अयोग-क्षेमाकांक्षी पुरुष यह मार = पुराइयाँ ( = पाप्मा ) का नाम है । कुमारों यह आठ प्रकारके मिथ्या मार्ग हैं; जैसे—( १ ) मिथ्या दृष्टि ( = झूठी चारणा ), ( २ ) मिथ्या-संकल्प, ( ३ ) मिथ्या-वचन, ( ४ ) मिथ्या कर्मान्त ( = ० कायिककर्म ), ( ५ ) मिथ्या-अजीव ( = ० जीविका ), ( ६ ) मिथ्या ध्यायाम ( = ० कोशिश ), ( ७ ) मिथ्या स्मृति, ( ८ ) मिथ्या समाधि । ‘एकचर’, भिक्षुओ ! यह नन्दी = रागका नाम है । ‘एक चारिका’ भिक्षुओ ! यह अविद्याका नाम है । भिक्षुओ ! अर्थाकांक्षी, हिताकांक्षी, योग-क्षेमाकांक्षी पुरुष—वह तथागत अर्हत् सम्यक् संतुष्टका नाम है । क्षेत्र = स्वस्तिक ०, प्रीति-गमनीय मार्ग, यह आर्य-अष्टांगिक-मार्गका नाम है, जैसे कि—( १ ) सम्यक् दृष्टि, ( २ ) सम्यक्-संकल्प, ( ३ ) सम्यक् वचन, ( ४ ) सम्यक् कर्मान्त, ( ५ ) सम्यगाजीव, ( ६ ) सम्यग् ध्यायाम ( = ० ) सम्यक् स्मृति, ( ८ ) सम्यक् समाधि । इस प्रकार भिक्षुओ ! मैंने क्षेत्र = स्वस्तिक, प्रीति-गमनीय मार्गको खोल दिया; दोनों ओरसे एक-चर कुमारको बन्द कर दिया, एक-चारिका ( = अविद्या ) को नाश कर दिया । भिक्षुओ ! आवकोंके हितैषी, अनुकम्पक, शास्त्राको अनुकम्पा करके जो करना था, वह तुम्हारे लिये मैंने कर दिया । भिक्षुओ ! यह वृक्ष-मूल हैं, यह सुने घर हैं, ध्यानरत होओ । भिक्षुओ मत प्रमाद करो, मत पीछे अफसोस करनेवाले बनना—यह तुम्हारे लिये हमारा अनुशासन है ।”

भगवान् ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान् के भाषणका अनुमोदन किया ।



## २०—वितक-सण्ठान-मुत्तन्त ( ११२।१० )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् ध्यावस्तीमें, अनाथपिण्डिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित ( = आमंत्रित ) किया—“भिक्षुओ !”

“अदन्त !” — ( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया !

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! चित्त ( के अनुशीलन ) में लग्न भिक्षुको पाँच निमित्तों ( = आकारों ) का समय-समय पर मनमें ( चिन्तन ) करना चाहिये । कौनसे पाँच ?— यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षुको विष निमित्तको लेकर, निमित्तको मनमें करके राग-द्वेष-मोह वाले पापक-अकुशल ( = बुरे ) वितर्क ( = ब्याल ) उत्पन्न होते हैं; भिक्षु... उस निमित्तको ( छोड़ ) दूसरे कुशल-सम्बन्धी निमित्तको मनमें करे । उसके उस निमित्तको ( छोड़ ) दूसरे कुशल-सम्बन्धी निमित्तको मनमें करके छन्द-सम्बन्धी \* अकुशल वितर्क भट्ट होते हैं, अस होते हैं; उनके नाशसे अपने भीतर ही चित्त ठहरता है, स्थिर होता है, एकाम होता है, समाहित होता है । जैसे भिक्षुओ ! चतुर पल्लण्ड ( = राज ) या पल्लण्डका अन्तेवासी ( = प्रागिर्द ) सूक्ष्म आणो ( = पूर ? ) से मोटी आणोको निकाल ले ( = अभिवीहरण करे ) = अभिनिवर्जन करे; ऐसे ही भिक्षुओ ! भिक्षु वित्त निमित्तको लेकर \* समाहित होता है ।

“भिक्षुओ ! उस भिक्षुको उस निमित्तको ( छोड़ ) दूसरे कुशल-सम्बन्धी निमित्तको मन में करने पर भी यदि छन्द-सम्बन्धी \* अकुशल वितर्क उत्पन्न होते ही हैं; तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको उन वितर्कोंके आदिनव ( = कारण, दुष्परिणाम ) को जाँच करनी चाहिये—यह मेरे वितर्क अकुशल हैं, यह मेरे वितर्क सान्ध ( = दोष-मुक्त ) हैं, यह मेरे वितर्क दुःख-विपाक ( = दुःखद ) हैं । उन वितर्कोंके आदिनवकी परीक्षा करनेपर उसके राग \* बुरे ब्याल नष्ट होते हैं, अस होते हैं; उनके नाशसे चित्त अपने ही भीतर ठहरता है \* । जैसे, कि भिक्षुओ ! मंछन ( = विमूषण ) पसन्द करनेवाला अल्पवयस्क तरुण पुरुष या स्त्री मरे साँप, या मरे कुत्ता, या आदमीके मुँदके कंठमें लग जानेसे छूना = खुरप्पा करे; ऐसे ही भिक्षुओ ! यदि उस भिक्षुको उस निमित्तको छोड़ \* ।

“भिक्षुओ ! यदि उस भिक्षुको उन वितर्कोंके आदिनवकी जाँचते हुये भी छन्द-सम्बन्धी \* अकुशल वितर्क उत्पन्न होते ही हैं; तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको उन वितर्कोंको यादमें लाना नहीं चाहिये, मनमें न करना चाहिये । उन वितर्कोंको यादमें न लानेसे मनमें न करनेसे, उसके रागवाले \* \* बुरे वितर्क ( = ब्याल ) नाश होते हैं, उनके नाशसे चित्त अपने ही भीतर ठहरता है \* \* । जैसे

\* देखो पिच्छल पैर ।

\* देखो पूर्व पैर ।

कि मिथुओ ! तज्रके सामने जाने वाले रूपोंके देखनेका अनिच्छुक जाँच-वाला आदमी (जाँचोंको) मूँद ले, या दूसरी ओर देखने लगे; ऐसे ही मिथुओ ! यदि उस मिथुको उन वितकोंको जाँचते हुये भी ० ।

“मिथुओ ! यदि उस मिथुको उन वितकों (= क्यालों)के मनमें न लाने, मनमें न करनेसे भी रागवाले ० बुरे क्याल (= वितर्क) उत्पन्न होते ही हैं, तो मिथुओ ! उस मिथुको उन वितकों (= क्यालों)के संस्कारका संस्थान (= साकार) मनमें करना चाहिये । उन वितकोंके वितर्क-संस्कार-संस्थान (मात्र)को मनमें लानेसे उसके रागवाले ०<sup>१</sup> बुरे क्याल नाश होते हैं ०<sup>१</sup> । जैसे कि मिथुओ ! पुरुष शीघ्र जाता हो, उसको ऐसा हो—कहाँ मैं शीघ्र जाता हूँ, क्यों न धीरे से चले, फिर वह धीरे धीरे जाये । उसको ऐसा हो—क्यों मैं धीरे धीरे चलता हूँ, क्यों न मैं बैठ जाऊँ, फिर वह बैठ जाये । उसको ऐसा हो—क्यों मैं बैठा हूँ, क्यों न मैं छेद जाऊँ, फिर वह छेद जाये । ऐसे ही मिथुओ ! वह पुरुष मोटे हंसांपथ (= शारीरिक गति)से हटकर सूक्ष्म हंसांपथको स्वीकार करे; ऐसे ही मिथुओ ! यदि उस मिथुको उन वितकोंके मनमें न लाने ०<sup>२</sup> ।

“मिथुओ ! यदि उस मिथुको उन वितकोंके वितर्क-संस्कार-संस्थानको मनमें करनेसे भी ०<sup>३</sup>; तो मिथुओ ! उस मिथुको दाँतोंको दाँतों पर रख कर, जिह्वाको तालसे चिपटा कर, चित्तसे चित्तका निग्रह करना चाहिये, सन्तापन करना, निष्पीडन करना चाहिये, उसके ० निष्पीडन करनेसे, उसके रागवाले ०<sup>३</sup> बुरे क्याल नाश होते हैं ०<sup>३</sup> । जैसे मिथुओ ! धलवान् पुरुष दुर्बल पुरुषको शिरसे, या कन्धसे, पकड़ कर, निग्रहीत करे, निष्पीडित करे, सन्तापित करे; ऐसे ही मिथुओ ! वह मिथु उन वितकोंके वितर्क-संस्कार-संस्थानके मनमें करनेसे भी ०<sup>४</sup> ।

“चूंकि मिथुओ ! मिथुको जिस निमित्तको लेकर, जिस निमित्तको मनमें करके, राग-द्वेष-मोह वाले बुरे क्याल पैदा होते हैं; उस निमित्तको छोड़ ०<sup>५</sup> दूसरे ० निमित्तको मनमें करनेसे ० चित्त ० समाहित होता है । उन वितकोंके आदितव (= दुष्परिणाम)की जाँच करनेसे राग ० वाले बुरे क्याल नष्ट होते हैं ०<sup>५</sup> चित्त ० समाहित होता है । उन वितकोंके बादमें न लानेसे मनमें न करनेसे ०<sup>५</sup> चित्त समाहित होता है, उन वितकोंके वितर्क-संस्कार-संस्थानको मनमें करनेसे ०<sup>५</sup> चित्त समाहित होता है । दाँतोंको दाँतों पर रख कर ०<sup>५</sup> निष्पीडन करनेसे ०<sup>५</sup> चित्त समाहित होता है । मिथुओ ! ऐसा मिथु वितर्क (= क्याल)के नाना भागोंको वशमें करनेवाला कहा जाता है । वह जिस वितर्कको चाहेगा, उसका वितर्क करेगा, जिस...को नहीं चाहेगा... नहीं वितर्क करेगा । ( उसने ) वृष्णा ( रूपी ) बंधनको हटा दिया; अच्छी प्रकार जान कर साक्षात् कर, दुःख का अन्त कर दिया ।”

भगवान् ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन मिथुओंने भगवान् के माषणका अभिनन्दन किया ।

( २-इति सीहनाद वग्ग ११२ ) ।

<sup>१</sup> देखो पूर्व पैरा ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ ७७ ।

<sup>३</sup> देखो पिछला पैरा ।

<sup>४</sup> देखो पृष्ठ ७७ ।



## २१—ककचूपम-सुत्तन्त ( १।३।१ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनार्थपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् मोलिय फग्गुण भिक्षुणियोंके साथ अत्यधिक संसर्ग रखते थे। इतना संसर्ग रखते थे, “कि यदि” ( उनके ) सामने कोई भिक्षुणियोंकी शिकायत करता, तो उससे आयुष्मान् मोलिय फग्गुण कुपित = असन्तुष्ट हो अधिकरण ( = संघके सामने अभियोग ) भी करते। यदि कोई उन भिक्षुणियोंके सामने आयुष्मान् मोलिय फग्गुणकी शिकायत करता, तो वह ( भी ) कुपित असन्तुष्ट हो अधिकरण करती। “”।

तब कोई भिक्षु वहाँ भगवान् थे, वहाँ “जाकर, भगवान्को अभिवादन कर, “एक ओर बैठ” भगवान्से बोला—

“भन्ते ! आयुष्मान् मोलिय फग्गुण भिक्षुणियोंके साथ अत्यन्त संसर्ग रखते हैं ।”

तब भगवान्ने एक भिक्षुको संबोधित किया—

“आओ भिक्षु ! तुम मेरे वचनसे मोलिय फग्गुण भिक्षुको कहो—‘आवुस फग्गुण ! ( = फास्गुण ) ! शास्ता तुम्हें बुला रहे हैं’ ।”

“अच्छा, भन्ते !” ( कह ) भगवान्को उत्तर दे, वह भिक्षु “आयुष्मान् मोलिय फग्गुणके पास जाकर यह बोला—

“आवुस फग्गुण ! तुम्हें शास्ता बुला रहे हैं ।”

“अच्छा आवुस !” कह “आयुष्मान् मोलिय फग्गुण” भगवान्के पास जाकर, ... एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठे आयुष्मान् ० फग्गुणको भगवान्ने यह कहा—“फग्गुण ! सचमुच ही तू भिक्षुणियोंके साथ अत्यन्त संसर्ग रखता है, ० कुपित असन्तुष्ट हो अधिकरण करती है ?”

“हाँ, भन्ते !”

“क्यों फग्गुण ! तू कुलपुत्र ( हो ) अर्द्धपूर्वक घरसे बेघर बन प्रव्रजित हुआ है ?”

“हाँ, भन्ते !”

“फग्गुण ! यह तेरे समान अर्द्धपूर्वक घरसे बेघर हो प्रव्रजित कुलपुत्रके लिए योग्य नहीं, कि तू भिक्षुणियोंके साथ अत्यन्त संसर्ग रखे । इसलिए फग्गुण ! चाहे तेरे सामने भी कोई भिक्षुणियोंकी शिकायत करे, तो फग्गुण ! जो तेरे भीतर घर किये राग है, जो घर किये वितर्क ( = क्वाल ) है, उनको बोध देना । वहाँ फग्गुण ! तुझे इस प्रकार सीखना चाहिये—‘भरे चित्तमें विकार नहीं आने पायेगा, दुर्वचन मैं मुँहसे नहीं निकालूँगा, द्वेषरहित हो मैत्रीभावसे हित और अनुकम्पक हो विहरूँगा’ । इस प्रकार फग्गुण ! तुझे सीखना चाहिये । इसलिये फग्गुण ! चाहे तेरे



सामने कोई उन भिक्षुणियोंको हाथसे पीटे भी, डेलेसे... , दण्डसे... , शस्त्रसे प्रहार भी करे, तो भी फग्गुण ! जो तेरे भीतर घर किये राग है ० अनुकम्पक हो विहरूँगा । इस प्रकार फग्गुण ! ० । इसलिये फग्गुण ! चाहे तेरे सामने ० शिकायत करें, ० । चाहे तेरे सामने ० प्रहार भी करें ० । ० सीखना चाहिये ।"

तब भगवान् ने उन भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! एक बार भिक्षुओंने मेरे चित्तको प्रसन्न (= आराधित ) किया था । एक बार भिक्षुओ ! मैंने भिक्षुओंको संबोधित किया... "भिक्षुओ ! मैं एकासन ( एक- ) भोजन सेवन करता हूँ ।... एकासन-भोजनका सेवन करते मैं स्वास्थ्य, निरोध, स्फूर्ति, बल और प्राशुविहार (= सुखपूर्वक रहना ) ( अपनेमें ) पाता हूँ । आओ । भिक्षुओ ! तुम भी एकासन भोजन-सेवन... कर स्वास्थ्य ० को प्राप्त करो । भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको मुझे अनुशासन (= उपदेश ) करनेकी आवश्यकता नहीं थी ।... उन भिक्षुओंको पाद दिला देना भर ही मेरा काम था । जैसे भिक्षुओ ! उद्यान (= सुभूमि ) में चौरस्तेपर कोड़ा सहित, घोड़े जुता आजानेय (= उद्यम घोड़ों ) का रथ लड़ा हो, उसे एक धतुर रथाचार्य, अश्वको दमन करनेवाला सारथी चढ़कर, बायें हाथ से जोत (= रस्म ) को पकड़ कर, दाहिने हाथमें कोड़ेको ले, जैसे चाहे, जिनपर चाहे खेजावे लाँटावे, ऐसे ही भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको मुझे अनुशासन करनेकी आवश्यकता न थी ० मेरा काम था ।

"इसलिये भिक्षुओ ! तुम भी अकुशल (= बुराई ) को छोड़ो । कुशल धर्मों (= नेकियों ) में लगे । इस प्रकार तुम भी इस धर्म... में बुद्धि = विरुद्धि, विपुलताको प्राप्त होगे । जैसे भिक्षुओ ! गाँव या निगम (= कस्बे ) के पास (= अ-विदूर ) फलंगी (= सधनता ) से आच्छादित महार शाल (= शाव )-वन हो, उसका कोई अर्थकारी = हितकारी = योगक्षेमकारी पुरुष उत्पन्न हो; वह उस शालके रस (= ओज ) की अपहरण करनेवाली डेढ़ी बट्टियोंको काटकर बाहर ले जावे, वनके भीतरी भागको अच्छी तरह साफ करदे, और जो शाल-पट्टियाँ सीधी सुन्दर तीरसे निकली हैं, उन्हें अच्छी तरह रखवे । इस प्रकार भिक्षुओ ! यह शाल वन दूसरे समय पीलेबुद्धि = विरुद्धि = विपुल-ताको प्राप्त होवे । ऐसे ही भिक्षुओ ! तुमभी बुराईको छोड़ो ० विपुलताको प्राप्त होगे ।

"भिक्षुओ ! भूतकालमें इसी आश्वस्तोमें वैदेहिका नामक गृह-पत्नी (= गृहस्व स्त्री, वैश्य स्त्री ) थी । वैदेहिका गृहपत्नीकी ऐसी मंगल कीर्ति फैली हुई थी—वैदेहिका गृहपत्नी सौरता (= सुरत ) है; निवाता (= निष्कलह ) है, उपसान्त है । वैदेहिका गृहपत्नीके पास काली नामक पक्ष, जालस्पर्हित, अच्छे प्रकार काम करनेवाली दासी थी । तब भिक्षुओ ! काली दासीके ( मनमें ) यह हुआ—'मेरी आर्या (= अय्या = स्वामिनी ) को ऐसी मंगलकीर्ति फैली हुई है— ० । क्या मेरी आर्या भीतरमें कोपके विषयान रहते उसे प्रकट नहीं करती, या अविद्यमान रहते ? चूँकि मेरे काम अच्छी तरह किये होते हैं, इसलिये मेरी अय्या भीतरमें कोप होते हुये भी प्रकट नहीं करती, नहीं है ( यह बात ) नहीं । क्यों न मैं अय्याको परीक्षा करूँ ।' तब भिक्षुओ ! काली दासी दिन ( चढ़ने पर ) उठी । तब भिक्षुओ ! वैदेहिका गृहपत्नीने काली दासीसे यह कहा— 'अरे हे काली !'

'क्या है अय्या !'

'क्यों रे दिन चढ़ने पर उठी है ?'

'कुछ नहीं अय्या !'

'कुछ नहीं रे ! ( यह ) हमारी दुष्टा दासी दिन ( चढ़ने पर ) उठती है'—( कह ) कुपित,

असन्नुष्ट हो भीचें देखी करली ।

‘तब भिक्षुओ ! काली दासीको यह हुआ—‘मेरी अय्या भीतरमें जोधके विद्यमान रहते उसे प्रकट नहीं करती, अविद्यमान रहते नहीं, ० नहीं है (यह बात) नहीं। क्यों न मैं फिर अय्या को अच्छी तरह परखूँ।’ तब भिक्षुओ ! काली दासी और दिन (चढ़ाकर) उठी। तब वैदेहिका गृहपत्नीने काली दासीसे यह कहा—

‘अरे हे काली !’

‘क्या है अय्या !’

‘क्यों रे ! और दिन (चढ़ाकर) उठी है ?’

‘कुछ नहीं अय्या !’

‘कुछ नहीं रे ! (यह) हमारी बुद्धा दासी और दिन (चढ़ाकर) उठती है’—(कह) कुपित असन्नुष्ट हो भीचें देखी कर कटवचन कहा। तब भिक्षुओ ! काली दासीको यह हुआ—‘मेरी अय्या भीतरमें जोधके विद्यमान रहते ० नहीं है (यह बात) नहीं। क्यों न मैं फिर अय्याको अच्छी तरह परखूँ।’ तब भिक्षुओ ! काली दासी और दिन (चढ़ाकर) उठी। फिर भिक्षुओ ! वैदेहिका गृहपत्नीने काली दासीसे यह कहा—

‘अरे हे काली !’

‘क्या है अय्या !’

‘क्यों रे ! और भी दिन चढ़ाकर उठी है ?’

‘कुछ नहीं अय्या !’

‘कुछ नहीं रे ! (यह) हमारी बुद्धा दासी और भी दिन चढ़ाकर उठती है।’—(कह) कुपित असन्नुष्ट हो, किनाइकी बिलाई (= सूची) उठाकर उसे मारा। शिर फूट गया। तब भिक्षुओ ! काली दासीने फूटे शिरसे लोहू बहाते पदोसियोंको बिछा कर कहा—‘देखो अय्या ! सौरताके कामको ! देखो अय्या ! निवाताके कामको !! देखो अय्या ! उपशान्ताके कामको !!! कैसे (कोई) अकेली दासीको ‘तु दिन (चड़े) उठो’—(कह) कुपित असन्नुष्ट हो किनाइकी बिलाई (= सूची) उठाकर मारेंगी, और शिरको फोड़ डालेंगी !!!’ तब भिक्षुओ ! वैदेहिका गृहपत्नीके इस प्रकारके अपकीर्तिके शब्द सुनकर—‘प्रियकार है, वैदेहिका गृहपत्नीको ! अ-सौरता है वैदेहिका गृहपत्नी, अ-निवाता है ०, अन्-उपशान्ता है वैदेहिका गृहपत्नी ।’

‘इसी प्रकार भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षु तभीतक सोरत रहता है, निवात (= निष्कलह) उपशान्त, होता है, जब तक अग्रिय शब्द-पथमें वह नहीं पड़ता, जब (उस) भिक्षुपर अ-ग्रिय शब्द-पथ पड़ता है, तबमी (रहे) तो (उसे) सोरत जानना चाहिये, निवात ०, उपशान्त जानना चाहिये। भिक्षुओ ! मैं उस भिक्षुको सुवच नहीं कहता, जो कि चीवर, भिक्षान्न, शयन-आसन, रोगीके पथ्य-औषध सामग्रोंके कारण सुवच होता है, सद्दु-भाषिताको प्राप्त होता है। सो किस हेतु ?—भिक्षुओ ! (वह) भिक्षु, चीवर, पिच्छपात (= भिक्षान्न) शयन-आसन, रोगीके पथ्य-औषधि सामग्रोंके न मिलनेपर सुवच नहीं होता है, न सद्दु-भाषिताको प्राप्त होता है। सो किस हेतु ?—भिक्षुओ ! (वह) भिक्षु, चीवर, पिच्छपात (= भिक्षान्न), शयन-आसन, रोगीके पथ्य-औषध-सामग्रोंके न मिलने पर सुवच नहीं रहेगा, न सद्दु-भाषिताको रखेगा। भिक्षुओ ! जो भिक्षु केवल धर्मका सत्कार करते, ० गुरुकार करते, ० पूजा करते, सुवच होता है, सद्दु-भाषिताको प्राप्त होता है, उसे मैं सुवच कहता हूँ। इसलिये भिक्षुओ ! तुम्हें इस प्रकार सीखना चाहिये—



‘केवल धर्मका सत्कार करते • पूजा करते सुवच होऊँगा, सुदुभाषिता ( सौवचस्पता ) को प्राप्त होऊँगा । भिक्षुओ ! तुम्हें इस प्रकार सीखना चाहिये ।

“भिक्षुओ ! यह पाँच वचन-पथ ( = बात कहनेके मार्ग ) हैं, जिनसे कि दूसरे तुमसे बात करते बोलते हैं—( १ ) कालसे या अकालसे, ( २ ) मृत ( = यथार्थ ) से या अ-मृतसे, ( ३ ) स्नेहसे या परुषता ( कटुता ) से, ( ४ ) सार्थकतासे या निरर्थकतासे, ( ५ ) मैत्रीपूर्ण चित्तसे या द्वेषपूर्ण चित्तसे । भिक्षुओ ! बाहे दूसरे कालसे बात करें, या अकालसे, • मृतसे •, • स्नेहसे •, सार्थकतासे •, • मैत्रीपूर्णचित्तसे बात करें, या द्वेषपूर्णचित्तसे, वहाँ भिक्षुओ ! तुम्हें इस प्रकार सीखना चाहिये—मैं अपने विषयों विकार-युक्त न होने दूँगा, और न दुर्वचन ( गुँहसे ) निकालूँगा, मैत्री भावसे हितानुकम्पी होकर विहरूँगा, न कि द्वेषपूर्ण चित्तसे । उस ( विरोधी ) व्यक्तिको भी मैत्री-पूर्ण चित्तसे आह्लाषित कर विहरूँगा । इसको लक्ष्य ( = आरम्भण ) करके सारे लोकको विपुल, विशाल, = अप्रमाण मैत्रीपूर्ण चित्तसे आह्लाषितकर, अ-वैरता = अ-व्यापादिता ( = द्रोह-रहितता ) से परिह्लाषित कर विहरूँगा ।—इस प्रकार भिक्षुओ ! तुम्हें सीखना चाहिये ।

“जैसे भिक्षुओ ! ( कोई ) पुरुष ( हाथमें ) कुदाल लेकर आये, और वह ऐसा कहा—  
‘मैं इस महा-पृथिवीको अ-पृथिवी करूँगा । वह वहाँ वहाँ छोड़े, वहाँ वहाँ ( मिटिको ) फेंके, वहाँ वहाँ रखे, वहाँ वहाँ छोड़े—’ ( अथ ) ए अ-पृथिवी हुई, ( अथ ) ए अ-पृथिवी हुई । तो क्या मानते हो भिक्षुओ ! क्या वह पुरुष इस महापृथिवीको अ-पृथिवी कर सकेगा ?”

“नहीं भन्ते !”

“सो किस हेतु ?”

“भन्ते ! यह महापृथिवी गम्भीर है, अ-प्रमेय है, यह अ-पृथिवी ( = पृथिवीका अभाव ) वहाँ की जा सकती, वह पुरुष ( नाहकमें ) हैरानी और परेशानीका भागी होगा ।”

“ऐसे ही भिक्षुओ ! यह पाँच वचन-पथ जिनके द्वारा दूसरे तुम्हें बोलेंगे—( १ ) काल से या अकालसे • उसको लक्ष्य मानकर सारे लोकको पृथिवीके समान, विपुल, विशाल • चर्त-रतासे, परिह्लाषित कर विहरूँगा ।—इस प्रकार भिक्षुओ ! तुम्हें सीखना चाहिये ।

“जैसे भिक्षुओ ! ( कोई ) पुरुष लाल या हल्दी या नील, या मज्जीठ लेकर आये, ( और ) यह कहे—‘मैं इस आकाशमें रूप ( = चित्र ) लिखूँगा, रूप प्रकट करूँगा’ । तो क्या मानते हो भिक्षुओ ! क्या वह पुरुष इस आकाशमें रूप लिख सकेगा ? रूप प्रकट कर सकेगा ?”

“नहीं भन्ते !”

“सो किस हेतु ?”

“भन्ते ! यह आकाश अ-रूपी = अ-दर्शन ( = अ-निर्दर्शन ) है, वहाँ रूप लिखना...रूपका प्रादुर्भाव करना सुकर नहीं । वह पुरुष ( नाहकमें ) हैरानी और परेशानीका भागी होगा ।”

“ऐसे ही भिक्षुओ, यह पाँच वचन-पथ जिनके द्वारा दूसरे तुम्हें बोलेंगे—( १ ) कालसे •, उसको लक्ष्य मानकर सारे लोकको आकाश-समान विपुल विशाल • विहरूँगा ।

—इस प्रकार भिक्षुओ ! तुम्हें सीखना चाहिये ।

“जैसे भिक्षुओ ! ( कोई ) पुरुष जलती तृणकी उल्का ( = लुकारी ) को लेकर आये, ( और ) यह कहे—‘मैं इस तृण-उल्कासे गंगानदीको संतप्त करूँगा, परितप्त करूँगा’ । तो क्या

मानते हो भिक्षुओ ! क्या वह पुरुष उस जलती तृण-उल्कासे गंगानदीको सन्तप्त कर सकेगा, परितप्त कर सकेगा ?<sup>१</sup>

“नहीं भन्ते !”

“तो किस हेतु ?”

“भन्ते ! गंगानदी गम्भीर है, अप्रमेय है, वह जलती तृण-उल्कासे नहीं सन्तप्त की जा सकती, परितप्त नहीं की जा सकती । वह पुरुष ( नाहकमें ) ० ।

“ऐसे ही भिक्षुओ ! यह पाँच वचन-पथ, जिनके द्वारा दूसरे तुमसे बोलेंगे—( १ ) कालमें ०<sup>१</sup> उसको लक्ष्य मानकर सारे लोकको गंगा-समान विपुल विशाल ०<sup>२</sup> विहरूँगा ।

“जैसे भिक्षुओ ! ( एक ) मर्दित, सुमर्दित, सु-परिमर्दित, मृदु, तूलवाली, खर्राहट-रहित, भरभराहट-रहित पिछीके ( चमड़ेकी ) काल ( = भस्मा ) हो । तब कोई पुरुष काठ या कठला ( = ठोकरा ) लेकर जाये और बोले—मैं इस ० पिछीको खालकी ( इस ) काठ या कठलाते सुखुरी बनाऊँगा, भर्मरी बनाऊँगा । तो क्या मानते हो भिक्षुओ ! ० ।

“नहीं भन्ते !”

“तो किस हेतु ?”

“भन्ते ! यह पिछीकी खाल मर्दित ०<sup>३</sup> है, काठ या कठलाते सुखुरी, भर्मरी नहीं बनाई जा सकती । वह पुरुष ( नाहकमें ) ०<sup>४</sup> ।”

“ऐसे हो भिक्षुओ ! यह वचनपथ ०<sup>५</sup>—कालमें ०<sup>६</sup> उसको लक्ष्य मानकर सारे लोकको पिछीकी खालके समान ०<sup>७</sup> विहरूँगा ।

“भिक्षुओ ! चार लुटेरे चाहे दोनों ओर मुठिया लगे आरेसे भी अंग अंगको चीरें, तो भी यदि वह मनको डोपयुक्त ( = दूषित ) करे, तो वह मेरा शासनकर ( = उपदेशानुसार चलनेवाला ) नहीं है । यहाँ पर भी भिक्षुओ ! ऐसा सीखना चाहिये—‘मैं अपने चित्तको ०<sup>८</sup> अव्यापादितसे ज्ञापित कर विहरूँगा । ऐसा भिक्षुओ ! तुम्हें सीखना चाहिये ।

“भिक्षुओ ! तुम इस ककचूपम ( = ककचोपम = आरेके दृष्टान्तवाले ) उपदेशको बार बार मनमें करो । देखते हो भिक्षुओ ! उस वचनपथको अणु वा स्थूल, जिसे तुम नहीं पसन्द करते ?

“नहीं भन्ते !”

“इसलिये भिक्षुओ ! इस ककचूपम उपदेशको निरन्तर मनमें करो, वह तुम्हें चिरकाल तक हित, सुखके लिये होगा ।”

भगवान् ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान् के भाषणका अभिनन्दन किया ।

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ ८२ ।

<sup>२</sup> देखो ऊपर ।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ ८२ ।



## २२-अलगदूपम-मुत्तन्त ( १।३।२ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तोमें अनाथ-पिंडिकके आराम जेतवनमें विशार करते थे। उस समय गन्धवाधि-पुत्र्य (= भूतपूर्व गन्धवाधि = गिद्ध मारनेवाले) अरिष्ट (= अरिष्ट) भिक्षुको ऐसी बुरी दृष्टि (= धारणा) उत्पन्न हुई थी—‘मैं भगवान्‌के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ, जैसे कि जो ( निषांग आदि के ) अन्तरायिक (= विघ्नकारक) धर्म (= कार्य) भगवान्‌ने कहे हैं, सेवन करने पर भी वह अन्तराय (= विघ्न) नहीं कर सकते।’ बहुतसे भिक्षुओंने सुना कि, अरिष्ट भिक्षुको ऐसी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—‘अन्तराय नहीं कर सकते’। तब वह भिक्षु जहाँ ० अरिष्ट भिक्षु था, वहाँ गये, जाकर ० अरिष्ट भिक्षुसे यह बोले—

“आवुस अरिष्ट ! सच्चमुच हो, तुम्हें इस प्रकारकी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—‘० अन्तराय नहीं कर सकते !’”

“आवुसो ! मैं भगवान्‌के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ ० अन्तराय नहीं कर सकते !”

तब वह भिक्षु ० अरिष्ट भिक्षुको उस बुरी दृष्टि (= धारणा)से हटानेके लिये कहते, समझाते बुझाते थे—‘आवुस अरिष्ट ! मत ऐसा कहो, मत आवुस अरिष्ट ऐसा कहो। मत भगवान्‌ पर झूठ लगाओ (= अम्याक्यान करो), भगवान्‌ पर झूठ लगाना अच्छा नहीं है। भगवान्‌ ऐसा नहीं कह सकते। अनेक प्रकारसे भगवान्‌ने आवुस अरिष्ट ! अन्तरायिक (= विघ्नकारक) धर्मोंको अन्तरायिक कहा है। सेवन करनेपर वह अन्तराय करते हैं—कहा है। भगवान्‌ने कामों (= भोगों)को बहुत दुःखदायक, बहुत परेशान करनेवाले कहा है। उनमें बहुत दुःखपरिणाम ( बतलाये हैं )। भगवान्‌ने कामोंको अस्थिरकाल-समान<sup>१</sup> कहा, मांस-पेशी-समान ०, तृण-उत्का-समान ०, अंगारक (= अग्निचूर्ण)के समान ०, स्वप्न-समान ०, याचितकोपम (= गंगनीके आभूषणके समान) ०, वृक्ष-फल-समान<sup>२</sup> ०, असिसूनूपम शक्ति-शूल-समान ०, सर्प-शिर-समान ०, भगवान्‌ने कामोंको बहुत दुःखदायक ० बहुत दुःखपरिणामी बतलाये हैं।”

इन भिक्षुओं द्वारा ० अरिष्ट भिक्षु ऐसा कहे जाने, समझाये बुझाये जाने पर भी उसी बुरी दृष्टिको दृढ़तासे पकड़ अभिविवेश (= आग्रह) करके ( उभे ) व्यवहार करता था—“मैं भगवान्‌के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ ०” अन्तराय नहीं कर सकते।”

तब वह भिक्षु ० अरिष्ट भिक्षुको उस बुरी दृष्टिसे नहीं हटा सके, तब वह भगवान्‌के पास जाकर अभिवादन कर, एक ओर... बैठ... यह बोले—

<sup>१</sup> इन उपमाओंके लिये पोतल्लिय-मुत्त ( मज्झिम नि० ५४ ) देखो। <sup>२</sup> देखो ऊपर।

“भन्ते ! ० अरिष्ट मिश्रुको इस प्रकारकी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—‘मैं भगवान्‌के ०’ भन्ते ! हमने सुना, कि ० अरिष्ट मिश्रुको ० इस प्रकारकी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—‘०’ । तब हमने भन्ते ! ‘‘अरिष्ट मिश्रुके पास’’ जाकर ‘‘यह पूछा—‘आवुस अरिष्ट ! सचमुच ०’ ? ऐसा कहने पर ० अरिष्ट मिश्रुने हमें यह कहा—‘आवुसो ! मैं भगवान्‌ ०’ नहीं कर सकते’ । तब भन्ते ! हम ० अरिष्ट मिश्रुको ० समझाते बुझाते थे—० । हमारे द्वारा ०’ ऐसा ० समझाये जाने पर भी ०’—‘मैं भगवान्‌के ०’ । जब हम भन्ते ! ० अरिष्ट मिश्रुको उस बुरी दृष्टिसे नहीं हटा सके, तब हम इसे भगवान्‌को कह रहे हैं ।”

तब भगवान्‌ने एक मिश्रुको संबोधित किया—“आ मिश्रु ! तू मेरे वचनसे ० अरिष्ट मिश्रुको कह—आवुस अरिष्ट ! तुझे शाला बुला रहे हैं ।”

“अच्छा, भन्ते !”—कह उस मिश्रुने ० अरिष्ट मिश्रुके पास ‘‘जाकर’’ यह कहा—

“आवुस अरिष्ट ! शाला तुम्हें बुला रहे हैं ।”

“अच्छा, आवुस !”—( कह ) उस मिश्रुको उत्तर दे ० अरिष्ट मिश्रु ‘‘भगवान्‌के पास’’ जाकर ‘‘अभिवादन कर’’ एक ओर बैठा । एक ओर बैठे ० अरिष्ट मिश्रुको भगवान्‌ने यह कहा—

“सचमुच अरिष्ट ! तुझे इस प्रकारकी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—‘मैं भगवान्‌के ०’ अन्तराय नहीं कर सकते हैं ?

“हाँ, भन्ते ! मैं भगवान्‌के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ, जैसे कि जो अन्तरायिक धर्म भगवान्‌ने कहे हैं, सेवन करने पर भी वह अन्तराय नहीं कर सकते ।”

“मोघपुरुष ( = निकम्मा आवुसो ) ! किसको मैंने ऐसा धर्म उपदेश किया, जिसे तू ऐसा जानता है—‘मैं भगवान्‌ ० । क्यों मोघपुरुष ! मैंने तो अनेक प्रकारसे अन्तरायिक धर्मोंको अन्तरायिक कहा है ०’ बहुत दुष्परिणाम यतलाये हैं । और तू मोघपुरुष ( = मोघिया ) अपनी उल्टी धारणासे हमें झूठ लगा रहा है, और अपनी भी हानि कर रहा है, बहुत अ-युक्त्य कमा रहा है । मोघपुरुष ! यह चिरकाल तक तेरे लिये अ-हित और दुःखके लिये होगा ।”

तब भगवान्‌ने मिश्रुओंको संबोधित किया—

“तो क्या मानते हो मिश्रुओ ! क्या यह ० अरिष्ट मिश्रु उन्मोक्त ( = छू तक गया ) भी इस धर्ममें नहीं है ?”

“कैसे होगा भन्ते ! नहीं भन्ते !”

ऐसा कहने पर ० अरिष्ट मिश्रु चुप हो, मूक हो, कन्धा गिरा कर, अधोमुख चिन्ता करते प्रतिभा-शून्य हो बैठा रहा । तब भगवान्‌ ० अरिष्ट मिश्रुको चुप ० प्रतिभाशून्य जान कर ० अरिष्ट मिश्रुसे बोले—

“तू मोघपुरुष ! अपनी इस बुरी दृष्टिको जानेगा, जब मैं मिश्रुओंको पुछूँगा ।”

तब भगवान्‌ने मिश्रुओंको संबोधित किया—

“मिश्रुओ ! क्या तुम भी मेरे ऐसे उपदेश किये धर्मको जानते हो, जैसा कि यह ० अरिष्ट मिश्रु अपनी ही उल्टी धारणासे हमें झूठ लगा रहा है, और अपनी भी हानि कर रहा है, बहुत अयुक्त्य कमा रहा है ?

\* देखो पृष्ठ ८४ ।

\* पृष्ठ ८४ में भगवान्‌की जगह, मैं रखकर ।



“नहीं मन्ते ! भगवान् तो अनेक प्रकारसे अमरसाधिक धर्मोंको अन्तराधिक कहा है ०”  
बहुत दुरुपरिणाम बतलाये हैं ।”

“तो वह ० अरिष्ट भिक्षु अपनी डब्ली धारणासे हमें अड़ लगा रहा है, और अपनी भी हानि कर रहा है, बहुत अनुष्ण (= पाप) कमा रहा है । यह इस मोक्षपुरुषके लिये चिरकाल तक अहित और दुःखके लिये होगा । और यह भिक्षुओ ! कामोंसे भिन्न, काम-अंशासे भिन्न, काम वितर्कसे भिन्न ( किली वस्तुका ) सेवन करेगा, यह संभव नहीं ।

“यहाँ भिक्षुओ ! कोई कोई मोक्षपुरुष—मोय, व्याकरण, गाथा, उद्दान, इतिवृत्तक, जातक, अद्भुत-धर्म, वैदश्य—( इन ती प्रकारके ) धर्म (= उपदेश )को धारण करते हैं । वह उन धर्मोंको धारण करते भी उनके अर्थको प्रज्ञासे परखते नहीं हैं । अर्थको प्रज्ञासे परखे बिना धर्मों का आश्रय नहीं समझते । वह या तो उपारम्भ (= सहायता )के लाभके लिये धर्मोंको धारण करते हैं; या बादमें प्रमुख बननेके लाभके लिये धर्मोंको धारण करते हैं; और उसके अर्थको नहीं अनुभव करते । उनके लिये यह डब्ली तौरसे धारण किये धर्म अहित ( और ) दुःखके लिये होते हैं । सो कित्त हेतु ?—धर्मोंको डब्ला धारण करनेसे भिक्षुओ ! जैसे भिक्षुओ ! कोई अलग्गह (= साँप ) चाहनेवाला अलग्गह-गवेपी पुरुष अलग्गहकी खोजमें घूमता एक महान् अलग्गहको पाये; और उसे भोग (= देह )से या पूँछ (= नंगुष्ठ ) से पकड़े; उसको वह अलग्गह बल्ल कर हाथमें, बाँहमें या अन्य किसी अंगमें बँस ले । वह उसके कारण मरण या मरण-समान दुःखको प्राप्त होवे । सो कित्त हेतु ?—भिक्षुओ ! अलग्गहके दुर्बहीत (= डब्ली तरहसे पकड़ा ) होनेसे । ऐसेही यहाँ भिक्षुओ ! कोई कोई मोक्षपुरुष ० ।

“किन्तु भिक्षुओ ! कोई कोई कुलपुत्र—सूत्र ०” धर्मोंको धारण करते हैं । वह उन धर्मोंको धारण कर उनके अर्थको प्रज्ञासे परखते हैं । प्रज्ञासे परखकर धर्मोंके अर्थको समझते हैं । वह उपारम्भ (= धनलाभ ) के लिये ० या बादमें प्रमुख बननेके लिये धर्मोंको धारण नहीं करते । वह उनके अर्थको अनुभव करते हैं । उनके लिये यह सुग्रहीत (= ठीक तौरसे धारण किये ) धर्म चिरकाल तक हित और सुखके लिये होते हैं । जैसे भिक्षुओ ! कोई ० अलग्गह-गवेपी पुरुष अलग्गहकी खोजमें घूमता एक महान् अलग्गहको देखे । उसको वह अज्जपद ईड (= साँप पकड़नेका डंडा जिसके छोर पर बकरीके पैरकी तरह चिरका संबसोभुमा हथियार लगा रहता है )से खूब अच्छी तरह पकड़े । अच्छी तरह पकड़कर गर्दनसे ठीक तौरपर पकड़े । फिर भिक्षुओ ! चाहे वह अलग्गह उस पुरुषके हाथ, बाँह या किसी और अंगको अपने भोग (= देह )से परिवेष्टित करे, किन्तु वह उसके कारण न मरण न मरण-समान दुःखको प्राप्त होवे । सो कित्त हेतु ?—भिक्षुओ ! अलग्गहके सुग्रहीत होनेसे । ऐसे ही भिक्षुओ ! कोई कोई कुलपुत्र ० ।

“इसलिये भिक्षुओ ! मेरे जिस भाषण का अर्थ तुम समझे हो, उसे वैसे धारण करना, और जिसका अर्थ तुम नहीं समझे, उसे मुझसे पूछना, या ( दूसरे ) जानकार भिक्षुसे ।

“भिक्षुओ ! मैं वेडे (= कुल )की भाँति निस्तरण (= निस्तरा, = पार जाने )के लिये तुम्हें धर्मोंको उपदेशता हूँ, पकड़ रखनेके लिये नहीं । उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

१ देखो पृष्ठ ८४ ( भगवान् की जगह, मैं रखकर ) ।

२ उस समय और उसके बाद पाँच शताब्दियों तक बुद्धके उपदेश कण्ठस्थ ही रहके बाँटे थे ।

३ देखो पिछला पैरा ।

“अच्छा भन्ते !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दिया ।

भगवान्‌ने यह कहा—“जैसे भिक्षुओं ! पुरुष ज-स्थान-मार्ग ( = वे स्थानके रास्ते ) पर जाते एक ऐसे महान्‌ जल-अर्णवको प्राप्त हो, जिसका उरला तीर खतरा और भयसे पूर्ण हो, और परला तीर क्षेमयुक्त और भयरहित हो । वहाँ न पार लेजानेवाली नाव हो, न इधरसे उधर जाने आनेके लिये पुल हो । ( तब ) उस ( के मनमें ) हो—‘अहो ! यह महान्‌ जल-अर्णव है, इसका उरला तीर ० न इधरसे उधर जाने आनेके लिये पुल है । क्यों न मैं तृण-काष्ठ-पत्र जमाकर बेड़ा बाँधूँ, और उस बेड़ेके सहारे दाय और वैरसे मेहनत करते स्वल्पपूर्वक पार उत्तर जाऊँ ।’ तब भिक्षुओं ! वह पुरुष ० बेड़ा बाँधकर, उस बेड़ेके सहारे ० पार उत्तर जाये । इत्तीर्ण होजाने पर, पार चले जानेपर उसके ( मनमें ) ऐसा हो—‘यह बेड़ा मेरा बड़ा उपकारी हुआ है, इसके सहारे ० मैं पार उतरा हूँ, क्यों न मैं इस बेड़ेको शिरपर रखकर, या कन्धेपर उठाकर जहाँ इच्छा हो वहाँ जाऊँ ।’ तो क्या जानते हो भिक्षुओं ! क्या वह ऐसा करनेवाला पुरुष उस बेड़ेमें कर्तव्य पालनेवाला होगा ?”

“नहीं, भन्ते !”

“भिक्षुओं ! वह पुरुष उस बेड़ेसे दुःख उठानेवाला ( = कष्टकारी ) होगा । भिक्षुओं ! यदि इत्तीर्ण पारगत उस पुरुषको ऐसा हो—‘यह बेड़ा मेरा बड़ा उपकारी हुआ है, इसके सहारे ० मैं पार उतरा हूँ, क्यों न मैं इसे स्थलपर रखकर, या पानीमें डालकर जहाँ इच्छा हो वहाँ जाऊँ ।’ भिक्षुओं ! ऐसा करनेवाला वह पुरुष उस बेड़ेमें कर्तव्य पालनेवाला होगा । ऐसेही भिक्षुओं ! मैंने बेड़ेकी भाँति निस्तरणके लिये तुम्हें धर्मोंको उपदेशा है, पकड़ रखनेके लिये नहीं । धर्मोंको बेड़ेके समान ( = कुल्लूपम् ) उपदेशा जानकर तुम धर्मोंको भी छोड़ दो, अ-धर्मोंकी तो पात हो क्या ।

“भिक्षुओं ! यह छः दृष्टि ( = धारणा )-स्थान हैं कौनसे छः ?—भिक्षुओं ! आर्यों के दर्शनसे वंचित ०<sup>१</sup> नञ्‌ मनाही पुरुष ( १ ) रूप ( = Matter )<sup>२</sup> को—‘यह मेरा है,’ ‘यह मैं हूँ,’ ‘यह मेरा आत्मा है’—इस प्रकार समझता है । ( २ ) वेदनाको ० । ( ३ ) संज्ञाको ० । ( ४ ) संस्कारको ० । ( ५ ) विज्ञानको—‘यह मेरा है,’ ‘यह मैं हूँ,’ ‘यह मेरा आत्मा है’—इस प्रकार समझता है । ( ६ ) जो कुछ भी वह देखा, सुना, यादमें आया, ज्ञात, प्राप्त, पर्योषित ( = स्पर्श ), और मनद्वारा अनुविचारित ( पदार्थ ) है, उसे भी ( वह )—‘यह मेरा है,’ ‘यह मैं हूँ,’ ‘यह मेरा आत्मा है’—इस प्रकार समझता है । जो यह ( छः ) दृष्टि-स्थान हैं, ‘सो लोक है, सोई आत्मा हूँ, मैं मरकर सोई निल, ध्रुव, साश्वत, निर्विकार ( = अविपरिणामधर्मा ) आत्मा होऊँगा, और अनन्त वर्षों ( = शाश्वती समा ) तक वैसे ही स्थित रहूँगा’—इसे भी ‘यह मेरा है,’ ‘यह मैं हूँ,’ ‘यह मेरा आत्मा है’—इस प्रकार समझता है ।

“भिक्षुओं ! आर्योंके दर्शनसे युक्त, आर्यधर्मसे परिचित, आर्यधर्ममें विनीत ( = प्राप्त ); सत्सुखोंके दर्शनसे युक्त, ० परिचित, ० विनीत, श्रुतवाद ( = शानी ) आर्य प्रायक—( १ ) रूप

<sup>१</sup> देखी पृष्ठ ३ ।

<sup>२</sup> रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान यही पाँच स्कंध जगत्‌की निर्मापक सामग्री हैं । पृथिवी, जल, अग्नि, वायु यह चार रूप-स्कंध हैं । जिसमें मारीचन है, और जो जगह घेरता है, वह रूप ( = Matter ) है । उससे उल्ला विज्ञान ( = Mind ) स्कंध है । दोनोंके सम्पर्कसे होनेवाली विज्ञानकी तीन अवसायों बाकी तीन स्कंध हैं ।



को—‘वह मेरा नहीं’, ‘यह मैं नहीं हूँ’, ‘यह मेरा आत्मा नहीं है,—इस प्रकार समझता है। (२) वेदनाको ०। (३) संज्ञाको ०। (४) संस्कारको ०। (५) विज्ञानको ०। (६) जो कुछ भी यह देना ०। जो यह (७) दृष्टि-स्थान है ० ‘यह मेरा आत्मा नहीं है’—इस प्रकार समझता है। वह इस प्रकार समझते हुये अज्ञान-प्राप्त (= भय) को नहीं प्राप्त होता।”

ऐसा कहनेपर किसी भिक्षुने भगवान्‌से यह कहा—“भन्ते ! क्या बाहर अज्ञान-परि-प्राप्त है ?”

भगवान्‌ने कहा—“होता है भिक्षु ! यहाँ ! भिक्षु ! किसीको ऐसा होता है—‘अहो ! ( पहले ) यह मेरा था’, ‘अहो ! अब यह मेरा नहीं है’, ‘अहो ! मेरा होने’, ‘अहो ! उसे मैं नहीं पाता हूँ’—( यह ) इस प्रकार शोक करता है, दुःखित होता है, रोता है, छाती पीटकर क्रन्दन करता है, मूर्छित होता है। इस प्रकार भिक्षु ! बाहर अज्ञान-परिप्राप्त होता है।”

“किन्तु, भन्ते ! क्या बाहर अज्ञान-अपरिप्राप्त होता है ?”

भगवान्‌ने कहा—“होता है भिक्षु ! यहाँ भिक्षु ! किसी ( पुरुष ) को ऐसा नहीं होता—‘अहो ! ( पहले यह ) मेरा था’, ० ‘अहो ! उसे मैं नहीं पाता हूँ’—( यह ) इस प्रकार शोक नहीं करता ० मूर्छित नहीं होता। इस प्रकार भिक्षु ! बाहर अज्ञानिका परिप्राप्त नहीं होता।

“कैसे भन्ते ! भीतरमें अज्ञान-परिप्राप्त होता है ?”

भगवान्‌ने कहा—“होता है भिक्षु ! यहाँ भिक्षु ! किसीकी यह दृष्टि (= धारणा ) होती है—‘सो लोक है, सोई आत्मा है; मैं भरकर सोई नित्य, भुव, शाश्वत, निर्विकार होऊँगा; और अनन्त वर्षोंतक वैसेही स्थित रहूँगा।’ वह तथ्यागत (= बुद्ध ) तथ्यागत-आवक (= ०-शिष्य ) को सारे ही दृष्टि-स्थानों, ( दृष्टियोंके ) अधिष्ठान (= रहनेके स्थान ), पर्युत्थान (= उठने उपजने ), अभिनिवेश (= आग्रह ) और अनुशरणों (= मलों ) के विनाशके लिये सारे संस्कारों (= दिलके प्रभाषों ) के शमन करनेके लिये, सारी उपाधियोंके परित्यागके लिये, ( और ) नृणाके शत्रुके लिये, विराग, मित्रोद (= राग आदिके नाश ) और निर्वाणके लिये धर्म उपदेस करते सुनता है। उसको ऐसा होता है—अहो ! मैं उच्छिन्न होऊँगा, अहो ! मैं वष्ट होजाऊँगा; ( हाय ! ) मैं नहीं रहूँगा !!—यह शोक करता है ०\* मूर्छित होता है। इस प्रकार भिक्षु ! वह अज्ञान-परिप्राप्त (= बिजलीसा भय ) होता है।

“कैसे भन्ते ! ( धिक्के ) भीतर अज्ञानिका-परिप्राप्त नहीं होता ?”

भगवान्‌ने कहा—“होता है भिक्षु ! यहाँ भिक्षु ! किसीकी यह दृष्टि नहीं होती—‘सो लोक है ०’\* न मूर्छित होता है। इस प्रकार भिक्षु ! वह अज्ञानिका परिप्राप्त नहीं होता।

“भिक्षुओ ! उस परिग्रह (= ग्रहण करनेकी वस्तु ) को परिग्रहण (= ग्रहण ) करना चाहिये, जो परिग्रह कि नित्य, भुव, शाश्वत, निर्विकार अनन्त वर्ष वैसेही (= एक समान ) रहे। भिक्षुओ ! देखते हो ऐसे परिग्रहको, जो कि ० अनन्त वर्ष तक वैसेही रहे ?”

“नहीं भन्ते !”

“साधु, भिक्षुओ ! मैं भी ऐसे परिग्रहको नहीं देखता, जो कि ० अनन्त वर्षोंतक वैसेही रहे। भिक्षुओ ! उस आत्म-वाद (= आत्माके सिद्धान्त )-स्वीकारको स्वीकारें, जिस आत्मवाद-स्वीकारके स्वीकारने (= सकारने )से शोक, परिदेव (= कलपकर रोता ), दुःख = दीर्घमस्य, उपा-यास (= परेशानी ) न उत्पन्न हों। भिक्षुओ ! देखते हो, ऐसे आत्मवाद-स्वीकारको, जिस आत्मवादके स्वीकारसे शोक परिदेव ० न उत्पन्न हों।

“नहीं, भन्ते !”

“साधु, भिक्षुओ ! मैं भी ऐसे आत्मवाद-स्वीकारको नहीं देखता, जिस आत्मवाद-स्वीकारसे शोक ० न उत्पन्न हो । भिक्षुओ ! उस दृष्टि-निश्चय (= धारणाके विषय ) का आशय लेना चाहिये; जिस दृष्टि-निश्चयके आशय लेनेपर शोक ० न उत्पन्न हो । भिक्षुओ ! देखते हो, ऐसे दृष्टि-निश्चयको, जिस ० ?”

“नहीं, भन्ते !”

“साधु, भिक्षुओ ! मैं भी ऐसे दृष्टि-निश्चयको नहीं देखता ० । भिक्षुओ ! आत्माके होने पर ‘( यह ) मेरा आत्मीय है’—यह हो सकता है ?”

“हाँ, भन्ते !”

“भिक्षुओ ! आत्मीय होनेपर, ‘( यह ) मेरा आत्मा ( है )’—हो सकता है ?”

“हाँ, भन्ते !”

“भिक्षुओ ! आत्मा और आत्मीयके ही सत्यतः = स्थिरतः उपलब्ध होनेपर, जो यह दृष्टि-स्थान—‘सोई लोक है, सोई आत्मा है, मैं भरकर सोई नित्य ०’ अनन्त वर्षों तक वैसे ही स्थित रहूँगा ।” भिक्षुओ ! क्या यह केवल पूरा बाल-धर्म (= बच्चोंकीसी बात ) नहीं है ?”

“क्यों नहीं ? है भन्ते ! केवल पूरा बाल-धर्म ।”

“तो क्या मानते हो भिक्षुओ ! रूप नित्य है या अनित्य ?”

“अनित्य है, भन्ते !”

“जो अनित्य है वह दुःख (रूप) है या सुख (रूप) ?”

“दुःख (रूप) है भन्ते !”

“जो अनित्य, दुःख (स्वरूप) और विपरिणाम-धर्मा (= परिवर्तनशील, विकारी ) है, क्या उसके लिये ऐसा देखना—‘यह मेरा है’, ‘यह मैं हूँ’, ‘यह मेरा आत्मा है’—योग्य है ?”

“नहीं, भन्ते !”

“तो क्या मानते हो भिक्षुओ ! वेदना नित्य है या अनित्य ?”

“अनित्य है, भन्ते !” ०<sup>१</sup> ।

“० संज्ञा ०<sup>२</sup>, ० संस्कार ०<sup>३</sup>, ० विज्ञान नित्य है या अनित्य ?”

“अनित्य है, भन्ते !”

“जो अनित्य, दुःख, और विपरिणाम-धर्मा है, क्या उसके लिये ऐसा देखना—० ‘यह मेरा है’ ०—योग्य है ?”

“नहीं, भन्ते !”

“इसलिये भिक्षुओ ! भीतर ( शरीरमें ) या बाहर, स्थूल या सूक्ष्म, उत्तम या निम्न, दूर या नजदीक, जो कुछ भी भूत भविष्य वर्तमानका रूप है, वह सब—‘यह मेरा नहीं है’, ‘यह मैं नहीं हूँ’, ‘यह मेरा आत्मा नहीं है’,—ऐसे ही यथावतः ठीकसे जानकर देखना चाहिये । ० जो कुछ भी ० वेदना है ० । ० जो कुछ भी ० संज्ञा है ० । ० जो कुछ भी ० संस्कार है ० । ० जो कुछ भी ० विज्ञान है, वह सब—‘यह (= विज्ञान ) मेरा नहीं है’, ‘यह मैं नहीं हूँ’, ‘यह मेरा आत्मा नहीं है’—० जानकर देखना चाहिये ।

<sup>१</sup> देखो कपर ।

<sup>२</sup> रूपकी भाँति यहाँ भी प्रयुक्त है ।



“भिक्षुओ ! ऐसा देखनेपर बहुश्रुत आवयथावक रूपमें भी निर्वेद (= बड़ासीमता) को प्राप्त होता है, वेदनामें भी ०, संज्ञामें भी ०, संस्कारमें भी ०, विज्ञानमें भी निर्वेदको प्राप्त होता है । निर्वेदसे विरागको प्राप्त होता है । विराग प्राप्त होनेपर ( राग आदिसे ) विमुक्त हो जाता है । विमुक्त (= मुक्त ) होने पर ‘मैं विमुक्त होगया’—यह ज्ञान होता है, फिर जानता है—जन्म क्षय हो गया, जन्मचर्यवास पूरा हो गया, करणीय कर लिया, यहाँ और ( कुछ भी ) करनेको नहीं है । भिक्षुओ ! यह भिक्षु उत्तिष्ठत-परिघ (= ऐसेसे मुक्त ) भी, संकीर्ण-परिघ (= छाई पार ) भी, अ-ज्यूढ-हरीसिक (= जो हलकी हरीस जैसे दुनियाके भारोंको नहीं ढंढाये है ) भी, निरर्गल (= लगासकूपी संसारके बंधनसे मुक्त ) भी, आर्य, पन्त-ध्वज (= जिसकी राग आदि रूपी ध्वजा गिर गई है ), पन्त-भार (= जिसका भार गिर गया है ), वि-संयुक्त (= राग आदिसे विमुक्त ) भी कहते हैं । भिक्षुओ ! कैसे भिक्षु उत्तिष्ठत-परिघ होता है ?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षुने अ-विद्याको नाश कर दिया है, उच्छिन्नमुल, मलकच्छिन्न ताड़के वृक्ष जैसा, अभावको प्राप्त, भविष्यमें न डरपत्र होने लायक कर दिया है । इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु उत्तिष्ठत-परिघ होता है । कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु संकीर्ण-परिघ होता है ?—० भिक्षुने पौनर्मधिक (= पुनर्जन्म-संबंधी ) जालि-संस्कार (= जन्म दिलानेवाले पूर्वकृत कर्मोंके चित्तप्रवाहपर पड़े संस्कार ) को नाश कर दिया है ० । संकीर्ण-परिघ होता है । कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु अ-ज्यूढ-हरीसिक होता है ?—० । तृष्णाको नाश कर दिया है ० । निरर्गल होता है ?—० पाँच अवरभागीय\* संयोजनों (= बंधनों ) को नाश कर दिया है ० । कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु आर्य, पन्तध्वज, पन्तभार, वि-संयुक्त होता है ?—यहाँ भिक्षुओ ! भिक्षुका अस्मिमान (= हूँका अस्मिमान ) नष्ट होता है ० । भविष्यमें न डरपत्र होने लायक किया गया होता है । इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु आर्य होता है । भिक्षुओ ! इस प्रकार मुक्तचित्त भिक्षुको इन्द्र, ब्रह्मा प्रजापति सहित ( सारे ) देवता नहीं जान सकते, कि इस तथ्यागतका विज्ञान इसमें निहित है । सो किस हेतु ?—भिक्षुओ ! इसी शरीरमें ही तथ्यागत अन्-अनुवेण (= अन्वेष ) है—यह कहता हूँ ।

“भिक्षुओ ! ऐसे वाद ( को मानने ) वाले, ऐसा कहनेवाले मुझे, कोई कोई भ्रमण-ब्राह्मण अ-सत्य, गुच्छ, सृष्टा = अ-भूतसे ही झूठ लगाते हैं—भ्रमण गौतम वेनयिक (= बिना या नहींके वादको माननेवाला ) है, ( वह ) विद्यमान सत्त्व (= जीव, आत्मा ) के उच्छेद = विनाश = विभवका उपदेश करता है । भिक्षुओ ! जो कि मैं नहीं कहता, वह आप भ्रमण ब्राह्मण लोग इस असत्य, गुच्छ, सृष्टा अ-भूत ( कवन ) से ( मुझपर ) झूठ लगाते हैं—भ्रमण गौतम ० विभवका उपदेश करता है । भिक्षुओ ! पहिले भी और अब भी मैं उपदेश करता हूँ—दुःखको, और दुःख-निरोध को ० । वहाँ यदि भिक्षुओ ! दूसरे तथ्यागतको निन्दते=परिभाषते, मुन्साते हैं; उससे भिक्षुओ ! तथ्यागतको चोट (= आघात ), अ-प्रसन्न (= अ-संतोष ) और चित्त-विकार नहीं होता । और यदि भिक्षुओ ! दूसरे तथ्यागतका सत्कार = गुरुकार, मानन = पूजन करते हैं; तो भिक्षुओ ! उससे तथ्यागतको आनन्द = सौमनस्य चित्तका प्रसन्नताऽतिरेक नहीं होता । भिक्षुओ ! जब दूसरे तथ्यागतका सत्कार ० करते हैं, तो तथ्यागतको ऐसा होता है—जो पहिले ( ही ) त्याग दिया है, उसीके विषयमें इस प्रकारके कार्य किये जा रहे हैं । इसलिये भिक्षुओ ! यदि दूसरे सुख भी निन्दें, तो उसके शिने

\* पहले जैसे । \* वरजे भागवाले अर्थात् संसारमें कैसा रहनेवाले, वह पाँच है—(१) साक्षात् इष्टि (= आत्मवादकी धारणा ), विचिकित्सा (= संकल्प ), शीलवत्-परामर्श (= प्रत्यक्ष आचरणका अनुचित-अस्मिमान ), कामचन्द (= मोगमें राग ), व्यापाद (= पीवकशुचि ) ।

तुम्हें घोट, असन्तोष, विल-विकार नहीं आने देना चाहिये । और इसलिये भिक्षुओं ! यदि दूसरे तुम्हारा सत्कार ० करें, तो उसके लिये तुम्हें आनन्द ० नहीं करना चाहिये । अन्तः भिक्षुओं ! यदि दूसरे तुम्हारा सत्कार ० करें, तो उसके लिये तुम्हें भी ऐसा होना चाहिये—जो पहिले त्याग दिया है, उसीके विषयमें इस प्रकारके कार्य किये जा रहे हैं ।

“इसलिये भिक्षुओं ! जो तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ो, उसका छोड़ना चिरकालतक तुम्हारे हित सुखके लिये होगा । भिक्षुओं ! क्या तुम्हारा नहीं है ?—रूप भिक्षुओं ! तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ो, उसका छोड़ना चिरकाल तक तुम्हारे हित सुखके लिये होगा । ० वेदना ० । ० संज्ञा ० । ० संस्कार ० । ० विज्ञान ० । तो क्या मानते हो भिक्षुओं ! इस जेतवन में जो वृण, काष्ठ, शाखा, पत्र है, उसे ( कोई ) आदमी अपहरण करे, जलाये या ( अपनी ) इच्छानुसार ( जो चाहे सो ) करे, तो क्या तुम्हें ऐसा होना चाहिये—हमारी ( चीज़ ) को ( वह ) आदमी अपहरण ० कर रहा है ?”

“नहीं, भन्ते !”

“तो किस हेतु ?”

“भन्ते ! वह हमारा आत्मा या आत्मीय नहीं है ।”

“ऐसे ही भिक्षुओं ! जो तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ो, ० उसका छोड़ना, चिरकाल तक तुम्हारे हित-सुखके लिये होगा । भिक्षुओं ! क्या तुम्हारा नहीं है ?—रूप ० । ० वेदना ० । ० संज्ञा ० । ० संस्कार ० । ० विज्ञान ० ।

“भिक्षुओं ! इस प्रकार मैंने धर्मका उत्थान = विवृत = प्रकाशित, आवरणरहित ( = छिन्न-विलोपित ) ( करके ) अच्छी तरह ध्याक्यान किया ( = स्वाक्यात ) है । ऐसे ० स्वाक्यात धर्ममें, उन भिक्षुओंके लिये कुछ उपदेश करनेकी जरूरत नहीं है, जो कि ( १ ) अर्हत्, क्षीणाम्रय ( = राग आदि मल जिनके नष्ट हो गये हैं ), ब्रह्मचर्यवास पूरा कर चुके, कृतकरणीय, भारमुक्त, सत्त्व अर्थको प्राप्त, परिक्षीण-भय-संयोजन ( = जिनके भवसागरमें डालनेवाले बंधन नष्ट हो गये हैं ), सम्यग्ज्ञाविमुक्त ( = यथायं ज्ञानसे जिनकी मुक्ति होगई है ) हैं । ( २ ) भिक्षुओं ! ऐसे ० स्वाक्यात धर्ममें जिन भिक्षुओंके पाँच अवरोधकारी संयोजन नष्ट हो गये हैं, वह सभी औपपातिक ( = अपोमिज, देव ) हो वहाँ ( देवलोकमें ) जा परिनिर्वाणको प्राप्त होनेवाले हैं, ( वह ) उस लोकसे लौटकर नहीं आनेवाले ( = अनारुपिधर्मा = अनारामाणी ) हैं, ( ३ ) भिक्षुओं ! ऐसे ० स्वाक्यातधर्ममें जिन भिक्षुओंके तीन संयोजन नष्ट हो गये हैं, राग-द्वेष-मोह निर्बल ( = तनु ) हो गये हैं, वह सारे सद्दुद्गामाणी = सद्दुद्ग ( = एक धार ) ही इस लोकमें आकर दुःखका अन्त करेंगे । ... ( ४ ) भिक्षुओं ! ऐसे स्वाक्यात धर्ममें जिन भिक्षुओंके तीन संयोजन नष्ट हो गये, वह सारे न पतित होनेवाले संबोधि ( = बुद्धके ज्ञान )-परायण स्त्रोत-अपन्न ( = निर्वाणकी ओर ले जाने-वाले प्रवाहमें स्थिर रीतिसे आरुढ़ ) हैं । ... भिक्षुओं ! ऐसे ० स्वाक्यात धर्ममें जो भिक्षु अज्ञान-सुसारी, धर्मानुसारी हैं, वह सभी संबोधि-परायण हैं । इस प्रकार मैंने धर्मका ० अच्छी तरह ध्याक्यान किया है । ऐसे ० स्वाक्यात धर्ममें जिनकी मेरे विषयमें अज्ञा मत्त प्रेम मत्त ( भी ) है, वह सभी स्वर्ग-परायण ( = स्वर्गगामी ) हैं ।”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया ।



## २३—वर्मिक-मुत्तन्त (१।३।३)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिटृदिके थाराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् कुमार काश्यप अन्धवनमें विहार करते थे। तब उजेली रातमें कोई अभिधान् वर्ण (= प्रकाशमय) देवता सारे अन्धवनको प्रभासित कर, जहाँ आयुष्मान् कुमार काश्यप ने वहाँ जाकर, एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खड़े हुये उस देवताने आयुष्मान् कुमार काश्यपसे यह कहा—

“मिथु ! मिथु ! यह कस्मीक रातको धुँधुँवाता (= धुँवा देता) है, दिनको गहता (= ज्वलित होता) है। ब्राह्मणने ऐसा कहा—

‘सुमेध ! शख ले अभीक्षण (= काट) ।’

सुमेधने शख ले काटते लंगीको देखा—‘लंगी है भदन्त (= स्वामी) !’

ब्राह्मणने यह कहा—‘लंगीको फेंक, सुमेध ! शख ले काट ।’

सुमेधने ० धुँधुँवाता देखा—‘धुँधुँवाता है, भदन्त !’

ब्राह्मणने यह कहा—‘धुँधुँवातेको फेंक, सुमेध ! ० ।’

सुमेधने ० दो रास्ते देखे—‘दो रास्ते हैं, भदन्त !’

ब्राह्मणने ०—‘दो रास्ते फेंक (= छोड़), सुमेध ! ० ।’

सुमेधने ० चंगवार (= चंगौरा = टोकरा) देखा—‘चंगवार है, भदन्त !’

ब्राह्मणने ०—‘चंगवार फेंक दे, सुमेध ! ० ।’

सुमेधने ० कूर्म (= कछुवा) देखा—‘कूर्म है, भदन्त !’

ब्राह्मणने ०—‘कूर्म फेंक दे, सुमेध ! ० ।’

सुमेधने ० असिसूता (= पशु मारनेका पीड़ा) देखा—‘असिसूता है, भदन्त !’

ब्राह्मणने ०—‘असिसूता फेंक दे, सुमेध ! ० ।’

सुमेधने ० मांसपेशी (= मांसका टुकड़ा) देखा—‘मांसपेशी है, भदन्त !’

ब्राह्मणने ०—‘मांसपेशी फेंक दे, सुमेध ! ० ।’

सुमेधने ० नाग देखा—‘नाग है, भदन्त !’

ब्राह्मणने ०—‘रहने दे नागको, मत उसे धक्का दे, नागको नमस्कार कर ।’

“मिथु ! इस प्रश्नोंको तुम भगवान्के पास जाकर पढ़ना। भगवान् जैसा इसका उत्तर दें, उसे शरण करता। मिथु ! देव-भार-ब्राह्म सहित सारे लोकमें, श्रमण-ब्राह्मण देव-मायुष सहित सारी प्रजाओं, मैं ऐसे ( पुरुष) को नहीं देखता, जो इस प्रश्नका उत्तर दे चित्तको सन्तुष्ट करे, सिवाय तथामत, तथामत-आवक या यहाँसे सुने हुयेके।”

यह देवता यह कह कर वहाँ अन्तर्धान होगया।

तब आयुष्मान् कुमार काश्यप उस रातके पीतनेपर जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर, अभिवादनकर, एक ओर... बैठ, भगवान्से यह बोले—

“भन्ते ! आज रातको एक अभिक्रान्तवर्ण देवता सारे अन्धवनको प्रभावित कर, वहाँ मै जा, वहाँ आकर एक ओर खड़ा हुवा, एक ओर जवा हो उस देवताने मुझे यह कहा—०<sup>१</sup> । यह देवता यह” कहकर वही अन्तर्धान होगया ।

“भन्ते ! ( १ ) क्या है कस्मीक ? ( २ ) क्या है रातका घुँघुँवाना ? ( ३ ) क्या है दिनका धधकना ? ( ४ ) कौन है ब्राह्मण ? ( ५ ) कौन है सुमेध ? ( ६ ) क्या है शस्त्र ? ( ७ ) क्या है अभीक्षण (= काटना ) ? ( ८ ) क्या है लंगी ? ( ९ ) ० घुँघुँवाना ? ( १० ) ० दो रास्ते ? ( ११ ) ० चंगवार ? ( १२ ) ० कूर्म ? ( १३ ) ० अस्ति-सुना ? ( १४ ) ० मात्स्येशी ? ( १५ ) क्या है नाग ? ”

“भिक्षु ! ( १ ) कस्मीक यह भाता-पिता से उत्पन्न भात-दालसे वर्धित, इसी चातुर्नहा-भौतिक कायाका नाम है, जो कि अनित्य तथा, उत्सादन (= हटाने ) मर्दन, भेदन, विध्वंसन स्वभाववाला है । ( २ ) भिक्षु ! जो दिन के कामोंके लिये रातको सोचता है, विचारता है, यही रातका घुँघुँवाना है । ( ३ ) भिक्षु ! जो कि रातको सोच विचारकर दिनको काया और वचनसे कामोंमें योग देता है, यह दिनका धधकना है । ( ४ ) ” ब्राह्मण यह तयागत, भाँव, सम्पद-सुन्दर नाम है । ( ५ ) सुमेध यह ज्ञेय (= जिसको शिक्षाकी अभी आवश्यकता है, ऐसा निर्वाण-मार्गाख्य व्यक्ति ) भिक्षुका नाम है । ( ६ ) ० शस्त्र (= हथियार ) यह अर्थात् प्रज्ञा (= उत्तम ज्ञान ) का नाम है । ( ७ ) ० अभीक्षण (= काटना ) यह वीरारम्भ (= उद्योग ) का नाम है । ( ८ ) ० लंगी अविद्याका नाम है । ‘लंगीको फेंक, सुमेध !’ अविद्या को छोड़, सुमेध ! शस्त्र ले काट—यह इसका अर्थ है । ( ९ ) ० घुँघुँवाना यह जोधकी परेशानीका नाम है, घुँघुँ-आना फेंक दे, सुमेध ! कोध-उपादासको छोड़, शस्त्र ले काट—यह इसका अर्थ है । ( १० ) ० दो रास्ते (= द्विधापथ ) यह विचिकित्सा (= संशय ) का नाम है । दो रास्ते फेंक दे, विचिकित्सा छोड़, सुमेध ! ० । ( ११ ) ० चंगवार यह पाँच नौघरणों (= आवरणों ) का नाम है, ( जैसे कि ) कामच्छन्द (= भोगोंमें राग )-नीवरण, उपादा (= परपीडाकरण )-नीवरण, स्वानन्द (= कायिक मानसिक आनन्द )-नीवरण, भीक्षुत्व-कौटुब्य (= उत्पन्नकृता और पञ्चात्ताप )-नीवरण, विचिकित्सा (= संशय )-नीवरण । ‘चंगवार फेंक दे’—पाँच नौघरणोंको छोड़ दे, सुमेध ! ० । ( १२ ) ० कूर्म यह पाँच उपादान-स्कंधों का नाम है, जैसे कि—रूप-उपादान-स्वप्न, वैदना ०, संज्ञा ०, संस्कार ०, विज्ञान ० । ‘कूर्मको फेंक दे’—अर्थात् पाँच उपादान-स्कंधोंको छोड़, सुमेध ! ० । ( १३ ) ० अस्ति-सुना यह पाँच काम-गुणों (= भोगों ) का नाम है, ( जैसे कि ) इष्ट कान्त बनाप = प्रिय, कमनीय, रंजनीय चक्षुद्वारा विज्ञेय रूप ०, श्रोत्र-विज्ञेय शब्द ०, घ्राण-विज्ञेय गंध ०, जिह्वा, विज्ञेय रस-इष्ट, कान्त, बनाप = प्रिय, कमनीय = रंजनीय काय-विज्ञेय स्पर्श ० । ‘अस्ति-सुना फेंक दे’—पाँच कामगुणोंको छोड़, सुमेध ! ० । ( १४ ) मात्स्येशी यह नन्दी = रागका नाम है । ‘मात्स्येशी फेंक दे’—नन्दी रागको छोड़ दे, सुमेध ! ० । ( १५ ) भिक्षु ! नाग यह शीणाश्व (= अर्हत् ) भिक्षुका नाम है । रहने दे नागको, मत उसे घसा दे, नागको नमस्कार कर, यह इसका अर्थ है । ”

भगवान्ने यह कहा, समुत्तरो जायुष्मान् कुमार-काश्यपने भगवान्के भाषणका अभि-नन्दन किया ।

<sup>१</sup> पाठे कहे गयेकी वास्तुति ।

<sup>२</sup> रूप आदि पाँच स्कंधोंमें व्यक्ति के ग्रहणका विषयवाला संज्ञा उपादान-स्कंध कहा जाता है ।



## २४-रथविनीत-सुत्तन्त ( १३।४ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् राजगृहमें कलन्दक-निघाप वैष्णवनेमें विहार करते थे। तब बहुतसे जातिभूमिक ( = भगवान्की जन्मभूमि कपिल वस्तुमें रहनेवाले ) जातिभूमि ( = कपिल-वस्तु ) में वर्षावास कर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्की अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन भिक्षुओंको भगवान्ने यह कहा—

“भिक्षुओ ! जातिभूमिमें जातिभूमिके भिक्षुओंका कौन ऐसा सम्भावित ( = प्रतिष्ठित ) भिक्षु है, जो स्वयं अल्पेष्ट ( = निर्लोभ ) हो, और भिक्षुओंके लिये अल्पेष्ट-कथा ( = निर्लोभीपनके उप-देस ) का कहनेवाला हो; स्वयं सन्तुष्ट हो, और भिक्षुओंके लिये सन्तोष-कथाका करनेवाला हो; स्वयं प्रविनिक्त ( = एकान्त-चिन्तनशील ) हो, ० प्रविनेक-कथा ०; स्वयं अ-संस्पृष्ट ( = जनतल्ल ) हो, ० असंसर्ग-कथा ०; स्वयं आरब्ध-वीर्य ( = उद्योगी ) हो, ० वीर्यारम्भ-कथा ०; स्वयं शील-सम्पन्न ( = सदाचारी ) हो, ० शील-सम्पदा-कथा ०; स्वयं समाधि-सम्पन्न हो, ० समाधि-सम्पदा-कथा ०; स्वयं प्रज्ञा-सम्पन्न हो, ० प्रज्ञा-सम्पदा-कथा ०; स्वयं विमुक्ति ( = मुक्ति )-सम्पन्न हो, ० विमुक्ति-सम्पदा-कथा ०; स्वयं विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-सम्पन्न ( = मुक्तिके ज्ञानका साक्षात्कार जिसने कर लिया ) हो, ० विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-सम्पदा-कथा ०; जो समग्रचारियों ( = सद्धारमियों ) के लिये अववादक ( = उपदेशक ), = विशापक = सन्दर्शक, समादपक = समुत्तेजक, सम्प्रहर्षक ( = उत्साह देनेवाला ) हो ?”

“अन्ते ! जाति-भूमिमें, आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्र है, जाति भूमिके समग्रचारी भिक्षुओंके ऐसे सम्भावित है, जो स्वयं अल्पेष्ट ०<sup>१</sup> सम्प्रहर्षक है।”

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र भगवान्के पास ( = अ-विदूर ) में बैठे हुये थे। तब आयुष्मान् सारिपुत्रको ऐसा हुआ—“अहो ! लाभ है ( = धन्य है ) आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्र को, सुलब्ध ( = सुन्दर तौरसे मिले हैं ) लाभ आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रको, जिसकी प्रशंसा समग्र समग्र कर विश समग्रचारी ( = गुरु-भाई ) शालाके सामने कर रहे हैं; और शाला ( = बुद्ध ) इसका अनुमोदन करते हैं। क्या कभी हमारा आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रके साथ समागम होगा, कभी कुछ कथा-संलाप होगा।”

तब भगवान् राजगृहमें यथेष्ट विहार कर, जिधर आवस्ती है, उधर चारिका ( = रामत ) के लिये चल पड़े। क्रमशः चारिका करते जहाँ ध्रावस्ती है, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् ध्रावस्ती में जनाय-पिण्डिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रने सुना,

<sup>१</sup> कपरके पैरा नैसा।

कि भगवान् आबस्तीमें पहुँच गये हैं, ( और ) • जेतवनमें विहार करते हैं । तब आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्र शयन-आसन संभालकर, पात्र-चीवर ले जिधर आबस्ती है, उधर चारिकोंके लिये चल पड़े । क्रमशः चारिका करते जहाँ आबस्ती, अनाथ-पिंडिका आराम जेतवन, ( और ) जहाँ भगवान् ये वहाँ पहुँचे । पहुँचकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रको भगवान्ने धार्मिक कथा द्वारा संदर्शित=समादित=समुत्तेजित सम्प्रहर्षित किया । तब आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्र भगवान्की धार्मिक कथा द्वारा • सम्प्रहर्षित हो, भगवान्के भाषणका अभिनन्दन = अनुमोदन कर, आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर, जहाँ अन्धवन है, वहाँ दिनके विहारके लिये गये ।

तब कोई भिक्षु... आयुष्मान् सारिपुत्रके पास जाकर... यह बोला—“आवुस सारिपुत्र ! जिन पूर्ण मैत्रायणीपुत्र... भिक्षुका आप बराबर नाम लिया करते थे, वह भगवान्की धार्मिक कथा द्वारा • प्रहर्षित हो, • भगवान्को अभिवादनकर • जहाँ अन्धवन है, वहाँ दिनके विहारके लिये गये ।”

तब आयुष्मान् सारिपुत्र शीघ्रतासे आसन ले आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रके पीछे ( डनका ) शिर देखते चल पड़े । तब आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्र अन्धवनमें घुसकर एक वृक्षके नीचे दिनके विहारके लिये बैठे । आयुष्मान् सारिपुत्र भी अन्धवनमें घुसकर एक वृक्षके नीचे दिनके विहारके लिये बैठे । तब आयुष्मान् सारिपुत्र सार्वकालकी प्रतिसेल्लवन (= ध्यान )से उठ, जहाँ आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्र थे, वहाँ गये, जाकर आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रके साथ... ( यथा-योग्य कुशल प्रश्न पूछ ) एक ओर... बैठ, आयुष्मान् सारिपुत्रने आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रसे यह कहा—

“आवुस ! हमारे भगवान्के पास ( आप ) ब्रह्मचर्यवास करते हैं ?”

“हाँ, आवुस !”

“क्यों आवुस ! शील-विशुद्धि ( = आचार-शुद्धि )के लिये भगवान्के पास ब्रह्मचर्यवास करते हैं ?”

“नहीं, आवुस !”

“क्या फिर आवुस ! चित्त-विशुद्धिके लिये • ?”

“नहीं, आवुस !”

“क्या फिर • दृष्टि-विशुद्धि ( = सिद्धान्त ठीक करने )के लिये • ?”

“नहीं, आवुस !”

“क्या फिर • सन्देह दूर करनेके लिये ( = कांक्षा-वितरण-विशुद्धि ) • ?”

“नहीं, आवुस !”

“क्या फिर • मार्ग-अमार्ग-ज्ञानके दर्शन ( = समझ, साक्षात्कार )की विशुद्धिके लिये • ?”

“नहीं आवुस !”

“क्या फिर • प्रतिपद् ( = मार्ग )-ज्ञान-दर्शनकी विशुद्धिके लिये • ?”

“नहीं, आवुस !”

“क्या फिर • ज्ञान-दर्शनकी विशुद्धिके लिये ?”

“नहीं आवुस !”

“आवुस ! ‘शील-विशुद्धिके लिये क्या आप भगवान्के पास ब्रह्मचर्यवास करते हैं’, पूछनेपर ‘नहीं आवुस !’ कहते हो । • ‘ज्ञानदर्शनकी विशुद्धिके लिये क्या आप भगवान्के पास ब्रह्मचर्यवास



करते हैं—पूछनेपर भी 'नहीं, आबुस !'—कहते हो। तो आबुस ! किसलिये भगवान् के पास आप ब्रह्मचर्यवास करते हैं ?

"उपादान (= परिग्रह) रहित परिनिर्वाण के लिये आबुस ! मैं भगवान् के पास ब्रह्मचर्य-वास करता हूँ ।"

"क्या आबुस ! शील-विशुद्धि उपादानरहित परिनिर्वाण है ?"

"नहीं, आबुस ।" ०<sup>१</sup>

"क्या आबुस ! ज्ञान-दर्शन-विशुद्धि उपादान-रहित परिनिर्वाण है ?"

"नहीं, आबुस !"

"क्या आबुस ! इन ( ऊपर गिनाये ) धर्मोंसे अलग है, उपादानरहित परिनिर्वाण ?"

"नहीं, आबुस !"

"क्या आबुस ! शील-विशुद्धि उपादानरहित परिनिर्वाण है ?—पूछनेपर 'नहीं आबुस !' कहते हो । ० । 'क्या आबुस ! इन धर्मोंसे अलग है, उपादान-रहित परिनिर्वाण ?'—पूछनेपर 'नहीं आबुस ० ।' तो फिर आबुस ! इस ( आपके ) कथनका अर्थ किस प्रकार समझना चाहिये ?"

"आबुस ! शील-विशुद्धिको यदि भगवान् उपादानरहित परिनिर्वाण कहते, तो उपादान-रहित परिनिर्वाणहीको उपादानरहित परिनिर्वाण कहते । ०<sup>१</sup> । आबुस ज्ञान-दर्शन-विशुद्धिको यदि भगवान् उपादान-रहित परिनिर्वाण कहते, तो उपादानरहित परिनिर्वाणहीको उपादान-रहित परिनिर्वाण कहते । आबुस ! इन धर्मोंसे अलग यदि उपादानरहित परिनिर्वाण होता, तो पृथग्जन (= निर्वाणका जनधिकारी ) भी परिनिर्वाणको प्राप्त होगा । ( क्योंकि ) आबुस ! पृथग्जन इन धर्मोंसे अलग है । तो आबुस ! तुम्हें एक उपमा (= दृष्टान्त ) कहता हूँ, उपमासे भी कोई कोई विज्ञ पुरुष कहेंका अर्थ समझते हैं ।

"जैसे आबुस ! राजा प्रसेनजित् कोसलको श्रावस्तीमें बसते कोई अत्यावश्यक काम साकेतमें उत्पन्न हो जाये । ( तब ) उसके लिये श्रावस्ती और साकेतके बीचमें सात रथविनीत (= डाक ) स्थापित करें । तब आबुस ! राजा प्रसेनजित् कोसल श्रावस्तीसे निकलकर अन्तःपुर (= राजमहल वाला भीतरी दुर्ग ) के द्वारपर पहिले रथ-विनीत (= रथकी डाक ) पर चढ़े, पहिले रथविनीतसे दूसरे रथविनीतको प्राप्त होवे, ( वहाँ ) पहिले रथविनीतको छोड़दे, और दूसरे रथविनीतपर आरुढ़ हो । दूसरे रथविनीतसे तृतीय रथविनीतको प्राप्त होवे, ( वहाँ ) द्वितीय रथविनीतको छोड़दे, और तीसरे रथविनीतपर आरुढ़ हो । ० चौथे ० । ० पाँचवें ० । छठे रथविनीतको छोड़दे, और सातवें रथविनीतपर आरुढ़ हो । सातवें रथविनीतसे साकेतके अन्तःपुर के द्वारपर पहुँच जाये । तब अन्तःपुरके द्वारपर प्राप्त उसे मित्र, अमाच्य, शांति=सालोहित ऐसा पड़े—'क्या महाराज ! इसी रथविनीतद्वारा श्रावस्तीसे ( चलकर ) साकेतके अन्तःपुर द्वारपर पहुँच गये ? आबुस ! किस तरह उत्तर देनेपर राजा प्रसेनजित् (= प्रसेनदी ) कोसलका डीक उत्तर होगा ?"

"आबुस ! इस प्रकार उत्तर देनेपर राजा प्रसेनजित् कोसलका उत्तर डीक उत्तर होगा—तुम्हें श्रावस्तीमें बसते मेरा कोई अत्यावश्यक काम साकेतमें उत्पन्न होगा । ( तब ) उसके लिये श्रावस्ती और साकेतके बीचमें सात रथविनीत स्थापित किये गये । तब मैं श्रावस्तीसे निकलकर ०<sup>१</sup> सातवें रथ-विनीतपर आरुढ़ हो सातवें रथविनीतसे साकेतके अन्तःपुर-द्वारपर पहुँच गया । इस प्रकार उत्तर देनेपर राजा प्रसेनजित् कोसलका उत्तर डीक उत्तर होगा ।"

<sup>१</sup> पहिलेकी तरह दुहराना चाहिये ।

“ऐसे ही आबुस ! शील-विशुद्धि तभी तक ( है ) जब तक कि ( पुरुष ) चित्त-विशुद्धि-को ( प्राप्त नहीं होता ) ; चित्त-विशुद्धि तभी तक जब तक कि दृष्टि-विशुद्धि-को ( प्राप्त नहीं होता ) ; दृष्टि-विशुद्धि तभी तक जब तक कि कांक्षावितरण-विशुद्धि-को ( प्राप्त नहीं होता ) ; • जब तक कि मार्गोन्मार्ग-ज्ञान-दर्शन-विशुद्धि-को • ; • जब तक कि प्रतिपद्-ज्ञान-दर्शन-विशुद्धि-को ; • जब तक कि ज्ञान-दर्शन-विशुद्धि-को • , ज्ञान-दर्शन-विशुद्धि तभी तक ( है ) जब तक कि उपादान-रहित परिनिर्वाण-को ( प्राप्त नहीं होता ) । आबुस ! अनुपादा ( = उपादान-रहित ) परिनिर्वाण-के लिये भगवान्-के पास ब्रह्मचर्य-वास करता हूँ ।”

ऐसा कहने पर आयुष्मान् सारिपुत्रने आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रसे यह कहा—“आयुष्मान्-का क्या नाम है; समझ-चारी आयुष्मान्-को ( किस नामसे ) जानते हैं ?”

“आबुस ! पूर्ण ( मेरा ) नाम है, मैत्रायणीपुत्र करके समझ-चारी मुझे जानते हैं ।”

“आश्चर्य है आबुस ! अद्भुत आबुस !! जैसे शास्ता ( = हुद् ) के शासन ( = उपदेश ) को सही प्रकार जाननेवाला बहुश्रुत श्रावक गंभीर गंभीर प्रश्नों-को समझ समझ कर व्याख्यान करे, वैसे ही आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रने ( व्याख्यान किया ) । लाभ है समझ-चारियों-को, लाभ सुलब्ध हुआ समझ-चारियों-को, जो कि आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्र-को दर्शन, और सेवन-के लिये पाते हैं । केशण्डुक ( = अंगोठा ) से भी यदि समझ-चारी आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्र-को हावसे धारण करके दर्शन और सेवन-के लिये पावें; उनको भी लाभ है, उनको भी लाभ सुलब्ध हुआ है । हमें भी लाभ है, हमें भी लाभ सुलब्ध हुआ है, जोकि हम आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्र-को दर्शन और सेवन-के लिये पाते हैं ।”

ऐसा कहने पर आयुष्मान् पूर्ण मैत्रायणीपुत्रने आयुष्मान् सारिपुत्रसे यह कहा—“आयुष्मान्-का क्या नाम है; समझ-चारी आयुष्मान्-को ( किस नामसे ) जानते हैं ?”

“आबुस ! उपतिष्ठ मेरा नाम है, सारिपुत्र करके मुझे समझ-चारी जानते हैं ।”

“अहो ! भगवान्-के समान ( = शास्त्र-रूप ) श्रावक ( = हुद्-क्षिप्य ) से संलाप करते हुये भी मैं नहीं जान सका, कि ( यह ) आयुष्मान् सारिपुत्र है । यदि हम जानते कि यह आयुष्मान् सारिपुत्र है, तो इतना भी हमें न सूझ पड़ता । आश्चर्य आबुस ! अद्भुत आबुस !! जैसे शास्ता-के शासन-को सम्यक् जाननेवाला बहुश्रुत श्रावक गंभीर गंभीर प्रश्नों-को समझ समझ कर व्याख्यान करे, वैसे ही आयुष्मान् सारिपुत्रने ( व्याख्यान किया ) । लाभ है समझ-चारियों-को, लाभ सुलब्ध हुआ समझ-चारियों-को • जो कि हम आयुष्मान् सारिपुत्र-को दर्शन और सेवन-के लिये पाते हैं ।”

इस प्रकार दोनों महानागों ( = महावीरों ) ने एक दूसरे-के सुभाषित-का समनुमोदन किया ।



## २५—निवाप-मुत्तन्त (१।३।५)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिटिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भदन्त !” ( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! नैवापिक ( = बड़ेलिया ) सृगोंको ( यह सोचकर ) निवाप ( सृगोंके शिकारके लिये जंगलके भीतर बोये खेत ) नहीं बोता, कि इस मेरे बोये निवापको खाकर सृग दीर्घायु वर्णवान् ( = सुन्दर ) ( हो ) चिरकाल तक गुजारा करें। भिक्षुओ ! नैवापिक सृगोंके लिये ( यह सोच ) निवाप बोता है, कि सृग इस मेरे बोये निवापको अनुप-सन्न ( = खा कर ) मूर्छित ( = बेसुध ) हो भोजन करेंगे, ... मूर्छित हो भोजन कर भदको प्राप्त होंगे, भदको प्राप्त हो प्रमादी होंगे; प्रमादी हो इस निवापके विषयमें स्वेच्छाचारी होंगे ।

“भिक्षुओ ! पहिले सृगोंने नैवापिकके इस बोये निवापको ... मूर्छित हो भोजन किया; ... मूर्छित हो भोजन कर भदको प्राप्त हुये, भदको प्राप्त ( = मत्त ) हो प्रमादी हुये; प्रमादी हो ... स्वेच्छाचारी हुये । इस प्रकार भिक्षुओ ! वह पहिले सृग नैवापिकके चमत्कार ( = कद-य-नुभाव ) से मुक्त नहीं हुये ।

“वहाँ भिक्षुओ ! दूसरे सृगोंने यह सोचा—‘जिन उन पहिले सृगोंने नैवापिकके इस बोये निवापको ... मूर्छित हो भोजन किया ०’; नैवापिकके चमत्कारसे मुक्त नहीं हुये । क्यों न हम निवाप-भोजनसे सर्वथा ही विरत हो जायें, भयभोगसे विरत हो अरण्य-स्थानोंमें अवगाहन कर विहरें ।’ ( तब ) वह निवाप-भोजनसे सर्वथा विरत हुये, भय-भोग ( = भयपूर्ण भोग ) से विरत हो अरण्य-स्थानोंको अवगाहन कर विहरने लगे । प्रीप्सुके अन्तिम आत्मसे घास-पानी ( = वृण-उदक ) के अन्ध होनेसे, उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया । अत्यन्त दुर्बल कायावाले उन ( सृगों ) का बल-वीर्य नष्ट हो गया । बलवीर्यके नष्ट हो जाने पर नैवापिकके बोये हुये उसी निवापको खानेके लिये लाँटे । उन्होंने ... मूर्छित हो भोजन किया ०’ इस प्रकार भिक्षुओ ! वह दूसरे सृग भी नैवापिकके चमत्कार ( = जादू ) से मुक्त नहीं हुये ।

“भिक्षुओ ! तीसरे सृगोंने यह सोचा—‘जिन उन पहिले सृगोंने नैवापिकके इस बोये निवापको ... मूर्छित हो भोजन किया ० मुक्त नहीं हुये । ( तब ) जिन उन दूसरे सृगोंने यह सोचा—०’ निवाप-भोजनसे सर्वथा विरत हुये ० यह दूसरे सृग भी नैवापिकके ... ( फन्दे ) से मुक्त नहीं हुये । क्यों न हम नैवापिकके बोये इस निवापका आश्रय लें । वहाँ आश्रय ले ... इस ...

१ पीछे बोये पाठको फिर आह्वयि ।

निवापको...अ-मूर्छित (= न बेमुच) हो भोजन करें, अ-मूर्छित हो भोजन करनेसे हम मदको प्राप्त न होंगे; मदको न प्राप्त होनेसे प्रमादी नहीं होंगे, प्रमादी न होनेसे नैवापिकके इस निवापमें स्वेच्छाचारी नहीं होंगे। (यह सोच) उन्होंने नैवापिकके चौथे उस निवापका आश्रय लिया। आश्रय ले...निवापको...अमूर्छित हो भोजन किया, ० मदको प्राप्त नहीं हुये, ० प्रमादी नहीं हुये, ० स्वेच्छाचारी नहीं हुये। तब भिक्षुओ! नैवापिक और नैवापिक-परिषद्को यह हुआ—‘यह चौथे स्रग षष्ठ पाखंडी (= केटुमी) है; यह तीसरे स्रग कदिमान परजन है; यह इस छोटे निवापको खाते हैं, किन्तु हम इनके गमन-आगमनको नहीं जानते। क्यों न हम इस छोटे निवापके सारे प्रदेशको घड़े घड़े डंडोंके रूंचानसे चारों ओरसे घेर दें, जिसमें कि (इन) तीसरे स्रगोंके आश्रयको देखें, जहाँ पर कि वह पकड़े जा सकते हैं’। (यह सोच) उन्होंने ० डंडोंके रूंचानसे घेर दिया। (फिर) भिक्षुओ! नैवापिक और नैवापिक-परिषद्ने तीसरे स्रगोंके आश्रय (= स्थान) को देखा, जहाँ कि वह पकड़े गये। इस प्रकार भिक्षुओ! वह तीसरे स्रग भी नैवापिकके... (कंदे से) मुक्त नहीं हुये।

‘भिक्षुओ! चौथे स्रगोंने यह सोचा—‘जिन पहिले स्रगोंने ०<sup>१</sup> मूर्छित हो भोजन किया ०<sup>१</sup> मुक्त नहीं हुये। जिन दूसरे स्रगोंने ०<sup>१</sup>, निवाप भोजनसे सर्वथा विरत हुये ०<sup>१</sup> मुक्त नहीं हुये। जिन तीसरे स्रगोंने ०<sup>१</sup> अ-मूर्छित हो भोजन किया ०<sup>१</sup> मुक्त नहीं हुये। क्यों न हम (जहाँ) आश्रय (= स्थान) ग्रहण करें, जहाँ नैवापिक और नैवापिक-परिषद्की गति नहीं है। जहाँ आश्रय ग्रहण कर नैवापिकके इस चौथे निवापको...अमूर्छित हो भोजन करें, ...अमूर्छित हो भोजन करनेसे मदको न प्राप्त होंगे, ०<sup>२</sup>। ०<sup>२</sup> ‘स्वेच्छाचारी न होंगे’ उन्होंने (तब) जहाँ नैवापिक और नैवापिक-परिषद्की गति न थी, वहाँ आश्रय ग्रहण किया। ० अमूर्छित हो भोजन किया ०<sup>२</sup> स्वेच्छाचारी नहीं हुये। तब भिक्षुओ! नैवापिक और नैवापिक-परिषद्को यह हुआ—‘यह चौथे स्रग षष्ठ (= सय) पाखंडी (= केटुमी) है, यह चौथे स्रग कदिमान (= होशियार) परजन है। (यह) हमारे छोटे निवापको भोजन करते हैं, किन्तु हम इनके गमन-आगमनको नहीं जानते। क्यों न हम ०<sup>३</sup> चारों ओरसे घेर दें, जिसमें कि चौथे स्रगोंके आश्रयको देखें, जहाँ पर कि वह पकड़े जा सकते हैं’। (यह सोच) उन्होंने ० सारे प्रदेशको घेर दिया। (किन्तु) भिक्षुओ! नैवापिक और नैवापिक-परिषद्ने चौथे स्रगोंके आश्रयको नहीं देख पाया, जहाँ पर कि वह पकड़े जाते। तब भिक्षुओ! नैवापिक और नैवापिक-परिषद्को यह हुआ—‘यदि हम चौथे स्रगोंको घटित (= रगड़) करेंगे, तो वह घटित हो दूसरोंको घटित करेंगे, और वह घटित हो दूसरोंको घटित करेंगे। इस प्रकार सारे स्रग इस चौथे निवापको छोड़ देंगे, क्यों न हम चौथे स्रगोंको उपेक्षा कर दें’। (तब) भिक्षुओ! नैवापिक और नैवापिक-परिषद्ने चौथे स्रगोंको उपेक्षा किया। इस प्रकार भिक्षुओ! चौथे स्रग नैवापिकके... (कंदे) से छूटे।

‘भिक्षुओ! अर्थको समझानेके लिये मैंने यह उपमा (= इष्टान्त) कही है। भिक्षुओ! निवाप यह पाँच काम-गुणों (= भोगों) का नाम है; ...नैवापिक यह पापों मारका नाम है; ...नैवापिक-परिषद् यह मार-परिषद्का नाम है; भिक्षुओ! स्रग-समूह यह अमण-आश्रयोंका नाम है।

‘भिक्षुओ! उन पहले अमण-आश्रयोंने उस चौथे निवाप (अर्थात्) मारके इस लोक-आमिष (= विषयों) को...मूर्छित हो भोजन किया; ...वह मूर्छित हो भोजन कर मदको प्राप्त



हुये, मनुको प्राप्त हो प्रसादी हुये, प्रसादी हो मारके इस निवापमें, इस लोकाभिषमें स्वेच्छाचारी हुये । इस प्रकार भिक्षुओ ! वह पहिले अमण-ब्राह्मण मारके... ( फंदे ) से नहीं छूटे । जैसे कि वह पहिले सृग ( ये ), भिक्षुओ ! उन्हींके समान मैं ( इन ) पहिले अमण-ब्राह्मणोंको कहता हूँ ।

“भिक्षुओ ! दूसरे अमण-ब्राह्मणोंने यह सोचा—‘जिन उन प्रथम अमण-ब्राह्मणोंने मारके बोये इस निवापको = लोकाभिषको मूर्छित हो खाया ० । इस प्रकार ० वह ० मारके... ( फंदे ) से नहीं छूटे । क्यों न हम लोक-आभिष रूपी निवाप-भोजनसे सर्वथा ही विरत हो जावें, भय-भोगसे विरत हो अरण्य-स्थानोंको अवगाहन कर विहरें’ । ( तब वह ) लोक-आभिष रूपी निवाप-भोजनसे सर्वथा ही विरत हो गये, ० अरण्य स्थानोंको अवगाहन कर विहरने लगे—वह वहाँ शाफाहारी भी हुये, सर्वाँ ( = श्यामाक )-भोजी भी हुये, नीवार ( = तिन्नी ) मछी भी हुये ०<sup>१</sup> ( जमीन पर ) पड़े फलोंके खानेवाले भी हुये । मोष्मके अन्तिम समयमें घास पानीके क्षय होनेसे ०<sup>२</sup> धल-वीर्य नष्ट हो जानेसे ( उनकी ) चित्तकी विलुप्ति ( = मुक्ति = शांति ) नष्ट होगई, चित्तकी विलुप्ति नष्ट होने पर, लोक-आभिष रूपी मारके बोये उसी निवापको लौट कर खाने लगे । उन्हींने ० मूर्छित हो खाया ० । इस प्रकार भिक्षुओ ! वह दूसरे अमण-ब्राह्मण भी मारके... ( फंदे ) से नहीं छूटे । जैसे कि वह दूसरे सृग ( ये ) भिक्षुओ ! उन्हींके समान मैं ( इन ) दूसरे अमण-ब्राह्मणोंको कहता हूँ ।

“भिक्षुओ ! तीसरे अमण-ब्राह्मणोंने यह सोचा—‘जिन उन प्रथम अमण-ब्राह्मणोंने ० मूर्छित हो भोजन किया ०<sup>३</sup> ( वह ) मारके... ( फंदे ) से नहीं छूटे । ० दूसरे अमण-ब्राह्मण ०<sup>४</sup> भोजनसे सर्वथा विरत हो गये ०<sup>५</sup>,—( फिर ) उसी निवापको लौट कर खाने लगे ०<sup>६</sup> वह मारके... ( फंदे ) से नहीं छूटे । क्यों न हम मारके बोये लोकाभिष-रूपी इस निवाप का आश्रय लें । वहाँ आश्रय ले... इस... लोकाभिष रूपी निवापको अमूर्छित ( = न-वेमुच ) हो भोजन करें । ०<sup>७</sup> लोकाभिष रूपी निवापोंमें स्वेच्छाचारी नहीं होंगे ।’ ( तब ) उन्हींने मारके बोये लोक-आभिष-रूपी निवापका आश्रय लिया । आश्रय लेकर... निवापको अमूर्छित हो भोजन किया ०<sup>८</sup> वह मारके बोये लोकाभिष-रूपी निवापमें स्वेच्छाचारी नहीं हुये । किन्तु उनकी यह दृष्टियाँ ( = धारणायें ) हुई—( १ ) ‘लोक आश्रय ( = नित्य ) है’, ( २ ) ‘लोक अशाश्वत है’, ( ३ ) ‘लोक अन्तवान् है’, ( ४ ) ‘अन्त-रहित ( = अनन्तवान् ) लोक है’, ( ५ ) ‘सोई जीव है सोई शरीर है’, ( ६ ) ‘जीव अन्य, शरीर अन्य है’, ( ७ ) ‘तथागत ( = बुद्ध, मुक्त ) मरनेके बाद होते हैं’, ( ८ ) ‘तथागत मरनेके बाद नहीं होते’, ( ९ ) ‘तथागत मरनेके बाद होते भी हैं, नहीं भी होते हैं’, ( १० ) ‘तथागत मरनेके बाद न होते हैं, न नहीं होते हैं’ ।—इस प्रकार भिक्षुओ ! वह तीसरे अमण-ब्राह्मण भी मारके... ( फंदे ) से नहीं छूटे । जैसे कि वह तीसरे सृग ( ये ), भिक्षुओ ! उन्हींके समान मैं ( इन ) तीसरे अमण-ब्राह्मणोंको समझता हूँ ।

“भिक्षुओ ! उन चौथे अमण-ब्राह्मणोंने सोचा—‘जिन उन प्रथम अमण-ब्राह्मणोंने ० मूर्छित हो भोजन किया ० ( वह ) मारके... ( फंदे ) से नहीं छूटे । जो वह दूसरे अमण-ब्राह्मण ० भोजनसे सर्वथा विरत होगये ० ( फिर ) उसी निवापको लौटकर खाने लगे ० वह ( भी ) मारके... ( फंदे ) से नहीं छूटे । जो वह तीसरे अमण-ब्राह्मण ० अमूर्छित हो भोजन करने लगे ०, उनकी यह दृष्टियाँ ( = धारणायें ) हुई—०, ( और ) वह तीसरे अमण-ब्राह्मण भी मारके... ( फंदे ) से नहीं छूटे । क्यों न हम वहाँ आश्रय ग्रहण करें, वहाँ मार और मार-परिपक्व

की गति नहीं है। वहाँ आश्रय ग्रहण कर मारके धोये इस लोकामिष-रूपी निवापको...अमूर्छित हो भोजन करें।...अमूर्छित हो भोजन करनेसे भदकी न प्राप्त होगी, ० स्वेच्छाचारी न होंगे। (तब) उन्होंने वहाँ आश्रय ग्रहण किया जहाँ मार और मार-परिपक्वकी गति नहीं। वहाँ आश्रय ग्रहण कर...अमूर्छित हो उन्होंने मारके धोये लोकामिष-रूपी निवापको भोजन किया। ० लोकामिष-रूपी निवापमें स्वेच्छाचारी नहीं हुये। इस प्रकार भिक्षुओं! वह चतुर्थ श्रमण-ब्राह्मण मारके... (कंदे) से छूटे। जैसे भिक्षुओं! चौथे सुग धे, उन्हींके समान मैं इन चौथे श्रमण-ब्राह्मणोंको कहता हूँ।

“भिक्षुओं! कैसे मार और मार-परिपक्वकी गति नहीं होती?—( १ ) यहाँ भिक्षुओं! भिक्षु कामोंसे रहित बुरी बातोंसे रहित ०<sup>१</sup> प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। भिक्षुओं! इसे कहते हैं—“भिक्षुने मारको अंधा कर दिया, मार-चक्षुसे अपद् (= अगम्य) बन कर वह पापीसे अदर्शन हो गया। ( २ ) और फिर ०<sup>२</sup> द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ० अदर्शन हो गया। ( ३ ) और फिर ०<sup>३</sup> तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ० अदर्शन हो गया। ( ४ ) और फिर ०<sup>४</sup> चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ० अदर्शन हो गया। ( ५ ) और फिर ०<sup>५</sup>—“आकाश अनन्त है”—इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। ० अदर्शन हो गया। ( ६ ) और फिर ०<sup>६</sup> विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। ० अदर्शन हो गया। ( ७ ) और फिर ०<sup>७</sup> आर्किचन्द्रायतनको प्राप्त हो विहरता है। ० अदर्शन हो गया। ( ८ ) और फिर ०<sup>८</sup> नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। मार-चक्षुसे अपद् (= अगम्य) बन कर पापीसे अदर्शन हो गया; लोकसे विसर्जित (= अनासक्त) हो उत्तीर्ण हो गया है।”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्के भाषणका अनुसोदन किया।



## २६-पास-रासि( = श्रिय-परियेसन )-सुत्तन्त ( १।३।६ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडिकके आराम अंत्यममें विहार करते थे। भगवान् पूर्वाह्णके समय पहिनकर, पात्र चीवर ले श्रावस्तीमें पिंड ( = भिक्षाचार )के लिये प्रतिष्ठ हुये। तब बहुतसे भिक्षु "आयुष्मान् आनन्दके पास" जाकर "बोले—

"आवुस आनन्द ! भगवान्के सुखसे धर्मोपदेश सुने देर हो गई। अच्छा हो आवुस आनन्द ! हमें भगवान्के सुखसे धर्मोपदेश सुननेको मिले।"

"तो आयुष्मानो ! जहाँ रम्यक ( = रम्मक ) ब्राह्मणका आश्रम है, वहाँ चलो, शायद भगवान्के सुखसे धर्मोपदेश सुननेको मिले।"

"अच्छा, आवुस !" ( कह ) उन भिक्षुओंने आयुष्मान् आनन्दको उत्तर दिया।

तब भगवान्ने श्रावस्तीमें पिंडचार कर, भोजनोपरान्त पिंडपातले निवटकर आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया।—

"बलो, आनन्द ! दिनके विहारके लिये ( वहाँ चलो ) जहाँ, मृगारमाता ( = भिमार-माता-विशाखा )का प्रासाद पूर्वाराम है।"

"अच्छा, भन्ते !" ( कह ) आयुष्मान् आनन्दने भगवान्को उत्तर दिया।

तब भगवान् आयुष्मान् आनन्दके साथ दिनके विहारके लिये मृगारमाताके प्रासाद पूर्वाराम गये। तब भगवान्ने सायंकाल प्रतिसंलपन ( = एकान्तचिन्तन, भावना )से उठ आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"बलो, आनन्द ! गात्र-परिसिचन ( = नहाने )के लिये जहाँ पूर्वकोष्ठक है, वहाँ ( चलो )।"

"अच्छा, भन्ते !" ( कह ) आयुष्मान् आनन्दने भगवान्को उत्तर दिया।

तब भगवान् आयुष्मान् आनन्दके साथ "पूर्वकोष्ठक गये। पूर्वकोष्ठकमें गात्र-परिसिचन कर, निकल कर शरीरको सुखाते एक चीवर धारण किये खड़े हुये। तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! वह पालमें रम्यक ब्राह्मणका आश्रम है। भन्ते ! रम्यक ब्राह्मणका आश्रम रमणीय है = प्रसादनीय है। अच्छा हो भन्ते ! यदि भगवान् कृपाकर जहाँ रम्यक ब्राह्मणका आश्रम है ( वहाँ ) चलो।"

भगवान्ने मौन रह स्वीकृति दी। तब भगवान् जहाँ रम्यक ब्राह्मणका आश्रम था, ( वहाँ ) गये। उस समय बहुतसे भिक्षु रम्यक ब्राह्मणके आश्रममें धर्मकथा कहते बैठे थे। भगवान् कथा की समाप्तिकी प्रतीक्षा करते बाहरवाले द्वारकोष्ठक ( = फाटक ) पर खड़े। तब भगवान्ने कथाकी समाप्ति जानकर काँसकर जंजीर ( = शृंगल ) खटखटाई। उन भिक्षुओंने भगवान्के लिये द्वार खोल

दिया । भगवान् रम्यक माझणके आश्रममें प्रविष्ट हो बिठे आसनपर बैठे । बैठकर भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

“भिक्षुओ ! किस कथाको लेकर तुम बैठे थे, क्या तुम्हारे बीचमें कथा उठी थी ?”

“भन्ते ! भगवान्के सम्बन्धकी ही धार्मिक-कथा लेकर हम बैठे थे, भगवान्के विषयकी कथा ही हमारे बीचमें उठी थी । इतनेमें भगवान् पहुँच गये ।”

“साधु, भिक्षुओ ! भिक्षुओ ! अट्ठापूर्वक घासे बेघर हो प्रमत्तित हुये तुम कुल-पुत्रोंके क्रिये सही उचित है, कि तुम धार्मिक-कथामें बैठो । एकत्रित होनेपर भिक्षुओ ! तुम्हारे लिये दो ही कर्तव्य है—( १ ) धार्मिक कथा, या ( २ ) आर्य तूष्णीभाव ( = उत्तम मौन ) ।

“भिक्षुओ ! दो प्रकारकी पर्येषणा ( = शोष, मनेषणा ) है—( १ ) आर्य ( = उत्तम, ज्ञानियोंकी ) पर्येषणा, और ( २ ) अनार्य पर्येषणा । क्या है भिक्षुओ ! अनार्य पर्येषणा ?—भिक्षुओ ! कोई ( पुरुष ) स्वयं जाति-धर्मा ( = जन्मनेके स्वभाववाला ) होते जातिधर्मका ही पर्येषण ( = शोष ) करता है । स्वयं जराधर्मा ( = बुढ़ा होना मिलका स्वभाव है ) होते, जराधर्मका ही पर्येषण करता है । स्वयं व्याधिधर्मा ० । स्वयं मरण-धर्मा ० । स्वयं शोक-धर्मा ० । स्वयं संक्लेश ( = मल )-धर्मा संक्लेश धर्मका ही पर्येषण करता है ।

“भिक्षुओ ! किसको जातिधर्मा कहे ?—पुत्र, भार्या भिक्षुओ ! जातिधर्मा है; दासी, दास जातिधर्मा है; भेद-बकरी जातिधर्मा है; सुर्ग-सुखर ( = कुकुट-शूकर ) ०, हाथी, गाय, घोड़ा-घोड़ी ०, सोना-चाँदी । भिक्षुओ ! वह उपधियाँ ( = भोग-पदार्थ ) जातिधर्मा है, इनमें वह ( पुरुष ) प्रविष्ट, मूर्छित, आसक्त हो, स्वयं जातिधर्मा हो दूसरे जाति-धर्मा ( पदार्थों ) की पर्येषणा करता है ।

“भिक्षुओ ! किसको जराधर्मा कहे ?—पुत्र, भार्या ० । जराधर्मा ( पदार्थों ) की पर्येषणा करता है ।

“० व्याधि-धर्मा ० ? ० ।

“० मरण-धर्मा ० ? ० ।

“० शोक-धर्मा ० ? ० ।

“० संक्लेश-धर्मा ० ? ० ।

“भिक्षुओ ! क्या है आर्य पर्येषणा ?—भिक्षुओ ! कोई ( पुरुष ) स्वयं जातिधर्मा होते, जाति-धर्ममें दुष्परिणाम देख, अ-जात ( जन्म-रहित ), अनुत्तर ( = अवीचम ), योग-क्षेम ( = मंगलमय ) निर्वाणकी पर्येषणा करता है । स्वयं जराधर्मा, जराधर्ममें दुष्परिणाम देख, अ-जर ( = जरा-रहित ) अनुत्तर, योग-क्षेम, निर्वाणकी पर्येषणा करता है । स्वयं व्याधिधर्मा ० व्याधि-रहित ० स्वयं मरण-धर्मा ० अ-मृत ० स्वयं शोक-धर्मा ० अ-दोष ० । स्वयं संक्लेश-धर्मा ० अ-संक्लेश ( = मल-रहित ) अनुत्तर, योगक्षेम, निर्वाणकी पर्येषणा करता है । भिक्षुओ ! यह है आर्य पर्येषणा ।

“मै.ओ भिक्षुओ ! सम्बोध ( = बुद्ध-पद-प्राप्ति ) से पूर्व, अ-संबुद्ध बोधिसत्त्व ( = बुद्ध-पदका उन्मोदवार ) होते समग्र, स्वयं जातिधर्मा होते जाति-धर्मा ( पदार्थों ) की ही पर्येषणा करता था ० । जराधर्मा ० । ० व्याधि-धर्मा ० । ० मरणधर्मा ० । ० शोकधर्मा ० । ० संक्लेश-धर्मा ० । तब मुझे ऐसा हुआ—‘क्या मैं जाति-धर्मा होते जाति-धर्मा ( पदार्थों ) की पर्येषणा करता हूँ ? ० ० संक्लेशधर्मा ० ? क्यों मैं स्वयं जाति-धर्मा होते जातिधर्मा ( पदार्थों ) में दुष्परिणाम देख,



अ-जाव, अनुत्तर, योगक्षेम, निर्वाणकी पर्येषणा कहे ? ० ० क्यों न मैं स्वयं संस्लेष-धर्मा होते, संस्लेष-धर्मा ( पदार्थों ) में दुष्परिणाम देख, अ-संछिष्ट (= निर्मल ), अनुत्तर, योगक्षेम, निर्वाण की पर्येषणा कहे ?

“तब मैं भिक्षुओं ! दूसरे समय तरुण, अल्पवय काके केशोंवाला, मद्र (= सुन्दर ) वीचनसे युक्त, पहिले वयसमें अनिच्छुक भाता-पिताको अशुभसुख रोते ( जोव ), केश इमशु (= दाढ़ी-मुँह ) हुँका, कापाय वस्त्र पहिन धरसे वेधरधन प्रव्रजित (= संन्यासी ) हुआ । सो इस प्रकार प्रव्रजित हो किङ्काल (= क्या उत्तम है ) की गवेषणा करते, उत्तम शान्ति-पदको खोजते (= पर्येषणा करते ) वहाँ आलार कालाम रहते थे, वहाँ पहुँचा । पहुँचकर आलार कालामसे यह बोला—‘आवुस कालाम ! इस ( तुम्हारे ) धर्म-विनय (= धर्म ) में व्रणचर्यवास करना चाहता हूँ । ऐसा कहनेपर भिक्षुओं ! आलार कालामने मुझे यह कहा—‘विहरो आयुष्मान् ! यह ऐसा धर्म-विनय है, ( जहाँ ) विज्ञ-गुरुप न चिरमें अपने आचार्यक (= विशेषज्ञता ) को स्वयं जानकर साक्षात्कर प्राप्तकर विहरेंगे ।’ सो मैंने भिक्षुओं ! न चिरमें ही—क्षिप्रही उस धर्म (= अम्बास ) को प्राप्तकर लिया । सो मैं भिक्षुओं ! उतने मात्रसे ओठ खो मात्रसे, कहने-कहाने मात्रसे ज्ञानवाद भी ज्ञापता था; ‘मैं स्वधिर (= बुद्धोंके ) वादको जानता देखता (= वृत्तता ) हूँ—‘वाक करता था, और दूसरे भी । तब भिक्षुओं ! मुझे ऐसा हुआ—आलार कालाम ‘अद्वा मात्रसे मैं इस धर्मको स्वयं जानकर, साक्षात्कर, प्राप्तकर, विहरता हूँ’—यह नहीं बतलाता । जरूर आलार कालाम इस धर्मको जानकर देखकर विहरता है । तब मैंने भिक्षुओं ! ‘आलार कालाम’ के पास जाकर ‘यह कहा—‘आवुस कालाम ! कितना तक इस धर्मको स्वयं जानकर साक्षात्कर, प्राप्तकर हमें बतलाते हो ?’ ऐसा कहनेपर भिक्षुओं ! आलार कालामने आर्किचन्यायतन<sup>१</sup> बतलाया ।

“तब भिक्षुओं ! मुझे ऐसा हुआ—‘आलार कालामके पास ही अद्वा नहीं है, मेरे पास भी अद्वा है । आलार कालामके पास ही वीर्य (= उद्योग ) नहीं है, मेरे पास भी वीर्य है । ० स्मृति ० । ० समाधि ० । ० प्रज्ञा ० । क्यों न मैं, जिस धर्मको—‘आलार कालाम स्वयं जानकर साक्षात् कर, प्राप्तकर विहरता हूँ’—कहता है, उस धर्मके साक्षात्के लिये प्रयत्न कहे । तब मैं भिक्षुओं ! न चिरमें—क्षिप्रही उस धर्मको स्वयं जान, साक्षात् कर, प्राप्तकर विहरने लगा । तब मैं भिक्षुओं ! आलार कालामके पास जाकर ‘यह बोला—‘आवुस कालाम ! इतने ही मात्र इस धर्मको स्वयं जान, साक्षात् कर, प्राप्तकर हमें बतलाते हो ?’

“इतने ही मात्र आवुस ! मैं इस धर्मको स्वयं जानकर, साक्षात् कर, प्राप्तकर बतलाता हूँ ।”

“मैं भी आवुस ! इतने मात्र इस धर्मको स्वयं जानकर ० विहरता हूँ ।”

“लाम है हमें आवुस ! सुन्दर लाम हुआ हमें आवुस ! जो हम आप जैसे सब्रह्मचारीको देखते हैं, ( जोकि ) जिस धर्मको मैं स्वयं जानकर ० बतलाता हूँ, उस धर्मको तुम स्वयं जानकर ० विहरते हो । जिस धर्मको तुम स्वयं जानकर ० विहरते हो, उस धर्मको मैं स्वयं जानकर ० बतलाता (= उपदेशता ) हूँ । जिस धर्मको मैं जानता हूँ, उस धर्मको तुम जानते हो । जिस धर्मको तुम जानते हो, उस धर्मको मैं जानता हूँ । इस प्रकार जैसे तुम, तैसा मैं, जैसा मैं वैसे तुम । आओ अब आवुस ! ( हम ) दोनों इस गण (= सम्पासियोंकी जमायत ) को धारण करें ।”

“इस प्रकार भिक्षुओं ! आलार कालामने आचार्य होते भी मुझ अन्तेवासी

(= शिष्य )को सम्मत्मान ( पद )पर स्थापित किया । वड़े सम्मानसे सम्मानित किया । तब भिक्षुओं ! मुझे ऐसा हुआ—‘यह धर्म न निर्वेद (= उदासीनता )के लिये ( है ), न विरागके लिये, न निरोधके लिये, न उपशमके लिये, न अभिज्ञा (= दिव्य ज्ञान )के लिये, न संबोधके लिये, न निर्वाणके लिये है, केवल आर्किचन्य-आयतन (= दिव्य स्थान )में उत्पन्न होनेके लिये है ।’ तब मैं उस धर्मको अपर्याप्त ( समझ ) कर, उस धर्मसे विरक्त हो चला दिया ।

‘सो मैं भिक्षुओं ! किङ्कशक-गवेषी, अनुत्तर शक्तिके श्रेष्ठ पदको खोजते जहाँ उद्रक (= उद्रक ) रामपुत्र था, वहाँ गया । जाकर उद्रक रामपुत्रसे बोला—

‘आवुस राम ! इस धर्म-विनयमें मैं ब्रह्मचर्य-वास करना चाहता हूँ ।’

‘ऐसा कहनेपर भिक्षुओं ! उद्रक रामपुत्रने मुझे यह कहा—‘विहरो आवुष्मात् ! यह ऐसा धर्म-विनय है, जिसमें विज्ञ पुरुष न-चिरमें अपने आचार्यक (= विशेषज्ञता ) को स्वयं जानकर, साक्षात् कर, प्राप्तकर विहरेगा ।’ ०<sup>१</sup> । तब मैंने भिक्षुओं ! ‘‘उद्रक रामपुत्र’’ के पास जाकर यह कहा—‘आवुस राम ! कितने तक इस धर्मको स्वयं जानकर ० हमें बतलाते हो ?’ ऐसा कहनेपर भिक्षुओं ! उद्रक रामपुत्रने नैवर्संज्ञा-नाऽसंज्ञा-आयतन<sup>२</sup> बतलाया ।

‘तब भिक्षुओं ! मुझे ऐसा हुआ—‘उद्रक रामपुत्रके पासही श्रद्धा नहीं है, मेरे पास भी श्रद्धा है । ० धौर्य ० । ० स्मृति ० । ० समाधि ० । ० प्रज्ञा ० । क्यों न मैं ०<sup>३</sup> । तब मैं उद्रक रामपुत्रके पास जाकर बोला—

‘आवुस राम ! इतने ही मात्र इस धर्मको स्वयं जानकर ० हमें बतलाते हो ?’

‘इतनाही मात्र आवुस ! मैं इस धर्मको स्वयं जानकर ० बतलाता हूँ ।’

‘मैं भी आवुस ! ०<sup>४</sup> काम है आवुस ! ०<sup>५</sup> । इस प्रकार जिस धर्मको मैं स्वयं जानकर ० बतलाता हूँ, उस धर्मको तुम स्वयं जानकर ० विहस्ते हो । जिस धर्मको तुम स्वयं जानकर ० विहस्ते हो, उसे राम स्वयं जानकर ० बतलाता है ०<sup>६</sup> । इस प्रकार जैसा राम है, वैसे तुम हो, जैसे तुम ( हो ) तैसा राम है । ०<sup>७</sup> आओ आवुस ! हम दोनों इस गण (= भिक्षुओंकी जमावत ) को धारण करें ।’

‘इस प्रकार भिक्षुओं ! समझचारी होतेभी, ‘‘मुझे आचार्यके पदपर स्थापित किया, ( और ) वड़े सम्मानसे सम्मानित किया । तब भिक्षुओं मुझे ऐसा हुआ—‘यह धर्म न निर्वेदके लिये है ०<sup>८</sup> । सो मैं भिक्षुओं ! उस धर्मको अपर्याप्त ( समझ ) कर, उस धर्मसे विरक्त हो चला दिया ।

‘सो मैं भिक्षुओं ! किङ्कशक-गवेषी ० शक्तिके श्रेष्ठ पदको खोजते, भगधर्ममें कमजोर चारिका (= रामत ) करते जहाँ उरुवेला सेनानी निगम था वहाँ पहुँचा । वहाँ मैंने एक रमणीय = प्रासादिक भूमि-भागमें, वन खंडमें एक नदीको बहते देखा जिसका घाट, रमणीय और श्वेत था । चारों ओर फिरनेके लिये गाँव थे । वहाँ मुझे यह हुआ—यह भूमि-भाग रमणीय है । यह पनखंड प्रासादिक है । श्वेत, सुन्दर घाटवाली रमणीय नदी<sup>९</sup> वह रही है । चारों ओर फिरनेके लिये गाँव हैं । परमार्थमें उद्योगी कुलपुत्रके लिये ध्यान-रत होनेके वास्ते यह बहुत उपयोगी है । तब मैं, भिक्षुओं !—यही ध्यान योग्य स्थान है ( सोच ) वहाँ बैठ गया । सो भिक्षुओं ! स्वयं जन्मने के स्वभाववाले मैंने जन्मनेके दुष्परिणामको जानकर अजन्मा, अनुपम, योगक्षेम निर्वाणको खोजता अजन्मा, अनुपम, योगक्षेम निर्वाणको पालिया । स्वयं जरा-धर्मवाला होते मैंने जरा-धर्मके दुष्परिणामको जानकर जरा-रहित, अनुपम, योगक्षेम निर्वाणको खोज अजर, अनुपम, योगक्षेम

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ १०४ । <sup>२</sup> देखो पृष्ठ २७, २८ । <sup>३</sup> देखो ऊपर । <sup>४</sup> वर्तमान नीलजल ( गया ) ।



निर्वाणको पालिया । स्वयं व्याधि-धर्मा ० व्याधि धर्म-रहित ० स्वयं मरण-धर्मा ० अमर ० । स्वयं शोकधर्म-वाला ० शोकरहित ० । स्वयं संकलेश (= मल )-युक्त ० संकलेश रहित ० । मेरा ज्ञान, दर्शन (= साक्षात्कार ) बन गया, मेरे चित्तकी मुक्ति अचल होगई; यह अन्तिम जन्म है, फिर जन्म ( दूसरा ) जन्म नहीं ( होगा ) ।

“तब भिक्षुओ ! मुझे ऐसा हुआ—

“मैंने गंभीर, दुर्दर्शन, दुर्-ज्ञेय, शांत, उत्तम, तर्कसे अप्राप्य, निपुण, पण्डितों द्वारा जानने योग्य, इस धर्मको पालिया । यह जनता काम-वृणा (= आलस्य ) में रमण करने वाली, काम-रत, काममें प्रसक्त है । काममें रमण करनेवाली इस जनताके लिये, यह जो कार्य-कारण रूपी प्रतीत्य-समुत्पाद है, वह दुर्दर्शनीय है । और यह भी दुर्दर्शनीय है, जो कि यह सभी संस्कारोंका शमन, सभी मन्त्रोंका परित्याग, तृणा-क्षय, विराग, निरोध (= दुःख-निरोध ), और निर्वाण है । मैं यदि धर्मोपदेश भी करूं और दूसरे उसको न समझ पावें, तो मेरे लिये यह तरदुद और पीड़ा ( मात्र ) होगी ।

“उसी समय मुझे पहिले कभी न सुनी यह अद्भुत शायरी सुन पड़ी—

‘यह धर्म पाया कहसे, इसका न युक्त प्रकाशना ।

महिं राग-द्वेष-प्रलितको है सुकर इसका जानना ॥

गंभीर उन्नी-वार-युत दुर्दृश्य सूक्ष्म प्रवीणका ।

तम-पुंज-कादित रागरतद्वारा न संभव देखना ॥’

“मेरे ऐसा समझनेके कारण, मेरा चित्त धर्म-प्रचारकी ओर न झुक अल्प-उत्सुकताकी ओर झुक गया । तब सहापति ब्रह्माने मेरे चित्तकी बातको जानकर खयाल किया—‘लोक नाम हो जायगा रे ! लोक विनाश हो जायगा रे ! जब तद्योगत अर्हत् सम्बन्ध-संयुक्तका चित्त धर्म-प्रचारकी ओर न झुक, अल्प-उत्सुकता (= उदासीनता ) की ओर झुक जाये’ ( ऐसा ब्यालकर ) सहापति ब्रह्मा, जैसे बलवान् पुरुष ( विना परिश्रम ) कैली बाँहको समेट ले, समेटी दाँहको फैलादे, ऐसेही ब्रह्मलोकसे जन्तुर्वाण हो, मेरे सामने प्रकट हुआ । फिर सहापति ब्रह्माने उपरना (= चर ) एक कंधेपर करके, दाहिने जानुको पृथिवीपर रख, जिसपर मैं था उधर हाथ जोड़, कहा—‘भन्ते ! भगवान् धर्मोपदेश करें, सुगत ! धर्मोपदेश करें । अल्प मलवाले प्राणी भी हैं, धर्मके न सुननेसे वह नष्ट हो जायेंगे । ( उपदेश करें ) धर्मको सुननेवाले ( भी होंगे )’ । सहापति ब्रह्माने यह कहा, और यह कहकर यह भी कहा—

‘भगधर्मं मलिन चित्तवालोंसे चिन्तित, पहिले अशुद्ध धर्म पैदा हुआ । असृत्के द्वारको खोलनेवाले विमल ( पुरुष ) द्वारा जाने गये इस धर्मको ( अब लोक ) सुने । पथरीले पर्वतके शिखरपर खड़ा ( पुरुष ) जैसे चारों ओर जनताको देखे । उसी तरह हे सुमेध ! हे सर्वत्र नेत्र वाले ! धर्मरूपी महलपर चढ़ सब जनताको देखो । हे शोक-रहित ! शोक-निमग्न जन्म-जरासे पीड़ित जनताकी ओर देखो । उठो वीर ! हे संभ्रामजित् ! हे सार्धबाह ! उज्ज्वल-वर्ण ! जगमें विचरो ! धर्म-प्रचार करो ! भगवान् ! जाननेवाले मिलेंगे ।’

“तब मैंने ब्रह्माके अभिप्रायको जानकर, और प्राणियोंपर दया करके, बुद्ध-नेत्रसे लोकका अवलोकन किया । बुद्ध-चक्षुसे लोकको देखते हुये मैंने जीवोंको देखा, उनमें कितने ही अल्प-मल, तीक्ष्ण-बुद्धि, सुन्दर-स्वभाव, समझानेमें सुगम, प्राणियोंको भी देखा । उनमें कोई कोई परलोक और दोषसे भय करते, चिहर रहे थे । जैसे उत्पलिनी, पद्मिनी (= पद्मसमुदाय ) या पुंडरीकिनीमें से कितने ही उत्पल, पद्म या पुंडरीक वृक्षमें पैदा हुये उदकमें दौड़े उदकसे बाहर न निकल

(उदकके) भीतरही हुक्कर पोषित होते हैं। कोई कोई उत्पल (= नीलकमल), पद्म (= रक्तकमल) या पुंडरीक (= श्वेतकमल) उदकमें उत्पन्न, उदकमें बँधे (भी) उदकके बराबरही सदे होते हैं। कोई कोई उत्पल, पद्म या पुंडरीक उदकमें उत्पन्न, उदकमें बँधे (भी), उदकसे बहुत ऊपर निकलकर, उदकसे अलिप्त (हो) सदे होते हैं। इसी तरह भगवान्ने दुःखचक्रसे लोकको देवते हुये—अल्पमल, वीक्षणबुद्धि, सुखभाव, सुखीष्य प्रणियोंको देखा; जो परलोक तथा बुराईमें भय खाते विहर रहे थे। देखकर सहापति ब्रह्मासे गाथाद्वारा कहा—

‘उनके लिये अमृतका द्वार पंच होगया है, जो कानबाले होनेपर भी, ब्रह्मको छोट देते हैं। हे ब्रह्मा ! ( वृथा ) पीवाका क्वालकर मैं मनुष्योंको निपुण, उत्तम, धर्मको नहीं कहता या ।’

‘तब ब्रह्मा सहापति—‘भगवान्ने धर्मोपदेशके लिये मेरी बात मानली’ वह ज्ञान, सुखको अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर वही अन्तर्धान होगया। इस समय मेरे ( मनमें ) हुआ—‘मैं पहिले किसे इस धर्मकी देशना (= उपदेश ) करूँ; इस धर्मको शीघ्र कौन जानेगा?’ फिर मेरे ( मनमें ) हुआ—‘यह आलार-कालाम पण्डित, चतुर, मेधावी चिरकालसे अल्प-मलिन-चित्त है; मैं पहिले क्यों न आलार-कालामको ही धर्मोपदेश करूँ? वह इस धर्मको शीघ्रही जान लेगा।’ तब ( गुरु ) देवताने सुझसे कहा—‘भन्ते ! आलार-कालामको भरे ससाह होगया।’ सुझको भी ज्ञान-दर्शन हुआ—‘आलार कालामको भरे ससाह होगया।’ तब मेरे ( मनमें ) हुआ—‘आलार कालाम महा जाजा-नीय था, यदि वह इस धर्मको सुनता, तो शीघ्रही जान लेगा।’ फिर मेरे ( मनमें ) हुआ—‘यह उदक-रामपुत्र पण्डित, चतुर, मेधावी, चिरकालसे अल्प-मलिन चित्त है, क्यों न मैं पहिले उदक रामपुत्रको ही धर्मोपदेश करूँ? वह इस धर्मको शीघ्रही जान लेगा।’ तब ( गुरु = अन्तर्धान ) देवताने आकर कहा—‘भन्ते ! रातही उदक रामपुत्र मर गया। सुझको भी ज्ञान-दर्शन हुआ।...’ फिर मेरे ( मनमें ) हुआ—‘पञ्चवर्गीय भिक्षु मेरे बहुत काम करनेवाले थे, इन्होंने साधनामें लगे मेरी सेवा की थी। क्यों न मैं पहिले पञ्चवर्गीय भिक्षुओंको ही धर्मोपदेश करूँ।’ मैंने सोचा—‘इस समय पञ्चवर्गीय भिक्षु कहाँ विहर रहे हैं?’ मैंने ज-जालुष विभुद्विष्य चक्षुसे देखा—‘पञ्चवर्गीय भिक्षु धाराणसीके ‘ऋषिपतन शृंग-दाघमें विहार कर रहे हैं।’

‘तब मैं उड़बेलामे इच्छानुसार विहारकर, विहर वाराणसी है, उधर चारिका (= रामत ) के लिये निकल पड़ा। उपक आजीवक ने देखा—‘मैं बोधि (= बोधगया ) और गयाके बीचमें जा रहा हूँ। देखकर सुझसे बोला—‘आयुष्मान् ( आयुस ) ! तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न हैं, तेरा छवि-वर्ण (= कांति ) परिशुद्ध तथा उज्ज्वल है। किसको ( गुरु ) मानकर हे आयुस ! तू प्रज्जित हुआ है ? तेरा शास्ता (= गुरु ) कौन ? तू किसके धर्मको मानता है ?’ यह कहनेपर मैंने उपक आजी-वकसे गाथामें कहा—

‘मैं सबको पराजित करनेवाला, सबका जाननेवाला हूँ; सभी धर्मोंमें निर्लेप हूँ। सर्व-त्यागी ( हूँ ), तुष्णाके क्षयसे विमुक्त हूँ; मैं अपनेही जानकर उपदेश करूँगा।

मेरा आचार्य नहीं है मेरे सद्य ( कोई ) विद्यमान नहीं।

देवताओं सहित ( सारे ) लोकमें मेरे समान पुरुष नहीं।

<sup>१</sup> केशवान सारनाम, बनारस।

<sup>२</sup> उस समयके जयवादी मन्त्र साधुओंका एक सम्प्रदाय, नन्द वारस्य, कुश साङ्ख्य और मन्त्रकी-गोसात जिसके प्रधान आचार्य थे।



मैं संसारमें अर्हत् हूँ, अपूर्व प्राप्त ( = मुक्त ) हूँ ।

मैं एक सम्यक् संबुद्ध, शीतल तथा निर्वाणप्राप्त हूँ ।

धर्मका चक्का बुझानेके लिये काशियोंके नगरको जा रहा हूँ ।

( वहाँ ) अन्धे हुये लोकमें अमृत-दुन्दुभो बजाऊँगा ॥'

'आयुष्मन् ! तू जैसा दावा करता है, उससे तो अनन्त जिन हो सकता है ।'

'मेरे ऐसेही सत्त्व जिन होते हैं, जिनके कि आसन्न ( = क्लेश = भल ) नष्ट हो गये हैं ।

मैंने पाप ( = दुरे )-धर्मोंको जीत लिया है, इसलिये हे उपक ! मैं जिन हूँ ।' ऐसा कहनेपर उपक आजीशक—'होवोगे आयुस !' कह, शिर हिला, धेरासो चल दिया । 'तब मैं, भिक्षुओ ! क्रमशः यात्रा ( = चारिका ) करते हुए, जहाँ वाराणसी अधि-पतन मृग-दाव था, जहाँ पञ्चवर्गीय भिक्षु थे, वहाँ पहुँचा । दूरसे आते हुये मुझे पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने देखा । देखतेही आपसमें पक्का किया—'आयुसो ! यह बाहुलिक ( = बहुत जमा करने वाला ) साधना-अष्ट बाहुल्य-परायण ( = जमा करनेमें लगा ) श्रमण गौतम आ रहा है । इसे अभिवादन नहीं करना चाहिये, न प्रत्युत्थान ( = सत्कारार्थ खड़ा होना ) करना चाहिये । न इसके पात्र चीवरको ( आगे धक्कर ) लेना चाहिये, केवल आसन रख देना चाहिये, यदि इच्छा होगी तो बैठेगा ।'

'जैसे जैसे मैं पञ्चवर्गीय भिक्षुओंके समीप आता गया, वैसेही वैसे वह—'अपनी प्रतिज्ञा-पर स्थिर न रह सके । ( अन्तमें ) मेरे पास आ, एकने मेरे पात्र चीवर लिये, एकने आसन बिछाया, एकने पादोदक ( = पैर धोनेका जल ) पादपीठ ( = पैरका पीड़ा ), पादकठलिका ( पैर रगड़नेकी लकड़ी ) ला पास रखी । मैं बिछाये आसनपर बैठा । बैठकर मैंने पैर धोये । वह मेरे लिये 'आयुस' शब्दका प्रयोग करते थे । ऐसा करनेपर मैंने कहा—'नहीं भिक्षुओ ! तथागतको नाम-लेकर या 'आयुस' कहकर मत पुकारो । भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध हैं । इधर कान दो, मैंने जिस अमृतको पाया है, उसका तुम्हें उपदेश करता हूँ । उपदेशानुसार आचरण करनेपर, जिसके लिये कुलपुत्र घरसे बेघर हो संन्यासी होते हैं, उस अनुत्तम ब्रह्मचर्यफलको, इसी जन्ममें शीघ्रही स्वयं जान कर = साक्षात्कार कर = लाभ कर विचारोगे ।'

'ऐसा कहनेपर पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने मुझे कहा—'आयुस गौतम ! उस साधनामें, उस धारणामें, उस दुष्कर तपस्यामें भी तुम आर्योंके ज्ञानदर्शनकी पराकाष्ठाकी किरीफता, उत्तर-अनुत्तर-धर्म ( = दिव्य शक्ति ) को नहीं पा सके, फिर जब बाहुलिक साधना-अष्ट, बाहुल्यपरायण तुम आर्य-ज्ञान-दर्शनकी पराकाष्ठा, उत्तर-अनुत्तर-धर्मको क्या पाओगे ?'

'यह कहनेपर मैंने पञ्चवर्गीय भिक्षुओंसे कहा—'भिक्षुओ ! तथागत बाहुलिक नहीं हैं, और न साधनासे अष्ट हैं, न बाहुल्यपरायण हैं । भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध हैं ० । ० लाभकर विहार करोगे ।

'दूसरी बार भी पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने मुझे कहा—'आयुस ! गौतम ० ।' दूसरी बार भी मैंने फिर ( वही ) कहा ० । तीसरी बार भी पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने मुझसे ( वही ) कहा ० । ऐसा कहनेपर मैंने पञ्चवर्गीय भिक्षुओंको कहा—'भिक्षुओ ! इससे पहिले भी क्या मैंने कभी इस प्रकार कहा है ?'

'भन्ते ! नहीं'

'भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् विहार करोगे ।'

'( तब ) मैं पञ्चवर्गीय भिक्षुओंको समझानेमें समर्थ हुआ ।

'वहाँ मैं दो भिक्षुओंको उपदेश करता था, तो तीन भिक्षु भिक्षाके लिये जाते थे । तीन

मिश्र मिश्राचार करके जो खाते थे, उसीसे छ:ओं जने निर्वाह करते थे। ( जघ ) तीन मिश्रुओंको मैं उपदेश करता था, तो दो मिश्रु मिश्राके लिये जाते थे। दो मिश्रु मिश्राचार करके जो खाते थे, उसीसे छ:ओं जने निर्वाह करते थे। तब मिश्रुओ ! इस प्रकार मेरे उपदेश करनेसे, अववाद करनेसे पञ्चवर्गीय मिश्रु स्वयं जन्मनेके स्वभाववाले, जन्मनेके दुष्परिणामको जानकर ०<sup>१</sup> फिर अथ ( दूसरा ) जन्म नहीं ।<sup>१</sup>

“मिश्रुओ ! यह पाँच कामगुण ( = काम-भोग ) हैं। कौनसे पाँच ?—( १ ) श्रेष्ठद्वारा श्रेष्ठ इष्ट=कान्त=मनाप=प्रियरूप=कामोपलब्धित, रंजनीय रूप। ( २ ) श्रेष्ठद्वारा श्रेष्ठ ० शब्द। ( ३ ) घ्राणद्वारा श्रेष्ठ ० गंध। ( ४ ) जिह्वा द्वारा श्रेष्ठ ० रस। ( ५ ) काया ( = त्वक् ) द्वारा श्रेष्ठ ० स्पर्श। मिश्रुओ ! यह पाँच कामगुण हैं। मिश्रुओ ! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इन पाँच कामगुणोंमें वैधे, मूर्खित ( = गढ़ ), लिप्त हो, ( उनके ) दुष्परिणामको न देख, निकलनेकी बुद्धि न रख ( उनका ) उपभोग करते हैं; उनके लिये समझना चाहिये कि वह अ-नय ( = बुराई )में पड़े हैं, दुःखमें पड़े हैं, पापी ( दुर्भावनाओं की इच्छानुसार करनेवाले ) हैं। जैसे, मिश्रुओ ! जंगली सुग पाश-राशि ( = जालके ढेर )में बैधा सोवे; उसे समझना होगा—( यह सुग ) बुराईमें पड़ा है, व्यसनमें पड़ा है। शिकारीकी इच्छानुसार करनेवाला है। शिकारीके जाने पर ( अपनी ) इच्छाके अनुसार नहीं भाग सकेगा। इसी प्रकार मिश्रुओ ! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इन पाँच कामगुणोंमें वैधे ० पापी ( = दुर्भावनाओं )के इच्छानुसार करनेवाले हैं।

“मिश्रुओ ! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इन पाँच कामगुणोंमें न-वैधे, अ-मूर्खित, अ-लिप्त हो, दुष्परिणामको देख, निकलनेकी बुद्धि रख उपभोग करते हैं; उनके लिये समझना चाहिये; कि वह अ-नयमें पड़े नहीं हैं, व्यसनमें पड़े नहीं हैं; पापीकी इच्छानुसार करनेवाले नहीं हैं। जैसे, मिश्रुओ ! जंगली सुग पाश-राशिसे न बैधा सोवे, उसके लिये समझना होगा—यह सुग अ-नयमें नहीं पड़ा है। व्यसनमें नहीं पड़ा है। शिकारीकी इच्छानुसार नहीं करनेवाला है। शिकारीके जानेपर अपनी इच्छाके अनुसार भाग सकेगा। इसी प्रकार मिश्रुओ ! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इन पाँच कामगुणोंमें न-वैधे ० पापीकी इच्छानुसार करनेवाले नहीं हैं। जैसे, मिश्रुओ ! जंगली सुग पवनके चलने पर निश्चिन्त चलता है, निश्चिन्त खड़ा होता है, निश्चिन्त बैठता है, निश्चिन्त लेटता है। सो क्यों ?—मिश्रुओ ! ( वह ) शिकारीकी पहुँचसे बाहर है। इसी प्रकार मिश्रुओ ! मिश्रु ०<sup>२</sup> प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। मिश्रुओ ! उस मिश्रुके लिये इसलिये कहा जाता है—इसने मारको भँबा कर दिया; मार की आँख को—मारकर, वह पापीके सामनेसे अन्तर्धान हो गया।

“और फिर, मिश्रुओ ! मिश्रु ०<sup>३</sup> द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। मिश्रुओ ! इस मिश्रुके लिये कहा जाता है—० पापीके सामनेसे अन्तर्धान हो गया।

“ ०<sup>४</sup> तृतीय ध्यान ० ।

“ ०<sup>५</sup> चतुर्थ ध्यान ० ।

“ ०<sup>६</sup> आकाशानन्त्यापत्त ० ।

“ ०<sup>७</sup> विज्ञानानन्त्यापत्त ० ।

“ ०<sup>८</sup> आर्किचन्त्यापत्त ० ।

“ ०<sup>९</sup> नैवसंज्ञा-नासंज्ञापत्त ० ।



“०” संज्ञावेदित-निरोधको प्राप्त हो बिहरता है। प्रज्ञासे देखकर उसके ध्यासव (=चित्त-मल) नष्ट होसके। भिक्षुओं ! इस भिक्षुके लिये कहा जाता है—“पापीके सामनेसे अन्तर्धान हो गया। वह लोकमें फन्देके पार होगया। वह निश्चिन्त चलता है, निश्चिन्त खड़ा होता है, निश्चिन्त बैठता है, निश्चिन्त सोता है। सो क्यों ?—भिक्षुओं ! वह पापीकी पहुँचसे बाहर हो गया।”

भगवान् ने यह कहा, समुत्त हो उन भिक्षुओंके भगवान् के भाषणको अभिनन्दित किया।

## २७—चूल-हृत्पिपदोपम-सुत्तन्त ( १।३।७ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तोमें अनात्र-पिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय जाणुत्तोणि (= जानुश्रोणि ) बाह्यण सर्वश्वेत घोड़ियोंके रखपर सवार हो, मध्याह्नकी श्रावस्तीसे बाहर जा रहा था । जानुश्रोणि बाह्यणने पिलोतिक परित्राजकको बुरसे ही आते देखा । देखकर पिलोतिक परित्राजकसे यह कहा—

“इन्त ! वात्स्यायन (= वच्छायन ) ! आप मध्याह्नमें कहाँसे जा रहे हैं ?”

“भो ! मैं अमण गौतमके पाससे जा रहा हूँ ।”

“तो आप वात्स्यायन अमण गौतमकी प्रज्ञा, पाण्डित्यको क्या समझते हैं ? पंडित मानते हैं ?”

“मैं क्या हूँ, जो अमण गौतमका प्रज्ञा-पाण्डित्य जानूँगा ?”

“आप वात्स्यायन उदार (= बड़ी ) प्रशंसाद्वारा अमण गौतमकी प्रशंसा कर रहे हैं ?”

“मैं क्या हूँ, और मैं क्या अमण गौतमकी प्रशंसा करूँगा ? प्रशस्त प्रशस्त (ही) हैं । आप गौतम, देव-मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं ।”

“आप वात्स्यायन किस कारणसे अमण गौतमके विषयमें इतने अभिप्रसन्न हैं ?”

“( जैसे ) कोई चतुर नाग-वनिक् (= हाथीके जंगलका आदमी ) नाग-वनमें प्रवेश करे । वह वहाँ गये भारी ( बड़े-चौड़े ) हाथीके पैर (= हस्ति-पद ) को देखे । उसको विश्वास हो जाए—भरे, बड़ा भारी नाग है । इसी प्रकार जब मैंने अमण गौतमके चार पद देखे, तो विश्वास होगया—कि ( वह ) भगवान् सम्यक्-संबुद्ध हैं, भगवान्का धर्म स्वात्थात है, भगवान्का आवक-संघ सुप्रतिपन्न (= सुन्दर प्रकारसे रास्तेपर लगा ) है । कौनसे चार ?—( १ ) मैं देखता हूँ, बालकी जाल उतारनेवाले, दूसरोंसे वाद-विवाद किये हुये, निपुण, कोई कोई लज्जित पंडित—भानों प्रज्ञामें स्थित, ( तत्त्व ) से दृष्टिगत (= चारणामें स्थित तत्त्व ) को खंडा-खंडी करते चलते हैं—सुनते हैं—अमण गौतम असुक् ग्राम वा निगममें आवेगा । वह प्रश्न तैयार करते हैं—‘इस प्रश्नको हम अमण गौतमके पास जाकर पूछेंगे । ऐसा हमारे पूछनेपर, यदि वह ऐसा उत्तर देगा, तो हम इस प्रकार वाद (= शास्त्रार्थ ) रोपेंगे ।’ वह सुनते हैं—अमण गौतम असुक् ग्राम वा निगममें आगया । वह जहाँ अमण गौतम होता है, वहाँ जाते हैं । उनको अमण गौतम धार्मिक उपदेश कर दर्शाता है, समादपन, अनुत्तेजन, संप्रशंसन करता है । वह अमण गौतमसे धार्मिक उपदेश द्वारा संदर्शित, समादपित, अनुत्तेजित, संप्रशंसित हो, अमण गौतमसे प्रश्न भी नहीं पूछते, उसके ( साथ ) वाद कहाँसे रोपेंगे ? चकि और भी अमण गौतमके ही आवक (= शिष्य ) हो जाते हैं । भो ! जब मैंने अमण गौतममें यह प्रथम पद देखा, तब मुझे विश्वास हो गया—भगवान् सम्यक्-संबुद्ध हैं ० ।



“(२) और फिर भो ! मैं देखता हूँ, यहाँ कोई कोई बालकी साल उतारने वाले, दूसरोंसे वाद-विवादमें सफल, निपुण ब्राह्मण पण्डित ० । मैंने श्रमण गौतममें यह दूसरा पद देखा ।

“(३) ० गृहपति ( = वैश्य )-पण्डित । ० यह तीसरा पद ० ।

“(४) ० श्रमण ( = प्रव्रजित )-पण्डित ० । वह श्रमण गौतमके धार्मिक उपदेशद्वारा ० समुत्पन्नित संप्रशंसित हो, श्रमण गौतमसे प्रथम भी नहीं पूछते, उसके ( साथ ) वाद कहाँसे रोपेंगे ? बलिक और भी श्रमण गौतमसे घरसे बेघर ( होकर मिलनेवाली ) प्रव्रज्याके लिये आज्ञा माँगते हैं । उनको श्रमण गौतम प्रव्रजित करता है, उपसम्पन्न करता है । वह वहाँ प्रव्रजित हो, अकेले एकान्तसेवी, प्रमादरहित, तत्पर, आत्म-संयमी हो विहार करते, अचिरहीमें, जिसके लिये कुल-पुत्र घरसे बेघर हो, प्रव्रजित होते हैं, उस अनुपम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं जान कर, साक्षात् कर, प्राप्त कर, विहरते हैं । वह ऐसा कहते हैं—‘मनको भो ! नाश किया, मनको भो ! प्र-नाश किया । हम पहिले अ-श्रमण होते हुये भी ‘हम श्रमण हैं’—दावा करते थे; अ-ब्राह्मण होते हुये भी ‘हम ब्राह्मण हैं’—दावा करते थे । अनु-अर्हत् होते हुये भी ‘हम अर्हत् हैं’—दावा करते थे । अब हम श्रमण हैं, अब हम ब्राह्मण हैं, अब हम अर्हत् हैं ।’ श्रमण गौतममें जब इस चौथे पदको देखा, तब मुझे विधास हो गया—भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं ० । भो ! मैंने अब इन चार पदोंको श्रमण गौतममें देखा, तब मुझे विश्वास हो गया ० ।”

ऐसा कहनेपर जानुश्रेणी ब्राह्मणने सर्व-श्वेत घोड़ीके रथसे उतरकर, एक कंधेपर उत्तरासंग ( = चादर ) करके, जिधर भगवान् थे उधर अङ्गलि जोड़कर, तीन बार यह उद्गान कहा—“नमस्कार है, इस भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धको, ‘नमस्कार है ० ।’ ‘नमस्कार है ० ।’ क्या मैं कभी किसी समय इन आप गौतमके साथ मिल सकूँगा ? क्या कभी कोई कथा-संलाप हो सकेगा ?”

तब जानु श्रेणी ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्के साथ ० संमोदन-कर... ( कुशलप्रश्न पूछ ) एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये जानु-श्रेणी ब्राह्मणने, जो कुछ पिलोत्तिक परित्राजकके साथ कथा-संलाप हुआ था, सब भगवान्से कह दिया । ऐसा कहनेपर भगवान्ने जानु-श्रेणी ब्राह्मणसे कहा—

“ब्राह्मण ! इतने ( ही ) विस्तारसे हस्ति-पद-उपमा परिपूर्ण नहीं होती । ब्राह्मण ! जिस प्रकारके विस्तारसे हस्ति-पद-उपमा परिपूर्ण होती है, उसे सुनो और मनमें ( धारण ) करो...।”

“अच्छा भो !” कह जानु-श्रेणी ब्राह्मणने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने कहा—“जैसे ब्राह्मण नाग-वनिक नाग-वनमें प्रवेश करे । वहाँपर नाग-वनमें वह धड़े भारी ० हस्ति-पदको देखे । जो चतुर-नाग-वनिक होता है वह विश्वास नहीं करता—‘अरे ! क्या भारी नाग है ।’ किसलिये ? ब्राह्मण ! नाग-वनमें ग्रामकी ( = बैँवनी ) नामकी हथिनियाँ भी महा-पदवाली होती हैं, उनका वह पैर हो सकता है । उसके पीछे चलते हुए वह नाग-वनमें धड़े भारी... ( लम्बे चौड़े )... हस्ति-पद और ऊँचे ढोलको देखता है । जो चतुर नाग-वनिक होता है, वह तब भी विश्वास नहीं करता—‘अरे क्या भारी नाग है ।’ किसलिये ? ब्राह्मण ! नाग-वनमें ऊँची कात्तारिका नामक हथिनियाँ धड़े पैरवाली होती हैं, वह उनका पद हो सकता है । वह उसका अनुगमन करता है, अनुगमन करते नाग-वनमें देखता है—धड़े भारी लम्बे चौड़े हस्ति-पद, ऊँचे ढोल और ऊँचे दाँतोंसे आरजित ( प्राणी )को । जो चतुर नाग-वनिक होता है, वह तब भी विश्वास नहीं करता ० । सो किसलिये ? ब्राह्मण ! नाग-वनमें ऊँची करेणुका नामक हथिनियाँ

महा-पद्माली होती है। वह उनका भी पद हो सकता है। वह उसका अनुगमन करता है। उसका अनुगमन करते नागवनमें, बड़े भारी, ... ( लम्बे-चौड़े ) हस्ति-पद, ऊँचे डोल, ऊँचे दूर्तिसे सुशोभित ( पाणी ), और शाखाको ऊँचेसे टूटा देखता है। और वहाँ वृक्षके नीचे, या चौड़ेमें जाते, बड़े, बड़े या छोटे उस नागको देखता है। वह विश्वास करता है, यही वह महानाग है।

“इसी प्रकार आश्रम यहाँ तथागत, अर्हत् सम्मत्-सन्मुख, विद्या-आचरण-सम्पन्न, सुगत, लोकविदु, अनुत्तर पुरुष-दम्य-सारथी, देव-मनुष्योंके शास्ता, बुद्ध भगवान् लोकमें उत्पन्न होते हैं। वह इस देव-मार-महा सहित लोक, अमण-आश्रम-देव-मनुष्य-सहित प्रजाको, स्वयं जान कर, साक्षात् कर, सज्जताते हैं। वह आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, पर्यवसान-कल्याणवाले धर्मका उपदेश करते हैं। अर्थ-सहित अंजन-सहित, केवल परिपूर्ण परिशुद्ध, अक्ष-धर्मको प्रकाशित करते हैं। उस धर्मको गृह-पति या गृह-पतिका पुत्र, या और किसी छोटे कुलमें उत्पन्न ( पुरुष ) सुनता है। वह उस धर्मको सुनकर तत्प्राप्तके विषयमें अज्ञा लाम करता है। वह उस अज्ञा-लामसे संयुक्त हो, यह सोचता है— गृह-वास जंगल अलंका भारी है। प्रपञ्चा मंदान ( = चौड़ा ) है। इस एकान्त सर्वथा-परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध, स्वरादे शंस जैसे अक्षधर्मका पालन, धर्ममें बसते हुयेके लिये सुकर नहीं है। क्यों न मैं सिर-दाढ़ी छुँवा कर, काषायवस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रमजित हो जाऊँ ? सो वह दूसरे समय अपनी लक्ष्य ( = धोढ़ी ) भोग-राशि, या महा-भोग-राशिको छोड़, अस्प-जाति-मंडल या महा-जाति-मंडलको छोड़, सिर-दाढ़ी छुँवा, काषायवस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो, प्रमजित होता है। वह इस प्रकार प्रमजित हो, भिक्षुओंकी शिक्षा, सम्मान-जीविकाको प्राप्त हो, प्राणातिपात छोड़ प्राणहिंसासे विरत होता है। ईड-त्यागी, शफ-त्यागी, लवी, क्षालु, सर्व-प्राणों सर्व-प्राण-भूतोंका हित और अनुकंपक हो, विहार करता है। अ-दिवादान ( = चोरी ) छोड़ दिवादायो ( = दियेको लेनेवाला ), दत्त-प्रति-काक्षी ( = दियेका चाहनेवाला ), ... पवित्रात्मा हो, विहरता है। अ-महाधर्मको छोड़कर अक्ष-चारी, प्राम्यधर्म मधुनसे विरत हो, आर-चारी ( = दूर रहनेवाला ) होता है। शृषावाक्को छोड़, शृषावाक्से विरत हो, सत्य-वादी, सत्य-संध, लोकका अ-विलंबादक = विभास-पत्र... होता है। पिशुन-वचन ( = झुगड़ी ) छोड़, पिशुन-वचनसे विरत होता है, — यहाँ सुनकर इनके फोड़नेके क्रिये, वहाँ नहीं कहनेवाला होता; या, वहाँ सुनकर उनके फोड़नेके लिये, यहाँ कहनेवाला नहीं होता। इस प्रकार भिक्षों ( = फूटों )को मिलानेवाला, भिक्षे दुर्गोंको भिक्ष न करनेवाला, एकतामें प्रसन्न, एकतामें रत, एकतामें आनन्दिता हो, समग्र ( = एकता )-करणी वाणीका बोलने-वाला होता है, परुष ( = कट्ट ) वचनको छोड़, परुष वचनसे विरत होता है। जो वह वाणी... कर्ण-सुखा, प्रेमणीया, हृदयकामा, दीरो ( = नागरिक, सम्म ) बहुजन-कान्ता = बहुजन-अनाथा है, वैसी वाणीका बोलनेवाला होता है। प्रलापको छोड़कर प्रलापसे विरत होता है। काल-वादी = समय देखकर बोलनेवाला ), भूत ( = दयार्थ )वादी, अर्थ-वादी, धर्म-वादी, विनय-वादी हो, तात्पर्य-सहित, पर्यन्त-सहित, अर्थ-सहित, निधान-वती वाणीका बोलनेवाला होता है।

“यह धीमन्-समुदाय भूत-समुदायके विनाश ( = समारंभ )से विरत होता है। एका-हारी, रातको उपरत = विकाल ( = मध्याह्नोत्तर ) भोजनसे विरत होता है। भाला, गंध और विलेपनके धारण, मंडन और निभूषणसे विरत होता है। उच्छासन और महाशसन ( = राजसी शब्दा )से विरत होता है। जातरूप ( = सोना )-रत्नके प्रतिग्रहणसे विरत होता है। कचे अनाजके प्रतिग्रहण ( = लेना )से विरत होता है। कच्चा भात लेनेसे विरत होता है। स्त्री-कुमारी १ ।

\* समारम्भ = सभाकर्म = हिंसा, जैसे सभाकर्म, सवालकर्म ।



दासी-दास ० । मेढ़-मेढ़री ० । सुगी-सूअर ० । हावी-गाव ० । बोहा-बोही ० । खेत-खर ० । वृत्त धनकर जाने... ० । कृत-विकृत ० । तराजूकी ठगी, काँसेकी ठगी, मान (= तेर मन आदि) की ठगी ० । घूस, घंचना, जाल-साजी, कुटिल-योग ० । छेदन, घघ, घंचन, छापा मारने, आलोप ( भ्राम आदिका विनाश ) करने, डाका डालने ० ।

“यह शरीरपरके चीवरसे, पेटके खानेसे सन्तुष्ट होता है । वह जहाँ जहाँ जाता है, ( अपना सामान ) लिये ही जाता है ; जैसे कि पक्षी जहाँ कहीं उड़ता है, अपने पंख-भार सहितही उड़ता है । इसी प्रकार भिक्षु शरीरके चीवरसे, पेटके खानेसे, सन्तुष्ट होता है । ० । वह इस प्रकार आर्य-शील (= निर्दोष सदाचारकी )-मण्ड (= राशि) से युक्त हो, अपनेमें (= अभ्यात्म ) निर्दोष सुख अनुभव करता है ।

“यह चक्षुसे रूपको देखकर, निमित्त (= छिग, आकृति आदि ) और अनुसंजनका ग्रहण करनेवाला नहीं होता । चूँकि चक्षु इन्द्रियको अनशित रस विहरनेवालेको, राग द्वेष पाप = अकुशल धर्म उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिये उसको रक्षित रखता (= संवर करता ) है । चक्षु इन्द्रियकी रक्षा करता है = चक्षु इन्द्रियमें संवर ग्रहण करता है । वह श्रोतसे शब्द सुनकर निमित्त और अनुसंजनका ग्रहण करनेवाला नहीं होता ० । आणसे गंध ग्रहणकर ० । जिह्वासे रस ग्रहणकर ० । काणसे स्पर्श ग्रहणकर ० । मनसे धर्म ग्रहण कर ० । इस प्रकार वह आर्य-इन्द्रिय-संवरसे युक्त हो, अपनेमें निर्मल सुखको अनुभव करता है ।

“यह जाने-जानेमें, जानकर करनेवाला होता है । अवलोकन विलोकनमें, संप्रजन्य-युक्त (= जानकर करनेवाला ) होता है । समेटने-कैलावेमें संप्रजन्य-युक्त होता है । संघाटी पात्र-चीवर धारण करनेमें ० । खाना-पीना भोजन-आस्वादनमें ० । पाखाना-पेशावके काममें ० । जाते-खड़े होते, बैठते, सोते-जागते, बोलते-बुप रहते, संप्रजन्य-युक्त होता है । वह इस आर्य शील-स्पर्शसे युक्त, इस आर्य इन्द्रिय-संवरसे युक्त, इस आर्य स्मृति-संप्रजन्यसे युक्त हो, एकान्तमें—अरण्य, वृक्षके नीचे, पर्वत, कन्दरा, गिरि-गुहा, इमशान, वन-प्रान्त, चौड़े, या पुजालके रंगमें—वास करता है । वह भोजनके पश्चात् “आसन मार कर, कायाको सीधा कर, स्मृतिको अनुसुख रख बैठता है । वह लोकमें ( १ ) अभिध्या (= जोष ) को छोड़, अभिध्या-रहित-चित्त हो, विहरता है ; चित्तको अभिध्यासे परिशुद्ध करता है । ( २ ) व्यापाद (= दोष )-दोषको छोड़कर, व्यापाद-रहित चित्तसे, सर्व प्राणिमाका हितानुकम्पी हो, विहरता है ; व्यापाद दोषसे चित्तको परिशुद्ध करता है । ( ३ ) स्त्यानसृष्ट (= शरीर-मनके आसस ) को छोड़, स्त्यान-सृष्ट-रहित हो, आलोक-संज्ञावाला, स्मृति, संप्रजन्यसे युक्त हो विहरता है । औदत्य-कौटल्यको छोड़ अनु-उद्धत हो भीतरसे शान्त हो, विहरता है । ( ४ ) औदत्य-कौटल्यसे चित्तको परिशुद्ध करता है । ( ५ ) विचिकित्सा (= सन्देह ) को छोड़ विचिकित्सा-रहित हो, कुशल (= उत्तम )-धर्मोंमें विचार-रहित (= अकथकयी ) हो, विहरता है ; चित्तको विचिकित्सासे परिशुद्ध करता है ।

“यह इन पाँच नीवरणोंको चित्तसे छोड़, उप-क्लेशों (= चित्त-मलों ) को जान, ( उनके ) दुर्वल करनेके लिये, कामोंसे पृथक् हो, अकुशल-धर्मोंसे पृथक् हो, स-वितर्क, स-विचार विवेकसे उत्पन्न, प्रीति-सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो, विहरता है । ब्राह्मण ! यह पद भी तथ्यागतका पद कहा जाता है, यह ( पद ) भी तथ्यागतसे सेवित है, यह ( पद ) भी तथ्यागत-रहित है । किन्तु आर्य-आवक इतनेही से विधास नहीं कर लेता—भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं, भगवान्का धर्म स्वाक्यात है, भगवान्का आवक-संघ सु-प्रतिपक्ष है ।

“और फिर ब्राह्मण ! भिक्षु वितर्क और विचारके उपशान्त होनेपर, भीतरके संप्रसाद

( = प्रसन्नता ) = चित्तकी एकाग्रताको प्राप्त हो, वितर्क-विचार-रहित, समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाले, द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ब्राह्मण ! यह पद भी तथ्यागत-पद कहा जाता है, यह भी तथ्यागत-सेवित है, यह भी तथ्यागत-रहित है । किन्तु आर्य-आवक इतनेहीसे विश्वास नहीं कर लेता—भगवान् सम्यक्-संबुद्ध हैं ० ।

“और फिर ब्राह्मण ! भिक्षु प्रीति और विरागसे उपेक्षक हो, स्मृति और संप्रजन्यसे युक्त हो, कायासे सुखको अनुभव करता विहरता है, जिसको ( और ) कि आर्य-जन उपेक्षक स्मृतिमान् सुख-विहारो कहते हैं, ऐसे तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो, विहरता है । ब्राह्मण ! यह पद भी तथ्यागत-पद कहा जाता है ० । किन्तु आर्य-आवक इतनेहीसे विश्वास नहीं कर लेता ० ।

“और फिर ब्राह्मण ! भिक्षु सुख और दुःखके विनाशसे, सौमनस्य और दौर्मनस्यके पूर्वही अस हो जानेसे, दुःख-रहित, सुख-रहित उपेक्षक हो, स्मृतिको परिशुद्धता-युक्त चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । यह भी ब्राह्मण ! तथ्यागत-पद कहा जाता है ० । किन्तु आर्य-आवक इतनेहीसे विश्वास नहीं कर लेता—भगवान् सम्यक्-संबुद्ध हैं ० ।

“सो इस प्रकार चित्तके—परिशुद्ध=परि-अवदात, अंगण-रहित=उपकेल ( = मल ) रहित, शुद्ध हुये, काम-लापक, स्थिर-अचलता-प्राप्त=समाहित—हो जानेपर, पूर्वजन्मोंकी स्मृतिके ज्ञान ( = पूर्व-निवासाऽनुस्मृति-ज्ञान ) के लिये चित्तको झुकाता है । फिर वह अनेक पूर्व-निवासोंको स्मरण करने लगता है—जैसे ‘एक जन्म भी, दो जन्म भी, तीन जन्म भी, चार०, पाँच०, छः०, दस०, बीस०, तीस०, चालीस०, पचास०, सौ०, हजार०, सौहजार०, अनेक संवर्त ( = प्रलय ) कल्प, अनेक विवर्त ( = सृष्टि )-कल्प, अनेक संवर्त-विवर्त-कल्पको भी,—इस नामवाला, इस गोश्रवाला, इस वर्षावाला, इस आहारवाला, इस प्रकारके सुख दुःखको अनुभव करनेवाला, इतनी आयु-पर्यन्त, मैं अमुक स्थानपर रहा । सो मैं वहाँसे च्युत हो, यहाँ उत्पन्न हुना ।’ इस प्रकार आकार-सहित उद्देश्य-सहित अनेक किये गये निवासोंको स्मरण करता है । यह भी ब्राह्मण ! तथ्यागत-पद कहा जाता है ० ।

“सो इस प्रकार चित्तके परिशुद्ध ० समाहित होनेपर प्राणियोंके जन्म-मरणके ज्ञान ( = स्मृति-उत्पाद-ज्ञान ) के लिये चित्तको झुकाता है । सो अ-मानुष विशुद्ध दिव्य चक्षुसे अच्छे दूरे, सु-वर्ण, दुर्बर्ण, सुगत, दुर्गत, मस्ते, उत्पन्न होते, प्राणियोंको देखता है । उनके कर्मोंके साथ सबको जानता है—‘यह जीव काय-दुश्चरित-सहित, वचन-दुश्चरित-सहित, मन-दुश्चरित-सहित थे, आयोंके निन्दक ( = उपवादक ) मिथ्या-दृष्टिवाले, मिथ्यादृष्टि-सम्बन्धी कर्मोंसे युक्त थे । यह काया-प्रेष, मरनेके बाद अ-पाप = दुर्गति = विनिपात = नर्कमें उत्पन्न हुये हैं । और यह जीव ( = सत्त्व ) काय-सुचरित-सहित, वचन-सुचरित-सहित, मन-सुचरित-सहित थे, आयोंके अ-निन्दक सम्यग्-दृष्टिवाले सम्यग्-दृष्टि-सम्बन्धी कर्मोंसे युक्त थे । यह कामसे अलग हो ‘मरनेके बाद सुगति = स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं । इस प्रकार अ-मानुष विशुद्ध दिव्य चक्षुसे प्राणियोंको देखता है । यह भी ब्राह्मण ! तथ्यागत-पद कहा जाता है ० ।

“सो इस प्रकार चित्तके ० समाहित हो जानेपर आकाश-अव्य-ज्ञान ( = रागादि चित्त-मल्लोंके नाश होनेका ज्ञान ) के लिये चित्तको झुकाता है । सो ‘यह दुःख है’ इसे यथार्थसे जानता है, ‘यह दुःख-समुदय है’ इसे यथार्थसे जानता है, ‘यह दुःख-निरोध है’ इसे यथार्थसे जानता है । ‘यह आकाश है’ ० । ‘यह आकाश-समुदय है’ । ‘यह आकाश-निरोध है’ ० । ‘यह आकाश-निरोध-यामिनी-प्रतिपद् ( = रागादि चित्त-मल्लोंके नाशकी ओर ले जानेवाला मार्ग ) है’ ० । यह भी ब्राह्मण ! तथ्यागत-पद कहा जाता है ० । ० ।



“दूस प्रकार जानते, इस प्रकार देखते, उस ( पुरुष ) के चित्तको काम-आसक्त भी छोड़ देता है, भय-आसक्त भी ०, अ-विद्या-आसक्त भी ० । छोड़ देने ( = चित्तुक हो जाने ) पर, 'छूट गया हूँ' ऐसा ज्ञान होता है । 'जन्म खत्म हो गया, आश्चर्य पूरा हो गया, करना था, सो कर लिया, अब यहाँके लिये कुछ नहीं'—यह भी जानता है । ब्राह्मण ! यह भी तत्वागत-पद कहा जाता है ० । इतनेसे ब्राह्मण ! आर्य-आवक विधास करता है—भगवान् सम्यक्-संशुद्ध हैं ० ।

“इतनेसे ब्राह्मण ! हस्ति-पदकी उपमा ( हस्ति-पदोपमा ) विलारपूर्वक पूरी होती है ।”

ऐसा कहनेपर जालुश्रोणि ब्राह्मणने भगवान्को यह कहा—

“आचार्य ! भो गौतम !! आचार्य ! भो गौतम !! ०” मैं आप गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी । आपसे ( मुझे ) आप गौतम अजलि-वद् उपासक धारण करें ।

## २८—महाहत्थिपदोपम-सुत्तन्त ( १।३।८ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडिकके आवास जेतवनमें विहार करते थे ।

वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको संबोधित किया—

“आवुसो ! भिक्षुओ !”

“आवुस” —कह, उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया ।

आयुष्मान् सारिपुत्रने कहा—

“जैसे आवुसो ! जंगली प्राणियोंके जितने पद हैं, वह सभी हाथीके पैर (= हस्ति-पद ) में समा जाते हैं । वषाईमें हस्ति-पद उनमें उभ (= धोए ) गिना जाता है । ऐसे ही आवुसो ! जितने कुशल धर्म हैं, वह सभी चार आर्य-सत्त्वोंमें सम्मिलित हैं । कौनसे चारोंमें ?—दुःख आर्य-सत्त्वमें, दुःख-समुदय आर्य-सत्त्वमें, दुःख-निरोध आर्य-सत्त्वमें, और दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्य-सत्त्वमें ।

“क्या है आवुसो ! दुःख आर्य-सत्त्व ?—जन्म भी दुःख है । जरा (= बुढ़ापा ) भी दुःख है । मरण भी दुःख है । शोक, रोना-पिटना, दुःख है । मनभंगताप, परेशानी भी दुःख है । जो इच्छा करके नहीं पाता वह भी दुःख है । संक्षेपमें पाँच उपादान-स्कंध दुःख हैं ।

“आवुसो ! पाँच उपादान-स्कंध कौनसे हैं ?—( पाँच उपादान-स्कंध हैं ) जैसे कि—रूप-उपादान स्कंध, वेदना ०, संज्ञा ०, संस्कार ०, विज्ञान ० । आवुसो ! रूप-उपादान-स्कंध क्या है ?—चार महाभूत, और चारों महाभूतोंको लेकर ( बननेवाले ) रूप । आवुसो ! चार महाभूत कौनसे हैं ?—पृथिवी-धातु, आप (= पानी ) ०, तेज (= अग्नि ) ०, वायु ० । आवुसो ! पृथिवी-धातु क्या है ?—पृथिवी धातु है ( दो ), आभ्यात्मिक (= शरीरमें ) और बाहरी । आवुसो ! आभ्यात्मिक पृथिवी-धातु क्या है ?—जो शरीरमें (= अप्यात्म ) हरएक शरीरमें कर्कश कठोर ( पदार्थ ) है, जैसे कि—केश, लोम, मल, दन्त, त्वक् (= चमड़ा ), मूत्र, मूत्राशु (= नहाव ), अस्थि, अस्थिके भीतरकी मज्जा, तुक, हृदय, यकृत, लोमक, प्रोक्ता, फुफ्फुस, अर्त, तली-अर्त, उदरका मल (= कुरीप ) । और भी जो कुछ शरीरमें प्रतिशरीरके भीतर कर्कश, कठोर ( पदार्थ ) गृहीत है । यह आवुसो ! आभ्यात्मिक पृथिवी-धातु कही जाती है । जो कि आभ्यात्मिक पृथिवी धातु है, और जो बाहरी (= बाहिरा ) पृथिवी-धातु है, वह पृथिवी धातुही है । ‘वह वह ( पृथिवी ) न मेरी है, न यह मैं हूँ, न यह मेरा आत्मा है’ यह यथार्थते अच्छी प्रकार जानकर देखना चाहिये । इस प्रकार इसे पञ्चार्थके अच्छो प्रकार जानकर देखनेसे, ( द्रष्टा ) पृथिवी-धातुसे निर्वेद (= उदासीनता )को प्राप्त होता है । पृथिवी धातुसे चित्तको स्थिर करता है ।



“आवुसो ! ऐसा भी समय होता है, जब बाहरी पृथिवी-धातु कुपित होती है, उस समय बाहरी पृथिवी धातु अन्तर्धान होती है । ( तब ) आवुसो ! इतनी महान् बाहरी पृथिवी-धातुकी भी अनित्यता = क्षय-धर्मता = वि-परिणाम-धर्मता ज्ञान प्रवर्ती है । इस क्षुद्र कायाका तो क्या ( कहना है ) ? तृष्णासं कैंसा ( = तण्डुपादिण ) जिसे ‘मैं’, ‘मेरा’ या ‘मैं हूँ’ ( कहता ) ; वही इसकी नहीं होती ।

“मिथुसो ! जब दूसरे आलोष = परिहास = रोष = पीड़ा देते हैं, तो वह समझता है— ‘यह उत्पन्न दुःस्वरूप-वेदना ( = अनुभव ) मुझे ओत्रके सम्बन्ध ( = संस्पर्श ) से उत्पन्न हुई है । और यह कारणसे ( उत्पन्न हुई है ) अ-कारणसे नहीं । किस कारणसे ?—स्पर्शके कारण । ‘स्पर्श अनित्य है’—यह वह देखता है । ‘वेदना अनित्य है’ ० ‘संज्ञा अनित्य है’ ० । ‘संस्कार अनित्य है’ ० । ‘विज्ञान अनित्य है’ ० । उसका चित्त धातु ( = पृथिवी ) रूपी विषयसे पृथक्, प्रसन्न ( = स्वच्छ ), स्थिर, विमुक्त होता है । उस मिथुके साथ आवुसो ! यदि दूसरे, हाथके योग ( = संस्पर्श ) से, डेढेके योगसे, दंडके योगसे, शस्त्रके योगसे अन्-इष्ट = अ-कामत = अ-समाप ( व्यवहार ) से वर्ताव करते हैं । वह यह जानता है—कि ‘यह इस प्रकारकी काया है, जिसमें पाणि-संस्पर्श भी लगते हैं, डेढेके संस्पर्श भी ०, दंडके संस्पर्श भी ०, शस्त्रके संस्पर्श भी ० । भगवान्ने ककच्चोपम ( = आराले समान ) अववाद ( = उपदेश ) में कहा है—‘मिथुसो ! यदि चोर डाकू ( = ओचरक = टुचका ) दोनों ओर दूतेवाले आरसे भी एक एक अंग काटें, वहाँपर भी जो मनको दूषित करे, वह मेरे शासन ( = उपदेश ) ( के अनुकूल आचरण ) करनेवाला नहीं है ।’ मेरा वीर्य ( = इशारे ) चलता रहेगा, विस्मरण-रहित स्मृति मेरी उपस्थित ( रहेगी ), काया स्थिर ( = प्रश्रब्ध ) अ-चंचल ( = अ-भारद ), चित्त समाहित = एकाम्र ( रहेगा ) । चाहे इस कायामें पाणि-संस्पर्श हो, डेढा घारना हो, डण्डा पड़े, शस्त्र लगे, ( किंतु ) दुर्दोका उपदेश ( पूरा ) करना ही होगा ।’

“आवुसो ! उस मिथुको, इस प्रकार बुद्धको याद करते, इस प्रकार धर्मको याद करते, इस प्रकार संघको याद करते, कुशल-संयुक्त ( = निर्मल ) उपेक्षा जब नहीं ठहरती । वह उससे उदास होता है, संवेगको प्राप्त होता है—‘अहो ! अ-लाम है मुझे, मुझे लाम नहीं हुआ, मुझे दुर्लाम है, सुलाम नहीं हुआ, जो मुझे इस प्रकार बुद्ध-धर्म-संघको स्मरण करते कुशल-युक्त उपेक्षा नहीं ठहरती, जैसे कि आवुसो ! यह ( = सुणिता ) ससुरको देखकर संविभ्र होती है, संवेगको प्राप्त होती है । इसी प्रकार आवुसो ! उस मिथुको ऐसे बुद्ध-धर्म-संघ ( के गुणों ) को याद करते कुशल-संयुक्त उपेक्षा नहीं ठहरती, वह उससे ० संवेगको प्राप्त ( = उदास ) होता है—मुझे अलाम है ० । आवुसो ! उस मिथुको यदि इस प्रकार बुद्ध-धर्म-संघको अनुस्मरण करते कुशल-युक्त उपेक्षा ठहरती है, तो वह उससे समुप होता है । इतनेसे भी आवुसो ! मिथुने बहुत कर लिया ।

“क्या है आवुसो ! आप-धातु ?—आप ( = जल )-धातु दो होती है, आध्यात्मिक और बाहरी । आवुसो ! आध्यात्मिक आप-धातु क्या है ?—जो शरीरमें प्रतिशरीरमें पानी, या पानीका ( पदार्थ ) है, जैसे कि पित्त, श्लेष्म ( = कफ ), पीष, लोह, स्वेद ( = पसीना ), मेद, अशु, कसा ( = चर्बी ), रास, नासिका-मल, कर्ण-मल ( = लसिका ), मूत्र, और जो कुछ और भी शरीरमें पानी या पानीका है । आवुसो ! यह आप-धातु कही जाती है । जो आध्यात्मिक आप-धातु है, और जो बाहरी आप-धातु है, वह आप-धातुही है । ‘यह मेरा नहीं’, ‘यह मैं नहीं’, ‘यह मेरा आत्मा नहीं’—इस प्रकार इसे यथार्थ जानकर, देखना चाहिये । इस प्रकार यथार्थतः

अच्छी तरह, जानकर, देखकर, आप-धातुसे निर्वेदको प्राप्त (= उदास ) होता है। आप-धातुसे चित्तको विरक्त करता है।

“आबुसो ! ऐसा भी समय होता है, जब कि बाह्य आप-धातु प्रकुपित होती है। वह गाँवको भी, निगमको भी, नगरको भी, जनपदको भी, जनपद-प्रदेशको भी बहा देती है। आबुसो ! ऐसा समय होता है, जब महासमुद्रमें सौ योजन, दो सौ योजन, सात सौ योजनके भी पानी जाते हैं। आबुसो ! सो भी समय होता है, जब महासमुद्रमें सात ताल, छः ताल, पाँच ताल, चार ताल, तीन ताल, दो ताल, तालभर भी पानी होता है। आबुसो ! सो समय होता है, जब महासमुद्रमें सात पोरिसा (= पुरुष-परिमाण ), ० पोरिसा भर पानी रह जाता है। ० जब महासमुद्रमें आप-पोरिसा, कमर भर, जाँघ भर, खुदी भर पानी ठहरता है। ० जब महासमुद्रमें अंगुलिके पोर घोंते भरके लिये भी पानी नहीं रह जाता। आबुसो ! उस इतनी बड़ी बाह्य आप-धातुकी अनित्यता ० । ० । आबुसो ! इतनेसे भी भिक्षुने बहुत किया।

“आबुसो ! तेज-धातु क्या है ?—तेज-धातु है आध्यात्मिक और बाह्य। आबुसो ! आध्यात्मिक तेज-धातु क्या है ?—जो शरीरमें प्रतिशरीरमें तेज (= अग्नि ) या तेजका है; जैसे कि—जिससे संतप्त होता है, ज्वरित होता है, परिदुग्ध होता है, खाया पीया अच्छी प्रकार हजम होता है; या जो कुछ और भी शरीरमें, प्रति-शरीरमें, तेज या तेज-विषय है। यह कहा जाता है आबुसो ! तेज-धातु। जो यह आध्यात्मिक (= शरीरमेंकी ) तेज-धातु है, और जो कि यह बाह्य तेज-धातु है, यह तेज-धातु ही है। ‘न यह मेरी है’, ‘न यह मैं हूँ’, ‘न यह मेरा आत्मा है’—इस प्रकार इसे यथार्थ जानकर देखना चाहिये। इस प्रकार इसे यथार्थतः जानकर, देखनेसे तेज-धातुसे निर्वेदको प्राप्त होता है, तेज-धातुसे चित्तको विरक्त करता है। ० ।

“आबुसो ! ऐसा समय ( भी ) होता है, जब बाह्य तेज-धातु कुपित होती है। वह गाँव, निगम, नगर ० को भी जलाती है। वह हरियाली महामार्ग (= पन्थान ), या झील या पानी ( या ) भूमि-भागको प्राप्त हो, आहार न पा हुआ जाती है। आबुसो ! ऐसा भी समय होता है, जब कि इसे सुर्गाके पर भर भी, चमकेके छिलके भर भी ढँके हैं। आबुसो ! उस इतने बड़े तेज-धातुकी अनित्यता ० । ० । आबुसो ! इतनेसे भी भिक्षुने बहुत किया।

“आबुसो ! वायु-धातु क्या है ?—वायु-धातु आध्यात्मिक भी है, बाह्य भी। आध्यात्मिक वायु-धातु कौन है ?—जो शरीरमें प्रति-शरीरमें वायु या वायुका ( पदार्थ ) है, जैसे कि ऊर्ध्वगामी वात, अधोगामी वात (= हवा ), कुक्षि (= पेट ) के वात, कोठेंमें रहनेवाले वात, अङ्ग प्रत्यङ्गमें अनुसरण करनेवाले वात, या आध्यात्म-प्रवास, और जो कुछ और भी ० । यह आबुसो ! आध्यात्मिक वायु-धातु । ० कहा जाता है।

“आबुसो ! ऐसा समय भी होता है, जब कि बाह्य वायु-धातु कुपित होती है, वह गाँवको भी ० उड़ा ले जाती है। आबुसो ! ऐसा समय ( भी ) होता है, जब ग्रीष्मके पिछले महीनेमें तालका पंखा हुआकर भी हवाको खोजते हैं, ‘आबुसो ! इस इतनी बड़ी वायुधातु ० । इस भिक्षुको यदि आकाश ० । ० ’ इतनेसे आबुसो ! भिक्षुने बहुत कर लिया।

“जैसे, आबुसो ! काष्ठ, धल्ली, तृण और मृत्तिकासे चिरा आकाश घर कहा जाता है; ऐसेही आबुसो ! अस्थि, स्नायु, मांस और चर्मसे चिरा आकाश, रूप (= मूर्ति=शरीर ) कहा जाता है। ( जब ) आध्यात्मिक ( शरीरमेंकी ) आँख अ-विकृत होती है, ( किन्तु ) बाह्य रूप सामने नहीं आते; ( तो ) उनसे समन्वाहार (= मनसिकार-पूर्वक विषय-ज्ञान ) उत्पन्न नहीं होता; उनसे उत्पन्न विज्ञान-भाग प्रादुर्भूत नहीं होता। जब आबुसो ! शरीरमेंकी आँख अ-विकृत होती



है, बाह्य रूप सामने आते हैं, तो उनसे विषय-ज्ञान उत्पन्न होता है, इस प्रकार उनसे उत्पन्न (स्कन्धके) विज्ञान-भागका प्रादुर्भाव होता है।

“जो अक्षु-विज्ञानके साधका रूप है, वह रूप-उपादान-स्कन्ध गिना जाता है। जो वेदना है, वेदना-उपादान-स्कन्ध गिना जाता है। ० संज्ञा ० संज्ञा-उपादान-स्कन्ध ०। ० संस्कार ० संस्कार-उपादान-स्कन्ध ०। ० विज्ञान ० विज्ञान-उपादान-स्कन्ध ०। सो इस प्रकार जानता है—इस प्रकार इन पाँचों उपादान-स्कन्धोंका संग्रह=सन्निपात=समवाय होता है। यह भगवान् ने भी कहा है—‘जो प्रतीत्य-समुत्पादको देखता (=साक्षात् करता) है, वह धर्मको देखता है; जो धर्मको देखता है, वह प्रतीत्य-समुत्पाद (=कार्य कारणसे सभी चीज़ोंको उत्पत्ति) को देखता है। यह प्रतीत्य-समुत्पन्न (=कारण करके उत्पन्न हैं) जो कि यह पाँच उपादान-स्कन्ध हैं। जो इन पाँच उपादान-स्कन्धोंमें जन्म (=हृदि)=आलय=अनुनय=अध्यवसान है, वही दुःख समुदय है। जो इन पाँच उपादान-स्कन्धोंमें जन्म राग का हृदया, भोगना है, वह दुःख निरोध है। इतनेसे भी आबुसो ! मिथुने बहुत किया। ०।

“आबुसो ! यदि आध्यात्मिक (=शरीरमेंका) ओम्र न-विकृत होता है। ०। ० ब्राह्म ०। ० विद्या ०। ० काम ०। ० मन ०। इतनेसे भी, आबुसो ! मिथुने बहुत किया। ०।”

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा। सन्तुष्ट हो उन मिथुनोंने आयुष्मान् सारिपुत्रके माथणको अनुमोदित किया।

## २६-महा-सारोपम-मुत्तन्त ( १।३।६ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय, देवदत्तके निकल जानेके भोवें ही समय याद भगवान् राजगृहमें गृध्रकूट-पर्वत पर विहार करते थे ।

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको देवदत्तके संबंधमें सम्बोधित किया ।

“भिक्षुओ ! कोई कुलपुत्र अर्द्धापूर्वक करते बेचर हो प्रमज्जित (= संन्यासी ) होता है—‘मैं जन्म, जरा, मरण, शोक, रोदन, कंदन, दुःख = दुर्मनस्कता, परेशानीमें पड़ा हुआ हूँ । दुःखमें पड़ा, दुःखसे किस मेरे लिये क्या कोई इस केवल (= ज्वालित ) दुःख-स्कंध (= दुःखपुंज ) के अन्त करनेका उपाय है ?’ वह इस प्रकार प्रमज्जित हो, लाभ, सत्कार, श्लोक (= प्रशंसा ) का भागी होता है । उस लाभ, सत्कार, श्लोकसे संतुष्ट हो ( अपनेको ) परिपूर्ण-संकल्प समझता है । वह उस लाभ, सत्कार, श्लोकसे अपने लिये अभिमान करता है और दूसरेको नीच समझता है—‘मैं लाभवाला, सत्कारवाला, श्लोकवाला हूँ और वह दूसरे भिक्षु अप्रसिद्ध शक्ति-हीन है । वह उस लाभ, सत्कार, श्लोकसे भतवाला होता है, प्रमादी बनता है, प्रमाद (= मूल ) करने लगता है । प्रमत्त हो दुःखमें पड़ता है ।

“ऐसे भिक्षुओ ! सार चाहनेवाला = सारगवेपी पुरुष, सार (= हीर ) की भोजमें धूमता हुआ एक सारवाले महान् वृक्षके रहते, उसके सारको छोव, फल्यु को छोव, छालको छोव, पपड़ीको छोव, शाखा पत्तेको काट, ‘यही सार है’—समझ लेकर चला जाए । उसको आँखवाला पुरुष देखकर ऐसा कहे—‘हे पुरुष ! आपने सारको नहीं समझा, फल्युको नहीं समझा, छालको नहीं समझा, पपड़ीको नहीं समझा, शाखा-पत्तेको नहीं समझा, जो कि आप सार चाहनेवाले, सार-गवेपी ० ‘यही सार है’—समझ ले जा रहे हैं । सारले जो काम करना है वह ..... इससे न होगा’ । ऐसे ही भिक्षुओ ! वहाँ एक कुल-पुत्र ० दुःखमें पड़ता है । भिक्षुओ ! इसे कहते हैं कि भिक्षुने अर्द्धार्थके शाखा-पत्तेको ग्रहण किया और उतने ही से ( अपने कूल्हको ) समाप्त कर दिया ।

“यहाँ भिक्षुओ ! कोई कुल-पुत्र अर्द्धासे ० वह इस प्रकार प्रमज्जित हो, लाभ, सत्कार श्लोकका भागी होता है । ( किन्तु ) वह उस लाभ, सत्कार, श्लोकसे संतुष्ट नहीं होता ( अपने को ) परिपूर्ण-संकल्प नहीं समझता । वह उस लाभ, सत्कार, श्लोकसे न अपने लिये धर्मद करता है, न दूसरों को नीच समझता है । वह उस लाभ, सत्कार, श्लोकसे, भतवाला नहीं होता, प्रमादी नहीं होता, प्रमादमें किस नहीं होता ! प्रमादरहित हो शील (= सदाचार ) का आराधन

१ हीर और छिलकेके नीचका काष्ठ ।



करता है। उस नीलके आराधनसे संतुष्ट होता है। (अपनेको) पूर्ण-संकल्प समझता है। वह उस शील-संपदासे अपने लिये अभिमान करता है और दूसरोंको नीच समझता है—'मैं शीलवान् (= सदाचारी), कल्याण-धर्मा (= पुण्यात्मा) हूँ और वे दूसरे भिक्षु दुराचारी, पापधर्मा हैं'। वह उस शीलकी संपदासे मतवाला हो जाता है, प्रमादी होता है, प्रमादमें लिस होता है, प्रमादी होकर दुःखित होता है।

"जैसे भिक्षुओ! सारका चाहनेवाला, सारका खोजी, पुरुष सारकी तलाशमें फिरते (धूमते हुए) • फलु छोड़कर छाल और पपवीको काटकर—'यही सार है'—समझ लेकर चला जाय। उसको आँखवाला पुरुष देखकर ऐसा कहे—आप सारको नहीं समझे, नहीं फलुको समझे, नहीं छालको समझे, नहीं पपवीको समझे, नहीं ज्ञाना-पत्रको समझे। यह आप सार चाहनेवाले • लेकर जा रहे हैं; • ऐसेही भिक्षुओ! यहाँ कोई कोई कुल-पुत्र • दुःखित होता है। यह कहा जाता है भिक्षुओ! कि भिक्षुने ब्रह्मचर्यकी पपवीको ग्रहण किया, उसीसे (अपने कृतकी) समाप्ति कर दी।

"और भिक्षुओ! कोई कुल-पुत्र • लाभ सत्कार इलाक़से संतुष्ट न हो • वह उस शील-संपदासे नहीं मतवाला होता • प्रमाद-रहित हो • उस समाधिकी संपदासे संतुष्ट होता है (अपनेको) परिपूर्ण-संकल्प समझता है। वह उस समाधि-संपदासे अपने लिये अभिमान करता है और दूसरोंको नीच समझता है—'मैं समाधि-युक्त-चित्तवाला हूँ, पक्का चित्त हूँ, किन्तु वे, दूसरे भिक्षु समाधिरहित, विक्षिप्त-चित्तवाले हैं। वह उस समाधि-संपत्तिसे मतवाला होता है • प्रमादी हो दुःखित होता है। जैसे भिक्षुओ! सार चाहनेवाला • सार (= हीर) को छोड़कर फलु और छालको काटकर, यही सार है—समझ लेकर चला जाय। उसको आँखवाला पुरुष • ऐसे ही भिक्षुओ! यहाँ कोई कुल-पुत्र • दुःखी होता है। यह कहा जाता है भिक्षुओ! कि भिक्षुने ब्रह्मचर्यकी छालको ही ग्रहण किया •।

"और भिक्षुओ! कोई कुल-पुत्र • वह उस समाधि-संपदासे नहीं मतवाला होता • प्रमाद-रहित हो ज्ञान-दर्शन (= सत्त्व-साक्षात्कार) का आराधन करता है। वह उस ज्ञान-दर्शनसे संतुष्ट होता है, परिपूर्ण-संकल्प (समझता है)। वह ज्ञान-दर्शनसे अपने लिये अभिमान करता है, दूसरोंको नीच समझता है—'मैं ज्ञानता देखता (= सत्त्व-साक्षात्कार करता) विहरता हूँ', किन्तु, वे दूसरे भिक्षु न जानते, न देखते विहरते हैं वह उस ज्ञान-दर्शनसे मतवाला होता है • दुःखी होता है। जैसे भिक्षुओ! सार चाहनेवाला • सारको छोड़कर फलुको काट, यही सार है—समझ लेकर चला जाय। • ऐसेही भिक्षुओ! यहाँ कोई कुल-पुत्र • दुःखित होता है। यह कहा जाता है भिक्षुओ! कि भिक्षुने ब्रह्मचर्यके फलुको ग्रहण किया •।

"और भिक्षुओ! कोई कुल-पुत्र • वह उस ज्ञान-दर्शनसे संतुष्ट होता है, किन्तु, परिपूर्ण संकल्प नहीं होता। वह उस ज्ञान-दर्शनसे न अपने लिये अभिमान करता है, और न दूसरोंको नीच समझता है। वह उस ज्ञान-दर्शनसे मतवाला नहीं होता; प्रमाद नहीं करता..... प्रमाद-रहित हो अकालिक (= सद्यः प्राप्य) मोक्षको आराधित करता है। भिक्षुओ! यह संभव नहीं, इसका अवकाश नहीं, कि वह भिक्षु उस अकालिक मोक्षसे च्युत होवे। जैसे भिक्षुओ! सार चाहनेवाला • सारको ही काटकर 'यही सार है'—समझ ले जाये। उसे आँखवाला पुरुष देखकर यह कहे—'अहो! आपने सारको समझा है • ज्ञाना-पत्रको समझ लिया है; सो यह आप सार चाहनेवाले = सार-गोषो, सारकी खोजमें धूमते, सारवाले महान् वृक्षके फले रहते सारको ही—'यह सार है' (समझ), काटकर ले जा रहे हैं। जो इन्हें सारसे काम लेना है वह मतलब पूरा

होगा । ऐसेही भिक्षुओं । यहाँ कोई कुल-पुत्र ० उस अकालिक मोक्षसे च्युत होवे ।

“इस प्रकार भिक्षुओं ! यह ब्रह्मचर्य लाभ, सात्कार, श्लोक पानेके लिये नहीं है । शील-संपत्तिके लाभके लिये नहीं है, न समाधि-संपत्तिके लाभ लिये है, न ज्ञान-दर्शन (= तत्त्वके ज्ञान और साक्षात्कार) के लाभके लिये है । भिक्षुओं ! जो यह न च्युत होनेवाली वित्तकी सुक्ति है, इसीके लिये यह ब्रह्मचर्य है । यही सार है, यही अन्तिम निष्कर्ष है ।”

भगवान् ने यह कहा, संतुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान् के भाषणको अभिर्नन्दित किया ।



## ३०-चूल-सारोपम-सुत्तन्त ( १।३।१० )

प्रेता म्रिने सुता—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आश्रम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब पिंगलकोच्छ ब्राह्मण, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्के साथ.....  
( कुशल प्रश्न पूछ ) एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे पिंगलकोच्छ ब्राह्मणने भगवान्से यह कहा—

“भो मौलस ! जो वह संचपति = गण-पति ज्ञात, यशस्वी तीर्थंकर (= मतस्थापक ) हैं, जैसे कि—पूर्ण काश्यप, मकखल्ली गोसाल, अजित केश-कम्बली, प्रकुघ कात्यायन, संजय वैलट्टि-पुत्त, निगंठ नात-पुत्त, सभी अपनी प्रतिज्ञा (= मत ) को समझते हैं; या सभी नहीं समझते या कोई कोई समझते हैं; कोई कोई नहीं समझते ?”

“यस ब्राह्मण ! रहने दे इसे—‘सभी अपने ० नहीं समझते ।’ ब्राह्मण तुझे धर्मका उपदेश करता हूँ, उसे सुन अच्छी तरह मनमें कर, कहता हूँ ।”

“अच्छा, भो !”—( कह ) पिंगलकोच्छ ब्राह्मणने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“जैसे ब्राह्मण ! सार चाहनेवाला पुरुष ०<sup>१</sup> शाखापत्रको काट, यही सार है—समझ लेकर चला जाय । तो सार (= हीन ) से जो काम करता है, वह उससे न होगा ।

“जैसे कि ब्राह्मण ! सार चाहनेवाला पुरुष ०<sup>२</sup> ठालको काटकर—‘यही सार है’—समझ लेकर चला जाय; तो सारसे जो काम करता है वह उससे न होगा ।

“जैसे ब्राह्मण ! ०<sup>३</sup> पपवीको काटकर, यही सार है—समझ लेकर चला जाय । ० ।

“जैसे ब्राह्मण ! ०<sup>४</sup> कलुको काटकर, यही सार है—समझ लेकर चला जाय । ० ।

“जैसे ब्राह्मण ! ०<sup>५</sup> सारको ही काट कर ‘यही सार है’—समझ ले जाय । उसे आँसू वाला पुरुष देख कर यह कहे—अहो ! आपने सारको समझा है ०<sup>६</sup> सारसे जो काम आपको करना है वह इससे होगा ।

“ऐसे ही ब्राह्मण ! कोई पुरुष श्रद्धापूर्वक घरसे बेघर हो प्रमत्तित होता है ०<sup>७</sup> वह उस लाभ, सत्कार, श्लोकसे संतुष्ट हो अपनेको परिपूर्ण-संकल्प समझता है । वह उस लाभ, सत्कार श्लोकसे अपने लिये अभिमान करता है, और दूसरेको नीच समझता है—मैं लाभ-सत्कार श्लोक वाला हूँ, और वे दूसरे भिक्षु अप्रसिद्ध, शक्ति-हीन हैं । वह उस लाभ, सत्कार श्लोकके कारण,

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ १२२ । <sup>२</sup> देखो पृष्ठ १२२ । <sup>३</sup> देखो पृष्ठ १२२ । <sup>४</sup> देखो पृष्ठ १२२ ।

<sup>५</sup> देखो पृष्ठ १२२ । <sup>६</sup> देखो पृष्ठ १२२ ।

जो दूसरे उत्तम=प्रणीततर पदार्थ (= धर्म ) हैं, उनके साक्षात्कारके लिये रुचि नहीं उत्पन्न करता, उद्योग नहीं करता, आलसी और शिथिल होता है। जैसे ब्राह्मण ! वह सार चाहने वाला ० शाखा पत्र को ० लेकर चला जाय ० वह बात उससे न हो। उसीके समान, ब्राह्मण ! मैं इस मनुष्यको कहता हूँ ।

“और फिर ब्राह्मण ! यहाँ कोई पुरुष अज्ञापूर्वक ०<sup>१</sup> वह उस शीलका आराधन करता है, वह उस शील-संपदासे अपने लिये अभिमान करता है ०<sup>२</sup> वह उस शील-संपदाके कारण जो दूसरे उत्तम ० पदार्थ हैं, उनके साक्षात्कारके लिये रुचि नहीं उत्पन्न करता, उद्योग नहीं करता ० । जैसे ब्राह्मण ! वह सार चाहनेवाला ० छालको ० लेकर चला जाय ० वह इससे न होगा । उसीके समान ब्राह्मण ! मैं इस मनुष्यको कहता हूँ ।

“और फिर ब्राह्मण ! कोई पुरुष अज्ञापूर्वक ०<sup>३</sup> वह न उस शील-संपदासे अपने लिये अभिमान करता है न दूसरेको नीच समझता है । शील-संपदासे जो उत्तम=प्रणीततर पदार्थ हैं, उनके साक्षात्कारके लिये रुचि उत्पन्न करता है, उद्योग करता है, आलसी नहीं होता, शिथिल नहीं होता । ( और ) वह समाधि-संपदाका आराधन करता है । वह उस समाधि-संपदासे सन्तुष्ट होता है; ( अपनेको ) परिपूर्ण-संकल्प समझता है ०<sup>४</sup> विश्रान्त-चित्त है । समाधि-संपदा से जो दूसरे पदार्थ उत्तम=प्रणीततर हैं, उनके साक्षात्कार करनेके लिये रुचि नहीं उत्पन्न करता ० । जैसे ब्राह्मण ! वह सार चाहने वाला ० पपड़ीको ० लेकर चला जाय ० वह बात इससे न हो । उसीके समान ब्राह्मण ! मैं इस मनुष्यको कहता हूँ ।

“और फिर ब्राह्मण ! कोई पुरुष अज्ञापूर्वक ०<sup>५</sup> वह उस समाधि-संपदासे न अपने लिये अभिमान करता है ० । समाधि संपदासे जो उत्तम ० पदार्थ हैं, उनके साक्षात्कारके लिये रुचि उत्पन्न करता है ० । ( और ) वह ज्ञान-दर्शनका आराधन करता है । वह उस ज्ञान-दर्शनसे सन्तुष्ट होता है ० । जैसे ब्राह्मण ! वह सार चाहनेवाला पुरुष ० फल्लुको ० लेकर चला जाय ० उसीके समान ब्राह्मण ! मैं इस मनुष्यको कहता हूँ ।

“और फिर ब्राह्मण ! कोई पुरुष अज्ञापूर्वक ०<sup>६</sup> वह उस ज्ञान-दर्शनसे सन्तुष्ट होता है । किन्तु परिपूर्ण-संकल्प नहीं समझता । वह उस ज्ञान-दर्शनसे न अपने लिये अभिमान करता है न दूसरेको नीच समझता है । उस ज्ञानदर्शनसे जो दूसरे पदार्थ उत्तम ० हैं; उनके साक्षात्कारके लिये रुचि उत्पन्न करता है ० ।

“ब्राह्मण ! कौनसे पदार्थ ज्ञान-दर्शनसे उत्तम=प्रणीततर हैं ?—ब्राह्मण ! ०<sup>७</sup> प्रथम-ध्यान को प्राप्त हो विहरता है । ब्राह्मण ! यह पदार्थ भी ज्ञान-दर्शनसे उत्तम ० है । और फिर ब्राह्मण ! ०<sup>८</sup> द्वितीय-ध्यानको ० । ०<sup>९</sup> तृतीय-ध्यानको ० । ०<sup>१०</sup> चतुर्थ-ध्यानको ० । ०<sup>११</sup> आकाशा नन्त्यायतनको ० । ०<sup>१२</sup> विज्ञानानन्त्यायतनको ० । ०<sup>१३</sup> आकिञ्चन्यायतनको ० । ०<sup>१४</sup> मैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनको ० । ०<sup>१५</sup> संशोवेदित-निरोधको प्राप्त हो विहरता है । प्रज्ञासे देखकर उसके आत्मत्व (= चित्तमत्त्व ) नष्ट होते हैं । ब्राह्मण ! यह पदार्थ भी ज्ञान-दर्शनसे उत्तम ० है । जैसे ब्राह्मण ! सार चाहनेवाला ०<sup>१६</sup> सारको ही काट कर, ‘यही सार है’—तमझ ले जाये । जो उसे सारसे काम करता है वह उसका होगा । ब्राह्मण ! उसीके समान मैं इस पुरुषको कहता हूँ ।

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ १२४ ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ १५ ।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ २७, २८, ११० ।

<sup>४</sup> देखो पृष्ठ १२२ ।



“इस प्रकार ब्राह्मण ! यह ब्रह्मचर्य लाभ ०<sup>१</sup> के लिये नहीं है । ब्राह्मण ! जो यह नष्ट होने वाली वित्त की मुक्ति है, इसीके लिये यह ब्रह्मचर्य है, यही सार है, यही अन्तिम निष्कर्ष है ।”

ऐसा कहने पर पित्रालकोच्छ ब्राह्मणने भगवान्से यह कथा—

“ब्रह्मचर्य भो गौतम ! ०<sup>१</sup> आजसे आप गौतम मुझे अञ्जलि-व्रत धारणामत उपासक स्वीकार करें ।”

३—( इति ) ओपम्मवग्गा ( ११३ )

## ३१-चूल-गोसिङ्ग-सुचन्त (१।४।१)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् नादिक<sup>१</sup> के गिंजकावस्थथमें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् नन्दिय, आयुष्मान् किम्बिल, गोसिङ्ग-सालवनदायमें विहार करते थे।

तब भगवान् सायंकालको एकान्तचिन्तनसे उठकर जहाँ गोसिङ्ग सालवनदाय था, वहाँ गये। दावपालक (= वनपाल) ने दूरसे ही भगवान्को आते देखा। देख कर भगवान्से कहा—

“महाश्रमण ! इस दावमें प्रवेश मत करो। यहाँपर तीन कुलपुत्र यथाकाम (= मौजसे) विहर रहे हैं। इनको तकलीफ मत दो।”

आयुष्मान् अनुरुद्धने दाव-पालको भगवान्के साथ बात करते सुना। सुन कर दाव-पालसे यह कहा—

“आयुस ! दाव-पाल ! भगवान्को मत मना करो। हमारे शास्ता भगवान् आये हैं।”

तब आयुष्मान् अनुरुद्ध जहाँ आयुष्मान् नन्दिय और आयु० किम्बिल थे, वहाँ गये। जाकर बोले—

“आयुष्मानो ! चलो आयुष्मानो ! हमारे शास्ता भगवान् आ गये।”

तब आयुष्मान् अनुरुद्ध, आ० नन्दिय, आ० किम्बिलने भगवान्की आज्ञाकारी कर, एकने पात्र-बीवर ग्रहण किया, एकने आसन बिछाया, एकने पादोदक रक्खा। भगवान्ने बिछाये आसन पर बैठ पैर धोया। वे भी आयुष्मान्, भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् अनुरुद्धको भगवान्ने कहा—

“अनुरुद्धो ! लम्बीय तो है ? = बापनीय तो है ? पिङ्के लिये तो तुम लोग तकलीफ नहीं पाते ?”

“लम्बीय है भगवान् ! ० ”

“अनुरुद्धो ! क्या एक चित्त, परस्पर मोद-सहित, दूध-पानी हुए, परस्पर प्रिय दृष्टिसे देखते, विहरते हो ?”

“हाँ भन्ते ! हम एक-चित्त ० ।”

“तो कैसे अनुरुद्धो ! तुम एक-चित्त ० ?”

“भन्ते ! मुझे यह विचार होता है—‘मेरे लिये काम है’ ‘मेरे लिये सुख प्राप्त हुआ है’ जो ऐसे स-ब्रह्मचारियों (= गुरु भाइयों) के साथ विहरता हूँ भन्ते ! इन आयुष्मानोंमें मेरा कायिक कर्म अन्दर और बाहरसे मिश्रतापूर्ण होता है, वाचिक कर्म अन्दर और बाहरसे मिश्रतापूर्ण

<sup>१</sup> संभवतः वर्तमान जेवरदीह, मसरल ( जि० सारन ) ।



होता है, मानसिक कर्म अन्दर और बाहर ० । तब भन्ते ! मुझे यह होता है—क्यों न मैं अपना मन हटाकर, इन्हीं आयुष्मानोंके चित्तके अनुसार चर्तूँ । तो भन्ते ! मैं अपने चित्तको हटा कर इन्हीं आयुष्मानोंके चित्तोंका अनुवर्तन करता हूँ । भन्ते ! हमारा शरीर नाना है किन्तु चित्त एक... ।”

आयुष्मान् नन्दिपने भी कहा—“भन्ते ! मुझे यह होता है ० ।”

आयुष्मान् किम्बिलने भी कहा “भन्ते ! मुझे यह ० ।”

“साधु, साधु, अनुरुद्धो ! अनुरुद्धो ! क्या तुम प्रमाद-रहित, आलस्य-रहित, संयमी हो, विहरते हो ?”

“भन्ते ! हाँ ! हम प्रमाद-रहित ० ।”

“साधु, साधु, अनुरुद्धो ! क्या अनुरुद्धो ! इस प्रकार प्रमाद-रहित उद्योगी और एकाम चित्त हो विहरते, तुम्हें उत्तर-मनुष्य धर्म (= दिव्य-शक्ति =) अलमार्य-ज्ञान-दर्शन सुखपूर्वक विहार करना प्राप्त हुआ ?”

“क्या होगा भन्ते ! हमें ?—यहाँ हम भन्ते ! यथेच्छ ०<sup>१</sup> प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरते हैं । भन्ते ! प्रमाद-रहित ० विहरते यह उत्तर-मनुष्य-धर्म ० प्राप्त हुआ है ।”

“साधु, साधु, अनुरुद्धो ! किन्तु इस विहारको पार करनेके लिये, इस विहारको शान्त करनेके लिये, क्या अनुरुद्धो ! दूसरा कोई उत्तर-मनुष्य-धर्म प्राप्त हुआ ?”

“क्या होगा भन्ते ! हमें ?—यहाँ हम भन्ते ! यथेच्छ ०<sup>१</sup> द्वितीय ध्यान ० । ०<sup>१</sup> तृतीय ध्यान ० । ०<sup>१</sup> चतुर्थ ध्यान ०<sup>१</sup> आकाशानन्दायतन ० । ०<sup>१</sup> विज्ञानानन्दायतन ० । ०<sup>१</sup> नैक-संज्ञानासंज्ञायतनको प्राप्त हो विहरते हैं । प्रशान्ति देखाकर शान्ति आरम्भ नष्ट हो गये । भन्ते ! इस विहारके अतिश्रमणके लिये, इस विहारको शान्त करनेके लिये, यह दूसरा उत्तर-मनुष्य-धर्म ० प्राप्त हुआ है । भन्ते ! इस सुखपूर्वक विहारसे यह कर उत्तम दूसरे सुख विहारको हम नहीं जानते ।”

“साधु, साधु, अनुरुद्धो ! इस सुख-पूर्वक विहारसे बढ़कर उत्तम दूसरा सुख पूर्वक विहार नहीं है ।”

तब भगवान् आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् नन्दिप, और आयुष्मान् किम्बिलको धार्मिक कथा द्वारा संवर्णित, सुमुत्तेजित, प्रशंसित कर आसनसे उठ कर, चले गये ।

तब आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् नन्दिप, और आयुष्मान् किम्बिल भगवान्को ( कुल दूर ) पहुँचा कर लौट आये । आयुष्मान् नन्दिप और आयुष्मान् किम्बिलने आयुष्मान् अनुरुद्धसे यह कहा—

“क्या हमने आयुष्मान् अनुरुद्धको यह कहा था—‘हम इन इन विहारोंकी पूर्णताको प्राप्त हैं’ जो कि आयुष्मान् अनुरुद्धने भगवान्के सन्मुख हमारे बारेंमें आश्रयोंके श्रवणपर्यन्त ( की बात ) कही ?”

“मुझे आयुष्मानोंने नहीं कहा—‘हम इन इन विहारोंकी पूर्णताको प्राप्त हैं’ किन्तु मैंने आयुष्मानोंके चित्त ( की बात )को अपने चित्तसे जान कर जाना कि, यह आयुष्मान् इन इन विहारोंकी पूर्णताको प्राप्त हैं । देवताओंने मुझे इस बातको बतलाया है—यह आयुष्मान् ० । उसे मैंने भगवान्के प्रदत्त करनेपर कहा ।”

तब दीर्घ-परजन नामक यज्ञ (= देवता ) जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खड़े हुए दीर्घपरजन यज्ञने भगवान्‌से यह कहा—

‘वज्रियो’ को लाभ है। सुन्दर लाभ मिला है, भन्ते ! वजी जनताको, जहाँ कि तब-गत अर्हत्-सम्यक्-सम्बुद्ध विहरते हैं, और आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् नन्दिय, आयुष्मान् किम्बिल—ये तीन कुल-पुत्र भी ( विहरते ) हैं । ०—

दीर्घपरजन यज्ञके शब्दको सुनकर भूमिवासी देवताओंने शब्द किया—वज्रियोंको ० । भूमिवासी देवताओंके शब्दको सुनकर वातुमहाराजिक देवताओंने ० । ० आयस्विंश-देवताओंने ० । ० याम देवताओंने ० । ० तुषित देवताओंने ० । ० निर्माण-रति देवताओंने ० । पर-निर्मित-वशावर्ती देवताओंने ० । ० ब्रह्मा-कायिक देवताओंने ० । इस प्रकार उसी क्षण उसी सुहृत् में यह आयुष्मान् ब्रह्मलोक पर्यन्त विदित हो गये ।—

‘ऐसा ही है दीर्घ ! यह, ऐसा ही है दीर्घ ! यह, क्योंकि दीर्घ ! जिस कुलसे यह तीनों कुलपुत्र घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुए यदि यह कुल भी इन तीनों कुलपुत्रोंको प्रसन्नचित्तसे स्मरण करे तो यह उसके लिये दीर्घ-काल तक हितकर सुखकर होगा । दीर्घ ! जिस कुल-समुदायसे ० । ० जिस ग्रामसे ० । ० जिस निगम (= ऋषये )से ० । ० जिस नगरसे ० । ० जिस जन-पद (= देश )से यह तीनों कुलपुत्र घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुए, यदि यह जनपद भी इन तीनों कुलपुत्रोंको प्रसन्नचित्तसे स्मरण करे, तो यह उसके लिये दीर्घकाल तक हितकर सुखकर होगा ।

‘‘यदि दीर्घ ! क्षत्रिय ० । ० ब्राह्मण ० । ० वैश्य ० । ० शूद्र भी प्रसन्नचित्त ० सुखकर होगा । दीर्घ ! देवता-भार-ब्रह्मा-सहित, अमण-ब्राह्मण, देव-मनुष्य पुत्र सारी प्रजा इन तीनों कुलपुत्रोंका प्रसन्नचित्तसे स्मरण करे; तो देवता-भार-ब्रह्मा-सहित अमण-ब्राह्मण, देव-मनुष्य पुत्र सारी प्रजाके लिये दीर्घकाल तक हितकर, सुखकर होगा । ‘‘क्योंकि यह तीनों कुलपुत्र बहुत जनोके सुखके लिये, बहुत जनोके हितके लिये, लोककी अनुकम्पाके लिये देव-मनुष्योंके अर्थ, हित, सुखके लिये तत्पर हैं ।’’

भगवान्ने यह कहा, संतुष्ट हो दीर्घ-परजन यज्ञने भगवान्‌के भाषणको अभिनन्दित किया ।

१ वक्ती (= वर्तमान मुखपकरपुर और पम्पारनके जिले तथा दरभंगा और सारन जिलोंका कुछ भाग, प्रसन्नचित्तके रहनेवाले ।



## ३२—महा-गोसिंग-मुत्तन्त (१।४।२)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् गोसिंग-साल वनदायमें बहुतसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्वविर (= वृद्ध ) शिष्योंके साथ विहार करते थे, जैसे कि—आयुष्मान् सारिपुत्र, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन, आयुष्मान् महाकाश्यप, आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् रेवत, और आयुष्मान् आनन्द तथा दूसरे भी प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्वविर शिष्योंके साथ । तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन सार्यकाल ध्यानमें बैठकर जहाँ आयुष्मान् महाकाश्यप थे वहाँ गये । जाकर आयुष्मान् महाकाश्यपसे यह बोले—

“चलो आयुस काश्यप ! जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र हैं वहाँ धर्म सुननेके लिये चलो ।”

“अच्छा आयुस !” (कह) आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको उत्तर दिया ।

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन और आयुष्मान् महाकाश्यप और आयुष्मान् अनुरुद्ध वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ धर्म सुननेके लिये गये । आयुष्मान् आनन्दने दूरसे ही आ. महामौद्गल्यायन, आ. महाकाश्यप, और आ. अनुरुद्धको जिकिर आ. सारिपुत्र थे उधर धर्म सुननेके लिये जाते देखा । देखकर जहाँ आयुष्मान् रेवत थे वहाँ गये । जाकर आयुष्मान् रेवतसे यह बोले—

“आयुस ! यह सत्पुरुष जहाँ आ. सारिपुत्र हैं वहाँ धर्म सुननेके लिये जा रहे हैं । चलो आयुस ! जहाँ आ. सारिपुत्र हैं वहाँ हम भी धर्म सुननेके लिये चलो ।”

“अच्छा आयुस !” (कह) आ. रेवतने आ. आनन्दको उत्तर दिया ।

तब आयुष्मान् रेवत और आ. आनन्द जहाँ आ. सारिपुत्र थे वहाँ धर्म सुननेके लिये चले । आयुष्मान् सारिपुत्रने दूरसे ही आ. रेवत और आयुष्मान् आनन्दको जाते देखा । देखकर आ. आनन्दसे कहा—

“आइये आ. आनन्द ! स्वागत है भगवान् के उपस्थाक (= निरंतर-सेवक ) भगवान् के सदा समीप रहनेवाले आनन्दका । आयुस आनन्द ! हमणीय है गोसिंग सालवन । चाँदनी रात है । सारी पीतिथीमें साल फूले हुए हैं । मानो दिव्य गंध बह रहे हैं । आयुस आनन्द ! किस प्रकार के ( मिश्र )से यह गोसिंग सालवन शोभित होगेगा ?”

“आयुस सारिपुत्र ! मिश्र यदि बहुश्रुत, श्रुतधर, श्रुत-संचयी (= सुनी शिक्षाओंका संचय करनेवाला ) हो । जो वह धर्म आदिमें कल्याण, अन्धमें कल्याण और अन्तमें कल्याण रखने वाले, सार्थक स-व्यंजन केवल परिपूर्ण, परिशुद्ध, ब्रह्मचर्यको ब्रह्मचर्यमानेवाले हैं, ऐसे धर्मोंको उस ( मिश्र )ने बहुत सुना हो, धारण किया हो, वचनसे परिचय किया हो, मनसे परमा हो, दृष्टि (= साक्षात्कार )में ऐसा लिया हो; ( ऐसा मिश्र ) चार ( प्रकार )की परिषद्को सर्वान् पूर्ण, पद-व्यंजन-युक्त, स्वतंत्रता पूर्वक धर्म को अनुसंधानों (= चिन्तन )के नाशके लिये उपदेश । आयुस सारिपुत्र ! इस प्रकारके मिश्र द्वारा गोसिंग सालवन शोभित होगा ।”

ऐसा कहने पर आबुसमान् सारिपुत्रने आ. रेवतसे यह कहा—“आबुस रेवत ! आ. आनन्दने अपने विचारके अनुसार कह दिया । अब मैं आ. रेवतसे पूछता हूँ । आ. रेवत रमणोच है गोसिग सालवन । ० आबुस रेवत ! किस प्रकार ( के भिक्षु )से वह गोसिग सालवन शोभित होगा ?”

“यहाँ आबुस सारिपुत्र ! भिक्षु यदि ध्यान-रत, ध्यान-प्रेमी होवे, अपने ( मनके ) भीतर चित्तको एकाग्रतामें तत्पर और ध्यानसे न हटनेवाला, विषयप्रना (= साक्षात्कार किये गये ज्ञान ) से युक्त, शून्य गृहोंको बसानेवाला होवे । आबुस सारिपुत्र ! इस प्रकारके भिक्षुद्वारा गोसिग सालवन शोभित होगा ।”

ऐसा कहने पर आ. सारिपुत्रने आ. अनुबुद्धसे कहा—

“आबुस अनुबुद्ध ! आ. रेवतने अपने विचारके अनुसार कह दिया ० किस प्रकार ( के भिक्षु )से गोसिग सालवन शोभित होगा ?”

“आबुस सारिपुत्र ! भिक्षु अ-मानव विशुद्ध दिव्यचक्षुसे सहस्रों लोकोंको जलजोदन करे, ( वैसे ही ) जैसे कि आबुस सारिपुत्र ! आँखवाला पुरुष महलके ऊपर खड़ा सहस्रों चबूतोंके समुदाय को देखे, वैसेही आबुस सारिपुत्र ! ० दिव्यचक्षुसे सहस्रों लोकोंको देखे । आबुस सारिपुत्र ! ऐसे भिक्षुसे गोसिग सालवन शोभित होगा ।”

ऐसा कहने पर आ. सारिपुत्रने आ. महाकाश्यपसे यह कहा—“आबुस काश्यप ! आ. अनुबुद्धने अपने विचारके अनुसार कह दिया ० ।”

“आबुस सारिपुत्र ! भिक्षु स्वयं आरज्यक (= वनमें रहनेवाला ) हो और अरज्यकताका प्रशंसक हो । स्वयं पिंडपातिक (= मजूकरी भाँगनेवाला ) हो और पिंडपातिकताका प्रशंसक हो । स्वयं पांसुकूलिक (= फेंके बिचकोंको पहिनेवाला ) हो ० । स्वयं त्रैचीवरिक (= सिर्फ तीन चबूतोंको पासमें रखनेवाला ० । स्वयं-अश्लेच्छ ० । स्वयं-संतुष्ट ० । ० अनिविक्त (= एकान्त चिंतन-रत ) ० । ० संसर्गरहित ० । ० उद्योगी ० । ० सदाचारी ० । ० समाधियुक्त ० । ० प्रज्ञा-युक्त ० । ० विमुक्ति-युक्त ० । ० विमुक्तिके ज्ञान-दर्शन (= साक्षात्कार )से युक्त ० । आबुस सारिपुत्र ! इस प्रकारके भिक्षुसे ० ।”

ऐसा कहने पर आ. सारिपुत्रने आ. मौद्गल्यायनसे यह कहा—

“आबुस महामौद्गल्यायन ! आ. महाकाश्यपने अपने विचारके अनुसार कह दिया ० ।”

“आबुस सारिपुत्र ! दो भिक्षु अभिधर्म (= धर्म-संबंधी ) क्या कहें, वह एक दूसरेसे प्रभू पूछें, एक दूसरेके प्रभका उत्तर दें, झिड़ न करें, उनकी क्या धर्म-संबंधी चले । आबुस सारिपुत्र ! इस प्रकारके भिक्षुसे ० ।”

तब आ. महामौद्गल्यायनने आ. सारिपुत्रसे यह कहा—“आबुस सारिपुत्र ! हमने अपने विचारके अनुसार कह दिया । अब हम आ. सारिपुत्रसे पूछते हैं ० ?”

“आबुस मौद्गल्यायन ! एक भिक्षु चित्तको वशमें करता है, ( स्वयं ) चित्तके वशमें नहीं होता । वह जिस विहार (= ध्यान-प्रकार )को प्राप्तकर पूर्वाह्न समय विहरना चाहता है उसी विहारसे पूर्वाह्न समय विहरता है । जिस विहारसे अर्ध्याह्न समय ० । ० सन्या समय ० । जैसे आबुस महामौद्गल्यायन ! किसी राजा या राज-मंत्रीके पास नाना रंगके दुशालोंके करंडक (= वस्त्र ) भरे हों; वह जिस दुशालेको पूर्वाह्न समय धारण करना चाहे उसे पूर्वाह्न समय धारण करे; जिस दुशालेको अर्ध्याह्न समय ० । ० सायंकाल ० । ऐसे ही आबुस महामौद्गल्यायन ! जो भिक्षु चित्तको वशमें करता है स्वयं चित्तके वशमें नहीं होता वह जिस विहारको प्राप्त कर ० । आबुस मौद्गल्यायन ! इस प्रकारके भिक्षुसे ० ।”



तब आ, सारिपुत्रने उन आयुष्मानोंसे यह कहा—

“आवुसो ! हमने अपने विचारोंके अनुसार यह दिया । आओ आवुसो ! जहाँ भगवान् हैं वहाँ चलो । चलकर भगवान्से यह बात कहें । जैसे हमें भगवान् बतलाएँ वैसे उसे धारण करें ।”

“अच्छा आवुस !” ( कह ) उन आयुष्मानोंने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया ।

तब वह आयुष्मान् जहाँ भगवान् थे वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे । आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्से कहा—

“भन्ते ! आ, रेवत और आ, आनन्द जहाँ मैं था वहाँ धर्म सुननेके लिये आये । भन्ते ! मैंने दूरसे ही ० \* । दो भिक्षु अभिधर्म कथा कहें, ० \* ।”

“साधु, साधु, सारिपुत्र ! मौद्गल्यायन ही ठीकसे कथन करेगा क्योंकि सारिपुत्र ! मौद्गल्यायन धर्म-कथिक ( = धर्मका यक्ता ) है ।”

ऐसा कहने पर आ, महामीद्गल्यायनने भगवान्से यह कहा—

“तब मैंने भन्ते ! आ, सारिपुत्रको यह कहा—“आवुस सारिपुत्र । ० \* । ऐसे ही आवुस मौद्गल्यायन ० ।”

“साधु साधु मौद्गल्यायन ! सारिपुत्र ही ठीकसे कथन करेगा क्योंकि मौद्गल्यायन ! सारिपुत्र चित्तको वशमें रखता है । स्वयं चित्तके वशमें नहीं होता । वह जिस विहार ० साधकाल विहरता है ।”

ऐसा कहने पर आ, सारिपुत्रने भगवान्से यह कहा—

“भन्ते ! किसका ( भाषित = कथन ) सुभाषित है ?”

“सारिपुत्र ! तुम सभीका ( भाषित ) एक एक करके सुभाषित है । और मेरी भी सुनो । किस प्रकारके भिक्षुसे गोसिंग सालवन शोभित होगा ?—यहाँ सारिपुत्र ! भिक्षु भोजनके बाद मिष्टा से निश्चटकर, आसन भार शरीरको सीधा रख, स्मृतिको सामने उपस्थित कर, ( यह संकल्प करता है—) मैं तब तक इस आसनको नहीं छोड़ूँगा, जब तक कि मेरे चित्त-मल चित्तको न जोत देंगे । सारिपुत्र ! ऐसे भिक्षुसे गोसिंग सालवन शोभित होगा ।”

भगवान्ने यह कहा । संतुष्ट हो उन आयुष्मानोंने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया ।

## ३३—महा-गोपालक-सुत्तन्त (१४।३)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिटिकके आराम जेतवनमें विहार करी थे ।

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भवन्त !” ( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! ग्यारह बातों ( = अंगों ) से युक्त गोपालक गोप्यकी रक्षाकरनेके अयोग्य है । कौनसे ग्यारह ?—( १ ) गोपालक रूप ( = वर्ण ) का जानने वाला नहीं होता; ( २ ) लक्षण ( = चिह्न ) में भी चतुर नहीं होता; ( ३ ) काली भक्षियोंको हटाने-वाला नहीं होता; ( ४ ) घावका ढाँकनेवाला नहीं होता; ( ५ ) पुत्रों नहीं करता; ( ६ ) तीर्थ ( = जलका उतार ) नहीं जानता; ( ७ ) पानको नहीं जानता; ( ८ ) बीबी ( = इगर ) को नहीं जानता; ( ९ ) चरागाहका जानकार नहीं होता; ( १० ) बिना छोड़े ( ग्यारे ) को दूध लेता है; ( ११ ) जो वह गायोंके पितर गायोंके स्वामी वृषभ ( = सौव ) हैं उनको अधिक पूजा ( = भोज-मादि प्रदान ) नहीं करता । भिक्षुओ ! इन ग्यारह बातोंसे युक्त गोपालक गोप्यकी रक्षाकरनेके अयोग्य है ।

“ऐसेही भिक्षुओ ! ग्यारह बातोंसे युक्त भिक्षु इस धर्म-विनय ( = बुद्धधर्म ) में वृद्धि विरुद्धि-विपुलता पानेके अयोग्य हैं । कौन ग्यारह ?—वहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु ( १ ) रूपका जानने वाला नहीं होता; ( २ ) लक्षणमें भी चतुर नहीं होता; ( ३ ) आस्ताटिकों ( = काली भक्षियों ) को हटाने वाला नहीं होता; ( ४ ) वण ( = घाव ) का ढाँकने वाला नहीं होता; ( ५ ) पुत्रों नहीं करता; ( ६ ) तीर्थ नहीं जानता; ( ७ ) पानको नहीं जानता; ( ८ ) बीबीको नहीं जानता; ( ९ ) गोचर ( = चरागाह ) को नहीं जानता; ( १० ) बिना छोड़े ( = अशेषका ) दूधने वाला होता है; ( ११ ) जो वह इच्छ ( = अनुरक्त ) चिरकालसे प्रयोजित, संघके पितर, संघके नायक स्वविर भिक्षु हैं उन्हें अतिरिक्त पूजासे पूजित नहीं करता ।

“कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु रूपका न जाननेवाला होता ?—वहाँ भिक्षुओ ! जो कोई रूप है, वह सब चार महाभूत ( = पृथ्वी, जल, वायु, तेज ) और चारों भूतोंको लेकर बना है । इसे प्रभार्य से नहीं जानता । इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु रूपका न जानने वाला होता है ।”

“कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु लक्षणमें चतुर नहीं होता ?—वहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु यह प्रभार्यसे नहीं जानता कि कर्मके लक्षण ( = कारण ) से बाल ( = अश्व ) होता है और कर्मके लक्षणसे पंडित होता है । इस प्रकार ० ।

“कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु आस्ताटिकका हटाने वाला नहीं होता ?—वहाँ भिक्षुओ ! भिक्षु उत्पन्न काम ( = भोग-वासना ) के वितर्क का स्वागत करता है, छोड़ता नहीं, हटाना नहीं, भलग नहीं करता, अभावको नहीं प्राप्त करता; उत्पन्न व्यापाद ( = पर-पीडा ) के वितर्कको ०; उत्पन्न



हिंसाके वितर्कको; ० परावर उत्पन्न होती बुराइयों = अकुशल धर्मोंका स्वागत करता है ० । इस प्रकार ० ।

“कैसे भिक्षुजो ! भिक्षु व्रणका ढाँकने वाला नहीं होता है ?—यहाँ भिक्षुजो ! भिक्षु आँख से रूप देखकर उसके निमित्त ( = अनुकूल प्रतिकूल होने ) का ग्रहण करने वाला होता है, अनु-व्यञ्जन ( = पहिचान ) का ग्रहण करने वाला होता है । जिस विषयमें इस चक्षु-इन्द्रियको संयत न रखनेपर लोभ और दोर्मनस्य ( रूपी ) बुराइयों-अकुशल धर्म आ विपद्यते हैं, उससे संयम करनेके लिये तत्पर नहीं होता । चक्षुइन्द्रियकी रक्षा नहीं करता; चक्षुइन्द्रियसे संयम ( = संवर ) में लग्न नहीं होता । श्रोत्रपे शब्द सुनकर ० । घ्राणसे गंध सूँघ कर ० । जिह्वासे रस चख कर ० । कायासे स्पृष्टव्यको स्पर्श कर ० । मनसे धर्मोंको जानकर निमित्तका ग्रहण करनेवाला होता है ० मन-इन्द्रियके संयममें लग्न नहीं होता । इस प्रकार भिक्षुजो ० !

“कैसे भिक्षुजो ! भिक्षु धूमका न कामेवाला होता है ?—यहाँ भिक्षुजो ! भिक्षु सुने अनु-सार, जाने अनुसार, धर्मको दूसरोंके लिये विस्तारसे उपदेश करने वाला नहीं होता, इस प्रकार ० ।

“कैसे भिक्षुजो ! भिक्षु तीर्थको नहीं जानता ?—यहाँ भिक्षुजो ! जो वह भिक्षु बहु-श्रुत, आगम-प्राप्त, धर्म-धर, विनय-धर, मात्रिका-धर, है उनके पास समय समयपर जाकर नहीं पूछता, नहीं प्रश्न करता—भन्ते ! यह कैसे, इसका क्या अर्थ है ? उसके लिये वह आशुभान्, अविवृतको विवृत ( = खोलकर बतलाना ) नहीं करते; अस्पष्टको स्पष्ट नहीं करते अनेक प्रकारके शंका-स्थान वाले धर्मोंमें उठो शंकाका निवारण नहीं करते । इस प्रकार ० ।

“कैसे भिक्षुजो ! भिक्षु पानको नहीं जानता—यहाँ भिक्षुजो ! भिक्षु तथागतके यतज्ञाये धर्म-विनयके उपदेश किये जाते समय ( उसके ) अर्थ-वेद ( = अर्थ-ज्ञान ) को नहीं पाता, धर्म-वेदको नहीं पाता, धर्म संबंधी प्रमोद ( = खुशी ) को नहीं पाता । इस प्रकार ० ।

“कैसे भिक्षुजो ! भिक्षु वीथीको नहीं जानता ?—यहाँ भिक्षुजो ! भिक्षु आर्य-अष्टांगिक मार्गको ठीक ठीक नहीं जानता । इस प्रकार ० ।

“कैसे भिक्षुजो ! भिक्षु गोचरमें कुशल नहीं होता ?—यहाँ भिक्षुजो ! भिक्षु चार स्मृति-प्रस्थानोंको ठीक ठीक नहीं जानता । इस प्रकार ० ।

“कैसे भिक्षुजो ! भिक्षु अशेषका बूढ़नेवाला होता है ?—यहाँ भिक्षुजो ! भिक्षुको अडाल गृहपति वज्र, भिक्षात्र, निवास, आसन, रोगीके ( उपयोगी ) पच्य-भोज्यकी सामग्रियोंसे अच्छी तरह संतुष्ट करते हैं; वहाँ भिक्षु मात्रासे ग्रहण करना नहीं जानता । इस प्रकार ० ।

“कैसे भिक्षुजो ! भिक्षु ० स्वविर भिक्षुजोको अतिरिक्त पूजासे पूजित नहीं करता ?—यहाँ भिक्षुजो ! भिक्षु ० ० जो वह स्वविर भिक्षु है, उनके लिये गुप्त और प्रकट अश्वी-युक्त कायिक कर्म नहीं करता; ० वाचिक कर्म नहीं करता; ० मानस-कर्म नहीं करता । इस प्रकार भिक्षुजो ० ।

“भिक्षुजो ! इन ग्यारह धर्मोंसे युक्त भिक्षु इस धर्म-विनयमें वृद्धि विरुद्धको प्राप्त करनेमें अव्योग्य है ।

“भिक्षुजो ! ग्यारह अंगोंसे युक्त गोपालक गोप्यकी रक्षा करनेके योग्य होता है । कौनसे ग्यारह ?—यहाँ भिक्षुजो ! गोपालक ( १ ) रूपका जानने वाला होता है; ( २ ) लक्षण-कुशल होता है; ( ३ ) आसादिका हटाने वाला होता है; ( ४ ) व्रणका ढाँकने वाला होता है; ( ५ ) धुर्भा करनेवाला होता है; ( ६ ) तीर्थको जानता है; ( ७ ) पीत ( = पान ) को जानता है; ( ८ ) वीथीको जानता है; ( ९ ) गोचर-कुशल होता है; ( १० ) स-शेष बूढ़नेवाला होता है; ( ११ ) जो वह वृषभ ० उन्हें अतिरिक्त पूजासे पूजित करता है । भिक्षुजो ! इन ग्यारह बातोंसे

युक्त गोपालक गोप्यके धारण करने, ध्यानेके योग्य होता है। इसी प्रकार भिक्षुओं ! ग्यारह धर्मोंसे युक्त भिक्षु इस धर्म-विनयमें वृद्धि = विरुद्धि = विपुलता प्राप्त करनेके योग्य है। कौनसे ग्यारह ?—यहाँ भिक्षुओं ! भिक्षु ( १ ) रूपका जानने वाला होता है ० । ( ११ ) जो वह भिक्षु ० उन्हें अतिरिक्त पूजासे पूजित करता है ।

“कैसे भिक्षुओं ! भिक्षु रूपका जानने वाला होता है ?—यहाँ भिक्षुओं ! भिक्षु जो कुछ रूप है ० उसे पदार्थसे जानता है । इस प्रकार ० ।

“कैसे भिक्षुओं ! भिक्षु लक्षण-कुशल होता है ?—यहाँ भिक्षुओं ! भिक्षु इसे पदार्थसे जानता है कि कर्म-लक्षणसे बाल होता है और कर्म-लक्षणसे पंडित । इस प्रकार ० ।

“० उत्पन्न काम-वितर्क ० व्यापाद-वितर्क ० हिंसा-वितर्क ० लोभ, दौर्जन्य ( रूपी ) बुराईयों—अकुशल धर्मोंका स्वागत नहीं करता ० । इस प्रकार ० ।

“यसुने रूपको देखकर निमित्त-प्राप्ति नहीं होता ० इस प्रकार ० ।

“० धुँँका करने वाला होता है ?—सुने अनुसार, जाने अनुसार, दूसरोंके लिये धर्मको वित्तारसे उपदेश करता है । इस प्रकार ० ।

“कैसे ० तीर्थोंको जानता है ?—० बहु-श्रुत भिक्षुओंके पास समय समय पर जाकर प्रश्न पूछता है ० । इस प्रकार ० ।

“कैसे ० पातोंको जानता है ?—० तत्वागतके बतलाये धर्म और विनयके उपदेश किये जाते समय अर्थवेदको पाता है ० । इस प्रकार ० ।

“कैसे ० बीधोंको जानता है ?—० आर्य-अष्टांगिक मार्गोंको ठीक ठीक जानता है । इस प्रकार ० ।

“कैसे ० गोचर कुशल होता है ?—० चारों स्मृति-ग्रन्थालोंको ठीक ठीक जानता है । इस प्रकार ० ।

“कैसे ० स-शेष बुझने वाला होता है—० रोगोंके पथ्य औषध आदि सामग्री देते हैं, उनके ग्रहण करनेमें मात्राको जानता है । इस प्रकार ० ।

“कैसे भिक्षुओं ! ० स्वविर भिक्षुओंको अतिरिक्त पूजासे पूजित करता है ?—० उन स्व-विर भिक्षुओंके लिये गुप्त और प्रकट सर्वोयुक्त काविक कर्म करता है; ० वाचिक कर्म ०; ० मान-सिक कर्म करता है । इस प्रकार ० ।

“भिक्षुओं ! इन ग्यारह धर्मों ( = बातों )से युक्त भिक्षु इस धर्म-विनयमें वृद्धि = विरुद्धि = विपुलताको प्राप्त होने योग्य है ।”

भगवान्ने यह कहा । संतुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्के भाषणका अभिनंदन किया ।



## ३४—चूल-गोपालक-सुत्तन्त (१।४।४)

पेसा मैने सुना—

एक समय भगवान् वज्री ( देश ) के <sup>१</sup> उक्ताचैल (= उक्ताचैल ) में गंगानदीके तीर पर विहार करते थे ।

वहाँ, भगवान् ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भवन्त !” ( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा “भिक्षुओ ! पूर्वकालमें भगवत्के रहनेवाले एक मूर्ख गोपालकने वर्षोंके अन्तिम मासमें शरदकालमें, गंगानदीके इस पारको बिना सोचे, उस पारको बिना सोचे, बेघाट ही विदेह ( देश ) की ओर दूसरे तीरको गायें हाँक दीं । तब भिक्षुओ ! वह गायें गंगा नदीके खोतके मध्यमें भँवरमें पड़कर वहाँ पनाशको प्राप्त हो गईं । सो किस लिये ?—क्योंकि भिक्षुओ ! उस भगवत्वासी मूर्ख गोपालकने • गायें हाँक दीं । इसी प्रकार भिक्षुओ ! जो कोई भ्रमण (= सन्यासी ) या ब्राह्मण इस लोकसे नावाकिफ (= अकुशल ) है, परलोकसे नावाकिफ है, मार के लक्ष्यसे नावाकिफ है, मारके अलक्ष्यसे नावाकिफ है, मृत्युके लक्ष्य • मृत्युके अलक्ष्यसे नावाकिफ है, उनके ( उपदेशों ) को जो सुनने योग्य, श्रद्धा करने योग्य समझेंगे उनके लिये वह चिरकाल तक अहितकर, दुःखकर होगा ।

“भिक्षुओ ! पूर्वकालमें एक भगवत्वासी बुद्धिमान् बालेने वर्षोंके अन्तिम मासमें शरदकालमें गंगानदीके इस पार को • सोचकर घाटसे उत्तर तीर पर विदेहकी ओर • गायें हाँकीं । उसने जो वह गायोंके पितर, गायोंके नायक वृषभ (= साँड ) थे उन्हें पहिले हाँका । वह गंगाकी धारको तिरछे काटकर स्वलिपूर्वक दूसरे पार चले गये । तब उसने दूसरी बलवान् शक्ति गायोंको हाँका • । फिर बड़े और बलियोंको हाँका • । फिर दुर्बल बलियोंको • । भिक्षुओ ! उस समय तरुण कुल ही दिनोंका पैदा एक बछवा भी माताकी गर्दनके सहारे तैरते गंगाकी धारको तिरछे काटकर स्वलिपूर्वक पार चला गया । सो क्यों ?—क्योंकि भिक्षुओ ! उस भगवत्वासी बुद्धिमान् बालेने • हाँकी । ऐसेही भिक्षुओ ! जो कोई भ्रमण या ब्राह्मण इस लोकके जानकार • उनको ( उपदेशको ) जो सुनने योग्य • समझने हैं, उनके लिये वह चिरकाल तक हितकर सुखकर होगा ।

“जैसे भिक्षुओ ! वह गायोंके पितर • वृषभ गंगाकी धारको तिरछे काटकर स्वलिपूर्वक उस पार चले गये, ऐसे ही भिक्षुओ ! जो यह अर्हत्, क्षीण-भगवत्, ( ब्रह्मचर्य- ) वास-समाप्त, कृत-कृत्य, भार-मुक्त, सन्पदार्थ-को-प्राप्त, भव-बंधन-रहित, सम्बन्ध-ज्ञान-द्वारा-मुक्त हैं, वह मारकी धारा को तिरछे काटकर स्वलिपूर्वक पार जायेंगे ।

<sup>१</sup> संभवतः सोनपुर या झांसीपुर ( विहार ) ।

“जैसे भिक्षुओ ! शिक्षित बलवान् गायें ०, ऐसे ही भिक्षुओ ! जो वह भिक्षु पाँच अवसर-भागीय-संयोजनोंके क्षयसे औपपातिक ( = अयोनिज देव ) हो, उस ( देव- )लोकसे लौटकर न आ वहीं निर्वाण प्राप्त करनेवाले हैं; वह भी मारको धाराको ० ।

“जैसे, भिक्षुओ ! वह पड़ने पड़विपाँ ०, वैसे ही भिक्षुओ ! जो भिक्षु तीन संयोजनोंके क्षयसे राग-द्वेष-मोहके निर्वल होनेसे सकृदागामी हैं, सकृत् ( = एक बार ) ही इस लोकमें जाकर दुःखका अंत करेंगे; वह भी ० ।

“जैसे भिक्षुओ ! वह एक निर्वल बड़वा गंगाकी धारको तिरछे काटकर स्वमित्पूर्वक दूसरे पार चला गया; वैसे ही भिक्षुओ ! जो वह भिक्षु तीन संयोजनोंके क्षयसे स्रोतआपन्न हैं, नियम-पूर्वक संबोधि ( = परमज्ञान )-परायण, ( निर्वाण-गामी-पक्षसे ) न अष्ट हानेवाले हैं; वह भी ० ।

“भिक्षुओ ! मैं इस लोकका जानकार हूँ, परलोक ०, ० मृत्युके अलक्ष्यका जानकार हूँ; भिक्षुओ ! ऐसे मेरे ( उपदेश )को जो सुनने योग्य, श्रद्धाके योग्य मानेंगे उनके लिये वह चिरकाल तक हितकर सुखकर होगा ।”

भगवान्ने यह कहा; यह कहकर सुगत शास्ताने यह भी कहा—

“जानकारने इस लोक परलोकको सुप्रकाशित किया ;

जो मारकी पहुँचमें हैं और जो मृत्यु ( = मार )की पहुँचमें नहीं हैं ।

जानकार संबुद्धने सब लोकको जानकार ।

निर्वाणकी प्राप्तिके लिये श्रेम ( युक्त ) अमृतद्वारको खोल दिया ।

पापी ( = मार )के स्रोतको लिप्त, विध्वस्त, फिष्टलित कर दिया ।

भिक्षुओ ! प्रमोदयुक्त होवो, श्रेमकी चाह करो ।”



## ३५-चूल-सच्चक-सुत्तन्त (१।४।५)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् वैशालीमें महाविनयी कूटागारशालामें विहार करते थे ।

उस समय वैशालीमें सच्चक (= सत्यक ) नामक निगण्ड-पुत्र (= नंगे साधुका पुत्र ) रहता था, ( जो कि ) ब्रह्मवादी पंडितमानी और बहुतसे लोगोंसे सम्मानित था । वह वैशालीमें समाके भीतर ऐसा कहता था—‘मैं ऐसे किसी अमण या ब्राह्मण, संघपति = गणपति, गणाचार्य—पत्तिक ( अपनेको ) अर्हत् सम्पक् सम्बुद्ध कहनेवालेको भी—नहीं देखता जो मेरे साथ वाद रोपकर कम्पित, सम्प्रकम्पित = सम्प्रवेधित न हो; जिसकी काँष्से पसीना न छूटने लगे । यदि मैं अचेतन लम्भसे भी शास्त्रार्थ आरम्भ कहूँ तो वह भी मेरे वादके सारे कम्पित, सम्प्रकम्पित, सम्प्रवेधित होवे, आदमीकी तो बात ही क्या कहनी ?’

तब आयुष्मान् अश्वजित् पूर्वाह्नके समय ( वन ) पहनकर पात्र-चोवर ले वैशालीमें शिक्षाके लिये प्रविष्ट हुए । वैशालीमें टहलते, अनुचर्कमण करते = अनुविचरण करते सच्चक निगण्ड-पुत्रने दूरसे ही आयुष्मान् अश्वजित्को आते देखा । देखकर जहाँ आयुष्मान् अश्वजित् थे वहाँ गया । जाकर आयुष्मान् अश्वजित्के साथ वचायोग्य—( कुशल प्रश्न पूछ ) एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े हुए सच्चक निगण्डपुत्र ने आयुष्मान् अश्वजित्से यह कहा—

“ओ अश्वजित् ! कैसे अमण गौतम शिष्योंको शिक्षा देते हैं ? किस प्रकारका उपदेश अमण गौतमके शिष्योंमें अधिक प्रचलित है ?”

“अग्निवेश ! इस प्रकार भगवान् आत्माको शिक्षा देते हैं; इस प्रकारका उपदेश भगवान्के शिष्योंमें अधिक प्रचलित है—‘मिथुओ ! रूप अनात्मा (= आत्मा नहीं ) है; वेदना अनात्मा है, संज्ञा ०; संस्कार ०; विज्ञान ०; सारे धर्म (= पदार्थ ) अनात्मा हैं ।’ अग्निवेश ! इस प्रकार भगवान् आत्माको शिक्षा देते हैं ० ।”

“ओ अश्वजित् ! ऐसे वादवाले अमण गौतमके बारेमें जो हमने सुना, वह ठीक नहीं सुना । क्या कभी हमारा उन आप गौतमके साथ समागम होगा ? क्या कोई कथा-संलाप होगा ? क्या हमारी वह बुरी धारणा छूटेगी ?”

उस समय पाँच सौ लिच्छवी संस्थानगर (= प्रजातन्त्र-भवन )में किसी कामसे एकत्रित हुये थे । तब सच्चक निगण्डपुत्र, जहाँ वह लिच्छवी थे, वहाँ गया । जाकर उन लिच्छवियोंसे बोला—

“बड़ो आप लिच्छवी ! आज मेरा अमण गौतमके साथ कथा-संलाप होगा । यदि अमण गौतम वैसे ( वाद )में स्थिर रहेगा जैसा कि उसके एक प्रसिद्ध शिष्य अश्वजित् नामक मिथुने कहा; तो जैसे पलवान् पुरुष दीर्घ लोमोंवाली भेड़को लोमसे पकड़कर निकाले, हुमावे, फिरावे;

इसी प्रकार मैं अमण गौतमको वाद द्वारा निकालूँगा, धुमाऊँगा, फिराऊँगा । जैसे बलवान् शराबकी भट्टीका कर्मचारी शौण्डिका ( = मट्टी ) के किल्लेज ( = छत्ते ) को सम्भोर जलाशयमें फेंक, कानसे पकड़ कर, निकाले, धुमावे, फिरावे; इसी प्रकार मैं ० । जैसे शौण्डिका धूर्त ( = शराबमें मस्त ) बच्चेको कानसे पकड़कर हिलावे, डुलावे, कँपावे; इसी प्रकार ० । जैसे साठ घरसका घट्टा ( हाथी ) गहरी पोखरीमें डुतकर स्नानघोचन नामकी कीड़ाको खेले इसी प्रकार ० । चलो आप लिच्छवी ० ।”

वहाँ कोई कोई लिच्छवी कहने लगे—‘अमण गौतम सत्त्वक निगण्ठ-पुत्तके साथ क्या वाद कर सकता है ? हाँ, सत्त्वक निगण्ठ-पुत्त अमण गौतमके साथ ( सफलता पूर्वक ) वाद कर सकता है ।’ कोई कोई लिच्छवी कहने लगे—‘क्या होकर सत्त्वक निगण्ठ-पुत्त भगवान् के साथ वाद करेगा ? हाँ भगवान् सत्त्वकके साथ वाद कर सकते हैं ।’

तब सत्त्वक निगण्ठ-पुत्त पाँच सौ लिच्छवियोंके साथ जहाँ महावनमें घुटागार-वाला थी वहाँ गया । उस समय बहुतसे भिक्षु खुली जगहमें टहल रहे थे । तब सत्त्वक निगण्ठ-पुत्त जहाँ यह भिक्षु थे वहाँ गया । जाकर उन भिक्षुओंसे बोला—

“भो ! इस समय आप अमण गौतम कहाँ विहार करते हैं ? हम आप गौतमका दर्शन करना चाहते हैं ।”

“अग्निवेश ! यह भगवान् महावनमें प्रविष्ट हो एक वृक्षके नीचे दिनके विहारके लिए बैठे हैं ।”

तब सत्त्वक निगण्ठ-पुत्त यही भारी लिच्छवी-परिपत्रके साथ प्रवेश कर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया । जाकर भगवान् के साथ यथावोग्य..... ( कुशल प्रश्न पूछ ) एक ओर बैठ गया । वह लिच्छवी भी भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ० । ० एक ओर बैठे सत्त्वक निगण्ठ-पुत्तने भगवान् से यह कहा—

“यदि आप गौतम प्रदत्त करनेकी आज्ञा दें, तो कोई बात आप गौतमसे पूछूँ ?”

“अग्निवेश ! जो चाहो सो पूछो ।”

“कैसे आप गौतम शिष्योंको शिक्षा देते हैं ० ?”

“अग्निवेश ! मैं इस प्रकार शिष्योंको शिक्षा देता हूँ ०—‘भिक्षुओ ! रूप अनित्य है, वेदना ०, संज्ञा ०, संस्कार ०, विज्ञान ० । रूप अनात्मा है, वेदना ०, संज्ञा ०, संस्कार ०, विज्ञान अनात्मा है । सारे संस्कार ( = गतिवाँ ) अनित्य हैं । सारे धर्म ( = पदार्थ ) अनात्मा हैं । अग्निवेश ! इस प्रकार मैं शिष्योंको शिक्षा देता हूँ ० ।’

“भो गौतम ! मुझे एक उपमा याद आती है ।”

भगवान् ने कहा—“अग्निवेश ! ( कहो क्या ) उपमा याद आती है ?”

“भो गौतम ! जैसे जो कोई भी यह धीन समुदाय, प्राणिसमुदाय, वृद्धि-विरुद्धि-विपु-लताको प्राप्त होते हैं; वह सभी पृथ्वीका आश्रय लेकर, पृथ्वीमें प्रतिष्ठित होकर । इस प्रकार यह बीजग्राम, भूतग्राम ( = प्राणि-समुदाय ), वृद्धि, विरुद्धि, विपुलताको प्राप्त होते हैं । जैसे भो गौतम ! जो कोई चलते किये जाते वाले कर्मान्त ( = काम ) हैं, वह सभी पृथ्वीका आश्रय लेकर ० । इसी प्रकार यह बलसे किये जानेवाले कर्मान्त किये जाते हैं । ऐसे ही भो गौतम ! यह पुरुष-पुरुषगल रूपके कारण रूपमें प्रतिष्ठित हो, पुण्य वा अपुण्यको उत्पन्न करता है । वेदना ० । संज्ञा ० । संस्कार ० । विज्ञान ० ।”



“क्या अग्निवेश ! तू यह कहता है—‘रूप मेरा आत्मा है, वेदना ०, संज्ञा ०, संस्कार ०, विज्ञान ०;’ ?”

“ओ गौतम ! मैं यह कहता हूँ—रूप मेरा आत्मा है, वेदना ०, संज्ञा ०, संस्कार ०, विज्ञान ०; और यह वही जनता भी ( कहती है ) ।”

“अग्निवेश ! यह वही जनता क्या कहती ? तू अपने ही अपने वादको बला ।”

“ओ गौतम ! मैं यह कहता हूँ—रूप मेरा आत्मा है ० ।”

“तो अग्निवेश ! तुलसे ही यह छूटता हूँ, जैसे तुझे जैसे बैसा उत्तर दे । तो क्या मानता है, अग्निवेश ! क्या मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा अपने राज्यमें ‘मारो’—कह मरवा सकता है, ‘जलाओ’—कह जलवा सकता है, ‘देशसे निकालो’—कह देशसे निकलवा सकता है; जैसे कि राजा प्रसेनजित् कौसल या जैसे भगवराज वैदेही-पुत्र अजातशत्रु ?”

“हाँ, ओ गौतम ! मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा अपने राज्यमें ० देशसे निकलवा सकता है ० जैसे भगवराज वैदेहीपुत्र अजातशत्रु । ओ गौतम ! यह जो संघ ( = ब्रजातंत्र ) है जैसे कि वज्जी या मल्ल वह भी अपने राज्यमें ० देशसे निकलवा सकते हैं; राजा प्रसेनजित् कौसल या भगवराज वैदेही-पुत्र अजातशत्रु—मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजाओंके लिए तो क्या ? होता है हे गौतम ! हो सकता है ।”

“तो क्या मानता है अग्निवेश ! जो तू कहता है—रूप मेरा आत्मा है । क्या वह रूप तेरे वशका है—मेरा रूप ऐसा होवे, मेरा रूप ऐसा न होवे ?”

ऐसा कहनेपर सत्त्वक निगण्ठ-पुत्त चुप हो गया । दूसरी बार भी भगवान् ने सबक निगण्ठ-पुत्तसे यह कहा—‘तो क्या मानता है ० ?’ दूसरी बार भी ० चुप हो गया । तब भगवान् ने सबक निगण्ठ-पुत्तसे यह कहा—

“अग्निवेश ! अब जवाब दो । यह चुप रहनेका समय नहीं है । अग्निवेश ! जो कोई तथान्तद्वारा धार्मिक प्रश्न पूछनेपर तीसरी बार तक चुप रहता है; यही उसका शिर सात टुकड़े हो जाता है ।”

उस समय वज्जपाणि यक्ष आदीप्त = सम्प्रज्वलित आग-समान दृष्टते लोहेके वज्रको लेकर सबक निगण्ठ-पुत्तके ऊपर आकाशमें कहा या—यदि यह सबक निगण्ठ-पुत्त भगवान् के धार्मिक प्रश्न पूछनेपर तीसरी बार भी उत्तर न देगा तो यही इसके शिरके सात टुकड़े करूँगा । उस वज्रपाणि यक्षको भगवान् देखते थे और सत्त्वक निगण्ठ-पुत्त देखता था । तब सत्त्वक निगण्ठ-पुत्तने भयभीत, डहिल, रोमाञ्चित हो भगवान् हीको शरण पाया, भगवान् को ही शरण पाया, भगवान् ही को श्रवण ( = आश्रय-स्थान ) पाया; और भगवान् से कहा—

“पूछें आप गौतम ! मैं उत्तर दूँगा ।”

“तो क्या मानता है अग्निवेश ! जो तू यह कहता है—रूप मेरा आत्मा है । क्या रूप तेरे वशमें है ० ?”

“नहीं, ओ गौतम !”

“अग्निवेश ! होश कर । अग्निवेश ! होश करके उत्तर दे । तेरा पूर्वका ( कथन ) पिछलेसे नहीं मिलता है; पिछला, पहिलेसे नहीं मिलता है । तो क्या मानता है अग्निवेश ! वेदना ०, संज्ञा ०, संस्कार ०, विज्ञान ० ।”

“नहीं ओ गौतम !”

“होश कर अग्निवेश ! होश करके अग्निवेश उत्तर दे ० । तो क्या मानता है अग्निवेश ! रूप नित्य है या अनित्य ?”

“अनित्य है, भो गौतम !”

“जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?”

“दुःख है, भो गौतम !”

“जो अनित्य दुःख परिवर्तन-शील है, क्या उसके लिये यह ब्याल करना उचित है—  
‘यह मेरा है,’ ‘यह मैं हूँ,’ ‘यह मेरा आत्मा है’ ?”

“नहीं भो गौतम !”

“तो क्या मानता है, अभिवेश ! वेदना ०, संज्ञा ०, संस्कार ०, विज्ञान ० ।”

“नहीं भो गौतम !”

“तो क्या मानता है अभिवेश ! जो कोई दुःखमें पड़ा है, दुःखमें लिपटा है, दुःखको अलु-  
भव कर रहा है, दुःखको—‘यह मेरा है,’ ‘यह मैं हूँ,’ ‘यह मेरा आत्मा है,’—समझता है, क्या  
वह स्वयं ( उस ) दुःखको हटा सकेगा, दुःखको दूर फेंक कर विहर सकेगा ?”

“भो गौतम ! कैसे होगा ? नहीं होगा, भो गौतम ।”

“तो क्या मानता है अभिवेश ! इस प्रकार तू दुःखमें पड़ा है ० दुःखको दूर फेंककर  
विहर सकेगा ?”

“भो गौतम ! कैसे होगा ? नहीं होगा, भो गौतम ।”

“जैसे अभिवेश ! सार चाहनेवाला, सार खोजनेवाला पुरुष, सार (= हीर ) की खोजमें  
विचरते तीक्ष्ण कुल्हाड़ेको लेकर वनमें प्रविष्ट हो । वह वहाँ सीधे, नये, ..... यहे भारी केलेके  
तनेको देखे । उसे वह तपसे काटे । जवसे काटकर सिरसे काटे । सिरसे काट कर पत्तोंकी लपेटनको  
उधेरे । वहाँपर वह पत्तोंकी लपेटनको उधेड़ते हुये फल्लूको भी न पावे, सार कहाँसे पायेगा ?  
इसी प्रकार अभिवेश ! अपने पादमें तुमसे प्रभ करनेपर, भाषण करनेपर ..... श्रुति = तुच्छ  
अपराधी ( सा जान पड़ा ) । और अभिवेश ! तूने वैशालीमें समाके भीतर यह बात कही—“मैं  
ऐसे किसी भ्रमण या मागण ०” आदमीकी तो बात ही क्या कहती ?” अभिवेश ! तेरे ललाटपर  
कोई कोई पर्यानेकी दूँदे आ गई हैं, उत्तरालंग (= उपरना ) छूटकर जमीनपर गिर पड़ा है । मेरे  
तो अभिवेश ! कायामें परीना नहीं ।”—

यह ( कह कर ) भगवान्ने सभामें ( अपने ) सुवर्ण-वर्ण शरीरको जोर दिया । ऐसा कहने  
पर सन्धक निगण्डपुत्र तृणी हो, भूक हो, कण्ठको गिराकर, नीचेकी ओर मुँह कर, प्रतिभा-हीन  
हो, सोचते बैठा रहा । तब दुर्मुख लिच्छवि-पुत्र सन्धकको ० सोचते देख, भगवान्ने यह बोला—

“भन्ते ! यहाँ सुझे एक उपमा याद आती है ।”

भगवान्ने यह कहा—“( कहो )-दुर्मुख ! ( क्या ) उपमा याद आती है ?”

“जिस प्रकार भन्ते ! गाँव या कस्बेके पासमें पुष्करणी हो । वहाँ एक केकड़ा हो । तब  
भन्ते ! बहुतसे लकड़े या लकड़ियाँ उस गाँव या कस्बेसे निकल कर जहाँ वह पुष्करणी है, वहाँ  
जायें । जाकर उस केकड़ेको पानीसे निकाल स्थलपर रखें । वह केकड़ा जिस जिस आरको  
निकाले उसी उसीको वह बालक बालिकायें काटसे या कटला (= ठोकरे )से काटें, तोड़ें, भग्न  
करें, इस प्रकार भन्ते ! वह केकड़ा सारे लिच्छ, भग्न, परिभग्न आरोंके कारण उस पुष्करणीमें फिर  
उतरनेके अयोग्य हो जाये । ऐसे ही भन्ते ! सन्धक निगण्ड-पुत्रके जो कोई अभिमान, अह-  
कार ..... ये, वह सभी भगवान्ने काट दिये, तोड़ दिये, भग्न कर दिये । भन्ते ! अब सन्धक



निगण्ड-पुत्र फिर भगवान्‌के साथ चादके लिये जाने योग्य नहीं है ।”

ऐसा कहनेपर सबक निगण्ड-पुत्रने दुर्मुख लिच्छवी-पुत्रसे यह कहा—

“ठहरो, दुर्मुख ! ठहरो, दुर्मुख ! हम तुम्हारे साथ बात नहीं कर रहे हैं । हम यहाँ आप गौतमके साथ बात कर रहे हैं । भो गौतम ! रहते दो, हमारे और दूसरे अमण-ब्राह्मणोंके इस वाचिक-प्रलाप.....को; कैसे आप गौतमके आवश्यक शासन-कर (= उपदेशके अनुसार चलनेवाले) संदेह-रहित, वाद-विवादसे-रहित, विचारवृत्ता प्राप्त हो, दूसरेके अनाश्रित बन, अपने शास्त्रा (= उपदेशक)के शासन (= धर्म)में विहरते हैं ?”

“अग्निवेश ! यहाँ मेरे आवश्यक भूत, भविष्य, वर्तमानका, शरीरके भीतर या बाहरका, स्थूल या सूक्ष्म, हीन या उत्तम, दूर या नजदीक—जो कुछ भी रूप है, सभी रूपको—‘न यह मेरा है’, ‘न यह मैं हूँ’, ‘न यह मेरा आत्मा है’;—इस प्रकार इसे यथार्थतः सम्यक्-प्रज्ञासे देखते हैं । ० वेदना ० । ० संज्ञा ० । ० संस्कार ० । ० । इस प्रकार अग्निवेश ! मेरे, शिष्य शास्त्राके शासनमें विहरते हैं ।”

“भो गौतम ! किस प्रकार भिक्षु अर्हत् = क्षीणाश्रय, समाप्त (ब्रह्मचर्य)-वास कृत-करणीय, भार-मुक्त, सत्पदार्थ-प्राप्त भव-बंधन-रहित, सम्यक्-ज्ञान-से मुक्त होता है ?”

“अग्निवेश ! यहाँ भिक्षु ० जो कुछ रूप है सभी रूपको—‘न यह मेरा है’ ०; इस प्रकार इसे ठीक ठीक सम्यक्-प्रज्ञासे जान कर ( उसे ) न ग्रहण कर मुक्त होता है । ० वेदना ० । ० संज्ञा ० । ० संस्कार ० । ० विज्ञान ० । इस प्रकार अग्निवेश ! भिक्षु अर्हत् ० होता है । इस प्रकार अग्निवेश ! भिक्षु तीन अनुत्तरीय (= अनुपम पदार्थों)से मुक्त होता है—दर्शन (= साक्षात्कार) अनुत्तरीय, प्रतिपद (= लाभ)-अनुत्तरीय विसुक्ति (= सुक्ति)-अनुत्तरीय । इस प्रकार मुक्त हुआ भिक्षु अग्निवेश ! त्यागवृत्ति ही संस्कार = गुरुकार = सम्मान = पूजन करता है—यह भगवान् पुत्र हैं, बोधके लिये धर्म-उपदेश करते हैं, वह भगवान् दान्त हैं, धर्मके लिये उपदेश करते हैं, वह भगवान् शान्त हैं, शान्तिके लिये धर्म-उपदेश करते हैं; वह भगवान् तीर्ण हैं, तर्कके लिये ०, ० परित्यक्त हैं, परिनिर्वाण (= निर्वाण) के लिये धर्म-उपदेश करते हैं ।”

ऐसा कहनेपर सबक निगण्ड-पुत्रने भगवान्‌से यह कहा—

“भो गौतम ! हमही अभिजातो हैं, हमही प्रगल्भ हैं; जो कि हमने आप गौतमके साथ विवाद करनेका स्वाद लेना चाहा । भो गौतम ! मुक्त हाथीके साथ भिड़कर गुरुपका कल्याण हो जाय, किन्तु, आप गौतमसे भिड़कर गुरुपका कल्याण नहीं हो सकता । भो गौतम ! घोर विष वाले आशीविष (= सर्प)से भिड़कर गुरुपका कल्याण हो जाय ० । ० जलते अग्निपुत्रसे भिड़कर ० । भो गौतम ! हमही अभिमानी हैं ० । आप गौतम भिक्षु-संघके साथ कलके लिये मेरा भोजन स्वीकार करें ।”

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया ।

तब सबक निगण्ड-पुत्रने भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, उन लिच्छवियोंको संबोधित किया—

“सुनो आप सब लिच्छवि ! मैंने कलके भोजनके लिये भिक्षु-संघ सहित अमण गौतमको विभ्रंशित किया है; सो वृत्ता करें जैसा कि इसके लिये योग्य समझें । तब उन लिच्छवियोंने उस रातके बीच जानेपर सबक निगण्ड-पुत्रके पास भोजनार्थ पाँच सौ स्थालीपाकों (= क्षीरों) को पहुँचा दिया । तब सत्त्वक निगण्ड-पुत्रने अपने आराममें उत्तम खाद्य भोग्य संपादितकर भगवान्‌के पास कालकी सूचना दी—“भो गौतम ! काल हो गया, भोजन तैयार है ।”

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिन कर पात्रचीवर ले, जहाँ सत्त्वक निगण्ड-पुत्रका आराम था,

वहाँ गये । जाकर भिक्षु-संघके साथ बिछे आसनपर बैठे । तब सचक निर्गठ-पुत्तने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य भोज्य द्वारा अपने हाथसे संतर्पित=संप्रचारित किया । तब भगवान्‌के भोजन कर हाथ हटा लेनेपर, सचक निर्गठ-पुत्त एक छोटे आसनको लेकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे सचक निर्गठ-पुत्तने भगवान्‌से यह कहा—

“भो गौतम ! जो यह दानमें पुण्य है, वह दायकोंके सुखके लिये हो ।”

“अग्निवेश ! जो अ-वीतराग, अ-वीतद्वेष, अ-वीत-मोह, दान-पात्रको देनेसे ( पुण्य होता है ) वह दायकोंको होगा; और अग्निवेश ! जो मेरे ऐसे वीत-राग, वीत-द्वेष, वीत-मोह, दान-पात्रों ( को दान देनेसे पुण्य है ) वह तेरे लिये होगा ।”



## ३६—महा-सच्चक-सुत्त (१।४।६)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागार-शालामें विहार करते थे।

उस समय भगवान् पूर्वाह्न समय पहिन कर पात्रचीवर ले वैशालीमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट होना चाहते थे। तब सच्चक निर्गठ-पुत्त जवाविहार (= टहलने) के लिये अनुचक्रमण करता, अनुविचरण करता, जहाँ महावनकी कूटागार-शाला थी, वहाँ गया। आयुष्मान् आनन्दने दूरसे ही सच्चक निर्गठ-पुत्तकी आते देखा। देखकर भगवान्से यह कहा—

“मन्ते ! यह सच्चक निर्गठ-पुत्त आरहा है ( जो कि ) बहुत बकवादी पंडित-मानी और बहुत जनों द्वारा सम्मानित है। मन्ते ! यह बुद्धकी निन्दा चाहने वाला, धर्मकी निन्दा चाहने वाला, संघकी निन्दा चाहनेवाला है। अच्छा हो मन्ते ! यदि भगवान् कृपा करके थोड़ी देर यहीं बैठें ।”

भगवान् बिले आसनपर बैठ गये। तब सच्चक निर्गठ-पुत्त जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्के साथ यथायोग्य ( कुशल प्रश्न पूछ ) एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सच्चक निर्गठ-पुत्तने भगवान्से यह कहा—

“भो गौतम ! कोई कोई भ्रमण ब्राह्मण कायिक भावनामें तत्पर हो विहरते हैं, चित्तकी भावनामें नहीं ( तत्पर होते )। वह शारीरिक दुःखमय, वेदनाको पाते हैं। भो गौतम ! पहिले शारीरिक दुःख-वेदनामें पड़े हुएका उरस्तंभ (= जाँघोका कठिया जाना) भी होगा, हृदय भी विदीर्ण होगा, मुखसे गरम खून भी निकल आयेगा, उन्माद, चित्त-विक्षेप भी होगा। भो गौतम ! उसका यह चित्त काय ही तो है, कायाके ही वशमें तो है। सो क्यों ?—चित्तकी भावना न करने से। भो गौतम ! यहाँ कोई कोई भ्रमण ब्राह्मण चित्तकी भावनामें तत्पर हो विहरते हैं। कायाकी भावनामें नहीं। भो गौतम ! वह चैतन्यिक दुःख-वेदनामें पड़ते हैं। भो गौतम ! चैतन्यिक दुःख-वेदनामें पड़नेसे ( उस समय ) ( उनका ) उरस्तंभ भी होगा ० सो क्यों ?—कायाकी भावना न करनेसे। भो गौतम ! मुझे ऐसा होता है, जरूर आप गौतमके शिष्य, चित्तकी भावनामें तत्पर हो विहरते हैं, कायाकी भावनामें नहीं ।”

“अश्विष ! तुने काय-भावना क्या सुनी है ?”

“जैसे कि यह मन्द वात्स्य, कृश सांख्य, मक्खली-गोसाल (मानते हैं)। भो गौतम ! यह अवेलक (= नर), सुक्त-भाचार ०<sup>१</sup> साक्षादिक भी आहार करते हैं। ऐसे इस प्रकार बीचमें अन्तर देकर अधैमासिक आहारको ग्रहणकर विहरते हैं ।”

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ ४८।

“अग्निवेश ! क्या वह उतनेहीसे गुज़ारा करते हैं ?”

“नहीं भो गौतम ! कभी कभी उत्तम उत्तम भोजनोंको खाते हैं । उत्तम उत्तम चायोंको ग्रहण करते हैं । उत्तम उत्तम स्वादनीय ( पदार्थों )को स्वादन करते हैं । उत्तम उत्तम पातोंको पीते हैं । वह इस शरीरको धाते हैं, पोसते हैं, चरबी पैदा करते हैं । इस प्रकार इस शरीरका संतुल्य-प्रचय होता है ।”

“अग्निवेश ! चित्त-भावना तुने कैसी सुनी है ?”

भगवान्‌के चित्त-भावनाके विषयमें पूछने पर सचक मिगंठ-पुच्छ कुछ न बोला । तब भगवान्‌ ने सचक निगंठ-पुच्छसे यह कहा—

“अग्निवेश ! जो तुने यह पहले काय-भावना कही वह भी आर्यपिनय (= धर्म )में धार्मिक काय-भावना नहीं है । अग्निवेश ! तुने काय-भावनाको ही नहीं जाना, चित्त-भावनाको तो क्या जानेगा ? अग्निवेश ! जैसे कायासे अभावित, चित्तसे अभावित, ( एवं ) कायासे भावित और चित्तसे भावित होता है, उसे सुन अच्छी तरह मनमें कर कहता हूँ ।”

“अच्छा भो !” ( वह ) सचक मिगंठपुच्छने भगवान्‌को उत्तर दिया ।

भगवान्‌ने यह कहा—

“अग्निवेश ! कैसे ( पुरुष ) कायासे अभावित और चित्तसे अभावित होता है ?—यहाँ अग्निवेश ! अज्ञ अनादी जनको जब सुख-वेदना (= सुखका अनुभव ) होती है तो वह सुख-वेदनासे स्थित हो, सुखमें रागी होता है, सुखकी रागिताको प्राप्त होता है । ( कालान्तरमें जब ) उसकी वह सुख-वेदना निरुद्ध हो जाती है । सुख-वेदनाके निरुद्ध होनेसे दुःख-वेदना उत्पन्न होती है । दुःख-वेदनामें पड़कर वह शोक करता है, कलपता है, क्लिब करता है, छाती पीटकर रोता है, मूर्छित होता है । ( इस प्रकार ) अग्निवेश ! उसके लिये उत्पन्न हुई वह सुख-वेदना कायाके भावित न होनेसे चित्तको पकड़कर ठहरती है; चित्तकी भावना न करनेसे उत्पन्न हुई दुःख-वेदना चित्तको पकड़कर ठहरती है । अग्निवेश ! जिस किसीकी इस प्रकार दोनों ओरसे ० उत्पन्न सुख-वेदना, दोनों ओरसे चित्तकी भावना न करनेसे उत्पन्न हुई दुःख वेदना चित्तको पकड़कर ठहरती है; अग्निवेश ! ( वह )- ( पुरुष ) कायासे भावना-रहित और चित्तसे भावना-रहित होता है ।

“कैसे अग्निवेश ! ( पुरुष ) भावित-काय और भावित-चित्त होता है ?—अग्निवेश बुद्धिमान्‌ आर्य श्रावकको जब सुख-वेदना उत्पन्न होती है, तो वह सुख-वेदनाको पाकर सुख-रागी नहीं होता, सुखमें रागित्वको प्राप्त नहीं होता । ( जब ) उसकी वह सुख-वेदना नष्ट होती है, सुख-वेदनाके विरोध (= नाश )से दुःख-वेदना उत्पन्न होती है; ( तब ) वह दुःख-वेदनामें पड़कर न शोक करता है ० न मूर्छाकी प्राप्त होता है । अग्निवेश ! कायाके भावित होनेसे उसकी वह उत्पन्न हुई सुख-वेदना चित्तको पकड़कर नहीं ठहरती; ० दुःख-वेदना चित्तको पकड़कर नहीं ठहरती । अग्निवेश ! इस प्रकार दोनों ओरसे कायाके भावित होनेसे जिस किसीकी उत्पन्न सुख-वेदना भी चित्तको पकड़कर नहीं ठहरती, चित्तके भावित होनेसे उत्पन्न दुःख-वेदना भी चित्तको पकड़कर नहीं ठहरती; अग्निवेश ! ( वह )— ( पुरुष ) भावितकाय और भावितचित्त होता है ।”

“भो गौतम ! मेरा विश्वास है, कि आप गौतम भावित-काय ( शरीरकी साधना जितनेकी है ) और भावित-चित्त (= चित्तकी साधना जिसने की है ) हैं ।”

“अरु, अग्निवेश ! तुने तानेसे यह बात कही । अच्छा, तो मैं तुझसे कहता हूँ—जब फि, अग्निवेश ! मैं केश-दात्री सुँवा, काषाय-वस्त्र पहिन धरसे बेघर हो प्रमजित हुआ ० तो उत्पन्न हुई सुख-वेदना चित्तको पकड़कर ठहरैगी उत्पन्न दुःख-वेदना चित्तको पकड़कर ठहरैगी—यह संभव नहीं ।”



“क्या, आप गौतमको वैसी सुख-वेदना उत्पन्न होती है, जैसी उत्पन्न हुई सुख-वेदना चित्तको पकड़कर ठहरती है ? क्या आप गौतमको वैसी दुःख-वेदना उत्पन्न होती है, जैसी उत्पन्न हुई दुःख-वेदना चित्तको पकड़कर ठहरती है ?”

“हमें क्या होगा अग्निवेश ! यहाँ, अग्निवेश ! कुछ होनेसे पूर्व, कुछ न हो बोधिसत्त्व होते समय मुझे ऐसा हुआ—घरका निवास जंगल है, मलका मार्ग है, प्रमज्जा (= संन्यास ) सुला स्थान है । इस सर्वथा परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध, ठिठे शंखसे ( उज्ज्वल ) अद्भुतचर्यका पालन घरमें रहकर सुकर नहीं है; क्यों न मैं केश-दाही मुँहासा, कापाय-वस्त्र पहन घरसे बेघर हो प्रमज्जित हो जाऊँ । सो मैं, अग्निवेश ! दूसरे समय ०<sup>१</sup> । सो मैं अग्निवेश ! उस धर्मको अपर्याप्त मान, उस धर्मसे उदात्त हो चल दिया । ०<sup>२</sup> प्रमज्जमें क्रमशः चारिका करता, जहाँ उल्लेखला सेनानी-निगम था, ०<sup>३</sup> वहीं बैठ गया । मुझे, अग्निवेश ! ( उस समय ) अद्भुत, अश्रुत-पूर्व तीन उपमायें भासित हुई—

( १ ) “जैसे गीला काष्ठ भीगे पानीमें डाला हो ०<sup>४</sup> ।

( २ ) “० जैसे स्नेह-युक्त गीला काष्ठ जलके पास स्थल पर फँका हो ०<sup>५</sup> ।

( ३ ) “० जैसे गीरास मुष्क काष्ठ जलसे दूर स्थलपर फँका हो ०<sup>६</sup> ।

“तब अग्निवेश ! मेरे ( मनमें ) हुआ—‘क्यों न मैं दाँतोंके ऊपर दाँत रख, जिह्वा द्वारा तालको दबा ०<sup>७</sup> । उस समय मैंने न-दूधनेवाला वीर्य (= उद्योग ) आरम्भ किया हुआ था, न-सूखी स्मृति मेरी जाग्रत थी, उसी दुःखमय प्रधान (= साधना ) से पीड़ित होनेके कारण मेरी काया चंचल अ-स्थान्त हो गई ।—इस प्रकार अग्निवेश ! उत्पन्न हुई वेदना चित्तको पकड़कर नहीं ठहरती ।

“तब, अग्निवेश ! मेरे ( मनमें ) हुआ—‘क्यों न मैं धातु-रहित ध्यान धरूँ ?—सो मैंने अग्निवेश ! मुख और नासिकासे श्वासका आना जाना रोक दिया । ०<sup>८</sup> । उसी दुःखमय प्रधान के कारण ० ।

“०<sup>९</sup> मैंने अग्निवेश ! मुख और नासिकासे श्वासका आना जाना रोक दिया । ०<sup>९</sup> । उसी दुःखमय प्रधानके कारण ० ।

“०<sup>१०</sup> मैंने अग्निवेश ! मुख, नासिका और कानसे श्वासका आना जाना रोक दिया । ०<sup>१०</sup> । उसी दुःखमय प्रधानके कारण ० ।

“०<sup>११</sup> मैंने अग्निवेश ! मुख, नासिका और कानसे श्वासका आना जाना रोक दिया । ०<sup>११</sup> ।

“तब मुझे अग्निवेश ! यह हुआ—‘क्यों न मैं आहारको यिच्छुल ही छोड़ देना स्वीकार करूँ ०<sup>१२</sup> । अग्निवेश ! मेरा वैसा परिशुद्ध, पर्यवदात (= सफेद, गोरा ), छविर्ण (= चमड़ेका रंग ) नष्ट हो गया था । ०<sup>१३</sup> सो मैं अग्निवेश ! स्थूल आहार ओदन कुल्माष ग्रहण करने लगा । ०<sup>१४</sup> प्रथम ध्यान ०<sup>१५</sup> । ०<sup>१६</sup> द्वितीय ध्यान ०<sup>१६</sup> । ०<sup>१७</sup> तृतीय ध्यान ०<sup>१७</sup> । ०<sup>१८</sup> चतुर्थ ध्यानको प्राप्त कर बिहरने लगा । अग्निवेश ! उत्पन्न हुई सुखवेदना इस प्रकार मेरे चित्तको पकड़कर नहीं ठहरती ।

“सो मैंने अग्निवेश ! इस प्रकार चित्तके ०<sup>१९</sup> परिशुद्ध होनेपर पूर्वजन्मोंकी स्मृतिके लिये चित्तको सुकाया ०<sup>२०</sup> । अग्निवेश ! रात्रिके प्रथम घाटमें यह प्रथम विद्या प्राप्त हुई ०<sup>२१</sup> ।

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ १०४-५ । ( अरियपरिपेसल-सूचन २६ ), भिक्षुओंको संबोधित करनेकी अगह, अग्नि-  
वेशको संबोधित करनेके साथ । <sup>२</sup> देखो नीरिअकुमार-सूचन ८५, राजकुमारकी अगह अग्निवेशको  
संबोधित कर । <sup>३</sup> देखो पृष्ठ १५ । <sup>४</sup> देखो तीन विधाये, पृष्ठ १५, १६ ।

“०<sup>१</sup> विशुद्ध दिव्य-चक्षुसे ०<sup>१</sup> प्राणियोंको देखने लगा ०<sup>१</sup> । रातके पिछले पहर यह द्वितीय विद्या प्राप्त हुई<sup>१</sup> ।

“०<sup>१</sup> आत्मवर्णके क्षयके ज्ञानके लिये चित्तको झुकाया ०<sup>१</sup> अब यहाँके लिये कुंड ( करणीय ) नहीं” —इसे जाना । अग्निवेश ! रातके पिछले घासमें यह तृतीय विद्या प्राप्त हुई ०<sup>१</sup> । ० इस प्रकार अग्निवेश ! उत्पन्न हुई सुखवेदना मेरे चित्तको पकड़ कर नहीं ठहरती ।

“अग्निवेश ! मैं अनेक सौकी परिपदमें व्याख्यान देता था, और उनमेंसे हर एक समझता था, कि श्रमण गौतम मेरेही लिये धर्म-उपदेश कर रहा है । अग्निवेश ऐसा न समझो, कि तथागत केवल विज्ञापनके लिये दूसरोंको धर्म-उपदेश करते हैं । मैं अग्निवेश उस कथाके समाप्त होने पर उसी पहिलेके समाधि-निमित्त ( = चित्त-एकाग्रताके आकार )में, अपने भीतर ही चित्तको ठहराता हूँ, बैठाता हूँ, एकाग्र करता हूँ, समाहित करता हूँ, उसके साथ सदा सर्वदा विहार करता हूँ ।”

“अर्हत् सम्यक् संतुष्टकी भाँति आप गौतमको वह योग्य हो है । क्या आप गौतम दिनको सोते हैं ?”

“सोता हूँ, अग्निवेश ! ग्रीष्मके अन्तिम मासमें मौजमान्तर भिन्नासे निष्कट कर, चौपैती संवादीको बिजवा दाहिनी करकटे स्मृति-संप्रजन्य युक्त हो निद्रित होता हूँ ।”

“भो गौतम ! इसे कोई कोई श्रमण ब्राह्मण संमोह ( = मूढ़ता )का विहार करते हैं ।”

“अग्निवेश ! इतनेसे संमूह ( = मूढ़ ) या अ-संमूह नहीं होता । अग्निवेश ! जैसे संमूह या अ-संमूह होता है, उसे सुन अच्छी तरह मनमें कर, कहता हूँ ।”

“अच्छा, भो !” ( कह ) सच्चक निर्गठपुत्तने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“अग्निवेश ! जिस किसीके वह संक्लेशिक ( = भलिन करनेवाले ), पुनर्जन्म देनेवाले, दुःख-परिणामवाले, भविष्यमें जन्म-जरा-मरण देनेवाले आश्रव ( = चित्त-भल ) नष्ट नहीं हुये, उसे मैं संमूह ( = मूढ़ ) कहता हूँ । अग्निवेश ! आत्मवर्णके नाश न होनेसे ( पुरुष ) संमूह होता है । अग्निवेश ! जिस किसीके वह आश्रव ० नष्ट हो गये, उसे मैं अ-संमूह कहता हूँ । अग्निवेश ! आत्मवर्णके नाश होनेसे अ-संमूह होता है । अग्निवेश ! तथागतके वह आश्रव—०—हो गये, उच्छिन्न-मूल, अभावकी प्राप्ति, भविष्यमें न उत्पन्न होने लायक सिर-कटे ताड़ जैसे हो गये । जैसे, अग्निवेश ! सिर-कटा ताड़ फिर बढ़ने योग्य नहीं रहता, ऐसे ही अग्निवेश ! तथागतके वह आश्रव-०-०, उच्छिन्न-मूल ० सिरकटे ताड़ जैसे हो गये ।”

ऐसा कहने पर सच्चक निर्गठपुत्तने भगवान्से यह कहा—“आश्चर्य है, भो गौतम ! अद्भुत है भो गौतम ! इतना चिढ़ा चिढ़ा ( ताना दे दे ) कर कहे जानेपर, सुननेवाले वचनोंके प्रयोगसे भी आप गौतमका सुखवर्ण ( वैसा ही ) स्वच्छ प्रसन्न है, जैसा कि अर्हत् सम्यक् संतुष्टका । भो गौतम ! मैंने पूर्ण कायस्थके साथ वाद किया है । वह दूसरी दूसरी ( बात ) करने लगता था, वह बातको ( विषयसे ) बाहरले जाता था; कोप, द्वेष, नाराजगी प्रकट करने लगता था । किन्तु इतना चिढ़ा चिढ़ाकर कहे जानेपर ० । ० मक्खलि गोसाळ ० । ० अजित केश-कम्बली ० । ० प्रकुध कात्यायन ० । ० संजय घेलट्ठिपुत्त ० । मैंने निर्गठ नातपुत्तके साथ वाद किया है ० । भो गौतम ! अब हम जायेंगे । हमें बहुत काम बहुत करणीय हैं ।”

“अग्निवेश ! जिसका तू इस समय काल समझता है, ( उसे कर ) ।”

तब सच्चक निर्गठपुत्त भगवान्के आश्रयका अभिर्नंदन, अनुमोदन कर आसनसे उठकर चला गया ।



### ३७-चूल-तण्डा-संख्य-सुत्तन्त ( १।४।७ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्त्यीमें मृगारमाताके प्रासाद पूर्वोराममें विहार करते थे ।

तब देवताओंका इन्द्र शक्र तहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खड़ा होगया । एक ओर खड़े देवेन्द्र शक्रने भगवान्से यह कहा—

“कैसे, भन्ते ! भिक्षु संक्षेपमें तूष्णीके लय द्वारा मुक्त हो, अत्यन्त-निष्ठ अत्यन्त योग-क्षेम ( = कल्याण )-वाला, अत्यन्त ब्रह्मचारी, अत्यन्त पर्यवसान ( = कर्तव्य जिसके समाप्त हो गये ), देव-मनुष्योंमें श्रेष्ठ होता है ?”

“देवोंके इन्द्र ! भिक्षु यह सुने होता है—सारे धर्म ( = पदार्थ ) अभिनिवेश ( = राग ) करने लायक नहीं हैं । जब देवोंके इन्द्र ! भिक्षु यह भी सुने होता है—“सारे धर्म अभिनिवेश करने लायक नहीं हैं ।” यह सारे धर्मोंको जानता है—“सारे धर्मोंको जानकर सब धर्मोंको छोड़ता है । सारे धर्मोंको छोड़कर, जिस किसी सुखा, दुःखा या ज-दुःख-ज-सुखा वेदनाको अनुभव करता है, उससे वह अनित्यानुदर्शी ( = यह अनिश्चय है, ऐसा समझनेवाला ) हो विहरता है, विराग-अनुदर्शी, निरोध ( = नाश )-अनुदर्शी, प्रतिनिस्तर्ग ( = त्याग )-अनुदर्शी हो विहरता है । वह उन वेदनाओंमें प्रतिनिस्तर्गानुदर्शी हो विहरते, लोकमें किसी वस्तुका उपादान ( = रागयुक्त ग्रहण ) नहीं करता । उपादान न करनेसे ( विगोहके ) प्राप्तिको नहीं पाता । परि-ग्रह न पानेसे इसी शरीरमें परिनिर्वाण ( = दुःखके सर्वथा अभाव )को प्राप्त होता है;—“जन्म शीघ्र हो गया, ब्रह्मचर्य समाप्त हो गया, करना या सो कर लिया, और कुछ ( कर्त्तव्य ) यहाँके लिये नहीं रहा”—जानता है । देवोंके इन्द्र ! ऐसे भिक्षु संक्षेपमें देव-मनुष्योंमें श्रेष्ठ होता है ।”

तब देवोंका इन्द्र शक्र भगवान्के भाषणका अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर, भगवान्को अभिवादन कर, प्रवक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया ।

उस समय आयुष्मान् महामौदुगल्यायन भगवान्के अ-विदुर ( = समीप )में बैठे थे । तब आयुष्मान् महामौदुगल्यायनको यह हुआ—“क्या उस यक्ष ( = देव )ने भगवान्के भाषणको समझकर अनुमोदित किया, या धिना ( समझे ) ? क्यों न मैं उस यक्षको पूछूँ, कि उस यक्षने भगवान्के भाषणको समझकर अनुमोदित किया, ?” तब आयुष्मान् महामौदुगल्यायन, जैसे यक्षवान् पुरुष समेटी बाँहको ( बिना प्रयास ) फैला दे, और फैली बाँहको समेट ले, वैसे ही, मृगारमाता के प्रासाद पूर्वोरामसे अन्तर्धान हो आयुक्षिश देव ( - लोक )में प्रकट हुये ।

उस समय देवोंका इन्द्र शक्र एकपुंडरीक उद्यानमें पाँच प्रकारके दिव्य वाद्योंसे सम-

<sup>१</sup> मृगारमाता विशाखा नाम का, विशेषके लिये देखो बुद्धचर्या, पृष्ठ ६३२ ।

र्वित-समंगीभूत हो चिरा बैठा था । ० शकने दूरसे ही आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको आते देखा । देखकर उन पाँच प्रकारके दिव्य बाघोंको हटाकर, जहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायन थे, वहाँ गया । जाकर आयुष्मान् महामौद्गल्यायनसे यह बोला—

“आओ, मार्प मौद्गल्यायन ! स्वागत है मार्प मौद्गल्यायन ! चिरकालके बाद मार्प मौद्गल्यायन ! आपका...” यहाँ आना हुआ । बैठिये मार्प मौद्गल्यायन ! यह आसन बिछा है ।”

आयुष्मान् महामौद्गल्यायन बिछे आसनपर बैठ गये । देवोंका इन्द्र शक भी एक सीधे आसनको लेकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे ० शकसे आयुष्मान् महामौद्गल्यायनसे यह कहा—

“कौशिक ! किस प्रकार भगवान्ने तुम्हें संक्षेपसे तुष्णा-अव द्वारा मुक्तिके धारमें कहा है ? अच्छा हो, हम भी उस कथाके अवण करनेके भागी हों ।”

“मार्प मौद्गल्यायन ! हम बहुकृत्य बहुकरणीय हैं; अपना करणीय ( काम ) तो बोधा ही है, प्रायश्चित्त देवोंका ही करणीय ( बहुत है ) । और मार्प मौद्गल्यायन ! सु-श्रुत ( = अच्छी प्रकार सुना ), सुगृहीत = सु-भगसीकृत, सु-प्रधारित ( बात ) भी हमें सीधे ही मूल जाता है । मार्प मौद्गल्यायन ! पूर्वकालमें देवासुर-संग्राम जिता था । उस संग्राममें, मार्प मौद्गल्यायन ! देव विजयी हुये, असुर पराजित हुये । तो मार्प मौद्गल्यायन ! उस संग्रामको जीत, विजित-संग्राम हो, लौटकर मैंने वैजयन्त नामक प्रासादको बनवाया । मार्प मौद्गल्यायन ! वैजयन्त प्रासादके एक आसन ( = तल ) में सौ निर्यूह ( = खंड ) हैं । एक एक निर्यूहमें सात कूटागार हैं । एक एक कूटागारमें सात अप्सरायें हैं । एक एक अप्सराके पास सात सात परिचारिकायें हैं । मार्प मौद्गल्यायन ! क्या वैजयन्त प्रासादकी रमणीकताको देखना चाहते हो ?”

आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने मौन रह स्वीकार किया ।

तब देवोंका इन्द्र शक आयुष्मान् महा मौद्गल्यायनको आगे आगे कर, जहाँ वैजयन्त प्रासाद था, वहाँ गया । ० शकको परिचारिकाओंने दूरसे ही आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको आते देखा । देखकर, लजाती शर्माती अपनी अपनी कौठरियोंमें धुल गई । यह असुरको देखकर जैसे लजाती शर्माती है, वैसेही ० शकको परिचारिकायें आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको देख लजाती शर्माती अपनी अपनी कौठरियोंमें धुल गई ।

तब देवेन्द्र शक और महाराज वैश्रवण, आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको वैजयन्त प्रासाद दिखाने टहलाने लगे—

“मार्प मौद्गल्यायन ! देवों वैजयन्त प्रासादकी इस रमणीकताको भी । मार्प मौद्गल्यायन ! देवों वैजयन्त प्रासादकी इस रमणीकता को ।”

“पहिले पुण्य किये आयुष्मान् कौशिकका यह ( भवन ) सोहता है ।”

“मनुष्यभी थोड़ी रमणीकता देखकर कहते हैं—‘प्रायश्चित्त देवोंका ( भवन ) सोहता है, पहिले पुण्य किये आयुष्मान् कौशिकका यह ( भवन ) सोहता है’ ।”

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको ऐसा हुआ—‘यह वक्ष बहुत अधिक प्रमादी हो विहर रहा है; क्यों न मैं इस वक्षको उद्देक्षित करूँ ।’

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने ऐसी कज्जि प्रदर्शितकी, कि वैजयन्त प्रासादको पैरके अंगूठेसे संकम्पित ( = कम्पित ) = संग्रकम्पित-संप्रवेक्षित कर दिया । तब ० शक वैश्रवण



महाराज, और आर्यशिश देव आश्चर्य-चकित... हो गये—‘अहो ! अमणको महा-वृद्धि-मत्ता-महानुभावता ! जो कि ( उलने ) दिव्य-भयनको पैरके अंगूठेसे संकल्पित ० कर दिया ।

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ० शकको उद्भिन्न रोमांचित जान, शकसे यह कहा—

“कौशिक ! किस प्रकार भगवान् ने तुम्हें ०<sup>१</sup> सुक्तिके बारेमें कहा ० ।”

“मार्य मौद्गल्यायन ! मैं जहाँ भगवान् थे, वहाँ, जाकर भगवान् को अभिवादनकर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े मैंने भगवान् से यह कहा—‘कैसे भन्ते ! ०<sup>२</sup> देव-मनुष्योंमें श्रेष्ठ होता है ।’ मार्य मौद्गल्यायन ! इस प्रकार भगवान् ने तुम्हें ०<sup>३</sup> सुक्तिके बारेमें कहा ।”

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ० शकके भाषणका अभिनन्दन अनुमोदन कर, जैसे यलवान् पुरुष समेटी घाँहको फैलादे ०<sup>४</sup>, वैसेही आर्यशिश देव ( लोक )में अन्तर्धान हो, सुगारभाताके प्रासाद पूर्वोराममें प्रकट हुये । आयुष्मान् महामौद्गल्यायनके चले जानेके बोझीही देर बाद ० शककी परिचारिकाओंने देवेन्द्र, शकसे पूछा—

“मार्य ! यही वह तुम्हारे शास्ता (= गुरु ) थे ?”

“मार्यो ! यह मेरे शास्ता नहीं थे, यह मेरे सम्बन्धकारी (= गुरुभाई ) आयुष्मान् महामौद्गल्यायन थे ।”

“लाम है, मार्य ! जबकि तेरे सम्बन्धकारी ऐसे महा-वृद्धिमान् ऐसे महानुभाव हैं । अहो ! यह तुम्हारे भगवान् शास्ता ( कैसे होंगे ) !!”

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन, जहाँ भगवान् थे, वहीं गये, जाकर भगवान् को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने भगवान् से यह कहा—

“जानते हैं, भन्ते ! अभी एक प्रसिद्ध महाप्रतापी वज्रको भगवान् ने संक्षेपसे तृष्णा-क्षय-विमुक्तिको बतलाया था ?”

“जानता हूँ, मौद्गल्यायन !—देवेन्द्र शक जहाँ मैं था, वहाँ आया । आकर मुझे अभिवादनकर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े देवेन्द्र शकने मुझसे यह कहा—०<sup>५</sup> देव-मनुष्योंमें श्रेष्ठ होता है । मौद्गल्यायन ! मैं जानता हूँ—ऐसे मैंने देवेन्द्र शकको संक्षेपसे तृष्णा-क्षय-विमुक्तिको बतलाया था ।”

भगवान् ने यह कहा, सन्तुष्ट हो आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने भगवान् के भाषणका अभिनन्दन किया ।

## २८—महा-तण्हा-संखय-सुत्तन्त (१४।८)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे । उस समय साति केवट्ठपुत्त भिक्षुको ऐसी बुरी दृष्टि ( = धारणा ) उत्पन्न हुई थी—“मैं भगवान्‌के उपदेश किये धर्मको इस प्रकार जानता हूँ, कि वही विज्ञान संस्करण ( जन्म-मरणमें जाना ) करता है, संघावन ( = धावन ) करता है, अन्य नहीं ।

बहुतसे भिक्षुओंने सुना कि—साति केवट्ठपुत्त ( = कैवल्य-पुत्र ) भिक्षुको ऐसी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—० संघावन करता है ० । तब वह भिक्षु जहाँ साति केवट्ठपुत्त भिक्षु था, वहाँ गये । जाकर साति केवट्ठपुत्त भिक्षुसे यह बोले—

“सचमुच, आवुस साति ! तुम्हें इस प्रकारकी बुरी धारणा उत्पन्न हुई है ?—० संघावन करता है !”

“हाँ आवुसो ! ० संघावन करता है ० ।”

तब वह भिक्षु उस बुरी धारणासे हटानेके लिये साति केवट्ठपुत्त भिक्षुको समझाते बुझाते समनुप्राचण करने लगे—

“आवुस साति ! मत ऐसा कहो, मत भगवान् पर झूठ लगानो । भगवान् पर झूठ लगाना ठीक नहीं है । भगवान् ऐसा नहीं कहते । आवुस साति ! भगवान्‌ने अनेक प्रकारसे विज्ञानको प्रतीत्य-समुत्पन्न ( कार्य-कारणसे उत्पन्न ) कहा है । प्रत्यय (= हेतु ) के बिना विज्ञान (= चेतना ) का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता ।”

इस प्रकार उन भिक्षुओंद्वारा समझाये बुझाये जाने पर भी केवट्ठपुत्त साति भिक्षु, उसी बुरी धारणाको हटानेसे एकदम कहता था—“मैं भगवान्‌के उपदिष्ट धर्मको इस प्रकार जानता हूँ ० ।” जब वह भिक्षु केवट्ठपुत्त साति भिक्षुकी उस बुरी धारणाको न हटा सके, तब जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये—“उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह कहा—

“मन्ते ! केवट्ठपुत्त साति भिक्षुको ऐसी बुरी धारणा ( = पापदृष्टि ) उत्पन्न हुई है—“मैं भगवान्‌के उपदिष्ट धर्मको इस प्रकार जानता हूँ ० । हमने मन्ते !” सातिकी इस बुरी धारणाको सुना । तब हम मन्ते !” साति भिक्षुके पास—“जाकर यह बोले—सचमुच आवुस साति ! तुम्हें इस प्रकार ० ?” “हाँ आवुसो ! ०” जब हम मन्ते !” साति भिक्षुकी इस बुरी धारणाको न हटा सके, तब हमने जाकर इस बातको भगवान्‌से कहा ।”

तब भगवान्‌ने एक भिक्षुको संबोधित किया—“आओ भिक्षु ! तुम मेरी ओरसे केवट्ठपुत्त

१ देखो ऊपर ।



साति भिक्षुको बोलना—‘आवुस साति ! शास्ता ( = उपदेशक, बुद्ध ) तुम्हें बुला रहे हैं ।’

“अच्छा, भन्ते !—”( कह ) वह भिक्षु...साति भिक्षुके पास...जाकर यह बोला—  
“आवुस ! शास्ता तुम्हें बुला रहे हैं ।”

“अच्छा, आवुस !”—कहा...केवटपुत्र साति भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे...साति भिक्षुको भगवान्‌ने यह कहा—

“सचमुच, साति ! तुझे इस प्रकारकी बुरी धारणा हुई है—‘मैं भगवान्‌के ० ?’”

“हाँ, भन्ते ! मैं भगवान्‌के उपदिष्ट धर्मको इस प्रकार जानता हूँ; कि वही विज्ञान संस्मरण, संधावन करता है, वृत्त नहीं ।”

“साति ! वह विज्ञान क्या है ?”

“यह जो भन्ते ! वक्ता, अनुभव-कर्ता है, जो कि तहाँ तहाँ ( जन्म लेकर ) अच्छे, बुरे कर्मोंके विपाकको अनुभव करता है ।”

“मोघपुरुष ! तुमने किसको मुझे ऐसा उपदेश करते सुना ? मैंने तो मोघपुरुष ! अनेक प्रकारसे विज्ञानको प्रतीत्य-समुत्पन्न कहा है; प्रत्ययके बिना विज्ञानका प्रादुर्भाव नहीं हो सकता ( —कहा है ) । मोघपुरुष ! तू अपनी ठीकसे न समझी बातका हमारे पर लांछन लगाता है; अपना लुकसान कर रहा है, और बहुत पाप कमा रहा है; मोघपुरुष ! यह तेरे लिये दीर्घकाल तक बहितकर, दुःखकर होगा ।”

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

“तो क्या मानते हो, भिक्षुओ ! क्या इस...साति भिक्षुने इस धर्म-विनय ( = धर्म ) में योधा भी अवगाहन कर पाया ( = उल्लंघित ) है ?”

“क्या कर पायेगा, भन्ते ! नहीं भन्ते !”

ऐसा कहने पर केवटपुत्र साति भिक्षु सुमग्गुम् हो, सूक्ष्म हो, कंधा गिराकर, नाँचे मुँह करके चिन्तामें पड़, प्रतिभाहीन हो बैठा रहा । तब भगवान्‌ने...साति भिक्षुको सुमग्गुम् हो ० प्रतिभाहीन हो बैठे देख... ( उसे ) यह कहा—

“मोघपुरुष ! जानेगा तू इस अपनी बुरी धारणाको । अब मैं भिक्षुओंको पूछता हूँ ।”

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

“भिक्षुओ ! तुमने मुझे ऐसा धर्म उपदेश करते देखा है, जैसे कि...साति भिक्षु अपनी ठीकसे न समझी बातका, हमारे पर लांछन लगाता है; अपना लुकसान कर रहा है; और बहुत पाप कमा रहा है ?”

“नहीं भन्ते ! भगवान्‌ने तो भन्ते ! हमें अनेक प्रकारसे विज्ञानको प्रतीत्य-समुत्पन्न कहा है; प्रत्ययके बिना विज्ञानका प्रादुर्भाव नहीं होता है ( —कहा है ) ।”

“साधु, भिक्षुओ ! तुम इस प्रकार मेरे उपदेशित धर्मको ठीकसे जानते हो—‘अनेक प्रकारसे ० प्रादुर्भाव नहीं हो सकता’ तो भी यह...साति भिक्षु अपनी ठीकसे न समझी ० यह उसके लिये दीर्घकाल तक बहितकर दुःखकर होगा ।

“भिक्षुओ ! जिस जिस प्रत्यय ( = निमित्त ) से विज्ञान उत्पन्न होता है, वही वही उसकी संज्ञा ( = नाम ) होती है । चक्षु ( = आँख ) के निमित्तसे रूपमें ( जो ) विज्ञान उत्पन्न होता है;

<sup>१</sup> मोघी ( बनारसी हिन्दी ) = फुलका आदमी ।

चक्षु-विज्ञान ही उसकी संज्ञा होती है। श्रोत्रके निमित्तसे शब्दमें ( जो ) विज्ञान उत्पन्न होता है; श्रोत्र-विज्ञान ही उसकी संज्ञा होती है। घ्राण (= नाक )के निमित्तसे रसमें ( जो ) विज्ञान उत्पन्न होता है, घ्राण-विज्ञान ही उसकी संज्ञा होती है। जिह्वाके निमित्तसे रसमें ( जो ) विज्ञान उत्पन्न होता है, रस-विज्ञान ही उसकी संज्ञा होती है। कायाके निमित्तसे स्पर्श (= छुये जानेवाले विषय )में ( जो ) विज्ञान उत्पन्न होता है, काय-विज्ञान ही उसका नाम होता है। मनके निमित्तसे धर्म (= उपरोक्त पाँच बाहरी इन्द्रियोंसे प्राप्त ज्ञान )में ( जो ) विज्ञान उत्पन्न होता है, मनो-विज्ञान ही उसकी संज्ञा होती है।

“जैसे कि, मिथुनो ! जिस जिस निमित्त (= प्रत्यय)को लेकर ( जो ) आग जलती है, वही वही उसकी संज्ञा होती है। काष्ठके निमित्तसे ( जो ) आग जलती है, काष्ठ-अग्नि ही उसकी संज्ञा होती है। ( लकड़ोंकी ) चुड़ोंके निमित्तसे जो आग जलती है, चुड़ोंकी आग ही उसकी संज्ञा होती है। तृणके निमित्तसे ( जो ) आग जलती है, तृण-अग्नि ही उसकी संज्ञा होती है। कंदे (= गोमय)के निमित्तसे ( जो ) आग जलती है, कंदेकी आग ही उसकी संज्ञा होती है। भूसी (= मृत्तु)के निमित्तसे ( जो ) आग जलती है, भूसीकी आग ही उसकी संज्ञा होती है। कुड़े (= संस्कार)के निमित्तसे ( जो ) आग जलती है, कुड़ेकी आग ही उसकी संज्ञा होती है। ऐसे ही मिथुनो ! जिस जिस निमित्तसे विज्ञान उत्पन्न होता है, वही वही उसकी संज्ञा होती है। चक्षुके निमित्तसे ०<sup>१</sup> मनो-विज्ञान ही उसकी संज्ञा होती है।

“मिथुनो ! इस ( पाँच स्कंधों<sup>२</sup> )को उत्पन्न देखते हो ?”

“हाँ, भन्ते !”

“मिथुनो ! अपने आहारसे ( उन्हें ) उत्पन्न हुआ देखते हो ?”

“हाँ, भन्ते !”

“मिथुनो ! जो उत्पन्न होने वाला है, अपने आहारके निरोधसे वह निरुद्ध (= नष्ट) होनेवाला होता है—इसे देखते हो ?”

“हाँ, भन्ते !”

“मिथुनो ! ‘यह ( पाँच स्कंध ) उत्पन्न हुआ है, या नहीं’—यह दुविधा करते सन्देह (= विचिकित्सा) उत्पन्न होती है न ?”

“हाँ, भन्ते !”

“मिथुनो ! अपने आहारसे उत्पन्न हुआ है, या नहीं—० ?”

“हाँ, भन्ते !”

“मिथुनो ! जो उत्पन्न होनेवाला है, ( वह ) अपने आहार (= स्थितिके आधार)के निरोधसे निरुद्ध होनेवाला होता है, या नहीं—यह दुविधा करते सन्देह उत्पन्न होता है न ?”

“हाँ, भन्ते !”

“मिथुनो ! ‘यह (= पाँच स्कंध) उत्पन्न है’—यह अच्छी प्रकार प्रज्ञासे देखने पर सन्देह नष्ट हो जाता है न ?”

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ १५२-५३ । <sup>२</sup> रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान यह पाँच स्कंध हैं। वेदना, संज्ञा, संस्कार रूपके संबंधसे विज्ञानहीकी तीन अवस्थाएँ हैं, इस प्रकार यह उसके अन्तर्गत है। पृथिवी, अक्ष, अग्नि, वायु रूप-स्कंध हैं। जिसमें न आरोपन है, और जो न जगह भरता है, वह विज्ञान-स्कंध है। रूप (= Matter) और विज्ञान (= Mind)के मेलसे ही सारा संसार बना है।



“हाँ, भन्ते !”

“मिथुजो ! इसे अपने आहारसे उत्पन्न ० । ० ‘वो उत्पन्न होनेवाला है, ( वह ) अपने आहारके निरोधसे निरुद्ध होने वाला होता है’—यह ठीकसे अच्छी प्रकार प्रज्ञासे देखने पर सन्देह नष्ट हो जाता है न ?”

“हाँ, भन्ते !”

“मिथुजो ! ‘यह ( वचन सर्वत्र ) उत्पन्न है’—इस ( विषयमें ) तुम सन्देह-रहित हो न ?”

“हाँ, भन्ते !”

“मिथुजो ! ‘यह अपने आहारसे उत्पन्न है’—इस ( विषय )में भी तुम सन्देह-रहित हो न ?”

“हाँ, भन्ते !”

“० अपने आहारके निरोधसे निरुद्ध होनेवाला होता है—इस ( विषय )में भी तुम सन्देह-रहित हो न ?”

“हाँ, भन्ते !”

“मिथुजो ! ‘यह उत्पन्न है’—इसे ठीकसे अच्छी प्रकार जानना सुदृष्ट ( = अच्छा दर्शन ) है न ?”

“हाँ, भन्ते !”

“मिथुजो ! ‘( यह ) अपने आहारसे उत्पन्न है—० । ० अपने आहारके निरोधसे निरुद्ध होने वाला होता है’—यह ठीकसे अच्छी प्रकार जानना सुदृष्ट है न ?”

“हाँ, भन्ते !”

“मिथुजो ! क्या तुम इस ऐसे परिशुद्ध, उज्ज्वल, दृष्ट ( = दर्शन, ज्ञान )में भी आसक्त होगे, रमोगे, ‘( मेरा ) धन है’—समझोगे, समझा करोगे ? मिथुजो ! ( मेरे ) उपदेशों धर्मको कुल ( = नदी पार करनेके वेले )के समान, ( यह ) पार होनेके लिये है, पकड़ कर रखनेके लिये नहीं है—( समझोगे ) ?”

“( पकड़ कर रखनेके लिये ) नहीं है भन्ते !”

“मिथुजो ! तुम इस ऐसे परिशुद्ध, उज्ज्वल, दृष्टमें भी आसक्त न होना, न रमना, ‘( मेरा ) धन’ है—न समझना, समझा न करना । बल्कि मिथुजो ! मेरे उपदेशों धर्मको कुल ( = वेड़े )के समान समझना, ( यह ) पार होनेके लिये है, पकड़ रखनेके लिये नहीं है ।”

“हाँ, भन्ते !”

“मिथुजो ! उत्पन्न प्राणियोंकी स्थितिके लिये, आगे उत्पन्न होने वाले ( सत्त्वों )की सहायता ( = अनुग्रह )के लिये यह चार आहार हैं । कौनसे चार ?—( पहिला ) स्थूल या सूक्ष्म कवलीकार ( = कवल, कवल करके लाने योग्य ) आहार; दूसरा स्पर्श ( आहार ); तीसरा प्रमन-संवेतना ( = मनसे विषयका ब्यालकरके तृप्तिप्राम करना ), चौथा विज्ञान ( = चेतना ) ।

“मिथुजो ! इन चार आहारोंका क्या निदान ( = हेतु ) है = क्या समुदय है ? ( यह ) किससे जन्मे है = किससे संभूत है ?—मिथुजो ! इन चारों आहारोंका निदान है तृष्णा । ० समुदय है, तृष्णा । यह जन्मे है तृष्णासे = यह संभूत है तृष्णासे ।

“मिथुजो ! इस तृष्णाका क्या निदान है ० ?—० वेदना ० ।

“० वेदना ० ?—० स्पर्श ० ।

“० स्पर्श ०<sup>१</sup> ?—० षड्-आयतन<sup>१</sup> ० ।

“० षड्-आयतन ०<sup>१</sup> ?—० नाम-रूप<sup>१</sup> ० ।

“० नाम-रूप ०<sup>१</sup> ?—० विज्ञान ० ।

“० विज्ञान ०<sup>१</sup> ?—० संस्कार ० ।

“० संस्कार ०<sup>१</sup> ?—० अविद्या ० ।

“इस प्रकार भिक्षुओ ! अ-विद्याके कारण संस्कार होता है, संस्कारके कारण विज्ञान, विज्ञानके कारण नाम-रूप, नाम-रूपके कारण षड्-आयतन, षड्-आयतनके कारण स्पर्श, स्पर्शके कारण वेदना, वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णाके कारण उपादान ( = ग्रहण या ग्रहण करनेकी इच्छा ), उपादानके कारण भव ( = संसार ), भवके कारण जन्म, जन्मके कारण जरा-मरण, शोक, रोना-काँदना, दुःख = दीर्घमनस्य, हैरानी-परेशानी होती है । इस प्रकार इस केवल ( = सात्त्विक ) दुःख-स्कन्ध ( = दुःख-समुदाय )की उत्पत्ति होती है ।

“भिक्षुओ ! जाति ( = जन्म )के कारण जरा-मरण होता है—यह जो कहा । भिक्षुओ ! जातिके कारण जरा-मरण होता है या नहीं—इसमें तुम्हें क्या जान पड़ता है ?

“जातिके कारण जरा-मरण होता है । भन्ते ! हमको यहो जान पड़ता है, कि जातिके कारण जरा-मरण होता है ।

“भिक्षुओ ! भवके कारण जाति ( = जन्म ) होती है—यह जो कहा । भिक्षुओ ! भवके कारण जाति होती है या नहीं—इसमें तुम्हें क्या जान पड़ता है ?”

“० भवके कारण, भन्ते ! जाति होती है ० ।”

“० उपादानके कारण ०<sup>१</sup> ?—० ।”

“० तृष्णाके कारण ०<sup>१</sup> ?—० ।”

“० वेदनाके कारण ०<sup>१</sup> ?—० ।”

“० स्पर्शके कारण ०<sup>१</sup> ?—० ।”

“० षड्-आयतनके कारण ०<sup>१</sup> ?—० ।”

“० नाम-रूपके कारण ०<sup>१</sup> ?—० ।”

“० विज्ञानके कारण ०<sup>१</sup> ?—० ।”

“० संस्कारके कारण ०<sup>१</sup> ?—० ।”

“० अविद्याके कारण ०<sup>१</sup> ?—० ।”

“साधु, भिक्षुओ ! तुमभी भिक्षुओ ! इस प्रकार कहो, मैं भी ऐसेही कहता हूँ—‘इसके होनेपर यह होता है, इसके उत्पन्न होनेसे यह उत्पन्न होता है’—जो कि यह अविद्याके कारण संस्कार, संस्कारके कारण विज्ञान, विज्ञानके कारण नाम-रूप, नाम-रूपके कारण षड्-आयतन, षड्-आयतनके कारण स्पर्श, स्पर्शके कारण वेदना, वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णाके कारण उपादान, उपादानके कारण भव, भवके कारण जाति, जातिके कारण जरा-मरण, जरा-मरणके कारण शोक, रोना-काँदना, दुःख = दीर्घमनस्य, हैरानी-परेशानी होती है ।—इस प्रकार इस केवल दुःख-स्कन्ध ( = दुःख-पुञ्ज )की उत्पत्ति होती है ।

<sup>१</sup> ऊपरकी तरह ।

<sup>२</sup> चक्षु आदि पाँच बाहरी इन्द्रियों और छठा भीतरी इन्द्रिय मन, यह छः आयतन है । <sup>३</sup> रूप भूतोंकी कल्पे है, और नाम विज्ञानकी ( देखो टिप्पणी पृष्ठ १५४ ) ।



“अविद्याके पूर्णतया विरक्त होनेसे, ( अविद्याके ) नष्ट होनेसे संस्कारका नाश (= निरोध ) होता है, संस्कारके निरोधसे विज्ञानका निरोध होता है, विज्ञानके निरोधसे नाम-रूपका निरोध होता है, नाम-रूपके निरोधसे षड्-आयतनका निरोध होता है, षड्-आयतनके निरोधसे स्पर्शका निरोध होता है, स्पर्शके निरोधसे वेदनाका निरोध होता है, वेदनाके निरोधसे तृष्णाका निरोध होता है, तृष्णाके निरोधसे उपादानका निरोध होता है, उपादानके निरोधसे भवका निरोध होता है, भवके निरोधसे जातिका निरोध होता है, जातिके निरोधसे जरा-मरण, शोक, रोने-काँदने, दुःख = दोर्मनस्य, हैरानी-परेशानीका निरोध होता है।—इस प्रकार इस केवल दुःख-व्योषका निरोध होता है।

“भिक्षुओ ! ‘जातिके निरोधसे जरा-मरणका निरोध होता है’—यह जो कहा। भिक्षुओ ! जातिके निरोधसे जरामरणका निरोध होता है या नहीं होता—यहाँ तुम्हें कैसा जान पड़ता है ?”

“ ‘जातिके निरोधसे जरामरणका निरोध होता’ भन्ते ! ( यहाँ ) भन्ते ! हमें होता है—जातिके निरोधसे जरा-मरणका निरोध होता है ।”

“० भवके निरोधसे ० ?—० ।”

“० उपादानके निरोधसे ० ?—० ।”

“० तृष्णाके निरोधसे ० ?—० ।”

“० वेदनाके निरोधसे ० ?—० ।”

“० स्पर्शके निरोधसे ० ?—० ।”

“० षड्-आयतनके निरोधसे ० ?—० ।”

“० नाम-रूपके निरोधसे ० ?—० ।”

“० विज्ञानके निरोधसे ० ?—० ।”

“० संस्कारके निरोधसे ० ?—० ।”

“० अविद्याके निरोधसे ० ?—० ।”

“साधु, भिक्षुओ ! तुमभी भिक्षुओ ! इस प्रकार कहो, मैं भी ऐसे कहता हूँ—‘इसके न होनेपर यह नहीं होता, इसके निरोध होनेपर इसका निरोध होता है’; जो कि यह अविद्याके निरोधसे संस्कारका निरोध होता है; संस्कारके निरोधसे विज्ञानका निरोध होता है, ० नाम-रूप ०, ० षड्-आयतन ०, ० स्पर्श ०, ० वेदना ०, ० तृष्णा ०, ० उपादान ०, ० भव ०, ० जातिके निरोधसे जरा-मरण, शोक, रोने-काँदने, दुःख = दोर्मनस्य, हैरानी-परेशानीका निरोध होता है।

“भिक्षुओ ! इस प्रकार ( पूर्वांश कमसे ) जानते देखते हुये क्या तुम पूर्वे के ओर (= पूर्व-अन्त = पुराने समय या पुराने जन्म ) की ओर दौड़ोगे—‘अहो ! क्या हम अतीत-कालमें थे, या हम अतीत-कालमें नहीं थे ? अतीत-कालमें हम क्या थे ? अतीत-कालमें हम कैसे थे ? अतीत-कालमें क्या होकर हम क्या हुये थे ?’”

“नहीं, भन्ते !”

“भिक्षुओ ! इस प्रकार जानते देखते हुये, क्या तुम यादके ओर (= अपर-अन्त = आगे जाने वाले समय ) की ओर दौड़ोगे—‘अहो ! क्या हम भविष्य कालमें होंगे, या हम भविष्य कालमें नहीं होंगे ? भविष्य कालमें हम क्या होंगे ? ० हम कैसे होंगे ? भविष्य कालमें क्या होकर हम क्या होंगे ?’”

“नहीं, मन्ते !”

“मिथुजो ! इस प्रकार जानते देखते हुये, क्या तुम इस वर्तमान कालमें अपने भीतर इस प्रकार कहने-सुनने वाले ( = कथकथो ) होगे—‘अहो ! क्या मैं हूँ, ० या मैं नहीं हूँ ? मैं क्या हूँ ? मैं कैसा हूँ ? यह सत्य ( = प्राणी ) कहाँसे आया ? वह कहाँ जानेवाला होगा ?’—?”

“नहीं, मन्ते !”

“मिथुजो ! इस प्रकार देखते जानते क्या तुम ऐसा कहोगे—‘शाला ( = उपदेष्टा ) हमारे गुरु हैं, शालाके गौरव( के ज्वाल )से हम ऐसा कहते हैं’—?”

“नहीं, मन्ते !”

“० ऐसा कहोगे—‘ब्रमण( = संन्यासी )ने हमें ऐसा कहा, ब्रमणके वचनसे हम ऐसा कहते हैं’—?”

“नहीं, मन्ते !”

“मिथुजो ! इस प्रकार देखते जानते क्या तुम दूसरे शालाके अनुगामी होगे !”

“नहीं, मन्ते !”

“० क्या तुम नाना ब्रमण ग्राहकोंके ( जो वह ) व्रत, कौतुक, संगल (संबंधी क्रियाएँ ) हैं, उन्हें सारके तौर पर ग्रहण करोगे ?”

“नहीं, मन्ते !”

“क्या मिथुजो ! जो तुम्हारा अपना जाना है, अपना देखा है, अपना अनुभव किया है; उसीको तुम कहते हो ?”

“हाँ, मन्ते !”

“साधु, मिथुजो ! मैंने मिथुजो ! तुम्हें समयांतरमें नहीं तत्काल फलदायक, यही दिखाई देनेवाले, विज्ञों द्वारा अपने आपमें जानने योग्य इस धर्मके पास उपनीत किया ( = पहुँचाया ) है। मिथुजो ! ‘यह धर्म समयांतरमें नहीं’ तत्काल फलदायक है, ( इसका परिणाम ) यही दिखाई देनेवाला है, ( यह ) विज्ञोंद्वारा अपने आपमें जानने योग्य है’—यह जो कहा है, वह इसी ( उक्त कारण )से ही कहा है।

“मिथुजो ! तीनोंके एकत्रित होनेसे गर्भ धारण होता है—माता और पिता एकत्र होते हैं, किंतु माता क्लृप्त होती नहीं होती और गंधर्व<sup>१</sup> उपस्थित नहीं होता; तो गर्भ-धारण नहीं होता। माता-पिता एकत्र होते हैं, माता क्लृप्त होती है; किंतु, गंधर्व उपस्थित नहीं होता, तो भी गर्भ-धारण नहीं होता। जब माता-पिता एकत्र होते हैं, माता क्लृप्त होती है, और गंधर्व उपस्थित होता है; इस प्रकार तीनोंके एकत्रित होनेसे गर्भ-धारण होता है। तब उस गर्भ-धारण-वाले गर्भको बड़े संशयके साथ माता कोलमें ली या इस मात धारण करती है। फिर उस गर्भ आरवाले गर्भको बड़े संशयके साथ माता ली या इस मातके बाध जन्मती है। तब उस जात ( = सन्तान )को मिथुजो ! माता अपनेही लोहितसे पोसती है। मिथुजो ! आर्योंके मतमें यह लोहित ( = रक्त ) ही है, जो कि यह माताका दूध है।

“तब मिथुजो ! वह कुमार यदा होने पर, इन्द्रियोंके परिपक्व होने पर जो वह बच्चोंके खिलौने हैं, जैसे कि—बंकक ( = बंका ), घटिक ( = घबिया ), मोक्षचिक ( = मुँहका लट्क ),

<sup>१</sup> उत्पन्न होनेवाला चेतना-प्रवाह । देखो अभिषर्माकोश ( १८१२ ), पृष्ठ ३५४ ।



चिगुलक ( = चिगुलिवा ), पात्र-भाइक ( = तराजूका खिलौना ), रथक ( = खिलौनेकी गाड़ी ), चतुक् ( = चतुही )—इनसे खेलता है ।

“तब मिथुनो ! वह कुमार ( और ) बड़ा होने पर, इन्द्रियोंके परिपक्व होने पर, संयुक्त संलक्षित हो, पाँच ( प्रकारके ) काम-गुणों ( = विषय-भोगों )—चक्षुसे विज्ञेय इष्ट ( = अभिलषित ) कान्त ( = कमनीय ), मनोज्ञ, प्रिय, कामनायुक्त, रंजनीय रूपों, श्रोत्रसे विज्ञेय ० शब्दों; घ्राणसे विज्ञेय ० गंधों; विज्ञेय ० रसों; कायसे विज्ञेय ० स्पर्शों—को संतन करता है । वह चक्षु ( = आँख )से प्रिय रूपोंको देखकर राग-युक्त होता है, अ-प्रिय रूपोंको देखकर द्वेष-युक्त होता है । कायिक स्मृति ( = होश )को न कायम रख छोटे चित्तसे विहरता है । ( वह ) उस चित्तकी विमुक्ति और प्रज्ञाकी विमुक्ति ( = मुक्ति )का ठीकसे ज्ञान नहीं करता, जिससे कि उसकी सारी बुराइयाँ = अकृशाल-धर्म निरुद्ध हो जायें । वह इस प्रकार अनुरोध ( = राग ), विरोधमें पड़ा, सुखमय दुःखमय न-सुख-न-दुःखमय—जिस किसी वेदनाको वेदन ( = अनुभव ) करता है; उसका वह अभिनन्दन करता है, अभिवादन करता है, अवगाहन करता है । इस प्रकार अभिनन्दन करते, अभिवादन करते, अवगाहन करते रहते उसे नन्दी ( = तृष्णा ) उत्पन्न होती है । वेदनाओंके विषयमें जो यह नन्दी है, ( यही ) उसका उपादान है, उसके उपादानके कारण भव होता है, भवके कारण जाति, जातिके कारण जारामरण, शोक, रोता-काँदना, दुःख = दीर्घमरण, हैरानी-परेशानी होती है । इस प्रकार इस केवल दुःख-स्वभावकी उत्पत्ति = समुदय, होता है । वह श्रोत्रसे प्रिय शब्दोंको सुन कर ०<sup>१</sup> । घ्राणसे प्रिय गंधोंको सूँघ कर ०<sup>१</sup> । ० जिह्वामें प्रिय रसोंको चख कर ०<sup>१</sup> । ० कायसे प्रिय स्पर्शोंको छू कर ०<sup>१</sup> । ० मनसे प्रिय धर्मोंको जान कर ० । इस प्रकार इस केवल दुःख-स्वभावकी उत्पत्ति होती है ।

“मिथुनो ! यहाँ लोकमें तथागत, अर्हत्, सम्मक-संयुद्ध, विद्या-आचरण-युक्त, सुगत, लोक-विद्, पुरुषोंके अनुपम-बाहुक-सवार, देवताओं-और-मनुष्योंके उपदेष्टा भगवान् बुद्ध उत्पन्न होते हैं । वह महालोक, मारलोक, देवलोक सहित इस लोकको, देव-मनुष्य-सहित अमण-ब्राह्मण-युक्त ( सभी ) प्रजाको स्वयं समझ कर = साक्षरत्वात्कार कर ( धर्मको ) बतलाते हैं । वह आदिमें कल्याण-कारी, मध्यमें कल्याण-कारी, अन्तमें कल्याण-कारी धर्मको जय-सहित = स्वज्ञान-सहित उपदेष्टाते हैं । वह केवल ( = मिश्रण-रहित ) परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यको प्रकाशित करते हैं । उस धर्मको गृहपति या गृहपतिष्ठा पुत्र, या और किसी छोटे कुलमें उत्पन्न ( पुरुष ) सुनता है । वह उस धर्मको सुनकर तथागतके विषयमें अद्भुत काम करता है । वह उस अद्भुत-कामसे संयुक्त हो सोचता है—“गृह-बाल बंजाल है, ब्रैलका मार्ग है । प्रवज्या ( = संन्यास ) सौदान ( सा खुला स्थान ) है । इस नितान्त सर्वथा-परिपूर्ण, सर्वथा-परिशुद्ध, ऊँचादे शंख जैसे ( उज्ज्वल ) ब्रह्मचर्यका पालन धर्ममें रहते सुकर नहीं है । क्यों न मैं सिर-दाढ़ी मुँडाकर, काषाय वस्त्र पहन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हो जाऊँ ?” सो वह दूसरे समय अपनी अवस्था भोग-राशिको या महा-भोग-राशिको अवस्था-भोग-मंडलको या महा-भोग-मंडल को छोड़, सिर-दाढ़ी मुँडा, काषाय वस्त्र पहिन घरसे बेघर हो प्रव्रजित ( = संन्यासी ) होता है ।

“वह इस प्रकार प्रव्रजित हो, मिथुनोंकी शिक्षा, समान-जीविकाको प्राप्त हो, प्राणालि प्राप्त छोड़, प्राणिहिंसासे क्लृप्त होता है । ईड-स्यामी, शस्त्र-स्यामी, छज्जालु, द्वाजालु, सर्व प्राणियों, सारे प्राणि-भूतोंका हित और अनुकंपक हो विहरता है । अ-दिग्वादान ( = चोरी )

छोड़, विधादायी (= दियेका लेनेवाला), दियेका चाहनेवाला, "चक्रिवात्मा हो विहरता है। अ-महाचर्यको छोड़ महाचारी हो, आनन्द-चर्म मयुनसे विरत हो, आर-चारी (= दूर रहनेवाला) होता है। सुधावादको छोड़, सुधावादसे विरत हो, सत्यवादी सत्य-संघ, शोषका अ-विसंवादक = विधास-पात्र" होता है। पिशुन-वचन (= चुगली) छोड़, पिशुन-वचनसे विरत होता है—इन्हें फोड़नेके लिये यहाँसे सुनकर यहाँ कहनेवाला नहीं होता; या उन्हें फोड़नेके लिये यहाँसे सुनकर यहाँ कहनेवाला नहीं होता। (वह तो) फूटोंको मिलानेवाला, मिले हुएोंको न फोड़नेवाला, एकतामें प्रसन्न, एकतामें रत, एकतामें आनन्दित हो, एकता करनेवाली वाणीका बोलनेवाला होता है। कटुवचन छोड़ कटु-वचनसे विरत होता है। जो वह वाणी "कर्ण-सुखा, प्रेमणीया, हृदयंगमा, सम्म, बहुजन-कान्ता = बहुजन-मनापा है, वैसी वाणीका बोलनेवाला होता है। प्रलापको छोड़ प्रलापसे विरत होता है। सम्य देखकर बोलनेवाला, यथार्थवादी = अर्थ-वादी, धर्म-वादी, विनय-वादी हो, तान्पर्य-युक्त, फल-युक्त, सार्थक, सारयुक्त वाणीका बोलनेवाला होता है।

"वह बीज-समुदाय, भूत-समुदायके विनाशसे विरत होता है। एकहारी, रातको उपरत-विकाल (= मध्याह्नोत्तर)-भोजनसे विरत होता है। माला, गंध, विलेपनके धारण, मंथन, विमू-षणसे विरत होता है। उच्च-शयन और महाशयनसे विरत होता है। सोना चाँदी लेनेसे विरत होता है। कच्चा अनाज लेनेसे विरत होता है। कच्चा मांस लेनेसे विरत होता है। की-कुमारी ०, दासी-दास ०, भेष-बहरी ०, मुर्गी-मुंजर ०, हाथी-गाय ०, घोड़ा-बोही ०, सेत-कर लेनेसे विरत होता है। वृत्त धन कर जानेसे विरत होता है। कय-किकय करनेसे विरत होता है। तराजूकी ठगी, काँसेकी ठगी, मान (= मन, सेर आदि तोल)की ठगीसे विरत होता है। धूस, बंधना, जाल-साजी, कुटिल-योग ०। छेदन, बच, बंधन, छाप्रा मारने, ग्राम आदिके विनाश करने, हाका बालनेसे विरत होता है।

"वह शरीरके यक्ष, और पेटके लानेसे सन्तुष्ट रहता है। वह जहाँ जहाँ जाता है ( अपना सामान ) लिये ही जाता है; जैसे कि यक्षी जहाँ कहीं उषता है, अपने पक्ष-मारके साथ ही उषता है। इसी प्रकार मिथु शरीरके यक्ष, और पेटके लानेसे सन्तुष्ट रहता है। ०। वह इस प्रकार आर्य (= निर्दोष) शील-स्कंध (= सदाचार-समूह) से युक्त हो, अपने भीतर निर्मल सुखको अनुभव करता है।

"वह आँखसे रूपको देखकर, निमित्त (= आकृति आदि) और अनुप्यंजन (= चिन्ह) का ग्रहण करनेवाला नहीं होता। चूँकि चक्षु इन्द्रियको अ-रक्षित रख विहरनेवालेको, राग, द्वेष, दुःखाद्वय = अ-कुशल धर्म उत्पन्न होते हैं; इसलिये वह उसे सुरक्षित रखता है; चक्षु-इन्द्रियकी रक्षा करता है = चक्षु-इन्द्रियमें संवर ग्रहण करता है। वह श्रोत्रसे शब्द सुनकर निमित्त और अनुप्यंजनका ग्रहण करनेवाला नहीं होता ०। घ्राणसे गंध ग्रहण कर ०। जिह्वासे रस ग्रहण कर ०। काशसे स्पर्श ग्रहण कर ०। मनसे धर्म ग्रहण कर ०। इस प्रकार वह आर्य इन्द्रिय-संवरसे युक्त हो, अपने भीतर निर्मल सुखको अनुभव करता है।

"वह आने-जानेमें, जानकर करनेवाला (= संप्रजन्म-युक्त) होता है। अवलोकन-विलोकनमें संप्रजन्म-युक्त होता है। समेटने-कैलानेमें ०, संधाटी-पात्र-बोकरके धारण करनेमें ०, क्षामधान, मौज्ज-आस्थादानमें ०। मल-मूत्र विसर्जनमें ०, जाते-थड़े होते, बैठते, सोते-जागते, बोलते सुप रहते ०। इस प्रकार वह आर्य स्मृति-संप्रजन्मसे युक्त हो, अपने भीतर निर्मल सुखको अनुभव करता है।

"वह इस आर्य-शील-स्कंधसे युक्त, इस आर्य इन्द्रिय-संवरसे युक्त, इस आर्य स्मृति-संप्र-जन्मसे युक्त हो, एकान्तमें—आरण्य, झुल-काया, पर्वत, कन्दरा, मिरि-गुहा, इमशान, वन-प्रान्त,



सुखे मैदान, या पुष्पलके गंजमें—वास करता है। वह भोजनके बाद—भासन मार कर, कायाको सीधा रख, स्मृतिको सम्मुख धरा कर बैठता है। वह लोकमें (१) अभिध्या (= लोभ) को छोड़, अभिध्या-रहित चित्त वाला हो विहरता है; चित्तको अभिध्यासे शुद्ध करता है। (२) व्यापाद (= द्वेष) को छोड़ कर, व्यापाद-रहित चित्त-वाला हो, सारे प्राणियोंका हितानुकम्पी हो विहरता है; व्यापादके दोषसे चित्तको शुद्ध करता है। (३) स्त्यान-मृद (= शारीरिक मानसिक आलस्य) को छोड़ स्त्यान-मृद-रहित हो, आलोक-संज्ञा वाला (= रोशन-ज्वाल) हो, स्मृति और संप्रजन्म (= होश) से युक्त हो विहरता है ०। (४) औद्धत्य-कौकृत्य (= उद्धतपने और हिचकिचाहट) को छोड़, अनुदत भीतरसे शान्त हो विहरता है ०। (५) विचिकित्सा (= सन्देह) को छोड़, विचिकित्सा-रहित हो, निस्संकोच भलाइयोंमें ( लग्न ) हो विहरता है; विचिकित्सासे चित्तको शुद्ध करता है।

“वह इन ( अभिध्या आदि ) पाँच जोवरणोंको चित्तसे इटा, उपक्लेशों (= चित्त-मलों ) को जान, उनके दुर्घल करनेके लिये, काम (= विषयों ) से अलग हो, बुराईयोंसे अलग हो, विवेकसे उत्पन्न एवं वितर्क-विचार-युक्त प्रीति-सुख-वाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। और फिर मिश्रुजो! वह वितर्क और विचारके शान्त होने पर, भीतरको प्रसन्नता = चित्तकी एकग्रताको प्राप्त कर, वितर्क-विचार-रहित, समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। और फिर मिश्रुजो! वह प्रीति और विरागसे उपेक्षा वाला हो, स्मृति और संप्रजन्म से युक्त हो, कायासे सुख अनुभव करता विहरता है। जिस ( से युक्त ) को कि आवें लोग उपेक्षक, स्मृतिमान् और सुख विहारी कहते हैं, ऐसे तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। और फिर मिश्रुजो! वह सुख और दुःखके विनाशसे, संभनस्य (= चित्त-क्षुब्ध) और दोर्मनस्य (= चित्तकी असंतुष्टि) के पूर्व ही भल हो जानेसे, दुःख-सुख-रहित और उपेक्षक हो, स्मृतिकी शुद्धतासे युक्त चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है।

“वह चतुर्थे रूपको देखकर, प्रिय रूपमें राग-युक्त नहीं होता, अप्रिय रूपमें द्वेष-युक्त नहीं होता; विद्याल चित्तके साथ कायिक स्मृतिको कायम रखकर विहरता है। ( वह ) उस चित्तकी विमुक्ति (= मुक्ति) और प्रज्ञाकी विमुक्तिको ठीकसे जानता है; जिसमें कि उसकी सारे बुराईयाँ-अकुशल-धर्म निरुद्ध हो जाते हैं। वह इस प्रकार अनुरोध विरोधसे रहित हो, सुखमय, दुःखमय, न-सुख-न-दुःख-मय—जिस किसी वेदनाको अनुभव करता है;..... उसका वह अभिनन्दन नहीं करता, अभिवादन नहीं करता, ( उसमें ) अवगाहन कर नहीं स्थित होता। इस प्रकार अभिनन्दन न करते, अभिवादन न करते, अवगाहन न करते, जो वेदना-विषयक नन्दी (= तृष्णा ) है, वह उसकी निरुद्ध (= नष्ट) हो जाती है। उस नन्दीके निरोधसे उपादान (= रागयुक्त प्रदण) का निरोध होता है। उपादानके निरोधसे भवका निरोध, भवके निरोधसे जाति (= जन्म) का निरोध, जातिके निरोधसे जरा-मरण, शोक, रोने-काँदने, दुःख-दोर्मनस्य, ईरागी-परेशानीका निरोध होता है। इस प्रकार इस केवल दुःख-स्कंध (= दुःख-पुंज) का निरोध होता है। ओषसे शब्द सुन कर ०। प्राणसे गंध सूँघ कर ०। जिह्वासे रसको चख कर ०। कायासे स्पर्श ( स्पर्श वस्तु) को छू कर ०। मनसे धर्मको जान कर प्रिय धर्मोंमें राग-युक्त नहीं होता, अप्रिय धर्मोंमें द्वेष-युक्त नहीं होता ०। इस प्रकार इस केवल दुःख-स्कंधका निरोध होता है।

“मिश्रुजो! मेरे संक्षेपसे कहे इस तृष्णा-संशय-विमुक्ति (= तृष्णाके विनाशसे होनेवाली मुक्ति) को धारण करो; केवलतुल्य सान्ति मिश्रुजो तृष्णाके महाजाल-तृष्णाके महा-संघाटमें पैसा ( जानो )।” भगवान् ने वह कहा, समुद्र हो उन मिश्रुजोने भगवान् के माधनका अभितन्दन किया।

## २६—महा-अस्सपुर-सुत्तन्त ( १।४।६ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् अंग ( देश ) में अंगवालोंके अश्वपुर नामक नगरमें विहरते थे ।

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भवन्त !” ( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—

“भिक्षुओ ! ‘अमण’, ‘अमण’ कह लोग तुम्हारा नाम धरते हैं । तुम भी ‘तुम कौन हो !’

—यह पूछने पर ‘अमण ( हैं )’—उत्तर देते हो । भिक्षुओ ! तुम्हारी यह संज्ञा होते हुये, तुम्हारी यह प्रतिज्ञा होते हुये, तुम्हें सीख लेनी चाहिये—‘जो अमण बनाने वाले धर्म हैं, जो आश्रय बनाने वाले धर्म हैं, उन्हें लेकर हम धर्तरे; इस प्रकार हमारी संज्ञा ( = नाम ) सची होगी, हमारी प्रतिज्ञा यथार्थ होगी । और जिन ( गृहस्थों )के ( दिये ) अन्न, वस्त्र, निवास, रोगमें पथ्य-औषध हम उपभोग करते हैं; उनका वह हमपर किया उपकार भी महाफलदायक, = महा-आनन्दस्य होगा । हमारी यह प्रवृत्ति ( = संन्यास ) भी अ-बंधा = सफला = स-उदया होगी’ ।

“भिक्षुओ ! कौनसे धर्म अमण बनानेवाले हैं, आश्रय बनानेवाले हैं ?—हम लज्जा और संकोचवाले धर्मोंमें—यह भिक्षुओ ! तुम्हें सीखना चाहिये । शायद भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा हो—‘हम लज्जा-संकोच ( = डी, अपप्रथा )वाले हैं, इतना काफी है, इतना बस है । अमण-वन ( = आसन्य ) का अर्थ हमें मिल गया । ( इससे ) आगे हमारे लिये कुछ करणीय नहीं है’—मत इसनेसे सन्तोष कर लेना ।

“भिक्षुओ ! तुम्हें कहता हूँ, तुम्हें समझाता हूँ, मत अमणपनको कामना ( दोष ) रखते, आगे करणीय थाकी रहनेके कारण, अमणपनका अर्थ तुमसे निकल जाये । क्या है भिक्षुओ ! आगे करणीय ?—भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—‘हमारा कायिक आचार परिशुद्ध होगा, उत्तम = शुद्ध होगा, वह छिद्र ( = दोष ) फुट और ढँका न होगा । उस कायिक आचारके शुद्ध होनेसे न हम अपने लिये अमिमान करेंगे, न दूसरेको नीच कहेंगे’ । शायद भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा हो—‘हम लज्जा-संकोच वाले हैं, हमारा कायिक आचार परिशुद्ध है । इतना काफी है ०’—मत इसनेसे सन्तोष कर लेना ।

“भिक्षुओ ! तुम्हें कहता हूँ, तुम्हें समझाता हूँ ० । क्या है भिक्षुओ ! आगे करणीय ?—भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये—‘हमारा वाचिक आचार परिशुद्ध होगा ० । शायद भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा हो—‘हम लज्जा-संकोच वाले हैं । हमारा वाचिक आचार परिशुद्ध है ।

१ कायिक आचारकी मोति दुहराना चाहिये ।



हमारा वाचिक आचार परिशुद्ध है । इतना काफी है ०'—मत इसनेसे सन्तोष कर लेना ।

“मिथुओ ! ०—‘हमारा मानसिक आचार (= आचरण = कर्म ) परिशुद्ध होगा ० । ०’ ।

“० —‘हमारी जीविका परिशुद्ध होगी ० । ०’ ।

“० —‘हम इन्द्रियोंमें संयम रखेंगे । चक्षुसे रूपकी देखकर निमित्तप्राप्ती, अनुव्यंजन-प्राप्ती<sup>१</sup> नहीं होंगे । चक्षु-इन्द्रियोंमें संयम न करके विहरने वाले ( व्यक्तियें ) अनिष्टा (= लोभ ) दीर्घमन्य (= दुर्मनता ), ( आदि ) दुःखदुःख = अकुशल-धर्म आपवते हैं । ( इसलिये ) उसके संयममें तत्पर होंगे । चक्षु-इन्द्रियकी रक्षा करेंगे = चक्षु इन्द्रियका संवर करेंगे । श्रोत्रसे शब्द सुन ० । घ्राणसे गंध सूँघ ० । जिह्वासे रस चख ० । कायासे स्पर्श ( वस्तु ) को छू ० । मनसे धर्मको जान ० । शायद् मिथुओ ! तुम्हें ऐसा हो ० ।

“० —‘हम भोजनमें मात्रा (= परिमाण ) का ब्याल रखेंगे । ठीकसे जानकर, न दूध (= मसी ) के लिये, न मद्दके लिये, न मंडनके लिए न विभूषणके लिये; ( बलि ) जितना इस कायाकी स्थितिके लिये, गुवारके लिये, पीड़ाको रोकनेके लिये, और ब्रह्मचर्यकी सहायताके लिये ( आवश्यक है, उतनाही ) बाहार ग्रहण करेंगे । इस प्रकार पुरानी वेदना (= भोग ) को नाश करेंगे, और नई वेदनाकी नहीं उत्पन्न करेंगे; हमारी ( शरीर- ) धात्रा भी चलेगी, निर्दोषपन भी रहेगा, सुखपूर्वक विहार होवेगा ० । शायद् ० । ० ।

“० —‘जागरणमें तत्पर रहेंगे । दिनमें टहलने, बैठने, या आचरणीय धर्मों द्वारा चित्त को शोषित करेंगे । रातके प्रथम याममें टहलने, बैठने, या ( अन्य ) आचरणीय धर्मोंके द्वारा चित्तको शोषित करेंगे । रातके मध्यम ( विचले ) याममें पैरपर पैर रखकर, स्मृति-संप्रजन्मके साम उत्थानका ब्याल मनमें रख दाहिनी कर्षट सिंह-शय्या करके ( सोयेंगे ) । रातके अन्तिम याममें उठकर टहलने, बैठने या ( अन्य ) आचरणीय धर्मोंसे चित्तको शुद्ध करेंगे ० । शायद् ० ।

“० —‘स्मृति और संप्रजन्मसे मुक्त रहेंगे । जाने जानेमें संप्रजन्ममुक्त, संप्रजानकारी (= होश कर करनेवाला ) ०’ बोलने-बुझ रहनेमें संप्रजानकारी होंगे ० । शायद् ० ।

“० —‘यहाँ मिथुओ ! भिक्षु एकान्तमें—अरण्य ०’ चित्तको विचिकित्सा (= संदेह ) से मुक्त करता है ।

“जैसे मिथुओ ! ( कोई ) पुण्य कृण लेकर कर्मान्त (= खेती ) में लगावे । उसका कर्मान्त ठीक उतरे । सो वह अपने पुराने कणके धनको दे काले; और दारा (= मार्य ) के भरण-पोषणके लिये भी ( उसके पास कुल ) बच रहे । तब उसको ऐसा हो—‘मैंने पहिले कण लेकर कर्मान्तमें लगाया । मेरा कर्मान्त ठीक उतरा । सो मैंने अपने पुराने कणके धनको दे डाला; और दाराके भरण-पोषणके लिये भी बच रहा है’ । सो उसके कारण उसे प्रसन्नता हो, सन्तोष हो ।

‘जैसे मिथुओ ! ( कोई ) पुण्य मारी बीमारीसे पीड़ित हो, रोगी हो । उसे भोजन (= भक्ष ) अच्छा न लगता हो, और न उसके शरीरमें बलकी मात्रा हो । वह वृद्धसे समस्त उस बीमारीसे मुक्त हो जाये, उसे भोजन भी अच्छा लगने लगे, तथा उसके शरीरमें बलकी मात्रा भी आजाये । तब उसको ऐसा हो—‘मैं पहिले मारी बीमारीसे पीड़ित था, रोगी था ० । सो मैं उस बीमारीसे मुक्त हो गया हूँ, मुझे भोजन भी अच्छा लगता है, और मेरे शरीरमें बलकी मात्रा भी आगई है’ । सो उसके कारण उसे प्रसन्नता हो, सन्तोष हो ।

<sup>१</sup> कायिक आचारकी भौति दुहराना चाहिये ।

<sup>२</sup> देखो छ १५५ ( स्मृति-संप्रजन्म ) ।

“जैसे मिथुनो ! ( कोई ) पुरुष बन्धनागारमें बँधा हो । वह दूसरे समय सड़नाल बिना हानिके उस बंधनसे मुक्त होवे; और उसके भोगों (= धन )की कुछ हानि न हो । तब उसको ऐसा हो—‘मैं पहिले बंधनागारमें बँधा था ० । ० ।

“० जैसे मिथुनो ! ( कोई ) पुरुष अ-स्वाधीन, पराधीन जहाँ चाहे तहाँ ( न जा सकने वाला ) दास हो । वह दूसरे समय उस दासतासे मुक्त हो, स्वाधीन, अ-पराधीन, भोग-योग्य जहाँ चाहे तहाँ जाने वाला हो । उसको ऐसा हो— ० । ० ।

“जैसे मिथुनो ( कोई ) धनवान् भोगवान् पुरुष कान्तार ( = रेगिस्तान )के रास्तेमें जा रहा हो । सो दूसरे समय सड़नाल, बिना हानिके उस कान्तारको पार हो जावे, और उसके भोगों (= धन )की भी कोई हानि न होवे । उसको ऐसा हो— ० । ० ।

“ऐसे ही मिथुनो ! मिथु ऋणके समान, रोगके समान, बंधनागारके समान, दासताके समान, ( और ) कान्तार-भारीके समान इन न-छूटे ( अभिघ्ना आदि ) पाँच मोचरणोंको अपनेमें समास्ता है । इन पाँच मोचरणोंके छूट जाने पर अपने भीतर वह ऋण-मुक्ति, रोग-मुक्ति, बंधन-मुक्ति, स्वतंत्रता, ( और ) क्षेमयुक्त भूमि जैसा समास्ता है ।

“वह इन पाँच मोचरणोंको चित्तसे हटा, उपकलेषोंको जान, उनके दुर्घल करनेके लिये काम ( = विषयों )से अलग हो, बुराईयोंसे अलग हो ० । प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । वह इसी कायाको विवेक ( = एकाग्र-चिन्तन )से उत्पन्न प्रीति-सुखसे परिपूर्ण, निमग्न = संमग्न, लिप्त करता है । उसकी चारी कायाका कुछ भी ( भाग ) विवेकज प्रीति-सुखसे वंचित नहीं रहता । जैसे मिथुनो ! चतुर नहापक ( = नहलानेवाला ) या नहापकका प्रागिर्द कसिकी बालीमें स्नान-चूँ डालकर पानीका छौंटा दे दे मिलावे । सो वह स्नेह ( = शीलापन, नमी )से अनुगत, सोहसे परिगत भीतर बाहर सोहसे तर, न-पिपलने-वाली स्नान-चिह्नी हो जावे । ऐसे ही मिथुनो ! मिथु इसी कायाको विवेकसे उत्पन्न ० ।

“और फिर मिथुनो ! मिथु ० ‘द्वितीय-ध्यान ०’ । ० उसकी कायाका कुछ भी ( भाग ) समाधिज प्रीतिसुखसे अलिप्त नहीं रहता । जैसे मिथुनो ! ( कोई ) उदक-इद ( = जलाशय ) ( पाताल ) फूटे जल वाला हो । उसमें न पूर्व दिशासे जलके आनेका मार्ग हो, न पश्चिम दिशा से ०, न उत्तर दिशासे ०, न दक्षिण दिशासे जलके आनेका मार्ग हो । देव (= वृष्टि ) भी समय-समय पर ( उसमें ) जल्दी प्रकार धाराका प्रवेस न कराता हो । तो भी उसी उदक-इदसे शीतल जलधारा फूटकर उस उदक-इदको शीतल जलसे परिप्लित, संसिक्त, परिपूर्ण = सम्पूर्ण करे; चारों ओर उस उदक-इदका कुछ भी ( भाग ) शीतल जलसे अ-लिप्त न हो । ऐसे ही मिथुनो ! ० ।

“और फिर मिथुनो ! मिथु ० ‘तृतीय ध्यान ०’ । वह इसी कायाको निष्प्रीतिक सुखसे अभिष्यन्दिता, परिष्यन्दिता, परिपूर्ण, तर करता है । उसकी कायाका कुछ भी ( भाग ) निष्प्रीतिक सुखसे अलिप्त नहीं रहता । जैसे, मिथुनो ! उत्पल-समूह, पद्म-समूह, या गुण्डरीक-समूहमें, कोई कोई उत्पल, पद्म या गुण्डरीक उदकमें उत्पन्न उदकमें संवर्द्धित उदकसे ऊपर न निकल उदकमें निमग्न हुये ही पोषित हों । वह मूलसे अग्र भाग तक शीतल जलसे अभिषिक्त, परिषिक्त परिपूर्ण, और तर हों; उनका कुछ भी ( भाग ) शीतल जलसे अ-लिप्त न हो । ऐसे ही मिथुनो ! ० ।

“और फिर मिथुनो ! मिथु ० ‘चतुर्थ-ध्यान ०’ । वह इसी कायाको परिशुद्ध, उज्ज्वल



चित्तसे व्यास कर आसीन होता है। उसकी कायाका कुछ भी भाग परिशुद्ध उज्ज्वल चित्तसे अव्यास नहीं होता। जैसे, मिथुनो ! ( कोई ) पुरुष श्वेत वस्त्रसे सिरतक बाँक कर बैठा हो; उसकी सारी कायाका कोई भी ( भाग ) श्वेत वस्त्रसे घिरा बैठा न हो। ऐसे ही मिथुनो ! ० ।

“यह इस प्रकार चित्तके प्रकाश ० होनेपर पूर्व जन्मोंकी स्मृतिके ज्ञानके लिये चित्तको झुकाता है। फिर वह ० ।—इस प्रकार आकार, उद्देश्यके सहित अनेक प्रकारके पूर्व-निवासोंको स्मरण करने लगता है।

“यह इस प्रकार चित्तके प्रकाश ० होनेपर ० ० । ० अ-मानुष, विशुद्ध, दिव्य-वस्तुसे ० प्राणियोंको पहचानता है।

“यह इस प्रकार ० आश्रयोंके ज्ञानके लिये चित्तको झुकाता है। फिर वह—“यह दुःख है”—इसे यथार्थसे जानता है ० ० । “जब यहाँ ( करने ) के लिये कुछ ( शेष ) नहीं है”—इसे जान लेता है।

“मिथुनो ! वह ( ऊपर वर्णित ) मिथु श्रमण भी कहा जाता है, ब्राह्मण भी, स्नातक भी, वेदगू भी, श्रोत्रिय भी, आर्य भी, अर्हत् भी ( कहा जाता है ) ।

“मिथुनो ! कैसे मिथु श्रमण होता है ?—इसके मज्जिन करनेवाले, पुनर्जन्म देनेवाले, नयप्रद, दुःख-विषाकवाले, मविष्यमें जन्म-जरा-मरणसे घालनेवाले, अकृशाल-धर्म-पुराणों शस्त्र ( = शस्त्र = श्रमण ) होगई हैं। इस प्रकार मिथुनो ! मिथु श्रमण ( = समन ) होता है।

“मिथुनो ! कैसे मिथु ब्राह्मण होता है ?—इसकी ० पुराणों यहा दीगई ( = वाहित होगई ) हैं” । ० ।

“० स्नातक ० ?—इसकी ० पुराणों जुलगई ( = नहत ) हैं । ० ।

“० वेदगू ० ?—इसकी ० पुराणों विदित हैं । ० ।

“० श्रोत्रिय ० ?—इसकी ० पुराणों निष्कलगई ( = नि-स्तुत ) हैं । ० ।

“० आर्य ० ?—इससे ० पुराणों दूर ( = जारक ) होती हैं । ० ।

“० अर्हत् ० ?—इससे ० पुराणों दूर ( = जारक ) होती हैं । ० ।”

भगवान् ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन मिथुनोंने भगवान् के मापणको अभिर्नक्षित किया।

## ४०-चूल-अस्सपुर-सुत्तन्त ( १४।१० )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् उरंग ( देश ) में अंगोंके कस्बे अश्वपुरमें विहार करते थे । वहाँ भगवान्ने मिथुओंको संबोधित किया—“मिथुओ !”

“मदन्त !” कह उन मिथुओंने भगवान्को उत्तर दिया । भगवान्ने कहा—

“मिथुओ ! ‘अमण’ ‘अमण’ लोग नाम धरते हैं । तुमलोग भी, ‘तुम कौन हो’—पूछनेपर ‘( हम ) अमण हैं’ उत्तर देते हो । ऐसी संज्ञा ऐसी प्रतिज्ञावाले तुम लोगोंको यह सीखना चाहिये—‘जो वह अमणको सच करनेवाला मार्ग है, हम उस मार्गपर आरुढ़ होंगे, इस प्रकार यह हमारी संज्ञा सच होगी, हमारी प्रतिज्ञा ( = दावा ) सचार्थ होगी । ( और ) जिनके ( दिये ) चौकर ( = वस्त्र ), पिड-पात ( = मिश्रा ), अयनासन ( = निवास ), ज्ञान-प्रत्यय-अपश्य ( = रोगी के औषधि-पथ्य ) सामग्रीका हम उपभोग करते हैं । उनके ( किये ) हमारे प्रति वह ( दान- ) कार्यभी महाफलवाले महाभाहास्सवाले होंगे, और हमारी भी यह प्रमत्त्या निर्मल सफल-स-उदय होगी ।”

“मिथुओ ! मिथु अमणको सच करनेवाले मार्ग ( = अमण-सामीची प्रतिपदा ) पर कैसे आरुढ़ नहीं होता ?—मिथुओ ! जिस किसी अभिध्यातु ( = सोमी ) मिथुकी अभिध्या नष्ट नहीं होती, द्रोह-रहित चित्तवाले ( = व्यापकचित्त ) का व्यापाद् ( = द्रोह ) नष्ट नहीं हुआ रहता, कोषोंका कोष ०, पालंवी ( = उपनाही ) का पालंद ०, सर्पोंकी कलक ( = जामर्ष-अभरण ) ०, पलासी ( = प्रदाशी-निष्ठुर ) का पलास ०, ईर्ष्यालुकी ईर्ष्या ०, मत्सरीका मत्सर ( = कृपणता ) ०, शठकी शठता ०, मायावी ( = वंचक ) की माया ०, पापेष्णु ( = बद-नीयत ) की पापेष्ण ०, मिथ्या-रटि ( = शठे सिद्धान्तवाले ) की मिथ्या रटि ( = शठो धारणा ) नष्ट नहीं हुई रहती । वह इन अमण-मलों-अमण-दोषों-अमण-कसदों, अपायको ले जानेवाले, दुर्गतिको अनुभव करानेवाले कारणोंके अ-विनाशसे ‘अमण-सामीची-प्रतिपद्’पर आरुढ़ नहीं हुआ,” ( ऐसा ) मैं कहता हूँ । जैसे मिथुओ ! मटज नामक—तेज, बुधारा आधुच ( = हथियार ) संघाटी ( = साजुके वस्त्रों ) में ढँका लिपटा हो; उसके ही समान मिथुओ ! मैं इस मिथुकी प्रमत्त्या कहता हूँ ।

“मिथुओ ! मैं संघाटी ( = मिथु-वस्त्र ) वालेके संघाटी-धारण मात्रसे, अमणता ( = आमण्य ) नहीं कहता । जलैलक ( = वस्त्र-रहित ) के नंगे रहने मात्रसे आमण्य ( = साधुपन ) नहीं कहता । मिथुओ ! रजोजलिक ( = कीचड़-वासी साधु ) की रजोजलिकता मात्रसे आमण्य नहीं कहता । उदकावरौहक ( = जल-वासी ) के जलवास मात्रसे ० । ० वृक्षमूलिक ( = सदा वृक्षके नीचे रहने-वाले ) के वृक्षके नीचे वास मात्रसे ० । ० जण्यकाशिक ( = चौड़ेमें रहनेवाले ) ० । ० उन्नमट्टक ( = सदा सड़े रहनेवाले ) ० । ० पर्याय-मत्तिक ( धींच धीचमें निराहार रह, भोजन करनेवाले )



० । ० मंत्र-अध्यायक ( = वेद-पाठी ) के मंत्र-अध्ययन मात्रसे मैं आत्मण्य नहीं कहता । ० जटिलकके जटा-धारण मात्र से ० ।

“मिथुओ ! यदि संघाटिकके संघाटी-धारण मात्रसे, अमिथ्यालुका लोभ हट जाता, ० स्वापाद् हट जाता, ० कोष ०, ० उपनाह ०, ० मर्ष ०, ० पलास ०, ० ईर्ष्या ०, ० मात्सर्य ०, ० शठता ०, ० माया ०, ० पापेच्छा ०, मिथ्या-दृष्टिकी मिथ्या-दृष्टि हट जाती; तो उसको स्थिर-अमात्य जाति-बन्धु पैदा होते हो, संघाटिक बना देते, संघाटिकत्वाका ही उपदेश करते—‘आ मद्रमुल ! तू संघाटिक हो जा । संघाटिक होनेपर संघाटी-धारण मात्रसे, तुझ अमिथ्यालुका लोभ नष्ट हो जायगा । ० । मिथ्या-दृष्टिकी मिथ्या-दृष्टि नष्ट हो जायगी ।’ क्योंकि मिथुओ ! मैं किसी किसी संघाटिकको भी अमिथ्यालु, व्यापक-चित्त, कोषी, उपनाही, मर्षी, पलासी, ईर्ष्यालु, मात्सर्यी, शठ, मायावी, पापेच्छु, मिथ्या-दृष्टि देखता हूँ, इसलिये संघाटिकके संघाटी-धारण मात्रसे आत्मण्य नहीं कहता ।

“मिथुओ ! यदि अचेतककी अचेतकता-मात्रसे ० । ० रजोवल्लिककी रजोवल्लिकता मात्रसे ० । ० उदकावरोहकके उदकावरोहण मात्रसे ० । ० वृक्ष-मूलिककी वृक्ष-मूलिकता मात्रसे ० । ० अध्ययनकाशिक ० । ० उन्मट्टिक ० । ० पर्याप-भक्तिक ० । ० मंत्र-अध्यायक ० । ० जटिलकके जटा-धारण मात्रसे ० अमिथ्या ०—० मिथ्या-दृष्टि नष्ट होती ० ।

“मिथुओ ! मिथु अमण-सामीची-प्रतिपद ( = सच्चा अमण बनानेवाले मार्ग ) पर कैसे मार्गात्त्व होता है ?—मिथुओ ! जिस किसी अमिथ्यालु मिथुकी अमिथ्या ( = लोभ ) नष्ट होती है, ०—० मिथ्यादृष्टि नष्ट होती है; ( वह ) इन अमण-मर्लों ० के विनाशसे अमण-सामीची-प्रतिपदपर मार्गात्त्व कहता हूँ । ( फिर ) वह इन सभी पापक अ-कुशल धर्मोंसे, अपने को विमुक्त देखता है, अपनेको विमुक्त देखता है । ( फिर ) इन सभी पापक ० धर्मोंसे अपनेको विमुक्त ० विमुक्त देखनेवाले उस ( पुरुष ) को, प्रमोद उत्पन्न होता है । प्रमुदितको प्रीति उत्पन्न होती है । प्रीतिमानकी काया स्थिर होती है । स्थिर-शरीर सुख अनुभव करता है । सुखितका चित्त समाहित ( = एकाग्र ) होता है । वह ( १ ) सैत्रीयुक्त चित्तसे एकदिशाको प्रकाशितकर विहरता है, और दूसरी दिशा ०, और तीसरी ०, और चौथी ० इसी प्रकार ऊपर, नीचे, तिष्ठे, सद्यधी इच्छासे उसके अर्थ, सभी लोकको विपुल, महान्, अ-प्रमाण, अ-वैर, द्वेष-रहित मैत्री-पूर्ण चित्तसे प्रकाशित कर विहरता है । ( २ ) करुणानुक्त चित्तसे ० । ( ३ ) सुदिता-युक्त चित्तसे ० । ( ४ ) उपेक्षा-युक्त चित्तसे ० ।

“जैसे मिथुओ ! स्वच्छ, मधुर, शीतल, जलवाली रमणीय सुन्दर घाटोंवाली पुष्करणीय हो । यदि पूर्वदिशासे भी घाममें तथा ( = धर्म-अभितस ) = धर्म-परेत, बका, वृषित = पिपासित पुरुष आवे; वह उस पुष्करणीमें उतर कर उदक-पिपासाको दूर करे, घामके तापको दूर करे । पश्चिम-दिशासे भी ० । उत्तर-दिशासे भी ० । दक्षिण-दिशासे भी ० । जहाँ कहींसे भी ० । ऐसेही मिथुओ ! यदि क्षत्रिय-कुलसे घरसे बेघर प्रवर्जित होवे, और वह तथागतके उपदेश किये धर्मको प्राप्तकर, इस प्रकार सैत्री, करुणा, सुदिता, उपेक्षाकी भावना करे, ( तो वह ) आध्यात्मिक शांतिको प्राप्त करता है । आध्यात्मिक शान्ति ( = उपशम ) से हो ‘अमण-सामीची-प्रतिपदपर आरुढ़ है’ कहता हूँ । ० यदि ब्राह्मण-कुलसे ० । ० यदि वैश्यकुलसे ० । ० जिस किसी कुलसे भी घरसे बेघर प्रवर्जित ० ।

“क्षत्रिय-कुलसे भी घरसे बेघर प्रवर्जित हो । और वह आक्षयों ( = चित्त-दोषों ) के श्रयसे, आश्रय-रहित चित्त-विमुक्ति प्रज्ञा-विमुक्तिको, इसी जन्ममें स्वयं जान कर = साक्षात् कर = प्राप्त कर

विहरता है । आश्वोंके क्षयसे क्षमण होता है । ब्राह्मण-कुलसे भी ० । वैश्य-कुलसे भी ० । क्षत्र-कुलसे भी ० । जिस किसी कुलसे भी ० ।”

भगवान्ने यह कहा, तन्मुष्ट हो उन मिथुनोंने भगवान्के भाषणको अनुमोदित किया ।

( ३-इति महायमक-व्या ११४ )



## ४१—सालेय्य-सुत्तन्त (१।५।१)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् महान् मिश्रु-संघके साथ कोसल ( देश )में विचरते जहाँ कोसल ( = वासियों ) का साला ( = शाला ) नामक ब्राह्मण-ग्राम है, वहाँ पहुँचे ।

शालाके ब्राह्मण गृहस्थोंने सुना—शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र जमण गौतम महान् मिश्रु-संघके साथ कोसलमें विचरते शालामें आ पहुँचे हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा संग्रह कीर्तिशब्द उठा हुआ है—‘वह भगवान् अर्हत् हैं ०’, भगवान् बुद्ध हैं । वह ब्रह्मलोक-सहित ०’ ब्रह्मचर्यको प्रकाशित करते हैं । ऐसे अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है ।

तब शाला-निवासी ब्राह्मण गृहस्थ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर ( कोई कोई ) भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । कोई कोई भगवान्से कुछल श्रेम पूछ एक ओर बैठ गये । कोई कोई त्रिचर भगवान् थे, उधर हाथ जोपकर ० । कोई कोई नाम-गोत्र सुनाकर एक ओर बैठ गये । कोई कोई चुप-चाप एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठे शाला-निवासी ब्राह्मण गृहस्थोंने भगवान्से यह कहा—

“हे गौतम ! क्या हेतु है = क्या प्रत्यय है, जो कोई प्राणी काया छोड़ मरनेके बाद अपाय = दुर्गति, पतन नर्कमें उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! क्या हेतु है = क्या प्रत्यय है, जो कोई प्राणी काया छोड़ मरनेके बाद सुगति, स्वर्गलोकमें उत्पन्न होते हैं ?

“गृहपतियो ! अधर्माचरणके कारण कोई प्राणी ० नर्कमें उत्पन्न होते हैं । धर्माचरणके कारण गृहपतियो ! कोई प्राणी सुगति, स्वर्गलोकमें उत्पन्न होते हैं ।

“हम लोग आप गौतमके इस विस्तारसे न विमाजित किये, संश्लिप्त भाषणका विस्तारपूर्वक अर्थ नहीं समझ रहे हैं । अच्छा हो, आप गौतम हमें इस प्रकार धर्म उपदेश करें, जिसमें आप गौतमके इस विस्तारसे न विमाजित किये, संश्लिप्त भाषणका विस्तारपूर्वक अर्थ हम समझ सकें ।”

“तो गृहपतियो ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा, सो !”—कह, शाला-निवासी ब्राह्मण गृहस्थोंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“गृहपतियो ! काविक अधर्माचरण, विषम आचरण तीन प्रकारका होता है । वाचिक अधर्माचरण, विषम-आचरण चार प्रकारका होता है । मानसिक अधर्माचरण, विषम-आचरण तीन प्रकारका होता है । गृहपतियो ! कैसे काविक अधर्माचरण ० तीन प्रकारका होता है ?—यहाँ गृहपतियो ! कोई ( पुरुष ) ( १ ) हिंसक, क्रूर, लोहित-पाणि ( = खून रंगे हाथोंवाला ), भार-काटमें रत, प्राणियोंके प्रति निर्दयी होता है । ( २ ) अदिभ्रादायो ( = चोर )

\* देखो पृष्ठ २४ ।

\* देखो, पृष्ठ २५८ ।

होता है, जो दूसरेका बिना दिया, चोरीका कहा जानेवाला गौर्तमे या जंगलमें खड़ा धन-सामान है, उसका लेनेवाला होता है। ( ३ ) कामो (= की संभोग ) में मिथ्याचारी (= दुराचारी ) होता है; उन ( जियों ) के साथ संभोग करता है, जो कि माता द्वारा रक्षित है, पिता द्वारा रक्षित, माता-पिता द्वारा रक्षित, जाति-वालों द्वारा रक्षित, मगिमो द्वारा रक्षित, जातिवालों द्वारा रक्षित, गोधवालों द्वारा रक्षित, धर्मसे रक्षित है, पतिवाली ईक्षुक्त हैं, अन्तमें ( विवाह संबंधी ) माला मात्र भी जिनपर डाल दी गई है। इस प्रकार गृहपतियो ! तीन प्रकारका कायिक अधर्माचरण ० होता है।

“कैसे गृहपतियो ! चार प्रकारका वाचिक अधर्माचरण ० होता है ?—यहाँ गृहपतियो ! कोई ( पुरुष ) ( १ ) मिथ्यावादी होता है। सामान, या परिष्कृत, या जातिके मध्यमें, या पूत (= वंशागत ) के मध्यमें, राजद्वारमें, बुलानेपर सार्वीके लिये—‘हे पुरुष ! जो जानते हो, वह कहो !’—( पूछनेपर ) ; वह न जानते हुए कहता है—‘मैं जानता हूँ’, जानते हुये कहता है—‘मैं नहीं जानता’। न देखे कहता है—‘मैंने देखा है’; देखे हुए कहता है—‘मैंने नहीं देखा’। इस प्रकार अपने लिये या परायेके लिये, या थोड़े आभिश (= भोगस्तु ) के लिये जानपूछकर झूठ बोलता है। ( २ ) चुगुलखोर होता है—इनमें फूट डालनेके लिये यहाँ सुनकर वहाँ कहता है; उनमें फूट डालनेके लिये, वहाँ सुनकर वहाँ कहता है। इस प्रकार मेलजोलवालोंको फोफने-वाला, फूटे हुओं ( की फूट ) को सह देनेवाला, वगैरे (= पार्टीवाजी ) में खुश, वगैरे में रात, वगैरे में आनन्दित, वर्गकरणी वाणीका बोलनेवाला होता है। ( ३ ) परुष (= कटु )-भाषी होता है—जो वाणी तेज, कर्कश, दूसरेको कटवी लगानेवाली, दूसरेको पीड़ित करनेवाली, फोफपूर्ण, अशांति-पैदाकरनेवाली है, वैसी वाणीका बोलनेवाला होता है। ( ४ ) प्रलापी होता है—बेवक बोलने-वाला, अथवा बोलनेवाला = अतथ्यवादी, अधर्मवादी, अविनय (= अनीति )-वादी, बिना समय, बिना-इंद्रियके तात्पर्य-रहित, अनर्थयुक्त निस्तार वाणीका बोलनेवाला होता है। इस प्रकार गृह-पतियो ! चार प्रकारका वाचिक अधर्माचरण ० होता है।

“कैसे गृहपतियो ! तीन प्रकारका मानसिक अधर्माचरण ० होता है ?—यहाँ गृह-पतियो ! कोई ( पुरुष ) ( १ ) अभिघ्वालु (= लोभी ) होता है; जो दूसरेका धन-सामान (= वस्तु-उपकरण ) है, उसका लोन करता है—‘अहो ! जो दूसरेका ( धन ) है, वह मेरा हो जाता !’ ( २ ) व्यापञ्चिस्त = द्वेषपूर्ण संकल्पवाला होता है—‘यह प्राणी मारे जायें, पच किये जायें, उच्छिन्न होवें, विनष्ट होवें, मृत रहें’—इत्यादि। ( ३ ) मिथ्याहृष्टि = झूठी धारणावाला होता है—‘दान कुछ नहीं’, यज्ञ कुछ नहीं, हवन कुछ नहीं, मुहुत दुष्कृत कर्मोंका कोई फल = विपाक नहीं, यह लोक नहीं, परलोक नहीं, माता नहीं, पिता नहीं, औपपातिक सत्त्व ( अयोनिज प्राणी = देवता लोग ) नहीं हैं। लोकमें ठीक-पहुँचवाले ठीक-रास्ते-पर-करो ऐसे भ्रमण साधन नहीं हैं, जो इस लोक और परलोकको स्वयं जान कर साक्षात्कार कर ( औरोंको ) जतलावेंगे। इस प्रकार गृहपतियो ! तीन प्रकारका मानसिक अधर्माचरण ० होता है।

“गृहपतियो ! इस प्रकार अधर्माचरण = विषम-आचरणके कारण कोई प्राणी काया छोड़ भरनेके बाद ० नरकमें जाते हैं।

“गृहपतियो ! तीन प्रकारका कायिक धर्माचरण = सम-आचरण होता है। चार प्रकारका वाचिक धर्माचरण = सम-आचरण होता है। तीन प्रकारका मानसिक धर्माचरण = सम-आचरण होता है। कैसे गृहपतियो ! तीन प्रकारका कायिक धर्माचरण ० होता है ?—यहाँ गृहपतियो ! कोई ( पुरुष ) ( १ ) प्राणातिपात (= हिंसा ) छोड़ प्राणातिपातसे विस्त होता है—वह



दण्ड-बाणी, सज्ज-बाणी सज्जालु, दण्डालु, सारे प्राणियोंका हित और अनुकंपक हो विहरता है ।  
 ( २ ) अदिग्धादान (= चोरी) को छोड़, अदिग्धादानसे विरत होता है—जो दूसरेका बिना दिया \* उसका न लेनेवाला होता है । ( ३ ) कामों (= स्त्री-संमोग ) के मिथ्याचारको छोड़, काम-मिथ्याचारसे विरत होता है । उन स्त्रियोंके साथ संमोग नहीं करता, जो कि माता द्वारा रक्षित हैं \* । इस प्रकार गृहपतियों ! तीन प्रकारका कायिक धर्माचरण ० होता है ।

“कैसे गृहपतियो ! चार प्रकारका वाचिक धर्माचरण ० होता है ?—यहाँ गृहपतियो ! कोई ( पुरुष ) ( १ ) मृषावादको छोड़ मृषावादसे विरत होता है । समामें ० \* जानबूझकर झूठ नहीं बोलता । ( २ ) पिशुनवचन (= झुगली ) छोड़, पिशुनवचनसे विरत होता है । इनमें फूट डालने ० \* फूटे हुएका मिलातेवाला होता है, मेलजोलवालोंको सहायता देनेवाला होता है । मेलमें रत, मेलमें प्रसन्न, मेलमें आनंदित, मेलकरणी वाणीका बोलनेवाला होता है । ( ३ ) परुषवचनको छोड़, परुषवचनसे विरत होता है । जो वह वाणी मधुर, कर्णसुखद, प्रेमणीय, हृदयंगम, सम्म (= प्यारी ), बहुजन-कान्ता = बहुजन-भनापा होती है, उसका बोलनेवाला होता है । ( ४ ) प्रलापकी छोड़ प्रलापसे विरत होता है ।—समय देख बोलनेवाला ० \* अर्थात् सारवती वाणीका बोलनेवाला होता है । इस प्रकार ० ।

“कैसे गृहपतियो ! तीन प्रकारका मानसिक धर्माचरण ० होता है ?—यहाँ गृहपतियो ! कोई ( पुरुष ) ( १ ) अभिघ्ना-रहित (= निर्लोभ ) होता है—जो दूसरेका धन-सामान है ० \* उसका लोभ नहीं करता । ( २ ) अव्यापन्न चित्त रहित-द्वेष संकल्पवाला होता है—यह प्राणी वैर-रहित, व्यापाद (= द्वेष )-रहित प्रसन्न सुखी हो अपनेको धारण करे । ( ३ ) सन्मग्-दृष्टि = ठीक धारणावाला होता है—यज्ञ है, हवन है ० \* ऐसे श्रमण ब्राह्मण हैं, ० \* जतलायेंगे । इस प्रकार गृहपतियो ! तीन प्रकारका धर्माचरण ० होता है ।

“गृहपतियो ! इस प्रकार धर्माचरण = सम-आचरणके कारण कोई प्राणी काया छोड़ भरनेके बाद सुगति, स्वर्गमें उत्पन्न होते हैं ।

“गृहपतियो ! यदि धर्मचारी = समचारी इच्छा करे—‘अहो ! मैं काया छोड़ भरनेके बाद महाधनी क्षत्रिय हो उत्पन्न होऊँ ; वह हो सकता है, कि वह ० भरनेके बाद महाधनी क्षत्रिय हो उत्पन्न होवे । सो किस कारण ?—वह वैसा धर्माचरण करनेवाला है, सम-आचरण करनेवाला है । गृहपतियो ! यदि धर्मचारी इच्छा करे—‘अहो ! मैं ० महाधनी ब्राह्मण हो उत्पन्न होऊँ ; ० । ०-‘अहो मैं महाधनी गृहपति (= वैश्य ) हो उत्पन्न होऊँ ; ० ।

“गृहपतियो ! यदि धर्मचारी ० इच्छा करे—‘अहो ! मैं ० चातुर्महाराजिक देवताओंमें उत्पन्न होऊँ ; ० । ० त्रायस्त्रिंश देवताओंमें ० । ० तुषित देवताओंमें ० । ० निर्माणरति देवताओंमें ० । ० परनिर्मित-वश्यती देवताओंमें ० । ० ब्रह्म-कायिक देवताओंमें ० । ० आमा देवताओंमें ० । ० परीत्ताम देवताओंमें ० । ० अप्रमाणास देवताओंमें ० । ० आभस्वर देवताओंमें ० । ० शुभ देवताओंमें ० । ० परीत्त-शुभ देवताओंमें ० । ० अप्रसाण-शुभ देवताओंमें ० । ० शुभकृत् देवताओंमें ० । ० बृहत्फल देवताओंमें ० । ० अविभ देवताओंमें ० । ० आतप्य देवताओंमें ० । ० सुदर्शन देवताओंमें ० । ० सुदर्शी देवताओंमें ० । ० अकनिष्ठक देवताओंमें ० । ० आकाशानन्त्यायतनके देवताओंमें ० । ० विज्ञानानन्त्यायतनके देवताओंमें ० ।

\* देखो गृह १६९ ( जो अर्नगीकारात्मक करके ) ।

\* गृह १६९ ( निषेधको हटा कर ) ।

० वाकिचन्दायतनके देवताओंमें ० । ० नैवसंशानासंज्ञापतनके देवताओंमें ० ।

“गृहपतियो ! यदि धर्मचारी = समचारी इच्छा करे—‘अहो ! मैं आसनों (= चित्त-मलों) के क्षयसे भाग्य-रहित चित्तकी विमुक्ति, प्रज्ञाकी विमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं जानकर साक्षात्कार कर प्राप्त कर विहरूँ । यह हो सकता है, कि वह आसनोंके क्षयसे ० प्राप्त कर विहरे । सो किस कारण ?—वह वैसा धर्मचारी = समचारी है ।”

ऐसा कहनेपर शाला-निवासी ब्राह्मण गृहस्थोंने भगवान्से यह कहा—

“आश्चर्य मो गौतम ! आश्चर्य मो गौतम ! जैसे औषधको सीधा कर दे ०<sup>१</sup> यह हम भगवान् गौतमकी शरण जाते हैं, धर्म और मिश्र-संघकी भी । आजसे आप गौतम हमें अंजलिबद्ध शरणागत उपसत्क स्वीकार करें ।



## ४२-वेरंजक-सुत्तन्त (१।५।२)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् धावस्तीमें अनाथपिटिकके आराम उेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय वेरंजा-निवासी ब्राह्मण-गृहस्थ किसी काममें धावस्तीमें रहते थे ।

वेरंजा-निवासी ब्राह्मण-गृहस्थोंने सुना—‘शाक्यकुलसे प्रसजित ०’ एक ओर बैठे वेरंजा-निवासी ब्राह्मण-गृहस्थोंने भगवान्से यह कहा—

“ओ गौतम ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जो कोई प्राणी काया छोड़ मरनेके बाद अपाय, दुर्गति, पतन, बर्कमें उत्पन्न होते हैं ? ०” आत्रसे आप गौतम हमें अञ्जलिपद्ध शरणागत उपासक समझें ।

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ १६८ । <sup>२</sup> देखो पृष्ठ १६८-७१ ( ४१ सांख्यसुत्तन्तकी तरह ) ।

## ४३—महा-वेदल्ल-सुत्तन्त ( १।५।३ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् धावस्तीमें अनाथपिट्टिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् महाकोट्टिल ( = कोट्टित ) सायङ्काल प्रतिसंलपन ( = एकान्त चिन्तन, ध्यान )से उठ वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे, वहाँ गये । जाकर आयुष्मान् सारिपुत्रके साथ "यथा-योग्य संमोदन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् महाकोट्टितने आयुष्मान् सारिपुत्रसे यह कहा—

"आवुस ! 'दुःप्रज्ञ' 'दुःप्रज्ञ' कहा जाता है, किस ( कारण )से वह .....दुःप्रज्ञ कहा जाता है ?"

"चूँकि नहीं समझता, ( = न प्रजानाति ) इसलिये आवुस ! वह दुःप्रज्ञ कहा जाता है ।"

"क्या नहीं समझता ?"

"'यह दुःख है'—इसे नहीं समझता; 'यह दुःख-समुदय ( = दुःखका कारण ) है'—इसे नहीं समझता; 'यह दुःख-निरोध है'—इसे नहीं समझता; 'यह दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद् ( = मार्ग ) है'—इसे नहीं समझता । नहीं समझता है, इसलिये आवुस ! वह दुःप्रज्ञ कहा जाता है ।"

"साधु, आवुस !"—( कह ) आयुष्मान् महाकोट्टितने आयुष्मान् सारिपुत्रके भाषणका अभिनन्दन कर अनुमोदन कर, आयुष्मान् सारिपुत्रसे आगेका प्रश्न पूछा—

"आवुस ! 'प्रज्ञावान्' 'प्रज्ञावान्' कहा जाता है, किस ( कारण )से प्रज्ञावान् कहा जाता है ?"

"चूँकि वह समझता है ( = प्रजानाति ), इसलिये आवुस ! वह प्रज्ञावान् कहा जाता है ।"

"क्या समझता है ?"

"'यह दुःख है'—इसे समझता है ० ; ० 'यह दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद् है'—इसे समझता है । समझता है, इसलिये आवुस ! वह प्रज्ञावान् कहा जाता है ।"

"आवुस ! 'विज्ञान' 'विज्ञान' कहा जाता है, किससे विज्ञान कहा जाता है ?"

"चूँकि आवुस ! ( वह ) जानता है ( = विजानाति ), इसलिये विज्ञान कहा जाता है ?"

"क्या जानता है ?"

"( यह ) सुन है—( इसे ) जानता है ; ( यह ) दुःख है—( इसे ) जानता है ; ( यह ) न-सुख-न-दुःख है—( इसे ) जानता है । जानता है, इसलिये आवुस ! विज्ञान कहा जाता है ।"



“आवुस ! जो यह प्रज्ञा है, और यह जो विज्ञान, यह दोनों पदार्थ मिले-जुले (= संसृष्ट) हैं, या अलग अलग ? इन ( दोनों ) पदार्थों (= धर्मों )को विलग विलग कर उनका भेद जतलाया जा सकता है ?”

“आवुस ! यह जो प्रज्ञा है, और यह जो विज्ञान है, यह दोनों पदार्थ मिले जुले हैं, अलग अलग नहीं हैं; किन्तु इन ( दोनों ) पदार्थोंको विलग विलग कर उनका भेद नहीं जतलाया जा सकता ।”

“आवुस ! जो यह प्रज्ञा है, और जो यह विज्ञान है, इन ( दोनों ) मिले-जुले न-विलग पदार्थोंका क्या भेद है ?”

“आवुस ! ० इन दोनों ० पदार्थोंका यह भेद है—प्रज्ञा भावना (= मनोयोग) करने योग्य है, और विज्ञान परिश्रेय (= ज्ञेय) है ।”

“आवुस ! ‘वेदना’ ‘वेदना’ कही जाती है; किस ( कारण )से वेदना कही जाती है ?”

“क्योंकि आवुस ! ( यह ) वेदन (= अनुभव ) करती है, इसलिये वेदना कही जाती है ?”

“क्या वेदन करती है ?”

“सुखको भी वेदन करती है । दुःखको भी वेदन करती है, न दुःख-न सुखको भी वेदन करती है । वेदन करती है इसलिये ० ।”

“आवुस ! ‘संज्ञा’ ‘संज्ञा’ कही जाती है ; ० ?”

“क्योंकि आवुस ! ( यह ) संज्ञानन (= पहिचान ) करती है, ० ।”

“क्या संज्ञानन करती है ?”

“नीलेको भी संज्ञानन करती है, पीलेको भी ०, लालको भी ०, सफेदको भी ० । संज्ञानन करती है, इसलिये ० ।”

“आवुस ! जो संज्ञा है, जो वेदना है, और जो विज्ञान है, यह धर्म (= पदार्थ ) मिले-जुले हैं, या अलग ? इन धर्मोंको विलग विलग कर इनका भेद जतलाया जा सकता है ?”

“आवुस ! ० यह ( तीनों ) धर्म मिले जुले हैं, विलग नहीं हैं । और इन ( तीनों ) पदार्थोंको विलग विलग करके उनका भेद नहीं जतलाया जा सकता ।”

“आवुस ! ० इन ( तीनों ) धर्मोंका क्या भेद है ?”

“आवुस ! जिसको वेदन<sup>१</sup> (= अनुभव ) करता है, उसका संज्ञानन करता है; उसका विज्ञानन करता है । इसलिये वह धर्म मिले-जुले हैं, विलग नहीं; और उन्हें ० विलग करके, उनका भेद नहीं जतलाया जा सकता है ।”

“आवुस ! घाँच ( चक्षु आदि बाह्य ) इन्द्रियोंसे असंख्य शुद्ध मनो-विज्ञान द्वारा क्या विज्ञेय (= जानने योग्य ) है ?”

<sup>१</sup> वस्तुके दुःस्वात्मक, सुस्वात्मक, न-दुःस्व-न-सुस्वात्मक मात्र अनुभवको वेदना कहते हैं, जैसे कट्टर-खाति बच्चा उसका स्वाद मात्र जानता । तब्तु क्या है, इस परिचय-युक्त ज्ञानको संज्ञा कहते हैं। जैसे यह मूँग-बन्ध लट्टू है, पीला है; इसके बाद यथार्थ ज्ञानकी अवस्था विज्ञान है । जो ज्ञान भाग्यपर आरुढ़ करनेमें समर्थ होता है, वह प्रज्ञा है । उल्लर-उल्लरवाले पूर्व-पूर्वकी क्रियाके संपादक होते हैं । वेदना, संज्ञा, प्रज्ञा, अल-फिर्कीकी राशिके पास बैठे कच्चे, गेंवार और सराफकी तरह हैं । कच्चा कशाफियोंके चिच-विचच रूपहीको जानता है, गेंवार उनके द्वारा ज्ञानकी नीचे खरीदनेके उपयोगको भी जानता है, किन्तु खरे खोटेकी बात नहीं जानता; सराफ सब जानता है ।

“आहुस ! ० शुद्ध मनोविज्ञान द्वारा ‘आकाश’ अनन्त है—यह आकाश-आनन्द-आव-  
सन विशेष है; ‘विज्ञान अनन्त है’—यह विज्ञान-आनन्द-आवसन विशेष है; ‘कुछ नहीं है’ (= अ-  
किंचित्) —यह आकिंचन्-आवसन विशेष है ।”

“आहुस ! विशेष धर्मों (= पदार्थों) को किससे प्रजानन करता (= अच्छी तरह जानता)  
है ?”

“आहुस ! विशेष धर्मोंको प्रज्ञा-चक्षुसे प्रजानता है ।”

“आहुस ! प्रज्ञा किस लिये है ?”

“आहुस ! प्रज्ञा अभिज्ञाके लिये है, परिज्ञाके लिये है, प्रहाण (= त्याग ) के लिये है ।”

“आहुस ! सम्यग्-दृष्टि (= ठीक चारण ) के ग्रहणमें कितने प्रत्यय (= हेतु ) हैं ?”

“आहुस ! ० दो प्रत्यय होते हैं—( १ ) दूसरोंसे बोध (= उपदेश-श्रवण ), और ( २ )  
योगिनाः मनस्कार (= मूलपर विचार करना ) । ० । यह दोनों ० ।”

“आहुस ! किन अंगोंसे युक्त होनेपर, सम्यग्-दृष्टि चेतो-विमुक्ति-फलवाली, तथा चेतो-  
विमुक्ति-फलके माहात्म्यवाली होती है; प्रज्ञा-विमुक्ति-फलवाली तथा प्रज्ञा-विमुक्ति-फलके माहा-  
त्म्यवाली होती है ?”

“आहुस ! पाँच अंगोंसे युक्त सम्यग्-दृष्टि ० माहात्म्यवाली होती है ।—वहाँ आहुस !  
सम्यग्-दृष्टि ( १ ) शील (= सदाचार ) से युक्त होती है; ( २ ) श्रुत (= धर्मोपदेश-श्रवण ) से युक्त  
होती है; ( ३ ) साक्षात्कार (= साक्षात् = भावना आदिको प्रक्रियाके ज्ञानमेंके लिये अभिज्ञसे  
वार्तालाप ) ०; ( ४ ) शमथ (= समाधि ) ०; ( ५ ) विपश्यना (= परम-ज्ञान ) से युक्त  
होती है । इन पाँच ० ।”

“आहुस ! भव कितने हैं ?”

“आहुस ! यह तीन भव (= लोक ) हैं—काम-भव, रूप-भव, अरूप-भव ।”

“कैसे आहुस ! भविष्यमें पुनर्भव (= पुनर्जन्म ) संपन्न होता है ?”

“आहुस ! अविद्या नीवरणों (= बन्धनों ) वाले, सृणा ( रूपी ) संयोजनों (= बंधनों )  
वाले प्राणिनोंकी वहाँ वहाँ अभिनन्दना (= काळसा ) होती है; इस प्रकार आहुस ! भविष्यमें ० ।”

“आहुस ! प्रथम-ध्यान क्या है ?”

“आहुस ! वहाँ मिथु कामभावोंसे रहित बुराईयोंसे रहित, वितर्क-विचार-रहित, विवेकसे  
उत्पन्न प्रीतिसुखवाले प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । यह आहुस ! प्रथम-ध्यान कहा  
जाता है ।”

“आहुस ! प्रथम-ध्यान किस अंगवाला है ?”

“आहुस ! प्रथम-ध्यान पाँच अंगोंवाला है । आहुस ! प्रथम-ध्यान प्राप्त मिथुको वितर्क  
रहता है, विचार रहता है, प्रीति रहती है, सुख रहता है, और चित्तकी एकाग्रता रहती है ।  
आहुस ! इस प्रकार प्रथम-ध्यान पाँच अंगोंवाला है ।”

“आहुस ! प्रथम-ध्यान किन अंगोंसे विहीन और किन अंगोंसे युक्त है ?”

“आहुस ! प्रथम-ध्यान पाँच अंगोंसे विहीन और पाँच अंगोंसे युक्त होता है । आहुस !  
प्रथम-ध्यान-प्राप्त मिथुका कामच्छन्द (= विषयमें अनुराग ) प्रहीण (= हट गया ) होता है,  
व्यापाद् (= बोध ) ०, स्थान-सृज्ज (= कालस्य ) ०, औदस्य-कौकुत्स्य (= बद्धपना-हिच-  
चिकाहट ) ०, विचिकित्सा (= संशय ) प्रहीण होती है । वितर्क रहता है, विचार रहता है,  
प्रीति रहती है, सुख रहता है, चित्तकी एकाग्रता रहती है । ० ।”



“आवुस ! यह पाँच इन्द्रियाँ, जैसे कि—चक्षु-इन्द्रिय, श्रोत्र ०, घ्राण ०, मित्रा ०, काय-इन्द्रिय—मित्र मित्र विषयोंवाली = मित्र मित्र गोचरोंवाली हैं; ( यह ) एक दूसरेके विषय = गोचरको नहीं ग्रहण कर सकती; आवुस ! मित्र मित्र विषयोंवाली ०, एक दूसरेके विषय = गोचरको न ग्रहण कर सकने वाली इन पाँच इन्द्रियोंका क्या प्रतिशरण (= आश्रय ) है, इनके गोचर = विषयको कौन अनुभव करता है ?”

“आवुस ! इन पाँच ० इन्द्रियोंका प्रतिशरण मन है; मन इनके ० विषयको अनुभव करता है ।”

“आवुस ! यह चक्षु ० पाँच इन्द्रियाँ किसके प्रत्यय (= आश्रय )से स्थित हैं ?”

“आवुस ! यह ० पाँच इन्द्रियाँ आयुके आश्रयसे स्थित हैं ।”

“आवुस ! आयु किसके आश्रयसे स्थित है ?”

“आयु उष्मा (= उष्णता, शरीरकी गर्मी )के आश्रयसे स्थित है ।”

“आवुस ! उष्मा किसके आश्रयसे स्थित है ?”

“उष्मा आयुके आश्रयसे स्थित है ।”

“आवुस ! अभी हम आयुष्मान् सारिपुत्रके भाषणको सुने हैं—‘आयु उष्माके आश्रयसे स्थित है’; अभी ( फिर ) हम आयुष्मान् सारिपुत्रके भाषणको सुनते हैं—‘उष्मा आयुके आश्रयसे स्थित है’। आवुस ! इस कथनका मतलब हमें कैसे समझना चाहिये ?”

“तो आवुस ! मैं तुम्हें उपमा देता हूँ; उपमासे भी कोई कोई विज्ञ पुरुष भाषणका अर्थ समझ जाते हैं। आवुस ! जैसे जलते हुये तेलके दीपकमें, लौके सहारे प्रकाश दिखाई पड़ता है, प्रकाशके सहारे लौ दिखाई पड़ती है; ऐसे ही आवुस ! आयु उष्माके आश्रयसे स्थित है, उष्मा आयुके आश्रयसे स्थित है ।”

“आवुस ! वही आयु-संस्कार है, और वही वेदनीय (= अनुभवके विषय ) धर्म (= पदार्थ ) है; अबवा आयु-संस्कार दूसरे है, और वेदनीय-धर्म दूसरे है ?”

“आवुस ! आयु-संस्कार और वेदनीय-धर्म एक नहीं हैं; यदि आयु-संस्कार और वेदनीय-धर्म एक होते; तो संज्ञा-वेदित-निरोध ( ध्यान )में अवस्थित मिथुका ( वेदना-रहित अवस्थासे वेदनासहित अवस्थामें ) उठना न होता। चूँकि आवुस ! आयु-संस्कार दूसरे है, और वेदनीय-धर्म दूसरे है, इसलिये संज्ञा-वेदित-निरोधमें अवस्थित मिथुका उठना होता है ।”

“आवुस ! कितने धर्म (= पदार्थ ) इस कायाको छोड़ते हैं, जब कि यह छोटा फँका हुआ अचेतन ( शरीर ) काठकी मूर्ति सोता है ?”

“आवुस ! जब इस कायाको आयु, उष्मा और विज्ञान—यह तीन धर्म छोड़ते हैं; तो यह ० अचेतन काठकी मूर्ति सोता है ।”

“आवुस ! यह जो भरा हुआ = कालकृत है, और जो यह संज्ञा-वेदित-निरोध ( ध्यान )में अवस्थित मिथु है; इन दोनोंमें क्या भेद है ?”

“आवुस ! यह जो भरा हुआ = कालकृत है, इसके काय-संस्कार (= शारीरिक गति ) निरुद्ध, शान्त हो गये होते हैं, उसके वाचिक संस्कार निरुद्ध, शान्त हो गये होते हैं, चित्त-संस्कार निरुद्ध शान्त हो गये रहते हैं; आयु क्षीण, उष्मा शीत, इन्द्रियाँ उच्छिन्न हो गई रहती हैं। जो वह संज्ञा-वेदित-निरोधमें अवस्थित मिथु है, उसके भी काय-संस्कार (= कायिक क्रियायें ), वाचिक-संस्कार, चित्त-संस्कार निरुद्ध और प्रतिप्रसव्य होते हैं, किन्तु उसकी आयु क्षीण नहीं होती, उष्मा शान्त नहीं होती, इन्द्रियाँ विशेषतः प्रसन्न (= निर्मल ) होती हैं। यह है आवुस ! ० ( दोनों ) का भेद ।”

“आवुस ! सुख-दुःख ( दोनों )-रहित चेतो-विमुक्तिकी समापत्ति (= प्राप्ति ) के कितने प्रत्यय (= आशय ) हैं ?”

“आवुस ! चार हैं ० ( जब ) मिथु सुख और दुःखके परित्यागसे; सौमनस्य (= चित्तो-शास ), और दौर्मनस्य (= चित्त संताप ) के पहिलेही अस्त हो जानेसे, सुख-दुःख रहित उपेक्षासे स्तुतिकी परिशुद्धि वाले चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । यह आवुस ! सुख-दुःख-रहित चेतोविमुक्ति समापत्तिके चार प्रत्यय हैं ।”

“आवुस ! आनिमित्त-चेतोविमुक्तिकी समापत्तिके कितने प्रत्यय हैं ?”

“आवुस ! ० दो प्रत्यय हैं—(१) सारे निमित्तों (= रूप-आकृति आदि ) का मनमें न करना; और (२) अनिमित्त धातु (= लोक ) का मनमें करना । यह आवुस ! ० ।”

“आवुस ! आनिमित्त-चेतोविमुक्तिकी स्थितिके लिये कितने प्रत्यय हैं ?”

“आवुस ! ० तीन प्रत्यय हैं—(१) सारे निमित्तोंको मनमें न करना; (२) अनिमित्त धातुको मनमें करना; और (३) पूर्वका अनिसंस्कार (= संस्कार ) । यह आवुस ! ० ।”

“आवुस ! आनिमित्त-चेतोविमुक्तिके उत्थानके कितने प्रत्यय हैं ?”

“आवुस ! ० दो प्रत्यय हैं—(१) सारे निमित्तोंको मनमें न करना; और (२) अनिमित्त-धातुको मनमें न करना । यह आवुस ! ० ।”

“आवुस ! जो यह अप्रमाणा चेतोविमुक्ति है, जो यह आकिंचन्या चेतो-विमुक्ति है, जो यह शून्यता चेतोविमुक्ति है, और जो यह आनिमित्त-चेतोविमुक्ति है; वह धर्म (= पदार्थ ) नाना-अर्थ-वाले और नाना-व्यंजन-वाले है, अथवा एक-अर्थ-वाले किन्तु नाना-व्यंजन-वाले हैं ?”

“आवुस ! ० ऐसा मतलब (= पर्याय ) है, जिससे यह ( चारों ) धर्म नाना-अर्थ-वाले, नाना-व्यंजन-वाले हैं; ऐसा मतलब भी है, जिससे कि यह एक-अर्थ-वाले हैं व्यंजन ही ( इनका ) नाना है । क्या है वह मतलब जिससे यह ० ?—आवुस ! ( जब ) मिथु (१) मैत्रीयुक्त चित्तसे एक दिशाको पूर्ण कर विहरता है, वैसे ही दूसरी दिशाको, वैसे ही तीसरी दिशाको, वैसे ही चौथी दिशाको, इस प्रकार ऊपर नीचे, आगे-पेछे, सबके विचारसे लपके अर्थ, विपुल, महान्, प्रमाण-रहित (= अति-विशाल ), वैर-रहित, व्यापाद-रहित, मैत्री-युक्त चित्तसे सभी लोकको पूर्ण कर विहरता है । ( २ ) करुणायुक्त चित्तसे ० । ( ३ ) मुद्रिता-युक्त चित्तसे ० । ( ४ ) उपेक्षा-युक्त चित्तसे ० । यह आवुस ! अप्रमाणा चेतोविमुक्ति कहां जाती है ।

“क्या है आवुस ! आकिंचन्या चेतोविमुक्ति ?”—आवुस ! ( जब ) मिथु विज्ञान-आवतनको अतिक्रमण कर, ‘हुत नहीं है’ (= अ-किंचन )—इस आकिंचन्य-आवतनको प्राप्त हो विहरता है; यह आवुस ! आकिंचन्या चेतोविमुक्ति है ।

“क्या है आवुस ! शून्यता चेतोविमुक्ति ?—आवुस ! ( जब ) मिथु अरण्य, वृक्ष-छाया या शून्य-आगारमें रहते वह सोचता है—‘यह सभी ( जगत् ) आत्मा या आत्मीयसे शून्य है’; वह आवुस ! ० । क्या है आवुस ! आनिमित्त चेतोविमुक्ति ? आवुस ! ( जब ) मिथु सभी निमित्तोंको मनमें न कर, अनिमित्त चित्तकी समाधि को प्राप्त कर विहरता है; यह है आवुस ! ० । यह है आवुस ! मतलब, जिस मतलबसे यह धर्म नाना-अर्थ-वाले और नाना-व्यंजन-वाले हैं ।

“क्या है आवुस ! मतलब, जिस मतलबसे यह एक-अर्थ-वाले हैं, व्यंजन ही ( इनके ) नाना हैं ?—आवुस ! राग, द्वेष, मोह (—यह तीनों ) प्रमाण करनेवाले हैं; किन्तु क्षीणाक्षय (= चित्तमल्लोंसे युक्त, जलित ) मिथुके वह क्षीण हो गये, जबसे उच्छिन्न हो गये हैं, सिर-कटे तापकी तरह हो गये हैं, जमावकी प्रज्ञा हो गये हैं, अविषमें डूबकर होने योग्य नहीं रह गये हैं ।



आवुस ! जितनी अप्रमाणा चेतोविमुक्तियाँ हैं, अकोप्या ( चेतो-विमुक्ति ) उनमें (सबसे) श्रेष्ठ है । अकोप्या चेतो-विमुक्ति राग-द्वेष-मोहसे शुन्य है । आवुस ! राग किंचन है, द्वेष किंचन है, मोह किंचन है । वह ( राग, द्वेष, मोह ), क्षीणाश्रय भिक्षुके क्षीण हो गये ० । आवुस ! जितनी आकिंचन्या चेतोविमुक्तियाँ हैं, अकोप्या चेतोविमुक्ति उनमें (सर्व-)श्रेष्ठ है । और वह अकोप्या चेतोविमुक्ति राग-द्वेष-मोहसे शुन्य है । आवुस ! राग निमित्त-करण है, द्वेष निमित्त-करण है, मोह निमित्त-करण है । वह, क्षीणाश्रय भिक्षुके क्षीण हो गये ० । आवुस ! जितनी अनिमित्ता चेतोविमुक्तियाँ हैं, अकोप्या चेतोविमुक्ति उनमें (सर्व-)श्रेष्ठ है । वह अकोप्या चेतोविमुक्ति राग-द्वेष-मोहसे शुन्य है । आवुस ! यह अतलव (= पर्याय ) है, जिस अतलवसे यह धर्म एक-अर्थ-वाले हैं, व्यंजन ही ( इनके ) माना हैं ।"

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा, सन्तुष्ट हो आयुष्मान् महाकोट्टितने आयुष्मान् सारिपुत्रके भाषणको जमिनंदित किया ।

## ४४-चूल-वेदल्ल-सुत्तन्त ( १।५।४ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् राजगृहमें कलम्बकनिवाप वेशुवनमें विहार करते थे ।

तब उपासक विशाख जहाँ धम्मदिक्षा<sup>१</sup> भिक्षुणो भी, वहाँ गया, जाकर धम्मदिक्षा भिक्षुणीको अभिवादन कर एक ओर बैठा । एक ओर बैठे उपासक विशाखने धम्मदिक्षा भिक्षुणी को यह कहा—

“आर्ये ( = अर्या ) ! ‘सत्काय’ ‘सत्काय’ कहा जाता है; आर्ये ! भगवान्ने किसे सत्काय कहा है ?”

“यह जो रूप उपादान-स्कंध, वेदना उपादान-स्कंध, संज्ञा उपादान-स्कंध, संस्कार-उपादान-स्कंध, विज्ञान उपादान-स्कंध है; आतुस विशाख ! इन्हीं पाँच उपादान-स्कंधों<sup>२</sup> को भगवान्ने सत्काय कहा है ।”

“साधु, आर्ये !”—( कह ) उपासक विशाखने धम्मदिक्षा भिक्षुणीके भाषणको अभि-  
नंदित कर= अनुबोधित कर; धम्मदिक्षा भिक्षुणीसे आगेका प्रश्न पूछा—

“अर्या ! ‘सत्काय-समुदय’, ‘सत्काय-समुदय’ कहा जाता है; अर्या ! भगवान्ने किसे सत्काय-समुदय कहा है ?”

“आतुस विशाख ! जो यह सुख-संबंधी इच्छासे संयुक्त, उन उन ( विषयों ) को अभिनन्दन करने वाली आवागमनकी सृष्टि है; जैसे कि काम-सृष्टि, मय ( = जन्म )-सृष्टि, विभव-सृष्टि, आतुस विशाख ! इसी ( सृष्टि ) को भगवान्ने सत्काय-समुदय ( = आत्मवादका कारण ) कहा है ।”

“अर्या ! ‘सत्काय-निरोध’, ‘सत्काय-निरोध’ कहा जाता है । अर्या ! भगवान्ने किसे सत्काय-निरोध ( = आत्माके ब्यालका नाश ) कहा है ?”

“आतुस विशाख ! उसी सृष्टिआका जो सम्पूर्णतया वैराग्य विनाश ( = निरोध ), त्याग=

<sup>१</sup> धम्मदिक्षा ( = धर्मदत्ता ) राजगृहके इसी विशाख सेठकी भावों भी; पीछे पतिव्रती सम्प्रतिसे भिक्षुणी हो, एक बहुत ही अभावशालिनी गमोवरेष्टी हुई ।

<sup>२</sup> चराचर जगत्का उपादान-कारण रूप आदि पाँच स्कंधोंमें बँटा है । इनमें वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञानकी ही अवस्था-विशेष होनेसे इन्हीं रूप और विज्ञान दो स्कंधोंमें विभक्त किया जा सकता है । विज्ञान-को नाम भी कहते हैं । यह पाँच स्कंध जब स्वयंसे किये जाते हैं, तो इन्हीं उपादान-स्कंध कहते हैं । इन स्कंधोंसे परे जीव या चेतन कोई पदार्थ नहीं । पाँच उपादान-स्कंधोंसे नती इस ‘कायामे सत्ता’ ( = सत्+काय ) है आत्माकी—यह मिथ्याज्ञान होता है ।



प्रतिनिस्सर्ग, मुक्ति, अनालय (= अनासक्ति) है; आबुस विशाख ! इसे भगवान्ने सत्काय-निरोध कहा है ।”

“अथवा ! ‘सत्काय-निरोध गामिनी प्रतिपद्’, ‘सत्काय-निरोध-गामिनी प्रतिपद्’ कहा जाता है । अथवा ! भगवान्ने किसे सत्काय-निरोध-गामिनी प्रतिपद् (= आत्माके क्वालके राशकी ओर ले जानेवाला मार्ग ) कहा है ?”

“आबुस विशाख ! भगवान्ने सत्काय-निरोध-गामिनी प्रतिपद् कहा है, इसी आर्य-अष्टांगिक-मार्ग<sup>१</sup> को; जैसे कि—सम्यग्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यग्-वचन, सम्यक्-कर्मोन्त, सम्यग्-आजीव, सम्यग्-व्यापाम, सम्यक्-स्मृति, सम्यक्-समाधि ।”

“अथवा ! वही उपादान है, और वही उपादान-स्फंध है; अथवा उपादान पाँच उपादान स्फंधोंसे अलग है ?”

“आबुस विशाख ! न उपादान और पाँच उपादान-स्फंध एक है, न उपादान पाँच उपादान स्फंधोंसे अलग है । आबुस विशाख ! पाँच उपादान-स्फंधोंमें जो हृन्द = राग है, वही वहाँ उपादान है ।”

“कैसे अथवा ! सत्काय-दृष्टि होती है ?”

“आबुस विशाख ! ( जय ) आर्योंके दर्शनसे वंचित, आर्य-धर्मसे अपरिचित, आर्य-धर्ममें अ-विनीत (= न पहुँचे ) ; सत्पुरुषोंके दर्शनसे वंचित, सत्पुरुष-धर्मसे अपरिचित, सत्पुरुष-धर्ममें अ-विनीत, अज्ञ, अनायी (= पृथग्जन ) पुरुष रूपको आत्माके तीर पर देखता है, या रूपवान्को आत्मा, आत्मामें रूपको, रूपमें आत्माको ( देखता है ) । वेदनाको आत्माके तीर पर ० । संज्ञाको आत्माके तीर पर ० । संस्कारको आत्माके तीर पर ० । विज्ञानको आत्माके तीरपर ० । इस प्रकार आबुस विशाख ! ० ।”

“क्या है अथवा ! आर्य अष्टांगिक मार्ग ?”

“आबुस विशाख ! आर्य अष्टांगिक मार्ग है वही—सम्यग्-दृष्टि<sup>२</sup> ।

“अथवा ! आर्य अष्टांगिक मार्ग संस्मृत (= कृत ) है वा अ-संस्मृत ?”

“आबुस विशाख ! ० संस्कृत है ।”

“अथवा ! आर्य अष्टांगिक मार्गमें तीनों स्फंध संगृहीत हैं, वा तीनों स्फंधोंमें आर्य अष्टांगिक मार्ग संगृहीत है ?”

“आबुस विशाख ! आर्य अष्टांगिक मार्गमें तीनों स्फंध संगृहीत नहीं हैं, ( वरिष्ठ ) तीन स्फंधोंमें आर्य अष्टांगिक मार्ग संगृहीत है । आबुस विशाख ! जो सम्यग्-वचन, सम्यग्-आजीव और सम्यक्-कर्मोन्त हैं, वह... शील-स्फंधमें संगृहीत है । जो सम्यग्-व्यापाम, सम्यक्-स्मृति, और सम्यक्-समाधि है, वह... समाधि-स्फंधमें संगृहीत है । जो सम्यग्-दृष्टि और सम्यक्-संकल्प हैं, वह... प्रज्ञा-स्फंधमें संगृहीत है ।”

“अथवा ! क्या है समाधि, क्या है समाधि-निमित्त, क्या है समाधि-परिष्कार, और क्या है समाधि-भावना ?”

“आबुस विशाख ! जो चित्तकी एकाग्रता है, वही समाधि है । चार स्मृति-प्रस्थान<sup>३</sup> ० समाधि - निमित्त (= ० चिह्न ) हैं । चार सम्यक्-प्रधान समाधिके परिष्कार हैं । जो उन्हीं

<sup>१</sup> इसके अर्थके लिये देखो सतिपट्टान-सूत्र ( ३५-४० )

<sup>२</sup> देखो सूत्र ३१ ।

<sup>३</sup> देखो सतिपट्टान-सूत्र, सूत्र ३५-४० ।

धर्मों (= पदार्थों) का सेवन करना = भावना करना, ब्रह्मना, यही समाधि भावना है ।"

"अथवा ! संस्कार कितने हैं ?"

"आबुस विद्याल ! यह तीन संस्कार हैं—काय-संस्कार (= कायिक गति या क्रिया) वचन-संस्कार, चित्त-संस्कार ।"

"अथवा ! क्या है काय-संस्कार, क्या है वचन-संस्कार, क्या है चित्त-संस्कार ?"

"आबुस विद्याल ! आश्वास-प्रश्वास काय-संस्कार है, वितर्क-विचार वचन-संस्कार है, संज्ञा और वेदना चित्त-संस्कार है ।"

"क्यों अथवा ! आश्वास-प्रश्वास काय-संस्कार है ? क्यों वितर्क-विचार वचन-संस्कार है ? क्यों वेदना, संज्ञा चित्त-संस्कार है ?"

"आबुस विद्याल ! आश्वास-प्रश्वास (= साँस लेना छोड़ना) यह कायसे संबद्ध कायिक धर्म (= क्रियामें) है, इसलिये आश्वास-प्रश्वास काय-संस्कार है । आबुस विद्याल ! पहिले वितर्क करके विचारकरके पाँठे वचन निकालता है, इसलिये वितर्क-विचार वचन-संस्कार है । आबुस विद्याल ! संज्ञा और वेदना चित्तसे संबद्ध चेतनिक धर्म है, इसलिये संज्ञा और वेदना चित्त-संस्कार है ।"

"अथवा ! कैसे संज्ञा-वेदित-निरोध समापत्ति होती है ?"

"आबुस विद्याल ! संज्ञा-वेदित-निरोध को समापन्न (= प्राप्त) हुये मिथुको यह नहीं होता—'मैं संज्ञा-वेदित-निरोधको समापन्न होऊँगा', 'मैं संज्ञा-वेदित-निरोधको समापन्न हो रहा हूँ' या 'मैं संज्ञा-वेदित-निरोध को समापन्न हुआ' । बल्कि उसका चित्त पहिलेहीसे इस प्रकार भावित (= अन्वित) होता है, कि वह उस स्थितिको पहुँच जाता है ।"

"अथवा ! जो संज्ञा-वेदित-निरोधमें समापन्न हुआ है, उसके कौनसे धर्म पहिले निरुद्ध (= रुद्ध) होते हैं—क्या काय-संस्कार या वचन-संस्कार या चित्त-संस्कार ?"

"आबुस विद्याल ! ० समापन्न हुये मिथुका पहिले वचन-संस्कार निरुद्ध होता है, फिर काय-संस्कार, तब चित्त-संस्कार ।"

"अथवा ! संज्ञा-वेदित-निरोध समापत्तिसे उद्धान (= उठना) कैसे होता है ?"

"आबुस विद्याल ! संज्ञा-वेदित-निरोध समापत्तिसे उद्धान करते मिथुको यह नहीं होता—'मैं संज्ञा ० से उठूँगा', या 'मैं ० उठ रहा हूँ', या 'मैं ० उठा' । बल्कि उसका चित्त पहिलेहीसे इस प्रकार भावित होता है, कि वह उस स्थितिको पहुँच जाता है ।"

"अथवा ! संज्ञा-वेदित-निरोध समापत्तिसे उठते हुये मिथुको कौनसे धर्म पहिले उत्पन्न होते हैं—क्या काय-संस्कार, या वचन-संस्कार या चित्त-संस्कार ?"

"आबुस विद्याल ! ० उठते हुये मिथुको पहिले चित्त-संस्कार उत्पन्न होता है, फिर काय-संस्कार तब वचन-संस्कार ।"

"अथवा ! संज्ञा-वेदित-निरोध समापत्तिसे उठे मिथुको कितने स्पर्श स्पर्श करते हैं ?"

"० तीन स्पर्श स्पर्श करते हैं—शून्यता-स्पर्श, अनिमित्त-स्पर्श, और अप्रणिहित (= लब्ध)-स्पर्श ।"

"अथवा ! ० से उठे मिथुका चित्त किधर निष्प्र-किधर प्रवण, = किधर झुका (= प्राग्वार = पहाव) होता है ?"

"० का चित्त विवेक (= एकान्त चिन्तन) की ओर निष्प्र-विवेक-प्रवण = विवेक-प्राग्वार होता है ।"



“अध्या ! कितनी वेदनायें हैं ?”

“आवुस विशाख ! यह तीन वेदनायें हैं—सुखा (= सुखमय) वेदना, दुःखा वेदना, और अदुःख-असुखा वेदना ।”

“अध्या ! क्या सुखा वेदना है, क्या दुःखा वेदना है, और क्या अदुःख-असुखा वेदना है ?”

“आवुस विशाख ! जो कोई कायिक वा मानसिक अनुभव (= वेदित, वेदयित) सात (= अनुकूल), सुखमय प्रतीत होता है; वह सुखा वेदना है ।” “जो कायिक वा मानसिक अनुभव असात (= प्रतिकूल), दुःखमय प्रतीत होता है; वह दुःखा वेदना है ।” “और जो कायिक वा मानसिक अनुभव न सात न असात प्रतीत होता है; वह अदुःख-असुखा वेदना है ।”

“अध्या ! सुखा वेदना क्या सुखा है, क्या दुःखा है ? दुःखा वेदना क्या सुखा है, क्या दुःखा है ? अदुःख-असुखा वेदना क्या सुखा है, क्या दुःखा है ?”

“आवुस विशाख ! सुखा वेदना रहते वक्क (= स्थिति) सुखा है, परिणाममें दुःखा है । दुःखा वेदना रहते वक्क दुःखा है, परिणाममें सुखा है । अदुःख-असुखा वेदना ज्ञानमें सुखा है, अज्ञानमें दुःखा है ।”

“अध्या ! सुखा वेदनामें कौन अनुशय (= चित्त-भल) चिपटता है ? दुःखा वेदनामें कौन अनुशय चिपटता है ? अदुःख-असुखा वेदनामें कौन अनुशय चिपटता है ?”

“आवुस विशाख ! सुखा वेदनामें राग-अनुशय चिपटता है; दुःखा वेदनामें प्रतिघ (= प्रतिहिंसा)-अनुशय चिपटता है; अदुःख-असुखा वेदनामें अविद्या-अनुशय चिपटता है ।”

“अध्या ! क्या सभी सुखा वेदनाओंमें राग-अनुशय चिपटता है ? क्या सभी दुःखा-वेदनाओंमें प्रतिघ-अनुशय चिपटता है ? क्या सभी अदुःख-असुखा वेदनाओंमें अविद्या-अनुशय चिपटता है ?”

“आवुस विशाख ! सभी सुखा वेदनाओंमें राग-अनुशय नहीं चिपटता, न सभी दुःखा वेदनाओंमें प्रतिघ-अनुशय चिपटता है, और न सभी अदुःख-असुखा वेदनाओंमें अविद्या-अनुशय चिपटता है ।”

“अध्या ! सुखा वेदनामें क्या प्रहातव्य (= त्याग्य) है ? दुःखा वेदनामें क्या प्रहातव्य है ? अदुःख-असुखा वेदनामें क्या प्रहातव्य है ?”

“आवुस विशाख ! सुखा वेदनामें राग-अनुशय प्रहातव्य है, दुःखा वेदनामें प्रतिघ-अनुशय, अदुःख-असुखा वेदनामें अविद्या-अनुशय प्रहातव्य है ।”

“अध्या ! क्या सभी सुखा वेदनाओंमें राग-अनुशय प्रहातव्य है ? ० प्रतिघ-अनुशय प्रहातव्य है ? ० अविद्या-अनुशय प्रहातव्य है ?”

“आवुस विशाख ! सभी सुखा वेदनाओंमें राग-अनुशय प्रहातव्य नहीं है, ० प्रतिघ-अनुशय प्रहातव्य नहीं, सभी अदुःख-असुखा वेदनाओंमें अविद्या-अनुशय प्रहातव्य नहीं है । आवुस विशाख ! ( जय ) मिश्र कामनाओंसे रहित, दुराद्योंसे रहित, विवेकसे उत्पन्न चित्तक-विचार-रहित, प्रीति और सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । उस ( ध्यान )से वह रागको छोड़ता है; वहाँ राग-अनुशय नहीं चिपटता । ( जय ) आवुस विशाख ! मिश्र ऐसा सोचता है—कैसे उस आद्यतन (= स्थान)को प्राप्त हो बिहरेगा, जिस आद्यतनको प्राप्तकर आर्य ( लोग ) इस समय विहर रहे हैं; इस प्रकार अनुत्तर (= उत्तम ) विमोक्षोंमें स्पष्टा उपस्थित करने पर स्पष्टाके कारण दोर्भनस्य उत्पन्न होता है, उससे ( वह ) प्रतिघको छोड़ता है; वहाँ प्रतिघ-अनुशय नहीं चिपटता । आवुस विशाख ! ( जय ) मिश्र सुख और दुःखके परित्यागसे, सौमनस्य

और दीर्घमनस (= चित्त-संताप) के अल हो जानेसे, सुख-दुःख-विरहित, उपेक्षा द्वारा स्मृति की परिकुट्टिवाले चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है; इससे वह अविद्याको डोकाता है; उसमें अविद्या-अनुशय नहीं चिपटता ।”

“अध्या ! सुखा वेदनाका क्या प्रतिभाग (= विपक्षी) है ?”

“० दुःख-वेदना प्रतिभाग है ।”

“अध्या ! दुःखा वेदनाका क्या प्रतिभाग है ?”

“० सुखा वेदना प्रतिभाग है ।”

“अध्या ! अदुःख-असुखा वेदनाका क्या प्रतिभाग (= सपक्षी) है ?”

“० अविद्या प्रतिभाग है ।”

“० अध्या ! अविद्याका क्या प्रतिभाग है ?”

“० विद्या ० ।”

“अध्या ! विद्याका क्या प्रतिभाग (= सपक्षी) है ?”

“० विमुक्ति ० ।”

“अध्या ! विमुक्तिका क्या प्रतिभाग (= सपक्षी) है ?”

“० निर्वाण ० ।”

“अध्या ! निर्वाणका क्या प्रतिभाग है ?”

“आलुस विशाख ! तुम प्रश्नको अतिरुमण कर गये । प्रश्नोंके पर्यन्त (= सीमा, )को नहीं पकड़ रख सके । आलुस विशाख ! ब्रह्मचर्य निर्वाणपर्यन्त है, निर्वाण-धरायण है = निर्वाण-पर्यवसान है । आलुस विशाख ! यदि चाहो तो भगवान्से जाकर इस प्रश्नको पूछो, जैसा तुम्हें भगवान् कहें, वैसा धारण करना ।”

सब उपासक विशाख धम्मदिक्षा भिक्षुणीके भाषणको अभिनन्दित कर अनुमोदित कर, आलससे उठ धम्मदिक्षा भिक्षुणीको अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठा । एक ओर बैठे उपासक विशाखने जो कुछ धम्मदिक्षा भिक्षुणीके साथ कथा-संलाप हुआ था, वह सब भगवान्से कह दिया । ऐसा कहने पर भगवान्ने उपासक विशाखसे यह कहा—

“विशाख ! धम्मदिक्षा भिक्षुणी वंदिता है । विशाख ! धम्मदिक्षा भिक्षुणी महाप्रज्ञा है । विशाख ! यदि तुम सुने भी इस बातको पूछते, तो मैं भी ऐसे ही उत्तर देता, जैसे कि धम्मदिक्षा भिक्षुणीने उत्तर दिया । यही इसका अर्थ है । इसी तरह इसे धारण करो ।”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उपासक विशाखने भगवान्के भाषणको अभिनन्दित किया ।



## ४५-चूल-धम्मसमादान-सुत्तन्त (१।५।५)

येसा मैने सुना—

एक समय भगवान् धावस्तीमें अनाद्यपिंडिकके आश्रम जेतवनमें विहार करते थे ।

वहाँ भगवान्ने मिथुओंको संबोधित किया—“मिथुओ !”

“भक्त ! ( कह ) उन मिथुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“मिथुओ ! यह चार धर्मसमादान (= धर्मकी स्वीकृतियाँ ) हैं ।

कौनसे चार ?—मिथुओ ! ( १ ) एक धर्मसमादान वर्तमानमें सुखद किन्तु भविष्यमें दुःख-विपाक वाला होता है ।” ( २ ) वर्तमानमें भी दुःखद और भविष्यमें भी दुःखद होता है ।” ( ३ ) वर्तमानमें दुःखद, भविष्यमें सुखद होता है ।” ( ४ ) वर्तमानमें भी सुखद और भविष्यमें भी सुखद होता है ।

( १ ) “मिथुओ ! कौनसा धर्मसमादान वर्तमानमें सुखद, ( किन्तु ) भविष्यमें दुःखद होता है ?—मिथुओ ! कोई कोई धम्मण ब्राह्मण इस वाक्के माननेवाले इस दृष्टि (= धारणा ) वाले होते हैं—‘काम (= विषय ) में कोई दोष नहीं ।’ वह कामोंमें पतित होते हैं । वह भीलि (= बूढ़ा )-वद परिमाजिका (= लाधुनी स्त्रियों ) का सेवन करते हैं । वह कहते हैं—‘क्यों वह धम्मण ब्राह्मण कामोंके विषयमें भविष्यका भय देख कामोंके छोड़नेको कहते हैं, कामोंकी परिज्ञा (= परित्याग ) को कहते हैं । इस तरुण, स्रवुक, लोभश परिमाजिकाका पाँहसे स्पर्श ( तां ) सुखमय है’—और कामोंमें पतित होते हैं । वह कामोंमें पतित हो, काया डोव मरनेके बाद अपाय = दुर्गति, विनिपात = नरकमें उत्पन्न होते हैं । वह वहाँ दुःखमय, तीव्र, कटु वेदनाओंको झेलते हैं । ( तब ) वह यह कहते हैं—‘वह आप धम्मण ब्राह्मण कामोंमें इसी भविष्यके भयको देख कामोंके प्रहाणको कहते थे, कामोंकी परिज्ञा (= त्याग ) को कहते थे । वह हम कामोंके हेतु, कामोंके कारण दुःखमय, तीव्र कटु वेदना झेल रहे हैं ।’ जैसे मिथुओ ! मीषके अन्तिम-भासमें मालुवा ( लता ) का पका फल गिर पड़े । और मिथुओ ! वह मालुवाका बीज किसी शाल (= साल ) के वृक्षके नीचे पड़े । तब मिथुओ ! जो शाल वृक्ष पर रहनेवाला देवता है, वह मय-भीत, उद्भिन्न हो संवासको प्राप्त होवे । तब उस शालवृक्ष पर रहनेवाले देवताके मित्र अमाय, जाति-विरादरीवाले आरास-देवता, वन-देवता, वृक्ष-देवता, औषधि-मृग-वतरपतियोंमें बसनेवाले देवता आकर जमा हो उसे इस प्रकार आश्वासन दें—‘आप भत डरें, क्या जाने इस मालुवाके बीजको मोर निगल जाये, या मृग खा जाये, या जंगलकी आगसे जल जाये, या वनमें काम करनेवाले उठाले-जायें, या विचरनेवाले खा जायें, या बिना बीजकी होवे । तब मिथुओ ! उस मालुवाके बीजको न मोर निगले, न मृग खाये, न विचरनेवाले खायें, और उसको बीज होवे । वह वर्षा कालीन मेघसे सिक्त हो जच्छी प्रकार उगे । उस ( वृक्ष ) पर तरुण, स्रवुक, लोभश मालुवा लता निर्बद्धित होवे । वह

उस शालकी लपेट ले । तब मिथुओ ! उस शालपर घसनेवाले देवताको ऐसा हो । क्यों उन ( मेरे ) मित्र-अमात्य ० देवताओंने आकर जमा हो सुखी इस प्रकार आश्वासन दिया—आप मत डरें ० । इस तरुण, सुदुल, लोमहा, विलंबिनी मालुवा लड़ाका स्वर्ण ( तो ) सुखमय है ।—वह ( लता ) उस शालको पकड़े । पकड़कर ऊपर उठा घनाये । ऊपर उठा घनाकर नीचे घना करे । नीचे घनाकर उस शालके बड़े बड़े स्कन्धोंको प्रद्वारित करे । तब उस शालपर रहनेवाले देवताको ऐसा हो—उन ( मेरे ) मित्र-अमात्य ० देवताओंने आकर सुखी इस प्रकार आश्वासन दिया—आप मत डरें ० । और मैं अब उस मालुवा-बीजके कारण दुःखमय, तीव्र, कटु वेदनाओंको झेल रहा हूँ । ऐसे ही मिथुओ ! वह धमन-व्याघ्र इस वादके माननेवाले ०<sup>१</sup> झेल रहे हैं । मिथुओ ! यह वर्तमानमें सुखमय, भविष्यमें दुःखमय धर्मसमादान कहा जाता है ।

(२) “मिथुओ ! कौनसा धर्मसमादान वर्तमानमें भी दुःखमय और भविष्यमें भी दुःखमय है ?—मिथुओ ! यहाँ कोई क्षन्नेलक (= तंगा साधु) होता है ०<sup>२</sup> शामको वलशयनके व्यापारसे लभ होता है, वह काया छोड़ मरनेके बाद ० नरकमें उत्पन्न होता है । मिथुओ ! यह कहा जाता है वर्तमानमें भी दुःखद, और भविष्यमें भी दुःखद धर्मसमादान ।

(३) “मिथुओ ! कौनसा धर्मसमादान वर्तमानमें सुखद, ( किन्तु ) भविष्यमें सुखमय है ?—मिथुओ ! यहाँ कोई ( पुरुष ) स्वभावसे ही तीव्र रागवाला होता है, वह निरन्तर रागसे उत्पन्न दुःख, दौर्भाग्यको झेलता रहता है । स्वभावसे ही तीव्र द्वेषवाला होता है ० । स्वभावसे ही तीव्र मोहवाला होता है; वह निरन्तर मोहसे उत्पन्न दुःख दौर्भाग्यको झेलता रहता है । वह दुःख = दौर्भाग्यके साथ भी अधुसुख, रुदन करते परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका आचरण करता है । वह काया छोड़ मरनेके बाद सुगति स्वर्ग लोकमें उत्पन्न होता है । मिथुओ ! यह कहा जाता है ० ।

(४) “मिथुओ ! कौनसा धर्मसमादान वर्तमानमें भी सुखद है, भविष्यमें भी सुखमय है ?—मिथुओ ! यहाँ कोई ( पुरुष ) स्वभावसे ही तीव्र रागवाला नहीं होता, वह निरन्तर रागसे उत्पन्न दुःख दौर्भाग्यको नहीं अनुभव करता । ० तीव्र द्वेषवाला नहीं होता ० । ० तीव्र मोहवाला नहीं होता ० । वह ०<sup>३</sup> प्रथम-ध्यान ० द्वितीय-ध्यान ० तृतीय-ध्यान ० चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । वह काया छोड़ मरनेके बाद सुगति स्वर्ग लोकमें उत्पन्न होता है । मिथुओ ! यह वर्तमानमें भी सुखद, भविष्यमें भी सुखमय धर्मसमादान कहा जाता है । मिथुओ ! यह चार धर्म-समादान हैं ।”

भगवान्ने यह कहा, श्रुतुष्ट हो उन मिथुओंने भगवान्के भाषणको अभिर्नदित किया ।

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ १८४ ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ ४८-४९ ।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ १५ ।



## ४६—महा-धम्मसमादान-सुत्तन्त (१।५।६)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् आवस्सोमें अनाथापिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

वहाँ भगवान्ने मिश्रुओंको संबोधित किया—“मिश्रुओ !”

“मदन्त !”—( कह ) उन मिश्रुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“मिश्रुओ ! अधिकतर प्राणी इस प्रकारकी कामनावाले, इस प्रकारकी इच्छावाले, इस प्रकारके अभिप्रायवाले होते हैं—“अहो ! अनिष्ट = अकान्त = अमानाप धर्म (= पदार्थ) क्षीण हो जायें । इष्ट = कान्त = मानाप धर्म वृद्धिको प्राप्त होवें” । मिश्रुओ ! इस प्रकारकी कामनावाले ० उन प्राणियोंके अनिष्ट ० धर्म वकते हैं, इष्ट ० धर्म क्षीण होते हैं । वहाँ मिश्रुओ ! तुम्हें क्या हेतु जान पड़ता है ?”

“भन्ते ! हमारे धर्मके भगवान् ही मूल हैं, भगवान् ही नेता हैं, भगवान् ही प्रति-धारण हैं । अच्छा हो भन्ते ! भगवान् ही इस भाषणका अर्थ कहें, भगवान्से सुनकर मिश्रु उसे धारण करेंगे ।”

“तो मिश्रुओ ! सुनो, अच्छी प्रकार मनमें धारण करो कहता हूँ ।”

“अच्छा, भन्ते !” ( कह ) उन मिश्रुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“यहाँ मिश्रुओ ! आयोके दर्शनसे वंचित ०<sup>१</sup> अज्ञ, अनापी जन्म, सेवन करने योग्य धर्मोंको नहीं जानता, अ-सेवन करने योग्य धर्मोंको नहीं जानता, भजनीय (= सेवनीय) धर्मोंको नहीं जानता, अ-भजनीय धर्मोंको नहीं जानता । वह सेवनीय धर्मोंको न जानते ० असेवनीय धर्मोंका सेवन करता है, सेवनीय धर्मोंको सेवन नहीं करता ० । असेवनीय धर्मोंको सेवन करते, सेवनीय धर्मोंको न सेवन करते ० उसके अनिष्ट ० धर्म वकते हैं, इष्ट ० क्षीण होते हैं । सो किस हेतु ?—मिश्रुओ ! उस अज्ञको यह ऐसा ही होता है ।

“मिश्रुओ ! आयोके दर्शनको प्राप्त ०<sup>२</sup> बहुश्रुत आर्यआवक सेवनीय धर्मोंको जानता है, असेवनीय धर्मोंको जानता है ० । ० जानते हुए असेवनीय धर्मोंको सेवन नहीं करता, सेवनीय धर्मोंको सेवन करता है ० । ० । सेवन करते ० अनिष्ट ० धर्म क्षीण होते हैं, इष्ट ० धर्म वृद्धिको प्राप्त होते हैं । सो किस हेतु ?—मिश्रुओ ! उस अज्ञको ऐसा ही होता है ।

“मिश्रुओ ! यह चार धर्म-समादान हैं । कौनसे चार ?—( १ ) वर्तमानमें दुःखद, भविष्यमें भी दुःखद धर्मसमादान, ( २ ) वर्तमानमें सुखद, भविष्यमें दुःखद, ( ३ ) वर्तमानमें दुःखद, भविष्यमें सुखद, ( ४ ) वर्तमानमें सुखद, भविष्यमें भी सुखद ।

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ ३ ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ ७ ।

“वहाँ, मिश्रुओ ! जो यह वर्तमानमें दुःखद, भविष्यमें भी दुःखद धर्मसमादान है, उसे भविष्यामें पढ़ा भविद्वान् ठीकसे नहीं जानता, कि यह धर्मसमादान वर्तमानमें दुःखद ० । भविष्यामें पढ़ा भविद्वान् उसे ठीकसे न जानते हुये उसका सेवन करता है, उसे छोड़ता नहीं । उसे सेवन करते, उसको न छोड़ते हुये उस ( पुरुष ) के अनिष्ट ० धर्म बढ़ते हैं, इष्ट ० धर्म क्षीण होते हैं । सो किस हेतु ?—अज्ञको ऐसा ही होता है ।

“वहाँ, मिश्रुओ ! जो यह वर्तमानमें सुखद, भविष्यमें दुःखद धर्मसमादान है, उसे भविष्यामें पढ़ा भविद्वान् ठीकसे नहीं जानता ० ।

“वहाँ, मिश्रुओ ! जो यह वर्तमानमें दुःखद, भविष्यमें सुखद, धर्मसमादान है, उसे भविष्यामें पढ़ा भविद्वान् ठीकसे नहीं जानता ० ।

“वहाँ, मिश्रुओ ! जो यह वर्तमानमें सुखद भविष्यमें भी सुखद धर्मसमादान है, उसे भविष्यामें पढ़ा भविद्वान् ठीकसे नहीं जानता ० । उसका सेवन नहीं करता, उसे छोड़ता है । ० ।

“वहाँ, मिश्रुओ ! जो यह वर्तमानमें दुःखद भविष्यमें भी दुःखद धर्मसमादान है, उसे विद्यायुक्त विद्वान् ठीकसे जानता है, कि यह ० । विद्यायुक्त विद्वान् उसे ठीकसे जानते हुये उसका सेवन नहीं करता, उसे छोड़ता है । उसे सेवन न करते, उसको छोड़ते हुये, उस के अनिष्ट ० धर्म क्षीण होते हैं, इष्ट ० धर्म बढ़ते हैं । सो किस हेतु ?—विद्वान्को ऐसा ही होता है ।

“वहाँ, मिश्रुओ ! जो यह वर्तमानमें सुखद, भविष्यमें दुःखद धर्मसमादान है, उसे विद्यायुक्त विद्वान् ठीकसे जानता है, कि यह ० । ० ।

“ ० जो यह वर्तमानमें दुःखद, भविष्यमें सुख ० । ० ।

“ ० जो यह वर्तमानमें सुखद, धर्मसमादान है, उसे विद्यायुक्त विद्वान् ठीकसे जानता है, कि यह ० । ० उसका सेवन करता है, छोड़ता नहीं । उसे सेवन करते, उसे न छोड़ते हुये, उस ( पुरुष ) के अनिष्ट ० धर्म क्षीण होते हैं, इष्ट ० धर्म बढ़ते हैं । सो किस हेतु ?—विद्वान्को ऐसा ही होता है ।

“मिश्रुओ ! कौनसा धर्मसमादान वर्तमानमें दुःखद, भविष्यमें भी दुःखद है ?—( जव ) मिश्रुओ ! कोई ( पुरुष ) दुःखके साथ भी, दीर्घमनस्यके साथ भी प्राणातिपाती (= हिंसक ) होता है । प्राणातिपात (= हिंसा ) के कारण दुःख=दीर्घमनस्यको झेलता है । दुःख दीर्घमनस्यके साथ भी अदिवादायी (= चोरी करनेवाला ) होता है । अदिवादान (= चोरी करने ) के कारण दुःख दीर्घमनस्य भी झेलता है । ० काम-मिथ्याचारी (= व्यभिचारी ) ० । ० भ्रूषावादी ० । ० सुगुलबोर ० । ० परुष-भाषी ० । ० प्रलापी ० । ० अमिथ्यालु (= लोभी ) ० । ० व्यापक-चित्त (= द्वेषी ) ० । ० मिथ्या-दृष्टि (= झूठी चारणा वाला ) ० । वह काया बोज भरनेके बाद ० नरकमें उत्पन्न होता है । मिश्रुओ ! यह वर्तमानमें दुःखद भविष्यमें दुःखद धर्मसमादान कहा जाता है ।

“मिश्रुओ ! कौनसा धर्मसमादान वर्तमानमें सुखद भविष्यमें दुःखद होता है ?—( जव ) कोई ( पुरुष ) दुःख दीर्घमनस्यके साथ भी प्राणातिपाती होता है । ० । ० ।

“ ० धर्मसमादान (= धर्मस्वीकार, विचार-स्वीकार ) वर्तमानमें दुःखद भविष्यमें सुखद है ? ० । ० ।

“ ० धर्मसमादान वर्तमानमें सुखद, भविष्यमें भी सुखद होता है ?—( जव ) मिश्रुओ ! कोई ( पुरुष ) सुख=दीर्घमनस्यके साथ भी प्राणातिपातसे विरत होता है । प्राणातिपातसे विरत



होनेके कारण सुख लौभनस्यको अनुभव करता है । ० अदिच्चादान ० । ० । ० मिथ्या-दृष्टि ० । वह काया छोड़ मरनेके बाद ० स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है । भिक्षुओ ! यह वर्तमानमें भी सुखद भविष्यमें भी सुखद धर्मसमादान कहा जाता है ।

“जैसे भिक्षुओ ! विषसे लिप्त कढ़वा लौका हो, तब कोई जीवनको इच्छा वाला, मरनेकी इच्छा न रखनेवाला, सुखेच्छुक, दुःखानिच्छुक पुरुष आवे । उसे ( लोग ) यह कहें—‘हे पुरुष ! यह विषसे लिप्त कढ़वा लौका है, यदि इच्छा हो तो पिओ । उसे पीते वक्त भी वह तुम्हें वर्ण-गंध-रसमें अच्छा न लगेगा । पीनेके बाद मृत्यु को प्राप्त होगा, या मृत्यु-तुल्य दुःखको । यदि वह बिना सोचे विचारे उसे पिये, छोड़े नहीं, तो उसे पीते वक्त ० मृत्यु-तुल्य दुःखको । भिक्षुओ ! वर्तमानमें दुःखद, भविष्यमें भी दुःखद धर्मसमादानको उस ( लौके ) के समान कहता हूँ ।

“जैसे, भिक्षुओ ! ( सुंदर ) वर्ण-रस-गंध शुक्ल आकृतिरा ( = वाषाणीय कंस ) हो, और वह विषसे संलित हो । तब कोई जीवनको इच्छावाला ० पुरुष आवे । ० । उसे पीते वक्त वह वर्ण-गंध-रसमें अच्छा लगेगा, ( किन्तु ) पीनेके बाद वह मृत्युको प्राप्त होगा, या मृत्यु-तुल्य दुःख को । ० । भिक्षुओ ! वर्तमानमें सुखद और भविष्यमें दुःखद धर्मसमादानको मैं उस ( आषणोरे ) के समान कहता हूँ ।

“जैसे, भिक्षुओ ! माता औषधियोंसे मिश्रित गोमूत्र ( = इति-मुत्त ) हो । तब ( कोई ) पांडुरोगी पुरुष आवे । उसको ऐसे कहें—‘हे पुरुष ! यह माता औषधियोंसे मिश्रित गोमूत्र है; यदि चाहो तो पिओ । तुम्हें पीते वक्त यह वर्ण-गंध-रसमें अच्छा न लगेगा, ( किन्तु ) पीनेके बाद तुम सुखी ( = निरोग ) होगे । वह सोच विचारकर उसे पिये, छोड़े नहीं । ० । भिक्षुओ ! वर्तमानमें दुःखद और भविष्यमें सुखद धर्मसमादानको मैं उस ( गोमूत्र ) के समान कहता हूँ ।

“जैसे, भिक्षुओ ! दही, मधु, घी, खाँड ( = फाणित ) एकमें मिला हो । तब ( कोई ) लोह गिरनेवाला ( = अतिसारकारोगी ) पुरुष आवे । उसको ऐसा कहें—‘हे पुरुष ! यह एकमें मिला दही, मधु, घी, खाँड है; यदि चाहो तो पिओ । पीते वक्त यह वर्ण-गंध-रसमें अच्छा लगेगा पीनेके बाद ( भी ) तुम सुखी होगे । ० । भिक्षुओ ! वर्तमानमें भी सुखद और भविष्यमें सुखद धर्मसमादानको मैं उस मिश्रित दधि-मधु-सर्विष्-फाणितके समान कहता हूँ ।

“जैसे, भिक्षुओ ! वर्षाके अन्तिममासमें शरद-कालके समय मेघरहित नभमें कमकता हुआ सूर्य सारे आकाशके अंधकारको भस्तरकर प्रकाशे, तपे, और नासे; ऐसेही भिक्षुओ ! यह वर्तमानमें भी सुखद और भविष्यमें भी सुखद धर्मसमादान, अन्य सारे अमण-ब्राह्मणोंके प्रवाद ( = मत ) को भस्तरकर प्रकाशता है, तपता है, भासता है ।”

भगवान् ने यह कहा, संतुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान् के भाषणको अभिर्नंदित किया ।

## ४७-वीमंसक-सुत्तन्त ( १।५।७ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिटिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब भगवान्ने मिश्रुओंको संबोधित किया—“मिश्रुओ !”

“भवन्त !”—( कह ) उन मिश्रुओंने भगवान्को उत्तर किया ।

भगवान्ने यह कहा—“मिश्रुओ ! दूसरेके चित्तकी घात न जाननेवाले वीमंसक ( = बीमं-सक = विमर्शक = सखासख-परीक्षक ) मिश्रुको सन्त्यक्-संतुष्ट ( = परमार्थ-ज्ञानी ) है या नहीं यह जाननेके लिये तत्तागत ( = लोकगुरु ) के विषय में समन्वेषण ( = तद्वहोक्षात् ) करना चाहिये ।”

“साधु, भन्ते ! हमारे धर्मके भगवान् ही मूल हैं ।” भगवान्ने सुनकर मिश्रु उसे धारण करेंगे ।”

“तो मिश्रुओ ! सुनो, अच्छी प्रकार मनमें धारण करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा, भन्ते !”—( कह ) उन मिश्रुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“मिश्रुओ ! विमर्शक मिश्रुको तत्तागत के विषयमें चक्षु-श्रोत्र द्वारा जानने योग्य ( = विज्ञेय ) धर्मों ( = बातों ) के संबंधमें जाँच करनी चाहिये—जो चक्षु-श्रोत्र-विज्ञेय मलिन धर्म ( = पाप ) है, वह ( इस ) तत्तागतके है, या नहीं ? उसको जाँच करते हुये ( जब ) वह यह देखता है—चक्षु-श्रोत्र-विज्ञेय मलिन धर्म तत्तागतमें नहीं है ।” तब आगे जाँच करता है—जो चक्षु-श्रोत्र-विज्ञेय व्यतिमिश्र ( = पाप-पुण्य-मिश्रित ) धर्म है, वह तत्तागतमें है या नहीं ?—व्यति-मिश्र धर्म तत्तागतमें नहीं है ।” तब आगे जाँच करता है—जो चक्षु-श्रोत्र-विज्ञेय अवदात ( = शुद्ध )-धर्म ( = पुण्य ) है, वह तत्तागतमें है, या नहीं ?—अवदात-धर्म तत्तागतमें है ।” तब आगे जाँच करता है—दोष कालसे यह आयुष्मान् इस कुशल-धर्म ( = पुण्य-आचरण ) को कर रहे हैं, या अचिर कालसे हो कर रहे हैं ?—दोषकालसे यह आयुष्मान् इस कुशल-धर्मसे युक्त हैं, अचिरकालसे नहीं ।” तब आगे जाँच करता है—व्याप्ति-प्राप्त, यश-प्राप्त इन आयुष्मान् मिश्रुमें कोई आदिनव ( = दोष ) है या नहीं ? मिश्रुओ ! जब तक मिश्रु व्याप्ति प्राप्त यश-प्राप्त नहीं होता, तब तक कोई कोई दोष उसमें नहीं आते । जब मिश्रुओ ! मिश्रु व्याप्ति-प्राप्त यश-प्राप्त होता है, तब कोई कोई दोष उसमें आते हैं । उसको जाँच करते हुये वह यह देखता है—यह आयुष्मान् मिश्रु व्याप्ति-प्राप्त यश-प्राप्त हैं, ( और ) इनमें कोई दोष नहीं आये है ।” तब आगे जाँच करता है—यह आयुष्मान् मयके बिना विरागी हुये हैं, मयसे तो विरागी नहीं हुये, रागके मयके कारण वीतराग होनेसे ( वह ) कामों ( = मोक्षों ) को नहीं सेवन करते ?—० वीतराग



होनेसे कामोंको सेवन नहीं करते । मिथुओ ! उस मिथुसे यदि हमरे यह पूछें—“(उत्त) आयुष्मान्-के क्या आकार-प्रकार (= ० अन्वय) हैं, जिससे कि (आप) आयुष्मान् ऐसा कह रहे हैं—यह आयुष्मान् मयके बिना विरागी हुये हैं, मयसे विरागी नहीं हुये; रागके क्षयके कारण वीतराग होनेसे यह कामोंको सेवन नहीं करते ।” तो ठीक तौरसे उत्तर देते हुये (वह) मिथु (उन्हें) ऐसा उत्तर दे—क्योंकि संघर्षमें विहरते (= रहते) या अकेले विहरते, यह आयुष्मान्, सुगत (= सन्मार्गाहू), दुर्गत (= कुमार्गाहू) गण-उपदेशक, आश्रित (= भोजनाच्छादन)-रक्त, आश्रित-अनुपलब्ध (किसीभी व्यक्ति)का तिरस्कार नहीं करते । मैंने इसे भगवान्के सुखसे सुना है, भगवान्के सुखसे ग्रहण किया है—“मैं मयके बिना विरागी हूँ, मयसे विरागी नहीं हूँ; रागके क्षयके कारण वीतराग होनेसे मैं कामोंका सेवन नहीं करता ।”

“आगे फिर मिथुओ ! तथ्यागतको ही पूछना चाहिये—चक्षु-श्रोत्र-विज्ञेय सजित धर्म तथ्यागतमें हैं या नहीं ? उत्तर देते वक्त तथ्यागत ऐसा उत्तर देंगे—० सजित धर्म (= पाप) तथ्यागत में नहीं हैं । ० व्यतिमित्र (= पाप-गुण-मिश्रित) धर्म ० । ० अवदात-धर्म तथ्यागतमें हैं या नहीं ? ०—अवदात-धर्म तथ्यागतमें हैं । इसी (अवदात-धर्मवाले) पक्षपर मैं (= तथ्यागत) आहूट हूँ, वही मेरा मोक्ष (= विषय) है; मैं उससे रिक्त नहीं हूँ ।”

“मिथुओ ! ऐसे वाद (= सिद्धान्त) वाले शास्त्रा (= उपदेशक, तथ्यागत)के पास आवक (= शिष्य)को धर्म सुननेके लिये जाना चाहिये । उसे शास्त्रा, कृष्ण-गुरु (= अच्छे गुरु)के विभागके साथ उत्तमोत्तम = प्रणीत-प्रणीत धर्म उपदेशता है । मिथुओ ! जैसे जैसे शास्त्रा उसे मिथुको ० धर्म उपदेशता है; वैसे वैसे वह यहाँ धर्मोंको समझ कर धर्मोंमेंसे किसी धर्ममें आस्था प्राप्त करता है; शास्त्रामें श्रद्धा करता है—(हमारे) भगवान् सम्यक्-संबुद्ध हैं, भगवान्का (उपदेश) धर्म स्वाक्यात (= सुन्दर प्रकारसे व्याख्यात) भगवान्का (शिष्य-)संघ सुप्रतिपन्न (= सुमार्गाहू) है ।

“मिथुओ ! यदि उस मिथुको दूसरे ऐसा पूछें—“(उत्त) आयुष्मान्के क्या आकार प्रकार हैं, जिससे (आप) आयुष्मान् (वह) कह रहे हैं—“भगवान् सम्यक्-संबुद्ध हैं, भगवान्का धर्म स्वाक्यात है, संघ सुप्रतिपन्न है” ? अच्छी तरह उत्तर देते हुये मिथुओ ! (उत्त) मिथुको कहना चाहिये—“आहुतो ! जहाँ भगवान् थे, वहाँ मैं धर्म सुननेके लिये गया । (तब) मुझे भगवान्ने ० उत्तमोत्तम = प्रणीत-प्रणीत धर्म उपदेश दिया ० संघ सुप्रतिपन्न है” ।”

“मिथुओ ! जिस किसी (पुरुष)को इन आकारों = इन पदों = इन ध्वजनोंसे तथ्यागतमें श्रद्धा निविष्ट होती है, मूल-बद्ध हो प्रतिष्ठित होती है; वह आकारवती दर्शन-मूलक एवं श्रद्धा कही जाती है । वह (किसी भी) अमण, आश्रण, देव, भार (= प्रजापति) श्रद्धा या लोकमें किसीभी (व्यक्ति)से हटाई नहीं जा सकती ।”

“मिथुओ ! इस प्रकार धर्म-समन्वेषणा होती है; इस प्रकार तथ्यागतकी धर्मता (= तथ्य) का समन्वेषण (= अन्वेषण) होता है ।”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन मिथुओंने भगवान्के भाषणको अभिर्नन्दित किया ।

## ४८-कोसम्बिय-सुत्तन्त' (१।५।८)

ऐसे मैंने सुना—

एक समय भगवान् कौशाम्बी (= कोसम्बी) के घोषिता-राममें विहार करते थे।

उस समय कौशाम्बीमें मिश्रु भंडन करते-कलह करते, विवाद करते एक दूसरेको मुख (-रूपी) शक्ति (= हथियार) से बेधते फिरते थे। वह न एक दूसरेको संज्ञापन (= समझाना) करते थे, न संज्ञापनके पास उपस्थित होते थे; न एक दूसरेको निष्पापन (= समझाना) करते थे, न निष्पापनके पास उपस्थित होते थे। सब कोई मिश्रु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया; जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस मिश्रुने भगवान्से यह कहा—

“यहाँ मन्ते ! कौशाम्बीमें मिश्रु भंडन करते ० बेधते फिरते हैं ० न निष्पापनके पास उपस्थित होते हैं।”

तब भगवान्ने किसी मिश्रुको संबोधित किया—“आओ, मिश्रु, तुम मेरे वचनसे उन मिश्रुओंसे कहो—आयुष्मानोंको शांता हुआ रहे हैं।”

“अच्छा, मन्ते !”—( कह ) भगवान्को उत्तर दे, उस मिश्रुने जहाँ वह ( क्षयपाल ) मिश्रु थे, वहाँ जाकर उन मिश्रुओंसे कहा—आयुष्मानोंको शांता हुआ रहे हैं।”

“अच्छा, आहुस !”—( कह ) उस मिश्रुको उत्तर दे, वह मिश्रु जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उन मिश्रुओंकी भगवान्ने यह कहा—

“सचमुच मिश्रुओ ! तुम भंडन करते ० न निष्पापनके पास उपस्थित होते हो ?”

“हाँ, मन्ते !”

“तो क्या मानते हो, मिश्रुओ ! जिस समय तुम भंडन करते ० बेधते फिरते हो, क्या उस समय सबकचारियों (= सचर्मियों) के प्रति गुप्त और प्रकट तुम्हारा मैत्रीपूर्ण कायिक कर्म, मैत्रीपूर्ण वाचिक कर्म, मैत्रीपूर्ण मानसिक कर्म उपस्थित रहता है ?”

“नहीं, मन्ते !”

“इस प्रकार मिश्रुओ ! जिस समय तुम भंडन करते ०, उस समय ० मैत्रीपूर्ण मानसिक कर्म उपस्थित नहीं रहता। तो मोघ-पुरुषो ! तुम क्या जानते क्या देखते भंडन करते ० बेधते फिरते हो ! ० न निष्पापनके पास उपस्थित होते हो ! मोघ-पुरुषो ! यह तुम्हें चिरकाल तक अद्वित और दुःखके लिये होगा।”

तब भगवान्ने ( सभी ) मिश्रुओंको संबोधित किया—“मिश्रुओ ! यह ठा : धर्म सारा-

\* कोसम् ( जि० इलाहाबाद ) में ई० पू० ५२१में वर्णित ।



योग=प्रियकारक गुल्कारक है, ( वह ) संग्रह (= मेल ), अविवाद, सामग्री (= एकता )=एकी-भावके लिये है । कौनसे छः ?—मिथुनो ! (१) ( जब ) मिथुनका सम्बन्धचारियोंके प्रति गुप्त और प्रकट मैत्रीपूर्ण काविक कर्म उपस्थित होता है । मिथुनो ! वह भी धर्म साराणीय ० एकीभावके लिये है ।

“और फिर मिथुनो ! (२) ० मैत्रीपूर्ण वाचिक कर्म ० ।

“ ० (३) ० मैत्रीपूर्ण मानसिक कर्म ० ।

“और फिर मिथुनो ! (४) मिथुनके जो धार्मिक धर्मसे प्राप्त लाभ हैं, चाहे पाप चुपवने मात्र भी; उन लाभोंको शीलवान् सम्बन्धचारियोंके साथ साधारण-भोगी=बँटकर उपभोग करने-वाला होता है । मिथुनो ! वह भी धर्म साराणीय ० ।

“और फिर मिथुनो ! (५) उन शीलों (= सदाचारों ) से संयुक्त हो सम्बन्धचारियोंके साथ विहस्ता है, जो शील कि अ-बल=अ-क्रिद् (= दोषरहित ) अ-शयल=अ-कलम, सेवनीय, विज्ञांसे प्रशंसित, अ-मिन्दित, समाधि-प्रापक हैं । मिथुनो ! वह भी धर्म साराणीय ० ।

“और फिर मिथुनो ! (६) उस दृष्टि (= दर्शन, ज्ञान )से युक्त हो, सम्बन्धचारियोंके साथ विहस्ता है, जो दृष्टि कि आर्य (= निर्मल ), निस्तारक है; वैसा करनेवालेको अच्छो प्रकार दुःख-शमकी ओर लेजाती है । मिथुनो ! वह भी धर्म साराणीय ० ।

“मिथुनो ! वह छः धर्म साराणीय ० एकीभावके लिये है । मिथुनो ! जो वह दृष्टि आर्य ० है, वह इन छःओ साराणीय धर्मोंमें अग्र (= श्रेष्ठ ) संग्राहक=संघातक (= समूह-प्रधान ) है । जैसे मिथुनो ! कृताकारका कूट (= शिखर ) लग्न, संग्राहक=संघातक होता है; ऐसे ही जो वह दृष्टि आर्य ० ।

“क्या है मिथुनो ! वह दृष्टि आर्य ० दुःख-शमकी ओर लेजाती है ?—(३) ( जब ) मिथुनो ! अरण्य, वृक्ष-काया वा जल-आधारमें स्थित मिथु यह सोचता है—क्या मेरे भीतर वह परि-उत्थान (= चंचलता ) अक्षीण नहीं हुआ है, जिस पर्युत्थानसे पर्युत्थित चित्त हो मैं यथा-भूत (= यथार्थ )को नहीं जान सकता, नहीं देख सकता । मिथुनो ! यदि मिथु काम-राग (= भोग-इच्छा ) से पर्युत्थित होता है, ( तो ) वह पर्युत्थित-चित्त (= चंचल-चित्त ) ही होता है । मिथुनो ! यदि मिथु व्यापाद (= द्वेष )से पर्युत्थित होता है ० । ० स्त्यान-मृद (= काविक मानसिक आलस्य ) ० । ० औद्धत्य-कौटस्य (= उद्धतपना, हिचकिचाहट ) ० । ० विचिकित्सा (= संशय ) ० । ० इस लोककी चिन्तामें कैसा ० । परलोकको चिन्तामें कैसा ० । मिथुनो ! जब मिथु मंडन करते ० बेधते फिरते हैं, ( तो ) वह पर्युत्थित-चित्त ही होते हैं । वह इस प्रकार जानता है—मेरे भीतर वह पर्युत्थान अ-क्षीण नहीं है ० । मेरा मानस सत्त्वोंके बोधके लिये सुप्रतिष्ठित (= एकाग्र, निष्कल ) है । पृथग्जनो (= अज्ञो )को न होनेवाला वह उसे प्रथम लोकोत्तर आर्य-ज्ञान प्राप्त होता है ।

“और फिर मिथुनो ! (२) आर्यभावक (= सत्पुरुष शिष्य ) यह सोचता है—क्या मैं इस दृष्टिको स्वेन करते, भावते, बड़ाते अपनेमें शमव (= क्षान्ति ), निर्वृति (= सुख )को पाता हूँ ?—यह इस प्रकार जानता है—० निर्वृतिको पाता हूँ । ० यह उसे द्वितीय लोकोत्तर आर्य-ज्ञान प्राप्त होता है ।

“और फिर मिथुनो ! (३) आर्यभावक यह सोचता है—मैं जिस दृष्टिसे युक्त हूँ, क्या इससे बाहर भी दूसरे अमण माक्षण ऐसी दृष्टिसे युक्त है ?—० दूसरे अमण माक्षण ऐसी दृष्टिसे युक्त नहीं है । ० यह उसे तृतीय लोकोत्तर आर्य-ज्ञान प्राप्त होता है ।

“और फिर मिथुनो ! (५) आर्यश्रावक यह सोचता है—दृष्टि-सम्पन्न (= आर्य-दर्शन युक्त) पुरुष (= पुद्गल) जैसी धर्मता (= स्वभाव, गुण) से युक्त होता है, क्या मैं भी वैसी धर्मतासे युक्त हूँ ?—मिथुनो ! दृष्टि-सम्पन्न पुरुषकी यह धर्मता है, कि वह ऐसी आपत्ति (= अपराध) का भागी होता है, जिस आपत्तिसे उद्धान (= उठना ) हो सके । ( आपत्ति हो जानेके ) बाद ही वह शास्ता या विद्वत् समझचारियोंके पास उसकी देशना (= अपराध निवेदन ), विवरण (= प्रकट करना )=उत्पत्तीकरण करता है; देशना करके, विवरण करके, उत्पत्ती करके भविष्यमें संवर (= रक्षा )के किये तत्पर होता है । जैसे मिथुनो ! अशोध, उत्पत्ती सोनेवाला छोटा बच्चा हाथसे या पैरसे अंगार छूजानेपर तुरन्त ही ससेट लेता है, ऐसे ही मिथुनो ! दृष्टि-सम्पन्नकी यह धर्मता है, कि वह ऐसी आपत्तिका भागी होता है • भविष्यमें संवरके लिये तत्पर होता है । ( वैसा सोचते ) वह जानता है—दृष्टि-सम्पन्न पुरुष जैसी धर्मतासे युक्त होता है, मैं भी वैसी धर्मतासे युक्त हूँ । • यह उसे चतुर्थ लोकोत्तर आर्य-ज्ञान प्राप्त होता है ।

“और फिर मिथुनो ! (५) आर्यश्रावक यह सोचता है—दृष्टि-सम्पन्न पुरुष जैसी धर्मतासे युक्त होता है, क्या मैं भी वैसी धर्मतासे युक्त हूँ ?—मिथुनो ! दृष्टि-सम्पन्न पुरुषकी यह धर्मता है कि वह समझचारियोंके छोटे घरे (= उच्चावच ) करणीयोंका कुशल रखता है, ( उनकी ) शील-संबंधिनी, चित्त-संबंधिनी, प्रज्ञा-संबंधिनी शिक्षाओंमें वह तीन अपेक्षा (= कृत्या ) रखता है । जैसे मिथुनो ! छोटे बच्चेवाली माय घास चरती जाती है, और बच्चेकी ओर देखती रहती है, ऐसे ही मिथुनो ! दृष्टि-सम्पन्न पुरुषकी यह धर्मता है • । ( वैसा सोचते ) वह जानता है—• मैं भी वैसी धर्मतासे युक्त हूँ । • यह उसे पंचम लोकोत्तर आर्य-ज्ञान प्राप्त होता है ।

“और फिर मिथुनो ! (६) आर्यश्रावक यह सोचता है—दृष्टि सम्पन्न पुरुष जैसी बलतासे (= सामर्थ्य) से युक्त होता है, क्या मैं भी वैसी बलतासे युक्त हूँ ?—मिथुनो ! दृष्टि-सम्पन्न पुरुषकी यह बलता है, कि दृष्टि-सम्पन्न पुरुष तत्वागतके वतलाये धर्म-विनय (= धर्म )के उपदेश किये जाते समय—मन लगाकर चित्तको एकाग्र कर कान लगा धर्मको सुनता है । ( वैसा सोचते ) वह जानता है—• मैं भी वैसी बलतासे युक्त हूँ । • यह उसे षष्ठ लोकोत्तर आर्यज्ञान प्राप्त होता है ।

“और फिर मिथुनो ! (७) आर्यश्रावक यह सोचता है—• क्या मैं भी वैसी बलतासे युक्त हूँ ?—मिथुनो ! दृष्टि-सम्पन्न पुरुषकी यह बलता है, कि तत्वागतके वतलाये धर्म-विनयके उपदेश किये जाते समय ( वह ) अर्थ-वेद (= अर्थ-ज्ञान )को पाता है, धर्म-वेदको पाता है, धर्म सम्बन्धी प्रामोद (= प्रमोद )को पाता है । ( वैसा सोचते ) वह जानता है—• मैं भी वैसी बलतासे युक्त हूँ । • यह उसे सप्तम लोकोत्तर आर्यज्ञान प्राप्त होता है ।

“मिथुनो ! इस प्रकार स्रोत-आपत्ति-फलके साक्षात्कारके लिये सात अंगोंसे युक्त आर्यश्रावककी इस प्रकार सुसमन्विष्ट (= अच्छी प्रकार जाँची गई ) धर्मता होती है । मिथुनो ! इस प्रकार सात अंगोंसे युक्त आर्यश्रावक स्रोत-आपत्ति-फलसे युक्त होता है ।”

मगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन मिथुनोंने मगवान्के भाषणको अभिनन्दित किया ।

\* निर्वाण-नामी पद्म रूपी नदीके स्रोतपर निवृत्तवा आर्य स्थिति ।



## ४६-ब्रह्म-निमन्तनिक-सुत्तन्त (१।५।६)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भद्रन्त !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—“एक समय मैं भिक्षुओ ! उक्कुट्टाके सुभगावनमें शालराजके नीचे विहरता था। उस समय भिक्षुओ ! धृक् ( नामक ) ब्रह्माको ऐसी बुरी धारणा उत्पन्न हुई थी—‘यह ( ब्रह्मलोक ) निर्य है, ध्रुव, शाश्वत, केवल ( = शुद्ध ), जन्म-मरण-धर्मा ( = वहाँसे च्युति नहीं होती ) है; यह न जन्मता है, न जीर्ण होता है, न मरता है, न च्युत होता है, न उपजता है। इससे आगे दूसरा निस्सरण ( = निकलनेका स्थान ) नहीं है।’

“तब भिक्षुओ ! मैं चित्तसे एक ब्रह्माके चित्तकी बात जानकर, जैसे ब्रह्मवान् पुरुष ( अप्रमत्त ) अपनी फैलाई धाँहकी समेट ले, या समेटीको फैलादे, ऐसे ही उक्कुट्टाके सुभगावनमें शालराजके नीचे अन्तर्धान हो उस ब्रह्मलोकमें ( जाकर ) प्रकट हुआ।

“भिक्षुओ ! धृक् ब्रह्माने दूरसे ही मुझे आते देखा। देखकर मुझसे यह कहा—‘आओ मार्ग !’ स्वागत, मार्ग ! फिरकालके बाद मार्ग ! यहाँ आना हुआ। मार्ग ! यह निश्चय है ० इससे आगे दूसरा निस्सरण नहीं है।’

“भिक्षुओ ! ऐसा कहने पर मैंने धृक् ब्रह्माको यह कहा—‘अविद्यामें पड़ा है, अहो ! वह ब्रह्मा, अविद्यामें पड़ा है, अहो ! वह ब्रह्मा, जो कि अनिरय्य होतेको निरय्य कहता है ० इससे आगे ( = धृक्कर ) दूसरा निस्सरण होते भी, इससे आगे दूसरा निस्सरण नहीं है—कहता है।’

“तब भिक्षुओ ! पापात्मा द्वार एक ब्रह्म-पार्षदके (शरीरके) भीतर प्रविष्ट हो मुझसे बोला—‘भिक्षु ! भिक्षु ! मत इन ( ब्रह्मा ) का अपमान करो, मत इनका अपमान करो। भिक्षु ! यह ब्रह्मा है, महाब्रह्मा, अभिम् ( = विवेता ), अन्-अभिभूत, ( सर्व- ) दर्शी, वराकर्त्री, ईश्वर, ( धृष्टि- ) कर्ता, निर्माता, श्रेष्ठ, स्रष्टा, वशी, भूत-भक्ष्य ( प्राणियों ) के पिता हैं। भिक्षु ! तुझसे पूर्व भी लोकमें पृथिवी-निन्दक, पृथिवी-शुश्रूषु, जल-निन्दक ०, तेज-निन्दक ०, वायु-निन्दक ०, भूत-निन्दक ०, देव-निन्दक ०, प्रमापति-निन्दक ०, ब्रह्मा-निन्दक ०, अमण ब्राह्मण हुये थे; वह काया शोष प्राणके विच्छेद होनेपर हीन कायामें प्रतिष्ठित हुये। भिक्षु ! तुझसे पूर्व भी लोकमें पृथिवी प्रशंसक = पृथिवी-अभिनन्दी, ०, ० ब्रह्मा-प्रशंसक ०, अमण ब्राह्मण हुये थे; वह काया शोष प्राणके विच्छेद होनेपर उत्तम कायामें प्रतिष्ठित हुये। सो मैं भिक्षु ! तुझे यह कहता हूँ—अरे मार्ग ! जो कुछ ब्रह्मा तुझे

१ देवताओंका समान व्यक्तिके साथ संबोधनका शब्द।

कहे, तू वही कर, मत ब्रह्माके वचनका अतिक्रमण कर । यदि तू मिथु ! ब्रह्माके वचनका अतिक्रमण करेगा, तो जैसे आदमी जाती थी ( = लक्ष्मी ) को डंटेसे लौटा दे, या जैसे आदमी नरकके प्रपात ( = खड्ग ) में गिरता हाथ-पैरसे पृथिवीको विरक्त ( = त्यक्त ) करे, ऐसी ही हालत मिथु ! तेरी होगी । अरे मार्य ! जो कुछ ब्रह्मा तुझे कहे, तू वही कर, मत ब्रह्माके वचनको अतिक्रमण कर । क्यों मिथु ! ब्राह्मी ( = ब्रह्माकी ) परिषद्को बैठी देख रहा है तू ? इस प्रकार मिथुओ ! पापात्मा मार ब्राह्मी परिषद्की ओर ( मेरा क्याल ) ले गया ।

“ऐसा कहतेपर मिथुओ ! मैंने पाप्मा मारको यह कहा—‘पापी ! मैं तुझे जानता हूँ, मत समझ कि मैं तुझे नहीं जानता । पापी ! तू मार है । पापी ! जो ब्रह्मा है, जो ब्रह्म-परिषद् है, और जो ब्रह्मपार्षद हैं, सभी तेरे हाथमें हैं, सभी तेरे वशमें हैं । पापी ! तुझे ऐसा होता है, यह ( = मैं ) भी मेरे हाथमें आये, यह भी मेरे वश में हो । किन्तु पापी ! मैं तेरे हाथमें नहीं आया, मैं तेरे वशमें नहीं हुआ हूँ ।

“ऐसा कहतेपर मिथुओ ! वक् ब्रह्माने तुझे यह कहा—मार्य ! मैं निम्न होतहीको नियम कहता हूँ, \* आगे दूसरा निस्सरण न होने ही पर, आगे दूसरा निस्सरण नहीं है—कहता हूँ । मिथु ! तुझसे पूर्व भी लोकमें अभ्रमण ब्राह्मण हुये । जितनी तेरी सारी आयु है, उतना उनका ( केवल ) तप-कर्म ( का समय ) था । वह आगे दूसरा निस्सरण होनेपर ‘आगे दूसरा निस्सरण है’, आगे दूसरा निस्सरण न होनेपर ‘आगे दूसरा निस्सरण नहीं है’, यह जान सकते थे । सो मिथु ! मैं तुझसे यह कहता हूँ, तू आगे दूसरा निस्सरण नहीं देख पायेगा, सिर्फ परेशानीका भागी बनेगा । यदि मिथु ! तू पृथिवीकी अभ्येषणा ( = प्रार्थना ) करेगा, तो तू मेरा पार्श्वचर, गृह-शापी, यथेष्टकारी, स्वल्पकारी होगा । यदि मिथु तू जलकी ०, तेजकी ०, वायुकी ०, मृतकी ०, देवताकी ०, प्रजापतिकी ०, ब्रह्माकी ० ।

“ब्रह्मा ! मैं भी इसे जानता हूँ, ( कि ) यदि मैं पृथिवीकी अभ्येषणा करूँगा, तो मैं तेरा पार्श्वचर ० होऊँगा । ० । ब्राह्माकी ० । किन्तु ब्रह्मा ! मैं तेरी गति ( = निष्पत्ति ), और प्रभाव ( = क्षति ) को जानता हूँ—ऐसा महर्षिक ( = महाकृद्दिशा ) वक् ब्रह्मा है, ऐसा महानुभाव ( = महाप्रभावशाली ) वक् ब्रह्मा है, ऐसा शक्तिशाली ( = महोत्सव्य ) वक् ब्रह्मा है ।

“‘क्या तू मार्य ! मेरी गति, क्षतिको जानता है—ऐसा महर्षिक वक् ब्रह्मा है ० ?’

‘चौद-सूर्य जितनेको धारण करते हैं, ( जितनी ) दिशाएँ प्रकाशसे प्रकाशित होती हैं ।

उतने हजार लोक यहाँ ( = जगत्में ) तेरे वशमें हैं ।

तू रागी-विरागियोंके वार-पारको जानता है ।

प्राणियोंके हृत्थभाव, अन्यथा-भाव, गति और अ-गतिको जानता है ।

“ब्रह्मा ! इस प्रकार मैं तेरी गति क्षतिको जानता हूँ—ऐसा महर्षिक ० । ब्रह्मा ! और भी तीन काय ( = लोक-समूह ) हैं, जिन्हें तू नहीं जानता देखता, ( किन्तु ) मैं उन्हें जानता देखता हूँ । ब्रह्मा ! आभास्वर नामक ( देव- ) काय है, जहाँमें चुप होकर कि तू यहाँ उत्पन्न हुआ । चिरकालके ( यहाँके ) निवाससे तुझे उसका स्मरण नहीं, जितसे तू उसे नहीं जानता देखता, ( किन्तु ) उसे मैं जानता देखता हूँ । इस तरह भी ब्रह्मा ! अभिज्ञा ( = ज्ञान ) में मैं तेरे बराबर नहीं हूँ बल्कि तुझसे बढ़कर हूँ : कम कहाँसे हूँगा । ब्रह्मा ! शुभकृत्स्न नामक ( देव- ) काय भी है, ० । ब्रह्मा ! बृहन्स्पृष्ट नामक ( देव- ) काय भी है ० बल्कि तुझसे बढ़कर हूँ । ब्रह्मा ! मैं पृथिवीको



पृथिवीके तौरपर जानकर, जो ( निर्वाण ) = पृथिवीके पृथिवीत्वसे परे है, उसे भी जानकर, मैंने ( तृष्णाकी दृष्टि, या मानके ग्रहणसे ) पृथिवीको नहीं ( पक्का ) था, पृथिवीका नहीं था, पृथिवीसे नहीं था, पृथिवी मेरी है ( यह सुझे ) नहीं हुआ, पृथिवीका अभिधादन ( = प्रशंसा ) मैंने नहीं किया । इस तरह भी मग्घा ! जनिजामें मैं तेरे धराधर नहीं, बल्कि तुझसे बढ़कर हूँ, कम कहाँसे हूँगा । मग्घा ! मैं जलको जलके तौरपर जानकर ० । ० तेजको ० । ० वायुको ० । ० शून्यको ० । ० देवताको ० । ० प्रजापतिको ० । ० ब्रह्माको ० । मग्घा ! मैं सर्व ( = सारे विश्व ) को सर्वके तौरपर जानकर ० सर्व मेरा है ( यह सुझे ) नहीं हुआ, ० ।

“ यदि मार्घ ! तेरा सर्व ( = सारा ) सर्वत्वसे अन्-अनुभूत ( = अ-प्राप्त ) है, तो तेरा ( सारा वचन ) रिक्त ( = खाली, निरर्थक ) = तुच्छ ही है ? ”

“ विज्ञान अ-निर्वर्तन ( = चक्षुका अ-विषय ) है, अमन्त ( और ) सर्वत्र प्रभा-युक्त है; वह पृथिवीके पृथिवीत्वसे अ-प्राप्त है, जलके जलत्वसे अ-प्राप्त है, तेजके तेजस्त्वसे अ-प्राप्त है, वायुके वायुत्वसे अ-प्राप्त है, शून्यके ०, देवोंके ०, प्रजापतिके ०, ब्रह्माके ० आभास्वरोंके ०, शुभहृत्त्वोंके ०, वृहत्फल्लोंके ०, सर्वके सर्वत्वसे अ-प्राप्त है । ”

“ हन्त ! मार्घ ! तुझे मैं ( अपनी दिव्यशक्तिसे ) अन्तर्धान करता हूँ । ”

“ हन्त ! मग्घा ! यदि चाहता है तो तू मुझे अन्तर्धान कर । ”

“ तब भिक्षुओं ! एक मग्घाने ( दृढ़ मनोबल को लगाया — ) ‘अमण गौतमको अन्तर्धान करूँ, अमण गौतमको अन्तर्धान करूँ—किन्तु मुझे अन्तर्धान नहीं कर सका । ऐसा होने पर भिक्षुओं ! मैंने एक मग्घाको यह कहा—‘हन्त ! मग्घा ! मैं तुझे अन्तर्धान करता हूँ ।’ ‘हन्त ! मार्घ ! यदि चाहता है, तो मुझे अन्तर्धान कर ।’ तब भिक्षुओं ! मैंने इस प्रकारका कदि-बल प्रयोग किया, कि जिससे मग्घा, ब्रह्म-परिपद्, और ब्रह्म-पार्षद् मेरे शब्दको सुनते थे, किन्तु मुझे देखते न थे; और अन्तर्धान हुये मैंने यह गाथा कही—

“ भव ( = संसार ) में भयको देखकर, और भयको विभयका इच्छुक ( देख ) ;

मैंने अपना स्वागत नहीं किया, और नन्दो ( = तृष्णा ) को नहीं स्वीकार किया ।

“ तब भिक्षुओं ! मग्घा, ब्रह्म-परिपद् और ब्रह्म पार्षद् आश्चर्य चकित होगये—‘आश्चर्य भो ! कद्दुसुत भो !! अमण गौतमको महा-कद्विमत्ता, = महा-अनुभावता !!! वह शाक्यपुत्र, शाक्यकुलसे अव्यजित अमण गौतम जिस प्रकारका है, ऐसा महद्विक = महानुभाव दूसरा अमण या ब्राह्मण हमने इससे पहिले नहीं देखा । अहो ! भयमें लुप्त, भय-रत, भय-समुदित ( = भयसे उत्पन्न ) प्रजाका इशने उद्धार किया ।’

“ तब भिक्षुओं ! पापी मारने एक ब्रह्म-पार्षदमें आवेश कर मुझे यह कहा—‘यदि मार्घ ! तू ऐसा जानता है, यदि तू ऐसा अनुबुद्ध ( = ज्ञानी ) है, ( तो ) मत आवाकोंको ( इस धर्ममार्गी पर ) लेजा, मत प्रद्वजितों ( = संन्यासियों ) को लेजा, मत आवाकोंको धर्म उपदेश कर, मत प्रद्वजितों को धर्म-उपदेश कर । मत आवाकों के विषयमें लोभ कर, मत प्रद्वजितों के विषय में ( लोभ कर ) । भिक्षु ! तुझसे पूर्व भी लोकमें अहंत्, सम्यक्-संयुद्धका दावा करनेवाले अमण हुये थे । वह आवाकों प्रद्वजितोंको ( अपने धर्ममार्गी पर ) ले गये, आवाकों प्रद्वजितोंको ( उन्हेोंने ) धर्म-उपदेश किया, आवाकों प्रद्वजितों के विषयमें लोभ किया । वह आवाकों प्रद्वजितोंको लेजाकर, ० धर्म-उपदेश कर, ० लोभ कर, काया जीव प्राणोंके विच्छेद होनेपर हीन काय ( = योनि ) में प्रतिष्ठित हुये । भिक्षु ! ( किन्तु ) तुझसे पूर्व लोकमें ( दूसरे भी ) अहंत् सम्यक्-संयुद्धका दावा करनेवाले अमण हुये । वह आवाकों प्रद्वजितोंको ( अपने धर्ममार्गी पर ) न ले गये, ० धर्म-उपदेश नहीं किया, ० लोभ नहीं

किपा, वह ०, काया डोक प्राणोंके विच्छेदके वायु उत्तम काय (= योनि)में प्रतिष्ठित हुये। तुझे भिक्षु ! मैं यह कहता हूँ—‘अरे भार्य ! तू बेपत्नी हो वर्तमानके सुख-विहारसे मुक्त हो विहार कर, भार्य ! व्याख्यान न करना सुंदर है, भत दूसरोंको उपदेश कर ।’

‘ऐसा कहनेपर भिक्षुओं ! मैंने पापी भार्यसे कहा—‘पापी ! मैं जानता हूँ तुझे, तू भत समझ कि मैं तुझे नहीं पहिचानता। पापी ! तू मार है। पापी ! हित, अनुकम्पक हो तू मुझे यह नहीं कह रहा है। पापी ! अ-हित, अन्-अनुकम्पक हो तू मुझे यह कह रहा है। पापी ! तुझे ऐसा हो रहा है—अमण मौतम जिनको धर्म-उपदेश करेगा, वह मेरे विषय (= अधिकार)से निकल जायेंगे। पापी ! ( उपदेश न देनेवाले ) यह अमण ब्राह्मण सम्यक् संबुद्ध न होते हुये, ‘हम सम्यक् संबुद्ध हैं’—दावा करते थे। पापी ! आदकोंको उपदेश करते भी तत्थागत वैसे ही हैं, ० न उपदेश करते भी ०, आदकोंको उपनयन (= धर्ममार्गपर ले जाना) करते भी ०, ० न उपनयन करते भी ०। सो किस हेतु ?—तत्थागतके वह आक्षेप (= चित्त-मल) क्षीण होगये, उच्छिन्न-मूल होगये, सिरकटे ताड़से होगये, अमावको प्रग्ल होगये, मविष्यमें न उत्पन्न होने लायक होगये, जो (आक्षेप) कि समल, पुनर्जन्मकारक, मय-युक्त, दुःख-विषाकवाले, मविष्यमें जरा-मरण देनेवाले हैं। जैसे पापी ! सिरकटा ताड़ फिर घड़नेके अयोग्य है, ऐसे ही पापी ! तत्थागतके यह आक्षेप क्षीण होगये ० मविष्यमें न उत्पन्न होने लायक होंगये ।’

इस प्रकार यह ( सूत्र ) मारके अन्-उल्लापन (= प्रलोभनमें न पकने)के लिये, और ब्राह्मके निर्मत्तन (= निमंत्रण)ले ( कहा गया ), इसलिये इस व्याकरण (= उपदेश)का नाम ब्राह्म-निमन्तनिक पवा।



## ५०—भारतजनीय-मुत्तन्त (१।५।१०)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय आयुष्मान् महामोगलान (= महामौगल्यावन) भर्गो (देव) में मुंमुमार-गिरिके भेसकलापन मृगदासमें बिहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् महामोगलान खुली जगहमें टहल रहे थे। उस समय पापी मार आयुष्मान् महामोगलानकी कुशमें खुसा था, कोठेमें प्रविष्ट हुआ था। तब आयुष्मान् महामोगलानको ऐसा हुआ—अरे! क्यों मेरा पैर उजड़ सरासा सुकसा रहा है। तब आयुष्मान् महामोगलान टहलने के स्थानसे उत्तर बिहार (= कोठरी) में प्रवेश कर घिसे आसनपर बैठे। बैठ कर आयुष्मान् महामोगलान अपने मनमें कारण खोजने लगे। (तब) आयुष्मान् महामोगलानने पापी मारको कुशमें खुसा ० देखा। देखकर पापी मारको यह कहा—‘निकल, पापी! मत तबागत या तबागतके श्रावक (= शिष्य) को मत्ता; मत (यह) चिरकाल तक तेरे लिये अहितकर दुःखकर हो।’ तब पापी मारको यह हुआ—‘यह श्रमण मुझे बिना जाने, बिना देखे यह कह रहा है—‘निकल पापी! ०’। जो इसका शास्त्र (= गुरु) है, वह भी मुझे जल्दी नहीं जान सकता, यह श्रावक (= शिष्य) मुझे क्या जानेगा!’

तब आयुष्मान् महामोगलानने पापी मारको यह कहा—“पापी! मैं यहाँ तुझे पहिचान रहा हूँ, तू मत समझ—(यह) मुझे नहीं पहिचानता। तू मार है पापी! मुझे यह हो रहा है, पापी!—‘यह श्रमण मुझे बिना जाने, बिना देखे, मार कह रहा है ० यह श्रावक मुझे क्या जानेगा।’

तब पापी मारको यह हुआ—‘यह श्रमण मुझे जान कर ही, देखकर ही, ऐसा कह रहा है—निकल पापी! ० दुःख कर हो।’ तब पापी मार आयुष्मान् महामोगलानके मुखसे निकल कर क्वाचके सामने खड़ा हुआ।

आयुष्मान् महामोगलानने मार पापीको क्वाचके सामने खड़ा देखा। देखकर मार पापी को यह कहा—पापी! यहाँ भी मैं तुझे देखता हूँ। तू मत समझ—यह मुझे नहीं देख रहा है। पापी! यह तू क्वाच (= अर्जल) के सामने खड़ा है। पापी! भूतकालमें मैं दुस्ती नामक मार था। उस (समय) मेरी काली नामक बहिन थी, उसका तू पुत्र था; इस तरह (तब) तू मेरा भाजा था। पापी! उस समय भगवान् ककुत्सन्ध (= ककुत्सन्ध) अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध लोकमें उत्पन्न हुये थे। अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध भगवान् ककुत्सन्धके विधुर और संजीव नामक प्रधान श्रावक-युगल (= शिष्योंकी जोड़ी), भद्र-युगल था। पापी! ० भगवान् ककुत्सन्धके जितने श्रावक थे, उनमें कोई धर्म-उपदेश करनेमें आयुष्मान् विधुरके बराबर नहीं था। इसी (विधुर = अ-समान) मत्तलपसे आयुष्मान् विधुरका ‘विधुर’ नाम पव गया। और आयुष्मान् संजीव अरण्य,

वृक्षछाया या शूल-आगारमें दिना कठिनाईके संज्ञा-वेदित-निरोध ( - समाधि )में प्राप्त हो जाते थे । पापी ! किसी एक समय आयुष्मान् संजीव एक वृक्षके नीचे संज्ञा-वेदित-निरोध ( समाधि )में स्थित थे । तब गोपालकों, पशुपालकों, कृषकों, वटोहियाने आयुष्मान् संजीवको एक वृक्षके नीचे संज्ञा-वेदित-निरोध ( समाधि )में स्थित हो बैठे देखा । देखकर उनके ( मनमें ) यह हुआ—आश्चर्य है ! अद्भुत है !! यह भ्रमण बैठेही बैठे मर गया, आओ ! इसे जला दें । ...तब वह गोपालक ० गृण, काष्ठ, कंडा जमाकर, ( उसपर ) आयुष्मान् संजीवके शरीरको रखकर जाग दे चले गये । ...तब आयुष्मान् संजीव उस रातके प्रोतनेपर उस समाधिसे उठकर, चोरों ( = वृक्षों )को शापकर पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीकर ले गाँवमें पिडचारके लिये प्रविष्ट हुये । ...उन गोपालकों ० ने आयुष्मान् संजीवको पिडचार करते देखा । देखकर उन्हें यह हुआ—“आश्चर्य है ! अद्भुत है !! यह भ्रमण बैठेही बैठे मर गया था, और ( अब ) संजीवित ( = जोरित ) हो गया । पापी ! इसी ( संजीवित होने )के मतलबसे आयुष्मान् संजीवका संजीव नाम पड़ गया ।

“तब फिर...भारको यह हुआ—इन शीलवान्, कल्याणधर्मा भिक्षुजोंको मैं गति अ-गतिको नहीं जानता; क्यों न मैं ब्राह्मण गृहस्थोंको मरमाई—आओ ! तुम शीलवान् कल्याणधर्मा भिक्षुजोंको निन्दो, परिहास करो, चिढ़ाओ, सताओ; जिसमें कि तुमसे निन्दित, परिहास किये, चिढ़ाये, सताये जायेपर इनके चित्तमें विकार पैदा हो; फिर दूसरी बारको मौका मिल जाये । ...तब पापी ! दूसरी बार इस-भस्मये-वर्-ब्राह्मण गृहस्थ इन शीलवान्, कल्याणधर्मा भिक्षुजोंको निन्दने लगे ०—“यह नीच, काले, मझाके घड़ेसे उत्पन्न, सुंघक भ्रमण—हम ध्यानी हैं—यह जमिमान करते अधोमुख आलसी हो ध्याते ( = ध्यान लगाते ) हैं, प्र-ध्याते, नि-ध्याते, अप-ध्याते हैं; जैसेकि उल्लू वृक्षकी शाखापर चूँकी तलाशमें ध्याता है, प्र-ध्याता ०; ऐसे ही यह नीच ० अप-ध्याते हैं । जैसेकि, गीदूच ( = कोन्धु ) नदीके तीरे मल्लियोंकी तलाशमें ध्याता है ० । जैसेकि पिछो कोने-पाखाने-झूँमें चूँकी तलाशमें ध्याता है ० । जैसेकि लापोसे छूटा गवदा, कोने-पाखाने-झूँमें ध्याता है ० । पापी ! उस समय जो मनुष्य मरते थे, ( उसी प्रायसे ) अधिकतर काया छोड़ मरनेके बाद अपाव, दुर्गति-विनिपात, नरकमें उत्पन्न होते थे ।

“तब ० भगवान् ककुत्स्थने भिक्षुजोंको संबोधित किया—भिक्षुजो ! ब्राह्मण-गृहपति दूसरी बार द्वारा मरमाये गये हैं—आओ ! तुम ० दूसरी बारको मौका मिले । आओ, भिक्षुजो ! तुम मैत्रीयुक्त चित्तसे एक दिशाको पूर्णकर विहार करो, वैसे ही दूसरी ( दिशा )को, वैसे ही तीसरीको, वैसे ही चौथीको । इस प्रकार ऊपर नीचे जावे-वेवे भी सबका ब्यापकर, सबके हितार्थ, विपुल, महान, प्रमाणरहित, वैररहित, व्यापाद ( = हिंसा )-रहित, मैत्रीयुक्त चित्तसे सारे लोकको पूर्णकर विहरो । तुम करुणायुक्त चित्तसे ० सारे लोकको पूर्ण कर विहरो । तुम मुदितायुक्त चित्तसे ० । तुम उपेक्षायुक्त चित्तसे ० ।

“...तब ० भगवान् ककुत्स्थ द्वारा इस प्रकार उपदेशित, अनुशासित हो, ( वह भिक्षु ) अरण्य, वृक्षछाया या शूल-आगारमें ( जहाँ भी ) रहते मैत्रीयुक्त चित्तसे ० सारे लोकको पूर्णकर विहस्ते थे । करुणायुक्त ० । मुदितायुक्त ० । उपेक्षायुक्त ० ।

“तब पापी ! दूसरी बारको यह हुआ—ऐसा करते भी इन शीलवान् ( = सदाचारी ) कल्याणधर्मा भिक्षुजोंकी गति, आगतिको मैं नहीं जान सका; क्यों न मैं ब्राह्मण-गृहपतियोंको मरमाई—आओ ! तुम इन ० भिक्षुजोंका सत्कार=गुरुकार, सामन=पूजन करो, क्या जाने... तुम्हारे सत्कार ० करनेसे इनके चित्तमें विकार पैदा हो; जिसमें कि दूसरी बारको मौका मिले ।



“तब दूसी बार द्वारा भरमाये (= आवेश किये) ब्राह्मण गृहपतियोंमें ० मिथुओंका सत्कार किया।

“पापी ! उस समय जो मनुष्य मरते थे, ( उनमें ) अधिकतर काया छोड़ मरनेके बाद सुगति अर्गलोकमें उत्पन्न होते थे।

“तब ० भगवान् ककुत्स्थने मिथुओंको संबोधित किया—‘मिथुओं ! ब्राह्मण-गृहपति दूसी बार द्वारा भरमाये गये हैं—आओ ! तुम ० । आओ, मिथुओं ! कायामें अशुभ (= गंदगी) देखते, आहारमें प्रतिकूलताका स्वाद रखते, सारे लोकमें वैराग्य रखते, सारे संस्कारोंमें (= कृत, उत्पन्न वस्तुओं) में अनिच्छता देखते बिहरो’।

“तब ० भगवान् ककुत्स्थ द्वारा इस प्रकार उपदेशित-अनुशासित हो, अरण्यमें, वृक्षके नीचे, या शून्य-आगारमें रहते वह मिथु कायामें अशुभ देखते ० बिहरे लगे।

“तब ० भगवान् ककुत्स्थ पूर्वोक्त समय पहिनकर पात्र-चीवर ले आयुष्मान् विधुरको पोछे पीछे ले गाँवमें पिंड (= मिठा) के लिये प्रविष्ट हुये। तब दूसी बारने एक वधेमें आवेश करके रोड़ा ले आयुष्मान् विधुरके सिरमें प्रहार किया। सिर फट गया। आयुष्मान् विधुर लून मिरते पड़े सिरसे भी ० भगवान् ककुत्स्थका अनुगमन करते रहे। तब ० भगवान् ककुत्स्थने नाग-अवलोकन (= नाग-ग्रहाण्य जैसा अलोकन) किया। दूसी बार इस भंशको नहीं जानता था। अवलोकन मात्र हीसे दूसी बार अपने स्थानसे झुट हो महानरकमें उम्रें उत्पन्न हुआ।

“उस महानरकके तीन नाम थे—छः-स्पर्श-आयतनिक, स-अंकुश-आहत, और प्रयात्म-वेदनीय। तब मेरे (= दूसीके) पास आकर नरकवालोंने यह कहा—‘मार्य ! जब ( शरीरके चारों ओरसे प्रहारित होते ) शूल तेरे हृदयमें आकर एक दूसरेसे मिल जायें, तब समझना, कि नरकमें पकते तुझे एक हजार वर्ष हो गये’। सो पापी ! मैं उस महानरकमें अनेक वर्षों, अनेक शतवर्षों अनेक सहस्रवर्षों तक पकता रहा। उस हजार वर्ष तक उसी नरकके उत्सद (= उपनरक) में इस वेदनाको सहते पकता रहा। उस ( समय ) मेरा शरीर मनुष्य जैसा था, और मेरा शिर मल्लीका सा।

वह नरक कैसा था, जिसमें दूसी पचता रहा ;  
विधुर आवक और ककुत्स्थ ब्राह्मणको सता कर ?  
सौ लोहके शूल थे जो सभी हर एकको वेदना देनेवाले थे।  
ऐसा वह नरक था, जिसमें दूसी पचता रहा।  
विधुर आवक और ककुत्स्थ ब्राह्मणको सताकर।  
जो बुद्धका आवक मिथु इसे जानता है,  
ऐसे मिथुको सताकर काले दुःखको पाता है ॥ (१) ॥

सरोवरके बीचमें कल्प-पर्यन्त रहने वाले विमान हैं,  
( जो कि ) वैदूर्यवर्ण, रुचिर, अर्चि-मान-प्रभास्वर हैं।  
अलग अलग नाना वनोंकी अप्सरायें वहाँ नाचती हैं।  
जो बुद्धका आवक ० काले दुःखको पाता है ॥ (२) ॥

जिसने बुद्धकी प्रेरणासे मिश्र-संघके देखते हुये,  
मृगार-माताके प्रासादको पैरके अँगूठेसे कँपा दिया ।<sup>१</sup>

जो बुद्धका आवक ० ॥ ( ३ ) ॥

जिसने वैजयन्त प्रासादको पैरके अँगूठेसे कँपा दिया<sup>१</sup> ।

और अद्रि-पल्लसे पूर्ण जिसने देवताओंको उद्दिप्त किया ।

जो बुद्धका आवक ० ॥ ( ४ ) ॥

जिसने वैजयन्त प्रासादमें शक्रको पूछा—

‘क्या आहुत ! तू तुष्णाके क्षयवाली मुक्तिको जानता है ?’<sup>१</sup>

उसके पूछनेपर शक्रने यथातथा उत्तर दिया ।

जो बुद्धका आवक ० ॥ ( ५ ) ॥

जिसने सुधर्मामें, सभाके सामने ब्रह्माको पूछा—

‘आहुत ! आज भी तेरी वही दृष्टि है, जो पहिले थी,  
तू ब्रह्मलोकमें उल प्रभास्वर वीतिवत्त (= परिवर्तन) को देखता है ?’

तब उसे ब्रह्माने कमलाः यथातथा उत्तर दिया—

‘आहुत ! मेरी वह दृष्टि नहीं है, जो पहले थी ।

मैं ब्रह्मलोकमें उल प्रभास्वर वीतिवत्तको देखता हूँ ।

तो मैं आज कैसे कह सकता हूँ कि, मैं शाश्वत हूँ ।

जो बुद्धका आवक ० ॥ ( ६ ) ॥

जिसने महामेरुके शिलरको विमोक्ष (= ध्यान) से छु दिया ।

पूर्व विदेहके जनको, और जो भूमिपर सोनेवाले नर हैं (= उन्हें) भी ।

जो बुद्धका आवक ० ॥ ( ७ ) ॥

अग्नि नहीं चाहती, कि मैं बाल (= सुख) को चाहूँ ।

बालही जलती आगसे मिष्ट कर जलता है ।

इसी प्रकार मार ! तू तथामतसे काम करके

आग पकड़ते बालकी मौति मय्यं जलेगा ।

मार ! तथामतसे लाग कर तूले (पहुँच) पाप कमाया ।

पापी ! क्या तू समझता है, कि तुझे पाप नहीं पकायेगा ?

अन्ततक, चिरकालतक करते रहनेसे पाप संचित होजाता है ।

मार ! बुद्धसे दृढ़ जा, मिश्रजाले (गिरनेकी) आशा मत कर ।

इस प्रकार मिश्रने भैस्कलावनमें मारको डोँटा ।

तब वह यक्ष उदास हो वहीं अन्तर्धान होगया ॥

५—( इति मूल-यमक-वग्ग १५ )

इति मूल-पण्णासक १ ।



THE GREAT BRITAIN, FROM THE DEATH OF  
 CHARLES THE SECOND, TO THE DEATH OF  
 WILLIAM THE THIRD, IN THE YEAR 1694.  
 BY JOHN HUGHES, ESQ.  
 IN TWO VOLUMES.  
 THE SECOND VOLUME.  
 LONDON, Printed by J. H. St. John, at the  
 Sign of the Anchor, in St. Dunstons Church  
 Lane, 1704.

THE HISTORY OF THE  
 REIGN OF  
 WILLIAM THE THIRD, IN THE YEAR 1694.  
 BY JOHN HUGHES, ESQ.  
 IN TWO VOLUMES.  
 THE SECOND VOLUME.  
 LONDON, Printed by J. H. St. John, at the  
 Sign of the Anchor, in St. Dunstons Church  
 Lane, 1704.

## मज्झिम-परणासक

[द्वितीय-पञ्चाशक ५१-१००]



विशाल-विशाल

[...]

## अथ मज्झिम-परिणायक

### ५१-कन्दरक-सुत्त ( २।१।१ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् बड़े भारी भिक्षु-संघके साथ चम्पारणमें गङ्गा-पुष्करिणीके तीर विहार करते थे ।

तब हाथीवान्का पुत्र पेस्स और कन्दरक परित्राजक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर • पेस्स भगवान्को अभिवादन कर एक और बैठ गया, और कन्दरक परित्राजक भगवान्के साथ • कुशल प्रश्न पूछ एक और बैठ गया । एक ओर बैठे कन्दरक परित्राजकने चुपचाप बैठे भिक्षु-संघको देखकर भगवान्से यह कहा—

“आश्चर्य ! भो गौतम ! अद्भुत !! भो गौतम ! आप गौतमने कैसे अच्छी तरह भिक्षु-संघको पनाया है । हे गौतम ! अतीत-कालमें भी जो अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध हुये, उन भगवानोंने भी इतने ही मात्र अच्छी तरह भिक्षु-संघको प्रतिपन्न किया ( = पनाया ) होगा; जैसा कि इस वक्त आप गौतमने अच्छी तरह भिक्षु-संघको प्रतिपन्न किया है । भो गौतम ! भविष्य-कालमें भी जो अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध होंगे • ।”

“ऐसा ही है, कन्दरक ! ऐसा ही है, कन्दरक ! जो कोई कन्दरक ! अतीत कालमें अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध हुये • । • भविष्य-कालमें अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध होंगे • । कन्दरक ! इस भिक्षु-संघमें क्षीणाक्षय, ( महाचर्य- ) वासलमास, कृत-कृत्य, भारमुक्त, सत्य-अर्थ-प्राप्त, भव-बंधन-मुक्त, सम्यग्ज्ञान-द्वारा-मुक्त अर्हत् भी हैं । कन्दरक ! इस भिक्षु-संघमें निरन्तर शील- ( युक्त ), निरन्तर ( सु- ) वृत्ति ( युक्त ), सन्तोषी, सन्तोष-वृत्ति-युक्त दैव्य ( = सीखनेवाले ) भी हैं, जोकि चारों स्मृति-प्रस्थानों-में स्थिर-चित्त हो विहरते हैं । कौनसे चार ( स्मृति-प्रस्थानों ) में ?—• धर्मोंमें धर्मानुपपत्तयों • ।

ऐसा कहनेपर • पेस्सने भगवान्से यह कहा—

“आश्चर्य ! भन्ते ! अद्भुत !! भन्ते ! भगवान्ने भन्ते ! प्राणियोंकी विशुद्धिके लिये, शोक-पीड़ा इटानेके लिये, दुःख = दौर्मनस्य मिटानेके लिये, न्याय ( = परमज्ञान ) की प्राप्ति के लिये, निर्वाणके साक्षात्कारके लिये, इन चार स्मृति-प्रस्थानोंको कितनी अच्छी तरह पतलाया है । श्वेतवस्त्रधारी हम गृही भी समय समयपर, इन चार स्मृति-प्रस्थानोंमें चित्तको सुप्रतिष्ठित कर विहरते हैं । भन्ते ! हम कायामें • काय-अनुपपत्तयों विहरते हैं • धर्मोंमें धर्मानुपपत्तयों विहरते हैं । आश्चर्य ! भन्ते ! अद्भुत !! भन्ते ! इतनी अनुपपत्तयोंकी गहनता ( = दुरुद्ध )

\* देखी सतिपट्ठान-सुत्त ( १४ ३५-४० )



( होनेपर भी ) इतने मनुष्योंके कसट (= मेल ), इतनी मनुष्योंकी शठता होनेपर भी, मन्ते ! मगवान् प्राणिनोंके हिताहितको देखते हैं । मन्ते ! मनुष्य गहन हैं, मन्ते ! जो पशु हैं वह उत्तान (= खुले, सरल ) हैं । मन्ते ! मैं हाथीके स्वभावकी जानता हूँ, स्वप्नमें जितने स्वप्नमें वह (= हाथी ) राग-आगमन करेगा, ( अपनी ) सभी शठता, कुटिलता, वकता = विद्वताको प्रकट कर देगा । किन्तु, मन्ते ! हमारे दास-प्रेष्य या कर्मकर हैं, ( वह ) कामासे दूसराही करते हैं, वचनसे दूसरा कहते हैं और उनके चित्तमें और ही होता है । आश्चर्य ! मन्ते ! अद्भुत ! मन्ते ! मनुष्योंकी इतनी गहनता • जो पशु हैं, वह उत्तान हैं । ”

“यह ऐसा ही है ऐस्स ! यह ऐसा ही है ऐस्स ! जो मनुष्य गहन हैं, पशु उत्तान हैं । ऐस्स ! लोकमें यह चार ( प्रकार ) के पुद्गल (= पुरुष ) होते हैं । कौनसे चार ?—ऐस्स ! ( १ ) यहाँ कोई पुद्गल आत्मंतप—अपनेको संताप देनेवाले कामोंमें लगा होता है, ( २ ) “कोई पुद्गल परंतप—परको संताप देनेवाले उद्योगोंमें लगा होता है, ( ३ ) “कोई पुद्गल आत्मंतप-परंतप होता है—अपनेको सन्ताप देनेवाले उद्योगोंमें भी लगा होता, परको सन्ताप देनेवाले उद्योगोंमें भी लगा होता है, ( ४ ) “कोई पुद्गल न आत्मंतप-न-परंतप होता है—( वह ) न अपनेको सन्ताप देनेवाले उद्योगोंमें लगा होता, न परको सन्ताप देनेवाले उद्योगोंमें लगा होता है । अनु-आत्मंतप-अ-परंतप हो, वह शांत, सुखी, शीतल (= स्वभाव), सुख-अनुभवो, ब्रह्मभूत (= विशुद्ध) -आत्मसे विहरता है । ऐस्स ! इन चार पुद्गलोंमें कौनसा तेरे चित्तको पसन्द आता है ? ”

“मन्ते ! जो यह आत्मंतप • पुद्गल है, वह मेरे चित्तको पसन्द नहीं है । जो यह परंतप • पुद्गल है, वह भी • पसन्द नहीं है । जो यह आत्मंतप-परंतप • पुद्गल है, वह भी पसन्द नहीं है । जो यह अनु-आत्मंतप-अ-परंतप • पुद्गल है, वह • मुझे पसन्द है । ”

“ऐस्स ! क्यों यह तीन पुद्गल तेरे चित्तको पसन्द नहीं है ? ”

“मन्ते ! जो आत्मंतप • पुद्गल है, वह सुखेच्छुक, दुःख-प्रतिकूल हो अपनेको आतापित परितापित करता है, इसलिये मन्ते ! यह पुद्गल मेरे चित्तको पसन्द नहीं आता । जो यह मन्ते ! परंतप • पुद्गल है, वह सुखेच्छुक दुःख-प्रतिकूल दूसरेको आतापित परितापित करता है । इसलिये मन्ते ! यह पुद्गल • । जो यह मन्ते ! आत्मंतप-परंतप • पुद्गल है । वह सुखेच्छुक, दुःख-प्रतिकूल अपनेको और दूसरेको • । जो यह मन्ते ! • अनु-आत्मंतप-अ-परंतप • पुद्गल • ब्रह्मभूत-आत्माने विहरता है, वह सुखेच्छु दुःख-प्रतिकूल हो अपने और परके चित्तको नहीं तपाता, न सन्ताप देता, इसलिये मन्ते ! यह पुद्गल मेरे चित्तको पसन्द आता है । हन्त ! मन्ते ! अब हम जाते हैं, बहुकल्प-बहुकरणीय हैं हम, मन्ते ! ”

“जिसका ऐस्स ! तू समय समझता है, ( वैसा कर ) । ”

तब हाथीवान्का पुत्र ऐस्स मगवान्के भाषणको अभिनंदित अनुमोदित कर आसमसे उठ, मगवान्को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया ।

तब ऐस्सके जानेके बोधे हो समय पाद मगवान्ने मिथुजोंको संबोधित किया—

“मिथुजो ! ऐस्स पछित है । महाप्रज्ञ है मिथुजो ! ऐस्स । यदि मिथुजो ! ऐस्स सुहृत्तरं मर और बैठता, जितनेमें कि मैं इन चारों पुद्गलोंको विस्तारसे विनाजित करता, ( तो वह ) बड़े अर्थसे सुख होजाता । परन्तु, इतनेसे भी मिथुजो ! ऐस्स बड़े अर्थसे सुख है । ”

“इसीका मगवान् ! समय है, इसीका सुगत ! काल है, कि मगवान् इन चारों पुद्गलोंको विस्तारसे विनाजित करें । मगवान्से सुनकर मिथु धारण करेंगे । ”

“ओ मिथुजो ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ । ”

“जल्दा, मन्ते !”—( कह ) उन मिथुनों ने भगवान्‌को डस्कर दिया ।

भगवान्‌ने यह कहा—“मिथुओ ! कौनसा पुद्गल आत्मंतप—अपनेको संताप देनेवाले कामोंमें लब्ध है ?—मिथुओ ! यहाँ कोई पुद्गल अन्वेलक ( = नंगा ) ०<sup>१</sup> ऐसे अनेक प्रकारसे कावाके आतापन सन्तापनके व्यापारमें लब्ध हो विहरता है । मिथुओ ! यह पुद्गल आत्मंतप ० कहा जाता है ।

“मिथुओ ! कौनसा पुद्गल परंतप ० है ?—मिथुओ ! यहाँ कोई पुद्गल औरभ्रिक ( = भेड़ मारनेवाला ), शूकरिक, शाकुन्तिक, मार्गविक ( = भृग मारनेवाला ), रुद्र, मत्स्य-घातक, चोर, चोरघातक, बन्धनागारिक ( = जेलर ) और जो दूसरे भी क्रूर व्यवसाय हैं ( उगका करनेवाला होता है ) । मिथुओ ! यह पुद्गल परन्तप ० कहा जाता है ।

“मिथुओ ! कौनसा पुद्गल आत्मंतप-परंतप ० है ?—मिथुओ ! यहाँ कोई पुरुष स्वार्थ-विषिक्त अश्विप राजा होता है या महाशाल ( = महाधर्मो ) ब्राह्मण होता है । वह नगरके पूर्व द्वार पर नये संस्थागार ( = यज्ञशाला ) को बनवा दाढ़ी-मूँह मुँदा वस्त्र-अग्नि धारणकर धी तेल्हसे शरीर को चुपड़, सृगके सींगसे पीठको चुनलते डूबे ( अपनी ) महिषी ( = पटरानी ) और ब्राह्मण पुरोहितके साथ संस्थागारमें प्रवेश करता है । वह वहाँ गोबरसे लिपी नंगी भूमिपर शय्या करता है । समान रूपके बछेवाली एक ( ही ) गायके एक स्तनके दूधसे राजा गुजारा करता है; जो दूसरे स्तनमें दूध है, उससे महिषी गुजारा करती है; जो तीसरे स्तनमें दूध है, उससे ब्राह्मण पुरो-हित ०; जो चौथे स्तनमें दूध है, उससे अग्निमें हवन करता है; शेष बचेसे बछवा ० । वह ( यज्ञ-मान ) ऐसा कहता है—यज्ञके लिये हतने बैल मारे जायें, ० बछे ०, ० इतनी बलियाँ ०, ० इतनी बकरियाँ ०, ० इतनी भेड़ें, ०, ० इतने वृक्ष काटे जायें, वेदी ( = वहिष ) के लिये हतना कुश काटा जाये । जो इसके दास-प्रेम्य या कर्मकर होते हैं, वह भी दंडसे तर्जित, भयभीत अभ्यु-मुख होते कामोंको करते हैं । मिथुओ ! यह कहा जाता है आत्मंतप-परंतप ० पुद्गल ।

“मिथुओ ! कौनसा पुद्गल अन्-आत्मंतप-अ-परंतप ० है ?—मिथुओ ! यहाँ ( लोकमें ) तथागत ० उत्पद्य होते हैं ०<sup>२</sup> चतुर्थभ्यामको प्राप्त हो विहरता है ।

“तो वह इस प्रकार चित्तके ‘एकाम्र, पश्चिमुद् ०<sup>३</sup> अथ यहाँ करनेके लिये कुछ शेष नहीं है’—यह जान लेता है । मिथुओ ! यह कहा जाता है अन्-आत्मंतप-अ-परंतप ० पुद्गल ० ।”

भगवान्‌ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन मिथुनों ने भगवान्‌के भाषणको अभिनन्दित किया ।

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ ४८ ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ ११३ ।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ १५-१६ ( वाक्यमें उत्तम पुरुषके



## ५२—अटुकनागर-सुत्तन्त (२।१।२)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय आयुष्मान् आनन्द वैशालीके केतुवगामक (= केतुग्राम) में विहरते थे ।

उस समय अटुकनागर दसम गृहपति किसी कामसे पाटलिपुत्र आया हुआ था । तब दसम गृहपति, जहाँ कुम्भकुटाराममें कोई भिक्षु था, वहाँ गया; जाकर उस भिक्षुको अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे ० दसम गृहपतिने उस भिक्षुसे यह कहा—“भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द इस समय कहाँ विहार करते हैं ? हम उन आयुष्मान् आनन्दके दर्शनाकांक्षी हैं ।”

“गृहपति ! आयुष्मान् आनन्द वैशालीके केतुवगामकमें विहार कर रहे हैं ।”

तब ० दसम गृहपति पाटलिपुत्रमें उस कामको करके, जहाँ वैशाली थी, जहाँ केतुवगामकमें आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया । जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादन कर एक ओर बैठा । एक ओर बैठे दसम गृहपतिने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—

“भन्ते, आनन्द ! क्या उन भगवान् ज्ञाननहार, देखनहार अर्हत् सम्यक्-संमुखने ऐसा एक धर्म उपदेश किया है, जिसमें प्रमादरहित, एकाग्रतायुक्त सत्पर हो विहरते, भिक्षुका अ-सुक चित्त विसुक (= सुक) हो जाये, अक्षीण आस्रव क्षीण हो जाये, अ-प्राप्त अनुपम योग-क्षेम (= निर्वाण) प्राप्त हो जाये ?”

“किया है गृहपति ! उन भगवान् ० ने ऐसे एक धर्मका उपदेश ० अनुपम योगक्षेम प्राप्त हो जाये ।”

“भन्ते आनन्द ! उन भगवान् ० ने ऐसा कौनसा एक धर्मका उपदेश किया है ० ?”

“यहाँ गृहपति ! भिक्षु कामोंसे विरहित ०<sup>१</sup> प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । वह ऐसा सोचता है—‘अरे ! यह प्रथम-ध्यान भी संस्कृत (= कृत) = अमि-संस्कृत = अमिसंक्षेपित है । जो कुछ भी संस्कृत ० है, वह अनिष्ट = निरोध-धर्मों है’—यह समझता है । उस ( ध्यान ) में अवस्थित हो आस्रवों (= चित्त-मलों) के क्षयको प्राप्त होता है । यदि आस्रवोंके क्षयको प्राप्त नहीं होता, तो उसी धर्म-अनुरागसे = उसी धर्म-नन्दीसे पाँचो अवसर-भागोय (= ओरभगिय) संयो-जनोके क्षयसे इस शोकसे फिर न लौटकर वहाँ निर्वाणको प्राप्त होनेवाला औपपातिक (= अपो-मित्र देव) होता है । गृहपति ! वह भी उन भगवान् ० ने ऐसे एक धर्मको उपदेश किया है ० ।

“और फिर गृहपति ! ०<sup>१</sup> द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । वह ऐसा सोचता है ० । वह भी उन भगवान् ० ने ऐसे एक धर्मका उपदेश किया है ० ।

“और फिर गृहपति ! ०<sup>१</sup> तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । वह ऐसा सोचता है ० ।

<sup>१</sup> देखो ५४ १५ ।

“और फिर गृहपति ! ०” सन्तुर्ध-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। वह ऐसा सोचता है ० ।

“और फिर गृहपति ! मित्रु मैत्री-युक्त चित्तसे एक विज्ञाको परिपूर्ण कर विहरता है। वैसे ही दूसरी ०” । मैत्री-युक्त चित्तसे सारे लोकको परिपूर्ण कर विहरता है। वह करुणा-युक्त चित्तसे ० । मुदिता-युक्त चित्तसे ० । उपेक्षा-युक्त चित्तसे ० । वह यह सोचता है—० ।

“और फिर गृहपति ! मित्रु रूप-संज्ञाको सर्वथा छोड़नेसे, प्रतिहिंसाकी संज्ञाओं (= क्याल) के सर्वथा अस्त हो जानेसे, नानापनकी संज्ञाओंके न करनेसे, ‘आकाश अनन्त’ है, इस आकाश-आनन्द-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। वह यह सोचता है—० ।

“और फिर गृहपति ! मित्रु आकाशानन्द-आयतनको सर्वथा अतिक्रमणकर ० ३ विज्ञान-आनन्द-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। वह यह सोचता है—० ।

“०” आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। वह यह सोचता है—० ।

“०” नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतन ० । वह यह सोचता है—० ।”

ऐसा कहनेपर अट्टकनागर दसम गृहपतिने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—“भन्ते आनन्द ! जैसे पुरुष एक निधि-मुक्त (= खजानेके मुँह) को खोजता एक ही बार ग्यारह निधि-मुखोंको पा जाये ऐसेही भन्ते आनन्द ! मैंने एक अमृत-द्वारको खोजते, एकही धार ग्यारह अमृतद्वार सुननेको पाये। भन्ते आनन्द ! जैसे ( किसी ) पुरुषके पास ग्यारह द्वारोंवाला आगार हो, वह उस घरमें जाग रुक जानेपर किसी एक द्वारसे अपनी रक्षा कर सकता है, ऐसे ही भन्ते आनन्द ! मैं इन ग्यारह अमृतद्वारोंमेंसे किसी एक अमृत-द्वारसे अपनी स्वस्ति (= मंगल) कर सकता हूँ । यह, भन्ते । दूसरे तीर्थ (= मत) वाले भी आचार्यकी ( पूजाके ) लिये आचार्य-धन (= आचार्यको देने लायक पूजा द्रव्य) की खोज करते हैं, फिर मैं क्यों न आयुष्मान् आनन्दकी पूजा करूँ ?”

तब दसम गृहपतिने पाटलिपुत्रके तथा वैशालीके मित्रु-संघको एकत्रित कर, अपने हाथसे उत्तम आष-भोग्यद्वारा अन्तर्हित = सम्प्रवारित किया; एक एक मित्रुको एक एक दुस्स-पुग (= धूसेका जोड़ा, आनजोड़ा) ओषधिया, और आयुष्मान् आनन्दको तीनों चीवरों (= मित्रुके तीन वस्त्र—संघाटी, उत्तरास्त्रंग, अन्तर्वासक) से आच्छादित किया; तथा आयुष्मान् आनन्दके लिये पाँचसौ विहार (= रहनेकी कोठरियाँ) बनवाये ।



## ५३—सेख-सुत्तन्त (२।१।३)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् शाक्य ( देश ) में कपिलवस्तुके न्यमोधाराममें विहार करते थे ।

इस समय कपिलवस्तुके शाक्योंने अभीही अभी एक नया संस्थागार (= गण-संस्थाका आगार ) बनवाया था; श्रमण ब्राह्मण या किसी मनुष्य-भूत द्वारा जिसका अभी उपयोग नहीं हुआ था । तब कपिलवस्तुके शाक्य जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ कपिलवस्तुके शाक्योंने भगवान्से यह कहा—

“भन्ते ! यहाँ ( हम ) कपिलवस्तुके शाक्योंने अभी ही अभी एक नया संस्थागार बनवाया है • । इसका भन्ते ! भगवान् पहिले उपयोग करें । भगवान्के पहिले परिभोग करलेनेके बाद कपिलवस्तुके शाक्य इसका परिभोग करेंगे । यह कपिलवस्तुके शाक्योंको चिरकालतकके-हित सुखके लिये होगा ।”

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया । तब कपिलवस्तुके शाक्य भगवान्की स्वीकृतिको जानकर, आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, वहाँ संस्थागार था, वहाँ गये । जाकर संस्थागारमें सब ओर फर्श बिछा, आसनोंको स्थापित कर, पानीके बटके रख, तेलके प्रदीप आरोपित कर; जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर • एक ओर खड़े हो • बोले—

“भन्ते ! संस्थागार सब ओरसे बिछा हुआ है, आसन स्थापित किये हुये हैं, पानीके बटके रखे हुये हैं, तेल-प्रदीप आरोपित किये हैं । भन्ते ! अब भगवान् जिसका काल समझें ( पैसा ) करें ।”

तब भगवान् पहिले कर पाख-चीवर ले, मिश्रसंघके साथ जहाँ संस्थागार था, वहाँ गये । जाकर पैर पखार, संस्थागारमें प्रवेश कर, पूर्वकी ओर मुँह कर बैठे; मिश्र संघ भी पैर पखार • पच्छिमकी मोतके सहारे भगवान्को आगे कर बैठा । कपिलवस्तुवाले शाक्य भी पैर पखार, संस्थागारमें प्रवेश कर पच्छिमकी ओर मुँह कर पूर्वकी मोतके सहारे भगवान्को सम्मुख रख कर बैठे । तब भगवान्ने कपिलवस्तुके शाक्योंको बहुत रात तक धार्मिक कथासे संदर्शित = समादर्शित, सुमुत्तेजित, संग्रहीत कर आयुष्मान् आनन्दको संवोधित किया—

“आनन्द ! अब कपिलवस्तुके शाक्योंकी धाकी उपदेश तू कर; मेरी पीठ जगिया रही है; सो मैं लेटूँगा ।”

“अच्छा, भन्ते !”—( कह ) आयुष्मान् आनन्दने भगवान्को उत्तर दिया ।

तब भगवान्ने चौपैती संघाटी (= मिश्रकी ऊपरी दोहरी चदर ) बिछा, दाहिनी कर-बटके पल, पैरपर पैर रख, स्मृति-संग्रह्यके शाय, उत्थानकी संज्ञा (= ब्याल ) मनमें कर सिंह-शय्या लगाई ।

तब आयुष्मान् आनन्दने महानाम शाक्यको संवोधित किया—

“महानाम ! ( जप ) आर्यश्रावक शील ( = सदाचार ) से युक्त, इन्द्रियमें संयत ( = गुप्त-हार ), भोजनमें मात्राको जाननेवाला, जागरणमें तत्पर, सात स्रद्धामें सहित, इसी कर्ममें सुखसे विहारके उपयोगी चारों चेतसिक ध्यानोंका पूर्णतया लामी ( = पानेवाला ), चिता कठिनाईके लामी = ( अ-कृच्छ्र-लामी ) होता है ।

“महानाम ! कैसे आर्यश्रावक शील-संयत होता है ?—जप महानाम ! आर्यश्रावक शीलवान् ( = सदाचारी ) होता है । प्रातिमोक्ष ( = मिश्रनियम )-संवर ( = रक्षा ) से संयुक्त ( = रक्षित ) हो विहरता है । आचार-गोचर-संपन्न ( हो ) अणुमात्र दोषोंमें भी सय देखनेवाला ( होता है ) । शिक्षापदों ( = सदाचार-नियमों ) को स्वीकार कर ( उनका ) अन्वय करता है । इस प्रकार महानाम ! आर्यश्रावक शील-संयत होता है ।

“महानाम ! कैसे आर्यश्रावक इन्द्रियोंमें गुप्तहार होता है ?—जप महानाम ! आर्यश्रावक चक्षु ( = आँख ) से रूपको देख कर न निमित्त ( = आकार, लिंग ) का ग्रहण करनेवाला होता है, न जलुर्भ्यञ्जन ( = लक्षण ) का ग्रहण करनेवाला होता है । जिस विषयमें चक्षु-इन्द्रियके अ-संयुक्त ( = अ-रक्षित ) हो विहरनेपर अभिप्रा ( = लोभ ), दोर्मनस्य ( रूपी ) पाप = बुराईयाँ आ धुसती हैं; उसके संवर ( = रक्षा ) में तत्पर होता है, चक्षु-इन्द्रियकी रक्षा करता है = चक्षु-इन्द्रियमें संवरयुक्त होता है । श्रोत्रसे शब्द सुन कर ० । घ्राणसे गंध सूँघ कर ० । जिह्वासे रस चख कर ० । कायासे स्पर्श ( विषय ) को स्पर्श कर ० । मनसे धर्मोंको जान कर ० । मन-इन्द्रियमें संवर-युक्त होता है; इस प्रकार महानाम ! आर्यश्रावक इन्द्रियोंमें गुप्तहार होता है ।

“कैसे महानाम ! आर्यश्रावक भोजनमें मात्राका जाननेवाला होता है ?—महानाम ! भिक्षु ठीकसे जानकर आहार ग्रहण करता है, कौवा, मूढ़, मंदन-विभूषणके लिये न करके ( उतना ही आहार सेवन करता है ) जितना कि शरीरकी स्थितिके लिये ( आवश्यक ) है, ( भूखके ) प्रकोपके शमनकरने तथा ब्रह्मचर्यमें सहायताके लिये ( आवश्यक है ) । ( यह सोचते हुये, कि ) पुरानी ( कर्म-विपाक रूपी ) वेदनाओं ( = पीड़ाओं ) को स्वीकार करूँगा, नई वेदनाओंके उत्पन्न होनेकी ( नीवत ) न आने लूँगा; मेरी शरीरवाजा निर्दोष होगी, और विहार निर्द्वन्द्व होगा । इस प्रकार महानाम ! आर्यश्रावक भोजनमें मात्राका होता है ।

“कैसे महानाम ! आर्यश्रावक जागरणमें तत्पर होता है ?—महानाम ! भिक्षु दिनमें टहलने बैठने ०<sup>१</sup> या ( अन्य ) आचरणीय धर्मोंसे चित्तको झुद्ध करता है । इस प्रकार ० ।

“कैसे महानाम ! आर्यश्रावक सात स्रद्धामें से युक्त होता है ?—महानाम ! भिक्षु (१) श्रद्धालु होता है—सधागतकी बोधि ( = परमज्ञान ) में श्रद्धा करता है—‘वह भगवान् अर्हत ०’<sup>२</sup> देव-मनुष्योंके जगत्ता बुद्ध भगवान् हैं । (२) हीमान् ( = लज्जाशील ) होता है—कायिक, वाचिक, मानसिक बुराचारोंसे लज्जित होता है, पापों-बुराईयोंके आचरणसे लज्जित होता है । (३) अपञ्चयी ( = संकोची ) होता है—० पापों-बुराईयोंके आचरणसे संकोच करता है । (४) बहुभुत श्रुत-धन-श्रुत-संचयी होता है—जो वह धर्म आदि-कल्याण, अम्य-कल्याण, पर्यवसान-कल्याण, सार्थक-स-भोजन हैं, ( जो ) केवल, परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्यको पानाने हैं, वैसे धर्म ( = उपदेश ) उसके बहुत सुने, वचनसे धारित, परिचित, मनसे चिन्तित, दृष्टि ( = दर्शन, ज्ञान ) से अवगाहित ( = प्रतिबिम्ब ) होते हैं । (५) आरुन्धवीर्य ( = उद्योगी ) होता है—बुराईयों ( = अकृशाल-धर्मों )



के छोड़नेमें, और भलाइयोंके ग्रहण करनेमें, स्थिर रह-पराक्रमी होता है। भलाइयोंमें स्थिर, अ-निश्चित-धुर (= ज्ञान न उतार फेंकनेवाला ) होता है। (६) स्मृतिमान् होता है—परम परिपक्व स्मृति (= याद) से युक्त होता है। चित्कालके किये और कहेका स्मरण करनेवाला, अनुस्मरण करनेवाला होता है। (७) प्रज्ञावान् होता है—उत्पत्ति-विनाशकी प्राप्ति होनेवाली, अच्छी तरह दुःखके लचकी ओर ले जानेवाली आर्ष निर्वेधिक (= वस्तुके तह तक पहुँचनेवाली ) प्रज्ञासे युक्त होता है। इस प्रकार महानाम ! ० ।

“कैसे महानाम ! आर्यशावक इसी जन्ममें सुख-विहारके उपयोगी चारों चैतन्य ध्यानोका पूर्णतया लाभी, बिना कठिनाईके लाभी, अकृच्छ-लाभी होता है ?—महानाम ! आर्यशावक कामों से विरहित ० । प्रथम-ध्यानको ० । ० । द्वितीय-ध्यानको ० । ० । तृतीय-ध्यानको ० । ० । चतुर्थ-ध्यानको प्राप्ति हो विहरता है। इस प्रकार महानाम ! ० ।

“जब महानाम ! आर्यशावक इस प्रकार शील-सम्पन्न होता है, इस प्रकार इन्द्रियोंमें गुप्तद्वार होता है, इस प्रकार भोजनमें मात्राज्ञ होता है, इस प्रकार जागरणमें तत्पर (= अनुयुक्त ) होता है, इस प्रकार सात सद्गुणों से सम्पन्नित होता है, इस प्रकार ० चारों चैतन्य ध्यानोका पूर्णतया लाभी ० होता है। महानाम ! यह आर्यशावक दीक्ष्य (= निर्वाण प्राप्तिके लिये जितने अभी कुछ करना है ) प्रातिपद् (= मार्गाब्द ) कहा जाता है। ( यह ) न-नवे-बड़े ( की भाँति ) ( पुरुष ) निर्मेद (= तह तक पहुँचने )के योग्य है, संशोध (= परमज्ञान )के योग्य है, अनुपम योग-क्षेम (= निर्वाण )की प्राप्तिके योग्य है।

“जैसे महानाम ! आठ, दस या बारह सुगीके बड़े हों ० तो भी वह चूने पाद-नलसे या मुल-मुँहसे भड़ेको फोड़कर स्वस्तिपूर्वक निकल आनेके योग्य हैं; ऐसे ही महानाम ! जब आर्यशावक इस प्रकार शील-सम्पन्न होता है ०, तो महानाम ! यह आर्यशावक दीक्ष्य ० कहा जाता है, ० ( यह ) अनुपम योग-क्षेमकी प्राप्तिके योग्य है।

“महानाम ! यह आर्यशावक इसी अनुपम स्मृतिकी परिशुद्धि ( करनेवाली ) उपेक्षा द्वारा अनेक प्रकारके पूर्व निवासों (= पूर्वजन्मों )को स्मरण करने लगता है ० । इस प्रकार आकार और उद्देश्यसहित अनेक प्रकारके पूर्व निवासोंको स्मरण करने लगता है। यह महानाम ! सुगीके चूनेका अण्डेके कोषसे पहिला फूटना होता है।

“महानाम ! फिर वह आर्यशावक इसी ० उपेक्षा द्वारा अ-मानुष विशुद्ध दिव्य, चक्षुसे ० कर्मानुसार गतिको प्राप्त होते प्राणियोंको पहिचानता है। यह महानाम ! ० दूसरा फूटना है।

“महानाम ! फिर वह आर्यशावक इसी ० उपेक्षा द्वारा आसुर्योंके श्रमसे आश्रय-रहित चित्त-विमुक्ति (= मुक्ति ) प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी जन्ममें जानकर साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरता है। यह महानाम ! ० तीसरा फूटना है।

“महानाम ! जो कि आर्यशावक शील-सम्पन्न होता है, यह भी उसके चरण (= यद् या आचरण )में है। जो कि महानाम ! आर्यशावक इन्द्रियोंमें गुप्तद्वार होता है, यह भी उसके चरणमें है। ० भोजनमें मात्राज्ञ ० । ० जागरणमें अनुयुक्त ० । ० सात सद्गुणोंसे संयुक्त ० । ० चार आभिचेतनिक (= सुद्ध चित्तवाले ) ध्यानोका पूर्णतया लाभी ० ।

“महानाम ! जो कि आर्यशावक अनेक प्रकारके पूर्व-निवासोंको जानता है ० । यह भी उसकी विषयोंमें है। ० विशुद्ध दिव्य-चक्षु ० । ० आसुर्योंके शत्रु ० । ०

“महानाम ! ऐसे आर्यवाचक विद्या-सम्पन्न कहा जाता है; इस प्रकार चरण-सम्पन्न ( कहा जाता है ) । इस प्रकार विद्या-चरण-संपन्न ( होता है ) ।

“महानाम ! सनत्कुमार महाने भी यह गाथा कही है—

‘गोत्रका ब्याल करनेवाले लोगोंमें जन्मसे अत्रिष श्रेष्ठ है ।

जो विद्या-चरण-सम्पन्न है, वह देव-मनुष्योंमें ( सबसे ) श्रेष्ठ है ॥’

“महानाम ! सनत्कुमार ब्रह्माकी गाई यह गाथा सु-गीता (= उचित कथन ) है, दुर्गीता नहीं; सुभाषिता है, दुर्भाषिता नहीं; अर्थ-युक्त है अर्थ-अर्थ-युक्त नहीं; भगवान् द्वारा भी ( यह ) अनुमत है ।”

तब भगवान्ने उठकर आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

“साधु, साधु (= शाबाश ), आनन्द ! तुने कपिलवस्तुके शाक्योंके लिये जैश्व भार्गवा अच्छी तरह व्याख्यान किया ।”

आयुष्मान् आनन्दने यह कहा, शास्ता (= पुत्र ) उसने सहमत हुये । कपिलवस्तुके शाक्योंने आयुष्मान् आनन्दके भाषणको अभिनेदित किया ।



## ५४—पोतलिय-सुत्तन्त (२।१।४)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् अंगुत्तराय-( देश )में अंगुत्तरायोंके आपण नामक निगम ( = कस्ते )में विहार करते थे<sup>१</sup> ।

तब भगवान् पूर्वाह्न समय ( चीवर ) पहिनकर पात्र-चोवर ले, भिक्षा-चारके लिये आपणमें प्रविष्ट हुये । आपणमें पिंड-चार करके पिंड-पात ( = भोजन )-समाप्तकर, एक वन-खंडमें दिनके विहारके लिये गये । भीतर जाकर दिनके विहारके लिये एक वृक्षके नीचे बैठे । पोतलिय गृह-पति भी निवासन ( = पोशाक ) आचरण ( = चादर ) पहिने, छाता जुता आरण किये, जंघा-विहार ( = चहल-कदमी )के लिये टहलता, जहाँ वह वनखंड था वहाँ गया । वनखंडमें धुसकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचा । जाकर भगवान्के साथ "संमोदन कर" ( ओर ) एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े हुये पोतलिय गृह-पतिको भगवान्ने यह कहा—

"गृहपति ! आत्मन विद्यमान हूँ, यदि चाहते हो, तो बैठो ।"

ऐसा कहनेपर पोतलिय गृह-पति—'गृहपति ( = गृहस्थ, वैश्य ) कहकर मुझे अमण गौतम

<sup>१</sup> ( यहाँ अट्टकथामें है )—“अज्झरी यह वनपद है । मही ( ? गंगा ) नदीके उत्तरमें वो पानी है, उसके अ-दूर उत्तर होनेसे उत्तराय कहा जाता है । किस महीके उत्तरमें... ? महामहीके ।...” यह जम्बुद्वीप दक्ष-मध्य-भोजन कहा है । इसमें चार हजार भोजन प्रदेश जलसे सरा होनेसे, समुद्र कहा जाता है । ( ओर ) तीन हजार भोजनमें समुत्थ वस्ते हैं । तीन हजार भोजनमें चौरासी हजार कूटों ( = नोटियों )से सुशोभित, चारों ओर बहती पाँच सौ नदियोंसे विविध, पाँच सौ भोजन जँघा हिमवान् ( = हिमालय ) है । जहाँपर कि—कुम्हार, चौकार, गहराईमें पचास पचास भोजन; तरेमें केदली भोजन, अतकतस-दह, कण्ठमुंड-दह, रक्षकार-दह, छदन्त-दह, कुमाळ-दह, मँदाकिनी सिङ्गपपातक ( = सिङ्ग-अपातक ) यह सात महासरोवर प्रतिष्ठित हैं । अनेकत-दह, सुदर्शन-कूट, विष्णु-कूट, काल-कूट, गंधमादन-कूट, कैलाश-कूट इन पाँच कूटों ( = गिरिखिखरों )से घिरा है ।... इसके चारों ओर सिङ्ग-मुल्ल, इस्ति-मुल्ल, अश्व-मुल्ल, गो ( = वृषभ )-मुल्ल—चार मुल्ल हैं; जिनसे चार नदियाँ निकलती हैं । सिङ्ग-मुल्लसे निकली नदीके किनारे सिङ्ग बहुत होते हैं । इस्ति आदि मुल्लोंसे ( निकली नदियोंके किनारे ) इल्ली, अश्व और बैल ।... गङ्गा, यमुना, अचिरवती ( = राप्ती ), सरन् ( = सरजू, पापरा ), मही ( = गंडक )... यह पाँच नदियाँ हिमवान्से निकलती हैं । इनमें जो यह पाँचवीं मही है, वही इस महीसे अभिषेक है ।... इस अंगुत्तराय वनपदमें आपण... निगममें बीस हजार आपणों ( = दुकानों )के मुख विमल थे । इस प्रकार आपणों ( = दुकानों ) से घरे होनेसे, आपण नाम हो गया । उस निगमके अ-दूर, नदीतीर-पर पानी छायावाला रमणीय भूमि-नामका वन-खंड था । उसमें भगवान् विहरते थे ।

पुकारता है—'कुपित और असन्तुष्ट हो चुप रहा ।

दूसरी बार भी ० । ० । तीसरी बार भी ० ।

तब पोतलिय गृहपतिने—'गृहपति कहकर ०'—कुपित और असन्तुष्ट हो भगवान्‌ने कहा—

'भो गौतम ! तुम्हें यह उचित नहीं, तुम्हें यह योग्य नहीं, जो मुझे गृहपति कहकर पुकारते हो ।'

'गृहपति ! तेरे यही आकार हैं, यही लिङ्ग हैं; यही निमित्त ( = लिङ्ग ) हैं, जैसे कि गृह-पति के ।'

'चूँकि भो गौतम ! मैंने सारे कर्मागत ( = खेती ) छोड़ दिये, सारे व्यवहार ( = व्यापार, वाणिज्य ) समाप्त कर दिये । भो गौतम ! मेरे पास जो धन, धान्य, रजत ( = चाँदी ), वातरूप ( = सोना ) था, सब पुत्रोंको तर्का दे दिया ! सो मैं ( खेती आदिमें ) न ताकीद करनेवाला, न कटु कहनेवाला हूँ ; सिर्फ़ खाने पहिरने भरसे वाला रहनेवाला ( हो ), विहरता हूँ । ...'

'गृहपति ! तू जिस प्रकार व्यवहारके उच्छेदको कहता है । आर्थोके विनयमें व्यवहार-उच्छेद, ( इससे ) दूसरी ही प्रकार होता है ।'

'तो भन्ते ! आर्य-विनयमें व्यवहार-उच्छेद कैसे होता है ? अच्छा ! भन्ते ! भगवान्‌ मुझे उस प्रकारका धर्म-उपदेश करें, जैसेकि आर्य-विनयमें व्यवहार-उच्छेद होता है ।'

'तो गृहपति ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।'

'अच्छा भन्ते !'—पोतलिय गृह-पतिने भगवान्‌से कहा । भगवान्‌ने कहा—

'गृहपति ! आर्य-विनय ( = आर्य-धर्म, आर्य-नियम ) में यह आठ धर्म व्यवहार-उच्छेद करनेके लिये हैं । धीनसे आठ ?—( १ ) अ-प्राणातिपात ( = अहिंसा )के लिये, प्राणातिपात छोड़ना चाहिये । ( २ ) दिया लेने ( = दिवादान )के लिये, अ-दिवादान ( = चोरी, न दिया लेना ) छोड़ना चाहिये । ( ३ ) सत्य बोलनेके लिये, मृषावाद छोड़ना चाहिये । ( ४ ) अ-पिशुन-वचन ( = न चुगली करने )के लिये, पिशुन-वचन छोड़ना चाहिये । ( ५ ) अ-गृह-लोभ ( = जलौभ )के लिये, गृह-लोभ छोड़ना चाहिये । ( ६ ) अ-मिन्दा-दोषके लिये, मिन्दा छोड़नी चाहिये । ( ७ ) अ-क्रोध-उपायास ( = परेपानी )के लिये, क्रोध-उपायास छोड़ना चाहिये । ( ८ ) अम-अतिमानके लिये, अतिमान ( = अभिमान )को छोड़ना चाहिये । गृहपति ! संक्षिप्तसे कहे, विस्तारसे न विभाजित किये, यह आठ धर्म, आर्य-विनयमें व्यवहार-उच्छेद करनेके लिये हैं ।'

'भन्ते ! भगवान्‌ने जो मुझे विस्तारसे न विभाजित किये, संक्षिप्तसे, आठ धर्म ० कहे । अच्छा हो भन्ते ! ( यदि ) भगवान्‌ अनुकम्पाकर ( उन्में ) विस्तारसे विभाजित करें ।'

'तो गृहपति ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।'

'अच्छा भन्ते !'—पोतलिय गृहपतिने भगवान्‌को उत्तर दिया ।

भगवान्‌ बोले—'गृहपति ! 'अ-प्राणातिपातके लिये प्राणातिपात छोड़ना चाहिये,' यह जो कहा, किस कारणसे कहा ?—गृहपति ! आर्य-आवक ऐसा खोचता है—'जिन संयोजनोंके कारण मुझे प्राणातिपाती होना है, उन्हीं संयोजनोंको छोड़नेके लिये, उच्छेदके लिये मैं लगा हूँ, और मैं ही प्राणातिपाती हो गया । प्राणातिपातके कारण, आत्मा ( = अपना चित्त )भी मुझे धिक्कारता है । प्राणातिपातके कारण, विश्व लोग भी जानकर धिक्कारते हैं । प्राणातिपातके कारण, कामा छोड़नेपर, मरनेके पाप, दुर्गति भी होनी है । यही संयोजन ( = बंधन ) है, यही नीवरण ( = उक्कव ) है, जो कि प्राणातिपातके कारण उत्पन्न होनेवाले विषात-परिहाद ( = द्वेष-जलन ) और आश्रय ( = चित्त-दोष ) प्राणातिपातसे विरतको नहीं उत्पन्न होते । 'अ-प्राणातिपातके लिये, प्राणातिपात



छोड़ना चाहिये' यह जो कहा, वह इसी कारणसे कहा ।

"दिक्षादानके लिये अदिक्षादान छोड़ना चाहिये, यह जो कहा, किस कारणसे कहा ?— गृहपति ! आर्य-आवक ऐसा सोचता है, जिन संयोजनोंके हेतु मुखे अदिक्षादायी (= बिना दिया लेनेवाले) होता है, उन्हीं संयोजनोंके छोड़नेके लिये, उच्छेद करनेके लिये, मैं लया हुआ हूँ; और मैं ही अ-दिक्षादायी होगया ! अ-दिक्षादानके कारण आत्मा भी मुखे चिह्नारता है । अ-दिक्षादानके कारण विश्व लोग भी जानकर चिह्नारते हैं । अ-दिक्षादानके कारण काया छोड़नेपर, मरनेके बाद दुर्गति भी होनी है । यही संयोजन है, यही नीवरण है, जो कि यह अ-दिक्षादान । अ-दिक्षादानके कारण विघात (= पीड़ा) परिदाह (= जलन) ( और ) आसन्न उत्पन्न होते हैं; अ-दिक्षादान-निरतको ० नहीं होते । 'दिक्षादानके लिये अ-दिक्षादान छोड़ना चाहिये' यह जो कहा, वह इसी कारण कहा ।

"अ-पिशुन-वचनके लिये ० ।

"अ-गृह-लीमके लिये ० ।

"अ-मिन्दा-रोषके लिये ० ।

"अ-क्रोध-उपायासके लिये ० ।

"अन्-अतिमानके लिये ० ।

"गृहपति आर्य-विनयमें यह आठ ! संक्षिप्तसे बड़े, विस्तारसे विभाजित, व्यवहार-उच्छेद करनेवाले हैं ।" ( किंतु इनमें ) सर्वथा सब कुछ व्यवहारका उच्छेद नहीं होता ।"

"तो कैसे मन्ते ! आर्य-विनयमें" सर्वथा सब कुछ व्यवहार-उच्छेद होता है ? अच्छा हो मन्ते ! भगवान् मुखे वैसे वनका उपदेश करें, जैसे कि आर्य-विनयमें" सर्वथा सब कुछ व्यवहारका उच्छेद होता है ?"

"तो गृहपति ! सुनी, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।"

"अच्छा मन्ते ।" ० । ० ।

"गृहपति ! जैसे भूखसे अति-दुर्बल कुश्कुर गो-घातकके सूना (= मांस काटनेके पीछे) के पास लपका हो । चतुर गो-घातक वा गोघातकका अन्तेवासी उसको मांस-रहित लोहूमें सनी" हड्डी फेंक दे । तो क्या मानते हो, गृहपति ! क्या वह कुश्कुर उस हड्डी"को खाकर, भूखकी दुर्बलताको दहा सकता है ?"

"नहीं, मन्ते !"

"तो किस हेतु ?"

"मन्ते ! वह लोहूमें चुपची मांस-रहित हड्डी है । वह कुश्कुर केवल परेशानी = पीड़ाका ही भागी होगा ।"

"ऐसे ही गृहपति ! आर्य-आवक सोचता है—हड्डी ( अस्मिन्ना ) के समान" भगवान्ने भोगोंको 'बहुत दुःख' बहुत परेशानीवाला कहा है, इनमें बहुतसी बुराइयाँ हैं । अतः इसको त्यागसे, अच्छी तरह प्रशस्त, देखकर, तो यह अनेकतावाली अनेकमें लगी उपेक्षा है, उसे छोड़, जो यह एकान्तातावाली एकान्तमें लगी ( उपेक्षा ) है, जिसमें लोफके आमिष (= विष) के उपादान (= ग्रहण, स्वीकार) सर्वथा ही टूट जाते हैं; उसी उपेक्षाकी भावना करता है ।

"जैसे गृहपति ! गिद्ध, कौवा वा चीन्हा माँसके टुकड़ेको लेकर उड़े, उसको गिद्ध भी, कौवे भी, चीन्हा भी पीछे उड़ उड़कर नोचें, आसोंटें । तो क्या मानता है, गृहपति ! वह गिद्ध कौवे

या चीरह, यदि शीघ्र ही उस माँसके टुकड़ेको न छोड़ दें, तो क्या वह उसके कारण मरणको या मरणान्त दुःखको पावेंगे न ?”

“ऐसा ही, भन्ते !”

“ऐसे ही, गृहपति ! आर्य-आवक सोचता है—भगवान् ने माँसके टुकड़े माँस-पेशीकी भाँति कामोंको बहुत दुःखवाले बहुत परेशानीवाले कहा है, इनमें बहुतसी बुराइयाँ हैं। इस प्रकार इसको अच्छी तरह प्रज्ञासे देखकर, जो वह अनेकताकी, अनेकमें लगी उपेक्षा है, उसे छोड़, जो यह एकान्तताकी एकान्तमें लगी उपेक्षा है, जिसमें लोकामिषके उपादान (= ग्रहण) सर्वथा ही उच्छिन्न हो जाते हैं, उसी उपेक्षाकी भावना करता है।

“जैसे गृहपति ! पुरुष तृणकी उल्का (= मशाल, लुकारी) को ले, हवाके रुख जाये। तो क्या मानते हो, गृहपति ! यदि वह पुरुष शीघ्र ही उस तृण-उल्काको न छोड़ दे तो ( क्या ) वह तृण-उल्का उसके हथेलीको ( न ) जला देगी, या बाँहको ( न ) जला देगी, या दूसरे अंग प्रत्यंगको न जला देगी... ?”

“ऐसा ही, भन्ते !”

“ऐसे ही, गृहपति ! आर्य-आवक सोचता है—तृण-उल्काकी भाँति बहुत दुःखवाले बहुत परेशानीवाले हैं ० । ० ।

“जैसे कि गृहपति ! भूम-रहित, अर्चि (= लौ )-रहित अंगारका (= भस्म, भस्मि-पूर्ण ) हो। तब जीवन-इच्छुक, मरण-अनिच्छुक, सुख-इच्छुक, दुःख-अनिच्छुक पुरुष जावे, उसको दो पलवान् पुरुष अनेक बाहुओंसे पकड़कर अङ्गारकामें डाल दें। तो क्या मानते हो गृहपति ! क्या वह पुरुष इस प्रकार धिताहीमें शरीरको ( नहीं ) जालेगा ?”

“हाँ भन्ते !”

“तो किस हेतु ?”

“भन्ते ! उस पुरुषको मालूम है, यदि मैं इन अङ्गारकाओंमें गिरूँगा, तो उसके कारण मैंगा या मरणांत दुःखको पाऊँगा ।”

“ऐसेही गृहपति ! आर्य-आवक यह सोचता है—अङ्गारकाकी भाँति दुःखद ० । इसमें बहुत बुराइयाँ हैं । ० ।

“जैसे गृह-पति ! पुरुष आरामकी रमणीयता-युक्त, वन-रमणीयता-युक्त, भूमि-रमणीयता-युक्त, पुष्करिणी-रमणीयता-युक्त स्वप्नको देखे। सो जागनेपर कुछ न देखे। ऐसेही गृहपति ! आर्य-आवक यह सोचता है—भगवान् ने स्वप्न-समान (= स्वप्नोपम) बहुत दुःखद ० कहा है । ० ।

“जैसे कि गृह-पति ! ( किसी ) पुरुष ( के पास ) मँगनीके भोग, धान या पुरुषके उत्तम मणि-कुंडल हों। वह ० इन मँगनीके भोगोंके साथ... बाजारमें जाये। उसको देखकर आदमी कहें—कैसा भोग-संपन्न पुरुष है ! भोगी लोग ऐसे ही भोगका उपभोग करते हैं ! सो उसके मालिक (= स्वामी ) ० जहाँ देखें वहाँ कनात लगा दें। तो क्या मानते हो, गृहपति ! क्या उस पुरुषको दूसरा ( भाव समझना ) युक्त है ?”

“हाँ, भन्ते !”

“तो किस हेतु ?”

“( क्योंकि जेवरोंके ) मालिक कनात घेर देते हैं ।”

“ऐसेही गृहपति ! आर्य-आवक ऐसा सोचता है—मँगनीकी चीज़के समान (= याचित-कूपम) ० कहा है । ० ।



“जैसे गृहपति ! ग्राम या निगमसे ज-दूर, भारी वन-खण्ड हो । वहाँ फल-सम्पन्न = उत्पन्न-फल वृक्ष हो; कोई फल भूमिपर न गिरा ही । तब फल-इच्छुक, फल-गवेषक = फल-खोजी पुरुष घूमते हुये आवे । वह उस वनके भीतर जाकर, उस फल-संपन्न = वृक्षको देखे । उसको यह हो—यह वृक्ष फल-सम्पन्न = है, कोई फल भूमिपर नहीं गिरा है; मैं वृक्षपर चढ़ना जानता हूँ । क्यों न मैं चढ़कर इच्छा-भर खाऊँ, और फाँव (= उत्सर्ज, उत्सर्ज ) भर ले चूँ । तब दूसरा फल-इच्छुक, फल-गवेषी = फलखोजी, पुरुष घूमता हुआ तेज़ कुल्हाड़ा लिये उस वन-खण्डके भीतर जाकर, उस वृक्षको देखे । उसको ऐसा हो—यह वृक्ष फल-सम्पन्न = है, मैं वृक्षपर चढ़ना नहीं जानता; क्यों न इस वृक्षको जपसे काटकर इच्छा भर खाऊँ, और फाँव भर ले चूँ । वह उस वृक्षको जपसे काटे । तो क्या मानते हो, गृहपति ! वह जो पुरुष पैरपर पहिले चढ़ा था, यदि जख्मी ही न उतार आये, तो ( क्या ) वह गिरता हुआ वृक्ष उसके हाथको ( न ) तोव देगा, पैरको ( न ) तोव देगा, या दूसरे अङ्ग-प्रत्यङ्गको ( न ) तोव देगा ? वह उसके कारण क्या मरणको ( न ) प्राप्त होगा, या मरणान्त दुःखको ( न ) प्राप्त होगा ?”

“हाँ, भन्ते !”

“ऐसे ही गृह-पति ! आर्य-आश्रक सोचता है—वृक्ष-फल-समान कामोंको = कहा है; इनमें बहुत सी सुराइयाँ (= आदि-वच ) हैं । इस प्रकार इसको यथावैता, अच्छी प्रकार, प्रज्ञासे देखकर, जो यह अनेकता-वाली अनेकमें कमी उपेक्षा है, उसे छोड़; जो वह एकांतकी एकांतमें कमी उपेक्षा है, जिसमें लोक-आमिषका उपादान (= ग्रहण ) सर्वथा ही उच्छिन्न हो जाता है, उसी उपेक्षाकी भावना करता है ।

“सो वह गृह-पति ! आर्य-आश्रक इसी अनुपम (= अनुसार ) उपेक्षा, स्मृतिकी पारिशुद्धि (= स्मरणको शुद्धि करनेवाली उपेक्षा ) को पाकर, अनेक प्रकारके पूर्व-निवासों (= पूर्व जन्मों)को स्मरण करता है;—जैसे कि एक जन्म भी, दो जन्म भी, तीन जन्म भी = इस प्रकार आचार-सहित उद्देश (= नाम )-सहित, अनेक प्रकारके पूर्व-निवासोंको स्मरण करता है ।

“सो वह गृह-पति ! आर्य-आश्रक इसी अनुपम उपेक्षा स्मृति-पारिशुद्धिको पाकर, वि-शुद्ध अ-मानुष दिव्य-चक्षुसे, भरते उत्पन्न होते, बीच-जैच, सुवर्ण-दुर्वर्ण, भुगत-दुर्गत = कमानुसार ( फलको ) प्राप्त, प्राणियोंको जानता है ।

“सो वह गृह-पति ! आर्य-आश्रक इसी अनुपम उपेक्षा स्मृति-पारिशुद्धिको पाकर, इसी जन्ममें आसवों (= चित्त-दोषों )के क्षयसे, अन्-आश्रव चित्त-विमुक्तिको जानकर, प्राप्तकर, विहारता है । गृहपति ! आर्य-विनयमें इस प्रकार—“सर्वथा सभी कुछ सब व्यवहारका उच्छेद होता है । तो क्या मानता है, गृह-पति ! जिस प्रकार आर्य-विनयमें—“सर्वथा सभी कुछ व्यवहार-उच्छेद होता है, क्या तू वैसा व्यवहार-समुच्छेद अपनेमें देखता है ?”

“भन्ते ! कहाँ मैं और कहाँ आर्य-विनयमें—“व्यवहार-समुच्छेद !! भन्ते ! पहिले अन्-आजानीय अन्त्य-तैर्थिक (= पंचाई ) परिवाजकोंको, हम आजानीय (= परिशुद्ध, शुद्धजातिके ) समझते थे, अनाजानीय होतोंको आजानीयका भोजन कराते थे, अन्-आजानीय होतोंको आजानीय-स्थानपर स्थापित करते थे । आजानीय निजुनोंको अन्-आजानीय समझते थे, आजानीय होतोंको अन्-आजानीय भोजन कराते थे, आजानीय होतोंको अन्-आजानीय स्थानपर रखते थे । भन्ते !

अब हम अन्-आजानीय होते अन्य-तैश्चिक पस्त्रिवाजकोंको अन्-आजानीय जानेंगे, ० अन्-आजानीय भोजन करायेंगे, ० अन्-आजानीय स्थानपर स्थापित करेंगे। मन्ते ! अब हम आजानीय होते भिक्षुओंको आजानीय समझेंगे, ० आजानीय भोजन करायेंगे, ० आजानीय स्थानपर रखेंगे। अहो ! मन्ते ! भगवान् ने मुझे अमणोंमें अमण-प्रेम पैदा कर दिया, अमणों (= साधुओं) में अमण-प्रसाद (= अमणोंके प्रति प्रसन्नता), ० अमण-गौरव०। आश्चर्य ! मन्ते ! आश्चर्य ! मन्ते ! ०<sup>१</sup> आज्ञते भगवान् मुझे अजलि-वद्ध शरणागत उपासक धारण करें।”



## ५५-जीवक-सुत्तन्त (२।१।५)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् राजगृहमें जीवक कौमारभृत्यके आश्रयमें विहार करते थे ।

तब जीवक कौमारभृत्य जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे जीवकने भगवान्से यह कहा—

“मन्ते ! मैंने सुना है—‘अमण गौतमके उद्देश्यसे ( लोग ) जीव भास्ते हैं, अमण गौतम जानते हुये ( अपने ) उद्देश्यसे बनाये ( अपने ) उद्देश्यसे किये कर्मवाले भासको खाता है ’। मन्ते ! जो यह कहते हैं—‘अमण गौतम ० खाता है’ क्या मन्ते ! वह भगवान्के विषयमें यथार्थ-वादी हैं ? वह भगवान्पर झूठा इल्लजाम तो नहीं लगाते ? सत्यके अनुसार कहते हैं ? ( उनके इस कथनसे ) किसी धर्मानुसार वचन-अनुवचनकी निन्दा तो नहीं हो जाती ?”

“जीवक ! जो यह कहते हैं—‘अमण गौतम ० खाता है’, वह मेरे विषयमें यथार्थवादी नहीं हैं; वह सुश्रुपर झूठा इल्लजाम ( = अम्बाषट्ठान ) लगाते हैं ।” जीवक ! मैं तीन प्रकारके भासको अ-भोज्य कहता हूँ—‘एष्ट, श्रुत और परिशंकित ।” जीवक ! तीन प्रकारके भासको मैं भोज्य कहता हूँ—अ-एष्ट, अ-श्रुत, अ-परिशंकित ।”

“जीवक ! कोई मिश्रु फिट्टी गाँव, या निगम ( = कस्बे ) के पास विहार करता है । वह मैत्री-पूर्ण चित्तसे ०\* सारे लोकको पूर्णकर विहरता है । उसके पास जाकर कोई गृहपति या गृहपति-पुत्र दूसरे दिनके भोजनके लिये निमंत्रण देता है । इच्छा होनेपर जीवक ! मिश्रु ( उस निमंत्रण ) को स्वीकार करता है । वह उस रातके पीतने पर पूर्वाह्न समय पहिन कर पाच-पीचर ले, जहाँ उस गृहपति या गृहपति-पुत्रका घर होता है, वहाँ जाता है । जाकर बिठे आसन पर बैठता है । उसे वह गृहपति या गृहपति-पुत्र उत्तम पिडपात ( सिद्धात ) परोसता है । उस ( मिश्रु ) को यह नहीं होता—‘अहो ! वह गृहपति या गृहपति-पुत्र मुझे उत्तम पिडपात परोसे । अहो ! वह ० जागे भी इसी प्रकारका पिडपात परोसे ।” वह उस पिडपातको अ-लोलुप = अ-मूर्छित हो, अना-सक हो अक्षुण्णका स्वाद रखते, निन्दारकी बुद्धिसे खाता है । तो क्या मानते हो, जीवक ! क्या वह मिश्रु उस समय आत्म-पीडा ( की बात ) को सोचता है, पर-पीडाको सोचता है, ( आत्म-पर- ) समय-पीडाको सोचता है ?”

“नहीं, मन्ते !”

“क्यों जीवक ! उस समय वह निर्दोष ( = अनवय ) आहारहीका ग्रहण कर रहा है न ?”

“हाँ, मन्ते ! मैंने सुना है मन्ते ! कि ब्रह्मा मैत्री-विहारो ( = सदा सबको मित्र भावसे

\* जीवक अपने किये नारा जाना देखना, सुनना, या रोक होना । \* देखो बृह २५ ।

देखनेवाला ) है, सो मैंने मन्ते ! भगवान्‌को साक्षात् देख लिया । मन्ते ! भगवान्‌ मैत्री विहारी हैं ।”

जीवक ! जिस रागसे, जिस द्वेषसे, जिस मोहसे ( आदमी ) व्यापादवान् ( = द्वेषी, उत्पीडक ) होता है, वह राग-द्वेष-मोह तयागतका नष्ट होगया, उच्छिन्न-मूल, कटे सिरवाले-ताड़-जैसा, अ-मात्र-प्राप्त, भविष्यमें उत्पन्न-होनेके-अवश्य होगया । यदि जीवक ! तूने यह क्वाल करके कहा, तो मैं सहमत हूँ ।”

“यही क्वाल कर मन्ते ! मैंने कहा ।”

“वहाँ जीवक ! कोई भिक्षु किसी गाँव या निगमके पास विहार करता है । वह कल्याण-पूर्ण चित्तसे ०<sup>१</sup> । मुदिता-पूर्ण चित्तसे ०<sup>२</sup> । उपेक्षा-पूर्ण चित्तसे ०<sup>३</sup> सारे लोकको पूर्ण कर विहरता है । उसके पास आकर कोई गृहपति या गृहपति-पुत्र दूसरे दिनके लिये भोजनका निमन्त्रण देता है । ०<sup>४</sup>”

“यही क्वाल कर मन्ते ! मैंने कहा ।”

“जो कोई जीवक ! तयागत या तयागतके आवकके उद्देश्यसे जीव मारता है, वह पाँच स्थानोंसे अ-पुण्य ( = पाप ) कमाता है ( १ ) जो वह यह कहता है—‘जाओ, असुक जीवको जाओ’, इस पहिले स्थान ( = वातसे ) वह बहुत अ-पुण्य कमाता है । ( २ ) जो वह गल्लेमें ( रस्ती ) बाँधकर खींच कर लाते ( पशु ) को ( देख ) दुःख-दौर्मनस्य अनुभव करता है, यह दूसरे स्थान ० । ( ३ ) जो वह यह कहता है—‘जाओ, इस जीवको मारो’ इस तीसरे स्थान ० । ( ४ ) जो वह जीवोंको मारते समय दुःख = दौर्मनस्य ( = संताप ) अनुभव करता है, इस चौथे स्थान ० । जो वह तयागत या तयागतके आवकको अ-कल्याण ( = अनुचित, अ-विहित ) को चिलाता है; इस पाँचवें स्थान ० । जो कोई जीवक ! तयागत या तयागतके आवकके उद्देश्यसे जीव मारता है, वह इन पाँच स्थानोंसे अ-पुण्य कमाता है ।”

यह कहनेपर जीवक कौमारभृत्यने भगवान्‌से यह कहा—“आश्चर्य ! मन्ते ! अद्भुत !! मन्ते ! क्लृप्य ( = डचिल, विहित ) आहारको मन्ते ! भिक्षु ग्रहण करते हैं । अहो ! निर्दोष आहार को मन्ते ! भिक्षु ग्रहण करते हैं । आश्चर्य ! मन्ते ! अद्भुत !! मन्ते ! जैसे बीधेको सीधा करदे ०<sup>१</sup> । यह मैं मन्ते ! भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी ! भगवान्‌ आजसे मुझे अजलिबद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें ।”

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ २५ ।

<sup>२</sup> पहिलेकी आवृत्ति ।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ २६ ।



देना) को अच्छी प्रकार जाननेवाले, बहुश्रुत आवाक दीर्घ-तपस्वी निर्गंठने अमण गौतमको बतलाया। यह सुना मन-दंड, इस महान् काय-दंडके सामने क्या शोभता है? पाप-कर्मके करने = पाप कर्मकी प्रवृत्तिके लिये काय-दंड ही महादीपी है, वचन दंड, मन-दंड वैसे नहीं।"

ऐसा कहनेपर उपासी गृहपतिने निर्गंठ नात-पुत्रसे यह कहा—

"साधु! साधु!! भन्ते तपस्वी! जैसा कि शास्ताके शासनके मर्मज्ञ, बहुश्रुत आवाक भदन्त दीर्घ-तपस्वी निर्गंठने अमण गौतमको बतलाया। यह सुना ०। तो भन्ते! मैं जाऊँ, इसी कथा-वस्तुमें अमण गौतमके साथ विवाद रोपूँ? यदि मेरे (सामने) अमण गौतम वैसे (ही) ठहरा रहा, जैसा कि भदन्त दीर्घ-तपस्वीने (उसे) ठहराया। तो जैसे बलवान् पुरुष लम्बे बाल वाली भेड़को बालोंसे पकड़कर निकाले, सुमावे, डुलावे, उसी प्रकार मैं अमण गौतमके वादको... निकालूँगा, सुमाऊँगा, डुलाऊँगा। (अथवा) जैसे कि गहरे बलवान् शौद्धिक-कर्मकर (= धराप-बनानेवाला) भट्टीके छत्ते (= सोडिका-किल्ल)को पानी (वाले) तालाबमें फेंककर; कानोंको पकड़ निकाले, सुमावे, डुलावे, ऐसे ही मैं ०। (अथवा) जैसे बलवान् सराबी, बालककी कामसे पकड़कर हिलावे, ० डुलावे..., ऐसे ही मैं ०। (अथवा) जैसे कि साठ वर्षका पट्टा हाथी गहरी पुष्करिणीमें घुसकर सन-घोवन नामक खेलको खेले, ऐसे ही मैं अमण गौतमको सन-घोवन ०। हाँ! तो भन्ते! मैं जाता हूँ। इस कथा-वस्तुमें अमण गौतमके साथ वाद रोपूँगा।"

"जा गृहपति! जा, अमण गौतमके साथ इस कथा-वस्तुमें वाद रोप। गृहपति! अमण गौतमके साथ मैं वाद रोपूँ, या दीर्घ-तपस्वी निर्गंठ रोपे, या तु।"

ऐसा कहनेपर दीर्घ-तपस्वी निर्गंठने निर्गंठ नात-पुत्रको कहा—

"भन्ते! (आपको) यह मत रखे, कि उपासि गृहपति अमण गौतमके पास जाकर वाद रोपे। भन्ते! अमण गौतम मायावी है, (भति) करनेवाली माया जानता है, जिससे दूसरे तैयिर्कों (= पंथाइयों)के आवाकों (को अपनी ओर) फेर लेता है।"

"तपस्वी! यह संभव नहीं, कि उपासी गृहपति अमण गौतमका आवाक होजाय। संभव है कि अमण गौतम (ही) उपासी गृहपतिका आवाक होजाय। जा गृहपति! अमण गौतमके साथ इस कथा-वस्तुमें वाद रोप। गृहपति! अमण गौतमके साथ मैं वाद रोपूँ, या दीर्घ-तपस्वी निर्गंठ रोपे, या तु।"

दूसरीबार भी दीर्घ-तपस्वी निर्गंठने ०। तीसरीबार भी ०।

"अच्छा भन्ते!" कह, उपासि गृहपति निर्गंठ नात-पुत्रको अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर, जहाँ प्रायारिक आश्रयन था, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये उपासि गृहपतिने भगवान्से कहा—

"भन्ते! क्या दीर्घ-तपस्वी निर्गंठ यहाँ आये थे?"

"गृहपति! दीर्घ-तपस्वी निर्गंठ यहाँ आया था।"

"भन्ते! दीर्घ-तपस्वी निर्गंठके साथ आपका कुछ कथा-संलाप हुआ?"

"गृहपति! दीर्घ-तपस्वी निर्गंठके साथ मेरा कुछ कथा-संलाप हुआ।"

"तो भन्ते! दीर्घ-तपस्वी निर्गंठके साथ क्या कुछ कथा-संलाप हुआ?"

तब भगवान्ने दीर्घ-तपस्वी निर्गंठके साथ जो कुछ कथा-संलाप हुआ था, उस सबको उपासी गृहपतिसे कह दिया। ऐसा कहने पर उपासी गृहपतिने भगवान्से कहा—

"साधु! साधु! भन्ते तपस्वी! जैसाकि शास्ताके शासनके मर्मज्ञ, बहु-श्रुत, आवाक

दीर्घ-तपस्वी निर्गठने भगवान्को घटलाया !! यह सुदी मन-दंड इस महान् काया-दंडके सामने क्या शोभता है ? पाप-कर्मकी प्रवृत्तिके लिये काय-दंडही महा-दोषी है, वैसा वचन-दंड नहीं है, वैसा मन-दंड नहीं है ।”

“गृहपति ! यदि तू सत्यमें स्थिर हो मंत्रणा (= विचार) करे, तो हम दोनोंका संलाप हो ।”

“मन्ते ! मैं सत्यमें स्थिर हो मंत्रणा करूँगा । हम दोनोंका संलाप हो ।”

“क्या मानते हो गृहपति ! ( यदि ) यहाँ एक बीमार = दुःखित मरकर रोग-ग्रस्त शीत-जल-स्वागी उष्ण-जल-सेवी निर्गठ..... शीत-जल न पानेके कारण मर जाये, तो निर्गठ नात-पुत्र उसकी ( पुत्रः ) उत्पत्ति कहाँ घटलायेंगे ?”

“मन्ते ! ( जहाँ ) मनः-सत्त्व नामक देवता है; वह वहाँ उत्पन्न होगा ।”

“तो किस कारण ?”

“मन्ते ! वह मनसे पैदा हुआ मरा है ।”

“गृहपति ! गृहपति ! मनमें ( सोच ) करके कहो । तुम्हारा पूर्व ( पक्ष ) से पश्चिम ( पक्ष ) नहीं मिलता, तथा पश्चिमसे पूर्व नहीं ठीक खाता । और गृहपति ! तुमने वह बात ( मी ) कही है—मन्ते ! मैं सत्यमें स्थिर हो मंत्रणा करूँगा, हम दोनोंका संलाप हो ।”

“और मन्ते ! भगवान्ने भी ऐसा कहा है—पापकर्म करनेके लिये ० काय-दंडही महादोषी है, वैसा वचन-दंड..... ( और ) मन-दंड नहीं ?”

“तो क्या मानते हो गृह-पति ! यहाँ एक \*चातुर्ग्राम-स्वयंसे संवृत (= गोपित, रक्षित), सब \*वारिसे निवारित, सब वारि( = वास्तियों )को निवारण करनेमें तत्पर, सब ( पाप- ) वारिसे धुला हुआ, सब ( पाप ) वारिसे छूटा हुआ, निर्गव (= जैन-साधु ) है । वह आते जाते बहुतसे छोटे-छोटे प्राणि-समुदायको मारता है । गृहपति ! निर्गठ नात-पुत्र इसका क्या निपाक (= फल ) घटलाते हैं ?”

“मन्ते ! अज्ञानको निर्गठ नात-पुत्र महादोष नहीं कहते ।”

“गृहपति ! यदि जानता हो ।”—“( तब ) मन्ते ! महादोष होगा ।”

“गृहपति ! जाननेको निर्गठ नात-पुत्र किसमें कहते हैं ?”—“मन्ते ! मन-दंडमें ।”

“गृहपति ! गृहपति ! मनमें ( सोच ) करके कहो । ० ।”

“और मन्ते ! भगवान्ने भी ० ।”

“तो गृहपति ! क्या वह नालन्दा सुख-संपत्ति-युक्त, बहुत जनोंवाली, ( बहुत ) सन्तुष्टोंसे भरी है ?”—“हाँ मन्ते !”

“तो गृहपति ! ( यदि ) यहाँ एक पुरुष ( मंत्री ) तलवार उठाये आये, और कहे—इस नालन्दा में जितने प्राणी हैं, मैं एक क्षणमें एक सुहृत्तमें, उन ( सब )का एक मौस का कलियान, एक मौसका डेर कर दूँगा । तो क्या गृहपति ! वह पुरुष एक मौसका डेर कर सकता है ?”

“मन्ते ! दश भी पुरुष, बीस भी पुरुष, तीस ०, चालीस ०, पचास भी पुरुष, एक मौसका डेर नहीं कर सकते, वह एक भुवा क्या... है ।”

\* ( १ ) प्राण-हिंसा न करना, न कराना, न अनुमोदन करना, ( २ ) चोरी न० । ( ३ ) शूद्र न० । ( ४ ) नाशित (= विषय-भोग ) न चाहना ० । वह चातुर्ग्राम है । \* गोपित शीतल जल वा पापकरी जल ।



“तो...गृहपति ! यहाँ एक कदिमान्, चित्तको वशमें किया हुआ, भ्रमण या माह्वण आये, वह ऐसा बोले—मैं इस नालंदाको एक ही मनके कोषसे भस्म कर दूँगा । तो क्या...गृहपति ! वह भ्रमण या माह्वण ० इस नालंदाको ( अपने ) एक मनके कोषसे भस्म कर सकता है ?”

“मन्ते ! दश नालन्दाओंको भी ० पचास नालन्दाओंको भी ० वह भ्रमण या माह्वण ( अपने ) एकले कोषसे भस्मकर सकता है । एक मुई नालन्दा क्या है ।”

“गृहपति ! गृहपति ! मनमें ( सोच ) कर...कहो ० ।”

“और भगवान्ने भी ० ।”

“तो...गृहपति ! क्या तुमने दण्डकारण्य, कलिगारण्य, मेघ्यारण्य ( = मेघनाद ), मातङ्गारण्यका अरण्य होना सुना है ?”—“हाँ, मन्ते ! ० ।”

“तो...गृहपति ! तुमने सुना है, कैसे दण्डकारण्य ० हुआ ?”

“मन्ते ! मैंने सुना है—अपिपोंके मनके-कोषसे दण्डकारण्य ० हुआ ।”

“गृहपति ! गृहपति ! मनमें ( सोच ) कर...कहो ० । तुम्हारा पूर्वसे पश्चिम नहीं मिलता, पश्चिमसे पूर्व नहीं मिलता । और तुमने गृहपति ! यह बात कही है—‘सत्यमें स्थिर हो मैं मन्ते ! मंत्रणा ( = वाद् ) कहूँगा, हमारा संलाप हो ।’”

“मन्ते ! भगवान्की पहिली उपमासे ही मैं समुष्ट = अभिरत होगया था । विचित्र प्रश्नोंके व्याख्यान ( = पटिमान )को और भी सुननेकी इच्छासेही मैंने भगवान्को प्रतिवादी बनाना पसन्द किया । आश्चर्य ! मन्ते !! आश्चर्य ! मन्ते !! जैसे आँधेको सोधा करदे ०<sup>१</sup> आजसे भगवान् मुझे साजिल शरणागत उपसक्त धारण करें ।”

“गृहपति ! सोच-समझकर ( काम ) करो । तुम्हारे जैसे अनुष्योंका सोच-समझकर ही करना अच्छा होता है ।”

“मन्ते ! भगवान्के इस कथनसे मैं और भी प्रसन्न-मन, समुष्ट और अभिरत हुआ, जोकि भगवान्ने मुझे कहा—‘गृहपति ! सोच-समझकर करो ० ।’ मन्ते ! दूसरे तैर्धिक ( = पंधाई ) मुझे आवक पाकर, सारे नालन्दामें पठाका उड़ाते—‘उपाधि गृहपति हमारा आवक होगया’ । और भगवान् मुझे कहते हैं—‘गृहपति ! सोच-समझकर करो ०’ । मन्ते ! यह दूसरी बार मैं भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और मिश्र संघकी भी ०<sup>२</sup> ।”

“गृहपति ! दीर्घ-कालसे तुम्हारा कुल ( = कुल ) निराण्ठोंके लिये स्वाजकी तरह रहा है, उनके जानेपर ‘पिंड नहीं देना चाहिये’—यह मत समझना ।”

“मन्ते ! इससे और भी प्रसन्न-मन, समुष्ट और अभिरत हुआ, जो मुझे भगवान्ने कहा—दीर्घकालसे तेरा घर ० । मन्ते ! मैंने सुना था कि भ्रमण गौतम ऐसा कहता है—मुझेही दान देना चाहिये, दूसरोंको दान न देना चाहिये । मेरेही आचर्योंको दान देना चाहिये, दूसरोंको दान न देना चाहिये । मुझेही देनेका महा-फल होता है, दूसरोंको देनेका महा-फल नहीं होता । मेरेही आचर्योंको देनेका महाफल होता है, दूसरोंके आचर्योंको देनेका महाफल नहीं होता । और भगवान् तो मुझे निराण्ठोंको भी दान देनेको कहते हैं । मन्ते ! इस भी इसे युक्त समझेंगे । मन्ते ! यह मैं तीसरी बार भगवान्की शरण जाता हूँ ०<sup>३</sup> ।”

तब भगवान्ने उपाधि गृहपतिको आनुपूर्वी-कथा कही ०<sup>४</sup> । जैसे कालिमा-रहित शुद्ध-

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ २६ ।

<sup>२</sup> देखो शुद्धार्थ, पृष्ठ २५ ।

वस्त्र अच्छी प्रकार रंगको पकवता है, इसी प्रकार उपालि गृहपतिको उसी आसनपर विरज = विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—'जो कुछ समुद्य-धर्म है, वह सब निरोध-धर्म है'। तब उपालि गृहपतिने दण्ड-धर्म <sup>१</sup> हो भगवान्‌से कहा—

"भन्ते ! अब हम जाते हैं, हम बहुकृत्य = बहुकरणीय हैं ।"

"गृह-पति ! जिसका तुम काल समझो ( बैसा करो ) ।"

तब उपालि गृह-पति भगवान्‌के भाषणको अभिनन्दन कर, अनु-मोदनकर, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर, जहाँ उसका घर था, वहाँ गया। जाकर द्वारपालसे बोला—

"सौम्य ! दौवारिक ! आजसे मैं निगण्ठों और निगण्ठियोंके लिये द्वार बन्द करता हूँ, भगवान्‌के मित्र मित्रुनी, उपासक और उपासिकाओंके लिये द्वार खोलता हूँ। यदि निगण्ठ आवे, तो कहना—'ठहरें भन्ते ! आजसे उपालि गृह-पति भ्रमण गौतमका आचक हुआ। निगण्ठों, निगण्ठियोंके लिये द्वार बन्द है; भगवान्‌के मित्र, मित्रुनी, उपासक, उपासिकाओंके लिये द्वार खुला है। यदि भन्ते ! तुम्हें पिंड (= भिक्षा) चाहिये, यहीं ठहरें, ( हम ) यहीं आ देंगे ।"

"अच्छा भन्ते !" ( कह ) दौवारिकने उपालि गृह-पतिको उचर दिया।

दीर्घ-तपस्वी निगण्ठने सुना—'उपालि गृह-पति भ्रमण गौतमका आचक होगया'। तब दीर्घ-तपस्वी निगण्ठ, जहाँ निगण्ठ नात-पुत्र थे, वहाँ गया। जाकर निगण्ठ नात-पुत्रसे बोला :—

"भन्ते ! मैंने सुना है, कि उपालि गृह-पति भ्रमण गौतमका आचक हो गया ।"

"यह स्थान नहीं, यह अवकाश नहीं (= यह असम्भव) है, कि उपालि गृह-पति भ्रमण गौतमका आचक हो जाये, और यह स्थान (= संभव) है, कि भ्रमण गौतम ( ही ) उपालि गृह-पतिको आचक (= शिष्य ) हो ।"

अतः दूसरी बार भी दीर्घ-तपस्वी निगण्ठने कहा— ० ।

तृतीय बार भी दीर्घ-तपस्वी निगण्ठने ० ।

"तो भन्ते ! मैं जाता हूँ, और देखता हूँ, कि उपालि गृह-पति भ्रमण गौतमका आचक हो गया, या नहीं ।"

"आ तपस्वी ! देख कि उपालि गृहपति भ्रमण गौतमका आचक होगया, या नहीं ।"

तब दीर्घ-तपस्वी निगण्ठ जहाँ उपालि गृहपतिका घर था, वहाँ गया। द्वार-पालने दूरसे ही दीर्घ-तपस्वी निगण्ठको आते देखा। देखकर दीर्घ-तपस्वी निगण्ठसे कहा—

"भन्ते ! ठहरो, मत प्रवेश करो। आजसे उपालि गृहपति भ्रमण गौतमका आचक होगया ०। यहीं ठहरो, यहीं तुम्हें पिंड ले आ देंगे ।"

"आवुत ! मुझे पिंडका काम नहीं है ।"

—यह कह दीर्घ-तपस्वी निगण्ठ जहाँ निगण्ठ नात-पुत्र थे, वहाँ गया। जाकर निगण्ठ नात-पुत्रसे बोला—

"भन्ते ! सब ही है। उपालि गृहपति भ्रमण गौतमका आचक होगया। भन्ते ! मैंने तुम से पहिले ही न कहा था, कि मुझे यह पसन्द नहीं कि उपालि गृहपति भ्रमण गौतमके साथ वाद करें। भ्रमण गौतम भन्ते ! मायावी है, आवर्तनी माया जानता है, जिससे दूसरे तैर्थिकोंके आचकों को पैर लेता है। भन्ते ! उपालि गृहपतिको भ्रमण गौतमने आवर्तनी-मायासे पैर लिया ।"



“तपस्वी ! यह... ( संभव नहीं )... कि उपालि गृहपति अमण गौतमका श्रावक होनाम ० ।”

दूसरी बार भी दीर्घ-तपस्वी निगंठने निगंठ नात-पुत्रसे यह कहा— ० । तीसरी बार भी दीर्घ-तपस्वी ० ।

“तपस्वी ! यह... ( संभव नहीं )... ० । अच्छा तो तपस्वी ! मैं जाता हूँ । स्वयं जानता हूँ, कि उपालि गृह-पति अमण गौतमका श्रावक हुआ था नहीं ।”

तब निगंठ नात-पुत्र वही भारी निगंठोंकी परिषद्के साथ, वहाँ उपालि गृहपतिका घर था, वहाँ गया । द्वार-पालके दूरसे आते हुये निगंठ नात-पुत्रको देखा । ( और ) कहा—

“ठहरें भन्ते ! मत प्रवेश करें । आजसे उपालि गृहपति अमण गौतमका उपासक हुआ ० । यहीं ठहरें, यहीं तुम्हें ( पिंड ) ले आ देंगे ।”

“तो सौम्य दीवारिक ! जहाँ उपालि गृहपति है, वहाँ जानो । जाकर उपालि गृहपतिको कहो—भन्ते ! वही भारी निगंठ-परिषद्के साथ निगंठ नात-पुत्र फाटके बाहर खड़े हैं, ( और ) तुम्हें देखना चाहते हैं ।”

“अच्छा भन्ते ।”—निगंठ नात-पुत्रको कह ( द्वारपाल ) जहाँ उपालि गृहपति था, वहाँ गया । जाकर उपालि गृहपतिसे बोला—

“भन्ते ! ० निगंठ नात-पुत्र । ०”

“तो सौम्य ! दीवारिक ! बिचली द्वार-शाला ( = दालान ) में आसन बिछाओ ।”

“अच्छा भन्ते !”—उपालि गृहपतिसे कह, बिचली द्वार-शालामें आसन बिछा—

“भन्ते ! बिचली द्वार-शालामें आसन बिछा दिये । अब ( आप ) जिसका काल समझें । तब उपालि गृह-पति जहाँ बिचली द्वार-शाला थी, वहाँ गया । जाकर जो वहाँ ० ही श्रेष्ठ, उत्तम = प्रणीत आसन था, उसपर बैठकर दीवारिकसे बोला—

“तो सौम्य दीवारिक ! जहाँ निगंठ नात-पुत्र है, वहाँ जानो, जाकर निगंठ नात-पुत्र कहो—“भन्ते ! उपालि गृहपति कहता है—यदि चाहें तो भन्ते ! प्रवेश करें ।”

“अच्छा भन्ते !”—( कह )... दीवारिकने...—निगंठ नात-पुत्रसे कहा—

“भन्ते ! उपालि गृहपति कहते हैं—यदि चाहें तो, प्रवेश करें ।”

निगंठ नात-पुत्र वही भारी निगंठ-परिषद्के साथ जहाँ बिचली द्वारशाला थी, वहाँ गये । पहिले जहाँ उपालि गृहपति, दूरसेही निगंठ नात-पुत्रको आते देखता, देखकर आवाजानी कर वहाँ जो अन्न = श्रेष्ठ, उत्तम = प्रणीत आसन होता, उसे ( अपनी ) चादरसे ढाँककर, उसपर बैठाता था । सो आज जो वहाँ ० उत्तम ० आसन था, उसपर कपड़ बैठकर निगंठ नात-पुत्रसे बोला—

“भन्ते ! आसन मौजूद है, यदि चाहें तो बैठें ।”

ऐसा कहनेपर निगंठ नात-पुत्रने उपालि-गृहपतिसे कहा—

“उन्मत्त होगया है गृहपति ! जब होगया है गृहपति ! तू—“भन्ते ! जाता हूँ अमण-गौतमके साथ वाद् रोपूंगा”—( कहकर ) जानेके बाद वही भारी वादके संघाट ( = जाल ) में बँधकर लौटा है । जैसे कि अंड ( = अंडकोश )-द्वारक निकाले अंडोंके साथ आवे, जैसे कि अक्षि ( = अक्ष )-द्वारक पुरुष निकाले अँखोंके साथ आवे, वैसेही गृहपति ! तू—“भन्ते ! जाता हूँ, अमण गौतमके साथ वाद् रोपूंगा” ( कहकर ) जा, वही भारी वाद्-संघाटमें बँधकर लौटा है । गृहपति ! अमण गौतमने आवर्तनी-भाषासे सेरी ( मत ) फेरली है ।”

“सुन्दर है, भन्ते ! आवर्तनी भाषा । कल्याणी है भन्ते ! आवर्तनी भाषा । ( यदि ) मेरे

प्रिय जातिभाई भी इस आवर्तनी-भाषा द्वारा फेर लिये जाँवे, ( तो ) मेरे प्रिय जाति-भाइयोंका दीर्घ-कालतक हित-सुख होगा । यदि मन्ते ! सभी क्षत्रिय इस आवर्तनी-भाषासे फेर लिये जावें, तो सभी क्षत्रियोंका दीर्घ-कालतक हित-सुख होगा । यदि सभी ब्राह्मण ० । यदि सभी वैश्य ० । यदि सभी शूद्र ० । यदि देव-मार-मद्य-सहित सारा लोक, भ्रमण-ब्राह्मण-देव-मनुष्य-सहित सारी प्रजा ( = जनता ) इस आवर्तनी भाषासे फेर लीजाय, तो... ( उसका ) दीर्घकालतक हित-सुख होगा । मन्ते ! आपको उपमा कहता हूँ, उपमासे भी कोई कोई बिल पुरुष भाषणका अर्थ समझ जाते हैं—

“पूर्वकालमें मन्ते ! किसी जीर्ण = बूढ़े = महलक ब्राह्मणकी एक नव-वयस्का ( = दूहर ) माणविका ( = तरुण ब्राह्मणी ) भायाँ गर्भिणी आलस्य-प्रसवा हुई । तब मन्ते ! उस माणविकाने ब्राह्मणसे कहा—ब्राह्मण ! जा बाजारसे एक बानरका बच्चा ( खिलौना ) खरीद ला, वह मेरे कुमार ( = बच्चे )का खेल होगा ।”

“ऐसा बोलनेपर, मन्ते ! उस ब्राह्मणने उस माणविकासे कहा—भवती ( = आप ) ! दहरिये, यदि आप कुमार जनंगी, तो उसके लिये मैं बाजारसे मर्कट-शावक ( खिलौना ) खरीद कर लाऊँगा, जो आपके कुमारका खेल होगा । दूसरी बार भी मन्ते ! उस माणविकाने ० । तीसरी बार भी ० । तब मन्ते ! उस माणविकामें अति-अनुरक्त = प्रतिबद्ध-चित्त उस ब्राह्मणने बाजारसे मर्कट-शावक खरीदकर, लाकर, उस माणविकासे कहा—‘भवती ! बाजारसे यह तुम्हारा मर्कट-शावक खरीदकर लाया हूँ, वह तुम्हारे कुमारका खिलौना होगा ।’ ऐसा कहनेपर मन्ते ! माणविकाने उस ब्राह्मणसे कहा—‘ब्राह्मण ! इस मर्कट, शावकको लेकर, वहाँ जाओ जहाँ रक्त-पाणि रजक-पुत्र ( = रंगरेजका बेटा ) है । जाकर रक्त-पाणि रजक-पुत्रसे कहो—‘सौम्य ! पाणि ! मैं इस मर्कट-शावकको पीतावलेपन रंगसे रंगा मला, दोनों ओर पातिषा किया हुआ रहता हूँ ।’ तब मन्ते ! उस माणविकामें अति-अनुरक्त = प्रतिबद्ध-चित्त वह ब्राह्मण उस मर्कट-शावकको लेकर जहाँ रक्त-पाणि रजक-पुत्र था, वहाँ गया, जाकर रक्त-पाणि रजक-पुत्रसे बोला—‘सौम्य ! रक्तपाणि ! इस ०’ । ऐसा बोलनेपर रक्त-पाणि रजक-पुत्रने उस ब्राह्मणसे कहा—‘मन्ते ! यह तुम्हारा मर्कट-शावक न रंगने योग्य है, न मलने योग्य है, न मजिने योग्य है ।’ इसी प्रकार मन्ते ! बाल ( = अज्ञ ) निर्गठोंका वाद् ( सिद्धान्त ), बालों ( = अज्ञों )को रंजन करने लायक है, पंडितको नहीं । ( यह ) न परीक्षा ( = अनुयोग )के योग्य है, न भीमांसाके योग्य है । तब मन्ते ! वह ब्राह्मण दूसरे समय नवा पुस्तिका जोड़ा ले, जहाँ रक्त-पाणि रजकपुत्र था, वहाँ गया । जाकर रक्त-पाणि रजक-पुत्रसे बोला—‘सौम्य ! रक्त-पाणि ! पुस्तिका जोड़ा पीतावलेपन ( = पीछे ) रंगसे रंगा, मला, दोनों ओरसे मजिजा ( = पातिषा किया ) हुआ चाहता हूँ ।’ ऐसा कहनेपर मन्ते ! रक्त-पाणि रजक-पुत्रने उस ब्राह्मणसे कहा—‘मन्ते ! यह तुम्हारा पुस्तिका-जोड़ा रंगने योग्य है, मलने योग्य भी है, मजिने योग्य भी है ।’ इसी तरह मन्ते ! उस भगवान् भव्त् सन्धक् संतुद्धका वाद्, पंडितोंको रंजन करने योग्य है, बालों ( = अज्ञों )को नहीं । ( यह ) परीक्षा और भीमांसाके योग्य है ।”

“गृहपति ! राजा-सहित सारी परिषद् जानती है, कि उपाधि गृह-पति निर्गठ नाटपुस्तका शावक है । ( अथ ) गृहपति ! तुम्हें किसका आश्रय लमझें । ऐसा कहनेपर उपाधि गृहपति आसनसे उठकर, ( दाहिने कंधेको गंगाकर ) उत्तरायण ( = चर )को, एक कंधेपर कर, जितपर भगवान् ये उभर हाथ जोड़, निर्गठ नाट-पुस्तसे बोला—‘मन्ते ! सुनो मैं किसका आश्रय हूँ ?—



धीर-विगत-भोह-बन्धित-कील-विजित-विजय,  
निर्दुःख-सु-गम-विज-बुद्ध-शील-सुन्दर-प्रज्ञ,  
विभक्त-सारक, विमल—उस भगवान्‌का मैं आवक हूँ ॥ १ ॥

अकर्म-कथी, संतुष्ट, लोक-भोगको चमन करनेवाले, सुदित,  
अमण-हुये-मनुज अतिम-शरीर-नर,

अनुपम, विरज—उस भगवान्‌का मैं आवक हूँ ॥ २ ॥

संशय-रहित, कुशल, विनय-युक्त-धनानेवाले, श्रेष्ठ-सारथी,

अनुत्तर (= सर्वोत्तम), रुचिर-धर्म-वान्, निराकांक्षी, प्रभाकर,

मान-छेदक, वीर—उस भगवान्‌का मैं आवक हूँ ॥ ३ ॥

उत्तम (= निरुपम) अ-प्रमेय, गम्भीर, सुनिश्च-प्राप्त,

क्षेमकर, शान्ति, धर्माय-वान्, संयत-आत्मा,

संग-रहित, सुख—उस भगवान्‌का मैं आवक हूँ ॥ ४ ॥

नाम, एकांत-आसन-वान्, संयोजन (= धन्य) -रहित, सुख,

प्रति-भंगक (= वाद-रक्ष), धीर, प्राप्त-ध्वज, धीर-राग,

दान्त, निष्प्रपञ्च, उस भगवान्‌का मैं आवक हूँ ॥ ५ ॥

कृषि-रत्नम, अ-पाखंडी, त्रि-विद्या-युक्त, ब्रह्म (= निर्वाण) -प्राप्त,

स्वातक, पदक (= कवि), प्रअध्य, विदित-वेद,

पुरन्दर, शक—उस भगवान्‌का मैं आवक हूँ ॥ ६ ॥

आर्य, भावितात्मा, प्राप्त-प्राप्त-वैयाकरण,

स्मृतिमान्, विपश्यी, अन-अभिमानी, अनु-अवनत,

अ-चंचल, वशी—उस भगवान्‌का मैं आवक हूँ ॥ ७ ॥

सम्यग्-गत, ध्यानी, अ-लज्ज-विज ( = अनु-अनुगत-अन्तर ), सुख ।

अ-सित (= सुख), अ-प्रहीण, प्रविवेक-प्राप्त, ब्रह्म-प्राप्त,

तीर्थ, सारक—उस भगवान्‌का मैं आवक हूँ ॥ ८ ॥

शान्त, गुरि (= गुरु) -प्रज्ञ, महा-प्रज्ञ विगत-लोभ,

सधागत, सुगत, अ-प्रति-सुदुर्गल (= अ-सुलभीष) = अ-सम,

विशारद, निपुण—उस भगवान्‌का मैं आवक हूँ ॥ ९ ॥

कृष्ण-रहित, सुद, धूम-रहित, अ-लित,

पूजनीय = ब्रह्म, उत्तम-पुद्गल, अनुल,

महान् उत्तम-यश-प्राप्त—उस भगवान्‌का मैं आवक हूँ ॥ १० ॥

“मृदुपति ! अमण गौतमके ( यह ) गुण तुझे कब ( से ) सुझे ?”

“भन्ते ! जैसे नामा पुष्पोंकी एक पुष्प-राशि ( ले ) एक चतुर माली या मालीका भन्ते-

वासी विचित्र माला गूँथे; उसी प्रकार, भन्ते ! वह भगवान् अनेक वर्ण ( = गुण ) वाले अनेक  
जात वर्णवाले हैं । भन्ते ! प्रशंसनीयकी प्रशंसा कौन न करेगा ?”

निर्गठ नात-पुत्तने भगवान्‌के सत्कारको न सहकर, वहीं सुँहसे गर्भ छोड़ फेंक दिया ।

## ५७-कुक्कुर-वतिक-मुत्तन्त (२।१।७)

क्या मैंने सुना—

एक समय भगवान् कोलि ( देश ) में कोलियोंके हलिहचसन (= हलिहचसन ) नामक निगममें विहार (= निवास ) करते थे ।

तब गोवतिक (= गायकी भाँति आने पीनेका व्रत रखने वाला ) कोलिय-पुत्त पूर्ण और कुक्कुर-वतिक अचेल (= नंगा ) सेनिय (= श्रेणिक ) जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर गोवतिक कोलियपुत्त पूर्ण, भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया । कुक्कुर-वतिक अचेल सेनिय भगवान्के साथ सम्मोदन (= कुशल-संगल पूछ )कर कुक्कुरकी भाँति गेंदुरी मार, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे ० पूर्णने भगवान्से यह कहा—

“भन्ते ! यह कुक्कुर-वतिक अचेल सेनिय क्या मुश्किल करनेवाला (= दुष्कर-कारक ) है, भिमें रखे ( भोजन )को खाता है । इसने इस कुक्कुर-वतिको दीर्घकालसे निरन्तर ले रक्खा है ।  
उसकी क्या गति = क्या अभिसम्पराय (= जन्मांतर फल ) ( होगा ) ?”

“बस, रहने दे, पूर्ण ! मत मुझसे यह पूछ ।”

दूसरी बारभी ० पूर्णने भगवान्से यह कहा—“भन्ते ! ०” ।

तीसरी बारभी ० पूर्णने भगवान्से यह कहा—“भन्ते ! ०” ।

“पूर्ण ! मैं तुझे नहीं ( स्वीकार करा ) पाता—‘बस, रहने दे, पूर्ण ! मत मुझसे यह पूछ’ । अच्छा, तो मैं तुझसे कहता हूँ । ( जब ) कोई पूर्ण ! परिपूर्ण अर्थात् कुक्कुर-वतिकी भावना (= अम्बास ) करता है, परिपूर्ण अर्थात् कुक्कुर-शीलकी भावना करता है, ० कुक्कुर-चित्तकी भावना करता है, ० कुक्कुर-आकल्प (= ० तीर-तरीका )की भावना करता है; वह परिपूर्ण अर्थात् कुक्कुर-व्रत की भावना करके, ० कुक्कुर-शील ०, ० कुक्कुर-चित्त ०, ० कुक्कुर-आकल्पकी भावना करके काया छोड़ मरनेके बाद कुक्कुरोंको योनिमें उत्पन्न होता है । यदि पूर्ण ! उसकी ऐसी दृष्टि हो—‘मैं इस ( कुक्कुरके ) शील, व्रत, तप, ब्रह्मचर्यसे देवोंमेंसे कोई देवता होऊँगा, तो वह उसकी मिथ्या-दृष्टि (= झूठी धारणा ) है । पूर्ण ! मिथ्या-दृष्टि ( पुरुष )की मैं दो गतियोंमेंसे एक ही गति कहता हूँ—नरक या तिर्यक्- (= पशु )-योनि । इस प्रकार पूर्ण ! कुक्कुर-व्रतका करना कुक्कुरकी योनिमें ले जाता है, ( या ) विद्यमान नरकको ।”

ऐसा कहनेपर कुक्कुरवतिक अचेल सेनिय रो पड़ा, आँसू बहाने लगा ।

तब भगवान्ने ० पूर्णसे यह कहा—“पूर्ण ! मैं तुझसे नहीं ( स्वीकार ) करा पाया—‘बस, रहने दे ०’ ।”

( सेनिय बोला— ) “भन्ते ! भगवान्के मुझे ऐसा कहनेके ब्यालसे मैं नहीं रो रहा हूँ । लेकिन भन्ते ! मैंने इस कुक्कुरव्रतको दीर्घकालसे ले रक्खा है । यह भन्ते ! ० पूर्णने भी गोवत



दीर्घकालसे...ले रक्खा है। उसकी क्या गति है = क्या अभिसम्प्राय है ?”

“बस, रहने दे सेनिय ! मत तुझसे यह पूछ ।”

दूसरी बार भी ० । तीसरी बार भी ० ।

“सेनिय ! मैं तुझसे नहीं ( स्वीकार ) करा पाया—‘बस ०’ । अच्छा तो मैं तुझसे कहता हूँ । ( जो ) कोई सेनिय ! परिपूर्ण अ-खंड गोमयकी भावना करता है, ० गो-शील ०, ० गो-चित्त ०, ० गो-आकल्प ० ; ०, ( वह ) काया छोड़ अस्तेके बाद मौकी योनिमें उत्पन्न होता है । यदि सेनिय ! उसकी ऐसी दृष्टि हो— ० विश्रामान नरकको ।”

ऐसा कहने पर गोमयिक कॉलियपुत्र पूर्ण रो पड़ा, आँसू बहाने लगा ।

तब भगवान्ने ०सेनियसे यह कहा—“सेनिय ! मैं तुझसे नहीं ( स्वीकार ) करा पाया—‘बस रहने दे ०’ ।”

( पूर्ण बोला— ) “भन्ते ! भगवान्के मुखे ऐसा कहनेके मयालसे मैं नहीं रो रहा हूँ । लेकिन भन्ते ! मैंने इस श्रावको दीर्घकालसे...ले रक्खा है । भन्ते ! भगवान् पर मैं इतना श्रद्धावान् ( = प्रसन्न ) हूँ; भगवान् ऐसा धर्म-उपदेश करें, जिसमें मैं इस गोमयको छोड़ दूँ, और यह सेनिय कुकुर-मत्तको छोड़ दे ।”

“तो पूर्ण ! सुनो ! अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा, भन्ते !”—( कह ) ० पूर्णने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“पूर्ण ! मैंने इन चार कर्मोंको स्वयं जानकर, साक्षात्कारकर अनुभव किया है । कौनसे चार ?—( १ ) पूर्ण ! कोई कर्म होता है कृष्ण ( = घुरा ) और कृष्ण-विष ( = घुरे परिणामवाला ) ; ( २ ) पूर्ण ! कोई कर्म होता है, शुद्ध ( = अच्छा ), और शुद्ध-विष ( ३ ) ० कृष्ण-शुद्ध ० ; ( ४ ) ० अकृष्ण-अशुद्ध, अकृष्ण-अशुद्ध-विषाक ( जो कि ) कर्मके लिये ( उपयोगी ) होता है ।

“क्या है । पूर्ण ! कृष्ण, कृष्ण-विषाक कर्म ?—यहाँ, पूर्ण ! कोई ( पुरुष ) व्यापाद ( = पीना ) युक्त काय-संस्कार ( = कायिक क्रिया ) करता, व्यापाद-युक्त वचन-संस्कार ०, व्यापाद-युक्त मन-संस्कार करता है, वह व्यापाद-युक्त काय-संस्कारको करके, ० वचन-संस्कार ०, ० मन-संस्कारको करके, व्यापाद-युक्त लोकमें उत्पन्न होता है । व्यापाद-युक्त लोकमें उत्पन्न हुये वसे व्यापाद-युक्त स्पर्श ( = कर्म-विषाक ) आ लगते हैं । वह व्यापाद-युक्त स्पर्शोंके लगनेसे व्यापाद ( = पीना )-युक्त केवल दुःखमय वेदनाको अनुभव करता है, जैसे कि नरकके प्राणी । इस प्रकार पूर्ण ! भूत ( = यथाभूत=जैसे ) से भूत ( = तथाभूत=जैसे )को उत्पत्ति होती है; जैसा करता है, उसके साथ उत्पन्न होता है । उत्पन्न हुयेको स्पर्श आ लगते हैं । इसलियेभी पूर्ण मैं कहता हूँ—‘प्राणी (अपने) कर्माके दायाद ( = वारिस ) हैं ।’ पूर्ण ! वह कृष्ण कृष्ण-विषाक कर्म कहा जाता है ।

“क्या है पूर्ण ! शुद्ध, शुद्ध-विषाक कर्म ?—यहाँ, पूर्ण ! कोई ( पुरुष ) व्यापाद-रहित काय-संस्कार ०<sup>१</sup> व्यापाद-रहित लोकमें उत्पन्न हुये उसे व्यापाद-रहित स्पर्श मिलते हैं । वह व्यापाद-रहित स्पर्शोंके लगनेसे व्यापाद-रहित केवल सुखमय वेदनाको अनुभव करता है, जैसे कि शुभमृत्कृन्म देवता । इस प्रकार पूर्ण ! भूतसे भूतको उत्पत्ति होती है । ( प्राणी ) जैसा करता है, उसके साथ उत्पन्न होता है । उत्पन्न हुयेको स्पर्श ( = भोग ) आ लगते हैं । इसीलिये पूर्ण ! मैं कहता हूँ—‘प्राणी कर्मोंके दायाद हैं’ । पूर्ण ! यह शुद्ध, शुद्ध-विषाक कर्म कहा जाता है ।

<sup>१</sup> कपर जैसा, किन्तु निषेधके साथ ।

“क्या है पूर्ण, कृष्ण-शुद्ध कृष्ण-शुद्ध-विपाक कर्म ?—यहाँ पूर्ण ! कोई ( पुरुष ) व्यापाद-युक्त भी, अव्यापाद-युक्त भी काय-संस्कार ०” वह व्यापाद-रहित और अव्यापाद-रहित रूपशौंके लगनेसे व्यापाद-रहित, व्यापाद-रहित सुख-दुःख-मिश्रित वेदनाको अनुभव करता है, जैसे कि मनुष्य, कोई कोई देवता, और कोई कोई त्रिनिपातिक (= नीच धोनि के प्राणी) । इस प्रकार पूर्ण ! भूतसे भूत ० । पूर्ण ! यह कृष्ण-शुद्ध ० ।

“क्या है, पूर्ण ! अकृष्ण-अशुद्ध अकृष्ण-अशुद्ध-विपाक कर्म ( जो कि ) कर्म-क्षय के लिये उपयोगी होता है ?—यहाँ पूर्ण ! कृष्ण-विपाक कृष्ण कर्म के क्षय के लिये ( उपयोगी ) जो चेतना (= आत्मस कर्म ) है, ० शुद्ध कर्म ० के क्षय के लिये जो चेतना है, ० कृष्ण-शुद्ध कर्म ० के क्षय के लिये जो चेतना है । पूर्ण यह ० अकृष्ण-अशुद्ध कर्म कहा जाता है । पूर्ण ! मैंने इन चार कर्मोंको स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर अनुभव किया है ।”

ऐसा कहनेपर ० पूर्णने भगवान्से यह कहा—“आश्चर्य ! भन्ते ! अद्भुत !! भन्ते ! जैसे औंधोको सीधा कर दे । ०” यह मैं भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और मिथु-संघकी भी । आजसे भगवान् मुझे अजलिबद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें ।”

और कुङ्कुम-वर्तिक लखेल सेनियने भगवान्से यह कहा—“आश्चर्य ! भन्ते ! अद्भुत !! भन्ते ! जैसे औंधोको सीधा कर दे ०” यह मैं भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और मिथु-संघकी भी । भन्ते ! मैं भगवान्के पास प्रव्रज्या (= संन्यास ) पाऊँ, उपसंपदा (= मिथु दीक्षा ) पाऊँ ।”

“सेनिय ! जो कोई भूत-पूर्व अन्यतीर्थिक (= दूसरे पंथका व्यक्ति ) इस (= बुद्धके ) धर्म-विनय (= धर्म )में प्रव्रज्या उपसंपदा चाहता है, वह चार भासतक परिचास (= परीक्षार्थ पास ) करता है; फिर पसन्द होनेपर उसे मिथु, प्रव्रजित करते हैं, मिथु-भाव के लिये उपसम्पादित करते हैं; किन्तु यहाँ मुझे व्यक्ति व्यक्तिमें मित्र मत भी विदित है ।”

“अदि, भन्ते ! भूतपूर्व अन्य-तीर्थिक, इस धर्म-विनयमें प्रव्रज्या उपसंपदाकी इच्छा करने पर चार भास परिचास करते हैं, फिर पसन्द होनेपर ०; तो मैं चार वर्ष परिचास कहूँगा । चार वर्षोंके बाद पसन्द होनेपर मिथु मुझे प्रव्रजित करें, ० उपसम्पादित करें ।”

० सेनियने भगवान्के पास प्रव्रज्या पाई, उपसम्पदा पाई । आबुष्मान् सेनिय उपसम्पदा पावेके थोड़े ही समय बाद; एकाकी, एकान्तवासी, प्रमाद-रहित, उद्योगी ( और ) आत्म-संयमी हो, विहरते; जल्दी ही, जिसके लिये कुल-पुत्र अच्छी तरह घरसे धेवर हो प्रव्रजित होते हैं, उस सन्तुष्टम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें जान कर = साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगे—“जन्म शीघ्र होगया, ब्रह्मचर्य-वास ( पूरा ) होगया, करना या सो कर लिया, और कुल वहाँ करनेको नहीं रहा—यह जान गये । आबुष्मान् सेनिय अर्हत्तोंमेंसे एक हुये ।

\* कपर जैसा, व्यापाद अव्यापाद दोनों, तथा कृष्ण, शुद्ध दोनों लगाकर । \* देखो पृष्ठ १३ ।



## ५८—अभयराजकुमार-सुचन्त (२।१।८)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् राजगृहमें वैष्णवन कलन्दर-निवापमें विहार करते थे।

तब अभय-राजकुमार जहाँ निर्गन्ध नात-पुत्त थे, वहाँ गया। जाकर निर्गन्ध नात-पुत्तको अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे अभय-राजकुमारने निर्गन्ध नात-पुत्तसे कहा—

“भा, राजकुमार ! अमण गौतमके साथ वाद (= वात्सार्थ) कर। इससे तेरा सुयश (= कल्याणकीतिशब्द) फैलेगा—‘अभय राजकुमारने इतने महर्दिक = इतने महानुभाव अमण गौतमके साथ वाद रोपा’।”

“किस प्रकारसे भन्ते ! मैं इतने महानुभाव अमण गौतमके साथ वाद रोपूँगा ?”

“भा नू राजकुमार ! जहाँ अमण गौतम है, वहाँ जा। जाकर अमण गौतमसे ऐसा कह— ‘क्यों भन्ते ! तयागत ऐसा वचन बोल सकते हैं, जो दूसरोंको अभिप्रय = अभिनाय हो’। यदि ऐसा पूछनेपर अमण गौतम तुझे कहे—‘राजकुमार ! बोल सकते हैं ०’। तब उसे तুম यह बोलना—‘तो फिर भन्ते ! पृथग्जन (= अज्ञ संसारी जीव) से ( तयागतका ) क्या भेद हुआ, पृथग्जन भी वैसा वचन बोल सकता है ०’। यदि ऐसा पूछनेपर तुझे अमण गौतम कहे—‘राजकुमार ! ० नहीं बोल सकते हैं’। तब तুম उसे बोलना—‘तो भन्ते ! आपने देवदत्तके लिये भविष्यवाणी क्यों की है—‘देवदत्त अपायिक (= दुर्गतिमें जानेवाला) है, देवदत्त नैरयिक (= नरकगामी) है, देवदत्त कल्पस्थ (= कल्पभर नरकमें रहनेवाला) है, देवदत्त अचिकित्स्य (= लाइलाज) है’। आपके इस वचनसे देवदत्त कुपित = व्यंतुष्ट हुआ।’ राजकुमार ! ( इस प्रकार ) दोनों ओरके प्रश्न पूछनेपर अमण गौतम न उगल सकेगा, न निगल सकेगा। जैसेकि पुरुषके कंठमें लोहेकी बंसी (= शंखाटक) लगी हो, वह न निगल सके न उगल सके, ऐसे ही ०।”

“अच्छा भन्ते !” कह—अभय राजकुमार—“आसनसे उठ, निर्गन्ध नात-पुत्तको अभिवादन कर, दक्षिणाकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये अभय राजकुमारने सूर्य (= समय) देखकर सोचा—‘आत भगवान्से वाद रोपनेका समय नहीं है। कल अपने घरपर भगवान्के साथ वाद करूँगा।’ ( और ) भगवान्से कहा—

“भन्ते ! भगवान् अपने सहित चार आदिभियोंका कलको मेरा भोजन स्वीकार करें।”

भगवान्ने भीमसे स्वीकार किया। तब अभय राजकुमार भगवान्की स्वीकृति जान, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया।

उस रातके धीतनेपर भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्रचीवर ले, जहाँ अभय राजकुमार का घर था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। अभय राजकुमारने भगवान्को उन्नम साथ

भोज्यसे अपने हाथसे दूध किया, पूर्ण किया। तब अमर राजकुमार, भगवान्‌के भोजनकर, पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक नीचा आसम ले, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, अमर राजकुमार ने भगवान्‌से कहा—

“क्या भन्ते ! तद्वागत ऐसा वचन बोल सकते हैं, जो दूसरेको अ-प्रिय = अ-मनाप हो।”

“राजकुमार ! यह एकांशसे ( = सर्वथा = बिना अपवादके ) नहीं ( कहा जा सकता )।”

“भन्ते ! नाश होगये निर्गठ।”

“राजकुमार ! क्या तू ऐसे बोल रहा है—‘भन्ते ! नाश हो गये निर्गठ ?’

“भन्ते ! मैं जहाँ निर्गठ नाश-पुष्ट है, वहाँ गया था। जाकर निर्गठ नाश-पुष्टको अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मुझे निर्गठ नाश-पुष्टने कहा—‘जा राजकुमार ! ०’ ०। इसी प्रकार राजकुमार ! दुधारा प्रश्न पूछनेपर श्रमण गौतम न उगल सकेगा, न निगल सकेगा।”

उस समय अमर राजकुमारकी गोदमें, एक छोटा मन्द, उत्तान सोने कायक ( = बहुतही छोटा ) बच्चा, बैठा था। तब भगवान्‌ने अमर राजकुमारसे कहा—

“तो क्या मानता है राजकुमार ! क्या तेरे या दादूके प्रमाद ( = राफलत )से यदि यह कुमार मुखमें काठ या वेला डाल ले, तो तू इसको क्या करेगा ?”

“निकाल लूँगा, भन्ते ! यदि भन्ते ! मैं पहिलेही न निकाल सका, तो बायें हाथसे सीस पकड़कर, दाहिने हाथसे लँगुली डोकर, खून-सहित भी निकाल लूँगा।”

“सो किस लिये ?”

“भन्ते ! मुझे कुमार ( = बच्चे ) पर दया है।”

“ऐसेही, राजकुमार ! ( १ ) तद्वागत जिस वचनको अनृत = अ-तथ्य, अन्-अर्थ-युक्त ( = व्यर्थ ) जानते हैं, और वह दूसरोको अ-प्रिय, अ-मनाप है, उस वचनको तद्वागत नहीं बोलते। ( २ ) तद्वागत जिस वचनको भूत = तथ्य अनर्थक जानते हैं, और वह दूसरोको अ-प्रिय = अ-मनाप है, उस वचनको तद्वागत नहीं बोलते। ( ३ ) तद्वागत जिस वचनको भूत = तथ्य सार्वक जानते हैं। कालज ( = काल जाननेपर ) तद्वागत उस वचनको बोलते हैं। ( ४ ) तद्वागत जिस वचनको अनृत = अतथ्य तथा अनर्थक जानते हैं, और वह दूसरोको प्रिय और मनाप है, उस वचनको भी तद्वागत नहीं बोलते। ( ५ ) जिस वचनको तद्वागत भूत = तथ्य ( = सच ) = सार्वक जानते हैं, और वह यदि दूसरोको प्रिय = मनाप होती है, कालज तद्वागत उस वचनको बोलते हैं। सो किसलिये ?—राजकुमार ! तद्वागतको प्राणियोंपर दया है।”

“भन्ते ! जो यह अविष-यक्षित, ब्राह्मण-यक्षित, गृहपति-यक्षित, श्रमण-यक्षित, प्रश्न तैयार-कर तद्वागतके पास आकर पूछते हैं। भन्ते ! क्या भगवान् पहिलेहीसे चिन्तमें सोचे रहते हैं—‘जो मुझे ऐसा आकर पूछेंगे, उनके ऐसा पूछनेपर, मैं ऐसा उत्तर दूँगा ?’

“तो राजकुमार ! तुझेही यहाँ पूछता हूँ, जैसे तुझे जैचे, वैसे इसका उत्तर देना। तो... राजकुमार ! क्या तू रथके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें चतुर है ?”

“हाँ, भन्ते ! मैं रथके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें चतुर हूँ।”

“तो राजकुमार ! जो तेरे पास आकर यह पूछें—‘यह रथका कौनसा अङ्ग-प्रत्यङ्ग है ?’ तो क्या तू पहिलेही से यह सोचे रहता है—जो मुझे आकर ऐसा पूछेंगे, उनके ऐसा पूछनेपर, मैं



ऐसा उत्तर देगा । अथवा सुकामहीपर यह तुझे भासित होता है ?”

“मन्ते ! मैं रथिक हूँ, रथके अंग-प्रत्यंगका मैं प्रसिद्ध ( जानकार ), चतुर हूँ । रथके सभी अङ्ग-प्रत्यंग मुझे सुविदित हैं । ( अतः ) उसी क्षण ( = स्थानवाः ) मुझे यह भासित होगा ।”

“ऐसे ही राजकुमार ! जो वह क्षत्रिय-वंदित, ० अस्मण-वंदित प्रदत्त तय्यार कर, तद्यागतके पास जाकर गड़ते हैं । उसी क्षण वह तद्यागतको भासित होता है । सो किस हेतु ?—राजकुमार ! तद्यागतकी धर्मधातु ( = मनका विषय ) अच्छी तरह स्थग गई है ; जिस धर्म-धातुके अच्छी तरह सधी होनेसे, उसी क्षण ( वह ) तद्यागतको भासित होता है ।”

ऐसा कहनेपर जमव राजकुमारने भगवान्से कहा—

“आश्चर्य ! मन्ते !! अद्भुत ! मन्ते !! ०” आत्मे भगवान् मुझे अंजलि-वद्ध शरणागत उपासक धारण करें ।”

## ५६-बहु-वेदनीय-सुचन्त (२।१।६)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिटिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब पंचकांग (= पंचकांग) स्वपति (= स्वपति = भवई) जहाँ आयुष्मान् उदायी थे, वहाँ गया; जाकर आयुष्मान् उदायीको अभिवादन कर एक ओर बैठ गया ! एक ओर बैठे पंचकांग स्वपतिने आयुष्मान् उदायीसे यह कहा—

“भन्ते उदायी ! भगवान्ने कितनी वेदनायें (= अनुभव ), कही हैं ?”

“स्वपति ! भगवान्ने तीन वेदनायें कही हैं—( १ ) सुखा वेदना ( २ ) दुःखा वेदना, ( ३ ) अदुःख-असुखा वेदना ।...”

“भन्ते उदायी ! भगवान्ने तीन वेदनायें नहीं कहीं, दो वेदनायें भगवान्ने कही हैं—सुखा वेदना और दुःखा वेदना । भन्ते ! जो यह अदुःख-असुखा वेदना है उसे भगवान्ने शान्त उत्तम सुखके विषयमें कहा है ।”

दूसरी बार भी आयुष्मान् उदायीने पंचकांग स्वपतिसे यह कहा—“स्वपति ! भगवान्ने दो वेदनायें नहीं कही हैं । भगवान्ने तीन वेदनायें कही हैं—० ।”

दूसरी बार भी पंचकांग स्वपतिने आयुष्मान् उदायीसे यह कहा—“नहीं” भन्ते उदायी ! ० शान्त उत्तम सुखके विषयमें कहा है ।”

तीसरी बार भी आयुष्मान् उदायीने ० ।

तीसरी बार भी पंचकांग स्वपतिने ० ।

तब आयुष्मान् उदायी पंचकांग स्वपतिको समझा सके, तब पंचकांग स्वपति आयुष्मान् उदायीको समझा सका ।

आयुष्मान् आनन्दने आयुष्मान् उदायीके पंचकांग स्वपतिके साथ ( होते ) इस कथा संलापको सुन लिया । तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ आयुष्मान् आनन्दने जो कुछ आयुष्मान् उदायीका पंचकांग स्वपतिके साथ कथा-संलाप हुआ था, सब भगवान्से कह दिया । ऐसा कहने पर भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—

“आनन्द ! पंचकांग स्वपतिने उदायीका कथन (= पर्याय ) ठीक होते ( उसे ) अनुमोदित नहीं किया । आनन्द ! उदायीने पंचकांग स्वपतिका कथन ठीक होते ( उसे ) अनुमोदित नहीं किया । आनन्द ! पर्याय (= मतलब )से मैंने दो वेदनायें भी कही हैं, पर्यायसे मैंने तीन वेदनायें भी कही हैं, ० पर्याय वेदनायें ०, ० अठारह वेदनायें ०, ० एक सौ, आठ वेदनायें भी ० । इस प्रकार आनन्द ! पर्यायसे मैंने धर्मको उपदेशा है । इस प्रकार पर्यायने उपदेश धर्ममें जो एक दूसरेके



सुभाषित = सु-श्रुपितको भी स्वीकार करते, नहीं मानते, वहीं अनुमोदन करते, उनके लिये यही आशा करनी होगी, कि वह भंडन = कलह, विवाद करनेवाले हो एक दूसरेको सुख (रूपी) शक्ति (= इशियार) से बेधते फिरेंगे। आनन्द ! इस प्रकार पर्यायसे उपदेश धर्ममें जो एक दूसरेके सुभाषित = सु-श्रुपितको स्वीकारते, मानते, अनुमोदन करते हैं, उनके लिये यही आशा करनी होगी, कि वह एक हो सम्मोदन (= खुशी) करते, विवाद-रहित हो, द्वेष-जल हो, एक दूसरेको प्रिय नेत्रोंसे देखते विहरेंगे।

“आनन्द ! यह पाँच काम-गुण (= भोग) हैं। कौनसे पाँच ?—इष्ट-कांत भनाप-प्रिय स्वरूप, भोग-युक्त रंजनीय पशुसे विज्ञेय (= ज्ञेय) रूप, ० ओषसे विज्ञेय शब्द, ० प्राण-विज्ञेय गंध, ० जिह्वा-विज्ञेय रस, ० काव-विज्ञेय स्पर्शश्च । आनन्द ! यह पाँच काम-गुण हैं। आनन्द ! इन पाँच कामगुणोंके आश्रयसे जो सुख-सौमनस्य उत्पन्न होता है, उसे काम-सुख कहा जाता है।

“आनन्द ! यदि कोई यह कहे—प्राणी इतना तक ही सुख-सौमनस्यका अनुभव करते हैं, तो उसके इस कथनको मैं अनुमोदित नहीं करता। सो किस हेतु ?—आनन्द ! इस सुखसे अधिक अच्छा-प्रणीततर दूसरा सुख है। आनन्द ! कौन सुख इस सुखसे अधिक अच्छा-प्रणीततर है ?—यहाँ आनन्द ! मिथु ०<sup>१</sup> प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। यह आनन्द ! उस सुखसे ० प्रणीततर दूसरा सुख है।

“आनन्द ! यदि कोई यह कहे ० मैं अनुमोदित नहीं करता। ० । ०<sup>१</sup> द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ०

“आनन्द ! यदि कोई यह कहे ०, मैं अनुमोदित नहीं करता। ० । ०<sup>१</sup> तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ०

“आनन्द ! यदि कोई यह कहे ०, मैं अनुमोदित नहीं करता। ० । ०<sup>१</sup> चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ०

“० । ० । ०<sup>१</sup> आकाशानन्त्यायतनको प्राप्त हो विहरता है। ०

“० । ० । ०<sup>१</sup> विज्ञानानन्त्यायतनको प्राप्त हो विहरता है। ०

“० । ० । ०<sup>१</sup> आकित्वन्यायतनको प्राप्त हो विहरता है। ०

“० । ० । ०<sup>१</sup> नैव-संज्ञा-नासंज्ञायतनको प्राप्त हो विहरता है। ०

“० । ० । यहाँ आनन्द ! मिथु नैव-संज्ञा-नासंज्ञायतनको सर्वथा अतिव्रमण कर संज्ञा-वेदित-निरोधको प्राप्त हो विहरता है। यह आनन्द ! उस सुखसे ० प्रणीततर दूसरा सुख है।

“हो सकता है आनन्द ! अन्य-तीर्थिक (= पंथाई) परित्राजक यह कहें—धर्मण गीतम संज्ञा-वेदित-निरोधको कहता, और उसे सुखमय बतलाता है। सो वह क्या है, सो वह कैसा है ? ऐसा कहनेवाले अन्य-तीर्थिक परित्राजकोंसे ऐसा कहना चाहिये—‘आवुसो ! भगवान् सुखा वेदनाहीका खाल करके ( उसे ) सुखमें नहीं बतलाते, पत्कि जहाँ जहाँ सुख उपलब्ध होता है, उस उसको ही तथ्यागत सुखमें बतलाते हैं।’

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो आदुष्मान् आनन्दने भगवान्के भाषणको अभिनंदित किया।

## ६०-अपणणक-सुत्तन्त (२।१।१०)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् महान् मित्रु-संघके साथ कोसल ( देश )में चारिका ( = विचरण ) करते, वहाँ शाला ( = साला ) नामके कोसलोंका ब्राह्मण-ग्राम था, वहाँ पहुँचे।

शालाके ब्राह्मण-गृहपतियोंने सुना—शाक्य कुलसे प्रवाजित ०<sup>१</sup> एक और बैठे शालाके ब्राह्मण-गृहपतियोंसे भगवान्ने यह कहा—

“गृहपतियो ! क्या कोई तुम्हारा ( ऐसा ) मनाप ( = मनको तुष्ट करनेवाला ) शास्ता ( = उपदेशक ) है जिसमें तुम्हें सहेतुक अन्धा हुई हो ?”

“वहाँ, भन्ते ! कोई हमारा ऐसा मनाप शास्ता ( नहीं ) जिसमें हमारी सहेतुक अन्धा हुई हो ।”

“गृहपतियो ! मनाप शास्ता न मिलने पर तुम्हें इस अपर्णक ( = अपणणक ) धर्मको ग्रहण कर रहना चाहिये। गृहपतियो ! ( वह ) अपर्णक ( = द्विविधा-रहित ) धर्म क्या है ?—गृहपतियो ! ( १ ) कोई कोई अमण-ब्राह्मण इस वादवाले = इस दृष्टिवाले होते हैं—“नहीं है दान (का फल), नहीं है यज्ञ (का फल), नहीं है हवन (का फल), नहीं है सुकृत दुष्कृत कर्मोंका फल-विपाक; यह लोक नहीं है, परलोक नहीं है; माता नहीं पिता नहीं, औपपातिक ( = अव्योनिज देव आदि ) प्राणी नहीं है। लोकमें ( ऐसे ) सत्यको प्राप्त, सत्याख्य अमण ब्राह्मण नहीं है, जो कि इस लोक परलोकको स्वयं जानकर साक्षात्कार कर, (दूसरोंको) जतलावेंगे।” ( २ ) गृहपतियो ! उन्होंने अमण ब्राह्मणोंके विरुद्ध ( = ऋजु-प्रत्यनीक ) वादवाले दूसरे यह कहते हैं—“है दान, है यज्ञ, है हवन, है सुकृत दुष्कृत कर्मोंका फल-विपाक, है यह लोक, है परलोक, है माता, है पिता, है औपपातिक प्राणी, है लोक में सत्यको प्राप्त कर, सत्याख्य अमण ब्राह्मण, जो कि इस-लोक परलोकको स्वयं जानकर साक्षात्कार कर जतलाते हैं।” तो क्या मानते हो, गृहपतियो ! यह अमण ब्राह्मण एक दूसरेके विरोधी वाद वाले हैं न ?”

“हाँ, भन्ते !”

( १ ) “वहाँ, गृहपतियो ! जो अमण ब्राह्मण इस वादवाले ० हैं—“नहीं है दान ० साक्षात्कार कर जतलावेंगे”; उनसे यह आशा रखनी चाहिये—कि वह काय-सुचरित ( = कायिक सुकर्म ), वाचिक सुचरित, मन-सुचरित इन तीनों कुशल-धर्मों ( = सुकर्मों )को त्याग कर, काय-दुश्चरित ( = कायिक दुष्कर्म ), वचन-दुश्चरित, मनो-दुश्चरित इन तीनों अकुशल-धर्मोंको ग्रहण करेंगे। सो किस हेतु ?—क्योंकि वह आप अमण ब्राह्मण अकुशल धर्मोंमें दोष ( = आदिनव ),

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ १६८ । <sup>२</sup> अजित केवल-कम्बुजीका मत ( देखो बुद्धचर्यो २६१, ४६२ भी ) ।



अपकार, संकलेश (= पाप, भल ) नहीं देखते, और कुशल धर्मोंमें, निष्कामतामें, गुण (= आनन्द-शैत्य ) सुखता (= व्यवधानपक्ष ) नहीं देखते । परलोकके होते भी—'परलोक नहीं है' यह उनकी दृष्टि (= मिथ्या) होती है, यह उनकी मिथ्या-दृष्टि है । परलोकके होते हुये—'परलोक नहीं है' यह वह संकल्प (= कल्पना ) करते हैं, यह उनके मिथ्या-संकल्प हैं । ० 'परलोक नहीं है'—यह वह वचन बोलते हैं, यह उनका मिथ्या-वाक् है । परलोकके होते हुये,—'परलोक नहीं है', और यह परलोकवेदी अर्हंतोंके ( कथनके ) विरुद्ध है । ०—'परलोक नहीं है'—यह दूसरों को समझाते हैं, यह उनका असद्धर्म-संज्ञापन है । इस असद्धर्म-संज्ञापनसे वह अपना उत्कर्ष चाहते हैं, और दूसरोंको निन्दते हैं इस प्रकार पहिले उनकी सुशीलता नष्ट हो गई रहती है, और दुःशीलता उपस्थित रहती है, मिथ्या-दृष्टि, मिथ्या-संकल्प, मिथ्या-वाक्, आर्यों का विरोध, असद्धर्म-संज्ञापन, आत्मोत्कर्ष, पर-वम्भण (= दूसरेको निन्दना ) यह अनेक पाप = अकुशल धर्म (= बुराईयाँ ) होते हैं, मिथ्या दृष्टिके कारण ।

'गृहपतियो ! वहाँ किछ पुरुष सोचता है—यदि 'परलोक नहीं है', तो इस प्रकार यह आप पुरुष = पुद्गल काया छोड़ भरनेके बाद अपनी स्वस्ति (= कल्याण, सुरक्षा ) करेगा, यदि परलोक है, तो यह पुरुष = पुद्गल काया छोड़ भरनेके बाद अपाय = दुर्गति, विनिपात (= घतन ), नरकमें उत्पन्न होगा । चाहे परलोक न भी हो, चाहे इन आप भ्रमण ब्राह्मणोंका वचन सच भी हो, तो भी तो यह पुरुष = पुद्गल इसी जन्ममें विज्ञों द्वारा निन्दित है—'यह पुरुष = पुद्गल दुःशील, मिथ्या-दृष्टि, नास्तिकवादी है' । यदि परलोक है, तब तो इस आप पुरुष = पुद्गलकी दोनों ओरसे कलिग्रह है—इस जन्ममें भी विज्ञों द्वारा निन्दा, और काया छोड़ भरनेके बाद अपाय = दुर्गति, विनिपात, नरकमें उत्पन्न होना । इस प्रकार इनके इस अपर्णक धर्मके बुराग्रहसे, ग्रहणसे एक ओर पूर्ण होना कुशल स्थानसे वंचित होना है ।

( २ ) 'वहाँ गृहपतियो ! जो भ्रमण ब्राह्मण इस वाद वाले = इस दृष्टिवाले हैं—'है दान ० ।' उनके संवन्धमें यह आशा करनी चाहिये, कि वह ० काय-दुश्चरित, वचन-दुश्चरित, मनो-दुश्चरित इन तीनों अकुशल-धर्मोंको छोड़कर, ० काय-सुचरित, वचन-सुचरित, मनो-सुचरित इन तीनों कुशल धर्मोंका ग्रहण करेंगे । सो स्थित हेतु !—क्योंकि वह आप भ्रमण ब्राह्मण अकुशल धर्मोंमें दोष ० को देखते हैं, और कुशल धर्मोंमें निष्कामतामें गुण, शुद्धता देखते हैं । परलोकके सद्भाव में—'परलोक है' यह उनकी दृष्टि होती है, यह उनकी सम्यग्-दृष्टि है । परलोकके सद्भावमें 'परलोक है', यह उनका संकल्प होता है, ( और ) यह उनका सम्यक्-संकल्प है । ० 'परलोक है' यह वह वचन कहते हैं, ( और ) यह उनका सम्यग्-वाक् है । ० 'परलोक है'—यह परलोक-विद् अर्हंतोंके ( कथनका ) विरोधी (= प्रत्यर्णक ) नहीं है । ० 'परलोक है', यह दूसरेको संज्ञापन (= समझाता ) करते हैं, यह उनका सद्धर्म-संज्ञापन है; इस सद्धर्म-संज्ञापन द्वारा न वह अपना उत्कर्ष (= आत्मोत्कर्ष ) चाहते हैं, न दूसरेको निन्दते (= परवम्भण ) हैं । इस प्रकार पहिले ही उनकी दुःशीलता नष्ट हो गई रहती है, और सुशीलता उपस्थित रहती है, और वह सम्यग्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यग्-वाक्, आर्य-अप्रत्यनीकता, सद्धर्म-संज्ञापन, न-आत्मोत्कर्षण, न-पर-वम्भणसे युक्त होता है । वह अनेक कुशल-धर्म होते हैं, सम्यग्-दृष्टिके कारण ।

'गृहपतियो ! वहाँ किछ पुरुष यह सोचता है—यदि परलोक है, तो यह आप पुरुष = पुद्गल काया छोड़ भरनेके बाद ० स्वर्गलोकमें उत्पन्न होंगे । चाहे परलोक मत हो, और इन भ्रमण-ब्राह्मणों का वचन सच हो; तो भी तो यह आप पुरुष = पुद्गल इसी जन्ममें विज्ञों द्वारा प्रशंसित है—यह पुरुष = पुद्गल शीलवान्, सम्यग्-दृष्टि, नास्तिकवादी है । यदि परलोक है, तब तो इस आप

पुरुष=पुरुषलोक दोनों ओर लाभ है—इस जन्ममें विहों द्वारा प्रशंसा, और काया होय मरनेके बाद सुगति, स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता । इस प्रकार इनके इस अपवणक (= द्विविधा-रहित) धर्म के सुग्रहण=समाधानसे दोनों ओर पूर्ण होना है, अकुशल स्थानसे ही वंचित होना है ।

(३) "गृहपतियो ! कोई कोई भ्रमण ब्राह्मण इस वादवाले = इस दृष्टिवाले होते हैं—

'( पाप ) करते-करवाते, काटते-कटवाते, पकाते-पकवाते, शोक करते, परेसानी कराते, मभते-मभाते, प्राण मारते, चोरी करते, संध लगाते, गाँव छूटते, घर छूटते, रहनी करते, पर-की गमन करते, छठ बोलते भी पाप नहीं किया जाता । घुरेसे ( या ) तेज़ चक्र-द्वारा यदि कोई इस पृथिवीके प्राणियों ( को मार कर ) मौसका एक खलिमान, मौसका एक पुंज बना दे, तो इसके कारण उसे पाप नहीं होगा, पापका आगम नहीं होगा । यदि धात करते-कराते, काटते-कटवाते, पकाते-पकवाते, ( इधरसे ) गंगाके दाहिने तीर पर भी जायें, तो भी इसके कारण उसको पाप नहीं, पापका आगम नहीं होगा । धात देते-दिलाते, बल करते-कराते, ( दक्षिणसे ) गंगाके उत्तर तीर भी जायें, तो ( भी ) इसके कारण उसको पुण्य नहीं, पुण्यका आगम नहीं होगा । दान, दम (= इन्द्रिय-निग्रह ) संयम, सत्य भाषणसे पुण्य नहीं, पुण्यका आगम नहीं ( होता ) ।'

(४) "गृहपतियो ! इन्हीं भ्रमण-ब्राह्मणोंके विरुद्ध वादवाले दूसरे यह कहते हैं—'( पाप ) करते करवाते ० छठ बोलते पाप होता है । ० मौसका एक पुंज बना दे, तो इसके कारण उसे पाप होगा, पापका आगम होगा । ० गंगाके दाहिने तीर पर जायें, तो इसके कारण उसको पाप होगा ० । दान देते-दिलाते ० उसको पुण्य होगा ० । दान, दम, संयम, सत्यभाषणसे पुण्य होता है, पुण्यका आगम होता है । तो क्या मानते हो, गृहपतियो ! यह भ्रमण-ब्राह्मण एक दूसरेके विरोधी वादवाले हैं न ?'

"हाँ, मन्ते !"

(५) "गृहपतियो ! वहाँ जो भ्रमण-ब्राह्मण इस वाद वाले हैं—'( पाप ) करते करवाते ० सत्यभाषणसे पुण्य नहीं, पुण्यका आगम नहीं', उनसे यह आशा रखनी चाहिये—कि वह काविक सुचरित ० 'को त्याग कर, ०' अकुशल-धर्मोंको ग्रहण करेंगे । सो किस हेतु ?—क्योंकि वह आप भ्रमण ब्राह्मण ० नहीं देखते । क्रिया (= कर्म ) के होते भी—'क्रिया नहीं है' यह उनकी दृष्टि होती है; यह उनकी मिथ्या-दृष्टि है ० यह अनेक पाप = अकुशल धर्म होते हैं मिथ्या दृष्टिके कारण ।

'गृहपतियो ! वहाँ जिस पुरुष यह सोचता है—'यदि क्रिया नहीं है ०' कुशल स्थान (= भले काम ) से वंचित होता है ।'

(६) "गृहपतियो ! वहाँ जो भ्रमण ब्राह्मण इस वादवाले=इस दृष्टि वाले हैं—'करते करवाते ०' पुण्यका आगम होता है', उनके सम्बंधमें यह आशा करनी चाहिये—'०' कुशल-धर्मोंको ग्रहण करेंगे । सो किस हेतु ? ० 'क्रिया है'—यह उनकी दृष्टि होती है, यह उनकी सम्यग्-दृष्टि है ० यह अनेक कुशल-धर्म होते हैं, सम्यग्-दृष्टिके कारण ।

'गृहपतियो ! वहाँ जिस पुरुष यह सोचता है—'यदि क्रिया है ०' अकुशल स्थानसे ही वंचित होता है ।

१ एते काश्यपका मत ( देखो पुरुषयो, पृष्ठ ४६१, २६२ ) । २ देखो पृष्ठ २४० । ३ देखो पृष्ठ २४० ( 'परलोक नहीं है' के स्थान पर 'क्रिया नहीं है' पढ़ना चाहिये ) । ४ देखो पृष्ठ २४० । ५ देखो पृष्ठ २४० ( 'परलोक है' के स्थान पर 'क्रिया है' पढ़ना चाहिये ) । ६ देखो पृष्ठ २४० ।



(७) "गृहपतियो ! कोई कोई अमण-ब्राह्मण इस वादवाले=इस दृष्टिवाले होते हैं—  
'सर्वों (= प्राणियों) के संक्लेश (= चित्तकी मलिनता) का कोई हेतु नहीं=कोई प्रत्यय नहीं,  
बिना हेतु, बिना प्रत्ययके प्राणी संक्लेशको प्राप्त होते हैं। प्राणियोंकी ( चित्त-)विशुद्धिका  
कोई हेतु=प्रत्यय नहीं; बिना हेतु=प्रत्यय प्राणी विशुद्धिको प्राप्त होते हैं। बल नहीं ( चाहिये ),  
वीर्य नहीं, पुरुषका स्थान (= उदता ) नहीं, पुरुष-पराक्रम नहीं ( चाहिये ), सभी सत्व=प्राणी=  
भूत=जीव, अवस=अ-बल=अ-वीर्य ( हो ) निवृत्ति (= अवितत्यता) के वशमें हो, छ:ओं अभि-  
जातियों (= जन्मों) में सुख दु:ख अनुभव करते हैं।"

(८) इन्हीं अमण-ब्राह्मणोंके विरुद्ध वाद वाले दूसरे यह कहते हैं—'है हेतु सर्वोंके संक्लेश-  
का, है प्रत्यय; हेतुसे, प्रत्ययसे प्राणी संक्लेशको प्राप्त होते हैं। है हेतु, है प्रत्यय प्राणियोंकी  
विशुद्धिका; हेतुसे=प्रत्ययसे प्राणी विशुद्धिको प्राप्त होते हैं; है ( उपयोगी ) बल, वीर्य, पुरुषका  
स्थान, पुरुष-पराक्रम, और नहीं सभी सत्व ० अवस, अ-बल, अ-वीर्य निवृत्तिके वशमें हो छ:ओं  
अभिजातियोंमें सुख दु:ख अनुभव करते हैं। तो क्या मानते हो, गृहपतियो ! यह अमण  
ब्राह्मण एक दूसरेके विरोधी वादवाले हैं न ?"

"हाँ, भन्ते !"

(९) "यहाँ, गृहपतियो ! जो अमण ब्राह्मण इस वादवाले हैं—'सर्वोंके संक्लेशका कोई  
हेतु नहीं ० छ:ओं अभिजातियोंमें सुख-दु:ख अनुभव करते हैं' उनमें यही आशा करनी चाहिये,  
कि वह ०<sup>\*</sup> अकुशल धर्मोंको ग्रहण करेंगे। तो किस हेतु ?—०<sup>\*</sup> 'हेतु नहीं है', यह उनकी दृष्टि  
होती है; यह उनको मित्या-दृष्टि है ०<sup>\*</sup> यह अनेक पाप=अकुशल धर्म होते हैं, मित्या-दृष्टिके  
कारण।

"गृहपतियो ! यहाँ विश्व पुरुष यह सोचता है—'यदि हेतु नहीं है ०' कुशल स्थानसे  
वंचित होता है।

(१०) "यहाँ गृहपतियो ! जो अमण ब्राह्मण इस वादवाले हैं—'है हेतु सर्वोंके संक्लेश  
का ० नहीं छ:ओं अभिजातियोंमें सुख दु:ख अनुभव करते'; उनसे यह आशा करनी चाहिये, कि  
वह ०<sup>\*</sup> कुशल-धर्मोंको ग्रहण करेंगे। तो किस हेतु ?—०<sup>\*</sup> 'है हेतु' यह उनकी दृष्टि होती है;  
( और ) यह उनकी सम्यग्-दृष्टि है ०<sup>\*</sup> यह अनेक कुशल धर्म होते हैं, सम्यग्-दृष्टिके कारण।  
"गृहपतियो ! यहाँ विश्व पुरुष यह सोचता है—'यदि हेतु है ०' अकुशल स्थानसे हो  
वंचित होता है।

(११) "गृहपतियो ! कोई कोई अमण ब्राह्मण इस वादवाले=इस दृष्टिवाले होते हैं—  
'आरूप्य (= रूप-रहित वेत्ताओंके लोक) सर्वथा नहीं है'।

(१२) गृहपतियो ! उन्हीं अमण-ब्राह्मणोंके विरुद्ध वादवाले दूसरे कहते हैं—'आरूप्य  
सर्वथा है'। तो क्या मानते हो, गृहपतियो ! यह अमण ब्राह्मण एक दूसरेके विरोधी वादवाले  
हैं न ?"

"हाँ, भन्ते !"

\* सप्तसिद्धि गोसायका मत। देखो बुद्धपर्याय, पृष्ठ ४६२, २६२।

\* देखो पृष्ठ २४०।

\* देखो पृष्ठ २४०, २४१ ('परलोक नहीं है' के स्थान पर 'हेतु नहीं है' पदना चाहिये)।

\* देखो पृष्ठ २४०।

\* देखो पृष्ठ २४१।

\* देखो पृष्ठ २४० ('परलोक है' के स्थान

पर 'हेतु है' पदना चाहिये)। \* देखो पृष्ठ २४०, २४१।

“यहाँ गृहपतियो ! विश्व पुरुष यह सोचता है—जो अमण-ब्राह्मण इस वादवाले ० हैं—‘आरूप्य सर्वथा नहीं है’, यह मेरा देखा नहीं है । और जो यह अमण ब्राह्मण इस वादवाले ० हैं—‘आरूप्य सर्वथा है’, यह मुझे ज्ञात नहीं । यदि मैं बिना जानते, बिना देखते, एकतरफा कहने लगूँ—‘यही सच है, और झूठ है’ तो यह मेरे योग्य नहीं । जो आप अमण ब्राह्मण इस वादवाले ० हैं—‘आरूप्य सर्वथा नहीं है’, यदि उन ‘का यह वचन सच है, तो हो सकता है, कि जो यह देवता रूपमान् भगवान् हैं, उनमें मेरी अपूर्णक (= द्विविधारहित) उत्पत्ति हो । और जो आप अमण-ब्राह्मण इस वादवाले ० हैं—‘आरूप्य सर्वथा है’, यदि उन ‘का यह वचन सच है, तो हो सकता है, कि जो यह देवता रूप-रहित संज्ञात्म्य हैं, उनमें मेरी अपूर्णक उत्पत्ति हो । भो ! रूपके कारण ( लक्ष्मणके लिये ) दृढ-ग्रहण, शस्त्र-ग्रहण, कलह, विग्रह, विवाद, तू तू, ( मैं मैं ), तुमलो, झुठावाद देखा जाता है, किन्तु आरूप्य ( लोक )में यह नहीं है; यह सोच यह रूपोंसे निर्वेद-वैराग्य, निरोधके लिये तत्पर होगा ।

( १३ ) “गृहपतियो ! कोई कोई अमण-ब्राह्मण इस वादवाले ० होते हैं—‘भव-निरोध (= जन्म मरणका अन्त ) सर्वथा नहीं होता’ ।

( १४ ) गृहपतियो ! उन्हीं अमण-ब्राह्मणोंके विरुद्ध वादवाले दूसरे कहते हैं—‘भव-निरोध सर्वथा (= आद्यतन ) होता है’ । तो क्या जानते हो, गृहपतियो ! यह अमण ब्राह्मण एक दूसरेके विरोधी वादवाले हैं न ?”

“हाँ, सन्ते !”

“यहाँ, गृहपतियो ! विश्व पुरुष यह सोचता है—०—‘भव-निरोध सर्वथा नहीं होता’—यह मेरा देखा नहीं है । ०—‘भव-निरोध सर्वथा होता है’—यह मुझे ज्ञात नहीं ० । ०—‘भव-निरोध सर्वथा नहीं होता’—यदि यह ‘वचन सच है, तो हो सकता है, कि जो यह देवता रूप-रहित संज्ञा-त्म्य ( संज्ञा-होण ही जिनका शरीर है ) है उनमें मेरी अपूर्णक उत्पत्ति होवे । ०—‘भव-निरोध सर्वथा होता है’—यदि यह ‘वचन सच है, तो हो सकता है, कि मैं इसी जन्ममें परिनिर्वाणको प्राप्त हो जाऊँ । जो यह अमण ब्राह्मण इस वादवाले ० हैं—‘भव-निरोध सर्वथा नहीं होता’, उनकी यह दृष्टि स्वरागताके पास ( ले जानेवाली है ), संयोग, अभि-नन्दन (= लिप्ता ), अध्यात्मज्ञान=उपादान (= ग्रहण )के पास ( ले जानेवाली है ) । किन्तु जो आप अमण ब्राह्मण इस वादवाले ० हैं—‘भव-निरोध सर्वथा होता है’, उनकी यह दृष्टि अस-रागता (= वैराग्य ), असंयोग, अन्-अभिनन्दन, अन्-अध्यात्मज्ञान, अन्-उपादानके पास ( ले जानेवाली है ) । यह यह सोच भवों (= जन्ममरणों )के ही निर्वेद-वैराग्य, निरोधके लिये तत्पर होता है ।

“गृहपतियो ! लोकमें यह चार ( प्रकारके ) पुरुष (= पुरुषार्थ ) होते हैं । कौनसे चार ? ० १ ब्रह्मभूत आत्मासे विहरता है ।

“गृहपतियो ! कौनसा पुरुषार्थ आर्तमत्तप=अपनेकी संताप देनेवाले कामोंमें लग्न है ?— ० २ । ० परंतप ० १ । ० आत्मंतप-परंतप ० १ । ० अन्-आर्तमत्तप-अ-परंतप ० १ ।

“सो वह इस प्रकार चिन्तके एकाग्र, परिशुद्ध ० १ अब यहाँ करनेके लिये कुछ नहीं है—

१ देखो पृष्ठ २०६ । १ देखो पृष्ठ २०६ । १ पृष्ठ २०६ ।

१ पृष्ठ २०७ और २५-२६ ( वाक्यमें उक्त पुरुषोंके स्थानपर प्रथम पुरुष करके ) ।



यह जान लेता है । गृहपतिवो ! यह कहा जाता है अन्-आत्मंतप-अ-परंतप, ० पुद्गल ० । अण-भूत आत्मासे विहरता है ।”

ऐसा कहने पर शाला-निवासी ब्राह्मण गृहस्थोंने भगवान्से यह कहा—

“आधर्य भो गौतम ! अद्भुत भो गौतम ! जैसे औषेकी सीधा कर ० १ ! जातसे आप हमें अंबलियद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें ।”

६—इति गृहपति वग्ग २ । १ ।

## ६१-अम्बलट्टिक-राहुलोवाद-सुत्तन्त ( २।२।१ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् राजगृहके वेणुवन कलन्दकनिधापमें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् राहुल 'अम्बलट्टिकामें विहार करते थे। तब भगवान् सार्यकालको भ्रानसे उठ, जहाँ अम्बलट्टिका वनमें आयुष्मान् राहुल ( थे ) वहाँ गये। आयुष्मान् राहुलने दूरसेही भगवान्को आते देखा, देखकर आसन बिछाया, पैर धोनेके लिये पानी रक्खा। भगवान्ने बिछाये आसनपर बैठ पैर धोये। आयुष्मान् राहुलभी भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये।

तब भगवान्ने थोड़ा सा चचा पानी लोटेमें लोढ़, आयुष्मान् राहुलको संबोधित किया—

“राहुल ! लोटेके इस थोड़ेसे पचे पानीको देखता है ?”

“हाँ भन्ते !”

“राहुल ! ऐसाही थोड़ा इनका श्रमण-भाव (= साधुता ) है, जिसको जानबूझकर झूठ बोलनेमें लजा नहीं।”

तब भगवान्ने उस थोड़ेसे पचे जलको फेंककर आयुष्मान् राहुलको संबोधित किया—

“राहुल ! ऐसा मैंने उस थोड़ेसे जलको फेंक दिया ?”

“हाँ भन्ते !”

“ऐसाही ‘फेंका’ इनका श्रमण-भावभी है, जिसको जानबूझकर झूठ बोलनेमें लजा नहीं।”

तब भगवान्ने उस लोटेको औंधा कर, आयुष्मान् राहुलको संबोधित किया—

“राहुल ! तू इस लोटेको औंधा देखता है ?”

“हाँ, भन्ते !”

“ऐसाही ‘औंधा’ इनका श्रमण-भाव है, जिसको जान बूझकर झूठ बोलते लजा नहीं।”

तब भगवान्ने उस लोटेको सीधाकर आयुष्मान् राहुलको संबोधित किया—

“राहुल ! इस लोटेको तू सीधा किया देख रहा है ? खाली देख रहा है ?”

“हाँ भन्ते !”

“ऐसाही खाली तुच्छ इनका श्रमण-भाव है, जिसको जान बूझकर झूठ बोलनेमें लजा नहीं। जैसे राहुल ! हरिस-समान लम्बे दातों वाला, महाकाय, सुन्दर जातिका, संघासमें जाने वाला, राजाका हाथी, संघासमें जानेपर, अगले पीरसे भी ( कवाईका ) काम करता है। पिछले पीरसे भी काम करता है। शरीरके अगले भागसे भी काम करता है। शरीरके पिछले भागसे

१ “वेणुवनके किनारे... एकान्त-प्रियोंके लिये बनाया गया आस-स्थान।” यह आयुष्मान् (= राहुल ) सात वर्षके आश्रमण होनेके समयसे ही, एकान्त (निरुद्धता) कहाते वहाँ विहार करते थे” ( अ. अ. )।



भी काम करता है। शिरसे भी काम करता है। कायसे भी काम करता है। दौतसे भी काम करता है। पूँछसे भी काम लेता है। लेकिन सूँडको (बेकाम) रखता है। तो हाथीवानको ऐसा (विचार) होता है—‘यह राजाका हाथी हरिस जैसे दौतवाला ० पूँछसे भी काम लेता है, (लेकिन) सूँडको (बेकाम) रखता है। राजाके ऐसे भागका जीवन अविधसमीय है’।

“लेकिन यदि राहुल ! राजाका हाथी हरिस जैसे दौतवाला ०, पूँछसे भी काम करता है, सूँडसे भी काम लेता है, तो राजाके हाथीका जीवन विश्वसनीय है; अब राजाके हाथीको और कुछ करना नहीं है। ऐसे ही राहुल ! ‘जिसे जानबूझकर छठ बोलनेमें लज्जा नहीं, उसके लिये कोई भी पाप-कर्म अकरणीय नहीं’—ऐसा मैं मानता हूँ। इसलिये राहुल ! ‘हिसीमें भी नहीं छठ बोलेंगा’,—यह भीष लेनी चाहिये।

“तो क्या जानते हो, राहुल ! दर्पण किस कामके लिये है ?”

“भन्ते ! देखनेके लिये।”

“ऐसे ही राहुल ! देख देखकर कायासे काम करना चाहिये। देख देखकर वचनसे काम करना चाहिये। देख देखकर मनसे काम करना चाहिये।

“अब राहुल ! तू कायासे (कोई) काम करना चाहे, तो तुझे कायाके कामपर विचार करना चाहिये—जो मैं यह काम करना चाहता हूँ, क्या यह मेरा काय-कर्म अपने लिये पीषा-दायक तो नहीं हो सकता ? दूसरेके लिये पीषा-दायक तो नहीं हो सकता ? (अपने और पराये) दोनोंके लिये पीषा-दायक तो नहीं हो सकता ? यह अ-कुशल (= बुरा) काय-कर्म है, दुःखका हेतु = दुःख विषाक (= ० भोग) देनेवाला है ? यदि तू राहुल ! प्रत्यवेक्षण (= देखनाल=विचार) कर ऐसा जाने—‘जो मैं यह कायासे काम करना चाहता हूँ ०। यह बुरा काय-कर्म है।’ ऐसा राहुल ! काय-कर्म सर्वथा न करना चाहिये। यदि तू राहुल ! प्रत्यवेक्षाकर ऐसा समझे,—‘जो मैं यह कायासे काम करना चाहता हूँ, यह काय-कर्म न अपने लिये पीषा-दायक हो सकता है, न परके लिये ०। यह कुशल (= अच्छा) काय-कर्म है, सुखका हेतु = सुख-विषाक है’। इस प्रकारका कर्म राहुल ! तुझे कायासे करना चाहिये।

“राहुल ! कायासे काम करते हुये भी, काय-कर्मका प्रत्यवेक्षण (= परीक्षा) करना चाहिये—‘क्या जो मैं यह कायासे काम कर रहा हूँ, यह मेरा काय-कर्म अपने लिये पीषा-दायक है ०।’ यदि तू राहुल ० जाने। ० यह काय-कर्म अकुशल है ०। तो राहुल ! इस प्रकारके काय-कर्मको छोड़ देना। ० यदि ० जाने। ० यह काय-कर्म कुशल है, तो इस प्रकारके काय-कर्मको राहुल ! बारबार करना।

“काय-कर्म करके भी राहुल ! तुझे काय-कर्मका फिर प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—‘क्या जो मैंने यह काय-कर्म किया है, यह मेरा काय-कर्म अपने लिये पीषादायक है ०। यह काय-कर्म अकुशल है ०।’ ० जाने। ० अकुशल है। तो राहुल इस प्रकारके काय-कर्मको शास्ताके पास, या विश्व गुरु-भाई (= सम्बन्धकारी) के पास कहना चाहिये, खोलना चाहिये = उतारना करना चाहिये। कह कर, खोलकर = उतारकर, आगेको संयम करना चाहिये। यदि राहुल ! तू प्रत्यवेक्षण कर जाने। ० कुशल है। तो दिनरात कुशल (= उत्तम) धर्मों (= बातों) में शिक्षा ग्रहण करनेवाला बन। राहुल ! इससे तू प्रीति = प्रमोदसे विहार करेगा।

“यदि राहुल ! तू वचनसे काम करना चाहे ०। ० कुशल वचन-कर्म ० करना। ० बारबार करना। ० इससे तू ० प्रीति = प्रमोदसे विहार करेगा।

“यदि राहुल ! तू मनसे काम करना चाहे ०। ० कुशल मन-कर्म ० करना। ० बारबार

करना । मन-कर्म करके ० यह मन-कर्म अकुशल है ० । तो इस प्रकारके मन-कर्ममें खिन्न होना चाहिये, शोक करना चाहिये, पुणा करनी चाहिये । खिन्न हो, शोक कर, पुणा कर आगेको संयम करना चाहिये । ० यह मन-कर्म कुशल है ० । उससे तू ० प्रमोदसे विहार करेगा ।

‘‘राहुल ! जित किन्हीं अमणों ( = भिक्षुओं ) या ब्राह्मणों ( = सन्तों ) ने अतीत-कालमें काय-कर्म ०, वचन-कर्म ०, मन-कर्म ० परिशोधित किये । उन सबोंने इसी प्रकार प्रत्यवेक्षण कर काय ., वचन ., मन-कर्म परिशोधित किये । जो कोई राहुल ! अमण या ब्राह्मण भविष्यकालमें भी काय ., वचन ., मन-कर्म परिशोधित करेंगे, वह सब इसी प्रकार ० । जो कोई राहुल ! अमण या ब्राह्मण आजकल भी काय ., वचन ., मन-कर्म परिशोधित करते हैं, वह सब भी इसी प्रकार ० ।

‘‘इसलिये राहुल ! तुझे सीखना चाहिये कि मैं प्रत्यवेक्षण कर काय-कर्म ०, ० वचन-कर्म, ० मन-कर्मका परिशोधन करूँगा ।’’



## ६२—महा-राहुलोवाद-सुत्तन्त (२।२।२)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् ध्रावस्तोमें अनाथ-पिट्टिकके आराम, जेतयनमें विहार करते थे ।

तब पूर्वोक्त समय भगवान् पहिन कर, पात्र-चोवरले ध्रावस्तीमें पिड( -चार )के लिये प्रविष्ट हुये । आयुष्मान् राहुल भी पूर्वोक्त समय पहिनकर पात्र-चोवर ले भगवान्के पीछे पीछे हो लिये । भगवान्ने देखकर, आयुष्मान् राहुलको संबोधित किया—

“राहुल ! जो कुछ रूप है—भूत-भविष्य-वर्तमान-का शरीरके भीतर ( = अभात्म ) का, या बाहरका, महान् या सूक्ष्म, अच्छा या बुरा, दूर या समीप-का—सभी रूप ‘न यह मेरा है’, ‘न मैं यह हूँ’, ‘न यह मेरा आत्मा है’, इस प्रकार वधार्थे जानकर देखना ( = समझना ) चाहिये ।”

“रूपहीको भगवान् ! रूपहीको सुगत !”

“रूपको भी राहुल ! वेदनाको भी, संज्ञाको भी, संस्कारको भी, विज्ञानको भी ।”

तब आयुष्मान् राहुल—“कौन आज भगवान्का उपदेश सुनकर, गाँवमें पिड-चारके लिये जाये ?”—( सोच ) वहाँसे लौटकर एक वृक्षके नीचे, आसन मार, शरीरको सीधा रख, स्मृतिको सम्मुख ठहरा बैठ गये । भगवान्ने आयुष्मान् राहुलको वृक्षके नीचे ० बैठा देखा । देखकर संबोधित किया—

“राहुल ! आणापान-सति ( = प्राणायाम ) भावनाकी भावना ( = ध्यान ) कर । राहुल ! आणापान सति ( = आनापान महा-स्मृति ) भावना किये जानेपर महाफलदायक, बड़े माहात्म्यवाली होती है ।”

तब आयुष्मान् राहुल सायंकालको ध्यानसे ब्रह्म, तहाँ भगवान् ये वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् राहुलने भगवान्से यह कहा—

“मन्ते ! किस प्रकार भावना की गई, किस प्रकार बढ़ाई गई, आणापान-सति महा-फल-दायक, बड़े माहात्म्यवाली होती है ?”

“राहुल ! जो कुछ भी शरीरमें ( = अभात्म ), प्रतिशरीरमें ( = प्रत्यात्म ) कर्कश, खर्राटा है, जैसे—केश, लोम, नख, दाँत, चमड़ा, भोस, स्नायु, अस्थि, अस्थि-भग्ना, कुक्ष, हृदय, यकृत, प्लोमक, प्रीहा, कुम्पुस, आँत, पतली आँत ( = अंत-गुण = आँतकी रस्ती ), पेटका मल और जो कुछ और भी शरीरमें, प्रतिशरीरमें कर्कश ० है । राहुल ! यह सब ! अभात्म पृथ्वी-धातु कहलाती है । जो कुछ कि अभात्म पृथ्वी धातु है, और जो कुछ वायु, वह ( सब ) पृथिवी-धातु, पृथिवी-धातु ही है । इसको ‘यह मेरी नहीं’, ‘यह मैं नहीं हूँ’, ‘यह मेरा आत्मा नहीं है’

—इस प्रकार यथार्थतः जानकर देखना चाहिये । इस प्रकार इसे यथार्थतः अच्छी प्रकार जानकर देखनेसे ( भिक्षु ) पृथिवी-धातुसे उदास होता है, पृथिवी-धातुसे चित्तको विरक्त करता है ।

“क्या है राहुल ! आप-धातु ? आप ( = जल ) धातु ( वो ) है—आभ्यात्मिक ( = शरीर-में की ) और बाह्य । क्या है आभ्यात्मिक आप-धातु ० । ० तेज-धातु ० । ० वायु-धातु ० ।

“क्या है राहुल ! आकाश-धातु ?—आकाश-धातु आभ्यात्मिक भी है, और बाह्य भी । “राहुल ! आभ्यात्मिक आकाश-धातु क्या है ?—जो कुछ शरीरमें, प्रतिशरीरमें आकाश या आकाश-विषयक है, जैसे कि—कर्ण-छिद्र, नासिका-छिद्र, मुख-द्वार जिससे जल-पान खाद्य-आस्वादन किया जाता है; और वहाँ स्वादा-पीना—”टहता है, और जिससे कि अचोभागसे खाया-पिया—बाहर निकलता है । और जो कुछ और भी शरीरमें प्रति-शरीरमें आकाश या आकाश-विषयक है । वह सब राहुल ! आभ्यात्मिक आकाश-धातु कही जाती है । जो कुछ आभ्यात्मिक आकाश-धातु है, और जो कुछ बाह्य आकाश-धातु है, वह सब आकाश-धातु ही है । ‘वह न मेरी है’ ० , । ० ।

“राहुल ! पृथिवी-समान भावनाकी भावना ( = ध्यान ) कर । पृथिवी-समान भावनाकी भावना करते हुये, राहुल ! तेरे चित्तको, दिलको अच्छे लगनेवाले स्पर्श—चिन्तको चारों ओरसे पकड़कर न चिमटेंगे । जैसे राहुल ! ‘पृथिवीमें शुचि ( = पवित्र वस्तु ) भी फेंकते हैं’, अशुचि भी फेंकते हैं । पाषाणा भी ०, पेशाव ०, कफ ०, पीव ०, लोह ० । उससे पृथिवी दुःखी नहीं होती, “म्लानि नहीं करती, पृष्ठा नहीं करती, इसी प्रकार; तू राहुल ! पृथिवी-समान भावनाकी भावना कर । पृथिवी-समान भावना करते राहुल ! तेरे चित्तको अच्छे लगनेवाले स्पर्श ० न चिमटेंगे ।

“आप ( = जल )-समान ० । जैसे राहुल ! जलमें शुचि भी डोते हैं ० ।

“तेज ( = अग्नि )-समान ० । जैसे राहुल ! तेज शुचिको भी जलाता है ० ।

“वायु-समान ० जैसे राहुल ! वायु शुचिके पास भी बहता है ० ।

“आकाश-समान ० । जैसे राहुल ! आकाश किसीपर प्रतिष्ठित नहीं । इसी प्रकार तू राहुल ! आकाश-समान भावनाकी भावना कर । राहुल ! आकाश-समान भावनाकी भावना करने पर, उत्पन्न हुये मनको अच्छे लगनेवाले स्पर्श, चारों ओरसे पकड़कर चित्तको न चिमटेंगे ।

“राहुल ! मैत्री ( = सखी भिन्न सम्बन्धना )-भावनाकी भावना कर । मैत्री-भावनाकी भावना करनेसे राहुल ! जो ध्यापाव ( = द्वेष ) है, उससे छूट जायेगा ।

“राहुल ! करुणा- ( = सारे प्राणियोंपर दया करना ) भावनाकी भावना कर । करुणा भावनाकी भावना करनेसे राहुल ! जो तेरी विहिंसा ( = पर-पीडा-करण-इच्छा ) है, वह छूट जायेगी ।

“राहुल ! मुदिता ( = सुखी देल प्रसन्न होना )-भावनाकी भावनाकर । ० राहुल ! जो तेरी अ-रति ( = धन व लगना ) है वह हट जायेगी ।

“राहुल ! उपेक्षा ( = शत्रुकी शत्रुताकी उपेक्षा )-भावनाकी भावना कर । ० जो तेरा प्रतिघ ( = प्रतिहिंसा ) है, वह हट जायेगा ।

“राहुल ! अ-शुभ ( = सभी भोग बुरे हैं )-भावनाकी भावना कर । ० जो तेरा राग है, वह चला जायेगा ।

“राहुल ! अ-नित्य-संज्ञा ( = सभी पदार्थ अ-नित्य हैं )-भावनाकी भावना कर । ० जो तेरा अस्मिमान ( = अहंकार ) है, वह छूट जायेगा ।

“राहुल ! आणापान-सति ( = प्राणायाम )-भावनाकी भावना कर । आणा-पान-सति भावना करना-बढ़ाना, राहुल ! महा-फल-प्रद वड़े साहाय्यवाला है । राहुल ! आणा-पान-सति-भावना भावित होनेपर, बढ़ाई जानेपर, कैसे महा-फल-प्रद होती है ?—राहुल ! भिक्षु अरण्यमें



बुद्धके नीचे, या शून्य-गृहमें आसन भास्कर, शरीरको सीधा धारण कर, स्थितिको समुल्ल रख, बैठता है। वह स्मरण रखते साँस छोड़ता है, स्मरण रखते साँस लेता है, लम्बी साँस छोड़ते 'लम्बी साँस छोड़ रहा हूँ'—जानता है। लम्बी साँस लेते 'लम्बी साँस ले रहा हूँ'—जानता है। छोटी साँस छोड़ते ०। छोटी साँस लेते ०। 'सारे कामको अनुभव (= प्रतिसंवेदन) करते साँस छोड़'—सीखता है। 'सारे कामको अनुभव करते साँस लें'—सीखता है। कायाके संस्कारों काज आदिको दबाते हुये साँस छोड़ें, ० ० साँस लें—सीखता है। 'प्रीतिको अनुभव करते साँस छोड़ें' ०। '० साँस लें' सीखता है। 'सुख अनुभव करते ०'। 'चित्तके संस्कारको अनुभव करते ०'। 'चित्तके संस्कारको दबाते हुये ०'। 'चित्तको अनुभव करते ०'। 'चित्तको प्रसोदित करते ०'। 'चित्तको समाधान करते ०'। 'चित्तको (राग आदिसे) विमुक्त करते ०'। '(सब पदार्थोंको) अनित्य देखने-वाला हो ०'। '(सब पदार्थोंमें) विरागकी दृष्टिसे ०'। '(सब पदार्थोंमें) निरोध (= विनाश) की दृष्टिसे ०'। '(सब पदार्थोंमें) परित्यागकी दृष्टिसे साँस छोड़'—सीखता है। 'परित्यागकी दृष्टिसे साँस लें'—सीखता है। राहुल ! इस प्रकार भावना की गई, बढ़ाई गई आणा-पान-अति महा-फल-दायक, और बड़े माहात्म्य-वाली होती है। राहुल ! इस प्रकार भावनाकी गई, बढ़ाई गई आणा-पान-अतिसे जो वह अन्तिम आश्वास (= साँस छोड़ना) प्रश्वास (= साँस लेना) है, वह भी विदित होकर, लय (= निरुद्ध) होते हैं, अ-विदित होकर नहीं।"

भगवान्ने यह कहा, ज्ञानुष्मान् राहुलने संतुष्ट हो, भगवान्के भाषणका अमि-मन्दन किया।

## ६३-चूल-मालुंक्य-सुत्तन्त ( २।२।३ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके आश्रम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब एकान्तमें स्थित विचार-मग्न आयुष्मान् मालुंक्य-पुत्तके चित्तमें यह चिन्तक उत्पन्न हुआ—“भगवान्ने जिन इन दृष्टियोंको अ-व्याकृत (= अ-कथनीय), स्थापित (= जिनका उत्तर रोक दिया गया), प्रतिक्षिप्त (= जिनका उत्तर देना अव्यक्त होगया) कर दिया है—( १ ) ‘लोक शाश्वत (= निश्चय) है’, ( २ ) ‘लोक अ-शाश्वत है’, ( ३ ) ‘लोक अन्तवान् है’, ( ४ ) ‘लोक अनन्त है’, ( ५ ) ‘जीव शरीर एक है’, ( ६ ) ‘जीव वृत्तवा है, शरीर वृत्तवा है’, ( ७ ) ‘भरनेके बाद तत्प्राप्त होते हैं’, ( ८ ) ‘भरनेके बाद तत्प्राप्त नहीं होते’, ( ९ ) ‘भरनेके बाद तत्प्राप्त होते भी हैं, नहीं भी होते हैं’, ( १० ) ‘भरनेके बाद तत्प्राप्त न-होते हैं, न-नहीं-होते हैं’ । इन ( दृष्टियों )को भगवान् सुझे नहीं बतलाते । तो ( कि ) भगवान् सुझे ( इन्हें ) नहीं बतलाते, यह सुझे नहीं रुचता = सुझे नहीं क्षमता । तो मैं भगवान्के पास जाकर इस बातको पूछूँ; यदि सुझे भगवान् कहेंगे—( १ ) ‘लोक शाश्वत है’ वा ० ( १० ) ‘भरनेके बाद तत्प्राप्त न-होते हैं, न-नहीं-होते हैं’, तो मैं भगवान्के पास ब्रह्मचर्य-वास (= शिष्यता) करूँगा । यदि सुझे भगवान् न बतलायेंगे—( १ ) ‘लोक शाश्वत है’ वा ० ( १० ) ‘भरनेके बाद तत्प्राप्त न-होते हैं, न-नहीं-होते हैं’, तो मैं ( शिष्य ) शिक्षाका प्रत्याख्यान कर होन (= गृहस्थ-आश्रम) में लौट जाऊँगा ।”

तब आयुष्मान् मालुंक्यपुत्त सार्वकालको प्रतिबलित (= एकान्तचिन्तन, विचार-मग्न होना) से उठकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् मालुंक्यपुत्तने भगवान्से यह कहा—

“भन्ते ! ० यहाँ मेरे चित्तमें यह चिन्तक उत्पन्न हुआ—“भगवान्ने जिन इन दृष्टियोंको अव्याकृत ० तो मैं शिक्षाका प्रत्याख्यान कर होन ( आश्रम )में लौट जाऊँगा ।” यदि भगवान् जानते हैं—( १ ) ‘लोक शाश्वत है’, तो भगवान् सुझे बतलायें—‘लोक शाश्वत है’ । ( २ ) यदि भगवान् जानते हैं—‘लोक अशाश्वत है’, तो भगवान् सुझे बतलायें—‘लोक अशाश्वत है’ । यदि भगवान् नहीं जानते, कि ‘लोक शाश्वत है, वा लोक अशाश्वत है’; तो न जानने समझनेवालेके लिये यही सीधो ( बात ) है, कि वह ( साफ कहदे )—‘मैं नहीं जानता, सुझे नहीं मालूम’ । ० यदि भगवान् जानते हैं—( ९ ) ‘भरनेके बाद तत्प्राप्त होते भी हैं, नहीं भी होते हैं’; तो भगवान् सुझे बतलायें—‘भरनेके बाद ०’ । यदि भगवान् जानते हैं—( १० ) ‘भरनेके बाद तत्प्राप्त न-होते हैं, न-नहीं-होते हैं’, तो भगवान् सुझे बतलायें—‘० न-नहीं होते हैं’ । यदि भगवान् नहीं जानते—‘० होते भी हैं, नहीं भी होते’ वा ‘० न-होते हैं, न-नहीं-होते’; तो न जानने समझने-



वालेके लिये नहीं सीधी ( बात ) है, कि वह ( साध कहदे )—‘मैं नहीं जानता, मुझे नहीं मालूम’ ।”

“क्या मालुंक्यपुत्त ! मैंने तुझसे यह कहा था—‘आ, मालुंक्य-पुत्त ! मेरे पास ब्रह्मचर्य-वास कर, मैं तुझे बतलाऊँगा—( १ ) ‘लोक शाश्वत है’, ० ( १० ) ‘मरनेके बाद तत्प्राप्त न-होते हैं, न-नहीं-होते हैं’ ?”

“नहीं, भन्ते !”

“क्या तूने मुझसे यह कहा था—मैं भन्ते ! भगवान् के पास ब्रह्मचर्यवास करूँगा, भगवान् मुझे बतलायें—( १ ) ‘लोक शाश्वत है’, ० ( १० ) ‘मरनेके बाद तत्प्राप्त न-होते हैं, न-नहीं-होते हैं’ ?”

“नहीं, भन्ते !”

“इस प्रकार मालुंक्यपुत्त ! मैंने तुझसे कहा था—‘आ ०, ०’ । न तूने मुझसे कहा था—मैं भन्ते ! ०, ० । ऐसा होनेपर भोज-पुरुष ! ( = फलके आदमी ) ! तू क्या होकर किसका प्रवासवान् करेगा ?”

“मालुंक्य-पुत्त ! जो ऐसा कहे—मैं तब तक भगवान् के पास ब्रह्मचर्यवास न करूँगा, जब तक भगवान् मुझे यह न बतलायें—( १ ) ‘लोक शाश्वत है’ ०, या ( १० ) ० न-होते हैं, न-नहीं-होते’ ; ( फिर ) तत्प्राप्तने तो उन्हें अव्याकृत किया है और वह ( बीचमें ही ) मर जायेगा । जैसे मालुंक्यपुत्त ! कोई पुरुष गाई लेपवाले विषयसे मुक्त शल्य ( = बाणके फल ) से पिंवा हो; उसके हित-मित्र भाई-बंद शल्यचिकित्सक भिक्षु ( = वैद्य ) को ले आवें । ( और ) वह ( घायल ) यह कहे—‘मैं तब तक इस शल्यको नहीं निकालने दूँगा, जब तक कि अपने बेघनेवाले उस पुरुषको न जान लूँ कि वह क्षत्रिय है या ब्राह्मण, वैश्य है ( = वेस्तु ) या शूद्र ( = सुद्र ) ।’... ‘मैं तब तक इस शल्यको नहीं निकालने दूँगा, ० कि वह पुरुष अमुक नामका अमुक गोत्रका है’ । ०, ० कि वह पुरुष ( कदमें ) लम्बा है, नाटा है, या मझोला है’ । ०, ० कि वह पुरुष काला है, श्याम है, या मंगुर ( -मझी ) के रंगका है’ । ०, ० कि वह अमुक ग्राम या निगम ( = कस्बे ) या नगरमें ( रहता ) है’ ।... ‘मैं तब तक इस शल्यको नहीं निकालने दूँगा, जब तक कि उस बेघनेवाले धनुषको न जान लूँ, कि वह साध है या कोदण्ड । ० ज्याको न जान लूँ, कि वह अर्क ( = सदा ) की, या सदेकी, या महारु ( = ताँत ) की, या मरुव ( = मरुवा ) की या क्षीरपर्णी ( = दुधिया जड़ी ) की है’ । ० काण्ड ( = छर, बाण ) को न जान लूँ, कि वह कण्ड ( = जलाशयके तटपर स्वयं उगे सर्पत ) का है, या रोपे ( सर्पत ) का है’ । ० तीरके परको न जान लूँ, कि वह बाजका, या गिद्ध, कौशों, या दगले ( = कुल्ल ), या मोर, या शिथिलहनु ( पक्षी ) का है । ० तीरके गर्दकी ताँत ( = महारु ) को न जान लूँ, कि वह गायकी, या भैंसकी, या गोरु ( = ऊकड़े ? ) की, या बंदरकी है’ । ० प्राण्य ( = फर ) को न जान लूँ, कि वह प्राण्य है, या क्षुरप्र ( = सुरपे जैसा फर ), या वैकण्ड, या नाराच, या वत्सदन्त ( = बछड़ेके दाँतकी तरह ), या करवीर-पत्र ( = कररुके पत्रकी भाँति एक बोझाला ) । ( ऐसा होनेपर ) मालुंक्य-पुत्त ! वह तो अज्ञातही रह जायेंगे, और वह पुरुष मर जायेगा । ऐसे ही मालुंक्य-पुत्त ! जो ऐसा कहे—‘मैं तब तक ० ( फिर ) तत्प्राप्तने तो इसे अव्याकृत ( = कथनका अविषय ) किया है, और वह मर जायेगा ।

“मालुंक्यपुत्त ! ( १, २ ) ‘लोक शाश्वत है’—इस दृष्टिके होनेपर ही क्या ब्रह्मचर्यवास होगा ?—ऐसा नहीं । ‘लोक अशाश्वत है’ इस दृष्टिके होनेपर ही क्या ब्रह्मचर्यवास होगा ?—ऐसा

भी नहीं । । मालुंक्यपुत्त ! चाहे 'लोक शाश्वत है'—यह दृष्टि रहे, चाहे 'लोक न-शाश्वत है' यह दृष्टि रहे; जन्म है ही, जरा है ही, मरण है ही, शोक रोग-काँदना दुःख दौर्भाग्य परेशानी है ही, जिनके इसी जन्ममें विधात (के उपाय) को मैं बतलाता हूँ । ० ।

“मालुंक्यपुत्त ! ( १, १० ) 'मरतेके बाद तत्प्रागत (= मुक्त पुरुष ) होते भी है, नहीं भी होते हैं'—यह दृष्टि रहे, चाहे '० न-होते हैं, न-नहीं-होते हैं'—यह दृष्टि रहे; जन्म है ही ०, जिनके कि इसी जन्ममें विधात ( के उपाय ) को मैं बतलाता हूँ ।

“इसलिये मालुंक्यपुत्त ! मेरे अ-व्याकृत (= वचनके न-विषय ) को अव्याकृतके तौरपर धारण कर, और मेरे व्याकृतको व्याकृतके तौरपर धारण कर ।

“मालुंक्यपुत्त ! क्या मेरे अ-व्याकृत है ?—( १ ) 'लोक शाश्वत है'—यह मेरा अ-व्याकृत है, ० ( १० ) '० न-होते हैं, न-नहीं-होते हैं' यह मेरा अ-व्याकृत है । मालुंक्यपुत्त ! किसलिये इन्हें मैंने अ-व्याकृत ( कहा ) है ?—मालुंक्यपुत्त ! यह (= इनका व्याकरण, कथन ) साधक नहीं, आदि-मल्लवर्च-उपयोगी नहीं है; ( और ) न यह निर्वेद = चराम्य, निरोध = उप-शम (= शांति ), अभिज्ञा (= लोकोत्तर ज्ञान ), सर्वोद्य (= परम ज्ञान ), निर्वाणके लिये ( आवश्यक ) है; इसलिये मैंने उन्हें अ-व्याकृत किया ।

“मालुंक्य-पुत्त ! क्या मेरे व्याकृत (= कथित, कथनके विषय ) है ?—( १ ) 'यह दुःख है'—इसे मैंने व्याकृत किया, ( २ ) 'यह दुःख-समुदय (= ० हेतु, ० उत्पत्ति ) है'—इसे मैंने व्याकृत किया, ( ३ ) 'यह दुःख-निरोध है ०, ( ४ ) 'यह दुःख-निरोध-वामिनी प्रतिपद है'—इसे मैंने व्याकृत किया । मालुंक्यपुत्त ! किसलिये इन्हें मैंने व्याकृत किया है ?—मालुंक्य-पुत्त ! यह साधक है, आदि-मल्लवर्च-उपयोगी है, ( और ) यह निर्वेद ० निर्वाणके लिये ( आव-श्यक ) है; इसलिये मैंने इन्हें व्याकृत किया ।

“इसलिये मालुंक्यपुत्त ! मेरे अ-व्याकृतको न-व्याकृतके तौरपर धारण कर, और मेरे व्याकृतको व्याकृतके तौरपर धारण कर ।”

भगवान् ने यह कहा; सन्तुष्ट हो आयुष्मान् मालुंक्यपुत्तने भगवान् के साधनको अभि-प्रक्षित किया ।



## ६४-महा-मालुङ्क्य-सुत्तन्त ( २।२।४ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् ध्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

कहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भयन्त !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“याद है न भिक्षुओ ! मुझे, मेरे उपदेशे पाँच अवरभागीय संयोजन ?”

ऐसा पूछनेपर आयुष्मान् मालुङ्क्यपुत्तने भगवान्से यह कहा—“भन्ते ! याद है, मुझे भगवान्के उपदेशे पाँच अवर-भागीय संयोजन ।”

“मालुङ्क्यपुत्त ! तो मेरे उपदेश तुझे कैसे याद हैं ० ?”

“भन्ते ! ( १ ) सत्काय-दृष्टि ( = नित्य-आत्मवाद )को मैंने भगवान्का उपदेशा अवर-भागीय ( = ओरभागीय )-संयोजन धारण किया है । ( २ ) विचिकित्सा ( = संशय )को ० । ( ३ ) शीलव्रत परामर्श ( = शील और व्रतको ही सय कुछ मानना )को ० । ( ४ ) काम-च्छन्द ( = काममें अनुराग )को ० । ( ५ ) व्यापादको ० ।

“मालुङ्क्यपुत्त ! इस प्रकार पाँच अवरभागीय-संयोजनोंको कैसे उपदेश देते तुने मुझे सुना ? मालुङ्क्यपुत्त ! अन्य दूसरे तीर्थ ( = मत )के पश्चात्तक ऐसे वक्त्रोंके बहलावेसे बहलाते हैं । “उतान ( ही ) सो सकनेवाले लघोच छोटे वक्त्रोंको सत्काय ( = आत्म-वाद ) भी नहीं होता, फिर कहाँसे उसे सत्काय-दृष्टि उत्पन्न होगी ? ( हाँ ) सत्काय-दृष्टिका अनुशय ( = संस्कार ) तो रहता है, उसके साथ चिन्ता । ० छोटे वक्त्रोंको धर्म ( = आनसिक विचार ) भी नहीं होते, कहाँसे उसे विचिकित्सा उत्पन्न होगी ? ( हाँ ) विचिकित्साका अनुशय तो रहता है, उसके ( मनके ) साथ चिन्ता । ० छोटे वक्त्रोंको शील ( = सदाचार ) भी नहीं होता, कहाँसे उसे शीलमें शीलव्रत-परामर्श उत्पन्न होगा, शील-व्रत-परामर्श-अनुशय तो रहता है ० । ० छोटे वक्त्रोंको काम भी नहीं होते, कहाँसे उसे कामोंमें कामच्छन्द उत्पन्न होगा ? ० कामच्छन्दानुशय तो रहता है ० । ० छोटे वक्त्रोंको शक्ति भी नहीं होती, कहाँसे उसे व्यापाद ( = उत्पीड़नेच्छा ) उत्पन्न होगा ? ० व्यापाद-अनुशय तो रहता है उसके साथ चिन्ता । मालुङ्क्यपुत्त ! अन्य दूसरे तीर्थवाले पश्चात्तक ऐसे वक्त्रोंको बहलावेसे बहलाते हैं ।”

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

“भगवान् ! इसीका काल है, सुगत ! इसीका काल है, कि भगवान् पाँच अवरभागीय-संयोजनोंका उपदेश करें, भगवान्से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे ।”

“तो आनन्द ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा, भन्ते !—( कह ) आयुष्मान् आनन्दने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवानने यह कहा—“यहाँ आनन्द ! आपोंके दर्शनसे वंचित ०<sup>१</sup> अज्ञ, अनायी सत्काय-दृष्टिसे पर्युत्थित = सत्काय-दृष्टिसे परेत ( = व्यास ) चित्तसे विहरता है । वह उत्पन्न सत्काय-दृष्टिसे निकलनेके ( रास्ते को ) ठोकसे नहीं जानता । उसकी वह न हटाई ( = अप्रति-विनीत ), इदता-प्राप्त सत्काय-दृष्टि अवरभागीय-संयोजन है । वह विचिकित्सासे पर्युत्थित, विचिकित्सासे व्यास-चित्त हो विहरता है । वह उत्पन्न विचिकित्सासे निकलनेके ( रास्तेको ) ठोक से नहीं जानता । उसकी वह न हटाई, इदता-प्राप्त विचिकित्सा अवरभागीय संयोजन है । वह शील-व्रत-परामर्शसे ० । ० काम-रागसे ( = कामच्छन्द ) ० । ० व्यापाद् ० ।

“और आनन्द ! आपोंके दर्शनसे अभिज्ञ, आर्यधर्मसे परिचित, आर्यधर्मसे सुविनीत ( = सुशिक्षित ), सत्पुरुषोंके दर्शनसे अभिज्ञ, सत्पुरुष-धर्मसे परिचित, सत्पुरुष धर्मसे सुविनीत आर्य-आयक सत्काय-दृष्टिसे पर्युत्थित = सत्काय-दृष्टिसे व्यास चित्त हो नहीं विहरता । वह उत्पन्न दुई सत्काय-दृष्टिसे निकलनेके ( रास्तेको ) ठोकसे जानता है ; ( जिसके कारण ) उसकी वह सत्काय-दृष्टि अनुशय ( = संस्कार )-रहित बन नष्ट हो जायेगी । वह विचिकित्सासे ० । वह शील-व्रत-परामर्शसे ० । वह काम-रागसे ० । वह व्यापाद्से ० ।

“आनन्द ! पाँच अवरभागीय-संयोजनोंके प्रहाण ( = नाश )के लिये जो मार्ग है = जो प्रतिपद् है, “उसके बिना वह पाँच अवरभागीय-संयोजनोंको जामेगा, देखेगा, या नाशेगा, यह सम्भव नहीं । जैसे, आनन्द ! सारवान् अपने महावृक्षको डालको बिना काटे, गुहे ( = केन् )को बिना काटे, सारका काटना हो सकेगा, यह संभव नहीं; ऐसे ही आनन्द ! पाँच अवरभागीय-संयोजनोंके प्रहाणके लिये ० सम्भव नहीं । आनन्द ! ० जो मार्ग है = जो प्रतिपद् है, उसे पाकर वह पाँच अवरभागीय-संयोजनोंको जामेगा ०, यह सम्भव है । जैसे, आनन्द ! सारवान् अपने महावृक्षकी डाल को काटकर, गुहेको काटकर सारका काटना होगा, यह संभव है; ऐसे ही आनन्द ! ० । जैसे, आनन्द ! गंगानदी जलसे करारतक भरी काक-पेया ( = करारपर बैठे बैठे कौभेके पीने योग्य, लयालव् ) हो; तब एक दुर्बल पुरुष ( यह कहता ) आवे—मैं इस गंगानदीके प्रवाहको बाँहसे तिछें काटकर; सकुवाल पार चला जाऊँगा । ( और ) वह गंगानदीके प्रवाहको बाँहसे तिछें काटकर सकुवाल पार नहीं जा सके । ऐसेही आनन्द ! सत्कायके निरोध ( = नाश )के लिये धर्म-उपदेश किये जाते समय जिसका चित्त प्रसन्न नहीं होता = प्रसन्नदित नहीं होता, स्थिर नहीं होता, विमुक्त नहीं होता; उसे दुर्बल पुरुषकी भी भाँति जानना चाहिये । जैसे आनन्द ! गंगानदी जलसे करारतक भरी, काक-पेया हो; तब एक बलवान् पुरुष ( यह कहता ) आवे—मैं ० पार कर जाऊँगा । ( और ) वह ० सकुवाल पार जा सके । ऐसे ही आनन्द ! सत्काय-निरोधके लिये धर्म-उपदेश किये जाते समय जिसका चित्त प्रसन्न होता है ०, उसे बलवान् पुरुषकी भाँति जानना चाहिये ।

“आनन्द ! पाँच अवरभागीय-संयोजनोंके नाशके लिये क्या मार्ग है = क्या प्रतिपद् है ?—यहाँ आनन्द ! मिथु उपधि ( = विषय )को त्यागकर, अकुशल-धर्मों ( = बुराइयों )को हटा-कर कायिक-दीर्घुष्यों ( = चंचलता )को सर्वथा शांत कर, कामोंसे विरहित ०<sup>२</sup> प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । वह जो कुछ रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञानसे संबंध रखनेवाले धर्म ( = पदार्थ ) हैं, उन्हें अमित्य, दुःख, रोग, गंद ( = फोड़े ), शून्य, घाव, भावाधा ( = पीड़ा ), पराये, प्रलोक ( = नाशमान ), शुन्य, और अन्-आत्मके तौरपर देखता है । वह उन धर्मोंसे



चित्तको निवारण<sup>१</sup> करके अमृत (= निर्वाण) धातु (= पद) की ओर चित्तको एकाग्र करता है—यह शांत प्रणीत (= उत्तम) है, जो कि यह संस्कारों का क्षमन, सारी उपधियों का परित्याग, तृष्णाका क्षय, विराग, निरोध (रूपी) निर्वाण है। वह उस (अमृतपद, तृष्णा-क्षय) में स्थित हो आसुर्यों (= चित्त-मलों) के क्षमनको प्राप्त होता है। यदि आसुर्यों के क्षयको नहीं प्राप्त होता, तो उसी धर्म-अनुरागने = उसी धर्म-मन्दोसे पाँचों अवयवभागीय संयोजनों के क्षयसे, औपपातिक (= देवता) हो, वहाँ (देवलोकमें) जा निर्वाणको प्राप्त होनेवाला होता है, (वह) उस लोकसे लौटकर आनेवाला नहीं होता। आनन्द ! यह भी मार्ग = प्रतिपद् है, पाँच अवयवभागीय संयोजनों के नाशके लिये।

“और फिर आनन्द ! मिश्र वितर्क विचारके शांत होनेपर ०<sup>१</sup> द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ०<sup>२</sup> तृतीय-ध्यानको ०<sup>३</sup>। ०<sup>४</sup> चतुर्थ-ध्यानको ०। और फिर आनन्द ! मिश्र रूप-संज्ञाके सर्वथा डोकने ०<sup>५</sup> आकारानन्त्यायतनको प्राप्त हो विहरता है ०। ०<sup>६</sup> विज्ञानानन्त्यायतन ०। ०<sup>७</sup> आकिचन्त्यायतन ०। ०<sup>८</sup> नैवसंज्ञा-नालंछायतनको प्राप्त हो विहरता है। वह जो कुछ वहाँ वेदना, संज्ञा ०<sup>९</sup> उस लोकसे लौटकर आनेवाला नहीं होता। आनन्द ! यह भी मार्ग = प्रतिपद् है।”

“अन्ते ! यदि यही मार्ग = प्रतिपद् है, पाँच अवयवभागीय-संयोजनों के प्रहाण (= नाश) के लिये, तो अन्ते ! क्यों कोई मिश्र चेतो-विमुक्ति (= छूटे चित्त-मलों) वाले होते हैं, कोई प्रज्ञा-विमुक्ति वाले ?”

“आनन्द ! इसे मैं इन्द्रिय (= मानसिक शक्तिके) भेदके कारण कहता हूँ।”

भगवान् ने यह कहा, सन्नुष्टहो वायुप्मान् आनन्दने भगवान् के भाषणको अभिमतं दित किया !

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ २५।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ २७-२८।

<sup>३</sup> देखो ऊपर।

## ६५-भद्रालि-सुत्तन्त (२।२।५)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिटिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भदन्त !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! मैं एक आसन-भोजनका सेवन करता हूँ ।” एक आसन-भोजनको सेवन करनेसे मैं ( अपनेमें ) निरोगता = निर्व्याधिता, पुती, बल और सुख (पूर्वक ) विहारको देखता हूँ । आलो, भिक्षुओ ! तुम भी एक आसन-भोजन सेवन करो, एक आसन-भोजन सेवन करनेसे तुम भी निरोगता • सुख-विहारको देखोगे ।”

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् भद्रालिने भगवान्से यह कहा—“मैं भन्ते ! एक आसन-भोजन को सेवन नहीं कर सकता । एक आसन-भोजन सेवन करनेपर भन्ते ! मुझे कौकृत्य (= चिंता ) होगा, उदासी (= विप्रतिसार ) होगी ।”

“तो भद्रालि ! जहाँ तू निमंत्रित हो, वहाँ ( भोजनका ) एक भाग या दूसरे भागकी ले जाकर ( दूसरी बार ) खाता, इस प्रकार या कर भी भद्रालि ! तू गुजारा कर सकता है ।”

“ऐसे भी भन्ते ! मैं भोजन नहीं कर सकता । ऐसे भोजन करनेपर भी भन्ते ! मुझे कौकृत्य होगा, विप्रतिसार होगा ।”

तब आयुष्मान् भद्रालिने भगवान्के शिक्षापद (= भिक्षु-नियम ) बनावते समय, भिक्षु-संघके शिक्षा ग्रहण करते समय उपेक्षा ( अन्-उत्साह ) की । तब आयुष्मान् भद्रालि इस सारे विषयसे भर भगवान्के सन्मुख नहीं गये, क्योंकि वह शास्ता-के-शासन (= हुक्म-धर्म )में शिक्षाका एही तरह पालन करनेवाले न थे ।

इस समय बहुतसे भिक्षु ( यह क्याल करते ) भगवान्का चीवर-कर्म (= वस्त्र सीना ) कर रहे थे, कि चीवर तैयार हो जाने पर तीन मास बाद भगवान् चारिका (= पर्यटन ) के लिये जायेंगे । तब आयुष्मान् भद्रालि, जहाँ वह भिक्षु थे, वहाँ—“जाकर उन भिक्षुओंके साथ—सम्मो-दन—” कर, एक ओर बैठ गये, एक ओर बैठे आयुष्मान् भद्रालिसे उन भिक्षुओंने कहा—

“आवुस भद्रालि ! वह भगवान्का चीवर-कर्म किया जा रहा है, चीवर तैयार हो जानेपर तीन मास बाद भगवान् चारिकाको जायेंगे । अच्छा, आवुस भद्रालि ! इस बात (= देसना )को अच्छी तरह मनमें करो, मत पीछे ( यह ) अधिक दुष्कर हो जाये ।”

भिक्षुओंको “अच्छा, आवुस !” कह, आयुष्मान् भद्रालि जहाँ भगवान् थे, वहाँ—“जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान्-भद्रालिने भगवान्से यह कहा—

“भन्ते ! बाल, मूढ = अ-कुशल जैसे मुझसे अपराध (= अत्यय ) हुआ जो कि भगवान्के शिक्षापद बनावते समय, भिक्षु-संघके शिक्षा ग्रहण करते समय मैंने उपेक्षा प्रकट की । भन्ते ! भग-



वान् मेरे उस अपराधको क्षमा करें, भविष्यमें संवर (= रक्षा ) के लिये ।”

“तो, भद्रालि ! बाल, मृद = अकुशल जैसे तुझसे अपराध हुआ, जो कि मेरे शिक्षापद बनाने समय, भिक्षु-संघके शिक्षा ग्रहण करते समय तूने उपेक्षा प्रकट की । भद्रालि ! तुझे यह भी ब्याल नहीं गुजरा कि भगवान् ध्रावस्तीमें विहर रहे हैं, भगवान् भी मुझे जानेंगे—‘भद्रालि नामक भिक्षु शास्ता के शासनमें शिक्षाको पूरा नहीं करनेवाला है’ । भद्रालि तुझे यह भी ब्याल (= समय ) नहीं गुजरा कि बहुतसे भिक्षु ध्रावस्तीमें वर्षों बालके लिये आये हुये हैं, वह भी जानेंगे—‘भद्रालि ० शिक्षाको पूरा करनेवाला नहीं है’ । भद्रालि ! तुझे यह भी ब्याल नहीं गुजरा कि बहुत सी भिक्षुणियाँ ध्रावस्तीमें वर्षों-बालके लिये आई हुई हैं ० । भद्रालि ! तुझे यह भी ब्याल नहीं गुजरा कि बहुतसे उपासक ध्रावस्तीमें बसते हैं ० । ० बहुतसी उपासिकायें ध्रावस्तीमें बसती हैं ० । ० बहुतसे दूसरे तीर्थ (= मत ) के श्रमण-ब्राह्मण ध्रावस्तीमें वर्षों-बालके लिये आये हुये हैं, वह भी जानेंगे—‘श्रमण मौतसका आवक, एक स्थविर (= बृद्ध ) भद्रालि नामक भिक्षु, शास्ताके शासनमें शिक्षाको पूरा करनेवाला नहीं है, तुझे यह भी ब्याल नहीं गुजरा ?”

“भन्ते ! बाल ०” भन्ते भगवान् मेरे अपराधको क्षमा करें भविष्यमें संवरके लिये ।”

“तो भद्रालि ! ०” भिक्षु-संघके शिक्षा ग्रहण करते समय तूने उपेक्षा प्रकट की । तो क्या मानता है, भद्रालि ! यहाँ कोई उभतो-भाग-विमुक्त (= अर्हन् ) भिक्षु हो, उसे मैं यह कहूँ—‘आ भिक्षु ! तू पंचममें मेरे लिये पार होनेका ( रास्ता ) बन जा’ । तो क्या वह पार होने का ( रास्ता ) घनेरा, या ( अपने ) दरीरको दूसरी ओर झुकावेगा, या ‘नहीं’ कहनेवाला होगा ?”

“ऐसा नहीं, भन्ते !”

“तो क्या मानता है, भद्रालि ! यहाँ कोई प्रज्ञा-विमुक्त भिक्षु हो ० । ० काय-साक्षी ० । ० दृष्टि-प्राप्त ० । ० श्रद्धा-विमुक्त ० ० धर्मानुसारी ० । ० ज्ञदानुसारी ० या ‘नहीं’ कहनेवाला होगा ?”

“ऐसा नहीं भन्ते !”

“तो क्या मानता है, भद्रालि ! क्या तू उस समय उभतो-भाग-विमुक्त या, ० या श्रद्धानुसारी या ?”

“नहीं ( था ) भन्ते !”

“तो भद्रालि ! उस समय तू रिक्त = कुछ अपराधी था ?”

“हाँ, भन्ते ! ०” भन्ते ! भगवान् मेरे उस अपराधको क्षमा करें, भविष्यमें संवर के लिये ।”

“तो भद्रालि ! ०” तूने उपेक्षा प्रकटकी । चूँकि भद्रालि ! तू अपराधको अपराधके तौरपर देव धर्मानुसार ( इसका ) प्रतिकार करता है, ( इसलिये ) उसे हम स्वीकार करते हैं । भद्रालि ! आर्य-विनय (= बुद्धधर्म ) में वह बुद्धि है, जो कि वह अपराधको अपराधके तौरपर देव भविष्यमें संवरके लिये धर्मानुसार प्रतिकार करना है ।

“भद्रालि ! यहाँ कोई भिक्षु शास्ताके शासनमें शिक्षाका पूरा करनेवाला न हो ; उसे यह हो—‘वर्षों मैं एकान्त शयन-शासन—अरण्य, वृक्ष-मूल, पर्वत, कंदरा, गिरिगुहा, श्मशान, वन-व्यस, अम्भोकास (= सुखी जगह ), पुञ्जल-पुञ्जको सेवन करूँ ; शाश्वद् मैं उत्तर-भनुज्य-धर्म (= मानव स्वभावसे परे ) जल-आर्य-ज्ञान-दर्शन-विशेष (= लोकोत्तर-ज्ञान, दिव्यशक्ति )

का साक्षात्कार करें। ( तब ) एकान्त शसन-आसन ० को सेवन करे। जैसे एकान्त विहार करते उसे शास्ता भी उपवाद् (= शिक्षा ) करते हैं, सोच कर समझचारी (= गुरुमाई ) भी उपवाद् करते हैं, देवता भी उपवदते हैं, अपने आपकी भी उपवदता है। इस प्रकार शास्ता द्वारा उपवदित हो, ० अपने आप उपवदित हो, उत्तर-मनुष्य धर्मका, अर्ह-आर्य-ज्ञान-दर्शन-विशेष का नहीं साक्षात्कार करता। सो क्यों ?—महालि ! यही जो कि वह शास्ताके शासनमें शिक्षाकी पूरी तरह पालन करनेवाला नहीं होता।

“किन्तु यहाँ महालि ! कोई भिक्षु शास्ताके शासनमें शिक्षाका पूरी तरह पालन करनेवाला होता है। उसको ऐसा होता है—यों व मैं एकान्त शयनासन (= निवास ) ० को सेवन करें। वैसे एकान्त विहार करते उसे शास्ता भी नहीं उपवदते, ० अलमार्थ-ज्ञान-दर्शन-विशेषको यह साक्षात्कार करता है। सो किस हेतु ?—महालि ! यही जो कि वह शास्ताके शासनमें शिक्षाकी पूरी तरह पालन करनेवाला होता है।

“और फिर महालि ! भिक्षु ०<sup>१</sup> प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। सो किस हेतु ?—महालि ! यही जो कि वह ०।

“और फिर महालि ! भिक्षु ०<sup>२</sup> द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ०।

“और फिर महालि ! भिक्षु ०<sup>३</sup> तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ०

“और फिर महालि ! भिक्षु ०<sup>४</sup> चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ०।

“और फिर महालि ! भिक्षु इस प्रकार चिन्ते एकाम ०<sup>५</sup> इस प्रकार आकार और उद्देशके सहित अनेक प्रकारके पूर्व-निवासोंको स्मरण करने लगता है। ०<sup>६</sup>।

“और फिर महालि ! भिक्षु इस प्रकार चिन्ते एकाम ०<sup>७</sup> स्वर्गको प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार अ-मातुष विभुद् दिव्य चक्षुसे ० देखने लगता है। ०

“और फिर महालि ! भिक्षु आन्तरिक क्षयके ज्ञानके लिये चिन्तको लुकाता है ०<sup>८</sup> अब यहाँ ( करने )के लिये कुल ( शेष ) नहीं है—इसे जान लेता है। ०<sup>९</sup>”

मेरा कहने पर आधुपमान् महालिने मगवान्से यह कहा—“भन्ते ! क्या हेतु है = क्या प्रत्यय है, जो कि कोई-कोई भिक्षु फिर-फिर ( उसी ) कारणको करता है ? मन्ने क्या है हेतु = क्या है प्रत्यय, जो कि कोई-कोई भिक्षु फिर-फिर वैसे कारणको नहीं करता ?”

“महालि ! कोई भिक्षु निरन्तर आपत्ति (= कसूर ) करनेवाला होता है = आपत्ति-बहुल ( होता है )। भिक्षुओंके कहने पर दूसरा-दूसरा करने लगता है, बाहरकी बात उठा देता है, कोप द्वेष, अ-प्रत्यय (= असन्तोष ) प्रकट करता है; ठोक्से नहीं घटता, रोम नहीं गिराता, निलसार नहीं खोजता (= वन्तति ), ‘जिससे संघ सन्नुष्ट हो, उसे कहेगा’—यह नहीं कहता। तब महालि ! भिक्षुओंको यह होता है—‘आवुसो ! यह भिक्षु निरन्तर आपत्ति करनेवाला है ० यह नहीं कहता। अच्छा, आवुसो ! इस भिक्षुको जैसे-वैसे उपरोक्षा (= जाँच ) करो, जिसमें इसका यह अधिकरण (= अमियोग, सुकदमा, जो उसके कसूरके सम्बन्धमें भिक्षु-संघमें पैदा है ) जल्दी न शान्त (= तै ) हो जाये।’ महालि ! भिक्षु इस भिक्षुके अधिकरणको जैसे-वैसे जाँचते हैं, कि उसका वह अधिकरण जल्दी नहीं शान्त होता।

“महालि ! कोई भिक्षु निरन्तर आपत्ति करनेवाला, आपत्ति-बहुल होता है—( किन्तु ) वह भिक्षुओंके कहने पर दूसरा दूसरा नहीं करने लगता। ० ‘जिससे संघ सन्नुष्ट हो, उसे



कहेगा'—कहता है । ० भिक्षु उस भिक्षुके अधिकरणको वैसे वैसे जाँचते हैं, कि उसका वह अधिकरण जल्दी ही शान्त हो जाता है ।

“भद्रालि ! कोई भिक्षु विरल आपत्ति वाला होता है = आपत्ति-ग्रहण नहीं होता । वह भिक्षुओंके कहनेपर दूसरा दूसरा करने लगता है ० उसका वह अधिकरण जल्दी नहीं शान्त होता ।

“० ‘वह भिक्षुओंके कहने पर दूसरा दूसरा नहीं करने लगता ० उसका वह अधिकरण जल्दी ही शान्त हो जाता है ।

“भद्रालि ! यहाँ कोई भिक्षु अदमात्र, प्रेममात्रसे रह रहा है । वहाँ भद्रालि ! भिक्षुओंको यह होता है—जाइयो ! यह भिक्षु अदमात्र प्रेममात्रसे रह रहा है । यदि हम बार-बार इस भिक्षुके कारण ( = कसूर-वेकसूरका निर्णय ) करेंगे, तो जो कुछ अदमात्र प्रेममात्र इसको है, वह भी कहीं इसका छूट न जाये । जैसे भद्रालि ! किसी पुरुषको एक आँख हो, उसके वस्तु भित्त, जाति-भाई उस एक आँखकी रक्षा करें—जो इसकी एक आँख है, वह भी कहीं नष्ट न हो जाये । ऐसे ही भद्रालि ! कोई भिक्षु अदमात्र = प्रेममात्रसे वर्तता है, ० वह भी कहीं इसका छूट न जाये ।

“भद्रालि ! यह हेतु है = यह प्रत्यय है, जिससे कोई कोई भिक्षु बार बार कारण करते हैं । भद्रालि ! यह हेतु = प्रत्यय है, जिससे कि कोई कोई भिक्षु बार बार कारण ( = दोष ) नहीं करते ।”

“भन्ते ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जो कि पूर्वकालमें अवतर शिक्षापद ( = भिक्षु-नियम ) थे, और बहुत भिक्षु आत्मा ( = उत्तम ज्ञान ) में अवस्थित थे ? भन्ते ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जो कि आजकल शिक्षापद बहुत हैं, किन्तु अवस्था भिक्षु आत्मामें अवस्थित होते हैं ?”

“भद्रालि ! शास्ता ( = गुरु ) तब तक आश्रमों ( = शिष्यों ) के लिये शिक्षापदका विधान नहीं करते, जब तक कि यहाँ संघमें कुछ आश्रम ( = चित्त-मल )-स्थानीय धर्म ( = कार्य ) हो नहीं जाते । जब भद्रालि ! संघमें कुछ आश्रमस्थानीय धर्म उत्पन्न हो जाते हैं, तो उन्हीं आश्रम-स्थानीय धर्मोंके दूर करनेके लिये शास्ता संघके लिये शिक्षापदका विधान करते हैं । भद्रालि ! संघमें तब तक कोई आश्रम-स्थानीय धर्म उत्पन्न नहीं होते, जब तक कि संघ महान् न हो गया हो । जब भद्रालि ! संघ महान् हो गया होता है, तो यहाँ कोई आश्रम-स्थानीय धर्म उत्पन्न होते हैं, तब ० शास्ता संघके लिये शिक्षापदका विधान करते हैं । भद्रालि ! तब तक संघमें कोई आश्रमस्थानीय धर्म नहीं उत्पन्न होते, जब तक कि संघ बड़े कामको न प्राप्त हो गया हो ० । ० बड़े कामको न प्राप्त हो गया हो ० । ० बहुश्रुत मानको न प्राप्त हो गया हो ० । राज्ञि-भाव ( = चिरकाल से अवस्थिति ) को न प्राप्त हो गया हो ० ।

“भद्रालि ! तुम लोग उस समय थोड़े थे, जब कि मैंने तुम्हें आज्ञानीयत्सूपमा ( = आज्ञानीयावोपमा ) धर्म-पर्याय ( = सूत्र ) को उपदेश किया था । याद है, भद्रालि !”

“नहीं, भन्ते !”

“वहाँ, भद्रालि ! क्या कारण समझता है ?”

“मैं भन्ते ! चिरकालसे शास्ताके शासनमें शिक्षाको पूरा करनेवाला न था ।”

“भद्रालि ! यही हेतु = यही प्रत्यय नहीं है । बल्कि भद्रालि ! दीर्घकालसे मैंने तेरे चित्त के भावको जान लिया है—‘वह भोग्यपुरुष ! मेरे धर्म-उपदेश करते समय, ध्यान करके मन लगा कर, सारे चित्तको एकाग्र कर, सावधान हो धर्म नहीं सुनता’ । अच्छा भद्रालि ! तो मैं तुझे

आजानीयस्सूपम धर्म-पर्यायको उपदेशता हूँ, उसे सुन अच्छी तरह मनमें कर, कहता हूँ ।”

“अच्छा, भन्ते !”—( कह ) आयुष्मान् महालिने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“जैसे महालि ! चतुर चातुक-सवार भद्र = आजानीय अश्वको या कर,

( १ ) पहिले मुख्याधान (= लगाम लगाना आदि ) का कारण (= शिक्षा ) करता है । पहिले न जाना कारण होनेसे मुख्याधान कारण करते वक्त कुछ चपलता, मूल, प्रमाद होते ही हैं । क्योंकि वह निरन्तर, क्रमशः उसे कारण (= शिक्षा ) के देनेसे उसे सीख लेता है । ( २ ) महालि ! निरन्तर क्रमशः शिक्षा देनेसे जब वह उसे सीख लेता है, तो चातुक सवार उसे आगेकी शिक्षा, युगाधान (= जुना सीखना ) तिलकाला है । पहिले न जाना (= किया ) कारण होनेसे ० । ( ३ ) ० जब वह उसे सीख लेता है, तो ० चातुक सवार उसे आगेकी शिक्षा (= करण ) मँडल (= चक्र ) काटना ० । ० खुरकाय (= निःशब्दगति ) ० । ० घाघन (= सर्पट ) ० । ० रचार्य (= दिनहिनामेकी शिक्षा ) ० । ० राजगुण (= एक गति ) ० । ० राजवंश घणिय (= एक गति ) ० । ० बलिय (= एक गति ) में प्रवेश कराता है । महालि ! इन दस गुणों (= अंगों ) से युक्त भद्र = आजानीय अश्व राजार्ह = राज-योग्य होता है, राजाका अंगरी कहा जाता है । ऐसे ही महालि ! दस अंगोंसे युक्त मिथु आवाहन-योग्य, अतिभिन्नेवा-योग्य, दान-योग्य, हास-वोधने-योग्य, लोकेने पुण्य ( घने ) का अनुपम क्षेत्र (= क्षेत्र ) होता है । किन दश ( अंगों ) से ?—  
( १ ) वहाँ, महालि ! मिथु अशेष सम्यग्दृष्टिसे युक्त होता है, ( २ ) ० अशेष (= संपूर्ण ) सम्यक्-संकल्प ० । ( ३ ) ० अशेष सम्यग्-वाक् ० । ( ४ ) ० अशेष सम्यक्-कर्मान् ० । ( ५ ) ० अशेष सम्यग्-आजीव ० । ( ६ ) अशेष सम्यग्-व्यापार ० । ( ७ ) ० अशेष सम्यक्-स्मृति ० । ( ८ ) अशेष सम्यक्-समाधि ० । ( ९ ) ० अशेष सम्यग् (= ठीक ) ज्ञान ० । ( १० ) अशेष सम्यग्-विमुक्ति (= ० मुक्ति, रागद्वेष मोहसे चित्तकी मुक्ति ) ० । महालि ! इन दस गुणोंसे युक्त मिथु ० अनुपम क्षेत्र होता है ।”

भगवान्ने यह कहा, तन्नुट हो आयुष्मान् महालिने भगवान्के भाषणकी अभिनन्दित किया ।



## ६६—लकुटिकोपम-सुत्तन्त (२।२।६)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् अंगुत्तराप<sup>१</sup> (देश) में आपण नामक अंगुत्तराप (वासियों) के कलशमें विहार करते थे ।

तब भगवान् पूर्वाह्णके समय पहिनकर पात्र-चीवर ले पिंड (= भिक्षा ) के लिये आपण में प्रविष्ट हुये । आपणमें पिंडुच्चार (= सधूँकरो माँगना ) करके, पिंडपात (= भिक्षा ) से निवृत्त हो दिनके विहारके लिये एक वन-वंडमें गये । उस वन-वंडमें प्रविष्ट हो एक वृक्षके नीचे दिनके विहारके लिये बैठे । आयुष्मान् उदायी भी पूर्वाह्णके समय पहिन कर ० एक वृक्षके नीचे दिनके विहारके लिये बैठे ।

तब एकान्तमें ध्यानावस्थ हो बैठे आयुष्मान् उदायीके चित्तमें यह वितर्क उत्पन्न हुआ—

“अहो ! भगवान् हमारे बहुतसे दुःखोंके अपहर्ता हैं । अहो ! भगवान् हमारे बहुतसे सुखों (= सुख-धर्मों ) के उपहर्ता (= लानेवाले ) हैं । अहो ! भगवान् हमारे बहुतसे अकुशल-धर्मों (= बुराइयों ) के अपहर्ता हैं । अहो ! भगवान् हमारे बहुतसे कुशल-धर्मों (= भलाईयों ) के उपहर्ता हैं ।”

तब आयुष्मान् उदायी सायंकाल प्रतिलेखन (= ध्यान ) से उठ कर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान् को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् उदायीने भगवान् से यह कहा—

“भन्ते ! आज एकान्तमें स्थानावस्थ हो बैठे मेरे चित्तमें यह वितर्क उत्पन्न हुआ—‘अहो ० उपहर्ता हैं ।’ भन्ते ! पहिले हम शामको भी खाते थे, सवेरेको भी, दिवा (= मध्याह्न ) को भी विकाल (= अपराह्न ) में भी । उस समय जब भगवान् ने भिक्षुओंको संबोधित किया—‘भिक्षुओ ! तुम इस मध्याह्न-वायु दिनके भोजनको छोड़ो ।’ उस समय भन्ते ! मुझे बुरा लगा—दुर्मनता हुई—‘जो कि गृहपति श्रद्धासे हमें उत्तम खाद्य-भोज्य मध्याह्न-वायु दिनको देते हैं, उसका भी भगवान् हमें त्याग करना कहते हैं, उसको भी सुगत हमें छोड़ना कहते हैं ।’ सो हमने भन्ते ! भगवान् के प्रति प्रेम, गौरव, डी (= लज्जा ), अपक्षपा (= संकोच ) का क्या कर उस विकाल भोजनको छोड़ दिया । सो हम भन्ते ! शामको खाते, सवेरे खाते थे । फिर वह भी समय आया जब भगवान् ने भिक्षुओंको संबोधित किया—‘भिक्षुओ ! तुम इस रातके विकाल भोजनको छोड़ो ।’ उस समय भन्ते ! मुझे बुरा लगा; दुर्मनता हुई—‘जो कि गृहपति श्रद्धासे हमें उत्तम खाद्य-भोज्य रातको विकालमें देते हैं, उसका भी भगवान् हमें त्याग करना कहते हैं, उसका भी सुगत हमें छोड़ना

<sup>१</sup> भागलपुर-मुंगेर जिलेके गंगाका उत्तरका भाग ।

कहते हैं। पहिले ( एक धार ) मन्ते ! कोई पुरुष दिवको भौंदा लेता बोला—‘हन्त ! इसे रखदो, शामको सब इकट्ठा होकर खायेंगे’ । जो कुछ मन्ते ! संवतिषी ( = सुन्दर पाक ) है, सभी रातको ( अधिक ) होती है, दिनको कम । सो हमने मन्ते ! भगवान् के प्रति प्रेम ० क्याल कर उस रात्रि के विकाल भोजनको डोष दिया । पहिले मन्ते ! मिथु रातके अंधकारमें भिक्षादन ( = पिंडधार ) करते थे । ( उस समय वह ) चन्दनिका ( = गवहे ) में भी हुस जाते थे, गवही ( = ओलगाह ) में भी गिर जाते थे, काँटेकी कंधान पर भी चढ़ जाते थे, सोई गाधपर चढ़ जाते थे, कृत-कर्म ( = अपना काम मिलने कर लिया है ) अन-कृत-कर्म घोरोंके साथ भी डगका संगम होजाता था । ( दुराचारिणी ) स्त्रियाँ भी उन्हें अधर्मके लिये तुलाती थीं । पहिले एक समय मन्ते ! मैं रातके अंधकारमें भिक्षादन कर रहा था, विजलीकी चमकमें, मन्ते ! मैंने एक स्त्रीको बर्तन साफ करते देखा । उसने मुझे देख चीत्कार किया—‘अरे मरी ! पिशाच !! मुझे ( खाने आ रहा है ) !!!, ऐसा कहने पर मैंने मन्ते ! उस स्त्रीको कहा—‘भगिनी ! मैं पिशाच नहीं हूँ, भिक्षाके लिये मिथु खावा हूँ ।’ ‘मिथुका घाप मरे, मिथुकी भा मरे । मिथुको गाय काटनेकी सीधन दुरीसे अपना पैद काट लेना अच्छा है, न कि रातके अंधकारमें तुम्हारा भोजन भोगना ।’ मन्ते ! वह ( घात ) याद करते मुझे ऐसा होता है—‘अहो ! भगवान् हमारे बहुतसे दुःखोंके अपहर्ता हैं ० कुशल धर्मोंके उपहर्ता हैं ।’

‘ऐसे ही उदायी ! कोई कोई मोघपुरुष मेरे—‘यह छोड़ो’—कहने पर ऐसा कहते हैं—‘क्या इस छोटी बातके लिये, तुच्छ बातके लिये यह अमण झिड़ कर रहा है’ और वह उसे नहीं छोड़ते, और मेरे विषयमें विरक्ति उत्पन्न करते हैं । ( किन्तु ) जो मिथु सीधन चाहनेवाले होते हैं, उनको यह होता है—‘यह अवर्तत बंधन है, दृढ बंधन है, स्थिर बंधन है, मजबूत ( = अप्रतिष्ठ = न-सदा ) बंधन है, स्थूल कलिंगर ( = पशुओंके गलेमें बाँधने का काट ) है ।’ जैसे उदायी ! प्रति ( = घोष ) लताके बंधनसे बँधी लघुटिका ( = गौरव्या ) पक्षी वही बंध, बंधन या मरणकी प्रतीक्षा करती है । उदायी ! जो ( आदमी ) यह कहे—‘चूँकि वह लघुटिका पक्षी प्रति-लताके बंधनसे बँधी है, वह वही बंध, बंधन या मरणकी प्रतीक्षा कर रही है; किन्तु उसका वह अवल बंधन है, दुर्बल बंधन है, प्रतिष्ठ ( = सदा ) बंधन है, असारक बंधन है ।’ क्या उदायी ! ऐसा कहते वह ठीक कह रहा है ?’

‘महीं मन्ते ! वह लघुटिका पक्षी जिस प्रतिलताके बंधनसे बँधी वही बंध, बंधन या मरणकी प्रतीक्षा कर रही है, वह उसके लिये यलवान् ( = मजबूत ) बंधन है ० स्थूल कलिंगर है ।’

‘ऐसे ही उदायी ! कोई कोई मोघपुरुष मेरे—‘यह छोड़ो’—कहनेपर, ० स्थूल कलिंगर है ।

‘किन्तु यहाँ उदायी ! कोई कोई कुलपुत्र मेरे—‘यह छोड़ो’—कहने पर, ऐसा कहते हैं—‘इस छोटी बात, इस तुच्छ बातका छोड़ना क्या ( पक्षी बात ) है, जिसे छोड़नेके लिये भगवान् कह रहे हैं, जिसके स्वागके लिये मुगत कह रहे हैं’ और उसे छोड़ देते हैं, और मेरे विषयमें विरक्ति उत्पन्न नहीं करते । जो सीधन चाहनेवाले मिथु हैं, वह उसे छोड़ निश्चिन्त हो, रोम गिराकर, पर-द-वृत्ति ( = दूसरेके हियेसे वृत्ति करनेवाले ) युगके समान चित्तके साथ चिह्नते हैं । उदायी ! उनके लिये वह अवल बंधन है ० असारक बंधन है । जैसे उदायी ! = हरिस-जैसे दाँतोंवाला महाकाय, संग्रामचारी, अहं भगवत् स्त्रियोंसे पैदा उत्तम जातका राजकीय नाग ( = हाथीका पट्टा ) थोड़ाही शरीर बुझानेसे उन बंधनोंको तोड़ कर, छिन्न कर, जहाँ चाहे वहाँ चला जाये । उदायी ! जो ऐसा कहे—० जो कि ० हाथीका पट्टा थोड़ा ही शरीर बुझानेसे जिन बंधनोंको तोड़ कर ० जहाँ चाहे,



वहाँ चला जाये; वह मज्झत बंधन है • स्थूल कलिगर है । ऐसा कहते हुये उदायी ! क्या वह ठीक कह रहा है ?”

“नहीं, मन्ते ! • राजाका नाग बोधा ही शरीर धुमानेसे जिन बंधनोंको तोड़ कर • चला जाये, वह उसके लिये अथल बंधन है • असारक बंधन है ।”

“ऐसेही उदायी ! कोई कोई कुलपुत्र मेरे—‘यह छोड़ो’—कहने पर • सुगके समान चित्तसे विहरते हैं । उदायी ! उनके लिये वह अथल बंधन है • असारक बंधन है ।”

“जैसे, उदायी ! कोई दरिद्र धनहीन, अन्-आय पुरुष हो, उसके पास एक कुरूप, कौआ-उजावन, टूटा फूटा घर हो, एक कुरूप टूटी फूटी खटोली हो, एक ‘‘घड़ेभर भरने लायक अनाज हो, एक कुरूप मेहरिया (= वायिका) हो । वह (संघ-)आराममें हाथ-पैर धो भनोज भोजन ग्रहण कर शीतल छायामें बैठे ध्यानरत मिश्रुको देखे । उसको ऐसा हो—‘अहो, भ्रमण-भाव (= संन्यासी होना) सुखमय है, अहो ! भ्रमणभाव निरोग है । अहो ! कहीं मैं भी केश-दायी सुँडा कापायवस्त्र पहिन घर छोड़ बेघर (= अनागारिक) हो प्रव्रजित होताता ।’ किन्तु वह उस अपने कुरूप, कौआ-उजावन, टूटे फूटे घरको • कुरूप मेहरियाको छोड़ कर, केश-दायी सुँडा कापायवस्त्र पहिन प्रव्रजित नहीं हो सके । उदायी ! यदि कोई यह कहे—जिस बंधनसे बँधा वह, उस अपने • टूटे फूटे घर को • एक कुरूप मेहरियाको छोड़ कर • प्रव्रजित नहीं हो सकता; वह उसके लिये अथल बंधन है • असारक बंधन है’ ऐसा कहते हुये उदायी ! क्या वह ठीक कह रहा है ?”

“नहीं, मन्ते ! जिस बंधनसे बँधा वह, उस अपने • टूटे फूटे घर • को छोड़ कर • प्रव्रजित नहीं हो सकता, वह उसके लिये अथल बंधन है • स्थूल कलिगर है ।”

“ऐसे ही उदायी ! कोई कोई भोघपुरुष—मेरे ‘यह छोड़ो’—कहने पर, • स्थूल कलिगर है ।

“जैसे उदायी ! कोई गृहपति या गृहपति-पुत्र आय, महाधनी, महामोगवान् हो; ( उनके पास ) बहुत अशर्कियों (= मिश्रु ) के ढेरका संचय हो, बहुत अनाजके ढेरका संचय हो, बहुत क्षेत्रोंका संचय हो, बहुत घरोंका संचय हो, बहुत मार्गानोंका संचय हो, बहुत दासों •, • दासियों • का संचय हो । वह (संघ-)आराममें हाथ-पैर धो • मिश्रुको देखे । उसको ऐसा हो—‘अहो ! भ्रमण-भाव • घरसे बेघर हो जाता है ।’ और वह उस अपनी बहुत अशर्कियोंके ढेरके संचय को • बहुत दासियोंके संचयको छोड़ कर, केशदायी सुँडा • प्रव्रजित हो सके । तो उदायी ! यदि ऐसा कहे—जिस बंधनसे बँधा वह; उस अपने • दासियोंके संचयको छोड़ कर प्रव्रजित हो सकता है, वह उसका मज्झत बंधन है • स्थूल कलिगर है । ऐसा कहते हुये उदायी ! क्या वह ठीक कह रहा है ?”

“नहीं, मन्ते ! वह गृहपति • जिस बंधनसे बँधा, अपने • दासियोंके संचयको छोड़ कर, प्रव्रजित हो सकता है; वह इसके लिये अथल बंधन है • असारक बंधन है ।”

“उदायी ! लोकमें चार प्रकारके पुरुष-पुद्गल वित्तमान हैं । कौनसे चार ?—( १ ) यहाँ उदायी ! एक पुद्गल उपधि (= भोग-इच्छा, भोग-संग्रह ) के ग्रहणके लिये = उपधिके त्यागके लिये संलग्न होता है; तब उपधि-ग्रहणके लिये • संलग्न उसे उपधि-संबंधी स्वर-संकल्प (= संकल्प ) उत्पन्न होते हैं, वह उनको स्वीकार करता है, उनको छोड़ता नहीं, अलग नहीं करता, भन्त नहीं करता, नाश नहीं करता । उदायी ! इस पुद्गलको मैं संयोगी कहता हूँ, विसंयोगी नहीं । सो

किस हेतु ?—उदायी ! 'इस पुद्गलकी इन्द्रिय ( = मनका झुकाव ) भिन्न है'—यह मुझे ज्ञात है । ( २ ) यहाँ उदायी ! एक पुद्गल उपधि प्रहाणके लिये ० संलग्न होता है; तब ० स्वर-संकल्प उत्पन्न होते हैं, वह उन्हें न स्वीकार ( = स्वागत ) करता है, न उनको छोड़ता है ० । उदायी ! इस पुद्गलको भी मैं संयोगी कहता हूँ, विसंयोगी नहीं । ० यह मुझे ज्ञात है । ( ३ ) यहाँ उदायी ! ० स्वर-संकल्प उत्पन्न होते हैं । उदायी ! ( उसको ) स्मृति ( = होश ) धीरे-धीरे ( = दंभा ) उत्पन्न होती है; फिर वह शीघ्र ही उन्हें छोड़ता है ० । जैसे उदायी ! ( कोई ) पुरुष दिगकी धूप में सन्तप्त लोहेके कड़ाहमें दो या तीन पानीके छींटे डाले, उदायी ! पानीकी छींटोंका गिरना धीरे धीरे होता है; ( किन्तु ) फिर वह शीघ्र नष्ट हो जाते हैं । ऐसे ही यहाँ उदायी ! कोई ० स्वर-संकल्प उत्पन्न होते हैं । ० शीघ्र ही उन्हें छोड़ता है ० । उदायी ! इस पुद्गलको भी मैं संयोगी कहता हूँ, विसंयोगी नहीं । ० यह मुझे ज्ञात है । ( ४ ) यहाँ उदायी ! एक पुद्गल—'उपधि दुःखोंका मूल है'—यह जानकर, उपधि-रहित होता है, उपधिके क्षयके कारण विमुक्त होता है । उदायी ! इस पुद्गलको मैं वि-संयोगी कहता हूँ, संयोगी नहीं । तो किस हेतु ?—उदायी ! इस पुद्गलकी इन्द्रिय भिन्न है'—यह मुझे ज्ञात है ।

'उदायी ! पाँच काम-गुण' ( = भोग ) हैं । कौनसे पाँच ?—( १ ) चक्षु द्वारा ज्ञेय ( = चक्षुर्विज्ञेय ) इष्ट, कान्त, अनाप = प्रिय, कर्मावीय = रंजनीय रूप, श्रोत्र-विज्ञेय ० शब्द, प्राण-विज्ञेय ० गंध, जिह्वा-विज्ञेय ० रस, काय-विज्ञेय ० स्पर्शव्य । उदायी ! यह पाँच काम-गुण हैं । इन पाँच काम-गुणोंको लेकर उदायी ! जो सुख-सौमनस्य उत्पन्न होता है, वह काम-सुख = मीठ-सुख, पृथग्जन ( = अलग )-सुख, अनार्य-सुख कहा जाता है, ( जो कि ) असेवनीय = अध्याधनीय न-बहुली-करणीय ( = न बढ़ाने योग्य ) है । 'इस सुखसे दूरना चाहिये'—मैं कहता हूँ । यहाँ उदायी ! भिक्षु कामोंसे विरहित ० \* प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है ० \* द्वितीय-ध्यान ० । ० \* तृतीय-ध्यान ० । ० \* चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । उदायी ! यह निष्कामता ( = काम-रहित ) सुख है, प्रविवेक-सुख, उपपन्न-सुख, सम्बोध-सुख कहा जाता है; ( जो कि ) सेवनीय, भावनीय, बहुलीकरणीय है । 'इस सुखसे भय नहीं करना चाहिये'—मैं कहता हूँ ।

'यहाँ उदायी ! भिक्षु कामोंसे विरहित ० \* प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । उदायी ! इसे मैं इंगित ( = चंचल ) कहता हूँ । यहाँ क्या इंगित है ?—( यही ) जो कि ( इस ध्यानमें ) वितर्क, विचार नष्ट नहीं हुये रहते' । यहाँ उदायी ! भिक्षु ० \* द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । उदायी ! इसे मैं इंगितमें कहता हूँ । ( यहाँ क्या ) इंगित है ?—( यही ) जो कि ( इस ध्यानमें ) प्रीति-सुख निरुद्ध नहीं हुआ रहता' । ० \* तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ० जो कि ( इस ध्यानमें ) उपेक्षा-सुख निरुद्ध नहीं हुआ रहता' । ० \* चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । उदायी ! मैं इसे अन्-इंगित ( = चंचलता रहित ) कहता हूँ ।

'यहाँ उदायी ! भिक्षु कामोंसे विरहित ० \* प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । उदायी ! इसे मैं अन्-अर्ल ( = अपराध )—कहता हूँ, 'लोष दो'—कहता हूँ, 'अतिक्रमण कर जाओ'—कहता हूँ । इसके अतिक्रमणका उपाय क्या है ?—यहाँ उदायी ! ० \* द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । यह उसका समतिक्रम ( = अतिक्रमण करनेका उपाय ) है । उदायी ! इसे भी मैं ० 'अतिक्रमण कर जाओ' कहता हूँ । इसका समतिक्रम क्या है ?—० \* तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता



है। यह उसका समतिक्रम है। इसे भी ० ० 'अतिक्रमण कर धामो'—कहता हूँ। इसका समतिक्रम क्या है?—०<sup>१</sup> चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। यह उसका समतिक्रम है। इसे भी ० ०। ०—<sup>१</sup> आकाशानन्त्यायतन ०। ० ०<sup>१</sup> विश्वानानन्त्यायतन ०। ० ०<sup>१</sup> आकिञ्चन्यायतन ०। ० ०<sup>१</sup> नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनको प्राप्त हो विहरता है। यह उसका समतिक्रम है। इसे भी उदायी! मैं लपपांस ० कहता हूँ। क्या है, इसका समतिक्रम?—यहाँ उदायी! सिद्ध नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर संज्ञा-चेदित-निरोध<sup>१</sup>को प्राप्त हो विहरता है। यह उसका समतिक्रम है। इस प्रकार उदायी! मैं नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनके भी ग्रहाण (= परित्याग) को कहता हूँ। उदायी! क्या ऐसा कोई छोटा-बड़ा (= अणु-स्थूल) संयोजन (= बंधन) देखते हो, जिसके ग्रहाणको मैं नहीं कहता?"

"नहीं, भन्ते!"

भगवान् ने यह कहा, सन्तुष्ट हो आबुष्मान् उदायीने भगवान् के भाषणको अभिनन्दित किया।

## ६७-चातुम-सुत्तन्त (२।२।७)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् चातुमाके आमलकीवन (= बाँवलेके धाग) में बिहरते थे।

उस समय भगवान्के दर्शनाथ सारिपुत्त, भोगलान आदि पाँचसौ भिक्षु चातुमामें जाये-  
हुये थे। ( उस समय ) वह आगतुक भिक्षु ( उस स्थानके ) निवासी भिक्षुओंके साथ संमोदन  
( = कुशल-प्रश्न पूछना ) करते, शयनासन घटलाते, पात्र-चीवर सँभालते जैसे-शब्द = महाशब्द  
करने लगे। तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

“आनन्द ! यह कौन जैसे-शब्द-महाशब्द करनेवाले हैं, मानो केवट सड़ली मार रहे हैं ?”

“भन्ते ! यह सारिपुत्त, भोगलान आदि पाँचसौ भिक्षु \* महाशब्द कर रहे हैं।”

“तो, आनन्द ! मेरे वचनसे उन भिक्षुओंसे कह—‘शाखा आयुष्मानोंको बुला रहे हैं’।”

“अच्छा, भन्ते !”—( कह ) भगवान्को उत्तर दे, आयुष्मान् आनन्दने जहाँ वह भिक्षु  
थे, वहाँ—“जाकर उन भिक्षुओंसे यह कहा—

“शान्ता, आयुष्मानोंको बुला रहे हैं।”

“अच्छा, आयुस !”—( कह ) आयुष्मान् आनन्दको उत्तर दे वह भिक्षु जहाँ भगवान् थे  
वहाँ—“जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे उन भिक्षुओंसे भगवान्ने यह कहा—

“भिक्षुओ ! क्यों तुम जैसे शब्द = महाशब्द कर रहे थे, मानो केवट सड़ली मार रहे हों ?”

“भन्ते ! यह सारिपुत्त, भोगलान आदि ( हम ) पाँच सौ भिक्षु \* पात्रचीवर सँभालते  
\* महाशब्द कर रहे थे।”

“जाओ, भिक्षुओ ! तुम्हें चले जाने (= पणामना) के लिये कहता हूँ; मेरे साथ  
तुम न रहना।”

“अच्छा, भन्ते !”—( कह ) वह भिक्षु भगवान्को उत्तर दे, आसनसे उठ, भगवान्को  
अभिवादनकर प्रदक्षिणा कर शयनासन सँभाल, पात्र-चीवर ले चले गये।

उस समय चातुमाके शाक्य किली कामसे संस्थागार (= प्रजातंत्रभवन) में जमा  
थे। चातुमाके शाक्योंने दूरसे उन भिक्षुओंको जाते देखा। देखकर जहाँ वह भिक्षु थे, वहाँ—  
जाकर उन भिक्षुओंसे यह कहा—

“हन्त ! आप आयुष्मान् कहाँ जा रहे हैं ?”

“आयुसो ! भगवान्ने भिक्षु-संघको चले जानेके लिये कहा।”

“तो आयुष्मानो ! सुहृत् भर ( आप सब यहीं ) रहें; शाक्य हम भगवान्को प्रसन्न  
( = राजी ) कर सकें।”



“अच्छा, आधुसो !” ( कह ) उन भिक्षुओंने चातुभाके शाक्योंको उत्तर दिया ।

तब चातुभावाले शाक्य जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे—

“भन्ते ! भगवान् भिक्षुसंघको अभिनन्दन = अभिवन्दन ( = स्वीकार ) करें । भन्ते ! जैसे भगवान्ने पहिले भिक्षुसंघको अनुगृहीत किया था, वैसेही अब भी अनुगृहीत करें । भन्ते ! यहाँ ( = भिक्षुसंघ ) में नये अचिर-प्रवृत्ति, इस धर्ममें अभी हालके आगे भिक्षु हैं । भगवान्का दर्शन न मिलनेपर उनके ( मनमें ) विकार = अन्वधात्व होता है, इसी प्रकार ० भगवान्का दर्शन न मिलनेपर उनके विकार = अन्वधात्व होगा । जैसे, भन्ते ! छोटे अंडरों तरुण-बीजों को जल न मिलनेपर विकार = अन्वधात्व होता है, इसी प्रकार ० भगवान्का दर्शन न मिलनेपर उनके विकार = अन्वधात्व होगा । जैसे, भन्ते ! माताको न देखने पर छोटे बच्चे ( = तरुण वत्स ) को विकार = अन्वधात्व होता है, इसी प्रकार ० । भन्ते ! भगवान् भिक्षुसंघको अभिनन्दन कर अनुगृहीत करें ।”

तब सहस्रपति ( = सहा मझाङके स्वामी ) ब्रह्मा भगवान्के चित्तके चित्तको जान कर, जैसे बलवान् पुरुष ( अप्रयास ) समेटी बाँहको फैला दे, फैलाई बाँहको समेट ले, ऐसेही ब्रह्मलोफ-में अन्तर्धान हो भगवान्के सामने प्रकट हुआ । तब सहस्रपति ब्रह्माने उत्तरार्त्त ( = ऊपरकी चर ) को एक ( = दाहिने ) कंधे पर कर, भगवान्की ओर अंजलि जोष भगवान्से यह कहा—

“भन्ते ! भगवान् भिक्षु-संघको अभिनन्दन = अभिवन्दन करें ० ” छोटे अंडरोंका ० छोटे बच्चेको ० अनुगृहीत करें ।”

चातुभावाले शाक्य और सहस्रपति ब्रह्मा बीज, और तरुणकी उपमासे भगवान्को प्रसन्न करनेमें सफल हुये । तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने भिक्षुओंको आसन्नित किया—

“बडो, आधुसो ! पाज-बोवर डडाओ । चातुभावाले शाक्यों और सहस्रपति ब्रह्माने बीज और तरुणकी उपमासे भगवान्को प्रसन्न कर ( = मना ) लिया ।”

“अच्छा, आधुसो”—( कह ) आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको उत्तर दे, वह भिक्षु आसनसे उठ, पाज बीवर ले जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रसे भगवान्ने यह कहा—

“सारिपुत्र ! मेरे भिक्षुसंघके निकाल ( = पणामना ) देने पर तुझे कैसा हुआ था ?”

“भन्ते ! मुझे ऐसा हुआ था—भगवान्ने भिक्षु-संघको निकाल दिया, अब भगवान् निश्चिन्त हो दृष्ट-धर्म ( = इसी जन्म ) के सुखसे युक्त हो विहरेंगे । इस भी अब दृष्ट-धर्म सुखसे युक्त हो विहरेंगे ।”

“ठहर सारिपुत्र ! ठहर सारिपुत्र ! मत ( फिर ) ऐसा विचार चित्तमें उत्पन्न करना ।”

तब भगवान्ने आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको संबोधित किया—

“भोगलान ! मेरे भिक्षुसंघके निकाल देनेपर तुझे कैसा हुआ था ?”

“भन्ते ! मुझे ऐसा हुआ था—भगवान्ने भिक्षुसंघको निकाल दिया, अब भगवान् निश्चिन्त हो दृष्ट-धर्म-सुखसे युक्त हो विहरेंगे । मैं और आयुष्मान् सारिपुत्र भिक्षु-संघको परिचारण ( = देख-रेख ) करेंगे ।”

“साधु, साधु, भोगलान ! चाहे भिक्षु-संघको मैं परिचारण करूँ, या सारिपुत्र-भोगलान ।”

तब भगवान्ने भिक्षुओंको आसन्नित किया—

“भिक्षुजो ! पानीमें घुसनेवालेके लिये यह चार अर्थ ( = क्षतरे ) के होनेकी संभावना रखनी

चाहिये । कौनसे चार ?—( १ ) ऊर्मि (= लहर )-भय ( २ ) कुम्भीर (= मगरका )-भय, ( ३ ) आवर्त (= भँवर )-भय, और ( ४ ) सुसुका (= नरभक्षी मत्स्य )-भय । “इसी प्रकार भिक्षुओ ! इस धर्ममें घरसे बेघर हो प्रव्रजित किसी पुद्गलको भी इन चार भयोंके होनेकी संभावना है । कौनसे चार ?—( १ ) ऊर्मि-भय, ( २ ) कुम्भीर-भय ( ३ ) आवर्त-भय, और ( ४ ) सुसुका-भय ।

( १ ) “क्या है भिक्षुओ ! ऊर्मि-भय ?—यहाँ भिक्षुओ ! एक कुलपुत्र अद्वापूर्वक घरसे बेघर प्रव्रजित हो ( सोचता है )—‘जन्म (= जाति ), जरा, मरण, शोक, रोदन-कंदन, दुःख-दौर्भाग्य, उपायास (= परेशानियों )में पड़ा हूँ, दुःखमें गिरा दुःखमें डूबा हूँ । क्या कोई इस केवल दुःख-पुंजके अन्त करनेका उपाय मालूम होगा ।’ ( तब ) उस प्रकार प्रव्रजित हुये, उसे सन्नाहारी उपदेशते हैं = अनुशासते हैं—‘इस प्रकार तुम्हें गमन करना चाहिये, इस प्रकार आगमन करना चाहिये, इस प्रकार आलोकन-विलोकन करना चाहिये, इस प्रकार समेतना चाहिये, इस प्रकार फैलाना चाहिये, इस प्रकार संघाटी ( -यज्ञ ), पाव, चीवर धारण करना चाहिये ।’ उसको ऐसा होता है—‘हम पहिले गृहस्थ होते समय दूसरोंको उपदेश = अनुशासन देते थे, यह ( भिक्षु ) हमारे पुत्र, नाती जैसे होते भी हमें उपदेश = अनुशासन देना चाहिये हैं, ( यह सोच ) वह ( भिक्षु ) शिक्षाका प्रत्याख्यान कर हीन (= गृहस्थ-भाव )को लौट जाते हैं । भिक्षुओ ! यह कहा जाता है, कि ( भिक्षु ) ऊर्मि-भयले भीत हो शिक्षाका प्रत्याख्यान कर हीनको लौट गया । भिक्षुओ ! ऊर्मि-भय यह क्रोधकी परेशानीका नाम है ।

( २ ) “यह है भिक्षुओ ! कुम्भीर-भय ?—यहाँ, भिक्षुओ ! एक कुलपुत्र ० प्रव्रजित हो ० क्या कोई इस केवल दुःखपुंजके अन्त करनेका उपाय मालूम होगा ।’ ० उसे सन्नाहारी उपदेश = अनुशासन करते हैं—‘यह तुम्हें खाना चाहिये, यह तुम्हें नहीं खाना चाहिये, यह तुम्हें भोजन करना चाहिये, यह तुम्हें नहीं भोजन करना चाहिये, ० आस्वादन ०, ० न आस्वादन ०, ० पान-करना ०, ० न पान करना ० ; तुम्हें कल्प (= विहित ) खाना चाहिये, तुम्हें अ-कल्प न खाना चाहिये, ० कल्प भोजन करना ०, ० अकल्प भोजन न करना ०, ० कल्प आस्वादन करना ०, ० अ-कल्प आस्वादन न करना ० ; ० कल्प पान करना ०, ० अकल्प पान न करना ०, तुम्हें कालसे खाना चाहिये, तुम्हें विकालसे न खाना चाहिये, ० ० ; तुम्हें कालसे पान करना चाहिये, तुम्हें विकालसे पान न करना चाहिये ।’ उसको ऐसा होता है—पहिले गृहस्थ होते समय हम जो चाहते सो खाते, जो नहीं चाहते सो नहीं खाते, ०, जो चाहते सो पीते, जो नहीं चाहते सो न पीते । कल्प भी खाते, अकल्प भी खाते, ० कल्प भी पीते, अकल्प भी पीते । कालसे भी खाते, विकालसे भी खाते, ० कालसे भी पीते, विकालसे भी पीते । जो भी गृहस्थ लोग अद्वापूर्वक उत्तम खाद्य-भोज्य दोषहर बाद विकालमें देते हैं, उसके लिये सुँहमें जाप जैसा लगा रहे हैं’—( यह सोच ) वह शिक्षाका प्रत्याख्यान ० । भिक्षुओ ! यह कहा जाता है, कि कुम्भीर-भयसे भीत हो शिक्षाका प्रत्याख्यान कर, हीन ( आश्रम )को लौट गया । भिक्षुओ ! कुम्भीर-भय यह पेटपनका नाम है ।

“क्या है, भिक्षुओ ! आवर्त-भय ?—० उपाय मालूम होगा । वह इस प्रकार प्रव्रजित हो पूर्वाह्न समय बहिन कर पात्र-चीवर ले, कायासे भरझित (= संयम-रहित ), चित्तसे भरझित, वचनसे भरझित, स्मृति (= होश )से वंचित, इन्द्रियोंसे असंयत (= संयम-रहित ) हो ग्राम या निगममें मित्राके लिये प्रविष्ट होता है । वह वहाँ गृहपति या गृहपति-पुत्रको पाँच काम-गुणों (= भोगों ) से समर्पित = संयुक्त हो मौन करते देखता है । उसको ऐसा होता है—‘पहिले



गृहस्थ होते समय हम इसी प्रकार पाँच कामगुणोंसे समर्पित = संयुक्त हो मौन करते थे; (हमारे) घरमें भोग भी हैं, भोगोंको भोगते हुये भी पुण्य किये जा सकते हैं—( यह सोच ) वह शिक्षाका प्रत्याख्यान ० । मिश्रुओ ! यह कहा जाता है, कि आवर्त-भयसे भीत हो ० हीन ( आश्रम ) को लौट गया । मिश्रुओ ! आवर्त-भय यह पाँच काम-गुणों ( = काम-भोगों ) का नाम है ।”

“क्या है, मिश्रुओ ! सुसुका-भय ?—० उपास्य मालूम होगा । वह ० ग्राम या निगममें मित्राके लिये प्रविष्ट होता है । वह वहाँ ठीकसे अनाच्छादित, ठीकसे वस्त्र न पहिने ( किसी ) स्त्रीको देखता है । ( तब ) उस दुराच्छादित, दुस्प्रकृत स्त्रीको देख, राग उसके चित्तको पीड़ित करता है । वह रागसे पीड़ित चित्त हो, शिक्षाका प्रत्याख्यान कर, हीन ( आश्रम ) को लौट जाता है । मिश्रुओ ! यह कहा जाता है, सुसुका-भयसे भीत हो शिक्षाका प्रत्याख्यान कर, हीन ( आश्रम ) को लौट गया । मिश्रुओ ! सुसुका-भय यह स्त्रियों ( = मानुषात्म ) का नाम है ।

“मिश्रुओ ! इस धर्ममें घरते घेघर हो प्रव्रजित हुये किसी पुद्गलको इन चार भयोंके होनेकी संभावना है ।”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उस मिश्रुओने भगवान्के भाषणको अभिनन्दित किया ।

## ६८—नलकपान-सुचन्त (२।२।८)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् कोसल ( देश ) में नलकपानके पलास-घरमें विहार करते थे। उस समय यहूयसे कुलीन कुलीन कुल-पुत्र भगवान्के पास घरसे बे-धरहों प्रव्रजित हुये थे, ( जैसे )—आयुष्मान् अमरुद्ध, आयुष्मान् नन्दिय, आ. किम्बिल, आ. भृगु, आ. कुण्डधान, आ. रेवत, आ. ध्यानन्द, तथा दूसरे भी कुलीन कुलीन कुल-पुत्र। उस समय भिक्षु-संघके सहित भगवान् खुले आँगनमें बैठे थे। तब भगवान्ने उन कुलपुत्रोंके संबंधमें भिक्षुओंको संबोधित किया—

“भिक्षुओ ! जो वह कुल-पुत्र मेरे पास अद्या-पूर्वक ० प्रव्रजित हुये हैं, वह सबसे ब्रह्मचर्यमें प्रसन्न तो हैं ?”

ऐसा कहनेपर भिक्षु चुप हो गये। दूसरी बार भी भगवान्ने उन कुलपुत्रोंके संबंधमें भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ ! ० ?”

दूसरी बार भी वह भिक्षु चुप हो गये।

तीसरी बार भी ० “भिक्षुओ ! ० ” तीसरी बार भी वह भिक्षु चुप हो गये।

तब भगवान्के ( मनमें ) हुआ, “क्यों न मैं उन्हीं कुलपुत्रोंसे पूछूं ?” तब भगवान्ने आयुष्मान् अमरुद्धको संबोधित किया—

“अमरुद्धो ! तुम ( लोग ) ब्रह्मचर्यमें प्रसन्न तो हो न ?”

“हाँ, भन्ते ! हम ( लोग ) ब्रह्मचर्यमें बहुत प्रसन्न हैं ।”

“साधु, साधु, अमरुद्धो ! तुम जैसे—जदासे ० प्रव्रजित कुल-पुत्रोंके यह योग्य ही है, कि तुम ब्रह्मचर्यमें प्रसन्न हो। जो तुम अमरुद्धो ! उत्तम यौवन-सहित प्रथम वयस, बहुत ही काले केश वाले, कामोपभोग कर रहे थे; सो तुम अमरुद्धो ! उत्तम यौवन ० वाले, घरसे बे-धर हो प्रव्रजित हुये। सो तुम अमरुद्धो ! राजाकी जयर्दस्तीसे नहीं ० प्रव्रजित हुये। चोरके घरसे नहीं ०। कणसे पीवित होकर नहीं ०। भयसे पीवित होकर नहीं ०। बे-राजीके होनेसे नहीं ०। यत्कि, ( यही सोच—) ‘जन्म, जरा, मरण, शोक, रोग-पीटना, दुःख, दुर्मनता, हैरानोंमें फँसा हूँ, दुःखमें गिरा दुःखमें लिपटा ( हूँ ), जो कहीं इस केवल दुःख-स्वर्ष ( दुःखकी डेरी ) का विनाश मालूम होता ?’ अमरुद्धो ! तुम सो इस प्रकार अज्ञायुक ० प्रव्रजित हुये हो न ?”

“हाँ, भन्ते !”

“ऐसे प्रव्रजित हुये कुल-पुत्रको क्या करना चाहिये ?—अमरुद्धो ! कामभोगोंसे, धुरे ( = अकुशल ) धनोसे, आत्म होना चाहिये। ( अनुवृत्त तब तक ) विवेक = प्रीतिसुख या उससे भी अधिक शान्त ( = सुख ) को नहीं पाता, ( जब तक कि ) अभिन्या ( = लोभ ) उसके चित्तको धकड़े रहती है। व्यापाद ( = द्वेष ) उसके चित्तको धकड़े रहता है। औदत्य-कौटुह्य ( = उत्पृ-क्षलता ) ०। विचिकित्सा ( = संदेह ) ०। अरति ( = असंतोष ) ०। तन्दी ( = आलस्य )



उसके चित्तको बकड़े रहती है ।” अनुरुद्धो ! कामनाओंसे, धुरे धर्मोंसे विधेक प्रीति-सुख या उससे भी अधिक प्रान्त ( = सुख ) को पाता है; ( यदि ), अभिषेधा उसके चित्तको न पकड़े रहे, व्यापाद ०, औदत्य-कौटल्य ०, विचिकित्सा ०, अरति ०, तन्दी उसके चित्तको न पकड़े रहे ।”

“क्यों अनुरुद्धो ! मेरे विषयमें तुम्हारा क्या ( विचार ) होता है, कि जो आश्रव ( = चित्त-मल ) क्लेश ( = मल )-देनेवाले, आवागमन-देनेवाले, समय ( = सद्गुरु ), भविष्यमें दुःख-फलात्पादक, जन्म-जरा-मरण-देनेवाले हैं; वह तथ्यागतके नहीं छूटे, इसीलिये तथ्यागत जान कर एकको सेवन करते हैं, ० एकको स्वीकार करते हैं, जान कर एकका त्याग करते हैं, जान कर एकको हटाते हैं ?”

“नहीं मन्ते ! हमको ऐसा नहीं होता कि, जो आश्रव क्लेश देनेवाले आवागमन देने वाले ० हैं, वह तथ्यागतके नहीं छूटे ० । मन्ते ! भगवान्के विषयमें हम ( लोगों )को ऐसा होता है, कि जो आश्रव जन्म-जरा-मरण देनेवाले हैं, वह तथ्यागतके छूट गये हैं । इसलिये तथ्यागत जान कर एकको सेवन करते हैं, जान कर एकको करते हैं, जान कर एकका त्याग करते हैं, जान कर एकको हटाते हैं ।”

“साधु, साधु, अनुरुद्धो ! जो आश्रव ० क्लेश देनेवाले हैं, वह तथ्यागतके छूट गये हैं, मल-मूल हो गये, झूठे-ताड़से हो गये हैं, भविष्यमें न उत्पन्न वाले हो गये हैं । जैसे अनुरुद्धो ! शिरसे कटे ताड़ ( का वृक्ष ) फिर नहीं घनप सकता, ऐसेही अनुरुद्धो ! जो आश्रव ० क्लेश देनेवाले हैं, वह तथ्यागतके छूट गये ० । इसलिये तथ्यागत जान कर एकको सेवन करते हैं ० ।”

## ६६—गुलिस्सानि-सुत्तन्त (२।२।६)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् राजगृहमें घेणुवन कलन्दक-निद्यापमें विहार करते थे ।

उस समय दुर्बल-आचारवान् गुलिस्सानि नामक आरण्यक भिक्षु किली कार्यसे संवके मध्यमें उपस्थित था । तब आयुष्मान् स्सारिपुत्रने गुलिस्सानि भिक्षुको लेकर भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

“आयुसो ! संघमें आवे, संघमें रहते आरण्यक ( = जंगलमें रहनेवाले ) भिक्षुको समग्र-चारियों ( = गुण भाइयों )में गौरव युक्त रहना चाहिये, सम्मान-भाव-युक्त होना चाहिये । यदि आयुसो ! संघमें आया, संघमें रहता आरण्यक भिक्षु समग्रचारियोंमें गौरवयुक्त = सम्मान-भावयुक्त नहीं होता, तो उसके लिये घात मारनेवाले होते हैं—‘इन आरण्यक आयुष्मान्के अकेले अरण्यमें खैरी ( = खेच्छाचारी )-विहारका क्या ( फल ) ; जब यह आयुष्मान् समग्रचारियोंमें गौरवयुक्त = सम्मान-भावयुक्त नहीं है ।’” इसलिये संघमें ० सम्मान-भाव-युक्त होना चाहिये ।

“आयुसो ! संघमें ० आरण्यक भिक्षुको बैठनेमें घतुर ( = आसन-कुशल ) होना चाहिये—स्वविर ( = वृद्ध ) भिक्षुओंके बिना बैठे ( या उन्हें रगड़ते ) न बैठना चाहिये, नये भिक्षुओंको आसनसे हटाना न चाहिये । यदि आयुसो ! संघमें आरण्यक भिक्षु आसन-कुशल नहीं होता, तो उसके लिये घात मारनेवाले होते हैं—‘इन आरण्यक आयुष्मान्के अकेले खैरी-विहारका क्या ( फल ) ; जब कि यह आयुष्मान् स्वविर भिक्षुओंके बिना बैठे बैठते हैं, नये भिक्षुओंको आसनसे हटाते हैं ।’” इसलिये संघमें ० ।

“आयुसो ! ० आरण्यक भिक्षुको अतिक्काल ( = अतिप्रातः ) को ग्राममें प्रविष्ट नहीं होना चाहिये, न अति विवा ( = बहुत पहिले ही ) निकलना चाहिये । यदि आयुसो ! ० ।

“० ० आरण्यक भिक्षुको भोजनके पूर्व या पश्चात् ( गृहस्थ-) कुलोंमें फेरा नहीं देते रहना चाहिये । यदि आयुसो ! ० ।

“० ० आरण्यक भिक्षुको अन्-उद्धत = अ-चपल होना चाहिये । यदि आयुसो ! ० ।

“० ० अ-मुत्तर = अ-वक्रवादी होना चाहिये । यदि आयुसो ! ० ।

“० ० सु-वचनी, कल्याण-मित्र होना चाहिये । यदि आयुसो ! ० ।

“० ० इन्द्रियोंमें गुल-द्वार ( = संयमी ) ० । ० ।

“० ० भोजनमें मात्रा ( = परिमाण )-ज्ञ ० । ० ।

“० ० जागरणमें तत्पर ० । ० ।

“० ० आरब्ध-वीर्य ( = उद्योगी ) ० । ० ।

“० ० उपस्थित-स्तुति ( = शोश रखनेवाला ) ० । ० ।

“० ० समाहित ( = एकाम-चित्त ) ० । ० ।



“ ० ० प्रज्ञावान् ० । ० ।

“ ० ० अभिधर्म (= धर्ममें, बुद्धोपदेशमें ), अभि-विनय (= विनयमें, भिक्षु-नियमों ) में ( मनो - ) योग देना चाहिये । आहुसो ! धर्म और विनयके विषयमें आरण्यक भिक्षुसे प्रश्न पूछनेवाले ( लोग ) भी हैं । यदि आहुसो ० ।

“ ० ० रूपोंको अतिग्रहण कर जो आरूप्य (= रूप-रहित-ज्ञान-सम्बन्धी ) शान्त-विमोक्ष (= ध्यान ) हैं, उनमें ( मनो - ) योग देना चाहिये । आहुसो ! ० शान्त विमोक्षोंके विषयमें आरण्यक भिक्षुसे प्रश्न पूछनेवाले भी हैं । यदि आहुसो ! ० ।

“ ० ० उत्तर-मनुष्य-धर्म (= लोकोत्तर शक्ति ) में ( मनो - ) योग देना चाहिये । आहुसो ! उत्तर-मनुष्य-धर्मके विषयमें आरण्यक भिक्षुसे प्रश्न करनेवाले भी हैं । यदि आहुसो ! आरण्यक भिक्षु उत्तर-मनुष्य-धर्मके विषयमें प्रश्न पूछने पर ( प्रश्न-कर्ताको ) समुद्र नहीं कर सकता; तो उसको घात मारनेवाले होते हैं—“इस आरण्यक आधुष्मान्के जंगलमें अकेले सूँधी बिहारसे क्या ( फल ); जब कि यह आधुष्मान्, जिसके अर्थ प्रसङ्गित हुये, उसी अर्थ (= वस्तु ) को नहीं जानते ।” इस-लिये, आरण्यक भिक्षुको उत्तर-मनुष्य-धर्ममें ( मनो - ) योग देना चाहिये ।”

ऐसा कहने पर आधुष्मान् महामौद्वगत्यायनने आधुष्मान् सारिपुत्रसे यह कहा—

“आहुस सारिपुत्र ! आरण्यक भिक्षुको ही इन धर्मोंको ग्रहण कर वर्तना चाहिये, या ग्राम-समीप-वासी ( भिक्षु ) को भी ?”

“आहुस महामौद्वगपान ! आरण्यक भिक्षुको भी इन धर्मोंको ग्रहण कर वर्तना चाहिये, ग्राम-समीप-वासी ( भिक्षुओं ) के लिये तो कहना ही क्या ?”

## ७०-कीटागिरि-सुत्तन्त (२।२।१०)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय बड़े भारी भिक्षु-संघके साथ भगवान्, 'काशी-देशमें चारिका करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको आश्रित किया—

“भिक्षुओ ! मैं रात्रि-भोजनसे विरत हो भोजन करता हूँ ।... रात्रि-भोजन छोड़कर भोजन करनेसे... आरोग्य, उत्साह, बल, सुख-पूर्वक विहार अनुभव करता हूँ। आओ, भिक्षुओ ! तुम भी रात्रि-भोजन-विरत हो भोजन करो, ... रात्रिभोजन छोड़कर भोजन करनेसे तुमभी... अनुभव करोगे।

“अच्छा भन्ते !” उन भिक्षुओंने भगवान्से कहा।

तब भगवान् काशी ( देश )में कम्पतः चारिका करते, जहाँ काशियोंका निगम (= कम्पत) 'कीटागिरि वा, वहाँ पहुँचे। वहाँ काशियोंके निगम कीटागिरिमें भगवान् विहार करते थे।

जब समय अर्धजित्, और पुनर्वसु नामक ( दो ) आवासिक भिक्षु कीटागिरिमें रहते थे। तब बहुतसे भिक्षु जहाँ अर्धजित् पुनर्वसु थे, वहाँ गये। जाकर... बोले—

“आवुसो ! भगवान् रात्रि-भोजन-विरत हो भोजन करते हैं, और भिक्षु-संघ भी। रात्रि-भोजन-विरत हो भोजन करनेसे आरोग्य ०। आओ, तुमभी आवुसो ! रात्रि-भोजन-विरत हो भोजन करो...”।

ऐसा कहनेपर अर्धजित्-पुनर्वसुओंने उन भिक्षुओंसे कहा—

“हम आवुसो ! शामको भी खाते हैं, प्रातः, दिन (= मध्याह्न) और विकालको (= दोपहर वाय) भी। सो हम शाम, प्रातः, मध्याह्न विकालको भोजन करते भी आरोग्य ० हो विहरते हैं। सो हम क्यों अर्धजित् (= सांध्यिक) को छोड़कर, कालान्तरके (= कालिक) लिये दौरे। हम शाम भी खावेंगे, प्रातः भी, दिनमें भी, विकालमें भी।”

जब वह भिक्षु अर्धजित्-पुनर्वसु... को न समझा सके, तो जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ कर उन भिक्षुओंने भगवान्से कहा—

“भन्ते ! हमने... अर्धजित्-पुनर्वसु... के पास... जा... यह कहा—‘भगवान् रात्रि-भोजन-विरत ०’। ऐसा कहने पर, भन्ते ! अर्धजित्, पुनर्वसु भिक्षुओंने कहा—‘हम आवुसो ! शामको भी खाते हैं ०’। जब हम भन्ते ! अर्धजित्-पुनर्वसु भिक्षुओंको न समझा सके, तब हम यह बात भगवान्से कह रहे हैं।”

१ प्रातः वर्तमान बनारस कमिडनरीका संग्रहे कठरका भाग, और बाधमगड़ विजा।

२ केराकर, विजा बीनपुर।



जब वह भिक्षु अशजित् पुनर्वसु को न समझा सके, तो जहाँ भगवान् थे वहाँ गये । जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ कर उन भिक्षुओंने भगवान् से कहा—

“भन्ते ! हमने ‘‘अशजित् पुनर्वसु’’ के पास ‘‘जा’’ यह कहा—‘‘भगवान् रात्रि-भोजन-विरत ० । ऐसा कहने पर भन्ते ! अशजित् पुनर्वसु भिक्षुओंने कहा—‘‘हम आबुसो ! शामको भी खाते हैं ० ।’’ जब हम भन्ते ! अशजित् पुनर्वसु भिक्षुओंको न समझा सके, तब हम वह बात भगवान्‌से कह रहे हैं ।’’

तब भगवान्‌ने एक भिक्षुको आमंत्रित किया—

“आ भिक्षु ! तू मेरी बातसे अशजित् पुनर्वसु भिक्षुओंको कह—‘‘शाखा आयुष्मानोंको बुलाते हैं ।’’

“अच्छा भन्ते !”—कह ‘‘उस भिक्षुने अशजित् पुनर्वसु भिक्षुओंके पास ‘‘जाकर कहा—शाखा आयुष्मानोंको बुलाते हैं ।’’

“अच्छा आबुस !”—कह ‘‘अशजित् पुनर्वसु भिक्षु ‘‘जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे अशजित्, पुनर्वसु भिक्षुओंने भगवान्‌से कहा—

“सचमुच भिक्षुओ ! बहुतसे भिक्षु तुम्हारे पास जाकर बोले ( थे )—आबुसो ! भगवान् रात्रि-भोजन-विरत हो ० । ऐसा कहने पर भिक्षुओ ! तुमने ‘‘कहा ० ?’’

“हाँ भन्ते !”

“क्या भिक्षुओ ! तुम मुझे ऐसा धर्म उपदेश करते जानते हो—जो कुछ यह पुरुष=पुद्गल सुख, दुःख, या असुख-अदुःख अनुभव करता है, ( उससे ) उसके अकुशल (= दुःख ) धर्म नष्ट हो जाते हैं, और कुशल धर्म बढ़ते हैं ?”

“नहीं भन्ते !”

“क्या भिक्षुओ ! तुम मुझे ऐसा धर्म उपदेश करते जानते हो—एकके इस प्रकारकी सुख वेदना (= अनुभव ) असुख करते अकुशल-धर्म बढ़ते हैं, कुशल-धर्म नष्ट होते हैं । किन्तु एकके इस प्रकारकी सुख-वेदनाको अनुभव करते अ-कुशल-धर्म नष्ट होते हैं, कुशल-धर्म बढ़ते हैं । ० दुःख वेदनाको अनुभव करते अ-कुशल धर्म बढ़ते हैं, कुशल-धर्म नष्ट होते हैं । अकुशल-धर्म नष्ट होते हैं ० । एकको इस प्रकारकी असुख-अदुःख वेदनाको अनुभव करते ० ? ० ?

“हाँ, भन्ते !”

“साधु, भिक्षुओ ! यदि मैं अ-ज्ञात, अ-दृष्ट, अ-विदित=अ-साक्षात्कृत=अ-स्पर्शितको ( कहता )—‘‘यहाँ किसीको इस प्रकारकी सुख-वेदनाको अनुभव करते अकुशल धर्म बढ़ते हैं, और कुशल-धर्म नष्ट होते हैं ० । ऐसा न जानते, यदि मैं ‘इस प्रकारकी सुख-वेदनाको डोपो’ बोलता । तो क्या भिक्षुओ ! यह मेरे लिये उचित होता ?”

“नहीं, भन्ते !”

“चूँकि भिक्षुओ ! मैंने इसको देखा, जाना, साक्षात् किया, स्पर्श किया, ० जानकर इसलिये मैं कहता हूँ—‘इस प्रकारकी सुख-वेदनाको डोपो’ । और यदि मुझे यह अज्ञात, अदृष्ट ० होता, ऐसा न जाने यदि मैं कहता—‘इस प्रकारकी सुख-वेदनाको प्राप्त कर विहार करो, तो क्या भिक्षुओ ! यह मेरे लिये उचित होता ?”

“नहीं, भन्ते !”

“क्योंकि भिक्षुओं ! यह सुखे ज्ञात, दृष्ट, विदित, साक्षात्कृत, प्रज्ञासे स्पर्शित ( है )—‘यहाँ एकके० अकुशल-धर्म नष्ट होते हैं, कुशल-धर्म बढ़ते हैं’ । इसलिये मैं कहता हूँ—‘इस प्रकारकी सुख-वेदनाको प्राप्त कर विहार करो’ ।”

“भिक्षुओं ! मैं सभी भिक्षुओंको नहीं कहता कि—‘प्रमादरहित हो करो’ । और न मैं सभी भिक्षुओंको—‘अप्रमाद रहित हो न करो’ कहता हूँ । भिक्षुओं ! जो भिक्षु अर्हत्-क्षीण-आत्म ( ब्रह्मचर्य- ) पूरा-कर-चुके, कृत-कृत्य, भार-मुक्त, सत्ये-अर्थको-प्राप्त, भव-संयोजन ( = बंधन )-रहित, अच्छी तरह जान कर मुक्त ( = सम्यक्-आज्ञा-विमुक्त ) हैं । भिक्षुओं ! वैसेको मैं ‘प्रमाद रहित हो करो’ नहीं कहता । सो किस हेतु ?—उन्होंने प्रमाद-रहित हो ( करणीय ) कर लिया, वह प्रमाद ( = आलस्य, भूल ) कर नहीं सकते । भिक्षुओं ! जो शैथन्य-न-प्राप्त-चित्त हैं, अनुपम योग-क्षेम ( = निर्वाण ) के इच्छुक हो विहरते हैं । भिक्षुओं ! वैसेही भिक्षुओंको मैं ‘प्रमाद रहित हो करो’ कहता हूँ । सो किस हेतु ?—यावत् वह आयुष्यान् अनुकूल दायन-आसनको सेवन करते, कल्याण-मित्रों ( = सुमित्रों ) को सेवन करते, इन्द्रियोंका संयम करते, जिसके लिये कुल-गृह अच्छी तरह घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, इस अनुसार ( = सर्वोत्तम ) ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं जान कर, साक्षात् कर, प्राप्त कर विहारें । भिक्षुओं ! उन भिक्षुओंको अप्रमादका वह फल देखते हुये मैं ‘प्रमाद-रहित हो करो’ कहता हूँ ।

“भिक्षुओं ! सात पुद्गल ( = पुरुष ) लोकमें—विद्यमान हैं । कौनसे सात ? ( १ ) उभय-तो-भाग-विमुक्त ( २ ) प्रज्ञाविमुक्त, ( ३ ) काय-साक्षी, ( ४ ) दृष्टि-प्राप्त, ( ५ ) अज्ञा-विमुक्त, ( ६ ) धर्म-अनुसारी, ( ७ ) अज्ञा-अनुसारी ।

“भिक्षुओं ! कौन पुद्गल ( = पुरुष ) उभयतो-भाग-विमुक्त है ?—भिक्षुओं ! जो प्राणी कि विमोक्षको अतिफलन कर रूप ( -धातु ) में आरूप्य ( धातु ) को प्राप्त है, उन्हें कोई पुद्गल कायासे स्पर्श कर विहार करता है । ( उन्हें ) प्रज्ञासे देख कर उसके आत्मत्व ( = चित्तमत्त्व ) नष्ट होजाते हैं । भिक्षुओं ! यह पुद्गल उभयतो-भाग-विमुक्त कहा जाता है । भिक्षुओं ! इस भिक्षुको ‘अप्रमादसे करो’ मैं नहीं कहता । किस हेतु ?—क्योंकि वह प्रमाद-रहित हो ( करणीय ) कर चुका । वह प्रमाद नहीं कर सकता ।

“भिक्षुओं ! कौन पुद्गल प्रज्ञा-विमुक्त है ?—भिक्षुओं ! जो प्राणी कि विमोक्षको पार कर, रूप ( -धातु ) में आरूप्यको प्राप्त है, उन्हें कोई पुद्गल कायासे छूकर नहीं विहरते, ( किन्तु ) प्रज्ञासे देख कर उनके आत्मत्व नाश होजाते हैं । ० यह पुद्गल प्रज्ञा-विमुक्त कहे जाते हैं । ० ऐसे भिक्षुको भी ‘अप्रमादसे करो’ मैं नहीं कहता । ० ।

“भिक्षुओं ! कौन पुद्गल काय-साक्षी है ?—भिक्षुओं ! जो एक पुद्गल उन्हें कायासे छूकर नहीं विहरता, प्रज्ञासे देख कर उनके कोई कोई आत्मत्व नष्ट होजाते हैं । ० यह ० काय-साक्षी है । इस भिक्षुको भिक्षुओं ! ‘अप्रमादसे करो’ मैं कहता हूँ । सो किस हेतु ?—यावत् वह आयुष्यान् ० प्राप्त कर विहार करें ० ।

“भिक्षुओं ! कौन पुद्गल दृष्टि-प्राप्त है ?—भिक्षुओं ! ० कायासे छूकर नहीं विहरता, ० कोई कोई आत्मत्व नष्ट होगये हैं । प्रज्ञा द्वारा तत्कालके वतलाये धर्म उसके जाने—होते हैं । ० यह दृष्टि-प्राप्त ० है । ० । ० ।

“भिक्षुओं ! कौन पुद्गल अज्ञा-विमुक्त है ?—०, ० प्रज्ञासे कोई कोई आत्मत्व उसके नष्ट होगये हैं, तत्कालमें उसकी अज्ञा प्रतिष्ठित—ब्रह्म-पक्षी—निविष्ट होती है । ० यह अज्ञा-विमुक्त ० । ० । ० ।



“मिथुओ ! कौन पुद्गल धर्मानुसारी है ?—०, ०, प्रज्ञाद्वारा तथ्यागतके कतलाये धर्म उसके लिये साधनाः (= कुल साधनां) निष्पादन (= निदिध्यासन) के योग्य होमये हैं । और उसको यह धर्म (= धर्म) प्राप्त है, जैसे कि—अद्वा-इन्द्रिय, धीर्य-इन्द्रिय, स्मृति-इन्द्रिय, समाधि, इन्द्रिय प्रज्ञा-इन्द्रिय । ० यह धर्मानुसारी ० है । ० । ० ।

“मिथुओ ! कौन पुद्गल अद्वा-नुसारी है ?—०, ०, तथ्यागतमें उसको अद्वा-मात्र-प्रज्ञ-मात्र होता है । और उसको यह धर्म (= धर्म) होते हैं, जैसे कि—अद्वा-इन्द्रिय ० प्रज्ञा-इन्द्रिय । ० यह अद्वा-नुसारी ० । ० । ० ।

“मिथुओ ! मैं आदिसे ही ‘आज्ञा’ (= अन्ना) की आराधना नहीं कहता, बल्कि मिथुओ ! क्रमशः शिक्षासे, क्रमशः क्रियासे, क्रमशः प्रतिपद्यते आज्ञा की आराधना होती है । मिथुओ ! ० क्रमशः प्रतिपद्यते कैसे आज्ञा की आराधना होती है ?—मिथुओ ! अद्वा-दान् हो ( जैसे जानोके ) समीप जाता है, समीप जानेसे, परि-उपासना करता है । परि-उपासना करनेसे कान लगाता है । कान लगानेसे धर्म सुनता है । धर्म सुनकर धारण करता है । धारण किये धर्मों की परीक्षा करता है । धर्मों की उप-परीक्षा करनेपर धर्म निष्पादन (= निदिध्यासन) के योग्य होते हैं । धर्मों के निष्पादन के योग्य होनेपर, छन्द (= रुचि) उत्पन्न होता है । छन्द होनेपर उत्साह करता है । उत्साह करनेपर उत्थान करता है (= तुल्यति) । उत्थान कर प्रधान (= समाधि) करता है । प्रधानात्म (= समाहित-चित्त) हो, ( इस ) कायसेही धर्म-सत्यका साक्षात्कार करता है । प्रज्ञासे उसे वेद्यता है । मिथुओ ! वह अद्वा भी यदि न हुई । ० वह पास जानामी (= उप-संक्रमण) न हुआ ० । ० । ० वह प्रधानभी न हुआ । ( तो ) विप्रतिपद्य (= अन्ना-गो-रु) हो मिथुओ ! मिथ्या-प्रतिपद्य ०, मिथुओ ! वह मोघपुरुष (= नालायक) इस धर्म-विनयसे बहुत दूर चले गये हैं ।

“मिथुओ ! चतुष्पद व्याकरण होता है, जिसके अर्थको करने पर विश्वपुरुष जन्म ही ( उसे ) प्रज्ञासे जानता है । ..... मिथुओ ! तुम इसे समझते हो ?”

“नन्ते ! कहाँ हम और कहाँ धर्मका जानना ?”

“मिथुओ ! जो वह शास्त्रा (= गुरु) आभिष-गुरु (= धन, भोगमें बड़ा), आभिष-वासाद (= भोगोंका लेनेवाला), आभिषोंसे लिखो विहरता है, वह भी इस प्रकारको बाजो (= पण) नहीं लगाता—‘यदि हमें ऐसा हो, तो इसे करेंगे, यदि हमें ऐसा न हो, तो नहीं करेंगे ।’ फिर मिथुओ ! तथ्यागतका तो क्या ( कहना है ), ( जो कि ) सर्वथा आभिष (= धन, भोग) से अलिखो विहार करते हैं । मिथुओ ! अद्वा-लु आचकको शास्त्राके शासन (= धर्म) में परियोग (= योग) के लिये वर्तान करते हुये वह अनु-धर्म होता है—‘भगवान् शास्त्रा (= गुरु) हैं, मैं आचक (= शिष्य) हूँ’, ‘भगवान् जानते हैं, मैं नहीं जानता’ । मिथुओ ! अद्वा-लु आचक के लिये शास्त्राके शासनमें परियोगके लिये वर्तते समय, शास्त्राका शासन... भोग-वान् होता है । अद्वा-लु आचकको ० वह दृष्टा होती है—‘चाहे चमड़ा, नस, और हड्डी ही धन रहे, शरीरका रक्त-मांस सूख ( क्यों न ) जाये, ( किंतु ), पुरुषके स्वाम-पुरुष-वीर्य-पुरुष-पराक्रम से जो ( कुल ) प्राप्य है, उसे बिना पाये ( मेरा ) उद्योग न रहेगा ।’ मिथुओ ! अद्वा-लु आचक को शास्त्राके शासनमें परियोगके लिये वर्तते समय, दो फलोंमेंसे एक फलकी उमेद ( अवश्य ) रखनी चाहिये—इसी जन्ममें ( परम-ज्ञान ) जानूँगा, या उपाधि (= मल ) रखनेपर अनामाभि-पन ( पाठना ) ।”

भगवान् ने वह कहा । संतुष्ट हो, उन मिथुओने भगवान् के भाषणका अनुमोदन किया ।

## ७१—तेविज्ज-वच्छ-गोत्त-सुत्तन्त ( २।३।१ )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागार-शालामें विहार करते थे ।

उस समय वच्छ-गोत्त ( = वत्सगोत्र ) परित्राजक एक-पुण्डरीक परित्राजकाराममें वास करता था । भगवान् पूर्वाह्न-समय प्रहितकर, पात्रचीवर ले, वैशालीमें पिण्ड-प्राप्तके लिये प्रविष्ट हुये । तब भगवान्को ऐसा हुआ—अभी वैशालीमें पिण्डप्राप्त करनेके लिये बहुत संशय है । क्यों न मैं जहाँ एक-पुण्डरीक परित्राजकाराम है, जहाँ वच्छ-गोत्त परित्राजक है, वहाँ चला । तब भगवान् ० वहाँ गये ।

वच्छ-गोत्त परित्राजकने दूरसे ही भगवान्को आते देखा । देख कर भगवान्से बोला—

“आइये भन्ते ! भगवान् ! स्वागत भन्ते ! भगवान् ! बहुत दिन होगया भन्ते ! भगवान्को यहाँ आये । बैठिये भन्ते ! भगवान् ! वह आसन पिछा है ।”

भगवान् बिछे आसनपर बैठ गये । वत्स गोत्र परित्राजक भी एक नीचा आसन लेकर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे वत्स-गोत्र परित्राजकने भगवान्से कहा—

“सुना है भन्ते !—‘अमण गौतम सर्वज्ञ = सर्वदर्शी हैं, निश्चित ज्ञान-दर्शन ( = ज्ञानके साक्षात्कार करने ) का दावा करते हैं । चलते, खड़े, सोते, जागते ( भी उनको ) निरंतर सदा ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है’ । क्या भन्ते ! ( ऐसा कहनेवाले ) भगवान्के प्रति यथार्थ कहनेवाले हैं, और भगवान्को असत्य = अभूतसे निन्दा ( = अभ्याख्या ) तो नहीं करते ? धर्मके अनुकूल ( तो ) वर्णन करते हैं ? कोई सह-धार्मिक ( = धर्मासुद्ध ) वादका अ-ग्रहण, राही ( = निन्दा ) तो नहीं होती ।”

“वत्स ! जो कोई मुझे ऐसा कहते हैं—‘अमण गौतम सर्वज्ञ है ० ।’ वह मेरे द्वारमें यथार्थ कहनेवाले नहीं हैं । असत्य ( = अभूत ) से मेरी निन्दा करते हैं ।”

“कैसे कहते हुये भन्ते ! हम भगवान्के यथार्थवादी होंगे, भगवान्को अभूत ( = असत्य ) से नहीं निन्देंगे ० ?”

“वत्स !—‘अमण गौतम त्रैविज्ञ ( = तीन विद्याओंका जाननेवाला ) हैं’—ऐसा कहते हुये, मेरे द्वारमें यथार्थवादी होगा ० । ( १ ) वत्स ! मैं जब चाहता हूँ, अनेक किये पूर्वनिवासों ( = पूर्वजन्मों ) को स्मरण कर सकता हूँ, जैसे कि—एक जाति ( = जन्म ) ०<sup>१</sup> । इस प्रकार आकार ( = शरीर आकृति आदि ), नाम ( = उद्देश ) के सहित अनेक पूर्वजन्मोंको स्मरण करता हूँ । ( २ ) वत्स ! मैं जब चाहता हूँ, अ-आलुष विषुद्ध दिव्य-चक्षुसे सरते, उत्पन्न होते, नीच-ऊँच,

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ १५ ।



सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगन्ध-दुर्गन्ध ० कर्मानुसार ( गतिको ) प्राप्त सत्त्वोंको जानता हूँ । ( १ ) वत्स ! मैं आसक्तों ( = राग-द्वेष आदि ) के श्रवसे आसक्त-रहित चित्तकी विमुक्ति ( = मुक्ति ) प्रज्ञाद्वारा विमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं साक्षात् कर = प्राप्त कर बिहरता हूँ ।”

ऐसा कहनेपर वत्स गोत्र परित्राजकने भगवान्से कहा—

“मो गौतम ! क्या कोई गृहस्थ है, जो गृहस्थके संयोजनों ( = पंचनों )को बिना छोड़े, कायाको छोड़ दुःखका अन्त करनेवाला ( = निर्वाण प्राप्त करनेवाला ) हो ?”

“नहीं वत्स ! ऐसा कोई गृहस्थ नहीं ० ।

“मो गौतम ! है कोई गृहस्थ, जो गृहस्थके संयोजनोंको बिना छोड़े, काया छोड़ने ( = मरने ) पर, स्वर्गको प्राप्त होनेवाला हो ?”

“वत्स ! एक ही नहीं सौ, सौ नहीं दोस्रो, ० तीसरी, ० चारसी, ० पाँचसी, और भी बहुतसे गृहस्थ हैं, ( जो ) गृहस्थके संयोजनोंको बिना छोड़े, मरनेपर स्वर्गगामी होते हैं ।”

“मो गौतम ! है कोई आजीवक, जो मरनेपर दुःखका अन्त करनेवाला हो ?”

“नहीं, वत्स ! ० ।”

“मो गौतम ! है कोई आजीवक जो मरनेपर स्वर्गगामी हो ?”

“वत्स ! यहाँसे एकानवे कल्प तक मैं स्मरण करता हूँ, किसीको भी स्वर्ग जानेवाला नहीं जानता, सिवाय एकके, और वह भी कर्म-वादी = क्रियावादी था ।”

“मो गौतम ! यदि ऐसा है तो यह तीर्थावतन ( = ‘पंच’ ) शून्य ही है, यहाँ तक कि स्वर्ग-नामियोंसे भी ।”

“वत्स ! ऐसा होते यह ‘पंच’ शून्य ही है ० ।”

भगवान्ने यह कहा ! वत्स-गोत्र परित्राजकने सन्तुष्ट हो, भगवान्के भाषणका अनु-मोदन किया ।

## ७२-अग्नि-वच्छगोत्त-सुत्तन्त (२।३।२)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिटिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे—

तब घच्छ-गोत्त (= वत्सगोत्र) परित्राजक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान् के साथ 'सम्मोदन (= कुशल प्रश्न पूछ) कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे वत्सगोत्र परित्राजकने भगवान् से यह कहा—

(१) "भो गौतम ! 'लोक शाश्वत (= नित्य) है'—यही सत्य है, और ( सब वाद ) झूठ (= मोघ ) है, क्या आप गौतम इस दृष्टि (= मत ) वाले हैं ?"

"वत्स ! मैं इस दृष्टिवाला नहीं हूँ—'लोक शाश्वत है'—यही सत्य है, और सब झूठ।"

(२) "भो गौतम ! 'लोक अशाश्वत (= अनित्य) है'—यही सत्य है, और झूठ, क्या आप गौतम इसी दृष्टिवाले हैं ?"

"वत्स ! मैं इस दृष्टिवाला नहीं हूँ—'लोक अशाश्वत है', यही सत्य है, और झूठ।"

(३) "० 'अन्तवान् लोक है' ० ?"—"० नहीं ०।"

(४) "० 'अन्-अन्तवान् लोक है' ० ?"—"० नहीं ०।"

(५) "० 'जीव शरीर एक है' ० ?"—"० नहीं ०।"

(६) "० 'जीव दूसरा है शरीर दूसरा है' ० ?"—"० नहीं ०।"

(७) "० 'तथागत मरनेके बाद होते हैं' ० ?"—"० नहीं ०।"

(८) "० 'तथागत मरनेके बाद नहीं होते' ० ?"—"० नहीं ०।"

(९) "० 'तथागत मरनेके बाद होते भी हैं, नहीं भी होते' ० ?"—"० नहीं ०।"

(१०) "० 'तथागत मरनेके बाद न-होते हैं, न-नहीं-होते हैं' ० ?"—"० नहीं ०।"

"क्या है, भो गौतम ! जो—'लोक शाश्वत है' यही सत्य है, और सब झूठ, क्या आप गौतम इस दृष्टिवाले हैं ?—पूछने पर, 'वत्स ! मैं इस दृष्टिवाला नहीं हूँ—'लोक शाश्वत है' यही सत्य है और झूठ—कहते हैं ? ०। 'तथागत मरनेके बाद न-होते हैं, न-नहीं-होते' यही सत्य है, और झूठ—क्या आप गौतम इस दृष्टिवाले हैं ?—पूछने पर भी, 'वत्स ! मैं इस दृष्टि-वाला नहीं हूँ—०—कहते हैं ? क्या बुराई देकर आप गौतम ! इस प्रकार इन सभी दृष्टियोंको नहीं ग्रहण करते ?"

"वत्स ! 'लोक शाश्वत है'—यह दृष्टि-गत (= दृष्टि) दृष्टि-गहन, दृष्टि-कान्तार (= मत का रेगिस्तान), दृष्टि-विशुद्ध (= ० कौटा), दृष्टि-विरूपमिदत (= ० की चंचलता), दृष्टि-संयोजन (= ० संबन्ध) है, ( यह ) दुःखमय, विघ्न (= प्रीति)मय, उपायास (= परेशानी)-मय, परिदाह (= जलन)-मय है; ( यह ) न निर्वेदके लिये=न वैराग्यके लिये, न निरोधके लिये, न उपशम (= शांति) के लिये, न अभिज्ञाके लिये, न संघोध (= परमज्ञान) के लिये न निर्वोग



के लिये है । ० । 'तथागत मरनेके बाद न-होते हैं, न-नहीं-होते'—दृष्टि-गत (= दृष्टि) इष्टि गहन ० न निर्वाणके लिये है । वत्स ! इस बुराई (= आदिनय) को देख कर मैं इन सभी दृष्टियों को नहीं ग्रहण करता ।

"मो गौतम ! आप गौतमका कोई दृष्टि-गत (= दृष्टि) है ?"

"वत्स ! तथागतका दृष्टि-गत दूर हो गया है । वत्स ! तथागतका यह दृष्ट (= साक्षात्कृत) है—'ऐसा रूप है, ऐसा रूपका ससुन्दर (= उत्पत्ति) है, ऐसा रूपका निरोध (= नाश) है । ऐसी वेदना है ० । ऐसी संज्ञा है ० । ऐसा संस्कार है ० । ऐसा विज्ञान है ०' । सारी मान्यताओं = सारे मयितों = सारे अहंकार-ममंकार-मात्र (रूपी) अनुशायों (= चित्त दोषों) के क्षय, विनाश, निरोध, त्याग और अनुत्पत्तिले ( भिक्षु ) विमुक्त होता है—यह कहता हूँ ।"

"मो गौतम ! ऐसा विमुक्त-चित्त भिक्षु कहाँ उत्पन्न होता है ?"

"वत्स ! 'उत्पन्न होता है'—यह नहीं ( संभव ) पाता ।"

"तो फिर मो गौतम ! 'नहीं उत्पन्न होता' ?"

"वत्स ! 'नहीं उत्पन्न होता'—यह नहीं पाता ।"

"तो मो गौतम ! 'उत्पन्न होता है, नहीं भी उत्पन्न होता है' ?"

"वत्स ! 'उत्पन्न होता है, नहीं भी उत्पन्न होता है'—यह नहीं पाता ।"

"तो मो गौतम ! 'न-उत्पन्न होता है, न-नहीं-उत्पन्न होता है' ?"

"वत्स ! 'न-उत्पन्न होता है, न-नहीं-उत्पन्न होता है'—यह नहीं पाता ।"

"मो गौतम ! ऐसा विमुक्त-चित्त भिक्षु कहाँ उत्पन्न होता है ?—पूछने पर, आप 'वत्स ! 'उत्पन्न होता है'—यह नहीं पाता—कहते हैं । ० । मो गौतम ! 'न-उत्पन्न होता है, न-नहीं-उत्पन्न होता है' ?—पूछनेपर, 'वत्स ! न-उत्पन्न होता है, न-नहीं-उत्पन्न होता है'—यह नहीं पाता—कहते हैं । मो गौतम ! वहाँ मुझे अज्ञान हो गया, मुझे सम्मोह (= झग) हो गया । पिछले वार्तालापसे जो कुछ प्रसाद (= अज्ञा) आपके संबंधमें मुझे था, वह भी अन्तर्धान (= लुप्त) हो गया ।"

"वत्स ! मुझे अज्ञानकी झरुरत नहीं, सम्मोहकी झरुरत नहीं । वत्स ! यह धर्म गंभीर, दुर्दृश्य, दुर्-अनु-बोध (= दुर्ज्ञेय), प्रात, प्रणीत (= उत्तम), तर्कका-अविषय, निपुण (= सूक्ष्म) पंडित-वेदनीय (= पंडितों द्वारा जानने-लायक) है । वत्स ! यह ( धर्म ) अन्य-दृष्टिक (= दूसरे मतका आग्रह रखने वाले ), अन्य-आगतिक, अन्य-रुचिक, अन्य-योग (= संबंध) वाले अन्य-आचार्यक (= दूसरी जगहके ज्ञानवाले ) तेरे लिये दुर्ज्ञेय है । तो वत्स ! तुझे ही पूछता हूँ, जैसा तुझे ज्ञेय, वैसा उत्तर देना । यदि वत्स ! तेरे सम्मुख आग जले, तो तू जानेगा—यह मेरे सम्मुख आग जल रही है ?"

"मो गौतम ! यदि मेरे सम्मुख आग जले, तो मैं जानूँगा, यह मेरे सम्मुख आग जल रही है ।"

"यदि वत्स ! तुझसे यह पूछें—यह जो तेरे सम्मुख आग जल रही है, वह किसको लेकर जल रही है ?"

"ऐसा पूछने पर मो गौतम ! मैं कहूँगा—यह जो मेरे सम्मुख आग जल रही है, वह तृण-काष्ठ ( रूपी ) उपादानको लेकर जल रही है ।"

"यदि वत्स ! वह आग तेरे सम्मुख लुप्त जाये, तो जानेगा तू—यह आग मेरे सम्मुख लुप्त गई ?"

“भो गौतम ! यदि मेरे सम्मुख वह आग बुझ जाये, तो मैं जानूँगा—‘वह मेरे सम्मुख आग बुझ गई’ ।”

“यदि वत्स ! तुझसे यह पूछें—‘वह जो आग तेरे सम्मुख बुझ गई, वह आग किस दिशा को गई—पूर्वको, पश्चिमको उत्तरको या दक्षिणको’ ?—ऐसा पूछने पर वत्स ! तू क्या उत्तर देगा ?”

“नहीं ( पता ) मिलता, भो गौतम ! जो वह आग तृण-काष्ठके उपाधानको लेकर बली, उसके पर्यादान (= खतम कर लेने) से, और अन्य ( तृण-काष्ठ ) के अनुपहार (= न मिलने) से, आहार बिना ‘बुझ गई’ (= निर्हृत = निर्वाण-प्राप्त) यही नाम होता है ।”

‘ऐसे ही वत्स ! तथ्यागतको जतलाते वक्त्र जिस रूपसे ( उन्हें ) जतलाया जाता, वह रूप ( ही ) तथ्यागतका प्रहीण (= नष्ट) हो गया, उच्छिन्न-मूल, शिर-कटे-ताड़-जैरा, अभाव-प्राप्त, अविध्य-में-उत्पन्न-न-होने-लायक हो गया । वत्स ! तथ्यागत रूप-संज्ञा (= रूपके नामसे) मुक्त, महासमुद्रकी तरह गंभीर, अ-प्रमेय, दुरवगाह्य ( हैं ) । ( इसी लिये वहाँ ) ‘उत्पन्न होता है’—नहीं पाया जाता, ० ; ‘न-उत्पन्न-होता है, न-नहीं-उत्पन्न होता’—नहीं पाया जाता । तथ्यागतको जतलाते वक्त्र जिस वेदना द्वारा ( उन्हें ) जतलाया जाता, वह वेदना ही तथ्यागतकी प्रहीण हो गई ० ‘न-उत्पन्न होता है, न-नहीं-उत्पन्न होता’—नहीं पाया जाता । ० संज्ञा ० ० । ० संस्कार ० ० । तथ्यागतको जतलाते वक्त्र जिस विज्ञान द्वारा जतलाया जाता, वह विज्ञान ही तथ्यागतका प्रहीण हो गया, उच्छिन्नमूल, शिर-कटे-ताड़-जैरा, अभाव-प्राप्त, अविध्य-में-उत्पन्न-न-होने-लायक हो गया । वत्स ! तथ्यागत विज्ञान-संज्ञासे मुक्त हो, महासमुद्र की तरह गंभीर, अ-प्रमेय, दुरवगाह्य ( हैं ), ( इसीलिये वहाँ ) ‘उत्पन्न होता है’—नहीं पाया जाता, ० ‘न-उत्पन्न होता है, न-नहीं-उत्पन्न होता’—नहीं पाया जाता ।”

ऐसा कहने पर वत्स-गोत्र परिव्राजकने भगवान्से यह कहा—

“जैसे, भो गौतम ! ग्राम या निगमके समीप (= अ-विदूर) भवान् शाल (= सान्ना)-बृक्ष हो । अनित्य होनेसे उसके शाखा-पत्र नष्ट हो जायें, शाल-पत्रही नष्ट हो जायें, गुहा नष्ट हो जाये । बादमें वह शाखा-पत्र रहित, शाल-पत्रही-रहित, गुहारहित, शुद्ध, सार मात्रमें अवस्थित रह जाये, ऐसे ही आप गौतमका वह प्रवचन (= उपदेश) शाखा-पत्र-रहित, शाल-पत्रही-रहित, गुहा-रहित शुद्ध सारमात्रमें अवस्थित है । आश्चर्य ! भो गौतम ! आश्चर्य !! भो गौतम ! जैसे शीघ्रको सीधा कर दे ० <sup>१</sup> आप गौतम आजसे मुझे अजलिबद्ध करणागत, उपासक स्वीकार करें ।”



## ७३-महा-वच्छगोत्र-सुत्तन्त (२।३।३)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् राजगृहमें वेणुवन कलंदक-निवापमें विहार करते थे।

तब वच्छगोत्र (= वत्सगोत्र) परित्राजक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान् को "सम्मोदन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे वत्सगोत्र परित्राजकने भगवान्से यह कहा—

"मो गौतम ! देर हो गई, आप गौतमके साथ सुते कथा-संश्लेष किये। सखु, (= अच्छा हो) आप गौतम संक्षेपसे मुझे कुशल-अकुशल (= भलाई-बुराई) का उपदेश करें।"

"वत्स ! मैं संक्षेपसे तुझे कुशल-अकुशलका उपदेश करता हूँ, विस्तारसे भी तुझे कुशल-अकुशलका उपदेश करता हूँ। किन्तु ( पहिले ) वत्स ! मैं संक्षेपसे तुझे कुशल-अकुशलका उपदेश करता हूँ, उसे सुन, अच्छी तरह मनमें कर कहता हूँ।"

"अच्छा, भो !"—( कह ) वत्सगोत्र परित्राजकने भगवान्को उत्तर दिया।

भगवान्ने यह कहा—"वत्स ! लोभ अकुशल (= बुराई, पाप) है, और अलोभ कुशल (= भलाई, पुण्य) है। वत्स ! द्वेष अकुशल है, अ-द्वेष कुशल है। वत्स ! मोह अकुशल है, अ-मोह कुशल है। इस प्रकार वत्स ! यह तीन धर्म (= पदार्थ) अकुशल हैं, और तीन धर्म कुशल।

"वत्स ! प्राणातिपात (= हिंसा) अकुशल है, और प्राणातिपातसे विरत होना, कुशल है। वत्स ! अदत्तादान (= चोरी) अकुशल है, और अदत्तादानसे विरति कुशल। कामो (= स्त्री-प्रसंग)में मिथ्याचार (= बुराचार) अ-कुशल है, काम-मिथ्याचारसे विरति कुशल। वत्स ! मृपावाद (= झूठ) अकुशल है, मृपावाद-विरति कुशल। वत्स ! पिशुन-वचन (= चुगली) अकुशल है, पिशुन-वचन-विरति कुशल। वत्स ! परुष-वचन अकुशल है, परुषवचन-विरति कुशल। वत्स ! संप्रलाप (= बकवाद) अकुशल है, संप्रलाप-विरति कुशल। वत्स ! अभिष्या (= लोभ) अकुशल है, अन्-अभिष्या कुशल। वत्स ! व्यापाद (= पीडा देना) अकुशल है, अ-व्यापाद कुशल। वत्स ! मिथ्या-दृष्टि (= झूठी धारणा) अकुशल है, सम्यग्-दृष्टि कुशल। वत्स ! यह दश धर्म अकुशल हैं, दश धर्म कुशल हैं।

"वत्स ! जब भिक्षुकी तृणणा ग्रहीण (= नष्ट) होगई होती है, उच्छिन्नमूल, कटे-शिर वाले-साथ जैसी अभाव-प्राप्त (= लुप्त), भविष्यमें-न-उत्पन्न-होने लायक होती है; ( तो ) वह भिक्षु अर्हत्-शीण-आत्मव (= जिसके चित्तमल नष्ट हो गये हैं ), ( ब्रह्मचर्य-) वस-पुका, कृतकृत्य, भार-बहु-शुका, सत्पदार्थको-प्राप्त, भव-बंधन-तोड़-पुका, आशा (= परमज्ञान) द्वारा-सम्यग्-सुक्त होता है।"

"रहें आप गौतम। क्या आप गौतमका एक भी आवक (= शिष्य) भिक्षु है, जो कि आस्यों (= चित्तमलों) के क्षमसे जाग्रत-रहित, चित्त-विमुक्ति (= मुक्ति) प्रज्ञा-विमुक्तिको

इसी जन्ममें स्वयं जानकर साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरता हो ?”

“वत्स ! एक ही नहीं सौ, सौ ही नहीं तीन सौ, ( तीन सौ ही ) नहीं चार सौ, ( चार सौ ही ) नहीं पाँच सौ; बल्कि अधिक ही मेरे आश्रय भिक्षु आश्रयोंके अश्रयसे आश्रय-रहित, चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरते हैं ।”

“रहें आप गौतम, रहने दें भिक्षुओंको । क्या आप गौतमकी एक भी श्राविका ( = शिष्या ) भिक्षुणी है, जो कि आश्रयोंके अश्रयसे • प्राप्त कर विहरती हो ?”

“वत्स ! एक ही नहीं • बल्कि अधिक • प्राप्त कर विहरती हैं ।”

“रहें आप गौतम, रहने दें भिक्षु, रहें भिक्षुणियाँ । क्या आप गौतमका एक भी गृहस्थ, श्वेत-वस्त्रधारी, ब्रह्मचारी आश्रय उपासक ( = गृहस्थ शिष्य, भक्त ) है, जो कि पाँच अवर-भोगीय-संयोजनोंके अश्रयसे औपपातिक ( = अमोनिज, देव ) ही उस ( देवलोका ) में निर्वाण प्राप्त करनेवाला, उस लोकसे लौटकर न आनेवाला हो ?”

“वत्स ! एक ही नहीं • पाँच सौ, बल्कि अधिक ही मेरे गृहस्थ • उस लोकसे लौटकर न आनेवाले हैं ।”

“रहें आप गौतम, रहें भिक्षु, रहें भिक्षुणियाँ, रहें श्वेत-वस्त्रधारी, ब्रह्मचारी उपासक गृहस्थ आश्रय; क्या आप गौतमका एक भी गृहस्थ अवदातवसन ( = श्वेतवस्त्रधारी ), काम-भोगी ( = उचित विषय-भोगी ), शासन-कर ( = धर्मानुसार चलनेवाला ) = अववाद-प्रतिकर संशय-प्रारंभक, वाद-विवादसे-विगत, वैशारद्य ( = निपुणता )-प्राप्त, गृहस्थ आश्रय उपासक है, जो कि शास्ताके शासन ( = गुरुके उपदेश ) में अतिश्रद्धावान् होकर विहरता हो ?”

“वत्स ! एक ही नहीं • पाँच सौ, बल्कि अधिक ही मेरे गृहस्थ • शास्ताके शासनमें अतिश्रद्धावान् होकर विहरते हैं ।”

“रहें आप • रहें गृही अवदातवसन कामभोगी उपासक; क्या • एक भी गृहस्थ अवदात-वसना ब्रह्मचारिणी श्राविका उपासिका है, जो कि पाँच अवर-भोगीय संयोजनोंके अश्रयसे • उस लोकसे लौट कर न आनेवाली हो ?”

“वत्स ! एक ही नहीं • पाँच सौ बल्कि अधिक ही मेरी • उस लोकसे लौट कर न आनेवाली हैं ।”

“रहें आप • रहें गृहस्थ अवदातवसना ब्रह्मचारिणी श्राविका उपासिकायें, क्या आप गौतम-की एक भी, अवदातवसना, कामभोगिनी, शासनकरी = अववाद-प्रतिकरी, संशय-प्रारंभक, वाद-विवादसे परे, वैशारद्य-प्राप्ता गृहस्थ श्राविका उपासिका है, जो कि शास्ताके शासनमें अतिश्रद्धावान् होकर विहरती हो ?”

“वत्स ! एक ही नहीं, • पाँच सौ बल्कि अधिक ही मेरी • अतिश्रद्धावान् होकर विहरती हैं ।”

“मो गौतम ! यदि इस ( आपके ) धर्मके आप गौतम ही आराधन ( = सेवन ) करनेवाले ( = आराधक ) होते, और भिक्षु सेवन करनेवाले न होते, तो इस प्रकार यह ब्रह्मचर्य इस अंशमें अपूर्ण रहता । चूँकि इस धर्मके आप गौतम भी सेवन करनेवाले हैं, और भिक्षु भी सेवन करनेवाले हैं, इसलिये यह ब्रह्मचर्य इस अंशमें पूर्ण है । मो गौतम ! यदि इस धर्मके आप गौतम ही आराधक होते, और भिक्षु ही आराधक होते, और भिक्षुणियाँ आराधक न होती; तो इस प्रकार यह ब्रह्मचर्य इस अंशमें अपूर्ण रहता । चूँकि इस धर्मके आप गौतम भी आराधक हैं, भिक्षु भी •, और भिक्षुणियाँ भी •, इसलिये यह ब्रह्मचर्य इस अंशमें पूर्ण है । मो गौतम ! यदि आप • भिक्षु •,



और भिक्षुगिण्यों ही आराधक होतीं, किन्तु ० ब्रह्मचारी उपासक ० आराधक न होते, तो ० अपूर्ण रहता । चूँकि ० ब्रह्मचारी उपासक भी आराधक हैं, इसलिये ० पूर्ण है । ० यदि इस धर्मके आप ० ब्रह्मचारी उपासक ० ही आराधक होते, और ० काम-भोगी ० उपासक ० आराधक न होते, तो ० अपूर्ण रहता । चूँकि ० काम-भोगी ० भी आराधक हैं, इसलिये ० पूर्ण है । ० यदि इस धर्मके आप ० कामभोगी उपासक ० आराधक होते, ० ब्रह्मचारिणी ० उपासिकायें आराधक न होतीं, तो ० अपूर्ण रहता; चूँकि ० ब्रह्मचारिणी ० उपासिकायें भी आराधक हैं, इसलिये ० पूर्ण है । ० यदि इस धर्मके आप ० ब्रह्मचारिणी ० उपासिकायें ही आराधक होतीं, तो ० अपूर्ण रहता । चूँकि ० काम-भोगिनी ० उपासिकायें भी आराधक हैं, इसलिये ० पूर्ण है ।

“जैसे, भो गौतम ! गंगानदी समुद्र-निष्ठा (= समुद्रकी ओर जानेवाली) = समुद्र-प्रवणा=समुद्र-प्राप्तमारा समुद्रको ही जाती स्थित है, ऐसे ही यह गृहस्थ, परित्राजक ( सारी ) आप गौतमकी परिशु निर्वाण-निष्ठा (= निर्वाणकी ओर जानेवाली) = निर्वाण-प्रवणा-निर्वाण-प्राप्तमारा निर्वाणको ही जाती स्थित है । आश्चर्य ! भो गौतम ! आश्चर्य !! भो गौतम ! जैसे जीधेको सीधा कर दे ० <sup>१</sup> यह मैं भगवान् गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और मित्र संघकी भो । मन्ते ! मैं भगवान् के पास प्रव्रज्या पाऊँ, उपसंपदा पाऊँ <sup>२</sup> ।”

“वत्स ! जो कोई भूतपूर्व अन्यतीर्थिक इस धर्मविनयमें प्रव्रज्या उपसंपदा चाहता है, वह चार मास तक परिवास करता है ० <sup>३</sup> ।”

“यदि, मन्ते ! ० <sup>४</sup> चार मास परिवाल करते हैं, ० <sup>५</sup>, तो मैं चार वर्ष परिवाल करूँगा । ० <sup>६</sup> ।”

वत्सगोत्र परित्राजकने भगवान् के पास प्रव्रज्या पाई, उपसंपदा पाई ।

उपसम्पन्न (= मित्र) होनेके थोड़े ही समय बाद=१५ दिन बाद आयुष्मान् वत्सगोत्र जहाँ भगवान् थे, वहाँ “जाकर भगवान् को अभिवादन कर” एक ओर बैठे भगवान् से यह बोले—

“मन्ते ! शैक्ष्य (= अन्-अर्थत्, किन्तु निर्वाण-मार्गपर हृद आरुढ़)-ज्ञानसे पीदय-विषासे घाया जा सकता है, यह मैंने पा लिया । अब भगवान् मुझे आगेका धर्म बतलायें ।”

(१) “तो वत्स ! तू दो आगेके धर्मों—शमय (= समाधि) और विपश्यना (= प्रज्ञा, ज्ञान)की भावना (= सेवन) कर । वत्स ! इन आगेके दो धर्मों—शमय और विपश्यनाकी भावना करनेसे, वह तेरे लिये अनेक चानुओंके प्रतिवेध-(= तह तक पहुँचने)में (सहायक) होंगे । <sup>१</sup> तब (यदि) तू वत्स ! चाहेगा कि—‘अनेक प्रकारकी अङ्घ्रियोंका अनुभव करूँ—एक होकर बहुत हो जाऊँ, बहुत होकर एक हो जाऊँ । आविर्भाव, तिरोभाव (= अन्तर्धान, होना), तिरः-कुल्य (= अन्तर्धान हो भीतके पार चला जाना), तिरः-प्राकार (= अन्तर्धान हो प्राकारके पार हो जाना), तिरः-पर्वत, आकाशमें (चलने जैसे भूमि पर) बिना लिपटे चरूँ, जलकी भाँति पृथिवीमें डूबूँ उतराऊँ, पृथिवीकी तरह जलमें धिना भीये जाऊँ, पक्षियोंकी भाँति आकाशमें आसन आरुढ़ चरूँ, इतने महाप्रतापी=महर्षिके चंद्र-सूर्यकोभी हाथसे लूऊँ=भोजूँ; महालोकपर्यन्त (अपनी) कायासे वशमें रखूँ’ <sup>२</sup>—तो आयत्तन (= आश्रय) होनेपर तो वहाँ तू साक्षात्-भावको प्राप्त होगा ।

“(२) तब (यदि) तू वत्स ! जो चाहेगा—‘विशुद्ध अस्मानुष दिव्य श्रोत्र-धातु (= कान

<sup>१</sup> देखो पुच्छ १६ । <sup>२</sup> देखो पुच्छ २३३ । <sup>३</sup> यही = अभिवादन (= दिव्य शक्तियों) है ।

इन्द्रिय) से दूर-नजदीकके दिव्य-मानुष दोनों प्रकारके शब्दोंको सुनूँ<sup>१</sup> ।—तो आयतन होनेपर वहाँ वहाँ तू साक्षी-भावको प्राप्त होगा ।

“( ३ ) तब ( यदि ) तू वत्स ! चाहेगा—‘दूररे सखों = दूररे प्राणियोंके चित्तको ( अपने ) चित्तद्वारा जानूँ—सराग-चित्त होनेपर सराग-चित्त है—यह जानूँ; वीतराग (= राग-रहित)-चित्त होनेपर, वीत-राग-चित्त है—यह जानूँ । स-द्वेष ०; वीत-द्वेष ० । स-मोह ० । वीत-मोह ० । विक्षिप्त-चित्त ०, सं-क्षिप्त (= एकाग्र)-चित्त ०, महद्गत (= विशाल)-चित्त ०, अ-महद्गत ०, स-उत्तर (= जिससे उत्तम भी है ) चित्त ०, अन्-उत्तर-चित्त ० । समाहित (= समाधि-प्राप्त)-चित्त ०, अ-समाहित-चित्त ० । विमुक्त-चित्त होनेपर, विमुक्त-चित्त है—यह जानूँ; अ-विमुक्त-चित्त होनेपर, अ-विमुक्त चित्त है—यह जानूँ ।—तो आयतन होनेपर वहाँ वहाँ तू साक्षी भावको प्राप्त होगा ।

“( ४ ) तब ( यदि ) तू वत्स ! चाहेगा—‘अनेक प्रकारके पूर्व-निवासों (= पूर्व-जन्मों ) को अनु-स्मरण करूँ—जैसे कि एक जन्मको भी, दो जन्मको भी ०<sup>२</sup> इस प्रकार आकार और उद्देश्य सहित अनेक प्रकारके पूर्व निवासोंको स्मरण करूँ ।—० तू साक्षीभावको प्राप्त होगा ।

“( ५ ) ० चाहेगा—‘मैं अमानुष विमुक्त दिव्य-चक्षुसे जल्दे दूरे, सुवर्ण-सुवर्ण ०<sup>३</sup> प्राणियोंको धरते उत्पन्न होते देखूँ, कर्मानुसार गतिको प्राप्त होते प्राणियोंको पहिचानूँ—यह आप प्राणवादी ०<sup>४</sup> स्वर्गलोकको प्राप्त हुये हैं, इस प्रकार अमानुष विमुक्त दिव्य-चक्षुसे ० कर्मानुसार गतिको प्राप्त होते प्राणियोंको पहिचानूँ ।’—० तू साक्षी भावको प्राप्त होगा ।

“( ६ ) ० चाहेगा—‘मैं आसवोंके क्षयसे आसवरहित चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर प्राप्त कर विहरूँ ।’—० तू साक्षी (= साक्षात्कार करनेवाला ) भावको प्राप्त होगा ।”

तब आयुष्मान् वत्स-गोत्र भगवान्के भाषणको अभिनन्दित कर, अनुमोदित कर, आसनसे उठ भगवान्को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चले गये ।

तब आयुष्मान् वत्स-गोत्र एकाकी, एकाभ्यवासी ०<sup>५</sup> आत्म-संयमी हो विहरते, जल्दी ही ०<sup>६</sup> अनुपम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें ०<sup>७</sup> प्राप्त कर विहरने लगे, ०<sup>८</sup> । आयुष्मान् वत्स-गोत्र अर्हतामेंसे एक हुये ।

उस समय बहुतसे भिक्षु भगवान्के दर्शनके लिये जा रहे थे । आयुष्मान् वत्स-गोत्रने दूसे ही उग भिक्षुओंको जाते देखा । देखकर जहाँ वह भिक्षु थे, वहाँ—“जाकर उन भिक्षुओंसे कहा—

“हस्त ! आप आयुष्मानो कहाँ जा रहे हो ?”

“आयुस ! हम भगवान्के दर्शनके लिये जा रहे हैं ।”

“तो आयुष्मानो ! मेरे वचनसे भगवान्के चरणोंमें शिरसे वन्दना करता; ( और यह कहना )—‘भन्ते ! वत्स-गोत्र भिक्षु भगवान्के चरणोंमें शिरसे वन्दना करता है, और यह कहता है—भगवान् ! मैंने ( उस अभिज्ञाको ) परिचीर्ण कर लिया (= आचरण कर लिया, पा लिया ), मुगत ! मैंने परिचीर्ण कर लिया ।”

“अच्छा, आयुस !”—( कह ) उन भिक्षुओंने आयुष्मान् वत्स-गोत्रको उत्तर दिया ।

तब वह भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर—“बैठ

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ २५ । <sup>२</sup> देखो पृष्ठ २५-२६ । <sup>३</sup> देखो ऊपर । <sup>४</sup> देखो पृष्ठ २३३ ।



“मन्ते ! जायुष्मान् वत्स-गोत्र भगवान्के वरणोंमें सिरसे बंदना करते हैं, और यह कहते हैं—‘भगवान् ! मैंने परिचीर्ण कर लिया, मुगत ! मैंने परिचीर्ण कर लिया’ ।”

“मिश्रुबो ! पहिले मैंने चित्तसे चित्तको देखकर वत्सगोत्र मिश्रुके विषयमें जान लिया—‘वत्स-गोत्र मिश्रु त्रैविद्य (= तीनों विद्याओं<sup>३</sup> का जाननेवाला), महर्षिक (= ऋद्धि-प्राप्त) = महाबुभाव है’ । देवताओंने भी मुझे इस अर्थको कहा—‘वत्स-गोत्र मिश्रु, मन्ते ! त्रैविद्य, महर्षिक = महाबुभाव है’ ।”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन मिश्रुओंने भगवान्के भाषणको अभिनन्दित किया ।

## ७४—दीघनख-सुत्तन्त (२।३।४)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् राजगृहमें, रुद्रकूट पर्वतपर शूकरस्नातार्थमें विहार करते थे ।

तब दीघनख (= दीर्घनख) परित्राजक अहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान् के साथ सम्मोदन<sup>१</sup> कर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े हुये दीर्घनख परित्राजकने भगवान् से यह कहा—

“मो गौतम ! मैं इस वाद=इस दृष्टिका माननेवाला हूँ—‘समी ( मत ) मुझे पसन्द नहीं’ ।

“अग्निवेश ! क्या तुझे ‘समी मुझे पसन्द नहीं’—यह दृष्टिमी पसन्द नहीं है ?”

“मो गौतम ! यदि यह दृष्टि मुझे पसन्द हो, तो ‘यह भी वैसी ही हो, यह भी वैसी ही हो’ ।”

“इसलिये अग्निवेश ! तुझसे बहुत अधिक ( पुरुष ) लोकमें हैं, जो ऐसा कहते हैं—‘यह भी वैसा ही है, यह भी वैसा ही है’, ( किन्तु ) वह उस दृष्टिको नहीं छोड़ते, और दूसरी दृष्टिको ग्रहण करते हैं । और अग्निवेश ! ऐसे ( पुरुष ) लोकमें अत्यन्त कम हैं, जो ऐसा कहते हैं—‘यह भी वैसा ही है, यह भी वैसा ही है’ और उस दृष्टिको छोड़ देते हैं, और दूसरी दृष्टिको भी नहीं ग्रहण करते ।

“अग्निवेश ! कोई कोई श्रमण-ब्राह्मण इस वाद=इस दृष्टिको माननेवाले हैं—‘मुझे समी ( मत ) पसन्द है (= समति )’ । • कोई कोई • इस दृष्टिके माननेवाले हैं—‘मुझे समी पसन्द नहीं’ । अग्निवेश ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण इस दृष्टिके माननेवाले हैं—‘मुझे कोई कोई ( मत ) पसन्द है, कोई कोई नहीं पसन्द है’ ।”

“अग्निवेश ! जो श्रमण-ब्राह्मण इस वाद=इस दृष्टिके माननेवाले हैं—‘समी मुझे पसन्द नहीं’, उनकी यह दृष्टि सराग (= रागयुक्त होनेकी अवस्था ) के समीप है, संयोगके समीप है, अभिर्नन्दन के समीप है, अध्यवसान (= ग्रहण ) के समीप है, उपादान ( पानेकी कोशिश ) के समीप है । अग्निवेश ! जो • इस दृष्टिके माननेवाले हैं—‘मुझे समी पसन्द है’, उनकी यह दृष्टि अ-सराग = अ-संयोग, अन्-अभिर्नन्दन, अन्-अध्यवसान, अन्-उपादानके समीप है ।”

ऐसा कहनेपर दीर्घनख परित्राजकने भगवान् से यह कहा—“आप गौतम मेरी दृष्टिका उत्कर्ष (= प्रशंसा ) करते हैं, आप गौतम मेरी दृष्टिका सम्-उत्कर्ष करते हैं ।”

“अग्निवेश ! जो श्रमण-ब्राह्मण • इस दृष्टिके माननेवाले हैं—‘मुझे कोई कोई पसन्द है, कोई कोई नहीं पसन्द है’ । उनको जो दृष्टि पसन्द नहीं है, वह सरागके समीप है •; उनको जो दृष्टि पसन्द नहीं है, वह अ-सरागके समीप है • ।

<sup>१</sup> यह दीर्घनखका गौत्र था ।



“अग्निवेश ! जो अमण-ब्राह्मण ० इस दृष्टिके माननेवाले हैं—‘सभी मुझे पसन्द हैं’; उनके विषयमें विज्ञ पुरुष यह सोचता है—जो यह मेरी दृष्टि है—‘सभी मुझे पसन्द हैं’; इस दृष्टिको यदि मैं मज्झीमेसे पकड़कर आग्रहकरके कहूँ—‘यही सच है, और (सच मत) स्रष्टा है’, तो दो (वादिषों)के साथ मेरा विग्रह (= विवाद) होगा—( १ ) वह अमण-ब्राह्मण, जो कि ० इस दृष्टिके माननेवाले हैं—‘मुझे सभी पसन्द हैं’; और ( २ ) वह ० जो कि ० इस दृष्टिके माननेवाले हैं—‘मुझे कोई कोई पसन्द है, कोई कोई नहीं पसन्द है’ । इन दोनोंके साथ मेरा विग्रह होगा; विग्रह होनेपर विवाद होगा, विवाद होनेपर विघात (= पीडा) होगा, विघात होनेपर विहिंसा (= हिंसा) होगी । इस प्रकार अपनेमें विग्रह, विवाद, विघात, और विहिंसाको देखते हुये, उस दृष्टिको छोड़ देता है । इस प्रकार इन दृष्टियोंका प्रतिनिस्तर्ग (= त्याग ) होता है ।

“अग्निवेश ! जो अमण-ब्राह्मण ० इस दृष्टिके माननेवाले हैं—‘मुझे सब पसन्द नहीं हैं’ । इस बारेमें विज्ञ पुरुष यह सोचता है—जो यह मेरी दृष्टि है—‘मुझे सब पसन्द नहीं हैं’; इस दृष्टिको यदि मैं ० आग्रहकरके कहूँ—‘यही सच है, और स्रष्टा है’, तो दोके साथ मेरा विग्रह होगा—( १ ) वह ० जो कि ० इस दृष्टिके माननेवाले हैं—‘मुझे सब पसन्द है’; और ( २ ) ०—‘मुझे कोई कोई पसन्द है, कोई कोई नहीं पसन्द है’ । इन दोनोंके साथ मेरा विग्रह होगा ० । इस प्रकार इन दृष्टियों का परित्याग होता है ।

“अग्निवेश ! जो अमण-ब्राह्मण ० इस दृष्टिके माननेवाले हैं—‘मुझे कोई कोई पसन्द है, कोई कोई नहीं पसन्द है’ । इस बारेमें विज्ञ पुरुष यह सोचता है—० जो यह मेरी दृष्टि है—‘मुझे कोई कोई ० तो दोके साथ विग्रह होगा—( १ ) ०—‘मुझे सब पसन्द है’; और ( २ ) ०—‘मुझे सब पसन्द नहीं है’ । इन दोनोंके साथ मेरा विग्रह होगा ० । इस प्रकार इन दृष्टियोंका परित्याग होता है ।

“अग्निवेश ! यह काया रूपी (= रूपसे बनी) = चार महाभूतोंसे बनी, माता-पितासे उत्पन्न, दाल-भात (= भोजन-कुत्साय)से बर्धित, अनित्य-उत्सादन (= ० विनाश) -परिमर्दन-भेदन (= टूटना) -विध्वंसन धर्मों (= स्वभावों)वाली है, ( इसे मुझे ) अनित्यके तौरपर, दुःख-रोग-मोह (= फोका) -दाल ( = फर, काँटा ) -ग्रह-आघात (= बीमारी) -परकीय-नाशमान-शून्य-विनाश (= आत्मा नहीं ) के तौरपर समझना चाहिये । इस कायाको अनित्यके तौरपर ० सम्प्रक्षेपसे उसका इस कायामें छन्द (= राग ), स्नेह, अन्वयता (= संबंधी भाव ) नष्ट हो जाता है ।

“अग्निवेश ! यह तीन वेदनायें ( अनुभव ) हैं ?—( १ ) सुखा (= सुख रूप भाव्य होने वाली ) वेदना; ( २ ) दुःखा वेदना; ( ३ ) अदुःख-असुखा-वेदना । अग्निवेश ! जिस समय ( आधमी ) सुखा वेदनाको अनुभव ( वेदन ) करता है, उस समय न दुःखा वेदनाको अनुभव करता है, वही अदुःख-असुखा वेदना को; सुखा वेदनाको ही उस समय अनुभव करता है । अग्निवेश ! जिस समय दुःखा वेदनाको अनुभव करता है ० । अग्निवेश ! जिस समय अदुःख-असुखा वेदनाको अनुभव करता है, उस समय न सुखा वेदनाको अनुभव करता है, नहीं दुःखा वेदनाको, ० ।

“अग्निवेश ! सुखा वेदना भी अनित्य, संस्कृत, (= कृत ), = प्रतीत्य-स्समुत्पन्न ( कारणसे उत्पन्न ), क्षय-धर्मा (= क्षय स्वभाववाली ) = क्षय-धर्मा, विराग-धर्मा, निरोध-धर्मा है । अग्निवेश ! दुःखा वेदना भी अनित्य ० निरोध-धर्मा है । अग्निवेश ! अदुःख-असुखा वेदना अनित्य ० निरोध-धर्मा है । अग्निवेश ! ऐसा समझ भुत्तवान् (= बहुभुत ) आर्य-आचक्षु सुखा वेदनासे भी निर्वेद (= उदासीनता ) को प्राप्त होता है, दुःखा वेदनासे भी निर्वेदको प्राप्त होता है, अदुःख-असुखा वेदनासे भी निर्वेदको प्राप्त होता है । निर्वेदको प्राप्त हो विरक्त होता है, विरागको प्राप्त

हो विमुक्त होता है, विमुक्त होनेपर—‘मैं विमुक्त हूँ’ यह ज्ञान होता है; ‘जन्म स्वतन्त्र हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना या सो कर लिया, अब यहाँ ( करने ) के लिये कुछ ( रोष ) नहीं है—यह ज्ञान होता है। अभिवेश ! इस प्रकार विमुक्त-चित्त ( = मुक्त ) भिक्षु न कित्तीके साथ संवाद करता है, न विवाद करता है; संसारमें जो कुछ कहा गया है, जगद्-रहित हो उसीसे ( कथन- ) व्यवहार करता है ।”

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र भगवान्‌के पीछे सवे हो, भगवान्‌को पंखा झल रहे थे। तब आयुष्मान् सारिपुत्रको यह हुआ—‘भगवान् हमें जानकर उन उन धर्मोंको छोड़नेको कहते हैं, सुगत हमें जानकर उन उन धर्मोंको त्यागनेको कहते हैं। इस प्रकार सोचते हुये आयुष्मान् सारिपुत्रका चित्त आसवों ( = चित्त-मलों ) से अलग हो मुक्त हो गया। और दीर्घनख परित्राजकको ( वह ) विरज-विमल धर्म-क्षु उत्पन्न हुआ—‘जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह सब नाशमान ( = निरोध-धर्मा ) हैं’।

तब दृष्ट-धर्म ( = जितने धर्मोंको देख लिया ) = प्राप्त-धर्म, विदित-धर्म = पर्यवगाह-धर्म, संशय-रहित, वाद् विवाद-रहित, वैशारद-प्राप्त ( = सर्वज्ञ ) शास्त्राके शासन ( = बुद्धधर्म )में परम अदालु हो दीर्घनख परित्राजकने भगवान्‌से यह कहा—‘आश्वर्य ! भो गौतम ! आश्वर्य !! भो गौतम ! जैसे औंधेको सीधा कर दे, \* । आप गौतम आजसे मुझे अञ्जलिबद्ध, शरणागत उपाश्रय स्वीकार करें ।”



## ७५—मार्गन्दिय-सुत्तन्त (२।३।५)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् कुरु ( देश ) के, कम्मास-दम्म नामक कुरुओं के निगम में, भारद्वाज-गोत्र ब्राह्मण की अग्निशाला में तृण-आसन पर विहार करते थे ।

तब भगवान् पूर्वाह्ण के समय पहिनकर, पात्र-चीवर ले कम्मास-दम्म ( = कम्मास दम्प ) में भिक्षा के लिए प्रविष्ट हुए । कम्मास दम्म में भिक्षाटन कर, भोजन से विवृत्त हो, दिन के विहार के लिये एक वन-पण्ड में गये । उस वन-पण्ड को अवगाहन कर एक वृक्ष के नीचे दिन के विहार के लिये बैठे ।

तब मार्गन्दिय परिव्राजक जंबाविहार ( = दहलने ) के लिये धूमता-टहलता, जहाँ भारद्वाज-गोत्र ब्राह्मण की अग्निशाला थी, वहाँ गया । मार्गन्दिय परिव्राजक ने भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण की अग्निशाला में तृण-आसन ( = तृण संस्तरक ) बिछा देखा । देखकर भारद्वाज-गोत्र ब्राह्मण से कहा—

“आप भारद्वाज की अग्निशाला में किसका तृण-आसन बिछा हुआ है, श्रमण का जैसा जान पड़ता है ?”

“ओ मार्गन्दिय ! शाक्य-पुत्र, शाक्यकुल से प्रव्रजित ( जो ) श्रमण गौतम हैं । उन भगवान् का ऐसा मंगल कीर्ति-शब्द ( = वक्ता ) फैला हुआ है” —“वह भगवान् अर्हत्, सम्मत्-संशुद्ध, विद्या-धरण-संपन्न, सुगत, लोकविद, पुरुषों के अनुपम, चातुक्-सवार, देवता और मनुष्यों के शास्त्रा भगवान् बुद्ध हैं । उन्हीं आप गौतम के लिये वह शय्या बिछी हुई है ।”

“ओ भारद्वाज ! यह बुरा देखना हुआ, जो हमने आप गौतम की भुन-भू शय्या को देखा ।”

“रोको इस वचन को मार्गन्दिय ! रोको इस वचन को मार्गन्दिय ! उन आप गौतम में बहुत से क्षत्रिय पंडित भी, ब्राह्मण पंडित भी, गृहपति-पंडित भी, श्रमण-पंडित भी अभिप्रसन्न ( = अद्वा-वान् ) हैं, आर्य न्याय कुशल-धर्म में लाये गये हैं ।”

“हे भारद्वाज ! यदि मैं आप गौतम को सामने भी देखता, तो सामने भी उन्हें कहता—‘श्रमण गौतम की भुन-भू ०’ । सो किस हेतु ?—यही हमारे सुचो ( = सुखी, सुकी ) में आता है ।”

“यदि, आप मार्गन्दिय को बुरा न लगे, तो इस ( बात ) को मैं श्रमण-गौतम से कहूँ ।”

“देखते आप भारद्वाज ( मेरे ) कहे को उनसे कहें ।”

भगवान् ने असालुप विशुद्ध दिव्य-श्रोत्र से भारद्वाज गोत्र ब्राह्मण के मार्गन्दिय परिव्राजक के साथ होते इस कथा-संलाप को सुना । तब भगवान् सार्यकाल ध्यान से डूबकर, जहाँ भारद्वाज-गोत्र ब्राह्मण की अग्निशाला थी, वहाँ गये, और बिछे तृण-आसन पर बैठ गये । तब भारद्वाज-गोत्र ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान् के साथ “संमोदन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे भार-

१ देखो पृष्ठ २४, २५ भी ।

द्वारा-गोत्र ब्राह्मणसे भगवान्ने यह कहा—

“भारद्वाज ! इस तृण-आसनको लेकर तेरा मार्गद्विध-परिव्राजकके साथ क्या कुछ कथा-संलाप हुआ ?”

ऐसा कहतेपर भारद्वाज-गोत्र ब्राह्मण संविभ्र = रोमांचित हो भगवान्से यह बोला—

“यही हम आप गौतमसे कहनेवाले थे, कि आप गौतमने ( उसे ) जन्-आख्यात ( = सं-कथितम् ) कर दिया ।”

यही कथा भारद्वाज-गोत्र ब्राह्मण और भगवान्में हो रही थी, कि मार्गद्विध परिव्राजक जंघा-विहारके लिये टहलता-धूमता, जहाँ भारद्वाज-गोत्र ब्राह्मणकी अग्निशाला थी, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्के साथ “संभोदन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे मार्गद्विध परिव्राजकसे भगवान्ने यह कहा—

“भागन्दिय ! चक्षु रूपाराम ( = अच्छा रूप देखकर जानन्दित होनेवाला ) = रूपरत्न रूप-समुदित है; वह ( = बाँध ) तन्मागतकी दान्त ( = संयत ) गुप्त = रहित = संकुत है । ( तन्मागत ) उस ( = चक्षु )के संवर ( = संयम )के लिये धर्मापदेश करते हैं । भागन्दिय ! यही सोचकर तुले कहा न—‘अमण गौतम सुन-भू है’ ?”

“सो गौतम ! यही सोचकर मैंने कहा—‘अमण गौतम सुन-भू है’ । सो किस हेतु ?—ऐसा ही हमारे सुश्रोमि आता है ।”

“भागन्दिय ! ओत्र शब्दराम ० । ० ब्राण गंधाराम ० । ० जिह्वा रत्नाराम ० । ० काया रत्नरत्नाराम ० । ० मन धर्माराम ० ।

“तो क्या मानता है, भागन्दिय ! यहाँ कोई ( पुरुष ) पहिले चक्षु द्वारा चिज्ञेय दृष्ट, दान्त = संयत = प्रियरूप, काम-सुख, रंजनीय, रूपोंको भोग रहा हो । वह दूसरे समग्र रूपोंके समुदय ( = उत्पत्ति ), अन्त-गमन, आरुवाद, आदिनव ( = दोष ), निस्सरण ( = निकलनेके उपाय )को ठीकसे जानकर, रूप विषयक तृष्णाको छोड़े; रूप-विषयक जलनको हटाकर, ( रूपकी ) प्याससे रहित हो; ( अपने ) भीतर उपशान्त ( = शांति )-चित्त हो विहरे । ऐसे ( पुरुष )को भागन्दिय ! तेरे पास कहनेके लिये क्या है ?”

“कुछ नहीं, मो गौतम !”

“तो क्या मानता है, भागन्दिय ! ० ओत्र द्वारा चिज्ञेय ० शब्दोंको भोग रहा हो ० । ० ब्राण द्वारा चिज्ञेय ० गंधोंको भोग रहा हो ० । ० जिह्वा द्वारा चिज्ञेय ० रसोंको भोग रहा हो ० । ० काया द्वारा चिज्ञेय ० रत्नरत्नोंको भोग रहा हो ० ।

“भागन्दिय ! पहिले गृहस्थ होते समय मैं चक्षु द्वारा चिज्ञेय दृष्ट ० रसोंको भोग रहा था । ० शब्दों ० । ० गंधों ० । ० रसों ० । ० रत्नरत्नों ० । भागन्दिय ! उस समय मेरे तीन प्रासाद थे—एक वर्षाकालिक, एक हेमन्तिक, एक शीतलिक । मैं वर्षाके वारों महीने वर्षाकालिक प्रासादमें, अ-गुरुओं ( = क्षियों )के वारोंसे सेवित हो, प्रासादके नीचे न उतरता था । फिर दूसरे समय कामों ( = विषय-भोगों )के समुदय, अन्त-गमन ० को अच्छी तरह जान काम-तृष्णाको छोड़ ० उपशान्त-चित्त हो । विहरता हूँ । ( जब ) मैं अन्य प्राणियोंको कामोंमें अ-वीतराग, काम-तृष्णा द्वारा आवे जाते, काम-दाहसे जलते हुये कामोंको सेवन करते देखता हूँ, तो मैं उनकी सृष्टा नहीं करता, ( उनमें ) अभिरत नहीं होता । सो किस हेतु ?—भागन्दिय ! जो यह रति कामोंसे जलन, अकुशल-वर्मा ( = पापों )से जलनमें है, ( जो रति कि ) दिव्य सुखोंको भात करती है, उस रतिमें रमते हीन ( = रति )की सृष्टा नहीं करता, उसमें अभिरत नहीं होता ।



“जैसे मागन्दिब ! कोई आठ, महाधनी, महामोग (संपन्न) गृहपति, या गृहपति-पुत्र पाँच काम-गुणों—चतु द्वारा ज्ञेय, दृष्ट = कान्त, मनाप = प्रिय, कमनीय = रंजनीय रूपों, ० द्रव्यों, ० रंधों, ० स्त्रियों, ० स्प्रष्टव्यों—से समर्पित = समंगीभूत (= संयुक्त) हो बिहार करे। वह कायासे सुचरित, (= सुकर्म) करके, वचनसे सुचरित करके, मनसे सुचरित करके काया छोड़ मरनेके बाद सुगति स्वर्गलोकमें, त्रायस्त्रिंश देवोंके बीच उत्पन्न हो। वह वहाँ नन्दनवनमें अप्सरा-समुदायसे परिवारित (= घिरा) पाँच दिव्य कामगुणोंसे समर्पित, समंगीभूत हो बहार करे। वह किसी गृहपति या गृहपति-पुत्रको पाँच काम-गुणोंसे समर्पित, समंगीभूत हो बहार करते देखे। तो क्या मानता है मागन्दिब ! क्या वह नन्दनवनमें अप्सरा समुदायसे परिवारित, पाँच दिव्य काम-गुणोंसे समर्पित ० हो बहार करता, देखपुत्र; इस गृहपति या गृहपतिपुत्रको पाँच मानुष काम-गुणोंसे समर्पित ० हो बहार करते देख; मानुष काम-गुणोंकी ओर लौटना चाहेगा ?”

“नहीं, भो गौतम !”

“तो, किस हेतु ?”

“भो गौतम ! मानुष कामों (= भोगों)से दिव्य काम अभिक्रान्ततर (= उत्तम) = प्रणीततर है।”

“ऐसे ही मागन्दिब ! पहिले गृहस्थ होते समय मैं ०<sup>१</sup> ( जो रति कि ) दिव्य सुखोंको भात करती है, उस रतिमें रमते हीन (—रति)की स्पृहा नहीं करता, उसमें जमिरत नहीं होता।

“जैसे मागन्दिब ! सड़ा-शरीर, पका-शरीर, कीचोंसे ढाया जाता, नखोंसे-चावके-सुखोंको-छुरेदना कोई कोई आदमी ( आग )पर शरीरको तपाता हो। उसके मित्र-भगाल, ज्ञाति-सलोहित (= भाई-बंध) शल्यकर्ता मिषक् (= वैद्य)को लायें। वह ० मिषक् उलकी चिकित्सा करे। उस चिकित्सासे वह कुष्ठसे मुक्त, निरोग स्वतंत्र, स्वयत्ता, जहाँ-चाहे-तहाँ-जानेवाला हो जाये। ( फिर ) वह दूसरे सड़े-शरीर ० कोई आदमीको भीरपर शरीरको तपाता देखे, तो क्या मानता है, मागन्दिब ! क्या वह उस-कोड़ीके भीरपर तपाने या औषध-सेवनकी स्पृहा (= इच्छा) करेगा ?”

“नहीं, भो गौतम !”

“तो, किस हेतु ?”

“भो गौतम ! रोग होनेपर ही औषध्य (= चिकित्सा) का काम होता है, रोग न रहनेपर औषध्यका काम नहीं होता।”

“ऐसे ही मागन्दिब ! पहिले गृहस्थ होते समय मैं ०<sup>२</sup> ० उसमें जमिरत नहीं होता।”

“जैसे मागन्दिब ! सड़ा-शरीर ० कोई ० चिकित्सासे कुष्ठसे मुक्त ० हो जाये। ( तब ) दो बलवान् पुरुष “बाहोंसे पकड़कर उसे भीर ( की आग )पर डालें। तो क्या मानता है, मागन्दिब ! क्या वह पुरुष इधर उधर शरीरको नहीं हटावेगा ?”

“नरु, भो गौतम !”

“तो किस हेतु ?”

“भो गौतम ! जग दुःख-स्पर्श (= दुःखके साथ छूने लायक), महा-ताप, महा-दाह-वाली है।”

<sup>१</sup> देखो कुष्ठ २५३।

"तो क्या मानता है, भागन्दिय ! इसी समय वह आग दुःख-स्पर्श-महाताप-महादाहवाली है, या पहिले भी.....?"

"ओ गौतम ! इस समय भी वह आग दुःख-स्पर्श ० है, और पहिले भी...." भी । ( किन्तु पहिले ) वह सवा-शरीर ० उपहृत-इन्द्रिय (= अफले मारे ) कोही आदमी दुःख-स्पर्श अग्निमें भी 'सुख है'—ऐसी विपरीत धारणा रखता था ।"

"ऐसे ही भागन्दिय ! काम (= विषयभोग ) अतीतकालमें भी दुःख-स्पर्श—महाताप-महादाहवाले हैं; काम भविष्य-कालमें भी ०, इस समय वर्तमानमें भी दुःख-स्पर्श-महाताप-महादाह-वाले हैं । भागन्दिय ! यह कामोंमें अ-वीतराग, काम-तृष्णासे-लगाये जाते, कामदाहसे-जलते उपहृत-इन्द्रिय (= हिचकी फूटोवाले ) प्राणी दुःख-स्पर्शवाले कामोंमें 'सुख है'—ऐसी विपरीत धारणा (= संज्ञा ) रखते हैं ।

"जैसे, भागन्दिय ! सवा-शरीर ० कोही भौरपर शरीरको तपाता हो । भागन्दिय ! जितना ही जितना वह ० कोही भौरपर शरीरको तपावे, उतना ही उतना उसके घावके मुँहमें अधिक मल, अधिक दुर्गन्ध, अधिक पीय आवे । घावके मुँहके सुजलानेसे क्षणभरके लिये रस, आस्वाद मालूम होते । इसी प्रकार भागन्दिय ! वह कामोंमें अ-वीतराग कामतृष्णासे-लगाये-जाते, काम-दाहसे-जलते प्राणी कामोंका सेवन करते हैं । भागन्दिय ! जितना ही जितना कामोंमें अ-वीतराग ० प्राणी कामोंका सेवन करते हैं, उतना ही उतना उन प्राणियोंकी काम-तृष्णा बढ़ती है, काम-दाहसे ( वह ) जलते हैं; कामगुणों ( के सेवन )से क्षणभरके लिये रस, आस्वाद मात्र मालूम होता है ।

"तो क्या मानता है, भागन्दिय ! क्या तुने देखा या सुना है, कि काम-गुणों (= विषय-भोगों)से समर्पित, समर्पितभूत हो बहार करते, कोई राजा या राज-महामात्य, काम-तृष्णा बिना छोड़े, काम-दाह बिना त्यागे, पिपासा-रहित बन अपने अन्दर उपशान्त-चित्त हो विहरता था, विहर रहा है, या विहरेगा ?"

"नहीं, ओ गौतम !"

"साधु, भागन्दिय ! मैंने भी वह नहीं देखा, नहीं सुना, कि ० कोई राजा या राज-महामात्य ० विहरेगा । बल्कि भागन्दिय ! जो क्षमण या माध्यण पिपासा-रहित बन, अपने अन्दर उपशान्त-चित्त हो विहरे, विहरते हैं, या विहरेंगे, वह सभी कामोंके समुदय, अलगभग ० की ठीकसे जायकर, काम-तृष्णाकी छोट; काम-विषयक जलनको हटा, ( कामकी ) व्याससे रहित हो, अपने अन्दर उपशान्त-चित्त हो विहरे थे, विहरते हैं, या विहरेंगे ।

तब भगवान्ने उसी समय इस उद्दानको कहा—

"आरोग्य (= निरोग रहना ) परम लाभ है, निर्वाण परम सुख है ।

अमृतकी ओर लेजानेवाले मार्गोंमें अष्टांगिक मार्ग ( बहुत )श्रेष्ठ (= मंगल ) भव है ।"

ऐसा कहनेपर भागन्दिय पश्चिमाजकने भगवान्से यह कहा—

"आश्चर्य ! ओ गौतम ! अद्भुत !! ओ गौतम ! कैसा सु-भाषित (= ठीक कहा ) आप गौतमने कहा—'आरोग्य परम लाभ है, निर्वाण परम सुख है ।' मैंने भी ओ गौतम ! ( अपने ) पूर्वके परिब्राजक आचार्य-प्राचार्योंको कहते सुना है—'आरोग्य परम लाभ है, निर्वाण परम सुख है' । ओ गौतम ! यह उससे मिल जाता है ।"



“भागन्दिव ! जो तुने पूर्वके परित्राजक आचार्य-प्राचार्योंको कहते सुना है—‘आरोग्य ०’; उसमें क्या है आरोग्य, और क्या है निर्वाण ?”

ऐसा कहनेपर भागन्दिव परित्राजक अपने शरीरको छूते हुये ( बोला )—

“भो गौतम ! यह आरोग्य है, यह निर्वाण है, भो गौतम ! मैं इस समय अ-रोग, सुखी हूँ, मुझे कोई व्याधि नहीं है ।”

“जैसे, भागन्दिव ! जम्भान्ध पुरुष न देखे काले ०, ० सफेद रूपको, न देखे नीले रूपको, न देखे पीले रूपको, न देखे लाल रूपको, न देखे मजीठी रंग रूपको, न देखे सम-विषम ( भूमि ) को, न देखे तारोंके रूपको, न देखे चन्द्र-सूर्यको । वह आँखवालोंको कहते सुने—‘श्वेत वस्त्र यदिया होता है, सुन्दर-निर्मल-शुचि ( होता है )’ । वह श्वेतकी खोजमें चले । उसे कोई पुरुष तेलको स्वाही लगे काले ( उनी ) कपड़ेसे वंचित करे—‘हे पुरुष ! यह यदिया, सुन्दर, निर्मल, शुचि श्वेतवस्त्र है’ । वा उसे परिग्रहण करे, प्रतिग्रहण करे, पहिने । पहिनकर सन्तुष्ट हो फूलकर वचन निकाले—‘अहो ! श्वेतवस्त्र यदिया होता है, सुन्दर-निर्मल-शुचि ( होता है )’ । तो क्या मानता है, भागन्दिव ! क्या वह जम्भान्ध पुरुष ज्ञान-सम्पन्नकर उस तेलको स्वाही लगे काले कपड़ेको परिग्रहण करता, प्रतिग्रहण करता, ० । पहिनकर ० वचन निकालता—‘अहो ! श्वेत वस्त्र ०’; वा आँखवालेपर श्रद्धा करता ?”

“भो गौतम ! वह जम्भान्ध पुरुष न ज्ञान-सम्पन्नकर ही उस तेलकी स्वाही लगे ० प्रतिग्रहण करता है ० । ० आँखवालेपर श्रद्धा करता है ।”

“ऐसेही, भागन्दिव ! अन्धे नेत्रहीन अन्य-तौरिक ( = दूसरे मतवाले ) परित्राजक आरोग्यको न जानते, निर्वाणको न देखते भी इस गाथाको कहते हैं—‘आरोग्य परम लाभ है, निर्वाण परम सुख है’ । भागन्दिव ! पूर्वके अर्हत् तथ्यक् संखुर्वेने इस गाथाको कहा है—‘आरोग्य परम लाभ है, ० अष्टांगिक-मार्ग क्षेम है’ । सो अब धीरे धीरे भगवद्विों ( = पृथग्जनो ) में चली गई । भागन्दिव ! यह काया रोगमय, गंड ( = फोड़ा )-मय, शल्य, ( = काँटा )-मय अय-मय, व्याधि-मय है । सो तू इस रोगमय ० व्याधिमय कायाको कह रहा है—‘भो गौतम ! यह आरोग्य है, यह निर्वाण है । भागन्दिव ! तुझे आर्थ-वस्तु नहीं है, जिससे कि तू आरोग्यको जाने, निर्वाणको देखे ।”

“मैं आप गौतममें इतनी श्रद्धा रखता हूँ ; आप गौतमको अधिकार है, कि मुझे उस प्रकार धर्म-उपदेश करें, जिससे कि मैं आरोग्यको जान सकूँ, निर्वाणको देख सकूँ ।”

“जैसे भागन्दिव ! जो जम्भान्ध पुरुष ०<sup>१</sup> न देखे चन्द्र-सूर्यको । ( तब ) उसके मित्र-अमात्य, जाति-सखीहित शल्य-कर्ता भिषक्को लावें । वह शल्यकर्ता भिषक् उसकी चिकित्सा करे वह उस चिकित्सासे न आँखोंको उत्पन्न करे, न आँखोंको साफ करे । तो क्या मानता है, भागन्दिव ! क्या वह वीध सिर्फ हीरानी, परेशानीका ही भारी है न ?”

“हाँ, भो गौतम !”

“ऐसे ही भागन्दिव ! मैं तो तुझे धर्म-उपदेश करूँ—यह आरोग्य है, यह निर्वाण है; और तू उस आरोग्यको न जाने, उस निर्वाणको न देखे, तो यह मेरी ( व्यर्थकी ) परेशानी होगी, विहिता ( = पीड़ा ) होगी ।”

“मैं आप गीतममें इतनी श्रद्धा रखता (= प्रत्यक्ष) हूँ, आप गीतमको अधिकार है, ० निर्व्याणको देख सड़ें ।”

“जैसे, भागन्दिय ! जन्मान्ध पुरुष ०<sup>१</sup> को, न देखे चन्द्र-सूर्यको । वह आँखवालोंको कहते सुने ०<sup>२</sup> वह उसे परिग्रहण = प्रतिग्रहण करे, पहिने । ( तब ) उसके भिन्न-जमात्य, जाति-सलोहित शल्यकतां भिषक्को लावें । वह ० चिकित्सा—उर्ध्व विरेचन (= डस्टी आनेकी दवा ), अधोविरेचन (= ललाय ), अंजन, प्रत्यंजन, मत्स्यकम्भ (= नाकसे औषध-प्रदान ) करे । वह उस भैषज्यसे आँखोंको उत्पन्न करे, आँखोंको साफ करे । आँख उत्पन्न होनेके साथ ही, उस तेल-मसीसे लिपटे काले कपड़े (= साहुल-चीवर = काली भेषके बालके कपड़ों )में उसका छन्द = राग नष्ट हो जाये । और वह उस ( वंचक ) पुरुषको अमित्र मानने लगे, प्रत्यर्धि (= शत्रु ) मानने लगे, वल्कि प्राणसे भी मारना चाहे—“अरे, चिरकालसे यह पुरुष तेल-मसीकृत साहुल-चीवरसे मुझे वंचित = निवृत्त = प्रलब्ध करता रहा—‘हे पुरुष ! यह बड़िया, सुन्दर, निर्मल, शुचि, इवेत वस्त्र है ।’ ऐसे ही भागन्दिय ! मैं तुझे धर्मोपदेश करूँ—यह आरोग्य है, यह निर्व्याण है, और तू आरोग्यको जाने, निर्व्याणको देखे, तो आँख उत्पन्न होनेके साथ ही, जो पाँच उपादान-स्पर्धों में तेरा छन्द = राग है, वह नष्ट हो जाये । तुझे यह भी होवे—अरे, चिरकालसे यह चित्त मुझे वंचित = निवृत्त = प्रलब्ध करता रहा । मैं रूपकी ही ( अपना करके ) ग्रहण (= उपादान ) करता रहा, वेदना ०, संज्ञा ०, संस्कार ०, विज्ञानको ही ( अपना करके ) ग्रहण करता रहा । मेरा उस उपादानके कारण भव, (= संसार ), भवके कारण जाति (= जन्म ) जातिके कारण जरा-मरण शोक-नोदन श्रंदन, दुःख = दौर्भाग्य परेशानी उत्पन्न होती रही । इस प्रकार इस केवल दुःख-स्पर्ध (= दुःख-पुंज )की उत्पत्ति (= समुद्भव ) होती है ।”

“मैं आप गीतममें इतनी श्रद्धा रखता हूँ, आप गीतमको अधिकार है, कि मुझे इस प्रकार धर्मोपदेश करें, जिसमें कि मैं इस आत्मसे अन्-अन्व होकर उड़ूँ ।”

“तो भागन्दिय ! तू सत्पुरुषोंका सेवन कर । जब तू सत्पुरुषोंको सेवन करेगा, तो सद्धर्मको सुनेगा । जब तू भागन्दिय ! सद्धर्मको सुनेगा, तो सद्धर्मके अनुसार आचरण करेगा । जब तू भागन्दिय ! सद्धर्मके अनुसार आचरण करेगा, तो स्वयंही जानेगा, स्वयंही देखेगा—‘यह रोग, गंध, शल्य है, यहाँ सारे रोग, गंध (= फोड़ा ), शल्य (= काँटा ) निरुद्ध (= नष्ट ) होते हैं’ । तब तेरे उपादानके निरोधसे भव-निरोध, भव-निरोधसे जाति-निरोध, जाति-निरोधसे जरा-मरण शोक-परिदेव दुःख-दौर्भाग्य-उपायासोंका निरोध होता है । इस प्रकार इस केवल दुःख-स्पर्धका निरोध होता है ।”

ऐसा कहनेपर भागन्दिय परित्राजकने भगवान्से यह कहा—

“आश्चर्य ! मो गीतम ! आश्चर्य !! मो गीतम ! जैसे आँखोंको सीधा कर दे ०<sup>३</sup> यह मैं भगवान् गीतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और मित्र-संघकी भी । भन्ते ! मैं भगवान्के पास प्रमज्जा पाऊँ, उपसंपदा पाऊँ ।”

“भागन्दिय ! जो कोई भूतपूर्व अन्ध-सीर्षिक इस धर्ममें प्रमज्जा उपसंपदा चाहता है, वह चार मास तक परित्रास करता है<sup>४</sup> ।”

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ १५६ ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ १६ ।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ २३३ ।



“यदि भन्ते ! ०<sup>१</sup> चार मास परिवास करते हैं ०<sup>१</sup> तो मैं चार वर्ष परिवास करूँगा ।”  
 मागन्दिब परित्राजकने भगवान्‌के पास प्रवज्या उपसंघदा पाई ।

उपसंघ होनेके बाद जल्दी ही आयुष्मान् मागन्दिब, एकाकी एकान्तवासी ०<sup>१</sup> आत्म-  
 संयमी हो विहरते, जल्दी ही ० अनुपम ब्रह्मचर्य फलको इसी जन्ममें ०<sup>१</sup> प्राप्त कर विहरने लगे, ०<sup>१</sup>  
 आयुष्मान् मागन्दिब अर्हतोंमेंसे एक हुये ।

## ७६—सन्दक-सुत्तन्त (२।३।६)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् कौशाम्बोके घोषितराममें विहार करते थे। उस समय पाँचसौ परिव्राजकोंकी महापरिव्राजक-परिषद्के साथ, सन्दक परिव्राजक गृक्षगुहामें<sup>१</sup> वास करता था।

आयुष्मान् आनन्दने सायंकाल ध्यानसे उठ, भिक्षुओंको संबोधित किया—

“आयुसो ! आओ जहाँ देवकट-सोष्म” (= देवकृत-अन्न = स्वभाविक अन्न-रूप) है, यहाँ देखनेके लिये चलो।”

“अच्छा आयुस !” (कह) उन भिक्षुओंमें आयुष्मान् आनन्दको उत्तर दिया। तब आयुष्मान् आनन्द बहुतसे भिक्षुओंके साथ, जहाँ देवकट-सोष्म था, वहाँ गये। उस समय सन्दक परिव्राजक राजकथा राज-कथा, चौर-कथा, माहात्म्य-कथा, सेना-कथा, भय-कथा, युद्ध-कथा, अन्न-कथा, पान-कथा, वस्त्र-कथा, शयन-कथा, गंध-कथा, माला-कथा, जाति (= कुल )-कथा, यान (= युद्ध-यात्रा )-कथा, ग्राम-कथा, निगम-कथा, नगर-कथा, जनपद-कथा, छो-कथा, शूर-कथा, पिशिया (= चौरस्ता )-कथा, कुम्भ-स्थान (= पनघट )-कथा, पूर्वप्रेत (= पहिले मरोंको )-कथा, तानातक-कथा, लोक-आख्यायिका, समुद्र-आख्यायिका, इतिभवाभव (= ऐसा हुआ, ऐसा नहीं हुआ )-कथा आदि निरर्थक कथा कहती, नाद करती, शोर मचाती, बड़ी भारी परिव्राजक-परिषद्के साथ, बैठा था। सन्दक परिव्राजकने दूरहीसे आयुष्मान् आनन्दको भाते देखा। देखकर अपनी परिषद्से कहा— ‘आप तब चुप हों। मत...शब्द करें। वह अमण गौतमका आवाक अमण आनन्द आरहा है। अमण गौतमके जितने आवाक कौशाम्बीमें वास करते हैं, उनमें एक, वह अमण आनन्द है। यह आयुष्मान् लोग निःशब्द-प्रेमी, अल्प-शब्द-प्रशंसक होते हैं। परिषद्को अल्पशब्द देख, संभव है ( इधर ) भी आवें।’ तब वह परिव्राजक चुप होगये।

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ सन्दक परिव्राजक था, वहाँ गये। सन्दक परिव्राजकने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

“आइये आप आनन्द ! स्वागत है आप आनन्दका। चिरकालयाद आप आनन्द यहाँ आये। बैठिये आप आनन्द, यह आसन सिद्धा है।”

आयुष्मान् आनन्द बिठे आसनपर बैठ गये। सन्दक परिव्राजक भी एक नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे, सन्दक परिव्राजकने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

“सन्दक ! किस कथामें बैठे थे, बीचमें क्या कथा होरही थी ?”

“जाने बीजिये इस कथाको, भो आनन्द ! जिस कथामें कि हम इस समय बैठे थे। ऐसी

<sup>१</sup> कोसम्के पास पमोसा ( वि० इकाइवाद )। <sup>२</sup> पमोसामें कोई प्राकृतिक बल-कुल था।



क्या आप आनन्दको पीछे भी सुननेको दुर्लभ न होगी। अच्छा हो, आप आनन्द ही अपने आचार्यक (= धर्म) विषयक धार्मिक-कथा कहें।”

“तो सन्दक ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ।”

“अच्छा भो !” ( कह ) सन्दक परित्राजकने आयुष्मान् आनन्दको उत्तर दिया। आयुष्मान् आनन्दने कहा—

“सन्दक ! उन ज्ञानकार, देखनहार, सम्यक्-संयुक्त भगवान्ने चार अ-ब्रह्मचर्य-वास कहे हैं, और चार अन्धकारन न देनेवाले ब्रह्मचर्य-वास (= संन्यास) कहे हैं, जिनमें विज्ञ-पुरुष अपनी शक्तिपर ब्रह्मचर्य-वास न करे। वास करनेपर त्याग (= निर्वाण), कुशल (= अच्छे)-धर्मको न पा सकेगा।

“हे आनन्द ! उन० भगवान्ने कौनसे चार अ-ब्रह्मचर्य वास० कहे हैं० ?”

( १ ) “सन्दक ! यहाँ एक शास्ता (= गुरु, पंथ चलाने वाला) ऐसा वाद (= दृष्टि) रखनेवाला होता है—‘नहीं है दान ( का फल ), नहीं है यज्ञ ( का फल ), नहीं है हवन ( का फल ) नहीं है सुकृत-दुष्कृत कर्मोंका फल = विपाक, यह लोक नहीं है, पर-लोक नहीं है, माता नहीं, पिता नहीं। औपचारिक (= अयोगिज, देव आदि) प्राणी नहीं है। लोकमें ( ऐसे ) सत्यको प्राप्त (= सम्प्राप्त-गत ) सत्याय अमण ब्राह्मण नहीं है, जोकि इस लोक परलोकको स्वयं जान कर, साक्षात् कर, ( दूसरोंको ) जतलावेंगे। यह पुरुष चातुर्मेहाभूतिक (= चार भूतोंका बना ) है। जब भरता है, पृथिवी पृथिवी-काय (= पृथिवी ) में मिल जाती है, चली जाती है। आप (= पानी) आप-कायमें मिल जाता० है। तेज (= अग्नि) तेज-कायमें मिल जाता० है। वायु वायु-कायमें मिल जाता० है। इन्द्रियाँ आकाशमें ( चली ) जाती हैं। पुरुष मृत ( शरीर ) को ज़ाटपर ले जाते हैं। जलाने तक पद (= चिह्न) जान पड़ते हैं। ( फिर ) हड्डियाँ कबूतरके ( धँसे ) सो ( सफेद ) हो जाती हैं। ( पूर्वकृत ) अहुतिपाँ राख ( हो ) रह जाती हैं। यह दान मूर्खोंका प्रज्ञापन (= उपदेश ) है। जो कोई आस्तिक-वाद करते हैं, वह इनका कुछ = शठ है। मूर्ख या पंडित ( समो ) शरीर छोड़ने पर उच्छिन्न हो जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं, मरनेके बाद ( कोई ) नहीं रहता। इस विषयमें विज्ञपुरुष ऐसे विचारता है—‘यह आप शास्त्रा इस वाद (= दृष्टि) वाले हैं—‘नहीं है दान०’। यदि इन आप शास्त्राका वचन सत्य है, तो ( पुण्य ) बिना किये भी, मैंने कर लिया, ( ब्रह्मचर्य ) बिना वास किये भी, वास कर लिया। इस प्रकार नास्तिक गुरु और मैं—हम दोनोंही यहाँ बराबर आश्रय (= संन्यास) को प्राप्त हैं। मैं नहीं कहता—( हम ) दोनों काया छोड़ उच्छिन्न = विनष्ट होंगे, मरनेके बाद नहीं रह जायेंगे। ( फिर ) यह आप शास्त्रा की ( यह ) नम्रता, शृंगता, उकड़ू-तप (= उक्कुटिकपधन ) केश-हमधु-नोचना फ़ुल है।’ और जो मैं पुत्राकोर्णहो, घर (= शयन) में वास करते, काशीके चंदनका मजा लेते, भाला सुगंध-लेप धारण करते, सोना-चाँदीका रस लेते, मरने पर इन आप शास्त्राके समान गति पाउँगा। सो मैं क्या समझ कर, क्या देख कर, इन ( नास्तिक-वादी ) शास्त्राके पास ब्रह्मचर्य पालन करूँ। ( इस प्रकार ) ‘यह अ-ब्रह्मचर्य-वास है’ समझ, वह, उस ब्रह्मचर्य (= साधुवन) से बदाम हो, शठ जाता है। यह सन्दक ! उन० भगवान्ने प्रथम अ-ब्रह्मचर्य-वास कहा है, जिसमें विज्ञ-पुरुष ०।

( २ ) “और फिर सन्दक ! यहाँ एक शास्त्रा ऐसे वाद (= मत) वाला होता है—‘करते-

<sup>१</sup> देखो ( अजितकेशकम्बजी ) ।

<sup>२</sup> देखो ( पूर्ण काशवप ) ।

करवाते, काटते-कटवाते, पकाते-पकवाते, शोक करते, परेझान कराते, ममते-ममवाते, प्राण मारते, चोरी करते, रेंच लगाते, गॉय लुटते, घर लुटते, रहजनी करते, पर-बी-गमन-करते, झूठ बोलते भी पाप नहीं किया जाता। दुरेसे तेज चक्र-द्वारा जो इस पृथिवीके प्राणियोंका ( कोई ) एक भाँसका खलियाव, एक भाँसका पुंज बनावे, तो इसके कारण उसे पाप नहीं होगा; पापका आगमन नहीं होगा। यदि घात करते-कराते, काटते-कटाते, पकाते-पकवाते, गंगाके दाहिने तीर पर भी जाये, तो भी इसके कारण उसको पाप नहीं, पापका आगम नहीं होगा। दान देते दान दिलाते, यज्ञ करते यज्ञ कराते, गंगाके उत्तर तीर भी जाये, तो इसके कारण उसको पुण्य नहीं, पुण्यका आगम नहीं होता। दान, ( इन्द्रिय- ) दान, संपन्न, सर्वोपन्न (= सच-वज्र) से पुण्य नहीं, पुण्यका आगम नहीं होता। सन्दक ! विश्व-पुरुष ऐसी विचारता है—यह आप शास्ता इस वाद = इष्टि-वाले हैं—करते-करवाते ०। यदि इन आप शास्ताका वचन सत्य है ०। तो हम दोनों ही परापर आत्मण्य (= संन्यास) को प्राप्त हैं, ‘‘दोनोंहीके करते पाप नहीं किया जाता। यह आप शास्ताको ममता ०। ०। यह सन्दक ! उन ० भगवान् ने द्वितीय अ-ब्रह्मचर्य-वास कहा है ०।

( ३ ) ‘‘और फिर सन्दक ! यहाँ एक शास्ता ऐसे वाद (= इष्टि) वाला होता है—‘‘सत्त्वोंके संक्लेशका कोई हेतु = कोई प्रत्यय नहीं। बिना हेतु बिना प्रत्ययके प्राणी संक्लेश (= चित्त-मा-लिन्य) को प्राप्त होते हैं। प्राणियोंकी ( चित्त- ) विक्षुब्धिका कोई हेतु = प्रत्यय नहीं है। बिना हेतु = प्रत्ययके प्राणी विक्षुब्ध होते हैं। धल नहीं, ( चाहिये ), सीर्य नहीं पुरुषका स्वाम (= स्वता) नहीं = पुरुष-पराक्रम नहीं ( चाहिये ), सभी सत्त्व = सभी प्राणी = सभी मृत = सभी जीव अ-वश = अ-यत्न = अ-वीर्य नियत (= अवितव्यता) के वशमें हो, ऊर्ध्व अभिजातियोंमें सुख दुःख अनुभव करते हैं। ० यदि ० इन आप शास्ताका वचन सत्य है ०। तो हम दोनों ही हेतु = प्रत्यय बिना ही छुट हो जायेंगे। ०। यह सन्दक ! भगवान् ने तृतीय अ-ब्रह्मचर्य-वास कहा है ०।

( ४ ) ‘‘और फिर सन्दक ! यहाँ एक शास्ता ऐसी इष्टि-वाला होता है—‘‘यह सात अकृत = अकृतविध = अनिर्मित = निर्माता-रहित, अवध्य = कृतव्य, स्तम्भवद् ( अचल ) हैं; यह चल नहीं होते, विकारको प्राप्त नहीं होते, न एक दूसरेको हानि पहुँचाते हैं; न एक दूसरेके सुख, दुःख, या सुख-दुःखके लिये पर्याप्त हैं। कौनसे सात ?—पृथिवी-काय, आप-काय, तेज-काय, वायु-काय, सुख, दुःख और जीव—यह सात। यह सात काय अकृत ० सुख-दुःखके योग्य नहीं हैं। यहाँ न हन्ता (= मारनेवाला) है, न घातयिता (= हनन करानेवाला), न सुतनेवाला, न सुनानेवाला, न जाननेवाला न जतलानेवाला। जो तीक्ष्ण-शस्त्रसे शीघ्र भी छेदते हैं, ( तो भी ) कोई किसीको प्राणले नहीं मारता। सातों कार्योंसे अलग, विवर (= छाती जगह) में शस्त्र (= हथियार) गिरता है। यह प्रधान-योगि—चौदह सौ-हजार ( दूसरी ) साठ-सौ, ज्वालासठ-सौ, और पाँच सौ कर्म, और पाँच कर्म और तीन कर्म, ( एक ) कर्म, और आवा कर्म, वासठ प्रतिपद्, वासठ अन्तर्-कल्प, छः अभिजाति, आठ पुरुषकी भूमियों, उंचास सौ बाजीवक, उंचास सौ परिवाजक, उंचास नागोंके आवास, बीससौ इन्द्रिय, तीससौ नरक, छत्तिस रजो-वातु, सात संज्ञावाद् गर्भ, सात जसंज्ञी गर्भ, सात निर्जयी गर्भ, सात देव, सात मनुष्य, सात पिशाच, सात सरोवर, सात गौड (= पसुट), सात प्रपात, सातसौ प्रपात, सात स्वप्न, सातसौ स्वप्न—( इनमें ) चौरासी हजार महा-

\* देखो ( मच्छलिनोपाठ )।

\* देखो ( मनुष्य काव्यापन )।



कस्यो तक दौधकर = आपागमनमें पककर, सूख और पंक्ति (समी) दुःखका अंत (= निवृत्ति-प्राप्ति) करेंगे। वहाँ (यह) नहीं है—इस शील या मत, या तथ, तत्त्वचर्यसे मैं अपरिपक्व कर्मको पचाऊँगा, परिपक्व कर्मको भोगकर अन्त करूँगा। सुख, दुःख, ज्ञान (-नाप) से नपे तुले हुए हैं, संसारमें घटना खाना, उत्कर्ष-अपकर्ष नहीं होता। जैसे कि सूतकी गोली कंकनेपर उधरती हुई गिरती है, ऐसे ही सूख (= बाल) और पण्डित दौध कर = आपागमनमें पक कर, दुःखका अंत करेंगे। वहाँ सन्दक ! विज्ञ-गुरुप ऐसे विचारता है—यह आप शास्त्रा ऐसे वाद = दृष्टिवाले हैं ०। जैसे कि सूतकी गोली ०। यदि इन आप शास्त्राका वचन सत्य है, तो बिना किये भी मैंने कर लिया। ० यह आप शास्त्राकी समता ०। यह सन्दक ! उम ० भगवान् ने चतुर्थ अ-वक्तव्य-यत्न कहा है ०।

“सन्देह । इमं ० भगवान्गुने यह चार अ-अज्ञान-वास कहे हैं ० ।”

“आश्चर्य ! भो आनन्द !! अद्भुत ! भो आनन्द !! तब ० भगवान् ने यह चार अद्भुत-चर्य-वास कहे हैं ० । किन्तु, भो आनन्द ! इन ० भगवान् ने कौनसे चार अनादवासिक सद्गुरु-चर्य कहे हैं ० ।”

( १ ) 'सन्दक ! यहाँ एक शास्ता सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अशेष-ज्ञान-दर्शनवाला होनेका दावा करता है'—'चलते, धके होखे, सोते, जागते, सदा सर्वदा सुखे ज्ञान-दर्शन मौजूद (= प्रत्युपस्थित रहता है ।)' ( तो भी ) वह सुने घर में जाता है, ( यहाँ ) भिक्षा भी नहीं पाता, कुक्कुर भी काट जाता है, चंड-हाथीसे भी सामना पड़ जाता है, चंड घोड़ेसे भी सामना पड़ जाता है, चंड-वैशसे भी ० । ( सर्वज्ञ होनेपर भी ) श्री-पुरुषोंके नाम-गोत्रको पूछता है । ग्राम-निगमका नाम और रस्ता पूछता है । ' ( आप सर्वज्ञ होकर ) यह क्या ( पूछते हैं )'—'पूछनेपर कहता है—'सुने घरमें हमारा जाना क्या था, इसलिये गये । भिक्षा न मिलनी क्या भी, इसलिये न मिली । कुक्कुरका काटना क्या था ० । ० हाथीसे मिलना क्या था ० । ० यहाँ सन्दक ! विश-पुरुष यह सोचता है—यह आम् शास्ता ० दावा करते हैं ० ( तब ) वह—'यह ब्रह्मचर्य (= पंथ ) अनाश्वसिक (= मनको संशय न देनेवाला ) है'—'यह ज्ञान, उस ब्रह्मचर्यसे उदात्त हो हट जाता है । यह सन्दक ! उस ० भगवान्ने प्रथम अनाश्वसिक ब्रह्मचर्य कहा है ० ।

( २ ) “और फिर सन्दक ! यहाँ एक शास्त्रा आनुभविक = अनुभव ( बुद्धि ) को सत्य माननेवाला होता है । ( ' बुद्धिमें ' ऐसा, ( ' स्मृतिमें ' ऐसा', परम्परामे, पितृ कसंप्रदाय ( = ग्रंथ-प्रमाण ) से, धर्मका उपदेश करता है । सन्दक ! आनुभविक = अनुभवको सच माननेवाले शास्त्राका अनुभव सुलुप्त ( = ठीक सुना ) भी हो सकता है, दुःश्रुत भी, वैया ( = यथार्थ ) भी हो सकता है, उल्टा भी हो सकता है । यहाँ सन्दक ! विश्व-पुरुष यह सोचता है—यह आप शास्त्रा आनुभविक है ० । वह—‘यह मन्त्रचर्य अनाध्यात्मिक है’ ० । ० द्वितीय अनाध्यात्मिक मन्त्रचर्य क्या है ० ।

(३) “और फिर सन्दूक ! यहाँ एक शास्त्र तार्किक = विमर्श होता है । वह तर्कसे = विमर्शसे प्राप्त अपनी प्रतिभासे ज्ञात धर्मका उपदेश करता है । सन्दूक ! तार्किक = विमर्शक (= भीमायुध ) शास्त्राका ( विचार ) सुचिन्तित भी हो सकता है, दुःसंकेत भी । वैसे (= यथार्थ ) भी हो सकता है, उल्टा भी हो सकता है • । • । • । • तृतीय अनायासिक प्रत्यक्ष कह रहा है • ।

( ४ ) “और फिर सन्दक ! यहाँ एक शास्त्रा<sup>१</sup> मन्द = अति-मृदु ( = मोसुह ) होता है । वह मन्द होनेसे, अति-मृदु होनेसे वैसे वैसे प्रथम पृष्ठनेपर, वचनसे विशेषको = अग्र-विशेषको प्राप्त होता है—‘ऐसा भी मेरा ( मत ) नहीं, वैसा ( = तथा ) भी मेरा नहीं, अन्यथा भी मेरा ( मत ) नहीं, नहीं भी मेरा ( मत ) नहीं, न—नहीं भी मेरा ( मत ) नहीं ।’ यहाँ सन्दक ! विज्ञ-पुरुष यह सोचता है ० । ० । ० । ० चतुर्थ अनायासिक ब्रह्मचर्य कहा है ० ।

“सन्दक ! उन ० भगवान् ने यह चार अनायासिक ब्रह्मचर्य कहे हैं ० ।”

“आश्चर्य ! मो आनन्द !! अद्भुत ! मो आनन्द !! जो यह उन ० भगवान् ने चार अनायासिक ब्रह्मचर्य कहे हैं ० । किन्तु मो आनन्द ! वह शास्त्रा किस वाद = किस दृष्टिकाला होना चाहिये, जहाँ विज्ञ-पुरुष स्व-शक्तिमत् ब्रह्मचर्य-वास करें, वास कर न्याय = कुशल-धर्मकी आराधना करें ० ?”

“सन्दक ! यहाँ तथागत शोकमें उत्पन्न होते<sup>२</sup> हैं ० । उस धर्मको गृहपति या गृहपति-पुत्र सुनता है ० । वह संशयको छोड़ संशय-रहित होता है । वह इन पाँच नीवरणोंको हटा चित्तके दुर्बल करनेवाले उपप्लेखों ( = चित्तमल ) को जान, कामोंसे अलग हो, अकुशल-धर्मोंसे अलग हो, प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । सन्दक ! जिस शास्त्राके पास श्रावक इस प्रकारके बड़े ( = उदार ) विशेषको पावे, वहाँ विज्ञ-पुरुष स्वशक्तिमत् ब्रह्मचर्य-वास करे ० ।

“और फिर सन्दक ! ० द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है ० । ० । ० तृतीय-ध्यान ० । ० । ० चतुर्थ-ध्यान ० । ० । ० १ पूर्वजन्मोंको स्मरण करता है ० । ० । ० कर्मानुसार जन्मते सर्वोंको जानता है ० । ० । ० ‘अब यहाँ दूसरा कुछ करना नहीं रहा’—जानता है ० । ० । ०”

“मो आनन्द ! वह जो भिक्षु ० अर्हत् ( = मुक्त ) है, क्या वह कामोंका भोग करेगा ?”

“सन्दक ! जो वह भिक्षु ० अर्हत् है, वह ( इन ) पाँच बातोंमें असमर्थ है । क्षीण-आक्षय ( = अर्हत्, मुक्त ) भिक्षु ( १ ) जानकर प्राण नहीं मार सकता । ( २ ) चोरी नहीं कर सकता । ( ३ ) मैथुन<sup>३</sup> सेवन नहीं कर सकता । ( ४ ) जानकर झूठ नहीं बोल सकता । ( ५ ) क्षीणाक्षय भिक्षु एकचित्त कर ( अन्न पान आदि, ) काम-भोगोंको भोगकरनेके अयोग्य है, जैसे कि वह पहिले गृही होते भोगता था । ० ।”

“मो आनन्द ! जो वह अर्हत् = क्षीणाक्षय भिक्षु है, क्या उसे चलते-बैठते, सोते-जागते निरन्तर<sup>४</sup> ( यह ) ज्ञान दर्शन औचूट रहता है—‘मेरे आक्षय ( = चित्तमल ) क्षीण होगये ।’

“तो सन्दक ! तेरे लिये एक उपमा देता हूँ । उपमासे भी कोई कोई विज्ञ-पुरुष कहनेका मतलब समझ लेते हैं । सन्दक ! जैसे पुरुषके हाथ-पैर कटे हों, उसको चलते-बैठते, सोते-जागते निरन्तर ( होता है ), मेरे हाथ-पैर कटे हैं । इसी प्रकार सन्दक ! जो वह अर्हत् = क्षीणाक्षय भिक्षु है, उसके ० निरन्तर<sup>५</sup> आक्षय क्षीण ही हैं, वह उसकी प्रत्यवेक्षा करके जानता है—‘मेरे-आक्षय क्षीण हैं ।’

“मो आनन्द ! इस धर्म-विनय ( = धर्म ) में कितने मार्य-दर्शक ( = विर्याता ) हैं ?”

“सन्दक ! एक सौ ही नहीं, दो सौ ही नहीं, तीन सौ ०, चार सौ ०, पाँच सौ ०, बकि और भी अधिक विर्याता इस धर्म-विनयमें हैं ।”

“आश्चर्य ! मो आनन्द !! अद्भुत ! मो आनन्द !! न अपने धर्मका उत्कर्ष ( = तारीफ ) करना, न पर-धर्मकी निन्दा करना, ( ठीक ) जगह ( = आमतन ) पर धर्म उपदेशना !! इतने अधिक

<sup>१</sup> संज्ञय वेळट्टिपुत्त ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ ११३ ।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ १५ ।



मार्ग-दर्शक जान पड़ते !! यह आजीवक पूत-मरीचे पूत तो अपनी बड़ाई करते हैं। तीनको ही मार्ग-दर्शक (= निर्घाता) बतलाते हैं, जैसेकि—नन्द वात्स्य, कृश सांख्य और मन्वलो गोसाल ।”

तब सन्दक परिव्राजकने अपनी परिपदको संशोधित किया—

“आप सब अमन गौतमके पास ब्रह्मचर्य-वास करें। हमारे लिये तो काम-सत्कार प्रशंसा छोड़ना, इस तक सुकर नहीं है।”

ऐसे सन्दक परिव्राजकने अपनी परिपदको भगवान्‌के पास ब्रह्मचर्य-वास करनेके लिये प्रेरित किया।

## ७७—महा-सकुलुदायि-सुत्तन्त (२।३।७)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् राजगृहमें घेणुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे। उस समय बहुतसे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध (= अभिजात) परित्राजक मोर-निवाप परित्राजकाराममें वास करते थे, जैसे कि—अनुगार-वरचर और सकुल-उदायी परित्राजक तथा दूसरे अभिजात अभिजात परित्राजक।

तब भगवान् पूर्वाह्न-समय पहिनकर पत्र-चीवर ले, राजगृहमें पिण्ड-चारके लिये प्रविष्ट हुये। भगवान्को यह हुआ—“राजगृहमें पिण्ड-चारके लिये अभी बहुत सबेरा है, क्यों न मैं जहाँ मोर-निवाप परित्राजकाराम है, जहाँ सकुल-उदायी परित्राजक है, वहाँ चर्छूँ।” तब भगवान् जहाँ मोर-निवाप परित्राजकाराम था, वहाँ गये। उस समय सकुल-उदायी परित्राजक ०<sup>१</sup> बहुत भारी परित्राजक-परिषद्के साथ बैठा था। सकुल-उदायी परित्राजकने तुरसे ही भगवान्को आते देखा। देखकर अपनी परिषद्से कहा—०।

भगवान् जहाँ सकुल-उदायी परित्राजक था, वहाँ गये। सकुल-उदायी परित्राजकने भगवान्से कहा—

“आइये भन्ते ! भगवान् ! स्वागत है, भन्ते ! भगवान् ! चिरकालवाद भगवान् यहाँ आये। भन्ते ! भगवान् ! बैठिये, यह आसन विद्या है।”

भगवान् थिठे आसनपर बैठे। सकुल-उदायी परित्राजक भी एक नीचा आसन लेकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सकुल-उदायी परित्राजकसे भगवान्ने कहा :—

“उदायी ! किस कथामें बैठे थे, क्या कथा बीचमें हो रही थी ?”

“जाने दीजिये, भन्ते ! इस कथाको, जिस कथामें हम इस समय बैठे थे। ऐसी कथा भन्ते ! आपको पोंछे भी सुननी दुर्लभ न होगी। पिछले दिनों भन्ते ! कुतूहल-शालामें बैठे, एकत्रित हुए, नाता तीर्थी (= पत्नी) के श्रमण-ब्राह्मणोंके बीचमें यह कथा उत्पन्न हुई। अङ्ग-भगार्थीका लाभ है, अङ्ग-भगवोंको अच्छा लाभ मिला, जहाँपर कि राजगृहमें (ये २) संघपति = गणी = गणाचार्य ज्ञात = यशस्वी बहुतजनोंसे सुसम्मानित, तीर्थकर (= पथ-स्थापक) वर्षावासके लिये आये हैं। यह पूर्णकाट्यप संघो, गणी, गणाचार्य, ज्ञात, यशस्वी बहुजन-सुसम्मानित तीर्थकर हैं, सो भी राजगृहमें वर्षावासके लिये आये हैं। ० यह मक्खली गोसाल ०। ० अजित केश-कम्बली ०। ० प्रक्रुध कात्यायन ०। ० संजय वेलट्टि-पुत्त ०। ० निर्गठ नातपुत्त ०। यह श्रमण गौतम भी संघो ०। वह भी राजगृहमें वर्षावासके लिये

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ २९२।



आये हैं। इन संघी ० भगवान् अमण आश्रमोंमें कौन आश्रमों (= शिष्यों) से (अधिक) सत्कृत = गुरुकृत = मानित = पूजित हैं? किसको आश्रम सत्कार, गौरव, मान, पूजा कर विहरते हैं ?

“वहाँ किन्हींने ऐसा कहा—यह जो पूर्ण काश्यप संघी ० हैं, ० सो आश्रमोंसे न सत्कृत ० न पूजित हैं। पूर्ण काश्यपको आश्रम सत्कार, गौरव, मान पूजा करके नहीं विहरते। पहिले (एक समय) पूर्ण काश्यप अनेक-सौकी समाको धर्म उपदेश कर रहे थे। वहाँ पूर्ण काश्यपके एक आश्रमके शब्द किया—‘आप लोग इस बातको पूर्ण काश्यपसे मत पूछें। यह हमें नहीं जानते। हम इसे जानते हैं। हमें यह बात पड़े! हम इसे आप लोगोंको बतलायेंगे।’ उस वक्त पूर्ण काश्यप बाँद पकड़ कर, बिछाते थे—‘आप सब चुप रहें, शब्द मत करें। यह लोग आप सबसे नहीं पूछते। हमसे.....’ पूछते हैं। इस इन्हें बतलायेंगे।—( किन्तु ) नहीं ( चुप करा ) पाते थे। पूर्ण काश्यपके बहुतसे आश्रम विवाद करके निकल गये—‘तू इस धर्म-विनयको नहीं जानता, मैं इस धर्म-विनयको जानता हूँ।’ ‘तू क्या इस धर्मको जानेगा?’ ‘तू मित्र-आश्रम है, मैं सत्य-आश्रम (= सम्यक्-प्रतिपक्ष) हूँ।’ ‘तेरा ( ध्वन ) सहित (= सार्थक ) है, तेरा असहित है।’ ‘पहिले कड़वेकी ( बात तुने ) पीछे कही, पीछे कहनेकी ( बात ) पहिले कही।’ ‘म किये (= अविचीर्ण ) को तुने डकड़ दिया।’ ‘तेरा वाद निग्रहमें लागया।’ ‘याद छोड़ानेके छिपे ( ध्वन ) कर’। ‘यदि सकता है तो खोल ले’। इस प्रकार पूर्ण काश्यप आश्रमोंसे न सत्कृत ० न पूजित हैं ०। वकि पूर्ण काश्यप समाकी धिक्कार (= धम्मकोस) से धिक्कार गये हैं।

‘किसी किसीने कहा—यह अमण गौतम संघी ० भी आश्रमोंसे न सत्कृत ० न पूजित हैं ०। ०। ०। ०। यह अजित केश-कन्याली ० भी ०। ०। ०। यह प्रकुप कालायन ० भी ०। ०। ०। यह संजय बेल-द्विपुत्र ० भी ०। ०। ०। यह निगंठ नासपुत्र ० भी ०। ०। ०।

‘किसी किसीने कहा—यह अमण गौतम संघी ० हैं। और यह आश्रमोंसे ० पूजित हैं। अमण-गौतमका आश्रम सत्कार = गौरवकर, आलस्य ले, विहरते हैं। पहिले एक समय अमण गौतम अनेक सौकी समाको धर्म उपदेश कर रहे थे। वहाँ अमण गौतमके एक शिष्यने कहा। दूसरे समझधारी (= गुरुभाई) ने उत्तरा पैर दबाया—‘आयुष्मान् ! चुप रहें, आयुष्मान् ! शब्द मत करें। शास्ता हमें धर्म-उपदेश कर रहे हैं।’ जिस समय अमण गौतम अनेकशत परिषद्को धर्म उपदेश देते हैं, उस समय अमण गौतम आश्रमोंका श्रुतने कहासनेका ( भी ) शब्द नहीं होता। उनकी जनता प्रशंसा करती, प्रत्युत्थान करती है—‘जो हमें भगवान् धर्म उपदेश करेंगे, उसे सुनेंगे।’ अमण गौतमके जो आश्रम सत्यवाचारियोंके साथ विवाद करके ( भिक्षु ) शिष्या (= नियम) को छोड़, हीन ( गृहस्थ-आश्रम ) को लौट जाते हैं, वह भी शास्ताके प्रशंसक होते हैं, धर्मके प्रशंसक होते हैं, संघके प्रशंसक होते हैं। दूसरेकी नहीं, अपनी ही मित्रा करते हैं—‘हम ही... माग्यहीन हैं, जो कि ऐसे स्वाख्यात धर्ममें प्रवृत्त हो, परिपूर्ण परिशुद्ध न्यायचर्यको जीवन भर पालन नहीं कर सके’, ( और ) वह आराम-सेवक (= नारायिक ) हो या गृहस्थ (= उपसक्त ) हो, पाँच शिक्षापदोंको ग्रहण कर रहते हैं। इस प्रकार अमण गौतम आश्रमोंसे ० पूजित हैं। अमण गौतमको आश्रम सत्कार = गौरव कर, आलस्य ले विहरते हैं।”

“उदात्त ! तू किन किन कितने धर्मोंको देखता है, जिनसे मुझे आश्रम ० पूजते हैं ० ?”

“अन्ते ! भगवान् में पाँच धर्मोंको देखता हूँ, जिनसे भगवान्को आश्रम ० पूजते हैं ०। कौनसे पाँच ?—अन्ते ! भगवान् ( १ ) अलपाहारी अलपाहारके प्रशंसक हैं, जो कि अन्ते ! भगवान्

अल्पाहारी, अल्पाहार-प्रशंसक है; इसको मैं भन्ते ! भगवान् में प्रथम धर्म देखता हूँ, जिससे भगवान् को आवक ० । ० ( २ ) जैसे तैसे चीवर ( = वस्त्र ) से सन्तुष्ट रहते हैं, जैसे तैसे चीवरसे सन्तुष्टताके प्रशंसक ० । ० ( ३ ) जैसे तैसे पिंडपात ( = भिक्षाभोजन ) से संतुष्ट ०, ० सन्तुष्टता-प्रशंसक ० । ० ( ४ ) ० शयनासन ( = घर, बिल्लरा ) से संतुष्ट, ० सन्तुष्टता-प्रशंसक ० । ० ( ५ ) ० एकान्तवासी, ० एकान्त-वास-प्रशंसक ० भन्ते ! भगवान् मैं इन पाँच धर्मों को देखता हूँ ० । "

"उदायी ! 'अभय गौतम अल्पाहारी, अल्पाहार-प्रशंसक है' इससे यदि मुझे आवक ० पूजते, ० आलम्ब ले विहरते; तो उदायी ! मेरे आवक कोलक ( = पुस्ता ) भर आहार करनेवाले, कर्द-कोलक आहारी, घाँस ( = घाँस काटकर बनाया छोटा घसन ) भर आहार करनेवाले, आघा-घाँस-आहारी भी हैं । मैं उदायी ! कभी कभी इस पात्रभर खाता हूँ, अधिक भी खाता हूँ । यदि ' ० अल्पाहारी, अल्पाहार-प्रशंसक है' इससे ० पूजते ० तो उदायी ! जो मेरे आवक ० आघा-घाँस आहारी हैं, वह मुझे इस धर्मसे न सम्कार करते ० ।

"उदायी ! ' ० जैसे तैसे चीवरसे सन्तुष्ट ० सन्तुष्टता-प्रशंसक ० ' इससे यदि मुझे आवक ० पूजते ०; तो उदायी ! मेरे आवक पालु-कूलिक = रत्न चीवर-धारी भी हैं—वह श्मशानसे कूड़ेके ढेरसे लत्ते-चीवड़े बदोकर संघाटो ( = भिक्षुका ऊपरका दोहरा वस्त्र ) धरा, धारण करते हैं । मैं उदायी ! किसी किसी समय दृढ़ शस्त्र-रक्ष, लौका जैसे रोमवाले ( = मकमली ) गृहपतिवर्गके दिये वस्त्रों भी धारण करता हूँ । ० ।

"उदायी ! ' ० जैसे तैसे पिंड-पातसे सन्तुष्ट, ० सन्तुष्टता-प्रशंसक ० ' इससे यदि मुझे आवक ० पूजते ०; तो उदायी ! मेरे आवक पिंड-पातिक ( = भिक्षुकी-वाले ), सपदानधारी ( = चिरन्तर चलते रह, भिक्षा माँगनेवाले ) उच्छ-व्रतमें रत भी हैं—वह गाँवमें आसनके लिये निमंत्रित होनेपर भी, ( निमन्त्रण ) नहीं स्वीकार करते । मैं तो उदायी ! कभी कभी निमन्त्रणोंमें धामका भात, कालिमा-रहित अनेक सुप, अनेक ज्यञ्जव ( = तर्कारी ) भी भोजन करता हूँ । ० ।

"उदायी ! ' ० जैसे तैसे शयनासनसे सन्तुष्ट, ० सन्तुष्टता-प्रशंसक ० ' इससे यदि मुझे आवक ० पूजते ०; तो उदायी ! मेरे आवक वृक्ष-मूलिक ( = वृक्षके नीचे सदा रहनेवाले ), अश्लोकासिक ( = अश्वकाशिक = सदा चौबेमें रहनेवाले ) भी हैं, वह आठ भास ( वर्षाके चार भास छोड़ ) छतके नीचे नहीं आते । मैं तो उदायी ! कभी कभी लिपे-पोते वायु-रहित, क्वाथ-क्वाथकी-जन्म कोठों ( = कूटागारों ) में भी निहरता हूँ । ० ।

"उदायी ! ' ० एकान्तवासी एकान्तवास-प्रशंसक है ० ' इससे यदि ० पूजते; तो उदायी ! मेरे आवक अरण्यक ( = सदा अरण्यमें रहनेवाले ), प्रान्त-वायनासन ( = बलीसे दूर कुटीवाले ) हैं; ( वह ) अरण्यमें वनप्रस्थ = प्रान्तके शयनासनमें रह कर विहरते हैं । वह प्रत्येक अर्द्धमास प्रातिमोक्ष-उद्देश ( = अपराध-स्वीकार ) के लिये, सङ्घके मध्यमें आते हैं । मैं तो उदायी ! कभी कभी भिक्षुओं, भिक्षुणियों, उपासकों, उपासिकाओं, राजा, राज-महामात्यों, तैर्धिकों, तैर्धिक-आयकोंसे आकीर्ण हो विहरता हूँ । ० । इस प्रकार उदायी ! मुझे आवक इन पाँच धर्मोंसे नहीं ० पूजते ० ।

"उदायी दूसरे पाँच धर्म हैं, जिनसे आवक मुझे ० पूजते हैं ० । कौनसे पाँच ?—यहाँ उदायी ! ( १ ) आवक मेरे शील ( = आचार ) से सम्मान करते हैं—अभय गौतम शीलवान् हैं, परम शील-स्कन्ध ( = आचार-समुदाय ) से संयुक्त हैं । जो कि उदायी ! आवक मेरे शीलमें विश्वास करते हैं—०; वह उदायी ! प्रथम धर्म है, जिससे ० ।

"और फिर उदायी ! ( २ ) आवक मुझे अमिकान्त ( = सुन्दर ) ज्ञान-दर्शन ( = ज्ञान



का भगसे प्रत्यक्ष करने) से सम्मानित करते हैं—जानकर ही भ्रमण गौतम कहते हैं—‘जानता हूँ’। देखकर ही भ्रमण गौतम कहते हैं—‘देखता हूँ’। अनुभवकर (= अभिज्ञाय) ही भ्रमण गौतम धर्म उपदेश करते हैं, बिना अनुभव किये नहीं। स-निदान (= कारण-सहित) भ्रमण गौतम धर्म उपदेश करते हैं, अ-निदान नहीं। स-प्रातिहार्य (= सकारण) ०, अ-प्रतिहार्य नहीं। ०।

“और फिर उदायी ! ( ३ ) आकड़ सुने प्रज्ञासे सम्मानित करते हैं—भ्रमण गौतम परम-प्रज्ञा-संघ (= उत्तम-ज्ञान-समुदाय) से युक्त हैं। उनके लिये ‘अनागत (= भविष्य) के वाद-विवादका मार्ग अन्-देखा है, ( वह वर्तमानमें ) उत्पन्न दूसरेके प्रवाद (= संघर्ष) को धर्मके साथ न रोक सकेंगे’ यह सम्भव नहीं। तो क्या मानते हो उदायी ! क्या मेरे आकड़ ऐसा जानते हुये ऐसा देखते हुये, बीच-बीचमें बात टोकेंगे ?”

“नहीं, भन्ते !”

“उदायी ! मैं आकड़ोंके अनुशासनकी आकांक्षा नहीं रखता, बल्कि आकड़ मेरे ही अनुशासनको दोहराते हैं। ०।

“और फिर उदायी ! ( ४ ) दुःखसे उत्तर्ण, विगत-दुःख हो, आकड़, सुखे आकड़, दुःख आर्य-उलको पूछते हैं। पूछे जाने पर उनको मैं दुःख आर्य-सत्य व्याख्यात करता हूँ। प्रश्नके उत्तरसे मैं उनके चित्तको समुद्ध करता हूँ। वह आकड़ सुखे दुःख-समुद्ध आर्य-सत्य पूछते हैं ०। ० दुःख-निरोध ०। ० दुःख-निरोध-नामिनी-प्रतिपद् आर्य-सत्य पूछते हैं ०। ०।

“और फिर उदायी ! ( ५ ) मैंने आकड़ोंको प्रतिपद् (= मार्ग) बतला दी है। जिस पर आरुह हो आकड़ चारों स्मृति-ग्रन्थानोंकी भावना करते हैं—भिन्नु कायमें कापातुपक्षी हो विहरते हैं ०<sup>१</sup>, ० पेदनातुपक्षी ०<sup>१</sup>, ० चित्तातुपक्षी ०, धर्ममें धर्मकी अनुपपन्ना (= अनुभव) करते, तत्पर, स्मृति-समग्रजन्म युक्त हो, मोह = दौर्भाग्यको हटा कर लोकमें विहरते हैं। जिसमें बहुतसे मेरे आकड़ अभिज्ञा-अवसान-प्राप्त = अभिज्ञा-पारमिता-प्राप्त (= अर्हत्-पद्-प्राप्त) हो विहरते हैं।

“और फिर उदायी ! मैंने आकड़ोंको ( वह ) प्रतिपद् बतला दी है; जिस पर आरुह हो मेरे आकड़ चारों सम्यक्-प्रधानोंकी भावना करते हैं। उदायी ! भिन्नु, ( १ ) ( वर्तमानमें ) अन्-उत्पन्न पाप = अ-कुशल (= बुरे) धर्माको न उत्पन्न होने देनेके लिये, छन्द (= रुचि) उत्पन्न करते हैं, कोशिश करते हैं = वीर्य-आरम्भ करते हैं, चित्तको निग्रह = प्रधान करते हैं। ( २ ) उत्पन्न पाप = अ-कुशल-धर्मोंके विनाशके लिये ०। ( ३ ) अनुत्पन्न कुशल-धर्मोंकी उत्पत्तिके लिये ०। ( ४ ) उत्पन्न कुशल-धर्मोंकी स्थिति = अस्ममोप, वृद्धि = चिपुलताके लिये, भावना-पूर्ण कर छन्द उत्पन्न करते हैं ०। यहाँ भी बहुतसे मेरे आकड़ ( अर्हत्-पद् ) प्राप्त हैं।

“और फिर उदायी ! मैंने आकड़ोंको प्रतिपद् बतला दी है, जिस पर आरुह हो मेरे आकड़ चारों ऋद्धि-पादोंकी भावना करते हैं। यहाँ उदायी ! भिन्नु ( १ ) छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कार-युक्त ऋद्धि-पादोंकी भावना करते हैं। ( २ ) वीर्य-समाधि-प्रधान-संस्कार-युक्त ऋद्धि-पादोंकी भावना करते हैं। ( ३ ) चित्त-समाधि ०। ( ४ ) विमर्ष-समाधि ०। यहाँ भी ०।

“और फिर उदायी ! ० जिस पर आरुह हो मेरे आकड़ पाँच इन्द्रियोंकी भावना करते हैं। उदायी ! यहाँ भिन्नु ( १ ) उपशम = सम्बोधिका और ज्ञानेवाली, अज्ञा-इन्द्रियकी भावना

करते हैं । ( २ ) वीर्य-इन्द्रिय ०, ( ३ ) स्मृति-इन्द्रिय ० ( ४ ) समाधि-इन्द्रिय ० । ० ।

“ ० । ० पाँच दलोंकी भावना करते हैं ।—० अदावळ ०, वीर्य-वळ ०, स्मृति-यळ ०, समाधि-यळ ०, प्रज्ञावळ ० ।

“ ० । ० सात बोधि-अंगोंकी भावना करते हैं ।—यहाँ उदायी ! भिक्षु विवेक-आश्रित, विराग-आश्रित, विरोध-आश्रित व्यक्तसंग-फलवाले ( १ ) स्मृति-सम्योधि-अंगकी भावना करते हैं, ० ( २ ) धर्म-विचय-सम्योध्यंगकी भावना करते हैं । ० ( ३ ) वीर्य-सम्योध्यंग ० । ( ४ ) प्रीति-सम्योध्यंग ० । ० ( ५ ) प्रअब्धि-सम्योध्यंग ० । ० ( ६ ) समाधि-सम्योध्यंग ० । ० ( ७ ) उपेक्षा-सम्योध्यंग ० । ० ।

“ और फिर ० आर्य अष्टांगिक मार्गकी भावना करते हैं । उदायी ! यहाँ भिक्षु ( १ ) सम्यग्-दृष्टिकी भावना करते हैं । ० ( २ ) सम्यक्-संक्रय ० । ० ( ३ ) सम्यग्-वाक् ० ( ४ ) ० सम्यक्-कर्मन्त ० । ० ( ५ ) सम्यग्-आजीव ० । ० ( ६ ) सम्यग्-व्यायाम ० । ० ( ७ ) सम्यक्-स्मृति ० । ( ८ ) सम्यक्-समाधि ० । ० ।

“ आठ विमोक्षोंकी भावना करते हैं । ( १ ) रूपी ( = रूपवाला ) रूपोंको देखते हैं, यह प्रथम विमोक्ष है । ( २ ) शरीरके भीतर ( = अध्यात्म ) अ-रूप-संज्ञी ( = रूप नहीं है )—के ज्ञान वाले, बाहर रूपोंको देखते हैं ० । ( ३ ) शुभ ही अधियुक्त ( = युक्त ) होते हैं ० । ( ४ ) सर्वथा रूप-संज्ञा ( = रूपके ब्याल )को अतिक्रमण कर, प्रतिहिंसाके ब्यालके लुप्त होनेसे, नाना-पदके ब्यालको समझ न करनेसे ‘आकाश अनन्त है’ इस आकाश-ज्ञानन्यायतनको प्राप्त हो विहरते हैं ० । ( ५ ) सर्वथा आकाशानन्त्यायतनको अतिक्रमण कर ‘विज्ञान ( = चेतना ) अनन्त है’ इस विज्ञान-ज्ञानन्यायतनको प्राप्त हो विहरते हैं ० । ( ६ ) सर्वथा विज्ञानानन्त्यायतनको अतिक्रमण कर ‘कुछ नहीं है’—इस आर्किचन्य-आयतनको प्राप्त हो ० । ( ७ ) सर्वथा आर्किचन्यायतनको अतिक्रमण कर, नैवसंज्ञा-न-असंज्ञा-आयतन ( = जिस समाधिका आभास न चेतना हो कहा जा सकता है, न अचेतना ही )को प्राप्त हो ० । ( ८ ) सर्वथा नैव-संज्ञाना-संज्ञायतनको अतिक्रमण कर प्रज्ञा-वेदित-विरोध ( पञ्जावेदित-विरोध )को प्राप्त हो विहरते हैं, यह आठवाँ विमोक्ष है । इससे और इसमें मेरे बहुतसे श्रावक” ( अहंत्व-पद प्राप्त हैं ) ।

“ और फिर उदायी ! ० आठ अभिभू-आयतनोंकी भावना करते हैं । ( १ ) एक ( भिक्षु ) शरीरके भीतर ( = अध्यात्म ) रूपका ब्यालवाला ( = रूपसंज्ञी ), बाहर सु-वर्ण दुर्बर्ण शुद्ध-रूपों को देखता है । उन्हें अभिभूत कर विहरता है, यह प्रथम अभिभावयतन है । ( २ ) अध्यात्ममें रूप-संज्ञी, बाहर सु-वर्ण, दुर्बर्ण अ-प्रमाण ( = बहुत भारी ) रूपोंको देखता है । “उन्हें अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ”—इस ब्यालवाला होता है ० । ( ३ ) अध्यात्ममें अ-रूप-संज्ञी ( = “रूप नहीं है” इस ब्यालवाला ), बाहर सुवर्ण दुर्बर्ण शुद्ध-रूपोंको देखता है—० । ( ४ ) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी, बाहर सुवर्ण दुर्बर्ण अ-प्रमाण रूपोंको देखता है—० । ( ५ ) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी बाहर नील — नीलवर्ण = नील-निदर्शन = नील-निभास रूपोंको देखता है । जैसेकि अलसीका फूल नील = नील-वर्ण = नील-निदर्शन = नील-निभास, जैसेकि दोनों ओरसे विमुष्ट ( कोमल, चिकना ) नील ०<sup>१</sup> बनारसी ( वाराणसेयक ) वस्त्र; ऐसेही अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी एक ( भिक्षु ) बाहर नील ० रूपोंको देखता है—“उनको अभिभूत कर जानता हूँ, देखता हूँ” इसे जानता है ० । ( ६ )

<sup>१</sup> अ. क. “वहाँ ( बनारसमें ) कपास भी कोमल, सूतकातनेवाली तथा जुलहे भी चतुर, जल भी सु-वि-सिन्धु ( है ) । वहाँका वस्त्र दोनों ही ओरसे” कोमल और रम्य होता है ।



अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी एक ( भिक्षु ) बाहर पीत ( = पीला ) = पीतवर्ण पीत-निदर्शन = पीत-विभास रूपोंको देखता है । जैसेकि पीत ० कर्णिकारका फूल या जैसे वह ० पीत ० बनारसी वस्त्र ० । ० । ( ० ) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी ( पुरुष ) लोहित ( = लाल ) = लोहितवर्ण = लोहित-निदर्शन = लोहित-विभास रूपोंको देखता है । जैसेकि लोहित ० बंधुजोषक ( = जेबहुल ) का फूल, या जैसे लाल ० बनारसी वस्त्र ० । ० । ( ८ ) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी अवदात ( = लफेद ) ० रूपोंको देखता है । जैसेकि अवदात ० झुकतारा ( = ओसवी-तारका ), या जैसेकि सफेद ० बनारसी वस्त्र ० । ० ।

“और फिर उदायी ! ० इस कृत्स्न-आयतन ( = कस्मिन्नायतन ) की भावना करते हैं । ( १ ) एक पुरुष ऊपर, नीचे, तिष्ठे, अद्वितीय, अप्रमाण पृथ्वी-कृत्स्न ( = पृथ्वी-कस्मिन् = सारी पृथिवी ही ) जानता है । ( २ ) ० आप-कृत्स्न ( = सारा पानी ) ० । ( ३ ) ० तेज-कृत्स्न ( = सारा तेज ) ० । ( ४ ) ० वायु-कृत्स्न ( = सारा हवा ही ) ० । ( ५ ) ० नील-कृत्स्न ( = सारा नीला रंग ) ० । ( ६ ) ० पीत-कृत्स्न ० । ( ७ ) लोहित-कृत्स्न ० । ( ८ ) ० अवदात-कृत्स्न ( = सारा सफेद ) ० । ( ९ ) ० आकाश-कृत्स्न ० । ( १० ) ० विशान-कृत्स्न ( = पितृनामय, चिन्मात्र ) ० ।

“और फिर उदायी ! ० चार ध्यानोकी भावना करते हैं । उदायी ! भिक्षु, कामोंसे अलग हो, अकुशल धर्मों ( = घुरी धातों ) से अलग हो चित्त-विचार-सहित विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुख-रूप प्रथम-ध्यान<sup>१</sup> को प्राप्त हो विहरता है । वह इसी कायाको, विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुख-द्वारा प्राणित, परिप्राणित करता है, परिपूर्ण = परिसंस्करण करता है । ( उसको ) इस सारी कायाका कुछ भी ( अंश ) विवेक-ज प्रीति सुखसे अछूता नहीं होता । जैसे कि उदायी ! दल ( = चतुर ) नहापित ( = नहलानेवाला ), या नहापितका चेला ( = जन्तेवासी ) कौलिके पालमें स्नानीय-पूर्णको डालकर, पानी सुखा सुखा हिलावे । सो इसकी नहान-पिंडी शुभ ( = सखलता )-अनुगत, शुभ-परिगत शुभसे अन्दर-बाहर लित हो पिघलती है । ऐसे ही उदायी ! भिक्षु इसी कायाको विवेक-ज प्रीति सुखसे प्राणित आप्राणित करता है, परिपूर्ण = परिसंस्करण करता है । ० ।

“और फिर उदायी ! भिक्षु चित्त-विचारोंके उपशान्त होनेसे ०<sup>१</sup> द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । वह इसी कायाको समाधिज प्रीति-सुखसे प्राणित = आप्राणित करता है ० । जैसे उदायी ! पाताल फोड़कर निकला पानीका वह हो । उसके न पूर्व-दिशामें पानीके आनेका मार्ग हो, न पश्चिम-दिशामें, न उत्तर-दिशामें, न दक्षिण-दिशामें ० । देव भी समय समयपर अच्छी तरह धार न बरसावे, तो भी उस पानीके वह ( = उदक-द्व ) से शीतल धारिधारा कूटकर उस उदक-द्वको शीतल जलसे प्राणित, आप्राणित करे, परिपूर्ण-परिसंस्करण करे, इस लिये उदक-द्वका कुछ भी ( अंश ) शीतल जलसे अछूता न हो । ऐसे उदायी ! इसी कायाको समाधिज प्रीति-सुखसे ० ।

“और फिर उदायी ! भिक्षु ०<sup>१</sup> तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । वह इसी कायाको निष्प्रोक्तिक ( = प्रीति-रहित ) सुखसे प्राणित ० करता है ० । जैसे उदायी ! उत्पत्तिनी ( = उत्पल-समूह ), पद्मिनी, पुण्डरीकिनीमें, कोई कोई उत्पल, पद्म, पुण्डरीक, पानीमें उत्पल, पानीमें बने, पानीसे ( बाहर ) न निकले, भीतर हूबेही पोषित, मूलसे दिष्टा तक शीतल जलसे

प्राप्ति ० होते हैं ० । ऐसे ही उदायी ! मिथु इसी कायाको निष्प्रीतिक ० ।

“और फिर उदायी ! ०” चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । वह इसी कायाको, परिशुद्ध = परि-अवदात चिन्तसे प्रकट कर बैठा होता है । ० । जैसे कि उदायी ! पुरुष अवदात (= श्वेत )-वस्त्रसे शिर तक कपेट कर बैठा हो । उसकी सारी कायाका कुछ भी ( भाग ) श्वेत वस्त्रसे अनाच्छादित न हो । ऐसे ही उदायी ! मिथु इसी कायाको ० । वहाँ भी मेरे बहुतसे श्रावक अभिज्ञा-व्यक्त्वा-प्राप्त, अभिज्ञा-पारमि-प्राप्त हैं ।

“और फिर उदायी ! मैंने श्रावकोंको यह मार्ग बतला दिया है, जिस ( मार्ग- ) पर आरुढ़ हो, मेरे श्रावक ऐसा जानते हैं—यह मेरा शरीर रूपवान्, चातुर्भङ्गाभूतिक, माता-पितासे उत्पन्न, भात-दाहले पक्का, अनित्य = उच्छेद = परिसर्जन = भेदन = विस्मृत धर्मवाला है । यह मेरा विज्ञान (= चेत्ता ) यहाँ बैठा = प्रतिबद्ध है । जैसे उदायी ! शुभ्र उत्तम जातिकी, अठकोनी, सुन्दर पालिशकी (= सुपरिकर्मकृत ), स्वच्छ = विप्रसन्न, सर्व-आकार-युक्त वैदूर्य-मणि (= हीरा ) हो । इसमें नील, पीत, लोहित, अवदात या पाँहु सूत पिरोया हो । उसको ओलवाला पुरुष हाथमें लेकर देखे—‘यह शुभ्र ० वैदूर्य-मणि है, ० सूत पिरोया है’ । ऐसे ही उदायी ! मैंने ० बतला दिया है ० । तहाँ भी मेरे बहुतसे श्रावक ० ।

“और फिर उदायी ! ० मार्ग बतला दिया है, जिस मार्ग पर आरुढ़ हो मेरे श्रावक, इस कायासे रूपवान् (= साकार ), मनोमय, सर्वांग-प्रत्यंग-युक्त अलङ्कित-इन्द्रियोंयुक्त दूसरी कायाको निर्माण करते हैं । जैसे उदायी ! पुरुष मूँजमेंसे सींक निकाले । उसको ऐसा हो—‘यह मूँज है, यह सींक । मूँज अलग है, सींक अलग है । मूँजसे ही सींक निकली है ।’ जैसे कि उदायी ! पुरुष ध्यानसे तलवार निकाले । उसको ऐसा हो—‘यह तलवार है, यह ध्यान है । तलवार अलग है, ध्यान अलग । ध्यानसे ही तलवार निकली है ।’ जैसे उदायी ! पुरुष साँपको पिढारीसे निकाले ० । ऐसे ही उदायी ! ० मार्ग बतला दिया है ० ।

“और फिर उदायी ! ० मार्ग बतला दिया है, जिस मार्ग पर आरुढ़ हो, मेरे श्रावक अनेक प्रकारके ऋद्धि-विध (= योग-चमत्कार )को अनुभव करते हैं । एक होकर बहुत होजाते हैं । बहुत होकर एक होते हैं । आविर्भाव, तिरोभाव ( करते हैं ) । जैसे भीत-पार आकार-पार पर्वत-पार आकाश-जैसे विना लेप ( पार ) होजाते हैं । पृथिवीमें भी हवना-उतराना करते हैं, जैसे कि जलमें । पानीमें भी विना भीते चलते हैं, जैसे कि पृथिवीमें । पक्षि (= शकुनी ) की भौँत आसन-पाँधे आकाशमें चलते हैं । इतने महर्दिक = महासुभाव (= तेजस्वी ) इन चाँद-सूर्यको भी हाथसे छूते हैं । ब्रह्मलोक तक कायासे वशमें रखते हैं । जैसे उदायी ! चतुर कुंभकार, या कुंभकारका चेला, सिंहाई मिट्टीसे जो जो विशेष भाजन चाहे, उसी उसीको बनावे = निष्पादन करे । या जैसे उदायी ! चतुर दन्तकार (= हाथीके दाँतका काम करनेवाला ) या दंतकारका चेला, सिंहाई दाँतसे जो जो दंत-विकृति (= दाँतकी चीज ) चाहे, उसे बनावे, = निष्पादन करे । या जैसे उदायी ! चतुर सुवर्णकार या सुवर्णकारका चेला, सोबे सुवर्णसे जिस जिस सुवर्ण-विकृतिको चाहे उसे बनावे ० । ऐसे ही उदायी ! ० ।

“और फिर उदायी ! ० जिस मार्ग पर आरुढ़ हो मेरे श्रावक विशुद्ध, अमानुष, दिव्य, श्रोत-वातु (= काम )से दिव्य और मानुष, दूरवर्ती और समीपवर्ती, दोनों ही तरहके शब्दोंको सुनते हैं । जैसे कि उदायी ! चलवान् शंख-ध्वज (= शंख-ध्वजानेवाला ) अल्प-प्रयाससे चारों



दिशाओंको बतला दे । ऐसे ही उदायी ० ।

“और फिर उदायी ! ० जैसे मार्गपर आरुढ़ हो, मेरे आवाक दूसरे सत्त्वों = दूसरे पुद्गलों के चित्तको ( अपने ) चित्तद्वारा जानते हैं । सराम चित्तको ‘राम-सहित ( यह ) चित्त है’ जानते हैं । वीतराम चित्तको ‘वीत-राम चित्त है’ जानते हैं । सद्देष चित्तको ‘स-द्वेष चित्त है’, जानते हैं । वीत-द्वेष चित्तको ० । स-मोह चित्तको ० । वीत-मोह चित्तको ० । संक्षिप्त-चित्तको ० । विक्षिप्त-चित्तको ० । महद्गत ( = विशाल )-चित्तको ० । अ-महद्गत-चित्तको ० । स-उत्तर ( = जिससे बढ़ कर भी है )-चित्तको ० । अन्-उत्तर-चित्तको ० । समाहित ( = एकाग्र )-चित्तको ० । अ-समाहित-चित्तको ० । विमुक्त ( = मुक्त )-चित्तको ० । अ-विमुक्त-चित्तको ० । जैसे उदायी ! कोई मौकौन खो या पुरुष, बालक या तरुण, परिशुद्ध = परि-अवज्ञात दर्पण ( = आदर्श ) या स्वच्छ जलमरे पात्रमें अपने मुख-निमित्त ( = मुखकी आकृति )को देखते हुये, स-कणिक भंग होनेपर स-कणिकांग ( = सद्देष अंग ) जाने, अ-कणिकांग होनेपर अ-कणिकांग जाने । ऐसे ही उदायी ० । ० ।

“और फिर उदायी ! जिस मार्गपर आरुढ़ हो, मेरे आवाक अनेक प्रकारके पूर्व-निवासों ( = पूर्व जन्मों )को जानते हैं । जैसे कि, एक जाति ( = जन्म ) भी, दो जाति भी ०, तीन जाति भी, चार जाति भी, पाँच जाति भी, बीस जाति भी, तीस जाति भी, चालीस जाति भी, पचास जाति भी, सौ जाति भी, हजार जाति भी, सौ हजार जाति भी, अनेक संवर्त-कल्पों ( = महाप्रलयों ) को भी, अनेक विवर्त-कल्पों ( = सृष्टियों )को भी, अनेक संवर्त-विवर्त-कल्पोंको भी, ‘मैं वहाँ इस नाम, इस गोत्र, इस वर्ण, इस जाहार-वाला, ऐसे सुख-दुःखको अनुभव करने-वाला इतनी आयु-पर्यन्त था । सो मैं वहाँसे च्युत हो, वहाँ उत्पन्न हुआ । वहाँ भी मैं ० इतनी आयुपर्यन्त रहा । सो वहाँसे च्युत ( = मृत ) हो, वहाँ उत्पन्न हुआ’ । इस प्रकार स-आकार ( = आकृति-सहित ) स-उद्देश ( = नाम-सहित ) अनेक प्रकारके पूर्व-निवासोंको अनुस्मरण करते हैं । जैसे उदायी ! पुरुष अपने ग्रामसे दूसरे ग्राममें जाये । उस ग्रामसे भी दूसरे ग्रामको जाये । वह उस ग्रामसे अपने ही ग्रामको लौट जाये । उसको ऐसा हो—‘मैं अपने ग्रामसे उस गाँवको गया, वहाँ ऐसे बाढ़ा हुआ, ऐसे बैठा, ऐसे बोला, ऐसे चुप रहा । उस ग्रामसे भी उस ग्रामको गया । वहाँ भी ऐसे खड़ा हुआ ० ।

“और फिर उदायी ! ० जैसे मार्गपर आरुढ़ हो मेरे आवाक विशुद्ध, अ-मानुष दिव्य, चक्षुसे, हीन, प्रणीत ( = उत्पन्न ), सुपर्ण दुर्गन्ध, सु-गत दुर्गन्ध सत्त्वोंको च्युत होते, उत्पन्न होते देखते हैं । कर्मानुसार ( गतिको ) प्राप्त सत्त्वोंको जानते हैं—‘यह आप सत्त्व काय-दुश्चरितसे युक्त, वाग्-दुश्चरितसे युक्त, मन-दुश्चरितसे युक्त, भावोंके निन्दक, मिथ्या-दृष्टि, मिथ्या-दृष्टि कर्मको स्वीकार करनेवाले ( थे ), वह काया छोड़ मरनेके बाद अपाय-दुर्गति = विनिपात = नर्कमें उत्पन्न हुये । और यह आप सत्त्व काय-सुचरितसे युक्त ० भावोंके अन्-उपपादक ( = अनिन्दक ) सम्यग्-दृष्टि, सम्यक्-दृष्टिकर्मको स्वीकार करनेवाले ( थे ), वह सुगति = स्वर्गलोभमें उत्पन्न हुये हैं’ । इस प्रकार ० दिव्य चक्षुसे ० देखते हैं । जैसे उदायी ! समान-हाथवाले दो घर ( हों ), वहाँ क्षीयवाला पुरुष धीधम अथा, अनुष्ठानोंको घरमें प्रवेश करते भी, निकलते भी, अनुसंचरण विचरण करते भी देखे । ऐसे ही उदायी ! ० ।

“और फिर उदायी ! ० जिस मार्गपर आरुढ़ हो मेरे आवाक आद्योंके विनाशसे अन्-आप्त ( = निर्मल ) चित्तकी विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात् कर, प्राप्त कर, विहरते हैं । जैसे कि उदायी ! पर्वतसे घिरा स्वच्छ = विप्रसन्न = अन्-आविष्ट

उदक-हृद (= जलाशय ) हो । वहाँ भौंखवाला पुरुष तीरपर खड़ा सीपको...कंकड़-पत्थरको भी, चलते खड़े भत्स्य-शुंढको भी देखे । ऐसे ही उदायी ! ० ।

“यह है, उदायी ! पाँच धर्म जिनसे सुखे भावक ० पूजते हैं । ० ।”

भगवान् ने यह कहा, सकुल-उदायी परित्राजकने भगवान् के भाषणका अनुमोदन किया ।



## ७८—समय-मंडिक-सुत्तन्त (२।३।८)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिटिकके आराध जेतघनमें विहार करते थे ।

उस समय समय-मंडिका-पुत्त उग्गहमाण परित्राजक सातसी परित्राजकोंकी वही जमात (= परिषद्)के साथ समय-प्रवादक तिम्बुकावीर<sup>१</sup> एकलालक ( नामक ) मल्लिका ( देवीके भगवाये ) आराधमें रहता था ।

तब पंचकांग (= पंचकांग ) स्वपति (= सबई ) मग्घाद्धमें भगवान्के दर्शनके लिये श्रावस्तीसे निकला । तब पंचकांग स्वपतिको यह हुआ—‘भगवान्के दर्शनका यह समय नहीं है, भगवान् ध्यानमें होंगे; मनो-भावना करनेवाले भिक्षुओंके भी दर्शनका यह समय नहीं, ... ( यह ) भी ध्यानमें होंगे । क्यों न मैं जहाँ समय-प्रवादक ० मल्लिकाराम है, जहाँ ० उग्गहमाण परित्राजक है वहाँ चले ।’ तब पंचकांग स्वपति जहाँ समय-प्रवादक ० मल्लिकाराम था, जहाँ ० उग्गहमाण परित्राजक था, वहाँ गया ।

उस समय, उग्गहमाण परित्राजक<sup>१</sup> ० आदि निरर्थक कथा कहती, नाद करती, शोर मचाती, वही भारी परित्राजक-परिषद्के साथ बैठा था । उग्गहमाण परित्राजकने वृत्तसे ही पंचकांग स्वपतिको जाने देखा । देखकर अपनी परिषद्से कहा—

“आप तब चुप हों, आप तब शब्द मत करें । यह समय मौनतका आश्रय पंचकांग स्वपति आरहा है । समय मौनतके वित्तने श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ आश्रय श्रावस्तीमें बसते हैं, यह पंचकांग स्वपति उनमेंसे एक है । यह आलुप्मान् लोग स्वयं अल्पशब्द (= निःशब्द रहनेवाले ), अल्पशब्द के सम्भाषी, अल्प-शब्द-प्रेमी, निःशब्द-प्रशंसक होते हैं । परिषद्को निःशब्द देख संभव है, ( इधर ) भी आर्ये ।”

तब वह परित्राजक चुप होगये ।

तब पंचकांग स्वपति जहाँ, उग्गहमाण परित्राजक था, वहाँ गया । जाकर उग्गहमाण परित्राजकके साथ ‘‘सम्मोदन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठ पंचकांग स्वपतिसे ० उग्गहमाण परित्राजकने यह कहा—

“स्वपति ! मैं चार अंगों (= बातों )से तुक पुष्ट = पुष्टगलको सम्पन्न-कुशल (= सुकर्म-पुत्त ), परम-कुशल, उत्तम-नतिको-प्राप्त, अमण, अ-बोध्य ( जिससे लड़ा नहीं जा सके ) कहता हूँ । कौनसे चार ( अंग ) ?—यहाँ स्वपति ! ( १ ) ( तुल्य ) कायासे पापकर्म नहीं करता; ( २ ) न पाप (= बुरी )-बाणों धोल्ता है; ( ३ ) न पाप-संकल्प चिन्ता है; ( ४ ) न पाप-आजी-

<sup>१</sup> देखो सन्दक-सुत्तन्त-मज्झिम ७६ ( पृष्ठ २९९ ) ।

विकासे रोजी कमाता है। स्वपति ! मैं इन अंगोंसे युक्त ० को ० अयोध कहता हूँ ।”

तब पंचकांग स्वपतिने, उग्राहमाण परित्राजकके भाषणको न अभिर्नदित किया, न संक्षिप्त किया। बिना अभिर्नदित किये, बिना संक्षिप्त किये—भगवान्‌के पास इस भाषणका अर्थ पूछा— ( यह सोच ) आत्मनसे उठकर चला गया। तब पंचकांग स्वपति जहाँ भगवान्‌ थे, वहाँ गया; जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे पंचकांग स्वपतिने जो कुछ उग्राहमाण परित्राजकके साथ कथासंलाप हुआ था वह सब भगवान्‌से कह सुनाया। ऐसा कहने पर भगवान्‌ने पंचकांग स्वपतिसे यह कहा—

“स्वपति ! ऐसा होनेपर तो उग्राहमाण परित्राजकके वचनानुसार उताम ( ही ) तो सक्नेवाला अवोध छोटा बच्चा सम्पन्न-कुशल परमकुशल ० अयोध होगा। स्वपति ! ० छोटे बच्चेके अंग ( = काया ) ( पूरी सामर्थ्य-युक्त ) भी नहीं होते; ( = चलना छोड़ ) यह कैसे कामा से पाप कर्म करेगा ?—स्वपति ! ० छोटे बच्चे ( = दूर-कुमार )को बाणी भी नहीं होती, रोना छोड़ यह कैसे बाणीसे पापकर्म करेगा ? स्वपति ! ० छोटे बच्चेको संकल्प ही नहीं होता; ईशना छोड़ यह क्या संकल्प करेगा ? स्वपति ! ० छोटे बच्चेको जाजीव ( = रोजी कमाता ) ही नहीं होता; माताके दूधके अतिरिक्त वह क्या पाप-जाजीव करेगा ? ऐसा होने पर तो ० उग्राहमाण परित्राजकके वचनानुसार ० छोटा बच्चा ० अयोध होगा।

“स्वपति ! मैं ( इन ) चार अंगोंसे युक्त पुरुष = पुद्गलको न सम्पन्न कुशल, परमकुशल ० अयोध कहता हूँ, यत्कि ० छोटे बच्चेसे विशेष कहता हूँ। कौनसे चार ?—स्वपति ! ( १ ) जो कायासे पाप कर्म नहीं करता; ० ( ४ ) न पाप-जाजीविकासे रोजी कमाता है।”

“स्वपति ! मैं दश अंगोंसे युक्त पुरुष = पुद्गलको सम्पन्न-कुशल, परम-कुशल ० अयोध कहता हूँ। स्वपति ! ( १ ) यह अकुशल-शील ( -दुराचार ) कहीं वेदितव्य ( = भोगने योग्य ) है—यह कहता हूँ। ( २ ) स्वपति ! यहाँसे उत्पन्न अकुशल-शील कहीं वेदितव्य है—० यह कहता हूँ। ( ३ ) स्वपति ! यहाँ सारे ( = असेप ) अकुशल-शील निरुद्ध ( = नष्ट ) होते हैं, कहीं वेदितव्य है—०। ( ४ ) स्वपति !

इस प्रकार प्रतिपन्न ( = भागोरुद्ध ) अकुशल-शीलों ( = दुराचारों )के निरोधके लिये प्रतिपन्न होता है, कहीं वेदितव्य है—०। ( ५ ) स्वपति ! यह कुशल शील ( = सदाचार, सुकर्म ) कहीं कहीं वेदितव्य है—०। ( ६ ) स्वपति ! यहाँसे उत्पन्न कुशलशील कहीं वेदितव्य है—०। ( स्वपति ) ! यहाँ सारे कुशलशील निरुद्ध होते हैं—०। ( ८ ) स्वपति ! इस प्रकार प्रतिपन्न कुशल-शीलोंके निरोधके लिये प्रतिपन्न होता है, कहीं वेदितव्य है—०।

“स्वपति ! ( १ ) यह अकुशल—संकल्प ( = बुरे संकल्प ) कहीं वेदितव्य है—यह कहता हूँ। ( २ ) ० यहाँसे उत्पन्न अकुशल-संकल्प कहीं वेदितव्य है—०। ( ३ ) यहाँ सारे अकुशल-संकल्प निरुद्ध होते हैं—०। ( ४ ) ० इस प्रकार प्रतिपन्न अकुशल-संकल्पोंके निरोधके लिये प्रतिपन्न होता है—०। ( ५ ) यह कुशल-संकल्प कहीं वेदितव्य है—०। ( ६ ) ० यहाँसे उत्पन्न कुशल संकल्प कहीं वेदितव्य है—०। ( ७ ) यहाँ सारे कुशल-संकल्प निरुद्ध होते हैं—०। ( ८ ) ० इस प्रकार प्रतिपन्न कुशल-संकल्पोंके निरोधके लिए प्रतिपन्न होता है—०।

“( १ ) स्वपति ! अकुशल-शील ( = दुष्कर्म ) क्या है ?—अ-अकुशल ( = बुरा ) कायकर्म, अकुशल वचनकर्म, पाप-जाजीविका ( = पापोंकी रोजी )—स्वपति ! यह अकुशल-शील कहे जाते हैं। स्वपति ! ( २ ) यह अकुशल-शील कहींसे उत्पन्न होते हैं ?—चित्तसे उत्पन्न कहना चाहिये। चित्त क्या है ?—चित्तभी स्वपति ! बहुत अनेक प्रकार = नाना प्रकारका है—( १ ) यह चित्त



स-राग, स-द्वेष, स-मोह होता है। इन्हीं (राग-द्वेष-मोह-युक्त चित्तों) से अकुशल-शील (= दुराचार) उत्पन्न होते हैं। (३) स्वपति ! यह सारे अकुशल-शील कहाँ निरुद्ध होते हैं ?—निरोध भी इनका, स्वपति ! कह चुके हैं—यहाँ स्वपति ! भिक्षु, काय-दुश्चरित (= शरीरसे होनेवाले पाप) को छोड़, काय-सुचरित की भावना (= लग्नपात्र) करता है; वचन-दुश्चरित को छोड़, वचन-सुचरित की भावना करता है; मनो-दुश्चरित को छोड़, मन-सुचरित की भावना करता है। मिथ्या-आज्ञोव (= पाप-की रीति) को छोड़, सम्यग्-भावोव (= धर्म की रीति) से जीविका चलाता है। यहाँ (= ऐला करणपर) सारे अकुशल-शील निरुद्ध होते हैं। (४) स्वपति ! कैसे प्रतिपन्न होने पर अकुशल-शीलों के निरोध के लिये प्रतिपन्न होता है—स्वपति ! यहाँ भिक्षु अनुत्पन्न पापों = अकुशल धर्मों के न उत्पन्न होने के लिये छन्द (= उद्योग) करता है = व्यापार करता है = वीर्य-आरम्भ करता है, चित्तका निग्रह = रोक धाम, करता है। उत्पन्न पापों ० के प्रहाण (= विनाश) के लिये छन्द ० चित्तका निग्रह ० करता है। अनुत्पन्न कुशल-धर्मों की उत्पत्ति के लिये छन्द ०। उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति, अलोप, वृद्धि, स्थूलता के लिये, भावना के लिये, पूर्ति के लिये छन्द ०। स्वपति ! इस प्रकार प्रतिपन्न होने पर अकुशल-शीलों के निरोध के लिये प्रतिपन्न होता है।

“स्वपति ! (५) क्या है कुशल-शील ?—कुशल- (= वेक ) कायकर्म, कुशल-वचन कर्म, कुशल-मनः = धर्म, स्वपति ! इन्हीं में कुशल-शील कहता हूँ।” (६) स्वपति ! यह कुशल-शील कहाँ से उत्पन्न होते हैं ?—“चित्तसे उत्पन्न कहना चाहिये। क्या है चित्त ?—चित्त भी स्वपति ! बहुत अनेक प्रकार = नाना प्रकार का है—यह चित्त वीत-राग, वीत-द्वेष (= द्वेष-रहित) वीत-मोह होता है। इन्हीं से कुशल-शील उत्पन्न होते हैं। (७) स्वपति ! यह सारे कुशल-शील कहाँ निरुद्ध होते हैं ?—निरोध भी इनका, स्वपति ! कह चुके हैं—यहाँ स्वपति ! भिक्षु शीलवान् होता है, किन्तु शील-समय (= शीलाभिमान) नहीं, और उस चेतो-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को ठीक से जानता है, यहाँ इसके सारे कुशल-शील निरुद्ध होते हैं। (८) स्वपति ! कैसे प्रतिपन्न (= सागरुद्ध) होने पर, कुशल-शीलों के निरोध के लिये प्रतिपन्न होता है ?—स्वपति ! यहाँ भिक्षु अनुत्पन्न पापों ० के न उत्पन्न होने के लिये ० वीर्यारम्भ (= उद्योगारम्भ) करता है, चित्तका निग्रह-रोक-धाम करता है। ० उत्पन्न पापों ० के प्रहाण (= नाश) के लिये ०। ० अनुत्पन्न कुशल-धर्मों की उत्पत्ति के लिये ०। ० उत्पन्न कुशल-धर्मों की स्थिति ० पूर्ति के लिये ०। स्वपति ! इस प्रकार प्रतिपन्न होने पर ०।

“स्वपति ! (९) क्या है अकुशल-संकल्प ?—काम-संकल्प, व्यापाद्- (= द्वेष )-संकल्प, विहिंसा (= हिंसा)-संकल्प। स्वपति ! यह अकुशल-संकल्प कहे जाते हैं। (१०) स्वपति ! यह अकुशल-संकल्प कहाँ से उत्पन्न होते हैं ?—“संज्ञा (= व्यापार) से उत्पन्न कहना चाहिये। क्या है संज्ञा (= व्यापार) ?—संज्ञा भी बहुत अनेकविध = नाना प्रकार की है—( जैसे ) काम-संज्ञा, व्यापार संज्ञा, विहिंसा संज्ञा यहाँ से अकुशल-संकल्प उत्पन्न होते हैं। (११) स्वपति ! यह सारे अकुशल-संकल्प कहाँ निरुद्ध होते हैं ?—यहाँ, स्वपति ! भिक्षु कामों से विरहित ०<sup>१</sup> प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहरता है। यहाँ यह सारे अकुशल-संकल्प निरुद्ध होते हैं। (१२) स्वपति ! कैसे प्रतिपन्न अकुशल-संकल्पों के निरोध के लिये प्रतिपन्न होता है ?—यहाँ, स्वपति ! भिक्षु अनुत्पन्न पाप = अकुशल धर्मों के अनुत्पाद के लिये ०। ० उत्पन्न ० अकुशल धर्मों के प्रहाण के लिये ०। ० अनुत्पन्न कुशल-धर्मों (= भलाइयों) की उत्पत्ति के लिये ०। ० उत्पन्न कुशल-धर्मों

की स्थिति ० पूर्तिकेलिये ० । स्वपति ! इस प्रकार प्रतिपन्न अकुशल-संकल्पोंके निरोधके लिये प्रतिपन्न होता है ।

“स्वपति ! (५) क्या है कुशल-संकल्प (= अच्छा संकल्प) ?—नैष्काम्य (= काम रहित होनेका) संकल्प, अव्यापाद-संकल्प, अविहिंसा-संकल्प ।” (६) स्वपति ! यह कुशल-संकल्प कहाँसे उत्पन्न होते हैं ?—“संज्ञासे उत्पन्न कहना चाहिये । क्या है, संज्ञा ?—संज्ञा भी बहुत अनेकविध = नाना प्रकारकी है—( जैसे ) नैष्काम्य-संज्ञा, अव्यापाद-संज्ञा, अविहिंसा (= अहिंसा) -संज्ञा । यहाँसे कुशल संकल्पोंकी उत्पत्ति होती है । (७) स्वपति ! यह सारे कुशल-संकल्प कहाँ निरुद्ध होते हैं ?—“यहाँ स्वपति ! मिथु वितर्क और विचारके शान्त होनेपर ०” द्वितीय ध्यानकी प्राप्तिसे विहरता है । यहाँ यह सारे कुशल संकल्प निरुद्ध होते हैं । (८) स्वपति ! कैसा प्रतिपन्न कुशल संकल्पोंके निरोधके लिये प्रतिपन्न होता है ?—यहाँ स्वपति ! मिथु अनुत्पन्न पाप = अकुशल धर्मोंके अनुत्पादके लिये ० । ० उत्पन्न ० अकुशल धर्मोंके प्रहाणके लिये ० । ० अनुत्पन्न कुशलधर्मों की उत्पत्तिके लिये ० । उत्पन्न कुशल धर्मोंकी स्थिति ० पूर्तिके लिये ० । स्वपति ! इस प्रकार प्रतिपन्न कुशल-संकल्पोंके निरोधके लिये प्रतिपन्न होता है ।

“स्वपति ! किन दश धर्मोंसे युक्त पुरुष = पुद्गल को मैं सम्पन्न कुशल । ० अ-प्राप्य कहता हूँ ?—यहाँ स्वपति ! मिथु ( १ ) अशैक्ष्य (= अहंत्वाकी ) सम्यग्-दृष्टि ०<sup>१</sup> से युक्त होता है ; ( २ ) अशैक्ष्य सम्यक्-संकल्प ० ; ( ३ ) अशैक्ष्य सम्यग्-वचन ० ; ( ४ ) अशैक्ष्य सम्यक्-कर्मोन्त ० ; ( ५ ) अशैक्ष्य सम्यग्-आजीव ० ; ( ६ ) अशैक्ष्य सम्यग्-व्यावास ० ; ( ७ ) अशैक्ष्य सम्यक्-स्मृति ० ; ( ८ ) अशैक्ष्य सम्यक्-समाधि ० ; ( ९ ) अशैक्ष्य सम्यग्-ज्ञान ० ; ( १० ) अशैक्ष्य सम्यग्-विमुक्तिसे युक्त होता है । स्वपति ! इन दश धर्मोंसे युक्त पुरुष-पुद्गलको मैं सम्पन्न-कुशल ० कहता हूँ ।”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो पंचकांग स्वपतिने भगवान्के भाषणकी अभिर्नदित किया ।



## ७६-चूल-सकुलुदायि-मुत्तन्त (२।३।६)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् राजगृहमें वेणुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे। उस समय सकुल-उदायी परित्राजक महती परिषद्के साथ परित्राजकाराभमें बास करता था।

भगवान् पूर्वाह्न समय ०।०<sup>१</sup> जहाँ सकुल-उदायी परित्राजक था, वहाँ गये। तब सकुल-उदायी परित्राजकने भगवान्से कहा—“आइये भन्ते ०।”

“जाने दीजिये भन्ते ! इस कथाको ०। जब मैं भन्ते ! इस परिषद्के पाल नहीं होता, तब यह परिषद् अनेक प्रकारकी व्यर्थ कथायें ( = तिरछाण-कथा ) कहती बैठी है। और जब भन्ते ! मैं इस परिषद्के पाल होता हूँ, तब यह परिषद् मेरा ही सुख देखती बैठी रहती है—‘हमें धम्म उदायी जो कहेगा, उसे सुनेंगे।’ जब भन्ते ! भगवान् इस परिषद्के पाल होते हैं, तब मैं और यह परिषद् भगवान्का सुख ताकती बैठी रहती है—‘भगवान् हमें जो धर्म उपदेश करेंगे, उसे हम सुनेंगे।’”

“उदायी ! तुझे ही जो मालूम पड़े, सुझे कह ।”

“पिछले दिनों भन्ते ! ( जो यह ) सर्वज्ञ-सर्वदर्शी, निखिल-ज्ञान-दर्शन ( = ज्ञाता ) होनेका दावा करते हैं—‘घलते, खड़े, सोते-जागते भो (मुझे) निरन्तर ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है।’ यह मेरे शुरुसे लेकर प्रश्न पूछनेपर, इधर उधर जाने लगे, बाहरकी कथामें जाने लगे। उन्होंने कोप, द्वेष और अविश्वास प्रकट किया। तब भन्ते ! मुझे भगवान्के ही प्रति प्रीति उत्पन्न हुई—‘अहो ! निश्चय भगवान् ( हैं ), अहो ! निश्चय सुगत ( हैं ), जो इन धर्मोंमें पंडित ( = कुशल ) हैं।’

“कौन हैं यह उदायी ! सर्वज्ञ-सर्वदर्शी ०, जो कि तेरे शुरुसे लेकर प्रश्न पूछनेपर इधर उधर जाने लगे ० अविश्वास प्रकट किये ?”

“भन्ते ! निर्गुण नाथ-युत्त ।”

“उदायी ! जो अनेक प्रकारके पूर्व-जन्मोंको जानता है ०, वह मुझे आरम्भ ( = पूर्व-जन्त ) के विषयमें प्रश्न पूछे, और उसको मैं पूर्वान्तके विषयमें प्रश्न पूछूँ। वह मेरे पूर्वान्त-विषयक प्रश्न का उत्तर देकर, मेरे चित्तको प्रसन्न करे; और मैं उसके पूर्वान्त-विषयक प्रश्नका उत्तर देकर, उसके चित्तको प्रसन्न करूँ। जो उदायी ! दिव्य ० चक्षुसे ० सर्वाँको श्रुत होते, उत्पन्न होते देखता है। वह मुझे दूसरे छोर ( = अपर-जन्त ) के विषयमें प्रश्न पूछे। मैं उसे दूसरे छोरके विषयमें प्रश्न पूछूँ। वह मेरे ० प्रश्नका उत्तर दे, मेरे चित्तको प्रसन्न करे; और ० मैं उसके चित्तको ०। या उदायी ! जाने दो पूर्व-जन्त, जाने दो अपर-जन्त। तुझे धर्म बतलाता हूँ—ऐसा होने पर, यह

<sup>१</sup> देखो सन्दक-मुत्तन्त, पृष्ठ २२९।

होता है, इसके उत्पन्न होनेसे, यह उत्पन्न होता है। इसके न होनेपर यह नहीं होता। इसके निरोध (= विनाश) होनेपर यह निरुद्ध होता है।

“भन्ते ! मैं, जो कुछ कि इसी शरीरमें अनुभव किया है, उसे भी आकार-उद्देश-सहित स्मरण नहीं कर सकता, कहाँसे भन्ते ! मैं अनेक-विहित पूर्व-निवासों (= पूर्व-जन्मों) को स्मरण करूँगा—०, जैसे कि भगवान् ? भन्ते ! मैं इस वक्त पांशु-पिशाचक (= पुर्वक) को भी नहीं देखता, कहाँसे फिर मैं दिव्य ० चक्षुसे ० स्वप्नोंको व्युत् ० उत्पन्न होते ० देखूँगा ०, जैसे कि भगवान् ? भन्ते ! भगवान् ने जो मुझे कहा—‘उदायी ! जाने दो पूर्वांत ० इसके निरोध होने पर यह निरुद्ध होता है।’ यह मेरे लिये अधिक पसन्द जान पड़ता है। क्या भन्ते ! मैं अपने मत (= आचार्य-क) के अनुसार प्रश्नोंपर दे, भगवान् के चित्तको प्रसन्न करूँ।”

“उदायी ! तेरे ( अपने ) मतमें क्या होता है ?”

“हमारे मत (= आचार्यक) में भन्ते ! ऐसा होता है—‘यह परम-वर्ण ( है ), यह परम-वर्ण ( है )।’

“उदायी ! जो यह तेरे आचार्यकमें ऐसा होता है—‘यह परम-वर्ण, यह परम-वर्ण’ वह कौनसा परम-वर्ण है ?”

“भन्ते ! जिस वर्णसे उत्तर-तर = या प्रणीततर (= उत्तमततर) दूसरा वर्ण नहीं है, वह परम-वर्ण है।”

“कौन है उदायी ! वह वर्ण; जिससे ० प्रणीततर दूसरा वर्ण नहीं है ?”

“भन्ते ! जिस वर्ण (= रङ्ग) से ० प्रणीततर (= अधिक, उत्तम) दूसरा वर्ण नहीं है, वह परम-वर्ण है।”

“उदायी ! वह तेरी ( बात ) दीर्घ- ( कालतक ) भी चले—‘जिस वर्णसे ० प्रणीततर दूसरा वर्ण नहीं ०’ तो भी तू उस वर्णको नहीं बतला सकता। जैसे कि उदायी ! ( कोई ) पुरुष ऐसा कहे—‘मैं जो इस जनपद (= देश) में जनपद-कन्याणी (= सुन्दरियोंकी रानी) है, उसको चाहता हूँ ० तो क्या मानते हो उदायी ! क्या ऐसा होने पर उस पुरुषका कथन अ-प्रामाणिक नहीं होता ?”

“अवश्य भन्ते ! ऐसा होने पर उस पुरुषका कथन अ-प्रामाणिक होता है।”

“इसी प्रकार तू उदायी !—‘जिस वर्णसे ० प्रणीत-तर दूसरा वर्ण नहीं, वह परम-वर्ण है’ कहता है, और उस वर्णको नहीं बतलाता।”

“जैसे भन्ते ! शुभ्र, उत्तम जातिकी अँठकोणी, पालिया की हुई वैदूर्य-मणि (= हारा), पांडु-कंधल (= लाल-दोषाले) में रखी, आसित होती है, चमकती है, विरोचित होती है; मरने के बाद भी आत्मा इसी प्रकारके वर्णवाला हो, अरोग (= अ-विनाशी) होता है।”

“तो क्या मानते हो, उदायी ! शुभ्र ० वैदूर्य-मणि ० विरोचित होती है, और जो वह रात के अन्धकारमें जुगन् कीड़ा है, इन दोनों वर्णों (= रङ्गों) में अधिक चमकीला (= अधिकतर) और प्रणीत-तर है ?”

“जो यह भन्ते ! रातके अन्धकारमें जुगन् कीड़ा है, यही इन दोनों वर्णों में अधिक चमकीला ० है।”

“तो क्या मानते हो, उदायी ! जो यह रातके अंधकारमें जुगन् कीड़ा है और जो यह



रातके अंधकारमें तेलका प्रदीप ( है ) ; इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला या प्रणीत-तर है ?”

“भन्ते ! वह जो रातके अंधकारमें तेल-प्रदीप है • ।”

“तो क्या मानते हो उदायी ! जो वह रातके अंधकारमें तेल-प्रदीप है, और जो वह रातके अंधकारमें महान् अग्नि-स्फंध (= आगका डेर ) है । इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला • है ?”

“भन्ते जो वह • अग्नि-स्फंध • ।”

“तो • उदायी ! जो वह रातके अंधकारमें महान् अग्नि-स्फंध है, और जो वह रातके भिन-सारमें मेघरहित स्वच्छ आकाशमें ओषधि-तारा (= शुक्ल<sup>१</sup>) है, इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला • है ?”

“भन्ते जो वह ! • ओषधि-तारा • ।”

“तो • उदायी ! जो वह • ओषधि-तारा है, जो वह आधीरातको मेघ-रहित स्वच्छ आकाशमें उस दिनके उपवासकी पूर्णिमाका चन्द्र है ; इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला • है ?”

“भन्ते • जो वह चन्द्र • ।”

“तो • उदायी ! जो वह • चन्द्र है, और जो वह वर्षाके पिछले भाग, शरदुके समय मेघ-रहित स्वच्छ आकाशमें मन्वाह्नके समय सूर्य है ; इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला • है ?”

“भन्ते ! जो वह सूर्य • ।”

“उदायी ! मैं ऐसे बहुतसे देवताओंको जानता हूँ, जिनमें इन चन्द्र-सूर्यका प्रकाश नहीं लगता । तब भी मैं नहीं कहता—‘जिस वर्णसे प्रणीत-तर • दूसरा वर्ण ही •’ । और तू तो उदायी ! जो यह जुगम् कीड़ेसे भी हीन-तर निकृष्ट-तर वर्ण है, वही परम-वर्ण है, उसीका वर्ण (= तारीफ ) बखानता है ।”

“कैसा वह अच्छा भगवान् ! कैसा वह अच्छा मुनि !”

“उदायी ! क्या तू ऐसे कह रहा है—‘कैसा वह अच्छा • ।’”

“भन्ते ! हमारे आचार्यक (= भूत) में ऐसा होता है,—‘यह परम-वर्ण है’ ‘यह परम-वर्ण है’ । सो हम भन्ते ! भगवान्के साथ अपने आचार्यकके विषयमें पूछने = अवगाहन करने = सम्-अनुभाषण करनेपर रिक्त = तुच्छ = अपराधी ( से ) है ।”

“क्या उदायी ! लोक एकान्त-सुख (= सुख-मय) है ? एकान्त-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये क्या ( कोई ) आकारवती (= सविस्तर ) प्रतिपद् (= मार्ग ) है ?”

“भन्ते ! हमारे आचार्यकमें ऐसा होता है—एकान्त-सुखवाला लोक है, एकान्त-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये आकार-वती प्रति-पद् भी है ।”

“कौन सी है उदायी ! • आकारवती प्रतिपद् ?”

“यहाँ भन्ते ! कोई ( पुरुष ) प्राणातिपातको छोड़, प्राण-हिंसासे विरत होता है । अदत्तादान (= बिना दिया लेना = चोरी ) छोड़, अदत्तादानसे विरत होता है, • काम-मिथ्याचार

<sup>१</sup> अ. व. “ओषधि-ताराका = शुक्ल-तारा (= शुक्रतारा ) चूँकि उसके उदय-आरम्भसे ओषध ग्रहण करते भी है, इसलिये ओषधि-तारा कहा जाता है” ।

( = व्यवभिचार ) से विरत होता है । ० सुषावाद ( = मूठ बोलने ) से विरत होता है । किसी एक तपोगुणको लेकर रहता है । यह है भन्ते ! ० आकारवती प्रतिपद् । "

" तो ० उदायी ! जिस समय प्राणातिपात-विरत होता है, क्या उस समय आत्मा एकांत-सुखी ( = केवल सुख अनुभव करने वाला ) होता है, या सुख-दुःखी ? "

" सुख-दुःखी, भन्ते ! "

" तो ० उदायी ! जिस समय ० अदत्तादान-विरत होता है, क्या उस समय आत्मा एकांत सुखी होता है, या सुख-दुःखी ? "

" सुख-दुःखी, भन्ते ! "

" तो ० उदायी ! जिस समय ० काम-मिथ्याचार-विरत ० । ० । सुषावाद ० । ० । ० किसी एक तपो-गुणसे युक्त होता है । क्या उस समय आत्मा एकांत-सुखी होता है, या सुख-दुःखी ? "

" सुख-दुःखी भन्ते ! "

" तो क्या मानते हो, उदायी ! क्या व्यवर्कोण ( = मिश्रित ) ( पुरुष ) को सुख-दुःख ( मिश्रित ) मार्ग ( = प्रतिपद् ) को पाकर, एकांत-सुखवाले लोकका साक्षात्कार होता है ? "

" कैसा यह अच्छा ! भगवान् !! कैसा यह अच्छा ! सुगत !! "

" उदायी ! क्या तू यह ऐसे कह रहा है—'कैसा यह अच्छा ०' । "

" भन्ते ! हमारे आचार्यक ( = मत ) में ऐसा होता है—एकांत-सुखवाला लोक है, एकांत-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये आकारवती प्रतिपद् है । सो भन्ते ! हम भगवान्के ० भाषण करने पर तुच्छ ० हैं । क्या भन्ते ! एकांत-सुखवाला लोक है ? एकांत-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये आकारवती प्रतिपद् है ? "

" है उदायी ! एकांत-सुख लोक, है आकारवती प्रतिपद् । "

" भन्ते ! एकांत-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये आकारवती प्रतिपद् कौनसी है ? "

" यहाँ उदायी ! भिक्षु ०<sup>१</sup> प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ० द्वितीय-ध्यानको ० । ० तृतीय-ध्यानको ० । यह है उदायी ! ० आकारवती प्रतिपद् । "

" भन्ते ! एकांत-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये यही आकारवती प्रतिपद् है ? इतने हीसे भन्ते ! उसको एकांत-सुखलोकका साक्षात्कार हो गया रहता है ? "

" नहीं, उदायी ! इतनेसे एकांत-सुखवाले लोकका साक्षात्कार ( नहीं ) हो गया रहता, यह तो एकांत-सुखलोकके साक्षात्कारकी आकारवती प्रतिपद् है । "

ऐसा कहनेपर सकुल-उदायी परित्राजककी परिपद् उन्नादिनी = उन्नाद्व्य—महाशब्द ( = कोलाहल ) करनेवाली हुई—यहाँ हम अपने मतसे नष्ट होंगे, यहाँ हम भ्रष्ट ( = प्रणष्ट ) होंगे । इससे अधिक उत्तम हम नहीं जानते । तब सकुल-उदायी परित्राजकने, उन परित्राजकोंको चुपकरा, भगवान्से कहा—

" भन्ते ! किसनेसे इस ( पुरुष ) को एकान्त-सुखवाले लोकका साक्षात्कार होता है ? "

" यहाँ उदायी ! भिक्षु सुखको भी छोड़ ०<sup>२</sup> चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है, ( तब ) जितने देवता एकान्त-सुखलोकमें उत्पन्न हैं, उन देवताओंके साथ टहरता है, संलाप करता है,



साक्षात्कार करता है। इतनेसे उदायी ! इसको पुंकांत-सुखवाला शोक साक्षात्कृत (= प्रत्यक्ष) होता है।

“ उदायी ! इसी ० के लिये मेरे पास ब्रह्मचर्य नहीं पालन करते। उदायी ! दूसरे उत्तर-तर = प्रणीततर (= इससे भी उत्तम) धर्म हैं, जिनके साक्षात्कारके लिये भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य पालन करते हैं। ”

“ भन्ते ! वह धर्म ० कौनसे हैं ? ”

“ उदायी ! यहाँ लोकमें सधागत उत्पन्न होते हैं ०<sup>१</sup> बुद्ध भगवान् ० । वह इन पाँच नीवरणोंको छोड़ चित्तके उपक्लेशों (= मलों)को ० प्रथम-ध्यान ०, ० द्वितीय-ध्यान ०, ० तृतीय-ध्यान ०, ० चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरते हैं। वह भी उदायी ! धर्म उत्तर-तर = प्रणीत-तर है, जिसके साक्षात्कारके लिये भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं। वह ०<sup>२</sup> अनेक प्रकारके पूर्व-निवासको अनुस्मरण करते हैं ० । ० । च्युत और उत्पन्न होते प्राणियोंको जानते हैं ० । ० । ० दुःखनिरोध-गामिनी-प्रतिपद् ० आसन्न-निरोध-गामिनी-प्रतिपद्को वयार्थतः जानते हैं ०<sup>३</sup> यहाँ कुछ नहीं है, जानते हैं, वह उदायी ! उत्तरतर ० धर्म है, जिसके ० लिये ० मेरे पास ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं । ”

ऐसा कहनेपर उदायी परिमात्रकने भगवान्<sup>४</sup> ( से प्रमज्जा भोगी, तब उसकी परिपद्ने ) कहा—

“ उदायी ! आप अमण गौतमके पास मत ब्रह्मचर्यवास करें (= मत शिष्य हों), मत आप उदायी आचार्य होकर अन्तेवासी (= शिष्य) की तरह वास करें, जैसे करका (= मठकी) होकर पुरवा होवे, इसी प्रकारकी वह सम्यक् (= अवस्था) आप उदायीकी होगी। आप उदायी ! अमण गौतम ० । ”

इस प्रकार सकल-उदायी ० की परिपद्ने सकल-उदायी ० को भगवान्के पास ब्रह्मचर्यपालन करनेमें चित्त डाला।

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ २१३।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ २५-२६।

## ८०-वेखणस-मुत्तन्त (२।३।१०)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तोमें अनार्यपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब वेखणस (= वीखानस) परित्राजक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया; जाकर भगवान्‌के साथ संमोदनकर एक ओर खड़ा हुआ । एक ओर खड़े वेखणस परित्राजकने भगवान्‌के पास यह उद्दान (= आनंदोल्लापमें निकली बाग़वावली) उद्दाना—‘यह परम (= उत्तम) वर्ण है ।’

‘क्या है, यह परम वर्ण ?’

‘भो गौतम ! जिस वर्णसे अधिक अच्छा—प्रणीततर दूसरा वर्ण नहीं है, वह परम-वर्ण है ।’

‘कात्यायन ! वह कौनसा वर्ण है, जिस वर्णसे अधिक अच्छा = प्रणीततर दूसरा वर्ण नहीं है ।’

‘भो गौतम ! जिस वर्णसे अधिक अच्छा = प्रणीततर दूसरा वर्ण नहीं है, वह परम-वर्ण है ।’

‘कात्यायन ! इस वचनको काहे लम्बा बड़ाता धोल रहा है—‘भो गौतम ! जिस वर्णसे ० वह परमवर्ण है’; किन्तु उस वर्णको नहीं बतलाता । जैसे कात्यायन ! कोई पुरुष ऐसा कहे—‘इस जनपद (= देश) में जो जनपद-कल्याणी (= वेशको सुन्दरतम स्त्री) है, मैं उसको चाहता हूँ, उसकी कामना करता हूँ । उसको यदि (लोग) ऐसा पूछें—‘हे पुरुष ! जिस जनपद-कल्याणीको तू चाहता है, कामना करता है; जानता है, वह क्षत्रियाणी है, ब्राह्मणी है, वैश्य-स्त्री है, या क्षत्री है’ ?—ऐसा पूछनेपर ‘नहीं’ कहे । तब उससे पूछें—‘हे पुरुष ! जिस जनपद-कल्याणीको तू चाहता है, (वह) अमुक नामवाली, अमुक गोत्रवाली है, लम्बी, छोटी या मझोली, है; काली, स्वामा या मंगुर (मझोले) वर्णकी है; अमुक ग्राम, निगम या नगरमें रहती है ?’—ऐसा पूछनेपर ‘नहीं’ कहे । तब उससे यह पूछें—‘हे पुरुष ! जिसको तू नहीं जानता, जिसको तूने नहीं देखा; उसको तू चाहता है; उसकी तू कामना करता है ?’—ऐसा पूछनेपर ‘हाँ’ कहे । तो क्या मानता है, कात्यायन ! ऐसा कहनेपर क्या उस पुरुषका कथन अर्थहीन नहीं होता ?’

‘जरूर, भो गौतम ! ऐसा कहनेपर उस पुरुषका कथन अर्थहीन हो जाता है ।’

‘ऐसे ही कात्यायन ! तू कहता है—‘भो गौतम ! जिस वर्णसे ० वह परमवर्ण है’, किन्तु उस वर्णको नहीं बतलाता ।

‘जैसे भो गौतम ! कुछ उच्चम जातिकी अठकोणी बालिशकी हुई वैदूर्य-मणि (= हीरा) ०<sup>१</sup> ।

‘०<sup>२</sup> और तू तो कात्यायन ! जो यह खगन् कीदसे भी हीनतर निकृष्टतर वर्ण है, उसीको

<sup>१</sup> यह इस परित्राजकका गोत्र था ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ ३१५ ।



परमवर्ण ( कहता है ), उसीको प्रशंसा करता है ।

“कात्यायन ! यह पाँच काम-गुण<sup>१</sup> ( = विषयभोग ) हैं । कौनसे पाँच ?—(१) इष्ट, कान्त<sup>२</sup> ०<sup>३</sup> चक्षुद्वारा विज्ञेय रूप; (२) ०<sup>४</sup> श्रोत्र-विज्ञेय शब्द; (३) ०<sup>५</sup> घ्राण-विज्ञेय गंध; (४) ०<sup>६</sup> जिह्वा-विज्ञेय रस; (५) ०<sup>७</sup> काय-विज्ञेय स्पर्श । कात्यायन ! यह पाँच काम-गुण हैं । कात्यायन ! इन पाँच काम-गुणोंको लेकर जो सुख = लौमनस्य उत्पन्न होता है, वह काम-सुख कहा जाता है । इस प्रकार कामोंसे काम-सुख और काम-सुखसे काम-धम ( = श्रेष्ठ भोग ) सुख श्रेष्ठ कहा जाता है ।”

ऐसा कहनेपर वेत्थणस परिब्राजकने भगवान्से यह कहा—

“आश्चर्य ! भो गौतम ! अद्भुत !! भो गौतम ! क्या सुभाषित ( = ठीक कहा ) आप गौतमका है—कामोंसे काम-सुख, और कामसुख से कामाग्र-सुख श्रेष्ठ कहा जाता है ।”

“कात्यायन ! अन्य दृष्टिक ( = दूसरा मत रखनेवाले ) = अन्य-श्रान्तिक = अन्य-रुचिक, अन्यत्र-आश्रय ( = आसक्ति ) वाले, अन्यत्र-आचार्यक ( = दूसरा ज्ञान रखनेवाले ) तेरे लिये काम, काम-सुख, कामाग्र-सुख—यह जानना दुष्कर है । कात्यायन ! जो वह भिक्षु अर्हत् ब्रह्मचर्य प्राप्त कर चुके, कृतकरणीय, आरमुक्त ०<sup>८</sup> श्रोणाश्रय हैं, वह इस—काम, काम-सुख, कामाग्र-सुखको जान सकते हैं ।”

“ऐसा कहते पर वेत्थणस परिब्राजक कुपित-असंतुष्ट-मना हो भगवान्को ही खुंसाते, भगवान् पर ही नाराज होते, भगवान् को—‘श्रमण गौतम ही ( अज्ञताका ) प्राप्त होगा’—(कह) भगवान्से यह बोला—

“इसी प्रकार यहाँ कोई कोई श्रमण-ब्राह्मण पूर्वान्त ( = आरम्भ के छोर )को बिना जाने, पश्चिम-भन्तको बिना देखे, यह दावा करते हैं—‘जन्म क्षीण होगया, ब्रह्मचर्यप्राप्त समाप्त होगया, करना था सो कर लिया, अब यहाँ और करनेको नहीं—यह हम जानते हैं ।’ उनका यह कथन हल्क ( ठोटा ) लामक रिक्त = तुच्छ ही होता है ।”

“कात्यायन ! जो श्रमण ब्राह्मण पूर्वान्त बिना जाने ० यह दावा करते हैं—‘जन्म क्षीण होगया ० यह हम जानते हैं’ उनका यह धार्मिक निग्रह होता है । कात्यायन ! रहे पूर्वान्त, रहे पश्चिमान्त; कोई सरल, अ-शठ = अ-मायावी विज्ञ पुरुष आवे; मैं उसे अनुशासन करता हूँ, मैं ( उसे ) भर्त्सना करता हूँ । ( मेरे ) अनुशासनके अनुसार आचरण करते जल्दी ही स्वयं जानेगा, स्वयं देखेगा—‘इस प्रकार अविद्या ( रूपी ) बंधनसे मुक्ति होती है । जैसे, कात्यायन ! उम्मान सोनेवाला, अघोष छोटे घन्के ( दो हाथों-दो पैरों ) और पाँचवें कंठमें सूतके बंधन बँधे हों; उसके होश सँभालनेपर, इन्द्रियों ( = ज्ञान )के परिपाक होने पर वह बंधन छूट जाते हैं । वह ‘मैं मुक्त हूँ’ यही जानता है, बंधनको नहीं ( जानता ); ऐसे ही कात्यायन ! ० कोई ० विज्ञ पुरुष आवे ० स्वयं देखेगा—‘इस प्रकार अविद्या-बंधनसे मुक्ति होती है’ ।”

ऐसा कहने पर वेत्थणस परिब्राजकने भगवान्से यह कहा—

“आश्चर्य ! भो गौतम ! आश्चर्य !! भो गौतम ! जैसे औंधेको सीधा करदे ०<sup>९</sup> यह मैं भगवान् गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी । आप गौतम आजसे मुझे अंजलिबद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें ।”

( इति पट्ठिवाजक वग्ग ॥ २।३ ॥ )

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ २३ ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ २८४ ।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ २५ ।

## ८१-घटिकार-सुत्तन्त (२।४।१)

आत्मनः शृङ्खल-जीवन

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् महान् भिक्षुसंघके साथ कोसल ( देश ) में चारिका ( = रामत, अमण ) कर रहे थे ।

तब भगवान्ने भर्मासे हट कर एक स्थानपर स्मित ( = मुस्कुराहट ) प्रकाशित किया । तब आयुष्मान् आनन्दको यह हुआ—'क्या हेतु = क्या प्रत्यय है, भगवान्के स्मित करनेका ? तब-गत विना कारणके स्मित प्रकट नहीं किया करते ।' तब आयुष्मान् आनन्द शुक ( घाँसे ) ऋषे पर उत्तरा लोगको करके, जिधर भगवान् थे, उधर अर्जलि जोवकर भगवान्से यह बोले—

“भन्ते ! क्या हेतु = क्या प्रत्यय है भगवान्के स्मित प्रकट करनेका ? भन्ते ! तबगत विना आपके स्मित प्रकट नहीं किया करते ।”

“आनन्द ! पूर्वकालमें इस प्रदेशमें कल ( = समूह ) = स्त्रीत, बहुजनाकीर्ण वेहलिंग नामक ग्राम-निगम था । वेहलिंगके समीप भगवान् काश्यप अर्हत् सम्यक्-संशुद्ध विहार किये थे । आनन्द ! यहाँ भगवान् काश्यप अर्हत् सम्यक्-संशुद्धने बैठकर भिक्षु संघको उपदेश किया था ।”

तब आयुष्मान् आनन्दने जीपेती संघाटीको विद्या कर, भगवान्से यह कहा—

“तो भन्ते ! भगवान् बैठें, इस प्रकार यह स्थान दो अर्हत्तोसे सेवित होगा ।”

भगवान् बिछे आसन पर... बैठकर आयुष्मान् आनन्दसे बोले—

“आनन्द ! पूर्वकालमें इस प्रदेशमें कल = स्त्रीत, बहुजनाकीर्ण वेहलिंग नामक ग्राम-निगम था । वेहलिंगके समीप भगवान् काश्यप अर्हत् सम्यक्-संशुद्ध विहार किये थे । यहाँ आनन्द ! भगवान् काश्यप ० का आराम था । यहाँ आनन्द ! भगवान् काश्यप ० भिक्षु-संघको उपदेश करते थे ।

“आनन्द ! वेहलिंग ग्राम-निगममें घटिकार नामक कुम्भकार ( = कुम्हार ) भगवान् काश्यप ० का अग्र-उपस्यार ( = प्रधानसेवक ) रहता था । घटिकार कुम्भकारका जोतिपाल नामक माणवक ( = बाह्य-तुरुण ) प्रियमित्र था । तब आनन्द ! घटिकार कुम्भकारने जोतिपाल माणवक को सम्बोधित किया—‘आओ चलो सौम्य जोतिपाल ! भगवान् काश्यप ० के दर्शनको । उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संशुद्धका दर्शन साधु-सम्मत है ।’ ऐसा कहने पर आनन्द ! जोतिपाल माणवकने घटिकार कुम्भकारसे यह कहा—‘रहने दो सौम्य घटिकार ! उस सुंदर भ्रमणके देखने से क्या ( फल ) ?’ दूसरी बार भी घटिकार ० । तीसरी बार भी घटिकार कुम्भकारने जोतिपाल माणवकको सम्बोधित किया—‘आओ चलो सौम्य जोतिपाल ! ० दर्शन साधु-सम्मत है । तीसरी बार भी आनन्द ! जोतिपाल माणवकने घटिकार कुम्भकारसे यह कहा—‘रहने दो सौम्य घटिकार ! उस सुंदर भ्रमणके देखनेसे क्या ?’ तो सौम्य जोतिपाल ! आन-पूर्ण-पिंड ( सोप्ति सिनाप्ति ) ले



चलो नहानेके लिये नदी चलें ।' 'अच्छा, सौम्य'—( कह ) जोतिपाल माणवकने घटिकार कुम्भकार को उत्तर दिया । तब आनन्द ! घटिकार कुम्भकार और जोतिपाल माणवक सोचि-सिनातिको लेकर बानके लिये नदी गये । तब आनन्द घटिकार कुम्भकारने जोतिपाल माणवकसे कहा—'सौम्य जोतिपाल ! यह पास में भगवान् काश्यप ० का आराम है, आओ चलें सौम्य जोतिपाल ! ० उन भगवान् ० का दर्शन साधु-सम्मत है ।' ऐसा कहनेपर आनन्द ! जोतिपाल माणवकने घटिकार कुम्भकारसे यह कहा—'रहने दो सौम्य घटिकार ! ० ।' दूसरी बार भी ० । तीसरी बार भी ० ।

“तब आनन्द ! घटिकार कुम्भकारने जोतिपाल माणवकका कपड़ा पकड़कर कहा—'सौम्य जोतिपाल ! यह पासमें भगवान् काश्यप ० का आराम है, आओ चले सौम्य जोतिपाल ! ० उन भगवान् ० दर्शन साधु-सम्मत है ।' तब आनन्द ! जोतिपाल माणवक कपड़ा समेटकर घटिकार कुम्भकारसे यह बोला—'रहने दो सौम्य घटिकार ! ० ।' तब आनन्द ! घटिकार कुम्भकारने शिरसे नहाये जोतिपाल माणवकके केशपर हाथ फेरकर यह कहा—'सौम्य जोतिपाल ! यह पासमें ० दर्शन साधु-सम्मत है ।' तब आनन्द ! जोतिपाल माणवकको यह हुआ—आश्चर्य भो ! अद्भुत भो ! जोकि यह घटिकार कुम्भकार इतरजाति ( = नीच जाति ) का होते भी शिरसे नहाये हमारे केशको छू रहा है । यह छोटी बात न होगी, और घटिकार कुम्भकारसे बोला—'अच्छा, सौम्य घटिकार !' 'अच्छा, सौम्य जोतिपाल ! उन भगवान् ० का दर्शन वैसा साधु सम्मत है ।' 'तो सौम्य घटिकार ! डोवो चलेगा' ।

“तब आनन्द ! घटिकार कुम्भकार और जोतिपाल माणवक जहाँ भगवान् काश्यप ईश्वर सम्मुख-संयुद्ध थे वहाँ गये । घटिकार कुम्भकार भगवान् काश्यप ० को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । जोतिपाल माणवक भी भगवान् काश्यप ० के साथ सम्मोदनकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे आनन्द ! घटिकार कुम्भकारने भगवान् काश्यप ० से यह कहा—'भन्ते ! यह जोतिपाल माणवक मेरा भ्रियमित्र है, इसे भगवान् धर्मापदेश करें' । तब आनन्द ! भगवान् काश्यप ० ने घटिकार कुम्भकार और जोतिपाल माणवकको धार्मिक कथाद्वारा संदर्शित = समादधित, समुत्तेजित, संप्रशंसित किया । तब आनन्द ! घटिकार कुम्भकार और जोतिपाल माणवक भगवान् काश्यप ० की धार्मिक कथाद्वारा ० समुत्तेजित संप्रशंसित हो, भगवान् काश्यप ० के भाषणको अभिनन्दित अनुमोदित कर, आसनसे उठ, भगवान् काश्यपको अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चले गये ।

“तब आनन्द ! जोतिपाल माणवकने घटिकार कुम्भकारसे यह कहा—'वहो ! सौम्य घटिकार ! धर्म सुनते भी तो घरसे बेघर हो प्रव्रजित नहीं होता ।' क्यों सौम्य जोतिपाल ! तुम जानते हो, अंधे माता-पिताको मैं पोसता हूँ ?' 'तो सौम्य घटिकार ! मैं घरसे बेघर हो प्रव्रजित होता हूँ ?'

“तब आनन्द ! घटिकार कुम्भकार और जोतिपाल माणवक जहाँ भगवान् काश्यप ० थे, वहाँ गये । ० एक ओर बैठे घटिकार कुम्भकारने भगवान् काश्यप ० से यह कहा—'भन्ते ! यह जोतिपाल माणवक मेरा भ्रियमित्र है, इसे भगवान् अव्रजित करें ।' आनन्द ! जोतिपाल माणवकने भगवान् काश्यप ० के पास प्रव्रज्या उपसम्पत्ता पाई ।

“तब आनन्द ! जोतिपालके उपसम्पन्न ( = भिक्षु ) होनेके थोड़े ही समय बाद, पन्द्रह दिन बाद, भगवान् काश्यप ० वेहलिंगमें इच्छापूर्वक विहार कर वाराणसीकी ओर चल दिये । कमलाः चारिका करते जहाँ वाराणसी है, वहाँ पहुँचे । वहाँ आनन्द ! भगवान् काश्यप ० वाराणसीमें श्रृपिपतन स्तम्भावनमें विहार करते थे । आनन्द ! काशिराज किकिने सुना—भगवान् काश्यप ०

वाराणसीमें पहुँच...कपिलतन शृगदावमें विहार करते हैं। तब आनन्द! काशिराज किकि उत्तमोत्तम यानोंको लुक्वाकर, ( एक ) उत्तम यान (= रथ ) पर ( स्वयं ) आरुढ़ हो उत्तमोत्तम यानोंके साथ धड़े ० राजसी डाटवाटके साथ भगवान् काश्यप ० के दर्शनार्थ वाराणसी (= बनारस ) से निकला। जितना यानका रास्ता था, उतना यानसे जा ( फिर ) यानसे उतर पैदल ही जहाँ भगवान् काश्यप ० थे, वहाँ जाकर...भगवान् काश्यप ० को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे काशिराज किकिने भगवान् काश्यप ० ने धार्मिककथासे ० समुच्चैजित संप्रशंसित किया। तब भगवान् काश्यप ० से ० संप्रशंसित हो काशिराज किकि भगवान् काश्यप ० से यह बोला—'भन्ते! भगवान् मिश्रसंघके साथ कलके लिये मेरा भोजन स्वीकार करें। भगवान् काश्यप ० ने मौनसे स्वीकार किया। तब आनन्द! काशिराज किकिने भगवान् काश्यप ० की स्वीकृतिको जान कर, आसनसे उठ भगवान् काश्यप ० को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया।

"तब आनन्द! काशिराज किकिने उस रातके बीसनेपर अपने मकानपर कालिमारहित पंडुमुक्तिक ( लाल धानका भात ), अनेक ब्यंजनों (= तिर्यंज ) का उत्तम स्वाद्य-भोज्य तैयार करा, भगवान् काश्यप ० को कालको सूचना दी—'( भोजनका ) काल है भन्ते! भात तैयार है'। तब आनन्द! पूर्वाह्णके समय पहिनकर पात्र-चीवर ले मिश्रसंघके साथ भगवान् काश्यप ० जहाँ काशिराज किकिका घर था, वहाँ गये; जाकर मिश्रसंघके साथ घिटे आसनपर बैठे। तब आनन्द! काशिराज किकिने बुद्धप्रमुख मिश्रसंघको अपने हाथसे उत्तम स्वाद्य-भोज्य परोस संतर्पित = संप्रशंसित किया।

"तब आनन्द! भगवान् काश्यप ० के भोजनकर हाथ हटा लेनेपर, काशिराज किकि एक नीचा आसन ले एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे काशिराज किकि भगवान् काश्यप ० से यह कहा—'भन्ते! भगवान् वाराणसीमें वर्षावास स्वीकार करें, इस प्रकारसे संशकी सेवा होगी।' 'नहीं, महाराज! वर्षावास मेरा हो चुका'। दूसरी पार भी ०। तीसरी पार भी ०। तब आनन्द! काशिराज किकिको 'भगवान् ० वाराणसीमें वर्षावास नहीं स्वीकार करते—( सोच ) दुःख हुआ, चिन्मत्ता हुई। तब आनन्द! काशिराज किकिने भगवान् काश्यप ० से यह कहा—'क्या भन्ते! आपका मुखसे भी अच्छा कोई उपस्थान (= सेवक ) है?' 'महाराज! वैहलिग नामक ग्राम-निगम है, वहाँ घटिकार नामक कुंभकार है, वह मेरा अग्र उपस्थान है। तुझे महाराज!—भगवान् वाराणसीमें मेरा वर्षावास ( निमंत्रण ) स्वीकार नहीं करते—( यह सोचकर ) दुःख हुआ, चिन्मत्ता हुई; घटिकार कुंभकारको यह नहीं होती, न होवेगी। महाराज! घटिकार कुंभकार बुद्धकी शरण गया है, धर्मकी शरण गया है, संघकी शरण गया है। महाराज! घटिकार कुंभकार प्राणातिपात (= हिंसा) से विरत, अदत्तादान (= चोरी) से विरत, काम-मिथ्याचारसे विरत, सुषावाद (= झूठ) से विरत, सुरा-मेरव-मद्य-प्रमादस्थान (= नशीली चीजों) से विरत है। महाराज! घटिकार कुंभकार बुद्धमें अतीव अद्वययुक्त, धर्ममें ०, संघमें अतीव अद्वययुक्त है, आर्य-कान्त शीलों (= सुन्दर सदाचारों) युक्त है। महाराज! घटिकार कुंभकार दुःख<sup>१</sup> में ( सत्य ) में संशय-रहित है, दुःख-समुदयमें संशय-रहित, दुःख-निरोधमें संशय-रहित, दुःखनिरोध गामिनी प्रतिपद् में संशय-रहित है। महाराज! घटिकार कुंभकार एकाहारी, व्रजचारी, शीलवान् कल्याणधर्मा (= पुण्यात्मा) है। महाराज! घटिकार कुंभकार मणिसुवर्ण-स्थापी, सोना-चाँदी-

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ १९-४०।



विरत है। महाराज ! घटिकार कुम्भकार मूसल ( आदि कूटने खादनेके हथियारों )-त्यागी है, अपने हाथसे पृथिवी को नहीं खादता। उसके घर पर आनेवाले चूहे कुकुरोंको भी ( भोजन ) बाँट कर कहता है—‘यहाँ जो चावल, मूंग, या मटर जिस किसी भोजनको चाहता है, ( याकी को ) कोष उसे ले जाये। महाराज ! घटिकार कुम्भकार अंधे माता-पिताको पोसता है। महाराज ! घटिकार कुम्भकार पाँच अवर-भागीय-संयोजनोंके सबसे उस ( लोक ) में औपपातिक (= देवता ) हो निर्वाण पानेवाला है, उस लोकसे कौटकर न आनेवाला है।

‘‘महाराज ! एक समय मैं वेहलिंग ग्राम-निगममें विहार करता था। तब महाराज ! पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चौवर ले मैं जहाँ घटिकार कुम्भकारका घर है, वहाँ गया। जाकर घटिकार कुम्भकारके माता पितासे यह कहा—‘हन्त ! यह भार्गव कहाँ गया है ?’ ‘भन्ते ! आपका उपस्थाक बाहर गया हुआ है, इस हँडिया (= कुम्भी ) से भात लेकर, वर्तन (= परिधोम ) से सूप (= दाल, स्वंजन ) लेकर भोजन करें।’ तब महाराज ! मैंने कुम्भीसे भात और परियोगसे सूप ले भोजन कर, आसनसे उठकर चला दिया। तब महाराज ! घटिकार कुम्भकार जहाँ ( उसके ) माता-पिता थे, वहाँ गया; जाकर माता-पितासे यह बोला—‘कौन कुम्भीसे भात और परियोग ले सूप ले भोजनकर आसनसे उठकर चला गया ?’ ‘तात ! भगवान् काश्यप ० कुम्भीसे भात ले ० भोजनकर ० चले गये।’ तब महाराज ! घटिकार कुम्भकारको यह हुआ—‘सुखाम है हो ! मेरा; ( जो कि ) मेरे ऊपर भगवान् काश्यप ० का इतना विश्वास है।’ तब महाराज ! घटिकार कुम्भकार को उस प्रीतमुख (= प्रसन्नताके मुख ) ने अर्ध भासतक नहीं छोड़ा, ( और ) माता-पिताको सप्ताह भर ( नहीं छोड़ा )।

‘‘महाराज ! एक बार मैं उसी वेहलिंग ग्राम-निगममें विहार करता था। तब महाराज ! मैं पूर्वाह्न समय पहिनकर, पात्र-चौवरले जहाँ घटिकार कुम्भकारके माता पिता थे, वहाँ गया। जाकर ० माता-पितासे यह बोला—‘हन्त ! यह भार्गव कहाँ गया है ?’ ० तब महाराज मैं कलोपी (= वर्तन ) से कुम्भाप (= कुलधी ), परियोगसे सूप ले, भोजनकर आसनसे उठकर चला गया। ० माता-पिताको सप्ताह भर।

‘‘महाराज ! एकवार मैं उसी वेहलिंग ग्राम-निगममें विहार करता था। उस समय ( मेरी ) गंधकुटी चू रही थी। तब महाराज ! मैंने भिक्षुओंसे कहा—‘जाओ भिक्षुओ ! घटिकार कुम्भकारके घर पर, तृण ढँको।’ ऐसा कहने पर महाराज ! भिक्षुओंने मुझे कहा—‘भन्ते ! घटिकार कुम्भकारके घरपर तृण नहीं है; ( किंतु ) नया जाया हुआ है।’ ‘जाओ भिक्षुओ ! घटिकार कुम्भकारके घरको तृण-धिना कर दो।’ तब महाराज ! उन भिक्षुओंने घटिकार कुम्भकारके घरको तृण-धिना कर दिया। तब महाराज ! घटिकार कुम्भकारके माता-पिताने भिक्षुओंसे यह कहा—‘कौन घरको उजाड़ रहे हैं ?’ ‘भिक्षु, भगिनी ! भगवान् काश्यप ० की गंधकुटी चू रही है।’ ‘ले जाओ, भन्ते ! ले जाओ भद्रमुखो ! तब महाराज ! घटिकार कुम्भकार जहाँ माता-पिता थे वहाँ गया। जाकर माता-पितासे बोला—‘किनने घरको उजाड़ दिया (= बेजानका कर दिया ) ?’ ‘भिक्षु, तात ! भगवान् काश्यप ० की गंधकुटी चू रही थी।’ तब महाराज ! घटिकार कुम्भकार-पुत्रको ऐसा हुआ—‘सुखाम है हो ! ० माता-पिताको सप्ताह भर। तब महाराज ! वह तारा घर तीन मास तक आकाश-छन्द (= आकाशही जिसकी छत है ) रहा, किंतु नहीं चुभा। महाराज ! इस प्रकार

१ कुम्भी भात पानेके बड़े वर्तनका नाम है, और परियोग दाल आदि घुस पकाने लायक वर्तनका।

२ ऊपर बैठे थे।

का है घटिकार कुम्भकार ।' 'मन्ते ! घटिकार कुम्भकारको लाभ है, \* सुलभ है, \* सुलब्ध लाभ है, जिसपर भगवान्का इतना अधिक विश्वास है ।

“तब आनन्द ! काशिराज किसने घटिकार कुम्भकारके पास पाँच सौ गाड़ी पटु-मुटिक, शालीका चावल, और उसके योग्य सूपकी चीज भेजी । तब आनन्द ! उस राज-पुरुषोंने घटिकार कुम्भकारके पास जाकर यह कहा—‘मन्ते (= स्वामी) ! यह पाँचसौ गाड़ी पटु-मुटिक, शालीका चावल, और उसके योग्य सूपकी चीजें आपके पास काशिराज किसने भेजी हैं, इन्हें मन्ते ! स्वीकार करें ।’ ‘राजाको बहुत कृत्य है, बहुत करणीय है, मेरे लिये जरूरत नहीं, राजाकी ही ( यह ) हो ।’

“शायद, आनन्द ! तुझे ऐसा हो, वह जोतिपाल मालवक कोई और होगा । आनन्द ! ऐसा नहीं क्वाल करना चाहिये; मैं ही उस समय जोतिपाल मालवक था ।”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो आयुष्मान् आनन्दने भगवान्के भाषणको अभिनन्दित किया ।



## ८२-रघुपाल-सुत्तन्त (२।४।२)

लागमग भिक्षु-जीवन । भोगोंकी असाराता

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् कुरु ( देश ) में महाभिक्षु-संघके साथ धारिका करते, जहाँ धुल्लकोट्टित नामक कुरुओंका निगम (= कथा ) था, वहाँ पहुँचे ।

धुल्लकोट्टित (= स्पुल्लकोट्टित ) वासी ब्राह्मण गृहपतियोंने सुना—शान्वपुत्र \* प्रसन्न गौतम धुल्लकोट्टितमें प्राप्त हुये हैं ० । ० 'इस प्रकारके अर्हत्तोंका दर्शन अच्छा होता है । तब धुल्लकोट्टितके ब्राह्मण-गृहपति जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर कोई कोई अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । ० कोई कोई चुपचाप एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे धुल्लकोट्टित-वासी ब्राह्मण गृहपतियोंको भगवान्ने धार्मिक कथासे संदर्शित, प्रेरित, समुत्तेजित, संप्रशंसित किया ।

उस समय उसी धुल्लकोट्टितके अग्र-कुलिकका पुत्र राष्ट्र-पाल उस परिषद्में बैठा था । तब राष्ट्र-पालको ऐसा हुआ जैसे भगवान् भ्रम उपदेशकर रहे हैं, यह असंयत परिशुद्ध संन्यासी पुला प्रब्र-चर्य-पालन गृहमें वास करते सुकर नहीं है । क्यों न मैं केश-श्मश्रु मुंडाकर, कापाय वस्त्र पहिनकर, भरसे बेघर हो प्रव्रजित होजाऊँ । तब धुल्लकोट्टित-वासी ब्राह्मण-गृहपति भगवान्से धार्मिक कथा द्वारा ० समुत्तेजित, संप्रशंसित हो, भगवान्के भाषणको अभिनन्दन, अनुमोदनकर, आसन्नसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर, चले गये । तब राष्ट्र-पाल कुलपुत्र ० ब्राह्मणोंके चले-जानेके बोधी ही देर बाद वहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे राष्ट्रपाल कुल-पुत्रने भगवान्से कहा—

“भन्ते ! जैसे जैसे मैं भगवान्के उपदेश किये धर्मको समझता हूँ, यह ० शंख-लिखित ब्रह्मचर्य-पालन गृहमें वास करते सुकर नहीं है । भन्ते ! मैं भगवान्के पास प्रव्रज्या पाऊँ, उपसंपदा पाऊँ ।”

“राष्ट्रपाल ! क्या तूने मातापितासे भरसे बेघर हो प्रव्रज्याके लिये आज्ञा पाई है ?”

“भन्ते ! ० आज्ञा नहीं पाई ।”

“राष्ट्रपाल ! माता-पितासे बिना आज्ञा पायेको तयागत प्रव्रजित नहीं करते ।”

“भन्ते ! तो मैं वैसा कहेगा, जिसमें माता-पिता मुझे ० प्रव्रज्याके लिये आज्ञा दें ।”

“तब राष्ट्रपाल कुल-पुत्र आसनसे उठकर, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर जहाँ माता-पिता थे, वहाँ गया । जाकर माता-पितासे कहा—

“अम्मा ! तात ! जैसे जैसे मैं भगवान्के उपदेश किये धर्मको समझता हूँ, यह ० शंख-लिखित (= छिले शंखकी तरह निर्मल श्वेत ) ब्रह्मचर्य-पालन, गृहमें वास करते सुकर नहीं है ।

\* देखो पृष्ठ २४, १५८ ।

मैं ० प्रव्रजित होना चाहता हूँ । घरसे बेघर हो प्रव्रजित होनेके लिये मुझे आज्ञा दो ।”

ऐसा कहनेपर राष्ट्रपाल कुल-पुत्रके माता-पिताने राष्ट्र-पाल ० से कहा—

“तात राष्ट्रपाल ! तुम हमारे प्रिय = मनाप, सुखमें पड़े, सुखमें पड़े एक पुत्रहो । तात राष्ट्रपाल ! तुम दुःख कुल भी नहीं जानते । आओ तात राष्ट्रपाल ! आओ, भियो, विचरो । खाते-पीते-विचरते, कामोंका परिभोग करते, पुण्य करते, रमण करो । हम तुम्हें ० प्रव्रज्याके लिये आज्ञा न देंगे । सरनेपर भी हम तुमसे बे-चाह न होंगे, तो फिर कैसे हम तुम्हें जोते जी ० प्रव्रजित होने की आज्ञा देंगे ।”

दूसरी बार भी ० । तीसरी बार भी ० ।

तब राष्ट्रपाल कुल-पुत्र माता-पिताके पास प्रव्रज्या ( की आज्ञा ) को न पा, वहीं नंगी धरती पर पड़ा गया ।—“यहीं मेरा मरण होगा, या प्रव्रज्या” । तब ० माता-पिताने राष्ट्रपाल ० से कहा—

“तात राष्ट्रपाल ! तुम हमारे प्रिय ० एक पुत्र हो ० ।”

ऐसा कहनेपर राष्ट्रपाल कुल-पुत्र चुप रहा ।

० दूसरी बार भी ० । ० । तीसरी बार भी राष्ट्र-पाल कुल-पुत्र चुप रहा ।

तब राष्ट्रपाल ० के माता-पिता जहाँ राष्ट्रपाल कुल-पुत्रके मित्र थे, वहाँ गये ।

जाकर कहा—

“तातो ! यह राष्ट्रपाल कुल-पुत्र नंगी धरतीपर पड़ा है—‘यहीं मरण होगा या प्रव्रज्या’ । आओ तातो ! जहाँ राष्ट्रपाल है, वहाँ जाओ । जाकर राष्ट्रपाल ० को कहो—सौम्य राष्ट्रपाल ! तुम माता-पिताके प्रिय ० एक पुत्र हो ० ।”

तब राष्ट्रपाल ० के मित्र राष्ट्रपाल ० के माता-पिता ( की बात ) को सुनकर, जहाँ राष्ट्रपाल ० था, वहाँ गये, जाकर ० कहा—

“सौम्य राष्ट्रपाल ! तुम माता-पिताके प्रिय ० एक पुत्र हो ० ।”

ऐसा कहनेपर राष्ट्रपाल ० चुप रहा । दूसरी बार भी ० । तीसरी बार भी ० ।

तब राष्ट्रपाल ० के मित्रों ( = सहायक ) ने ० राष्ट्रपाल ० के माता-पितासे कहा—

“अम्मा ! तात ! यह राष्ट्रपाल ० वहीं नंगी धरतीपर पड़ा है—‘यहीं मेरा मरण होगा, या प्रव्रज्या’ । यदि तुम राष्ट्रपाल ० को ० अनुज्ञा न दोगे, तो वही उसका मरण होगा, यदि तुम ० आज्ञा दोगे, प्रव्रजित हुये भी उसे देखोगे, यदि राष्ट्रपाल ० प्रव्रज्यामें भ्रम न लगा सका, तो, उसकी और दूसरी क्या गति होगी ? वहीं लौट आयेगा । ( जतः ) राष्ट्रपाल ० को प्रव्रज्याकी अनुज्ञा दो ।”

“तातो ! हम राष्ट्रपाल ० की ० प्रव्रज्याकी अनुज्ञा ( = स्वीकृति ) देते हैं, लेकिन प्रव्रजित हो, माता-पिताको दर्शन देना होगा ।”

तब राष्ट्रपाल कुल-पुत्रके सहायक ०, जाकर राष्ट्रपाल ० से बोले—

“सौम्य राष्ट्रपाल ! तू माता-पिताका प्रिय ० एक पुत्र है ० । माता-पितासे ० प्रव्रज्या के लिये तू अनुज्ञात है । लेकिन प्रव्रजित हो माता-पिताको दर्शन देना होगा ।”

तब राष्ट्रपाल ० उठकर, बल ग्रहणकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर ० एक ओर बैठे हुये ० भगवान्से कहा—

“भन्ते ! मैं माता-पितासे ० प्रव्रज्याके लिये अनुज्ञात हूँ । मुझे भगवान् प्रव्रजित करें ।”

राष्ट्रपाल ० ने भगवान्के पास प्रव्रज्या और उपसम्पदा प्राप्त की । तब भगवान्



राष्ट्रपालके उपसंग ( = मित्र होना ) होनेके बोधो ही देखे बाद, आधा मात उपसंग होनेपर, भगवान् शुलकोट्टितमें कोष्ठ विहारकर जिधर आवसी थी, उधर चारिकाके लिये चल पड़े। क्रमशः चारिका करते जहाँ आवसी थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् आचर्य-पिठिकके आराम बैठवनमें विहार करते थे। तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल "० आत्म-संयमो हो 'विहरते तत्पदी' ही, जिसके लिये कुल-पुत्र टीकसे बरसे बेधर हो प्रसन्नित होते हैं, उस सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य-फलको दूसी जन्ममें स्वयं अभिज्ञानकर, साक्षात्कारकर, प्राप्तकर विहरने लगे। 'जाति ( = जन्म ) क्षोण हो गई, ब्रह्मचर्य-पालन हो चुका, करना भा सो कर लिया, और वहाँ करनेको नहीं है'—ज्ञान लिया। आयुष्मान् राष्ट्रपाल जहाँतोंमें एक हुये।

तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल जहाँ भगवान् थे, "जाकर, भगवान्को अभिवादनकर" एक ओर बैठे "भगवान्से बोले—

"भगने ! यदि भगवान् अनुज्ञा दें, तो मैं माता-पिताको दर्शन देना चाहता हूँ।"

तब भगवान्ने मनसे राष्ट्रपालके मनके विचारको जाना। जब भगवान्ने ज्ञान लिया, राष्ट्रपाल कुल-पुत्र ( मित्र- ) मित्राको छोड़, गृहस्थ धननेके अपोम्य है, तब भगवान्ने आयुष्मान् राष्ट्रपालसे कहा—

"राष्ट्रपाल ! जिसका इस वर्ष समय समझ, ( वैसाकर )।"

तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल आसनसे उठकर भगवान्को अभिवादन कर, प्रवृत्तिणा कर, शयना-गम सैनाल ( = जिम्मे लगा ), पात्र-चीवर ले, जिधर शुलकोट्टित था, उधर चारिकाके लिये चल पड़े। क्रमशः चारिका करते जहाँ शुलकोट्टित था, वहाँ पहुँचे। वहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपाल शुलकोट्टितमें राजा कौरवके मिमाचौर ( नामक उद्यान )में विहार करते थे।

तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल पूर्वोक्त-समय पहन कर, पात्र चीवर ले, शुलकोट्टितमें पिठिके लिये प्रविष्ट हुये। शुलकोट्टितमें बिना ठहरे पिठिचार करते, जहाँ अपने पिताका घर था, वहाँ पहुँचे। उस समय आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता बिचली द्वारशालामें बाल धनवा रहा था। पिताने दूरसे ही आयुष्मान् राष्ट्रपालको आते देखा। देखकर कहा—'इन मुँहको भ्रमणकोने मेरे प्रिय = सनाथ एकलौते पुत्रको प्रसन्नित कर लिया।' तब आयुष्मान् राष्ट्रपालने अपने पिताके घरमें न दान पाया, न प्रत्याख्यान ( = इन्कार ), बल्कि फटकार हो पाई। उस समय आयुष्मान् राष्ट्रपालकी जाति-दासी वाली कुम्भाप ( = दाल ) फैकना चाहती थी। तब आयुष्मान् राष्ट्रपालने उस जाति-दासी ( = जातिपालकी दासी )से कहा—

"भगिनी ! यदि दासी कुम्भापको फैकना चाहती है, तो यहाँ मेरे पात्रमें दाल दे।"

तब ० जातिदासीने उस दासी कुम्भापको आयुष्मान् राष्ट्रपालके पात्रमें दालते समय, हाथों, पैरों, और स्वरको पहिचान लिया। तब ० जाति-दासी जहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपालकी माता थी, वहाँ गई; जाकर आयुष्मान् राष्ट्रपालकी मातासे बोली—

"अरे ! अम्मा !! जानती हो, आर्यपुत्र राष्ट्रपाल आये हैं ?"

"जे ! यदि सच बोलती है, तो अदासी होगी।"

तब आयुष्मान् राष्ट्रपालकी माता जहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता था, वहाँ जाकर बोली—

"अरे ! गृहपति !! जानते हो, राष्ट्रपाल कुल-पुत्र आया है ?"

उस समय आयुष्मान् राष्ट्रपाल उल पासी कुम्हारको किसी भीतके सहारे ( बैठकर )  
था रहे थे। आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता जहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपाल थे, वहाँ गया, जाकर  
आयुष्मान् राष्ट्रपालसे बोला—

“तात राष्ट्रपाल ! भासी दाल खाते हो । तो तात राष्ट्रपाल ! घर चलना चाहिये ।”

“गृहपति ! घर छोड़ बेघर हुये हम प्रमत्तियोंका घर कहाँ ? गृहपति ! हम बेघरके हैं ।  
तुम्हारे घर गया था, वहाँ न दान पाया, न प्रलाभ्यान, बल्कि फटकार ही पाई ।”

“आओ, तात राष्ट्रपाल ! घर चलें ।”

“बस गृहपति ! आज मैं भोजन कर चुका ।”

“तो तात राष्ट्रपाल ! कलका भोजन स्वीकार करो ।”

आयुष्मान् राष्ट्रपालने मौनसे स्वीकार किया ।

तब आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता, आयुष्मान् राष्ट्रपालकी स्वीकृतिको जानकर, जहाँ  
अपना घर था, वहाँ जाकर, हिरण्य (= अश्वत्थी), सुवर्णकी बड़ी राशि करवा, चटाईसे  
ईकवाकर, आयुष्मान् राष्ट्रपालकी स्त्रियोंको आमंत्रित किया—

“आओ बहुओ ! जिस अलंकारसे अलंकृत हो पहिले राष्ट्रपाल कुल-पुत्रको तुम  
प्रिय = मनाप होती थीं, उन अलंकारोंसे अलंकृत होओ” तब आयुष्मान् राष्ट्रपालके पिताने  
उस रातके पीत जाने पर, अपने घरमें वचन खाद्य भोज्य तत्त्वार कर, आयुष्मान् राष्ट्रपालको  
बोल सूचित किया—‘काल है तात राष्ट्रपाल ! भोजन तत्त्वार है’ । तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल  
पूर्वाह्न समय पहिन कर, पात्र चोवर ले जहाँ उनके पिताका घर था, वहाँ गये । जाकर बिटे  
आसन पर बैठे । तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल का पिता हिरण्य, सुवर्णकी राशिको खोल कर  
आयुष्मान् राष्ट्रपालसे बोला—

“तात राष्ट्रपाल ! यह तेरी माताका (= मातृक) धन है, पिताका, पितामहका जलग  
है । तात राष्ट्रपाल ! भोग भी भोग सकते हो, पुण्य भी कर सकते हो । आओ तुम तात  
राष्ट्रपाल ! ( भिक्षु- ) शिक्षा (= दीक्षा) को छोड़ गृहस्थ बन, भोगोंको भोगी, और  
पुण्योंको करो ।”

“यदि गृहपति ! तू मेरी बात करे, तो इस हिरण्य, सुवर्ण-पुंजकी गावियोंपर रखवा,  
हुलवाकर गंगा सदीकी बीच धारमें डाल दे । सो किसलिये ? गृहपति ! इसके कारण तुझे शोक  
= परिदेव, दुःख = दोर्मनस्य = उपायास न उत्पन्न होंगे ।”

तब आयुष्मान् राष्ट्रपालकी प्रत्येक भावोंमें पैर पकड़ आयुष्मान् राष्ट्रपालने बोलीं—

“आर्यपुत्र ! कैसी वह अप्सरायें हैं, जिनके लिये तुम ब्रह्मचर्य्य पालन कर रहे हो ?”

“बहिनो ! हम अप्सराओंके लिये वसचर्य नहीं पालन कर रहे हैं ।”

अगिनो (= बहिन) कहकर हमें आर्य-पुत्र राष्ट्रपाल पुकारते हैं ( तोच ), यह वहीं  
सूचित हो गिर पड़ी । तब आयुष्मान् राष्ट्रपालने पिताने कहा—

“गृहपति ! यदि भोजन देना है, तो दे । हमें कष्ट मत दे ।”

“भोजन करो तात राष्ट्रपाल ! भोजन तत्त्वार है ।”

तब आयुष्मान् राष्ट्रपालके पिताने उत्तम खाद्य भोज्यते अपने हाथ आयुष्मान् राष्ट्रपालको  
संतर्पित-संप्रवारित किया । तब आयुष्मान् राष्ट्रपालने भोजनकर, पात्रने हाथ हटा, खड़े खड़े  
पह भावोंमें कहीं—

“देओ ( इत ) विचित्र बने विष (= आकार) को, ( जो ) वषपूर्ण, सजित ।



आसुर, बहु-संकल्प ( है ) ; जिसकी स्थिति स्थिर ( = ध्रुव ) नहीं है ।

देखो विचित्र घने रूपको, ( जो ) भूमि और कुंडलके साथ ।

इसी चमड़ेसे पैदा, वस्त्रके साथ शोभता है ।

महावर लगे पैर, चूर्णक ( = पौडर ) पीता सुँह ।

बालक ( = मूर्ख ) को मोहनेमें समर्थ है, पार-गवेपीको नहीं ।

बल पड़े केस, अंजन-अजित नेत्र ।

बालकको मोहनेमें समर्थ है, पारगवेपीको नहीं ।

नई विचित्र अंजन-नालीकी भाँति अलंकृत ( वह ) सदा शरीर ।

बालकको \* ।

आधाने जाल फैलाया, ( किन्तु ) मृत जाक्यों नहीं आया ।

चाराको लाकर आधोंके राँते ( डोब ) जा रहा हूँ ।"

तब आयुष्मान् राष्ट्रपालने खड़े खड़े इन माधाओंको कहकर, जहाँ कौरव्यका मिगाचीर ( उद्यान ) था, वहाँ गये । जाकर एक वृक्षके नीचे दिनके विहारके लिये बैठे ।

तब राजा कौरव्यने मिगव ( नामक माली ) को संबोधित किया—

"सौम्य मिगव ( = सुगन्ध ) ! मिगाचीरको साफ करो, उद्यान-भूमि = सुगन्धि देरनेके लिये जाऊँगा ।"

मिगवने राजा कौरव्य को "अच्छा देव !" कह कर, मिगाचीरको साफ करते, एक वृक्षके नीचे दिनके विहारकेलिये बैठे आयुष्मान् राष्ट्रपालको देखा । देखकर जहाँ राजा कौरव्य था, वहाँ गया, जाकर कौरव्यसे बोला—

"देव ! मिगाचीर साफ है, और वहाँ इसी शुद्धकोटितके अग्रकुलिकका राष्ट्रपाल नामक कुल-पुत्र, जिसकी कि आप हमेशा तारीफ करते रहते हैं, एक वृक्षके नीचे दिनके विहारके लिये बैठा है ।"

"तो सौम्य मिगव ! आज अब उद्यान-भूमि जाने दो, आज उन्हीं आप राष्ट्रपालकी उपासना ( = सत्संग ) करेंगे ।"

तब राजा कौरव्य, जो कुछ खास भोजन तय्यार था, सबको 'डोक़ो !' कह, अच्छे अच्छे घान जुतवा, ( एक ) अच्छे घानपर चढ़, अच्छे अच्छे घानोंके साथ बड़े राजसी ढाटसे आयुष्मान् राष्ट्रपालके दर्शनके लिये, शुद्धकोटितसे निकला । जितनी घानकी भूमि थी, उतना घानसे जा, ( फिर ) घानसे उतर पैदलही छोटी मंडलीके साथ तहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपाल थे, वहाँ गया, जाकर आयुष्मान् राष्ट्रपालके साथ "संमोदन किया" ( और ) एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े हुये राजा कौरव्यने आयुष्मान् राष्ट्रपालसे कहा—

"आप राष्ट्रपाल वहाँ मालीचे ( = हस्तधर ) पर बैठें ।"

"नहीं महाराज ! तुम बैठो, मैं अपने आसनपर बैठा हूँ ।"

राजा कौरव्य बिठे आसनपर बैठ गया । बैठकर राजा कौरव्यने आयुष्मान् राष्ट्रपालसे कहा—

"हे राष्ट्रपाल ! यह चार हानियाँ ( = पारिवर्त्य ) हैं, जिन हानियोंसे कुछ कोई कोई पुरुष केस-श्मश्रु सुँबवा, कापाप वस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं । कौनसे चार ? जरा-हानि, व्याधि-हानि, भोग-हानि, जाति-हानि । कौन है हे राष्ट्रपाल ! जराहानि ? ( १ ) हे राष्ट्रपाल ! कोई ( पुरुष ) जोर्ण = बुद्ध = भद्रक = अंगमत = वषःप्राप्त होता है । वह ऐसा सोचता है, मैं इस समय जोर्ण = बुद्ध = हूँ, अब मेरे लिये अप्राप्त भोगोंका प्राप्त करना या प्राप्त भोगोंको

भोगना सुकर नहीं है। क्यों न मैं केश-श्मश्रु सुँवाकर काषाय-वस्त्र पहिन ० प्रमजित हो जाऊँ। वह उस जरा-हानिसे युक्त हो ० प्रमजित होता है। हे राष्ट्रपाल ! यह जराहानि कही जाती है। लेकिन आप राष्ट्रपाल ! तरुण, बहुत काले केशोंवाले, सुन्दर बौवनसे युक्त, प्रथम वयसके हैं। सो आप राष्ट्रपालको जरा-हानि नहीं है। आप राष्ट्रपाल क्या जानकर, देखकर, सुनकर, घरसे बेघर हो प्रमजित हुये ? ( २ ) हे राष्ट्रपाल ! व्याधि-हानि क्या है ? हे राष्ट्रपाल ! कोई ( पुरुष ) रोगी, दुःखी, सख्त बीमार होता है, वह ऐसा सोचता है—‘मैं अब रोगी, दुःखी, सख्त बीमार हूँ, अब मेरे लिये अप्राप्त भोगोंका प्राप्त ०। यह व्याधिहानि कही जाती है। लेकिन आप राष्ट्रपाल इस समय, व्याधि-रहित, आतंक-रहित, न-जति-शीत, न-जति-उष्ण, सम-विपाकवाली पाचनशक्ति (= प्रणों ) से युक्त हैं, सो आप राष्ट्रपालको व्याधि-हानि नहीं है ० ? ( ३ ) हे राष्ट्रपाल ! भोग-हानि क्या है ? हे राष्ट्रपाल ! कोई ( पुरुष ) आश्रय, महाधनी, महाभोग-वान् होता है, उसके वह भोग कमशः क्षय हो जाते हैं। वह ऐसा सोचता है—‘मैं पहिले आश्रय ० था, सो मेरे वह भोग कमशः क्षय हो गये, अब मेरे लिये अप्राप्त भोगोंका प्राप्त करना ०। आप राष्ट्रपाल तो इसी शुद्धकोटितमें अमर-लोकके पुत्र हैं। सो आप राष्ट्रपालको भोग-हानि नहीं है ० ? ( ४ ) हे राष्ट्रपाल ! जाति-हानि क्या है ? हे राष्ट्रपाल ! किसी ( पुरुष ) के बहुतसे मित्र, अमात्य, जाति (= जाति ), सारोहित (= रक्तसंबन्धी ) होते हैं, उसके वह जातिवाले कमशः अमरको प्राप्त होते हैं। वह ऐसा सोचता है—‘पहिले मेरे बहुतसे मित्र-अमात्य, जाति-बिरादरी थी, वह मेरी जातिवाले कमशः क्षय हो गये, अब मेरे लिये अप्राप्त भोगोंका प्राप्त करना ०। लेकिन आप राष्ट्रपालके तो इसी शुद्धकोटितमें बहुतसे मित्र-अमात्य, जाति-बिरादरी हैं। सो आप राष्ट्रपालको जाति-हानि नहीं है। आप राष्ट्रपाल क्या जानकर, देखकर, सुनकर, घरसे बेघर हो प्रमजित हुये ? हे राष्ट्रपाल ! यह चार हानियाँ हैं, जिन हानियोंसे युक्त कोई-कोई ( पुरुष ) केश-श्मश्रु सुँवा, काषाय-वस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रमजित होते हैं, वह आप राष्ट्रपालको नहीं है। आप राष्ट्रपाल क्या जानकर, देखकर, सुनकर घरसे बेघर हो प्रमजित हुये ?”

“महाराज ! उन भगवान्, जाननहार, देणनहार, अर्हन् सम्मन्-संयुक्ते चार धर्म-उद्देश कहे हैं, जिनको जानकर, देखकर, सुनकर मैं घरसे बेघर हो प्रमजित हुआ। कौनसे चार ? ( १ ) ( यह ) लोक (= संसार ) अध्रुव ( है ), उपनीत हो रहा है, वह उस भगवान् ० ने प्रथम धर्म-उद्देश कहा है, जिसको देखकर ० प्रमजित हुआ। ( २ ) लोक धाण-रहित, आधासन-रहित है ०। ( ३ ) लोक अपना नहीं है, सब छोड़कर जाना है ०। ( ४ ) लोक कमतीवाला तृणाका दास है ०। यह महाराज ! उन भगवान् ० ने चार धर्म-उद्देश कहे हैं, जिनको जानकर ० मैं ० प्रमजित हुआ।”

“उपनीत हो रहा (= ले जाया जा रहा ) है, ‘लोक अध्रुव है’ आप राष्ट्रपालके इस कथनका अर्थ कैसे जानना चाहिये ?”

“तो क्या मानते हो, महाराज ! ये तुम ( कभी ) बीस-वर्षके, पचीस-वर्षके ? ( तब तुम ) संग्राममें हाथीकी सवारीमें होशियार, घोड़ेकी सवारीमें होशियार, रथकी सवारीमें होशियार, धनुषमें होशियार, तलवारमें होशियार, उससे बलिष्ठ, बाहुसे बलिष्ठ थे ?”

“बल्कि हे राष्ट्रपाल ! जानों एक समय कश्चिन्नान् हो मैं अपने बलके समान ( किसीको ) देखता ही न था।”

“तो क्या मानते हो महाराज ! आज भी संग्राममें तुम वैसे ही ० उरु-बली, बाहु-बली, सामर्थ्य-युक्त हो ?”

“नहीं हे राष्ट्रपाल ! इस वक्त मैं जीर्ण-दूढ़ ० हूँ, अस्सी-वर्षकी मेरी उम्र है। बल्कि एक



समय हे राष्ट्रपाल ! मैं 'यहाँ तक पैर (= पाद ) रखूँ' ( विचार ) दूसरे ( समय ) चौंकाई हो ( दूर तक ) रख सकता हूँ ।"

"महाराज ! उन भगवान् ० ने इसीको सोचकर कहा—'उपनीत हो रहा है, लोक अध्रुव है,' जिनको जानकर ० मैं ० प्रमत्तित हुआ ।"

"आश्चर्य ! हे राष्ट्रपाल !! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाल !! जो यह उन भगवान् ० का सुभाषित—'उपनीत हो रहा है ० (= ले जाया जा रहा है ), लोक अध्रुव है' हे राष्ट्रपाल ! इस राज-कुलमें हस्ति-काय ( काय = समुदाय ) भी है, जम्भ-काय भी, रथ-काय भी, पदाति-काय भी, जो हमारी आपत्तियोंमें जुड़के लिये हैं । 'लोक त्राण-रहित, आश्वासन-रहित है' यह ( जो ) आप राष्ट्रपालने कहा ? हे राष्ट्रपाल ! इस कवनका अर्थ कैसे जानना चाहिये ?"

"तो क्या मानते हो महाराज ! है तुम्हें कोई आनुशायिक (= साथ रहनेवाली ) बीमारी ?"

"हे राष्ट्रपाल ! मुझे आनुशायिक वायुरोग है । वल्कि एकबार तो मित्र-अमात्य जाति-विराद्री घेरकर खड़ी थी,—'अब राजा कौरव्य मरेगा' । 'अब राजा कौरव्य मरेगा' ।

"तो क्या मानते हो महाराज ! क्या तुमने मित्र-अमात्यों, जाति-विराद्रीको पाया—'आप मेरे मित्र-अमात्य ०, सभी सत्त्व (= प्राणी ), इस पीड़ाको खाँट लें, जिसमें मैं हल्की पीड़ा पाऊँ', या तुमनेही उस वेदनाको सहा ?"

"राष्ट्रपाल ! उन मित्र अमात्यों ० मैंने नहीं पाया ०, वल्कि मैं ही उस वेदनाको सहता था ।"

"महाराज ! इसीको सोचकर उन भगवान् ० ने ० ।"

"आश्चर्य ! हे राष्ट्रपाल !! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाल !! ० । हे राष्ट्रपाल ! इस राजकुलमें बहुतसा हिरण्य (= अदायों ) सुवर्ण भूमि और आकाशमें है । 'लोक अपना नहीं (= अस्वक ) है, सब छोड़कर जाना है' यह आप राष्ट्रपालने कहा । हे राष्ट्रपाल ! इस कवनका अर्थ कैसे जानना चाहिये ?"

"तो क्या मानते हो महाराज ! जैसे तुम आज कल पाँच काम-गुणोंसे युक्त = समंगीभूत विचरते हो, बाद ( जन्मान्तर )में भी तुम ( उन्हें ) पावोगे—ऐसेही मैं पाँच काम-गुणोंसे युक्त ० विचरूँ, या दूसरे इस भोगको पावेंगे ; और तुम अपने कर्मानुसार जावोगे ?"

"राष्ट्रपाल ! जैसे मैं इस वक्त पाँच काम-गुणोंसे युक्त ० विचरता हूँ, बाद (= जन्मान्तर )में भी ऐसे ही मैं इन काम-गुणोंसे युक्त ० विचरने न पाऊँगा । वल्कि दूसरे इस भोगको लेंगे, मैं अपने कर्मानुसार जाऊँगा ।"

"महाराज इसीको सोचकर उन भगवान् ० ने ० ।"

"आश्चर्य ! हे राष्ट्रपाल !! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाल !! ० । 'लोक कमतीवाला मृषणाका दास है' यह आप राष्ट्रपालने जो कहा ! हे राष्ट्रपाल ! इस कवनका कैसे अर्थ समझना चाहिये ?"

"तो क्या मानते हो महाराज ! समृद्ध कुटु ( देश ) का स्वामित्व कर रहे हो ?"

"हाँ, हे राष्ट्रपाल ! समृद्ध कुटुका स्वामित्व कर रहा हूँ ।"

"तो क्या मानते हो महाराज ! तुम्हारा एक अद्वेय विधास-पात्र पुरुष पूर्व दिशासे आवे, वह तुम्हारे पास आकर ऐसा बोले—हे महाराज ! जानते हो, मैं पूर्व-दिशासे आ रहा हूँ । वहाँ मैंने बहुत समृद्ध = स्फीत, बहुत जनोवाला, अनुष्यंसे आकीर्ण जनपद (= देश ) देखा । वहाँ

बहुत हस्तिकाय, अचकाय, रथकाय, पति (= पैदल)-काय हैं। वहाँ बहुत दाँत, सुगन्धमं हैं। वहाँ बहुत सा कृत्रिम-अकृत्रिम हिरण्य, सुवर्ण है। बहुत सी स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं। यह इतनी ही सेनासे जीता जा सकता है, जीतिये महाराज !" तो क्या करेंगे ?"

"हे राष्ट्रपाल ! उसे भी जीतकर मैं स्वाभित्त कहूँगा।"

"तो क्या मानते हो महाराज ! ० विधासपात्र पुरुष पश्चिम-दिशासे आवे ० ।" ० ।

"० उत्तर दिशासे ० ।" ० । "दक्षिण दिशासे ० ।" ० ।

"महाराज ! इसीको सोचकर इन भगवान् ० ने ० ० ।"

आश्चर्य ! राष्ट्रपाल !! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाल !"

आयुष्मान् राष्ट्रपालने यह कहा। यह कहकर फिर वह भी कहा—

"लोकमें धनवान् मनुष्योंको देखता हूँ, (जो) वित्त पाकर मोहसे दान नहीं करते। लोभी हो घतका संघय करते हैं, और भी अधिक कामों (= मोगों) की चाह करते हैं ॥ १ ॥

"राजा बलपूर्वक पृथ्वीको जीत, सागर-पर्वन्त महींपर शासन करते। समुद्रके इस पारसे तुल न हो, समुद्रके उस पारको भी चाहता है ॥ २ ॥

"राजाहीकी भाँति दूसरे बहुतसे पुरुष भी तृष्णा-रहित न हो मरण पाते हैं। कमतीवाले होकर ही शरीर छोड़ते हैं, लोकमें (किसी की) कामोंसे तृप्ति नहीं है ॥ ३ ॥

"आति बाल बिलेरकर क्रन्दन करती है, और कहती है 'हाय हमारा मर गया' वस्त्रसे कैंकर उसे लेवाकर, चितापर रखकर फिर जला देते हैं ॥ ४ ॥

"वह शूलसे हँचा जाता, मोगोंको छोड़ एक पक्षके साथ जलाया जाता है। मरनेवालेके आति-लित्र = सहाय रक्षक नहीं होते ॥ ५ ॥

"दायाद उसके धनको हरते हैं, प्राणी तो जहाँ कर्म है (वहाँ) जाता है। मरते हुयेके पोछे, पुत्र, दारा, धन, और राज्य नहीं जाता ॥ ६ ॥

"धन द्वारा लम्बी आयु नहीं पा सकता है, और न वित्त द्वारा जराको नाशकर सकता है। धीरे-धीरे इस जीवनको स्वल्प, अ-शाश्वत, अंगुर कहा है ॥ ७ ॥

"धनी और वृद्धि (काम)-स्पर्शोंको छूते हैं, बाल और धीर (= पंडित) भी वैसेही हैं। बाल (= मूर्ख) मूर्खतासे विचलित हो पड़ता है, किंतु धीर स्पर्श-स्पृष्ट हो नहीं विचलित होता ॥ ८ ॥

"इसलिये धनसे प्रजाही श्रेष्ठ है, जिससे कि (तत्त्व-) निश्चयको प्राप्त होता है। मुक्त न होनेसे वह मोहवश आध्यात्मनमें (पड़े) पाप कर्मोंको करते हैं ॥ ९ ॥

"(वह) लगातार संसार (= भवसागर)में पड़कर गर्भ और परलोकको पाता है। अल्प-प्रज्ञावान् इसपर विश्वास कर गर्भ और परलोकको पाता रहता है ॥ १० ॥

"तेवके ऊपर पकड़ा गया पापी धीर, जैसे अपने कामसे मारा जाता है। इसी प्रकार पापी जनता मरकर दूसरे लोकमें अपने कामसे मारी जाती है ॥ ११ ॥

"विचित्र मधुर मनोरम काम (= भोग) नावा रूपसे चित्तको मगधते हैं। इसलिये काम-भोगोंके दुष्परिणामको देखकर हे राजन् ! मैं प्रमज्जित हुआ हूँ ॥ १२ ॥

"वृद्धके फलकी भाँति तरुण और वृद्ध मनुष्य शरीर छोड़कर मरते हैं। ऐसे भी देखकर प्रमज्जित हुआ, (क्योंकि) न मिरनेवाला नित्यधन (= आत्मन्य) ही श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥



## ८३—मखादेव-सुत्तन्त (२।४।३)

कल्याण-मार्ग

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् मिथिलामें मखादेव-आम्रवनमें विहार करते थे ।

एक जगह पर भगवान् सुस्क्रुवा उठे । तब आनुष्मान् आनन्दको यह हुआ—“भगवान् के सुस्क्रुरानेका क्या कारण है ? क्या वजह है ? तयागत बिना कारणके नहीं सुस्क्रुराते । तब आनुष्मान् आनन्द चीवरको एक कंधेपर कर, जिधर भगवान् थे, उधर हाथ-जोड़ भगवान् से छोले—

“आनन्द ! भगवान् के सुस्क्रुरानेका क्या कारण है ?”

“आनन्द ! पूर्वकालमें इसी मिथिलामें मखादेव नामक धार्मिक, धर्म-राजा, राजा हुआ था । ( यह ) धर्ममें स्थित महाराजा, ब्राह्मणोंमें, गृहपतियोंमें, निगमोंमें, ( = कस्यों, नगरों ) में जनपदों ( = दीहातों ) में धर्मसे वर्तता था । चतुर्दशी ( = अमावास्या ) पंचदशी पूर्णिमा, और पक्षकी अष्टमियोंको उपोसथ ( = उपवासव्रत ) रखता था ।”

“( उसने अपने शिरमें पके बाल देख ) ज्येष्ठ पुत्र कुमारको—”बुलवाकर कहा—

“तात ! कुमार ! मेरे देवदुत प्रकट होंगये, शिरमें पके केश दिखाई पड़ रहे हैं । मैंने आनुष्काम ( = भोग ) भोग लिये अब दिव्य-भोगोंके खोजनेका समय है । आओ तात ! कुमार ! इस राजाको तुम लो । मैं केश-दम्भु सुँवा, कापाय-वस्त्र पहिन, धरसे बेधर हो प्रमजित होऊँगा । सो तात ! जब तुम भी शिरमें पके बाल देखना, तो इजामको एक गाँव इनाम ( = वर ) दे, ज्येष्ठ-पुत्र कुमारको अच्छी प्रकार राज्यपर अनुशासन कर, केश-दम्भु सुँवा, वस्त्र पहिन ० प्रमजित होना । जिसमें यह मेरा स्थापित कल्याणवर्त्म ( कल्याण-वृद्ध ) अनुप्रवर्तित रहे; तुम मेरे अन्तिम पुरुष मत होना । तात कुमार ! जिस पुरुष युगलके वर्तमान रहते इस प्रकारके कल्याण-वर्त्म ( -मार्ग ) का उच्छेद होता है, वह उनका अन्तिम पुरुष होता है ।”

“तब आनन्द ! राजा मखादेव नाईको एक गाँव इनाम दे, ज्येष्ठ-पुत्र कुमारको अच्छी तरह राज्यानुशासन कर, इसी मखादेव-आम्रवनमें शिर-दाही सुँवा ० प्रमजित हुआ ।” वह चार “ब्रह्म-विहारोंकी भावनाकर शरीर छोड़ भरतेके बाद ब्रह्मलोकको प्राप्त हुआ ।”

“आनन्द ! राजा मखादेवके पुत्रनेमी……, राज मखादेवकी…… परम्परामें पुत्र पौत्र आदि…… इसी मखादेव-आम्रवनमें केश-दम्भु सुँवा…… प्रमजित हुये ।……। निमि उन राजाजोंका अन्तिम धार्मिक, धर्म-राजा, धर्ममें स्थित महाराजा हुआ ।……।”

“आनन्द ! पूर्वकालमें सुधर्मा नामक सभामें एकत्रित हुये आपत्तिश्र दैवके बीचमें यह

१ मैत्री, करुणा, मुदित और उपेक्षा नामक चार भावनायें ।

वात उत्पन्न हुई—‘लाम है अहो ! विदेहोंको, सुन्दर लाम हुआ है विदेहोंको, जिनका... निमि जैसा धार्मिक, धर्म-राजा, धर्म-स्थित महाराजा है; ..... निमि ओ आनन्द !’ इसी मलादेव-अम्य-जन्म में ..... प्रसन्नित हुआ .....।

“आनन्द ! राजा <sup>१</sup> निमिका कलार-जनक नामक पुत्र हुआ । वह घर छोड़ बेघर हो प्रसन्नित नहीं हुआ । उसने उस कल्याण-वर्त्मको उच्छिन्न कर दिया । वह उनका अन्तिम-पुरुष हुआ । ..... ”

“आनन्द ! इस समय मैंने भी यह कल्याण-वर्त्म स्थापित किया है; ( जो कि ) एकांत-निर्वेदके लिये, विरागके लिये, निरोधके लिये-उपशमके लिये, अभिज्ञाके लिये, संबोधि (= बुद्धिज्ञान) के लिये, निर्वाणके लिये है—( वह ) यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है—जैसे कि-सम्यग्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वाक्, ० कर्मान्त, ० आजीव, ० ध्यायाम, ० स्थिति, सम्यक् समाधि । यह आनन्द ! मैंने कल्याण-वर्त्म स्थापित किया है \* । सो आनन्द ! मैं यह कहता हूँ ‘जिसमें तुम इस मेरे स्थापित कल्याण-मार्गको अनुप्रवर्तित करना (= चलाते रहा ); तुम मेरे अन्तिम-पुरुष मत होना ..... ।’

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो आयुष्मान् आनन्दने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया ।

<sup>१</sup> गंगा, गंडक, कोसी, हिमालयके बीचका प्रदेश ( तिब्बत ) ।



## ८४-माधुरिय-सुत्तन्त (२।४।४)

वर्ण-व्यवस्था (= जातिवाद) का खंडन

ऐसा मैंने सुना—

एक समय आयुष्मान् महाकात्यायन अथुरा (= मथुरा) में सुन्दरवनमें विहार करते थे। माधुर (मथुराके) राजा ज्वन्तिपुत्र<sup>१</sup> ने सुना, कि ज्वमण कात्यायन अथुरामें सुन्दरवनमें विहार कर रहे हैं। उन आप कात्यायनका ऐसा कल्याण कीर्तिशब्द (= यश) उठा हुआ है—'वह (ज्वमण कात्यायन) पंडित = व्यक्त, मेधावी, बहुभूत, चित्तकवी कल्याण-प्रतिभावान् बुद्ध हैं और अहंते हैं। ऐसे अहंतोका दर्शन अच्छा होता है।'

यह माधुर राजा ज्वन्तिपुत्र उत्तमोत्तम यानोंको द्रुतवाकर <sup>२</sup> आयुष्मान् महाकात्यायनके दर्शनार्थ अथुरासे निकला। जितना यानका रास्ता था, उतना यानसे जा, (फिर) यानसे उतर पैदल हो, जहाँ आयुष्मान् महाकात्यायन थे, वहाँ—'आकर आयुष्मान् महाकात्यायनके साथ'—सम्बोद्धन कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे <sup>३</sup> राजा ज्वन्तिपुत्रने आयुष्मान् महाकात्यायनसे यह कहा—

'भो कात्यायन ! ब्राह्मण कहते हैं—ब्राह्मण ही श्रेष्ठवर्ण है, और वर्ण हीन (= नीच) हैं; ब्राह्मण ही शुद्धवर्ण है, और वर्ण कुरूप हैं; ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं, अन्राह्मण नहीं <sup>४</sup>। ब्राह्मणके शिष्या हैं।'

( १ ) 'तो क्या मानते हो, महाराज ! यदि क्षत्रिय ( अपने ) धन-धान्य-चाँदी-सोनासे ( करना ) चाहे, तो उसका पूर्व-उत्पायी-पश्चात्-निपाती (= मालिकसे पहले उठनेवाला, मालिकके सो जानेके बाद सोनेवाला मालिक ), क्या-कास है—पूछनेवाला, मनापचारी (= भनके अनुकूल करनेवाला ), प्रियवादी क्षत्रिय भी होगा न ? ब्राह्मण भी <sup>५</sup> ? वैश्य भी <sup>६</sup> ? शूद्र भी <sup>७</sup> ?'

'हे कात्यायन ! यदि क्षत्रिय <sup>८</sup> चाहे, तो क्षत्रिय भी उसका प्रियवादी होगा; ब्राह्मण <sup>९</sup>; वैश्य भी <sup>१०</sup>; शूद्र भी <sup>११</sup>।'

'तो क्या मानते हो, महाराज ! ब्राह्मण यदि ( अपने ) धन <sup>१२</sup> से करना चाहे, तो ब्राह्मण भी उसका <sup>१३</sup> प्रियवादी होगा न ? वैश्य भी <sup>१४</sup> ? शूद्र भी <sup>१५</sup> ? क्षत्रिय भी <sup>१६</sup> ?'

'हे कात्यायन ! यदि ब्राह्मण <sup>१७</sup> चाहे, तो ब्राह्मण भी उसका <sup>१८</sup> प्रियवादी होगा; वैश्य भी <sup>१९</sup>; शूद्र भी <sup>२०</sup>; क्षत्रिय भी <sup>२१</sup>।'

'<sup>२२</sup> महाराज ! वैश्य यदि <sup>२३</sup> चाहे <sup>२४</sup> ?'

'हे कात्यायन ! यदि वैश्य <sup>२५</sup> चाहे, तो वैश्य भी उसका <sup>२६</sup> प्रियवादी होगा; शूद्र भी <sup>२७</sup>;

<sup>१</sup> यह ज्वन्तीश्वर प्रयोगकी कल्पना। पुन वा (म. क.) । <sup>२</sup> देखो पृष्ठ ३३४ ।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ ३८७ ।

अत्रिय भी ०; ब्राह्मण भी ० ।”

“० महाराज ! श्रद्धा यदि ( अपने ) धन ० से ( करना ) चाहे ० ?”

“हे कान्त्यायन ! यदि श्रद्धा ० चाहे, तो श्रद्धा भी उसका ० प्रियवादी होगा; अत्रिय भी ०; ब्राह्मण भी; वैश्य भी ० ।”

“तो क्या मानते हो महाराज ! ऐसा होने पर चारों वर्ण सम-सम (= बराबर ) होते हैं या नहीं ? वहाँ तुम्हें कैसा होता है ?”

“जबूर है कान्त्यायन ! ऐसा होनेपर चारों वर्ण सम-सम होते हैं, वहाँ कोई भेद मैं नहीं देखता ।”

“इस प्रकारसे भी महाराज ! तुम्हें समझना चाहिये, कि लोकमें यह सत्ता (= शक्ति ) ही भर है—‘ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है ० ब्रह्माके दायाद है ।’”

( २ ) “तो क्या मानते हो, महाराज ! यहाँ अत्रिय प्राणि-हिंसक, चोर, दुराचारी ०’ सिध्दादि हो; ( तो क्या ) काया छोट भरनेके बाद ०’ नरकमें उत्पन्न होगा या नहीं ? वहाँ तुम्हें कैसा होता है ?”

“हे कान्त्यायन ! अत्रिय भी यदि प्राणिहिंसक ० हो; तो वह ० नरकमें उत्पन्न होगा; ऐसा मुझे होता है; अर्हत्तोंसे भी मैंने यह सुना है ।”

“साधु, साधु ( ठीक ), महाराज ! ठीक ही तुम्हें महाराज ! ऐसा हो रहा है; और तुमने ठीक इसे अर्हत्तोंसे सुना है ।”

“तो क्या मानते हो महाराज ! यहाँ ब्राह्मण प्राणि-हिंसक ० । ० वैश्य प्राणि-हिंसक ० ० श्रद्धा प्राणि-हिंसक ०; हो; तो वह ० नरकमें उत्पन्न होगा या नहीं ? वहाँ तुम्हें कैसा होता है ?”

“हे कान्त्यायन ! श्रद्धा भी ० यदि प्राणि-हिंसक ० हो; तो वह ० नरकमें उत्पन्न होगा; ऐसा मुझे होता है; अर्हत्तोंसे भी मैंने यह सुना है ।”

“साधु, साधु, महाराज ! ठीक ही महाराज ! तुम्हें ऐसा हो रहा है; और तुमने ठीक इसे अर्हत्तोंसे सुना है ।

“तो क्या मानते हो, महाराज ! ऐसा होने पर यह चारों वर्ण सम-सम होते हैं या नहीं ? वहाँ तुम्हें कैसा होता है ?”

“जबूर, है कान्त्यायन ! ऐसा होनेपर यह चारों वर्ण सम-सम होते हैं; वहाँ कोई भेद मैं नहीं देखता ।”

“इस प्रकार भी महाराज ! तुम्हें समझना चाहिये, कि लोकमें यह सत्ता ही भर है—‘ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है ० ब्रह्माके दायाद है ।’”

( ३ ) “तो क्या मानते हो महाराज ! यहाँ कोई अत्रिय प्राणातिपातसे विरत हो, काम मिथ्याचार (= दुराचार ) से विरत हो, भ्रूपादाद ०, सुगन्धी ०, कटु वचन, बकवादसे विरत हो, अलोभी अ-द्वेषी, सम्मग-दृष्टि (= सभी धारणावाला ) हो; तो शरीरको जोड़ भरनेके बाद ( वह ) सुगति, स्वर्गलोकमें उत्पन्न होगा या नहीं ? वहाँ तुम्हें कैसा होता है ?

“हे कान्त्यायन ! अत्रिय भी यदि प्राणातिपातसे विरत हो, ० सम्मग-दृष्टि हो; तो ० स्वर्गलोकमें उत्पन्न होगा । ऐसा मुझे होता है । अर्हत्तोंसे भी मैंने यह सुना है ।”

“साधु, साधु महाराज ! ० तुमने ठीक ही इसे अर्हत्तोंसे सुना है ।



“तो क्या मानते हो महाराज ! यहाँ कोई ब्राह्मण ० । ० यहाँ कोई वैश्य ० । ० यहाँ कोई शूद्र प्राणातिपातसे विरत हो ० सम्पूर्ण-दृष्टि हो, तो ० स्वर्गलोकमें उत्पन्न होगा या नहीं ? ० ।

“ ० उत्पन्न होगा ० । ”

“साधु, साधु, महाराज ! ० । ”

“ ० महाराज ! ऐसा होने पर वह चारों वर्ण सम-सम होते हैं या नहीं ? ० ? ”

“जरूर, भो कात्यायन ! ० । ”

“इस प्रकार भी महाराज ! तुम्हें समझना चाहिये, कि लोकमें यह हल्ला ही भर है—  
‘ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है ० ब्रह्माके दायाद हैं’ ।

“तो क्या मानते हो महाराज ! कोई क्षत्रिय सेंध मारे, गाँव लूटे, चोरी करे, घटमारी करे, परस्त्रीगमन करे, उसे ( राज- ) पुरुष पकड़कर तुम्हें दिखलावें—‘देव ! यह तेरा चोर है अपराधी है, इसको जो इच्छा हो वह दंड दे’; तो तू उसे क्या करेगा ? ”

“हे कात्यायन ! मैं उसे प्राणदंड या काराबंधन या देश-निर्वासका दंड दूँगा, या वैसा कारण होगा वैसा करूँगा । सो किस हेतु ?—हे कात्यायन ! जो उसकी पहिले क्षत्रिय संज्ञा थी, वह अब अन्तर्धान हो गई; ( अब ) चोर ही उसकी संज्ञा है । ”

“तो क्या मानते हो महाराज ! कोई ब्राह्मण ० । ० वैश्य ० । ० शूद्र सेंध मारे ० तो तू उसे क्या करेगा ? ”

“हे कात्यायन ! मैं उसे ० दंड दूँगा, ० ( अब ) चोर ही उसका नाम है । ”

“तो क्या मानते हो, महाराज ! ऐसा होने पर, वह चारों वर्ण सम-सम होते हैं या नहीं ? ० ? ”

“जरूर, हे कात्यायन ! ० । ”

“इस प्रकार भी महाराज ! तुम्हें समझना चाहिये, कि लोकमें यह हल्ला ही भर है—  
‘ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है ० ब्रह्माके दायाद हैं’ । ( १ ) “तो क्या मानते हो, महाराज ! यहाँ कोई क्षत्रिय केश-दाढ़ी मुँहा कर कापाय बख पहिन घरसे बेघर (= अनागारिक) हो प्रमजित (= संन्यासी) हो; ( वह ) प्राणातिपातसे विरत, अद्विषादान ०, मृगवादासे विरत हो, एकाहारी ब्रह्मचारी, शीलवान् (= सदाचारी ) कल्याणधर्मा हो; तो उसके साथ तू क्या करेगा ? ”

“हे कात्यायन ! अमिवादान, प्रत्युत्थान करेंगे, आसन देंगे, चीवर-पिंडपात (= भिक्षा ) शयन-आसन-मलान-ग्रस्त्य (= पथ्य)-मैषज्य (= दवा ) प्रदान करेंगे, उसकी धार्मिक रक्षा=वरण = गुप्ति सन्पादित करेंगे । सो किस हेतु ?—हे कात्यायन ! जो उसकी पहिले क्षत्रिय संज्ञा थी, वह अब अन्तर्धान हो गई; ( अब ) क्षमणही उसकी संज्ञा है । ”

“ ० महाराज ! कोई ब्राह्मण ० । ० वैश्य ० । ० शूद्र केशदाढ़ी मुँहा कर ० प्रमजित हो; ० कल्याण-धर्मा (= पुण्यात्मा) हो; तो उसके साथ तू क्या करेगा ? ”

“हे कात्यायन ! अमिवादान ० ‘करेंगे ० उसकी धार्मिक रक्षा ० संपादित करेंगे । सो किस हेतु ?—हे कात्यायन ! जो उसकी शूद्र संज्ञा थी, वह अब अन्तर्धान हो गई; अब क्षमण ही उसकी संज्ञा है । ”

“तो क्या मानते हो, महाराज ! ऐसा होने पर चारों वर्ण सम-सम होते हैं, या नहीं ? ० ? ”

“जरूर, हे कात्यायन ! ० । ”

“इस प्रकार भी महाराज ! तुम्हें समझना चाहिये, कि लोकमें यह हल्ला ही भर है—  
‘ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है ० ब्रह्माके दायाद हैं’ ।

ऐसा कहनेपर ० राजा जर्बतिपुत्रने आयुष्मान् महाकात्यायनसे यह कहा—

“आश्चर्य ! हे कात्यायन ! आश्चर्य ! हे कात्यायन ! जैसे अधीको सीधा करदे ०<sup>१</sup> ऐसे ही आप कात्यायनने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया; यह मैं आप कात्यायन की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी । आप कात्यायन आजसे मुझे भंजलिबद्ध शरणागत डपालक स्वीकार करें ।”

“मत तुम, महाराज ! मेरी शरण जाओ । उसी भगवान्की तुम भी शरण जाओ, जिसकी शरण मैं गया हूँ ।”

“हे कात्यायन ! वह भगवान् अर्हत्, सम्यक्-संबुद्ध इस समय कहीं विहार कर रहे हैं !”

“महाराज ! वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध अब निर्वाणको प्राप्त हो गये ।”

“हे कात्यायन ! यदि उन भगवान्को दस योजन पर सुन पाते, तो हम दस योजन भी उन भगवान् ० के सम्बुद्धके दर्शनके लिये जाते ! ० बीस योजन ० । ० तीस योजन ० । ० चालीस योजन ० । ० पचास योजन ० । ० सौ योजन ० । क्योंकि हे कात्यायन ! वह भगवान् निर्वाणको प्राप्त हो गये, तो निर्वाण-प्राप्त भी उन भगवान्की हम शरण जाते हैं, धर्म और भिक्षु-संघकी भी । आजसे आप कात्यायन मुझे भंजलिबद्ध शरणागत डपालक धारण करें ।



## ८५-बोधि-राजकुमार-सुत्तन्त (२।१।५)

बुद्ध-जीवनी ( गृहत्यागसे बुद्धत्व-प्राप्ति तक )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् भर्मा ( देश ) में 'सुसुमारगिरिके भेस-पल्ला-वन, मृगदावमें विहार करते थे। उस समय बोधि-राजकुमारने अमण या ब्राह्मण या किसी भी मनुष्यसे न भोगे कोकनद् नामक प्रासादको हालहीमें बनवावा था। तब बोधि-राजकुमारने संजिका-पुत्र भाणवकको संबोधित किया—

“आओ तुम सौम्य ! संजिका-पुत्र ! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाओ। जाकर मेरे वचनसे, भगवान् के चरणोंमें शिरसे वन्दनाकर, आरोग्य, अन्-आर्तक, लघु-उल्बान ( = शरीरकी कार्य-क्षमता ) यत्न, अनुकूल विहार, पूछो—‘भन्ते ! बोधि-राजकुमार भगवान् के चरणोंमें शिरसे वन्दना कर आरोग्य • पूछता है’। और यह भी कहो—‘भन्ते ! भिक्षु-संघसहित भगवान्, बोधि-राजकुमारका कलका भोजन स्वीकार करें’।”

“अच्छा हो ( = भो )” कह संजिका-पुत्र भाणवक जहाँ भगवान् से, वहाँ गया। जाकर भगवान् से—“कुशल प्रश्न”—“पूछ, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठकर संजिका-पुत्र भाणवकने भगवान् से कहा—‘भो गौतम ! बोधि-राजकुमार आपके चरणोंमें • । • बोधिराज-कुमारका कलका भोजन स्वीकार करें’।”

भगवान् ने मीन द्वारा स्वीकार किया। तब संजिका-पुत्र भाणवक भगवान् की स्वीकृति जान, भासनसे उठ जहाँ बोधि-राजकुमार था, वहाँ गया। जाकर बोधि-राजकुमारसे बोला—

“आपके वचनसे मैंने उन गौतमसे कहा—‘भो गौतम ! बोधि-राजकुमार • । अमण गौतमने स्वीकार किया।”

तब बोधि-राजकुमारने उस रातके वीतनेपर अपने घरमें उत्तम खादनीय-भोजनीय ( पदार्थ ) तैयार करवा, कोकनद्-प्रासादको सखेद ( = अवदात ) धुस्तोसे सीढ़ीके नीचे तक बिछवा, संजिका-पुत्र भाणवकको संबोधित किया—

“आओ सौम्य ! संजिका-पुत्र ! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाकर भगवान् से काल कहो—‘भन्ते ! काल है, मात ( = भोजन ) तैयार हो गया’।”

“अच्छा भो !” “काल कहा” ।

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्रचीवर ले, जहाँ बोधि-राजकुमारका घर ( = निवेशन ) था, वहाँ गये। उस समय बोधि-राजकुमार भगवान् की प्रतीक्षा करता हुआ, द्वार-कोष्ठक

१ सुत्तार ( १-वि० भिर्वापुर ) ।

२ ब्राह्मण-तत्त्व ।

( = मौषतक्षाना ) के बाहर खड़ा था । बोधि-राजकुमारने दूरसे भगवान्‌को जाते देखा । देखते ही भगवानी कर भगवान्‌की वन्दनाकर, आगे भागे करके जहाँ कोकनद-प्रासाद था, वहाँ ले गया । तब भगवान्‌ निचली सीढ़ीके पास खड़े हो गये । बोधि-राजकुमारने भगवान्‌से कहा—“भन्ते ! भगवान्‌ पुस्तोंपर चढ़ें । सुगत ! पुस्तोंपर चढ़ें, ताकि ( यह ) चिरकाल तक मेरे हित और सुखके लिये हो ।”

ऐसा कहनेपर भगवान्‌ चुप रहे ।

दूसरी बार भी बोधि-राजकुमारने ० । तीसरी बार भी ० ।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान्‌ आनन्दकी ओर देखा । आयुष्मान्‌ आनन्दने बोधि-राजकुमारसे कहा—

“राजकुमार ! पुस्तोंको समेट लो । भगवान्‌ पाँचवे ( = चैल-पैकि ) पर न चढ़ेंगे । तथागत जानेवाली वनताका फ्याल कर रहे हैं ।”

बोधि-राजकुमारने पुस्तोंको समेटया कर, कोकनद-प्रासादके ऊपर आसन बिछवाये । भगवान्‌ कोकनद-प्रासादपर चढ़, संघके साथ बिठे आसनपर बैठे । तब बोधि-राजकुमारने कुक्षप्रसुख मिथुसंघको अपने हाथसे उत्तम खादवीय भोजनीय ( पदार्थों ) से संतर्पित किया, संतुष्ट किया । भगवान्‌के भोजन कर प्रायसे हाथ धोच लेनेपर, बोधिराजकुमार एक नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये बोधि-राजकुमारने भगवान्‌से कहा—

“भन्ते ! मुझे ऐसा होता है, कि सुखमें सुख प्राप्य नहीं, दुःखमें सुख प्राप्य है ।”

“राजकुमार ! बोधिले पहिले = कुक्ष न हो बोधि-सत्त्व होते समय, मुझे भी यही होता था—‘सुखमें सुख प्राप्य नहीं है, दुःखमें सुख प्राप्य है ।’ इसलिये राजकुमार ! मैं उस समय दूर ( = भव-वयम्ब ) ही, बहुत काले काले केजवाला, सुन्दर ( = मद्र ) यौवनके साथ ही, प्रयम वयसमें, माता-पिताके अल्पसुख होते, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुआ । इस प्रकार प्रव्रजित हो, जहाँ आलार-कालाम था, वहाँ गया । जाकर आलार-कालामसे कहा—‘आवुस कालाम ! इस धर्मविनयमें मैं ब्रह्मचर्य-वास करना चाहता हूँ ।’ ऐसा कहनेपर राजकुमार ! आलार-कालामने मुझे कहा—‘विहारो आयुष्मान्‌ ! यह ऐसा धर्म है, जिसमें विज्ञ ( = ज्ञानकार ) पुरुष जन्म ही अपने आचार्यत्वको स्वयं जान कर = साक्षात् कर = प्राप्त कर विहार करेगा ।’ सो मैंने जन्म ही = शिष्य ही उस धर्म ( = वात ) को पूरा कर लिया । तब मैं उतने ही ओठ-खुये मात्र = कहने कहाने मात्रसे, शानवाद और स्वविरवाद ( = वृद्धोंका सिद्धान्त ) कहने लगा—‘मैं जानता हूँ, देखता हूँ...’ । तब मेरे मनमें ऐसा हुआ—आलार-कालामने ‘इस धर्मको केवल श्रद्धासे स्वयं जान-कर = साक्षात् कर = प्राप्त कर, मैं विहरता हूँ’ यह मुझे नहीं बतलाया । जरूर आलार-कालाम इस धर्मको जानता देखता विहरता होगा । तब मैं जहाँ आलार-कालाम था, वहाँ गया । जाकर आलार-कालामसे पूछा—‘आवुस कालाम ! तुम इस धर्मको स्वयं जान कर = साक्षात् कर = प्राप्त कर ( = उपलप्य ) कहाँ पर्यन्त बतलाते हो ?’ ऐसा कहनेपर राजकुमार ! आलार-कालामने ‘आर्किचन्यापतन’ बतलाया ।

तब मुझे ऐसा हुआ—‘आलार-कालाम ही के पास श्रद्धा नहीं है, मेरे पास भी श्रद्धा है । आलार-कालामभीके पास वीर्य नहीं ० । ० स्मृति ० । ० समाधि ० । ० प्रज्ञा ० । क्यों न, जिस धर्मको आलार-कालाम—‘स्वयं जान कर = साक्षात् कर = प्राप्त कर विहरता हूँ’ कहता है, उस धर्मको साक्षात्कार करनेके लिये मैं भी उद्योग करूँ । सो मैं बिना देर किये = शिष्य ही उस धर्मको स्वयं जान कर = साक्षात् कर = प्राप्त कर विहरने लगा । तब मैंने राजकुमार ! ‘आलार-कालामसे कहा—‘आवुस कालाम ! तुम इतना ही इस धर्मको स्वयं जान कर ० हम लोगोंको बतलाते हो ?’—‘आवुस ! मैं इतना ही इस धर्मको स्वयं जान कर ० बतलाता हूँ ।’ आवुस !



इतना तो 'मैं भी इस धर्मको स्वयं जान कर ० विहरता हूँ।' आबुस ! हमें लाभ ! हमें सुलभ मित्रा, जो हम आधुम्मान् जैसे स-महाचारी (= गुरु-भाई) को देखते हैं। 'मैं जिस धर्मको स्वयं जान कर ० वतलाता (= उपदेश करता) हूँ, तुम भी उसी धर्मको स्वयं जान ० विहरते हो, तुम जिस धर्मको स्वयं ०, मैं भी उसी धर्मको ०। इस प्रकार मैं जिस धर्मको जानता हूँ, उस धर्मको तुम जानते हो। जिस धर्मको तुम जानते हो, उस धर्मको मैं जानता हूँ। इस प्रकार जैसे तुम, वैसा मैं, जैसा मैं, वैसे तुम हो। आबुस ! आबो अब हम दोनों ही इस गण (= जमात) को धारण करें।' इस तरह मेरा आचार्य होते हुये भी, आलार-कालामने मुझ अन्तेवासी (= शिष्य) को अपने बराबरके स्थानपर स्थापित किया, यद्ये सत्कार (= पूजा) से सत्कृत किया। तब मुझे यों हुआ—'यह धर्म न निर्वेद (= उदासीनता) के लिये है, न वैराग्यके लिये, न निरोधके लिये, न उपशम (= शांति) के लिये, न अभिज्ञा (= दिव्य-शक्ति) के लिये, न सम्मोधि (= परमज्ञान) के लिये, न निर्वाणके लिये है; 'आकिंचन्यापत्तन' तक उत्पन्न होनेहीके लिये (यह) है। सो मैं राजकुमार ! उस धर्मको अपवांस मान, उस धर्मसे उदास हो चल दिया।

"सो राजकुमार ! मैं 'नया कुसल (= अच्छा) है' की गवेषणा करता, सर्वोत्तम श्रेष्ठ क्षातिपद् को खोजता, वहाँ उड़क राम-पुत्र आ, वहाँ गया। जाकर उड़क (= उद्रक) राम-पुत्रसे बोला—'आबुस ! इस धर्म-विनयमें मैं महाचर्य पालन करना चाहता हूँ।' ऐसा कहनेपर राजकुमार ! उद्रक राम-पुत्र मुझसे बोला—

"विहरो आधुम्मान् ! यह वैसा धर्म है, जिसमें विज्ञ पुरुष जल्दही अपने आचार्यस्वको, स्वयं जान कर = साक्षात् कर = प्राप्त कर विहार करेगा। सो मैंने तुरन्त क्षिप्रही उस धर्मको पूरा कर लिया। सो मैं उतनेही ओठ-धुये-माथ्र = कहने कहाने मात्रसे ज्ञानवाद, और स्वविर-वाद कहने लगा—'मैं जानता हूँ, देखता हूँ...'। तब मुझे ऐसा हुआ—रामने मुझे यह न वतलाया 'मैं इस धर्मको केवल अदासे, स्वयं जान कर = साक्षात् कर = प्राप्त कर विहरता हूँ'। बरकर राम इस धर्मको जानते देखते विहरता होगा। तब 'उद्रक रामपुत्रने मैंने पूछा—'आबुस रामपुत्र ! इस धर्मको स्वयं जान ० ० वतलाते हो ?' ऐसा कहने पर ! उद्रक राम-पुत्रने 'नैवसंज्ञ-नासंज्ञ-यत्तन' वतलाया। तब मेरे (मन) में हुआ—'उद्रक रामपुत्रके पासही अद्वा नहीं है, मेरे पास भी अद्वा है ०। क्यों न ०। इस तरह मेरा आचार्य होते हुये उद्रक रामपुत्रने मुझ अन्तेवासीको अपने बराबरके स्थानपर स्थापित किया ०। ० सो मैं ! उस धर्मसे उदास हो चल दिया।

"राजकुमार ! 'नया अच्छा मैं' की गवेषणा करता (= किङ्कुसल-गवेषी), सर्वोत्तम, श्रेष्ठ क्षातिपद् को खोजते हुए, मगध में कमशः चारिका करते, जहाँ उरुवेला सेनानी-निगम (= ऋष्या) आ, वहाँ पहुँचा। वहाँ मैंने रमणीय भूमि-भाग, सुन्दर वन-संज्ञ, बहती नदी श्वेत... सुप्रतिष्ठित, चारों ओर रमणीय 'गोचर-आम देखा। तब मुझे राजकुमार ! ऐसा हुआ—'रमणीय है, हो ! यह भूमि-भाग ०। प्रधान-इच्छुक कुल-पुत्रके 'प्रधानके लिये यह बहुत ठीक (स्थान) है'। सो मैं 'प्रधानके लिये यह अच्छा (= ठीक) है, (सोच), वहीं बैठ गया। मुझे (उस समय) अद्भुत, अ-श्रुत-पूर्व, तीन उपमाओं मान हुई।—

(१) 'जैसे ! गीला काष्ठ भोगे (= सस्नेह) पानीमें डाला जाये। (कोई) पुरुष 'जाग बजाऊंगा,' 'तेज प्रादुर्भूत करूँगा' (सोच), 'उत्तरारणी लेकर आवे। तो क्या वह पुरुष गीले

१ शिक्षादन-योग्य पार्श्ववर्ती ग्राम। २ निर्वाण-प्राप्ति करानेवाली योग-शक्ति। ३ रण्य कर आम निवाकनेकी लक्षणी।

पानीमें पड़ी गोले काष्ठको उत्तरारणीको ले कर, मग्न कर अग्नि बना सकेगा, तेज प्रादुर्भूत कर सकेगा ?”

“नहीं मन्ते !”

“सो किस लिये ?” “( एक तो वह ) स्नेह-युक्त गोला काष्ठ है, फिर वह पानीमें डाला है ।” “ऐसा करनेवाला वह पुरुष सिर्फ बकावट, पीवाका ही भागी होगा ।”

“ऐसेही राजकुमार ! जो ब्राह्मण काया द्वारा काम-वासनाओंमें लग्न हो विचरते हैं । जो कुछ भी इनका काम (= वासनाओं) में काम-रुचि = काम-स्नेह = काम-मूर्छा = काम-पिपासा = काम-परिदाह है, वह यदि भीतरसे नहीं छूटा है, नहीं शमित हुआ है तो प्रयत्नशील होनेपर भी वह अमग्न-ब्राह्मण दुःख ( -द ) तीव्र, कटु, वेदना ( मात्र ) सह रहे हैं । वह ज्ञान-दर्शन अनुत्तर-संबोध (= परम-ज्ञान) के अपोम्य हैं ।

“राजकुमार ! यह सुझे पहिली अद्भुत, अश्रुत-पूर्व उपमा मान हुई ।

( २ ) “और भी राजकुमार ! सुझे दूसरी अद्भुत अ-श्रुत-पूर्व उपमा मान हुई । राजकुमार ! जैसे स्नेह-युक्त गोला काष्ठ जलके पास स्थलपर फेंका हो । और कोई पुरुष उत्तरारणी लेकर आये—‘अग्नि बनाऊँगा’ ‘तेज प्रादुर्भूत करूँगा’ । तो क्या समझते हो राजकुमार ! क्या वह पुरुष अग्नि बना सकेगा, तेज प्रादुर्भूत कर सकेगा ?”

“नहीं मन्ते !”

“सो किस लिये ?”

“( एक तो ) वह काष्ठ स्नेह-युक्त है, और पानीके पास स्थलपर फेंका हुआ भी है ।” “वह पुरुष सिर्फ बकावट, पीवा ( मात्र ) का ही भागी होगा ।”

“ऐसे ही, राजकुमार ! जो कोई अमग्न वा ब्राह्मण कायाके द्वारा वासनाओंसे लग्न हो विचरते हैं । ० अपोम्य हैं । राजकुमार ! सुझे यह दूसरी ० ।

( ३ ) “और भी राजकुमार ! तीसरी अद्भुत अ-श्रुत-पूर्व उपमा मान हुई ।—जैसे नीरस शुष्क काष्ठ जलसे दूर स्थलपर फेंका है । और कोई पुरुष उत्तरारणी लेकर आये—‘भाग बनाऊँगा’, ‘तेज प्रादुर्भूत करूँगा’ । तो क्या—” वह पुरुष नीरस-शुष्क, जलसे दूर फेंके काष्ठको, उत्तरारणीसे मग्न करके अग्नि बना सकेगा, तेज प्रादुर्भूत कर सकेगा ?

“हाँ मन्ते !”

“सो किस लिये ?”

“मन्ते ! वह नीरस सूखा काष्ठ है, और पानीसे दूर स्थलपर फेंका है ।”

“ऐसेही राजकुमार ! जो कोई अमग्न ब्राह्मण, कायाद्वारा काम-वासनाओंसे अलग हो विचरते हैं । और जो उनका काम-वासनाओंमें ० काम-परिदाह है, वह भीतरसे भी सुप्रहोण (= अच्छी तरह छूट गया ) है, सुशमित है । तो वह प्रयत्नशील अमग्न ब्राह्मण दुःख ( -द ), तीव्र, कटु वेदना नहीं भोगते । वह ज्ञान-दर्शन = अनुत्तर-संबोधके पात्र हैं । यदि वह प्रयत्नशील अमग्न ब्राह्मण दुःख, तीव्र, कटु वेदनाको भोगें भी, ( तो भी ) वह ज्ञान-दर्शन = अनुत्तर-संबोधके पात्र हैं । वह राजकुमार तीसरी ० ।

“तब राजकुमार ! मेरे ( मनमें ) हुआ—‘क्यों न मैं दाँतके ऊपर दाँत रख, जिह्वाद्वारा तालुको दबा, मनसे मनको निग्रह करूँ, दबाऊँ, संतुष्टि करूँ । तब मेरे दाँतपर दाँत रखने, जिह्वासे तालु दबाने, मनसे मनको पकड़ने, दबाने, तपानेमें, कौनसे धर्मीना निष्कलता वा, जैसे कि राजकुमार ! बलवान् पुरुष सीससे पकड़कर, कंधेसे पकड़कर, दुर्बल-तर पुरुषको पकड़े, दबाये, तपाये;



ऐसे ही राजकुमार ! मेरे दाँतपर दाँत • कौनसे पत्तीना निकलता था । उस समय मैंने न दबनेवाला वीर्य ( = उद्योग ) आरम्भ किया हुआ था, न भूली स्मृति बनी थी, काया भी तत्पर थी ।

“तब मुझे यह हुआ—क्यों न मैं स्वासरहित ध्यान करूँ ? सो मैंने राजकुमार ! मुख और नासिकासे आसका आना जाना रोक दिया । तब राजकुमार ! मेरे मुख और नासिकासे आभास-प्रधासके रुक जानेपर, कानके छिद्रोंसे निकलने वाली ( = हवाओं ) का बहुत अधिक शब्द होने लगा । जैसे कि—लोहारकी धौंकनीसे धौंकनेसे बहुत अधिक शब्द होता है; ऐसे ही • । • न दबनेवाला वीर्य आरम्भ किया हुआ था • ।”

“तब मुझे यह हुआ—क्यों न मैं आस-रहित ध्यान करूँ ? सो मैंने राजकुमार ! मुखसे • । तब मेरे मुख नासा और कर्णसे आभास-प्रधासके रुक जानेसे, मूर्धामें बहुत अधिक जल टकराते । जैसे बलवान् पुरुष तीक्ष्ण शिखरसे मूर्धा ( = शिर ) को मथे, ऐसे ही राजकुमार ! मेरे • ।

“तब मुझे यह हुआ—क्यों न आस-रहित ध्यान करूँ ?—सो मैंने मुख, नासा, कर्णसे आभास-प्रधासको रोक दिया । तब मुझे मुख, नासा, कर्णसे आभास-प्रधासके रुक जानेसे सीसमें बहुत अधिक सीस-वेदना ( = शिर-दर्द ) होती थी । • न दबाने वाला • ।”

“तब राजकुमार ! मुझे यह हुआ—क्यों न आस-रहित ही ध्यान करूँ ?—सो मैंने • । • रुक जानेपर बहुत अधिक घात पेट ( = कुक्षि ) को छेदने थे । जैसे कि दध्न ( = अतुर गो-घातक या गो-घातकका अन्तेवासी तेज गो-विकर्षण ( = छुरा ) से पेटको काटे; ऐसेही • । न दबाने-वाला • ।

“तब मुझे यह हुआ—‘क्यों न आस-रहित ही ध्यान ( फिर ) करूँ’ • । राजकुमार • । • कायामें अत्यधिक दाह होता था । जैसे कि दो बलवान् पुरुष दुर्बलतर पुरुषको अनेक बाहोंमें पकड़कर अंगारोंपर तपावें; चारों ओर तपावें; ऐसे ही • । न दबते • ।

“देवता भी मुझे कहते थे—‘अमण गौतम मर गया ।’ कोई कोई देवता यों कहते थे—‘अमण गौतम नहीं मरा, न मरेगा; अमण गौतम अर्हत् है । अर्हत्का तो इस प्रकारका विहार होता ही है ।

“...मुझे यह हुआ—‘क्यों न आहार को विल्कुल ही छोड़ देना स्वीकार करूँ । तब देवताओंने मेरे पास आकर कहा—भार्य ! तुम आहारका विल्कुल छोड़ना स्वीकार करो । इस तुम्हारे रोम-कूपोंद्वारा दिव्य-ओज ढाल देंगे; उसीसे तुम निर्वाह करोगे ।’” तब मुझे यह हुआ—मैं ( अपनेको ) लय तरहसे निराहारी जार्निगा और यह देवता रोमकूपोंद्वारा दिव्य ओज मेरे रोम-कूपोंके भीतर ढालेंगे; मैं उसीसे निर्वाह करूँगा । यह मेरा ( तप ) सृष्टा होगा । सो मैंने उन देवताओंका प्रत्याख्यान किया—‘रहने दो’ ।

“तब मुझे यह हुआ—क्यों न मैं थोड़ा थोड़ा आहार ग्रहण करूँ—पसर मर मूँग का जूस, या कुलभीका जूस या मटरका जूस, या अरहरका जूस—। सो मैं थोड़ा थोड़ा पसर पसर मूँगका जूस • ग्रहण करने लगा । थोड़ा थोड़ा पसर पसर मर मूँगका जूस • ग्रहण करते हुये, मेरा शरीर ( दुर्बलताकी ) चरम सीमाको पहुँच गया । जैसे आसोतिक ( = वनस्पति विशेष ) की गाँठें, “वैसे ही उस अव्य आहारसे मेरे अंग प्रत्यंग हो गये । उस अव्य आहारसे जैसे कैंटका पैर, वैसे ही मेरा कूड़ा ( = आनिसद् ) हो गया, • जैसे सूओंको पाँती ( = वटनावली ) वैसे ही ऊँचे नीचे मेरे पीठके फाँटे हो गये । • जैसे पुरानी शालाकी कड़ियाँ ( = टोड़े = मोपानसी ) अर्हण-ग्रहण ( = भोलुग-विलुग ) होती हैं, ऐसे ही मेरी पंमुलिया हो गई थी । जैसे गहरे कूपें ( = उदपान ) में पानीका तारा ( = उदक-तारा ) गहराईमें, बहुत दूर दिखाई देता है, उसी • । जैसे कच्चा

तोड़ा कच्चा लौका हवा-धूपसे चिचुक ( = संपुष्टि ) जाता है सुखा जाता है; ऐसे ही मेरे शिर-की खाल चिचुक गई थी, सुखा गई थी । ” राजकुमार ! यदि मैं पेटकी खालको मसलता, तो पीठके काँटोंको पकड़ लेता था, पीठके काँटोंको मसलता तो पेटकी खालको पकड़ लेता था । इस अल्पाहारसे मेरे पीठके काँटे और पेटकी खाल बिस्कुल सट गई थी । ” यदि मैं पाखाना या मूत्र करता, वहीं महाराकर ( = उपकुञ्ज ) गिर पड़ता था । जब मैं कायाको सहाराते ( = अस्वासेन्तो ) हुये, हाथसे मात्रको मसलता था, तो हाथसे राख मसलते वक्त, कायासे खो जव वाले ( = पुत्ति-मूल ) रोम झग पड़ते थे । ” मनुष्य भी सुख देखकर कहते थे—“श्रमण गौतम काला है” । कोई कोई मनुष्य कहते थे—“श्रमण गौतम काला नहीं है, श्याम है ।” कोई कोई मनुष्य यों कहते थे “श्रमण गौतम काला नहीं है, न श्याम ही है, मंगुर-वर्ण ( = मंगुरच्छवि ) है” । राजकुमार ! मेरा वैसा परिशुद्ध परिमज्जात ( = सफेद, मोरा ) छवि-वर्ण ( = चमड़ेका रङ्ग ) नष्ट हो गया था ।

“तब मुझे यों हुआ—अतीत कालमें जिन किन्हीं भ्रमणों ब्राह्मणों घोर दुःख, तीव्र और कटु वेदनायें सही, इतनेही पर्यन्त, ( सही होंगी ) इससे अधिक नहीं; मविष्य कालमें जो कोई भ्रमण ब्राह्मण घोर दुःख, तीव्र और कटु वेदनायें सहेंगे, इतने ही पर्यन्त, इससे अधिक नहीं । आजकल भी जो कोई भ्रमण ब्राह्मण घोर दुःख, तीव्र और कटु वेदना सह रहे हैं ० । लेकिन राजकुमार ! मैंने उस दुष्कर कारिकासे उत्तर—मनुष्य-वर्म ‘अलमार्थ-ज्ञान-दर्शन-विशेष न थावा । ( विचार हुआ ) बोधके लिये क्या कोई दूसरा मार्ग है ?

“तब राजकुमार ! मुझे यों हुआ—“मालूम है मैंने पिता ( शुद्धोदन ) शाक्यके सेतपर जामुनकी ठंडी छायाके नीचे, बैठ, काम और अकुशल-धर्मोंको हटाकर प्रथम ध्यानको प्राप्त हो, विहार किया था । शायद वह मार्ग बोधिका हो । तब राजकुमार ! मुझे यह हुआ—क्या मैं उस सुखसे डरता हूँ, जो सुख काम और अकुशल-धर्मोंसे निष्ठमें है । फिर मुझे, राजकुमार यह हुआ—मैं उस सुखसे नहीं डरता हूँ, जो सुख ० । तब मुझे, राजकुमार ! यह हुआ—इस प्रकार अत्यन्त कृश, पतले कायासे वह सुख मिलना सुकर नहीं, क्यों न मैं स्थूल आहार—मात-दाल ( = कुल्माष ) ग्रहण करूँ । सो मैं राजकुमार ! स्थूल आहार ओदन-कुल्माष ग्रहण करने लगा । उस समय राजकुमार ! मेरे पास पाँच मिश्रु ( इस आन्नासे ) रहा करते थे; कि भ्रमण गौतम जिस धर्मको प्राप्त करेगा, उसे इस लोगोंको ( भी ) बतलावेगा । लेकिन जब मैं स्थूल आहार ओदन कुल्माष ग्रहण करने लगा; तब वह पाँचों, मिश्रु, ‘श्रमण गौतम बाहुलिक, ( = बहुत संग्रह करनेवाला ) प्रधानसे विगुण, बाहुल्य पराधन हो गया’ ( समझ )-उदासीन हो, चले गये ।

“तब राजकुमार ! मैं स्थूल आहार ग्रहण कर, मजल हो काम और अकुशल-धर्मोंसे वर्जित, वितर्क तथा विचाररहित, एकाग्रतासे उत्पन्न ( = विवेकज ), प्रीति-सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा । वितर्क और विहारके उपशमित होनेपर, भीतरके संग्रहादन ( = प्रसन्नता ) = चित्तकी एकाग्रता-युक्त, वितर्क-विचार-रहित, समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा । ” “... प्रीति और विरागकी उपेक्षा कर, ‘स्थिति और संग्रहजन्यके साथ, कायासे सुखको अनुभव ( = प्रतिसंवेदन ) करता हुआ, विहरने लगा । जिसको कि आर्यजन उपेक्षक स्थितिमान् और सुखविहारी कहते हैं; ऐसे तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहार करने लगा । ”

“सुख और दुःखके विनाश ( = प्रहाण ) से, पहिलेही सामनस्य और दौर्मनस्यके पहिले



अज्ञ हो जानेसे, दुःख-रहित, सुख-रहित उपेक्षक हो, स्मृतिकी परिशुद्धतासे युक्त चतुर्थ ध्यान-को प्राप्त हो विहार करने लगा ।

( १ ) "तब इस प्रकार चित्तके परिशुद्ध = परि-ज्वदात, = अंगणरहित = उपक्लेश-रहित, स्रुतु हुये, काम-लाभक, स्थिर = अचलता-प्राप्त = समाधिप्राप्त हो जाने पर, पूर्वजन्मोंकी स्मृतिके ज्ञान ( = पूर्व-निवासानुस्मृति-ज्ञान ) के लिये चित्तको मैंने झुकाया । फिर मैं पूर्वकृत अनेक पूर्व-निधामों ( = जन्मों ) को स्मरण करने लगा—जैसे एक जन्म भी, दो जन्म भी, ... । आकार-रहित इदंश-रहित पूर्वकृत अनेक पूर्व-निवासोंको स्मरण करने लगा । इस प्रकार प्रमाद-रहित, तत्पर हो आत्म-संयमयुक्त विहारते हुये, सुप्ते रातके पहिले घाममें वह प्रथम विद्या प्राप्त हुई; अविद्या गई, विद्या आई; तब सष्ट हुआ, आलोक उत्पन्न हुआ ।

( २ ) "सो इस प्रकार चित्तके परिशुद्ध ० समाहित होनेपर, प्राणियोंके जन्म-मरणके ज्ञान ( = स्मृति-उत्पाद-ज्ञान ) के लिये मैंने चित्तको झुकाया । सो धनुष्य ( के नेत्रों ) से परेकी विशुद्ध दिव्य चक्षुसे, मैं अच्छे, बुरे, सुवर्ण, दुर्वर्ण, सु-गत, दुर्गत, मरते, उत्पन्न होते, प्राणियोंको देखने लगा । सो ० ... कर्मानुसार जन्मको प्राप्त प्राणियोंको जानने लगा । रातके बिचले पहर ( = घाम ) में वह द्वितीय विद्या उत्पन्न हुई । अविद्या गई ० ।

( ३ ) "सो इस प्रकार चित्तके ० । आसर्वों ( = चित्त-मल ) के स्वयं ज्ञानके लिये मैंने चित्तको झुकाया—सो 'यह 'दुःख है' इसे यथार्थसे जान लिया; 'यह दुःख समुदय है' इसे यथार्थसे जान लिया; 'यह दुःख-निरोध है' इसे यथार्थ से जान लिया; 'यह दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद् है' इसे यथार्थसे जान लिया । 'यह आसर्व है' इन्हें यथार्थसे जान लिया; 'यह आसर्व-समुदाय है' इसे ०, 'यह आसर्व-निरोध ०' 'यह आसर्व-निरोध = गामिनी-प्रतिपद् है' इसे ० । सो इस प्रकार जानते, इस प्रकार देखते, मेरा चित्त कामासर्वोंसे मुक्त हो गया, मवासर्वोंसे मुक्त होगया, अविद्यासर्वसे भी विमुक्त होगया । छूट ( = विमुक्त ) जानेपर 'छूट गया ( विमुक्त )' ऐसा ज्ञान हुआ । 'जन्म व्यतप्त हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना या सो कर लिया, अब बहर्हि लिये कुछ ( करणीय ) नहीं' इसे जाना । राजकुमार ! रातके पिछले घाममें वह तृतीय विद्या प्राप्त ० अविद्या गली गई ० । ०\* ।

"तब राजकुमार ! पंचवर्गीय भिक्षु मेरे द्वारा इस प्रकार उपदेक्षित हो = अनुशासित हो, अचिरहीमें जितके लिये कुल-पुत्र घरसे बेघर हो प्रयत्नित होते हैं, उस उत्तम ब्रह्मचर्य-फलको, इसी जन्ममें स्वयं जानकर = साक्षात् कर = उपलभकर, विहारने लगे ।"

ऐसा कहनेपर बोधि-राजकुमारने भगवाद्से कहा—

"भन्ते ! कितनी देरमें तद्यागत ( को ) विनायक ( = नेता ) या, भिक्षु जिसके लिये कुल-पुत्र घरसे बेघर हो प्रयत्नित होते हैं, उस उत्तम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं जान कर = साक्षात् कर = उपलभकर, विहारने लगेगा ?"

"राजकुमार ! तुमने ही यहाँ पूछा हूँ, जैसा तुमने ठीक लगे, वैसा बतला । हाथीवानी = अंकुश-ग्रहणके शिल्प ( = कला ) में चतुर है न ?"

"भन्ते ! हाँ मैं हाथीवानी ० में चतुर हूँ ।"

"तो राजकुमार ! यदि कोई पुरुष—'बोधि-राजकुमार हाथीवानी = अंकुश-ग्रहण-शिल्प जानता है, उसके पाससे हाथीवानी = अंकुश-ग्रहण शिल्पको सीखूँगा' ( सोचकर ) आवे । और

वह हो-अद्वारहित, ( तो क्या ) जितना अद्वारहित ( मनुष्य ) द्वारा पाया जा सकता है, ( उतना ) वह पावेगा ? वह हो बहुत-रोगी, ( तो क्या ) जितना अल्प-रोगी-द्वारा पाया जा सकता है, ( उतना ) वह पावेगा । ० पाठ मायावी ०, अशठ अमायावी ०, आलसी ०, ० निरालस ० । दुरुप्रज्ञ ०, प्रज्ञवान् ० तो राजकुमार ! क्या वह पुरुष तेरे पास हाथीवानी = अकुल-ग्रहण शिल्पको सीखेगा ? ”

“एक दोपसे भी युक्त पुरुष मेरे पास हाथीवानी = अकुल-ग्रहण शिल्प नहीं सीख सकता, पाँचों दोपोंसे युक्तके लिये तो कहना ही क्या ? ”

“तो राजकुमार ! यदि कोई मनुष्य ‘बोधि-राजकुमार हाथीवानी ० जानता है ० शिल्पको सीखेगा’ ( सोचकर ) जावे । वह हो अद्वारित ० ; अल्प-रोगी ० ; ० अशठ = अमायावी ० ; निरालस ० । तो राजकुमार ! क्या वह पुरुष तेरे पास हाथीवानी = अकुल-ग्रहण शिल्प सीख सकेगा ? ”

“भन्ते ! एक बातसे युक्त भी पुरुष मेरे पास ० । ”

“इसी प्रकार राजकुमार ! निर्वाण-साधना ( = प्रधान ) के भी पाँच अंग हैं । कौनसे पाँच ?—( १ ) मिथु अद्वालु हो, तथागतकी बोधि ( = परमज्ञान ) पर अद्वार करता हो—‘कि वह भगवान्, अर्हत्, सम्यक्संबुद्ध, विद्या-आचरण-संपन्न, सुगत, लोक-विदु, अन्-उत्तरपुरुष-दम्य-सारथी, देव-मनुष्यके शास्ता, बुद्ध, भगवान् हैं । ( २ ) अल्प-रोगी = अल्प-आतङ्की, न बहुत भीत, न बहुत उष्ण, साधनायोग्य, सम-विपाकवाली मध्यम प्रकृति ( = ग्रहणी ) से युक्त हो । ( ३ ) अशठ = अ-मायावी हो; शास्ता ( = गुरु ) और विज्ञ स-महाचारियोंमें, कुशल धर्मोंके उत्पादनमें निरालस हो; ( ४ ) कुशल धर्मोंमें कंधेसे जुड़ा न हटानेवाला, दृढ़-पराक्रमी बलिष्ठ हो । ( ५ ) उदय-प्रज्ञावान् हो, उदय-अल-गामिनी, आर्यनिर्वैदिक सम्यक् दुःख-क्षय-गामिनी प्रज्ञासे युक्त हो । राजकुमार ! प्रधानके यह पाँच अंग हैं ।

“राजकुमार ! इन पाँच प्रधानीय अंगोंसे युक्त मिथु, तथागतकी विनायक ( = नेता ) पा, अनुत्तर ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें प्राप्त वर्षोंमें, स्वयं जानकर = साक्षात्कर = प्राप्तकर विहरेगा । ”

“राजकुमार ! छोड़ो सात वर्ष; इन पाँच प्रधानीय अंगोंसे युक्त मिथु ०, छः वर्षोंमें । ० पाँच वर्षोंमें । ० चार वर्षोंमें । ० तीन वर्षोंमें । ० दो वर्षोंमें । ० एक वर्षमें । ० सात मासमें । ० पाँच मासमें । ० चार मासमें । ० तीन मासमें । ० दो मासमें । ० एक मासमें । ० सात रात-दिनमें । ० छः रात-दिनमें । ० पाँच रात-दिनमें । ० चार रात-दिनमें । ० तीन रात-दिनमें । ० दो रात-दिनमें । ० एक रात-दिनमें ।

“छोड़ो राजकुमार ! एक रात-दिन; इन पाँच प्रधानीय अंगोंसे युक्त मिथु, तथागतकी विनायक पा, सायंकालको अनुशासन किया, प्रातःकाल विशेष ( = निर्वाणपद ) को प्राप्त कर सकता है, प्रातः अनुशासित सायं विशेष प्राप्त कर सकता है । ”

ऐसा कहनेपर बोधि-राजकुमार बोला—“अहो ! बुद्ध !! अहो ! धर्म !! अहो ! धर्मका स्वाध्यात-पन ( = उत्तम वर्णन ) !! जहाँ कि सायं अनुशासित प्रातः विशेषको पा जाये, प्रातः अनुशासित सायं विशेषको पा जाये । ”

ऐसा बोलनेपर संजिका-पुत्रने बोधि-राजकुमारसे कहा—“ऐसाही है, हे भवान् बोधि !—‘अहो ! बुद्ध !! अहो ! धर्म !!, अहो ! धर्मका स्वाध्यात-पन ।’ ( यह ) तुम कहते हो; तो भी इस धर्म और मिथु-संघकी धारण नहीं जाते ? ”



अस्य हो जानेसे, दुःख-रहित, सुख-रहित उपेक्षक हो, स्मृतिकी परिशुद्धतासे सुक्त चतुर्थ ध्यान-को प्राप्त हो विहार करने लगा ।

( १ ) "तब इस प्रकार चित्तके परिशुद्ध = परि-अवदात, = अंगाररहित = उपक्लेश-रहित, सुदु हुये, काम-लायक, स्थिर = अचलता-प्राप्त = समाधिप्राप्त हो जाने पर, पूर्वजन्मोंकी स्मृतिके ज्ञान (= पूर्व-निवासानुस्मृति-ज्ञान) के लिये चित्तको मैंने शुद्धाया । फिर मैं पूर्वकृत अनेक पूर्व-निवासों (= जन्मों) को स्मरण करने लगा—जैसे एक जन्म भी, दो जन्म भी, ... । जाकार-सहित ब्रह्म-सहित पूर्वकृत अनेक पूर्व-निवासोंको स्मरण करने लगा । इस प्रकार ब्रमाव-रहित, तत्पर हो आत्म-संयमयुक्त विहरते हुये, मुझे रातके पहिले याममें यह प्रथम विद्या प्राप्त हुई; अविद्या गई, विद्या आई; तम नष्ट हुआ, आलोक उत्पन्न हुआ ।

( २ ) "सो इस प्रकार चित्तके परिशुद्ध ० समाहित होनेपर, प्राणियोंके जन्म-मरणके ज्ञान (= व्युत्ति-उत्पाद-ज्ञान) के लिये मैंने चित्तको शुद्धाया । सो मनुष्य ( के नेत्रों ) से परेकी विशुद्ध दिव्य वस्तुये, मैं अच्छे, ठूरे, सुवर्ण, दुर्बर्ण, सु-गत, दुर्गत, भरते, उत्पन्न होते, प्राणियोंको देखने लगा । सो ० "कर्मोत्तार जन्मको प्राप्त प्राणियोंको जानने लगा । रातके बिचले पहर (= याम) में यह द्वितीय विद्या उत्पन्न हुई । अविद्या गई ० ।

( ३ ) "सो इस प्रकार चित्तके ० । आकाशों (= चित्त-मल) के लयके ज्ञानके लिये मैंने चित्तको शुद्धाया—सो 'यह दुःख है' इसे यथार्थसे जान लिया; 'यह दुःख समुदाय है' इसे यथार्थसे जान लिया; 'यह दुःख-निरोध है' इसे यथार्थ से जान लिया; 'यह दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद् है' इसे यथार्थसे जान लिया । 'यह आकाश है' इन्हें यथार्थसे जान लिया; 'यह आकाश-समुदाय है' इसे ०, 'यह आकाश-निरोध ०' 'यह आकाश-निरोध = गामिनी-प्रतिपद् है' इसे ० । सो इस प्रकार जानते, इस प्रकार देखते, मेरा चित्त कामाक्ष्योंसे मुक्त हो गया, भवाक्ष्योंसे मुक्त होगया, अविद्याक्षयसे भी विमुक्त होगया । छूट (= विमुक्त) जानेपर 'छूट गया ( विमुक्त )' ऐसा ज्ञान हुआ । 'जन्म क्षतम हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना था सो कर लिया, अब यहाँके लिये कुछ ( करणीय ) नहीं' इसे जाना । राजकुमार ! रातके पिछले याममें यह तृतीय विद्या प्राप्त ० अविद्या चली गई ० । ०<sup>१</sup> ।

"तब राजकुमार ! पंचवर्गीय मिथु मेरे द्वारा इस प्रकार उपदेशित हो = अनुशासित हो, अचिरदीर्घमें जिसके लिये कुल-पुत्र घरसे बेघर हो प्रमजित होते हैं, उस उत्तम ब्रह्मचर्य-फलको, इसी जन्ममें स्वयं जानकर = साक्षात् कर = उपलानकर, विहरने लगे ।"

ऐसा कहनेपर बोधि-राजकुमारने मगवानसे कहा—

"भन्ते ! कितनी देरमें तचागत ( को ) विनायक (= नेता ) था, मिथु जिसके लिये कुल-पुत्र घरसे बेघर हो प्रमजित होते हैं, उस उत्तम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं जान कर = साक्षात् कर = उपलानकर, विहरने लगेगा ?"

"राजकुमार ! तुमसे ही यहाँ पूछा है, जैसा तुमने ठीक लगे, वैसा बतला । हाथीवानी = अंकुश ग्रहणके शिल्प (= कला) में तू चतुर है न ?"

"भन्ते ! हाँ मैं हाथीवानी ० में चतुर हूँ ।"

"तो राजकुमार ! यदि कोई पुरुष—बोधि-राजकुमार हाथीवानी = अंकुश-ग्रहण-शिल्प जानता है, उसके पाससे हाथीवानी = अंकुश-ग्रहण शिल्पको सीखूँगा ( सोचकर ) आवे । और

वह हो-अद्वारहित, ( तो क्या ) जितना अद्वा-सहित ( मनुष्य ) द्वारा पाया जा सकता है, ( उतना ) वह पावेगा ? वह हो बहुत-रोगी, ( तो क्या ) जितना अल्प-रोगी-द्वारा पाया जा सकता है, ( उतना ) वह पावेगा । ० अठ मायावी ०, अशठ अमायावी ०, आलसी ०, ० निरालस ० । दुःप्रश्न ०, प्रशवान् ० तो राजकुमार ! क्या वह पुरुष तेरे पास हाथीवानी = अंकुश-ग्रहण शिल्पको सीखेगा ? ”

“एक दोपसे भी युक्त पुरुष मेरे पास हाथीवानी = अंकुश-ग्रहण शिल्प नहीं सीख सकता, पाँचों दोपोंसे युक्तके लिये तो कहना ही क्या ? ”

“तो राजकुमार ! यदि कोई मनुष्य ‘बोधि-राजकुमार हाथीवानी ० जानता है ० शिल्पको सीखेगा’ ( सोचकर ) आवे । वह हो अद्वावान् ०; अल्प-रोगी ०; ० अशठ = अमायावी ०; निरालस ० । तो राजकुमार ! क्या वह पुरुष तेरे पास हाथीवानी = अंकुश-ग्रहण शिल्प सीख सकेगा ? ”

“मन्ते ! एक बातसे युक्त भी पुरुष मेरे पास ० । ”

“इसी प्रकार राजकुमार ! निर्वाण-साधना (= प्रधान ) के भी पाँच अंग हैं । कौनसे पाँच ?—( १ ) भिक्षु अद्वालु हो, तथागतको बोधि (= परमज्ञान ) पर अद्वा करता हो—‘कि वह भगवान्, अर्हत्, सम्यक्-संबुद्ध, विद्या-आचरण-संपन्न, सुगत, लोक-विद, अनु-उत्तरपुरुष-दम्य-सारथी, देव-मनुष्यके शास्त्रा, बुद्ध, भगवान् हैं । ( २ ) अल्प-रोगी = अल्प-आतङ्की, न बहुत शीत, न बहुत उष्ण, साधनायोग्य, सम-विपाकवाली मध्यम प्रकृति (= ग्रहणी ) से युक्त हो । ( ३ ) अ-शठ = अ-मायावी हो; शाका (= गुरु ) और विल स-मल्लचारियोंमें, कुशल धर्मीके उत्पादनमें निरालस हो; ( ४ ) कुशल धर्मोंमें कंधेसे जुड़ा न हटानेवाला, द्य-पराक्रमी बलिष्ठ हो । ( ५ ) उदय-प्रशवान् हो, उदय-अल-गामिनी, आर्यनिर्वैधिक सम्यक्-दुःख-अप-गामिनी प्रज्ञासे युक्त हो । राजकुमार ! प्रधानके यह पाँच अंग हैं ।

“राजकुमार ! इन पाँच प्रधानीय अंगोंसे युक्त भिक्षु, तथागतको विनायक (= नेता ) पा, अनुत्तर ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें प्राप्त वर्षोंमें, स्वयं जानकर = साक्षात्कर = प्राप्तकर विहरेगा । ”

“राजकुमार ! ढोहो सात वर्ष, इन पाँच प्रधानीय अंगोंसे युक्त भिक्षु ०, छः वर्षोंमें । ० पाँच वर्षोंमें । ० चार वर्षोंमें । ० तीन वर्षोंमें । ० दो वर्षोंमें । ० एक वर्षोंमें । ० सात मासमें । ० छः मासमें । ० पाँच मासमें । ० चार मासमें । ० तीन मासमें । ० दो मासमें । ० एक मासमें । ० सात रात-दिनमें । ० छः रात-दिनमें । ० पाँच रात-दिनमें । ० चार रात-दिनमें । ० तीन रात-दिनमें । ० दो रात-दिनमें । ० एक रात-दिनमें ।

“ढोहो राजकुमार ! एक रात-दिन, इन पाँच प्रधानीय अंगोंसे युक्त भिक्षु, तथागतको विनायक पा, सार्यकालको अनुशासन किया, प्रातःकाल विशेष (= निर्वाणपद) को प्राप्त कर सकता है, प्रातः अनुशासित सार्य विशेष प्राप्त कर सकता है । ”

ऐसा कहनेपर बोधि-राजकुमार बोला—“अहो ! बुद्ध !! अहो ! धर्म !! अहो ! धर्मका स्वाक्यात-पन (= उत्तम वर्णन ) !! जहाँ कि सार्य अनुशासित प्रातः विशेषको पा जाये, प्रातः अनुशासित सार्य विशेषको पा जाये । ”

ऐसा बोलनेपर संजिका-पुत्रने बोधि-राजकुमारसे कहा—“ऐसाही है, हे भवान् बोधि !—‘अहो ! बुद्ध !! अहो ! धर्म !!, अहो ! धर्मका स्वाक्यात-पन ।’ ( यह ) तुम कहते हो; तो भी इस धर्म और भिक्षु-संघकी शरण नहीं जाते । ”



“सौम्य ! संज्ञिका-पुत्र ! ऐसा मत कहो । सौम्य ! संज्ञिका-पुत्र ! ऐसा मत कहो । सौम्य ! संज्ञिका-पुत्र ! मैंने अय्या (= आय्या) के मुँहसे सुना, ( उन्हींके ) मुखसे ग्रहण किया है । सौम्य ! संज्ञिका-पुत्र एकवार भगवान् कौशाम्बीमें बोधिताराममें विहार करते थे । तब मेरी गर्भवती अय्या जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई, जाकर भगवान्से अभिवादन कर एक ओर बैठ गई । एक ओर बैठी मेरी अय्याने भगवान्से यों कहा—“भन्ते ! जो मेरे कोषमें यह कुमारी या कुमार है, वह भगवान्की, धर्मकी और भिक्षु-संघकी शरण जाता है । आजसे भगवान् इसे साजलि शरणागत उपासक धारण करें ।

“सौम्य ! संज्ञिका-पुत्र ! एकवार भगवान् यहीं भर्गमें सुंसुमार-गिरिके भेषकलावन सुगदावमें विहरते थे, तब मेरी धाई (= धाती ) सुझे गोदमें लेकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खड़ी होगई । एक ओर खड़ी हुई मेरी धाईने भगवान्से कहा—भन्ते यह बोधि-रामकुमार भगवान्को, धर्मकी, और भिक्षु-संघकी ०

“सौम्य ! संज्ञिकापुत्र ! यह मैं तीसरी बार भी भगवान्की, धर्मकी और भिक्षु-संघकी शरण जाता हूँ । आजसे भगवान् सुझे साजलि शरणागत उपासक धारण करें ।”

## ८६—अंगुलिमाल-सुत्तन्त ( २।४।६ )

अंगुलिमालका जीवन-परिवर्त ( लबरेका मूला ग्रामको रास्ते पर )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् आवस्तीमें अनाथ-पिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय राजा प्रसेनजित्के राज्यमें रुद्र, जोहित-पाणि, मार-काटमें संलग्न, प्राणि-भूतोंमें दवा-रहित अंगुलिमाल नामक डाहू ( = चोर ) था । उसने ग्रामोंको भी अ-ग्राम कर दिया था, निगमोंको भी अ-निगम ०, जन-पदको भी अ-जनपद ० । तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर, पात्र-चीवर ले आवस्तीमें पिंडके लिये प्रविष्ट हुए । आवस्तीमें पिंड-चार करके भोजन बाद..... शवनासन समाप्त, पात्र-चीवर ले जहाँ, डाहू अंगुलिमाल रहता था, उसी रास्ते चले । गोपालकों, पशुपालकों, कृषकों, राहगीरोंने भगवान्को, जिवर डाहू अंगुलिमाल था, उसी रास्तेपर ( जाते ) हुये देखा । देखकर भगवान्से यह कहा—

“अत भ्रमण ! इस रास्ते जाओ । इस मार्गमें भ्रमण ! ० अंगुलिमाल नामक डाहू रहता है । उसने ग्रामोंको भी अ-ग्राम ० । वह मनुष्योंको मार मारकर अंगुलिओंकी माला पहनता है । इस मार्गपर भ्रमण ! त्रिस पुरुष, तीस पुरुष, चालीस ०, पचास पुरुष तक इकट्ठा होकर जाते हैं, वह भी अंगुलिमालके हाथमें पड़ जाते हैं ।”

ऐसा कहनेपर भगवान् मौन धारण कर चलते रहे ।

दूसरी बार भी गोपालकों ० । तीसरी बार भी गोपालकों ० ।

डाहू अंगुलिमालने दूरसे ही भगवान्को आते देखा । देखकर उसको यह हुआ—“आश्चर्य है जी ! अद्भुत है जी ( = मां ) !! इस रास्ते दस पुरुष मां, ० पचास पुरुष भी इकट्ठा होकर चलते हैं, वह भी मेरे हाथमें पड़ जाते हैं । और यह भ्रमण अकेला-अद्वितीय मानों मेरा तिरस्कार करता आ रहा है । क्यों न मैं इस भ्रमणको जानसे मार दूँ ।” तब डाहू अंगुलिमाल दाल-तलवार ( = असि-चर्म ) लेकर तौर-तलुष चढ़ा, भगवान्के पीछे चला । तब भगवान्ने इस प्रकारका योग-फल प्रकट किया, कि डाहू अंगुलिमाल सामूली चालसे चलते भगवान्को सारे वेगसे दौड़कर भी न पा सकता था । तब डाहू अंगुलिमालको यह हुआ—“आश्चर्य है जी ! अद्भुत है जी !! मैं पहिले दौड़ते हुये हाथीको भी पीछा करके पकड़ लेता था, ० घोड़ोंको भी ०, ० रथोंको भी ०, ० मृगोंको भी पीछा करके पकड़ लेता था । किन्तु, सामूली चालसे चलते इस भ्रमणको, सारे वेगसे दौड़कर भी नहीं पा सकता हूँ ।” सबा होकर भगवान्से बोला—

“सदा रह, भ्रमण !”

“मैं स्थित ( = लबा ) हूँ अंगुलिमाल ! तू भी स्थित हो ।”

तब डाहू अंगुलिमालको यह हुआ—“यह शाक्य-पुत्रीय भ्रमण सत्यवादी सत्य-प्रतिज्ञ ( होते हैं ), किन्तु यह भ्रमण जाते हुये भी ऐसा कहता है—‘मैं स्थित हूँ ० ।’ क्यों न मैं इस भ्रमणसे दूँ । तब ० अंगुलिमालने गाथाओंमें भगवान्से कहा—



“अमण ! जातं दुधे स्थितं हूँ ।” कहता है, मुझ खड़े हुयेको अस्थित कहता है ।

अमण ! तुझे यह बात प्युछता हूँ ‘कैसे तू स्थित और मैं अस्थित हूँ ?’ ॥१॥”

“अंगुलिमाल ! सारे प्राणियोंके प्रति दंड डोहनेसे मैं सर्वदा स्थित हूँ ।

तू प्राणियोंमें अ-संयमी है, इसलिये मैं स्थित हूँ, और तू अ-स्थित है ॥२॥”

“मुझे महर्षिका पूजन किये देर हुई, यह अमण महावनमें मिल गया ।

तो मैं धर्मयुक्त गाथाको सुनकर धिरकालके पापको छोड़ूँगा” ॥३॥

इस प्रकार बाहुने तलवार और हथियार छोड़, प्रपात और नालेमें फेंक दिये ।

बाहुने सुगतके पैरोंकी वन्दना की, और वहाँ उनसे प्रव्रज्या माँगी ॥४॥

बुद्ध कल्याणय महर्षि, जो देवों सहित लोगके शास्ता (= गुरु ) हैं ।

उसको ‘आ मित्रु’ बोले, यही उसका संन्यास हुआ ॥५॥

तब भगवान् आलुप्मान् अंगुलिमालको अनुगामी-अमण बना जहाँ आवस्ती थी वहाँ, चारिकाके लिये चले । कमजोर चारिका करते जहाँ आवस्ती थी, वहाँ पहुँचे । आवस्तीमें भगवान् अनाथ-पिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे । उस समय राजा प्रसेनजित् कोसलके<sup>१</sup> अन्तःपुरके द्वारपर बड़ा जन-समूह एकत्रित था । कोलाहल (= उध-शब्द, महाशब्द ) हो रहा था—  
‘देव ! तेरे राज्यमें ० अंगुलिमाल नामक डाकू है । उसने ग्रामोंको भी अ-ग्राम ० । वह मनुष्योंको मार कर अंगुलियोंकी माला पहनता है । देव ! उसको रोक ।’

तब राजा प्रसेनजित् कोसल पाँच सौ घोड़-सवारोंके साथ भयान्त्रको आवस्तीमें निकल ( और ) जिधर आराम था, उधर गया । जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जा, यानसे उतर पैदल जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठा । एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कोसलसे भगवान्ने कहा—

“क्या महाराज ! तुझपर राजा मागध अंगिक शिष्यसार विगता है, या वैशालिक लिच्छवि, या दूसरे विरोधी राजा ?”

“मन्ते ! न मुझपर राजा मागध ० विगता है ० । मन्ते ! मेरे राज्यमें ० अंगुलि-माल नामक डाकू ० । मन्ते ! मैं उसीको निवारण करने जा रहा हूँ ।”

“महि महाराज ! तू अंगुलि-मालको केज-स्मृ मुँवा, कापाय-वक्ष पहिन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुआ, प्राण-हिंसा-विरत, अदत्तादान-विरत, सृपावाद-विरत, एकाहारी, मद्यचारी, शीलवान्, धर्मात्मा देले, तो उसको क्या करे ?”

“हम मन्ते ! प्रत्युत्थान करेंगे, आसनके लिये निमंत्रित करेंगे, चीवर, पिंड-पात, शयनासन, मलान-प्रत्यय, भोजन्य परिष्कारोंसे निमंत्रित करेंगे; और उनकी धार्मिक रक्षा = जावरण = गुंसी करेंगे । किंतु मन्ते ! उस दुःशील पापीको ऐसा शील-संयम कहाँसे होगा ?”

उस समय आलुप्मान् अंगुलिमाल भगवान्के अ-विदूर बैठे थे । तब भगवान्ने दाहिनी बाँहको पकड़ कर राजा प्रसेनजित् कोसलसे कहा—

“महाराज ! यह है अंगुलिमाल ।”

तब राजा प्रसेनजित् कोसलको, भय हुआ, स्तब्धता हुई, रोमांच हुआ । तब भगवान्ने राजा प्रसेनजित् कोसलसे यह कहा—

“मत डरो, महाराज ! मत डरो महाराज ! ( अथ ) इससे तुझे भय नहीं है ।” तब राजा

<sup>१</sup> नगरके भीतरी भागमें राजाके महल आदि होते थे, इसकी अन्तःपुर, या राक्कुल कहा जाता था ।

प्रसेनजित् कोसलको जो भय ० था, वह विलीन होगया ।

तब राजा प्रसेनजित् कोसल, जहाँ आयुष्मान् अंगुलिमाल थे, वहाँ गया । जाकर आयुष्मान् अंगुलिमालसे बोला—

“आर्य अंगुलिमाल हैं ?”

“हाँ, महाराज !”

“आर्यके पिता किस गोत्रके, और माता किस गोत्रकी ?”

“महाराज ! पिता गार्ग्य, माता मैत्रायणी ।”

“आर्य गार्ग्य मैत्रायणी-पुत्र अभि-रक्षण करें । मैं आर्य गार्ग्य मैत्रायणी-पुत्रको चोबर, पिंड-पात, शयनासन, मलान-प्रत्यय-भेषज्य परिष्कारोंसे सेवा करूँगा ।”

उस समय आयुष्मान् अंगुलिमाल आरप्यक, पिंडपातिक, पशु-हृलिक, वैचीवरिक थे । तब आयुष्मान् अंगुलिमालने राजा प्रसेनजित् कोसलसे कहा—

“महाराज ! मेरे तीनों चोबर पूरे हैं ।”

तब राजा प्रसेनजित् कोसल जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्को अभि-वादन कर एक ओर बैठा । एक ओर बैठ—“भगवान्से यह बोला—

“आर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते !! कैसे भन्ते ! भगवान् जवान्तोंको दमन करते, अज्ञातोंको शमन करते, अ-परिनिवृत्तोंको परिनिर्वाण कराते हैं । भन्ते ! जिनको हम दंडसे भी दमन न कर सके, उनको भन्ते ! भगवान्ने बिना दंडके, बिना शस्त्रके दमन कर दिया । अच्छा, भन्ते ! हम जाते हैं, हम बहु-हृल्य = बहु-करणीय (= बहुत कामवाले ) हैं ।”

“जिसका महाराज ! तू काल समझता है ( वैसा कर ) ।”

तब राजा प्रसेनजित् कोसल आसनसे उठकर भगवान्को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया ।

तब आयुष्मान् अंगुलिमाल पूर्वाह्न समय पहिनकर, पात्र-चीवर ले आवलीमें पिंडके लिये प्रविष्ट हुये । आवलीमें बिना छदरे, पिंड-चार करते आयुष्मान् अंगुलिमालने एक स्त्रीको मृद-गर्भा = विघात-गर्भा (= मरे गर्भवाली ) देखा । देखकर उनको यह हुआ—“हा ! प्राणी दुःख पा रहे हैं !! हा ! प्राणी दुःख पा रहे हैं ।” तब आयुष्मान् अंगुलिमाल आवलीमें पिंड-चार करके भोजनो-परान्त—“जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् अंगुलिमालने भगवान्से कहा—

“मैं भन्ते ! पूर्वाह्न समय पहिन कर, पात्र-चीवर ले आवलीमें पिंडके लिये प्रविष्ट हुआ । आवलीमें ० मैंने एक स्त्रीको मृद-गर्भा ० देखा । ‘० हा ! प्राणी दुःख पा रहे हैं ।’

“तो अंगुलिमाल ! जहाँ वह स्त्री है, वहाँ जा । जाकर उस स्त्रीसे कह—भगिनि ! यदि मैं जन्मसे, जानकर प्राणि-वध करना नहीं जानता, ( तो ) उस सत्यसे तेरा मंगल हो; गर्भका मंगल हो ।”

“भन्ते ! वह तो निश्चय मेरा जान कर छूट बोलना होगा । भन्ते मैंने जान कर बहुतसे प्राणि-वध किये हैं ।”

“अंगुलिमाल ! तू जहाँ वह स्त्री है वहाँ—जाकर यह कह—‘भगिनि ! यदि मैंने आर्य-जन्ममें पैदा हो ( कर ) जान कर प्राणि-वध करना नहीं जाना, ( तो ) इस सत्य से ० ।”

“अच्छा भन्ते !”—आयुष्मान् अंगुलिमालने—जाकर उस स्त्रीसे कहा—

“भगिनि ! यदि मैंने आर्य जन्ममें पैदा हो, जान कर प्राणि-वध ० ।”



तब लौका मंगल होगया, गर्भका भी मंगल होगया ।

आयुष्मान् अंगुलिमाल एकाकी...अप्रमत्त = उद्योगी संयमी हो विहार करते न-चिरमें ही, जिसके लिये कुल-मुक्त...प्रव्रजित होते हैं, उस सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं जान कर = साक्षात्कार कर = प्राप्त कर विहार करने लगे । 'जन्म क्षय होगया, ब्रह्मचर्य-पालन हो चुका, करना था सो कर लिया, अब और करनेको यहाँ नहीं है' (इसे) जान लिया । आयुष्मान् अंगुलिमाल अर्थात्तमें एक हुये ।

आयुष्मान् अंगुलिमाल पूर्वाह्न समय पहिन कर, पात्र-चीवर ले, श्रावस्तीमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुये । किसी दूसरेका फेंका डेला आयुष्मान्के शरीरपर लगा, दूसरेका फेंका डंडा ० ; दूसरेका फेंका कंकण ० । तब आयुष्मान् अंगुलिमाल बहते-खून, फटे-शिर, टूटे-पात्र, फटी संघाटीके साथ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । भगवान्ने दूरसे ही आयुष्मान् अंगुलिमालको आते देखा । देखकर आयुष्मान् अंगुलिमालने कहा—

“माद्वय ! तूने कबूल कर लिया । माद्वय ! तूने कबूल कर लिया । जिस कर्म-फलके लिये अनेक सौ वर्ष, अनेक हजार वर्ष, नर्कमें पचना पड़ता, उस कर्म-विपाकको माद्वय ! तू इसी जन्ममें भोग रहा है ।”

तब आयुष्मान् अंगुलिमालने एकान्तमें ध्यानावस्थित हो विमुक्त-मुक्तको अनुभव करते, उसी समय यह उद्घान कहा—

“जो पहिले अर्जित कर पीछे, उसे मार्जित करता है ।

वह मेघसे झुक चन्द्रमाकी भाँति इस लोकको प्रभासित करता है ॥ १ ॥

जितका किया पाप-कर्म पुण्य (= कुशल) से ढँका जाता है ।

वह मेघसे मुक्त ० ॥ २ ॥

जो संसारमें तरुण भिष्ट बुद्ध-शासनमें लुटता है । वह ० ॥ ३ ॥

दिशायेँ मेरी धर्म-कथाको सुनें, दिशायेँ मेरे बुद्ध-शासनमें लुँएँ ।

वह संत पुरुष दिशाओंको सेवन करें, जो धर्मके लिये ही प्रेरित करते हैं ॥ ४ ॥

दिशायेँ मेरे श्रुति-वादियों, मैत्री-प्रशंसकोंके धर्मको;

समयपर सुनें, और उसके अनुसार चलें ॥ ५ ॥

वह मुझे या दूसरे किसीको भी नहीं झारेगा ।

( वह ) धर्म श्रुतिको पाकर स्थावर जंगमकी रक्षा करेगा ॥ ६ ॥

( जैसे ) नाली-वाले पानी ले जाते हैं, हनु-कार शरको सींचा करते हैं ।

वडई लकड़ीको सींचा करते हैं, ( वैसे ही ) पंडित अपनेको दमन करते हैं ॥ ७ ॥

कोई दंडसे दमन करते हैं, ( कोई ) शस्त्र और कोवासे भी ।

तथागत-द्वारा बिना दंड, बिना शस्त्रके ही मैं दमन किया गया हूँ ॥ ८ ॥

पहिलेके हिंसक मेरा नाम आज महिंसक है ।

आज मैं बयाये-नामवाला हूँ, किसीकी हिंसा नहीं करता ॥ ९ ॥

पहिले मैं \*अंगुलिमाल नामसे प्रसिद्ध चोर था ।

वही था (= महा-जोष ) मैं दूधले बुद्धकी शरण आया ॥ १० ॥

पहिले मैं जंगलिमाल नामसे प्रसिद्ध खून-रंगे हामवाला ( = लोहित-पाणि ) था ।

देखो क्षरणागतिको ? मध-जाल सिमट गया ॥११॥

बहुत दुर्गतिमें ले जानेवाले कर्मोंको करके ।

कर्म-विपाकसे स्पृष्ट ( = लगा ) ( था ) ( जिन )से उक्कण हो भोजन करता हूँ ॥१२॥

पाल = दुर्बुद्धि जन, प्रमाद ( = आलस्य )में लगे रहते हैं ।

मेधावी ( पुरुष ) अ-प्रमादकी, श्रेष्ठ धनकी भौति रक्षा करते हैं ॥१३॥

अतः प्रमादमें लुप्त हो, अतः काम-रतिका संग करो ।

अप्रमाद-मुक्त हो ध्यान करते ( मनुष्य ) विपुल सुखको पाता है ॥१४॥

( यहाँ मेरा आना ) स्वागत है, अप-गत ( = दुरागत ) नहीं,

यह मेरी ( मंत्रणा ) दुर्भ्रंश नहीं ।

प्रतिमान ( = ज्ञान ) होनेवाले घरोंमें जो श्रेष्ठ है, उस ( निर्वाण )को मैंने पा लिया ॥१५॥

स्वागत है, अपगत नहीं, यह मेरा दुर्भ्रंश नहीं ।

तीनों विद्याओंको पा लिया, बुद्धके शासनको कर लिया ॥१६॥



## ८७-प्रियजातिक-सुत्तन्त (२।४।७)

प्रियोंसे शोक, दुःखको उत्पत्ति

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें... जेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय एक गृहपति (= वैश्य) का प्रिय = भनाप एकलौता-पुत्र मर गया था । उसके मरनेसे ( उसे ) न काम (= कर्मान्त ) अच्छा लगता था, न भोजन अच्छा लगता था—‘कहाँ हो ( मेरे ) एकलौते-पुत्रक ? कहाँ हो ( मेरे ) एकलौते-पुत्रक ?’ तब वह गृहपति जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । ‘‘अभिवादन कर एक ओर बैठे उस गृहपतिसे भगवान्ने कहा—

‘‘गृहपति ! तेरी इन्द्रियाँ (= चेष्टायें ) चित्तमें स्थित नहीं जान पड़तीं, क्या तेरी इन्द्रियोंमें कोई खराबी (= नान्यवात्त ) तो नहीं है ?’

‘‘भन्ते ! क्यों न मेरी इन्द्रियाँ अन्यवात्तको प्राप्त होंगी ? भन्ते ! मेरा प्रिय = भनाप एकलौता-पुत्र मर गया । उसके मरनेसे न काम अच्छा लगता है, न भोजन अच्छा लगता है । सो मैं आदाहन (= चिता ) के पास जाकर कंदन करता हूँ—‘कहाँ हो एकलौते-पुत्रक (= पुत्रवा ) !’

‘‘ऐसा ही है गृहपति ! प्रिय-जातिक = प्रियसे उत्पन्न होनेवाले ही हैं, गृहपति ! ( वह ) शोक, परिदेव (= कंदन ), दुःख = सौमनस्य, उपावास (= परेशानी ) ?’

‘‘भन्ते ! यह ऐसा क्यों होगा—‘प्रिय जातिक ० हैं शोक ० उपावास ?’

वह गृहपति भगवान्के भाषणको न अभिनन्दन कर, निंदा कर आसनसे उठकर चला गया । उस समय बहुतसे जुबारी (= अक्ष-धूर्त ) भगवान्के अधरमें जुआ खेल रहे थे । तब वह गृहपति जहाँ वह जुबारी थे, वहाँ गया, जाकर उन जुबारियोंसे बोला—

‘‘मैं जी ! जहाँ अमण गौतम है, वहाँ... जाकर... अभिवादन कर एक ओर बैठे मुझे अमण गौतम ने कहा—‘गृहपति ! तेरी इन्द्रियाँ (= चेष्टायें ) अपने चित्तमें स्थित-सी नहीं हैं ० प्रिय जातिक ० शोक ० हैं’ । प्रियजातिक = प्रियसे उत्पन्न तो, आनन्द = सौमनस्य हैं । तब मैं अमण गौतमके भाषणको न अभिनन्दन कर ० चला आया ।’

‘‘वह ऐसा ही है गृहपति ! प्रिय-जातिक = प्रिय-उत्पन्न तो हैं गृहपति ! आनन्द = सौमनस्य ।’

तब वह गृहपति ‘जुबारी भी मुझसे सहमत हैं’ ( सोच ) चला गया । वह कथावस्तु (= चर्चा ) कमशः राज-भन्त-पुरमें चली गई । तब राजा प्रसेनजित् कोसलने मल्लिका देवीको आमंत्रित किया—

‘‘मल्लिका ! तेरे अमण गौतमने यह भाषण किया है—‘प्रिय-जातिक = प्रिय-उत्पन्न हैं शोक ० उपावास’ ।’

“यदि महाराज ! भगवान्ने ऐसा भाषण किया है, तो यह ऐसा ही है ।”

“ऐसा ही है मल्लिका ! जो जो अमण गौतम भाषण करता है, उस उसको ही तू अनुमोदन करती है—‘यदि महाराज ! भगवान्ने ०’ । जैसे कि आचार्य जो जो अन्तेवासीको कहता है, उस उसको ही उसका अन्तेवासी अनुमोदन करता है—‘यह ऐसा ही है आचार्य । ० आचार्य !’ ऐसे ही तू मल्लिका ! जो जो अमण ० । कल परे हट मल्लिका !”

तब मल्लिका देवीने वाली-जंघ बाण्डणको आमंत्रित किया—

“आओ तुम बाण्डण ! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाओ । जाकर मेरे वचनसे भगवान्के चरणोंमें शिरसे वन्दना करना;—( कुशलक्षेम ) पूछना—‘भन्ते ! मल्लिकादेवी भगवान्के चरणोंमें शिरसे वन्दना करती है,—( = कुशलक्षेम ) पूछती है ।’ और यह भी कहना—‘क्या भन्ते ! भगवान्ने यह वचन कहा है—‘प्रिय जातिक ० है, शोक ० उपायास’ । भगवान् जैसा तुम्हें उत्तर दें, उसे अच्छी तरह सीख कर, मुझे जाकर कहना, तबामत स्वयं नहीं चोलते ।”

“अच्छा भवती !” “नाली-जंघ बाण्डण !” जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर, भगवान्के साथ संमोदन कर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे वाली-जंघ बाण्डणने भगवान्से कहा—

“हे गौतम ! मल्लिका देवी ! आप गौतमके चरणोंमें शिरसे वन्दना करती है ० । और यह पूछती है—‘क्या भन्ते ! भगवान्ने यह वचन कहा है—‘प्रिय जातिक ० है, शोक ० उपायास’ ?”

“यह ऐसा ही है बाण्डण ! ऐसा ही है बाण्डण ! प्रिय जातिक = प्रिय-उत्पन्न है बाण्डण ! शोक ० उपायास । इसे इस प्रकारसे भी जानना चाहिये कि कैसे—‘प्रिय जातिक ० शोक’ ? पहिले समयमें ( = भूत पूर्वमें ) बाण्डण ! इसी आवस्तीकी एक खोकी माता मर गई थी; वह उसकी मृत्युसे उन्मत्त-विक्षिप्त-चित्त हो एक सड़कसे दूसरी सड़कपर, एक चौरस्तेसे दूसरे चौरस्ते-पर जाकर कहती थी—‘क्या मेरी भाकी देखा, क्या मेरी भाकी देखा ।’ इस प्रकारसे भी बाण्डण ! जानना चाहिये कि कैसे ० । पहिले समयमें बाण्डण ! इसी आवस्तीमें एक खोकी पिता मर गया था ० । ० भाई मर गया था ० । ० भगिनी मर गई थी ० । पुत्र मर गया था ० । ० दुहिता मर गई थी ० । ० स्वामी ( = पति ) मर गया था ० ।

“पूर्व कालमें ० एक पुरुषकी माता ०—० भागी ० ।”

“पूर्वकालमें बाण्डण ! इसी आवस्तीकी एक खी पोहर गई । उसके भाई-बन्धु उसे उसके पतिसे डीनकर, दूसरेको देना चाहते थे, और वह नहीं चाहती थी । तब उस खीने पतिसे यह कहा—‘आर्यपुत्र ! यह मेरे भाई-बन्धु मुझे तुमसे डीनकर दूसरेको देना चाहते हैं, और मैं नहीं चाहती ।’ तब उस पुरुषने—‘दोनों मस्कर इकट्ठा उत्पन्न होंगे’ ( मोच ) उस खीको दो टुकड़ेकर, अपनेको भी मार डाला । इस प्रकारसे भी बाण्डण ! जानना चाहिये ।”

तब नालि-जंघ बाण्डण भगवान्के भाषणको अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर आसनसे उठ कर, जहाँ मल्लिकादेवी थी, वहाँ गया । जाकर भगवान्के साथ जो कथा-संलाप हुआ था, वह सब मल्लिकादेवीसे कह सुनाया । तब मल्लिकादेवी जहाँ राजा प्रसेनजित् था, वहाँ गई; जाकर राजा प्रसेनजित् कोसलसे बोली—

“तो क्या मानते हो महाराज तुम्हें वजिरी ( = वज्रिणी ) कुमारी प्रिय है न ?”

“हाँ, मल्लिका ! वजिरी कुमारी मुझे प्रिय है ।”



“तो क्या मानते हो, महाराज ! यदि तुम्हारी बजिरी कुमारीको कोई विपरिणाम (= संकट ) या अन्यथात्व होवे, तो क्या तुम्हें शोक • उत्पन्न होगे ?

“मल्लिका ! बजिरी कुमारीके विपरिणाम-अन्यथात्वसे मेरे जीवनका भी अन्यथात्व हो सकता है, ‘शोक • उत्पन्न होगा’ की तो बात ही क्या ?”

“महाराज ! उन भगवान्, ज्ञाननहार, देवमहार अर्हत् सम्यक्-संशुद्धने यही सोचकर कहा है—‘प्रिय-जातिक • ।’ तो क्या मानते हो महाराज ! वासम क्षत्रिया तुम्हें प्रिय है न ?”

“हाँ, मल्लिका ! वासम-क्षत्रिया मुझे प्रिय है ।”

“तो क्या मानते हो महाराज ! वासम क्षत्रियाको कोई विपरिणाम = अन्यथात्व हो, तो क्या तुम्हें शोक • उत्पन्न होगे ?”

“मल्लिका ! • जीवन का भी अन्यथात्व हो सकता है • ।”

“महाराज ! • यही सोच कर • कहा है • । तो क्या मानते हो महाराज ! विदूषन सेनापति तुम्हें प्रिय है न ?” • । • ।

“• । तो क्या मानते हो महाराज ! मैं तुम्हें प्रिय हूँ न ?”

“हाँ मल्लिके ! मैं तुम्हें प्रिय है ।”

“तो क्या मानते हो, महाराज ! मुझे कोई विपरिणाम, अन्यथात्व हो, तो क्या तुम्हें शोक • उत्पन्न होगे ?”

“मल्लिका ! • जीवनका भी अन्यथात्व हो सकता है • ।”

“महाराज ! • यही सोचकर कहा है • । तो क्या मानते हो, महाराज ! काशी और कोसल ( के निवासी ) तुम्हें प्रिय हैं न ?”

“हाँ मल्लिके ! काशी-कोसल मेरे प्रिय हैं । काशी-कोसलोंके अनुभाव (= वरकृत ) से ही तो हम ‘‘काशिकचन्दनको भोगते हैं, माला, शंख, विलेपन (= उबटन ) धारण करते हैं ।”

तो • महाराज ! काशी-कोसलोंके विपरिणाम = अन्यथात्व (= संकट )से, क्या तुम्हें शोक • उत्पन्न होगे ?”

“• जीवनका भी अन्यथात्व हो सकता • है ?”

“महाराज ! उन भगवान् • ने यही सोचकर कहा है—‘प्रिय-जातिक = प्रियसे उत्पन्न है, शोक • ।’”

“आश्चर्य ! मल्लिके !! आश्चर्य ! मल्लिके !! कैसे वह भगवान् हैं !!! मानों प्रज्ञाने बेधकर श्रेयते हैं । जानो, मल्लिके ! हम दोनों...।”

तब राजा प्रसेनजित् कोसलने आसनसे उठकर, उत्तरासंग (= चहर ) की एक ( धार्य ) कंधेपर रख, जियर भगवान् से, उधर अंजली जोत तीन बार उद्दान कहा—

“‘ उन भगवान्, अर्हत्, सम्यक् संशुद्धको वमस्कार है; उन भगवान् अर्हत् सम्यक् समुद्धको वमस्कार है; उन भगवान् अर्हत्, सम्यक् संशुद्धको वमस्कार है ।”

## ८८—बाहीतिय-सुचन्त (२।४।८)

बुद्ध निन्दित कर्म नहीं कर सकते

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्ती ० जेतवनमें विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् आनन्द पूर्वोक्त समय (चीवर) पहिन कर, पात्र-चीवर ले, श्रावस्तीमें... पिंड-चार करके... दिनके विहारके लिये जहाँ मृगार-भाताका भ्राता पूर्वाराण था, वहाँ चले । उस समय राजा प्रसेनजित् ० एकपुंडरीक नाग (= हाथी) पर चढ़कर, भ्रष्टाहमें श्रावस्तीसे बाहर जा रहा था । राजा प्रसेनजित् ० ने दूरसे आयुष्मान् आनन्दको आते देखा । देखकर सिरिचिड़ (श्रीघट्ट) महामात्यको आमंत्रित किया—

“सौम्य सिरिचिड़ ! यह आयुष्मान् आनन्द हैं न ?”

“हाँ महाराज !... !”

तब राजा ० ने एक आदमीको आमंत्रित किया—

“आओ, हे पुरुष ! जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं, वहाँ जाओ, जाकर मेरे वचनसे आयुष्मान् आनन्दके पैरोंमें बंदना करना...”, और यह भी कहना—“मन्ते ! यदि आयुष्मान् आनन्दको कोई बहुत जरूरी काम न हो, तो मन्ते ! आयुष्मान् आनन्द कृपाकर एक मिनट (= सुहृत्) ठहर जायें ।”

“अच्छा देव !”

आयुष्मान् आनन्दने मौनसे स्वीकार किया ।

तब राजा प्रसेनजित् जितना नागका रास्ता था, उतना नागसे जाकर, नागसे उतर पैदल ही... जाकर... अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो, आयुष्मान् आनन्दसे बोला—

“मन्ते ! यदि आयुष्मान् आनन्दको कोई अत्यावश्यक काम न हो, तो अच्छा हो मन्ते ! आयुष्मान् आनन्द जहाँ अचिरवती नदीका तीर है, कृपा कर वहाँ चले ।”

आयुष्मान् आनन्दने मौनसे स्वीकार किया ।

तब आयुष्मान् आनन्द, जहाँ अचिरवती नदी का तट था, वहाँ गये । जाकर एक वृक्षके नीचे घिसे आसनपर बैठे । तब राजा प्रसेनजित् ० जाकर, नागसे उतर पैदल ही... जाकर... अभिवादन कर एक ओर खड़ा हुआ । एक ओर खड़े हुये राजा ० ने... यह कहा—

“मन्ते ! आयुष्मान् आनन्द यहाँ कालीनपर बैठे ।”

“नहीं महाराज ! तुम बैठो, मैं अपने आसनपर बैठा हूँ ।”

राजा प्रसेनजित् ० घिसे आसनपर बैठा । बैठ कर... बोला—

“मन्ते ! क्या वह भगवान् ऐसा कायिक आचरण कर सकते हैं, जो कायिक आचरण, असर्गों, ब्राह्मणों और विज्ञोंसे निन्दित (= उपारम्भ) है ?”

“नहीं महाराज ! वह भगवान् ० !”

“क्या मन्ते ! ० वाचिक आचरण कर सकते हैं ० ?” “नहीं महाराज !”



“आश्चर्य ! मन्ते !! अद्भुत ! मन्ते !! जो हम ( दूसरे ) अमणोंसे नहीं पूरा कर ( जान ) सके, वह मन्ते ! आयुष्मान् आनन्दने प्रश्नका उत्तर दे पूरा कर दिया । मन्ते ! जो वह बाल = अश्वत्थ ( = मूँच ) बिना सोचे, बिना धाह लगाये, दूसरोंका वर्ण ( = प्रशंसा ) या अ-वर्ण नापण करते हैं, उसे हम सार मानकर नहीं स्वीकार करते । और मन्ते ! जो वह पंडित = व्यक्त = मेधावी ( = पुरुष ) सोचकर, धाह लगाकर दूसरोंका वर्ण या अवर्ण नापण करते हैं, उसे हम सार मानकर स्वीकार करते हैं । मन्ते ! आनन्द ! कौन कायिक आचरण अमणों, ब्राह्मणों, विज्ञोंसे निन्दित है ?”

“महाराज ! जो कायिक-आचरण अ-कुशल ( = बुरा ) है ।”

“मन्ते ! अकुशल कायिक आचरण क्या है !” “महाराज ! जो कायिक आचरण स-अवयव ( = सदोष ) है ।” “० सावयव क्या है ?” “जो ० स-व्यापाण ( = हिसाबुक ) है ।” “० स-व्यापाण क्या है ?” “जो ० दुःख विपाक ( = अन्तसे दुःख देनेवाला ) है ।”

“० दुःख-विपाक क्या है ?”

“महाराज ! जो कायिक आचरण अपनी पीड़ाके लिये होता है, पर-पीड़ाके लिये होता है, दोनोंकी पीड़ाके लिये होता है । उससे अ-कुशल-धर्म ( = पाप ) बढ़ते हैं, कुशल-धर्म नाश होते हैं । इस प्रकारका कायिक आचरण महाराज ! ० निन्दित है ।”

“मन्ते आनन्द ! कौन वाचिक-आचरण अमणों-ब्राह्मणों-विज्ञोंसे निन्दित है ?” “० महाराज ! जो वाचिक-आचरण अपनी पीड़ाके लिये है ० ।”

“० कौन मानसिक आचरण ० ?” “० ।

“मन्ते ! आनन्द ! क्या वह भगवान् सभी अकुशल धर्मों ( = बुराइयों ) का विनाश वर्णन करते हैं ?”

“महाराज ! तथ्यागत सभी अकुशल धर्मोंसे रहित हैं, सभी कुशल-धर्मोंसे युक्त हैं ।”

“मन्ते आनन्द ! कौन कायिक आचरण ( = काय-समाचार ) अमणों-ब्राह्मणों-विज्ञोंसे अनिन्दित है ?”

“महाराज ! जो कायिक आचरण कुशल है । ० । ० अवयव ० । ० । ० व्यापाण ० । ० । ० सुख विपाक ० । ० । जो ० न अपनी पीड़ाके लिये होता है, न पर-पीड़ाके लिये, न दोनोंकी पीड़ाके लिये होता है । उससे अकुशल-धर्म नाश होते हैं, कुशल-धर्म बढ़ते हैं । ० ।

० वाचिक आचरण कुशल है ? ० मानसिक आचरण कुशल है ? ० ।

“मन्ते आनन्द ! क्या वह भगवान् सभी कुशल धर्मोंकी प्राप्तिको वर्णन करते हैं ?”

“महाराज ! तथ्यागत सभी अकुशल-धर्मोंसे रहित हैं, सभी कुशल-धर्मोंसे युक्त हैं ।”

“आश्चर्य ! मन्ते !! अद्भुत ! मन्ते !! कितना सुन्दर कथन ( = सुभाषित ) है, मन्ते ! आयुष्मान् आनन्दका !!! मन्ते ! आयुष्मान् आनन्दके इस सुभाषितसे हम परम प्रसन्न हैं । मन्ते ! आयुष्मान् आनन्दके सुभाषितसे इस प्रकार प्रसन्न हुये, हम हमी-सह भी आयुष्मान्को देते, यदि वह आयुष्मान् आनन्दको विहित ( = ब्राह्मण = कल्प ) होता, ० अच-नख ( = श्रेष्ठ घोड़ा ) भी ०, ० अच्छा गाँव भी ० । किन्तु मन्ते ! आनन्द ! हम इसे जानते हैं, यह आयुष्मान्को ब्राह्म नहीं है । मेरे पास राजा आराध अजातशत्रु, वैदेही-गुप्तकी भेजी... यह सोलह हाथ लम्बी, जाठ हाथ चौड़ी बाहीनिक<sup>१</sup> है, उसे आयुष्मान् आनन्द कृपा-करके स्वीकार करें ।”

<sup>१</sup> न. व. “बाहीत राष्ट्रमे पैदा होनेवाले बख्क। यह नाम है ।” सत्तलज और व्यासके बीचका प्रदेश बाहीत देश है । पाणिनीय ( ४ : २ : १७ । ५ : ३ : ११४ ) ने इसे भी बाहीक लिखा है ।

“नहीं महाराज ! मेरे तीनों चीवर पूरे हैं ।”

“मन्ते ! यह अचिरवती नदी आयुष्मान् आनन्दने देखी है, और हमने भी । जब ऊपर पर्वतपर अहामेघ सरसता है, तब यह अचिरवती, दोनों तटोंको भर कर बहती है । ऐसे ही मन्ते ! इस वाहीतियसे आयुष्मान् आनन्द अपना त्रिचीवर बनावेंगे, जो आयुष्मान् आनन्दके चीवर हैं, उन्हें समझचारी घाँट लेंगे । इस प्रकार हमारी दक्षिणा ( = दान ) मानी भर कर बहती हुई ( = संवित्पुन्दन्ती ) होगी । मन्ते ! आयुष्मान् आनन्द तेरी वाहीतिको स्वीकार करें ।”

आयुष्मान् आनन्दने वाहीतिको स्वीकार किया । तब राजा ० ने कहा—

“अच्छा मन्ते ! अब हम जाते हैं, ( = हम ) बहु-कृत्य, बहु-करणीय हैं ।”

“जिसका महाराज ! तुम काल लग्नते हो ।”

तब राजा प्रसेनजित् ० आयुष्मान् आनन्दके मापणको अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर, आपनसे उठ, ० अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर चला गया ।

राजा ० के जानेके बोधी देर बाद, आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । एक ओर बैठ आयुष्मान् आनन्दने जो कुछ राजा प्रसेनजित् ० के साथ कथा-संकाष हुआ था, वह सब भगवान्को सुना दिया, और वह वाहीतिक भी भगवान्को अर्पण कर दी । तब भगवान्ने मिश्रुओंको आमन्त्रित किया—

“मिश्रुओ ! राजा प्रसेनजित् ० को क्षाम है, ० सुखाम मिला है, जो राजा ० आनन्दका दर्शन सेवन पाता है ।”

वह भगवान्ने कहा, संतुष्ट हो उन मिश्रुओंने भगवान्के मापणका अभिनन्दन किया ।



## ८६—धम्मचेतिय-सुत्तन्त (२।४।६)

भोगोंके दुष्परिणाम । दुःखकी प्रथा

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् शाक्य ( देव )में, मेतल्लप ( = मेतलुम्प ) नामक शाक्योंके निगममें विहार करते थे ।

उस समय राजा प्रसेनजित् कोसल किसी कामसे नगरकमें आया हुआ था । तब राजा प्रसेनजित् कोसलने 'दीर्घ कारावणको आमंत्रित किया—

“सौम्य कारावण ! सुन्दर यानोंकी जुड़ावों, सुभूमि देखनेके लिये उद्यान-भूमि जायेंगे ।”

“अच्छा देव !”

“देव ! सुन्दर-सुन्दर यान छुट गये, अब जिसका देव काल समाप्त हो ।”

तब राजा प्रसेनजित् ० भद्र ( = सुन्दर ) यानपर आरुढ़ हो, भद्र-भद्र यानोंके साथ, वहीं राजसी ढाटसे नगरकसे निकल कर, जहाँ आराम था, वहीं गया । जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जा, यानसे उतर पैदल ही आराममें प्रविष्ट हुआ । राजा प्रसेनजित्ने दहलते हुये आराममें शब्द-रहित, शोध-रहित, निर्बल, ... ध्यान योग्य मनोहर वृक्ष-मूलोंको देखा । देखकर भगवान्की ही स्मृति उत्पन्न हुई—यह वैसे ही ० मनोहर वृक्षमूल है, जहाँपर हम भगवान् ० सम्यक् संबुद्धकी उपासना ( = स्तुति ) करते थे । तब राजा ० ने दीर्घ कारावणसे पूछा—

“सौम्य कारावण ! यह ० मनोहर वृक्षमूल है, जहाँपर ० । सौम्य कारावण ! इस समय वह भगवान् ० कहाँ निहते हैं ?”

“महाराज ! शाक्योंका मेतल्लप नामक निगम ( = कल्ला ) है, वह भगवान् ० वहाँ पर विहर रहे हैं ।”

“सौम्य कारावण ! नगरकमें कितनी दूरपर शाक्योंका वह मेतल्लप निगम है ?”

“महाराज ! दूर नहीं है, तीन योजन है । बाकी बचे दिनमें पहुँचा जा सकता है ।”

“तो सौम्य कारावण ! जुवा भद्र यानों को, हम भगवान् ० के दर्शनके लिये वहाँ चलेंगे ।” “अच्छा देव !”

... तब राजा प्रसेनजित् सुन्दर यानपर आरुढ़ हो ० नगरकसे निकलकर, ... उसी बचे दिनमें शाक्योंके निगम मेतल्लपमें पहुँच गया । जहाँ आराम था, वहाँ चला । जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जा, यानसे उतर कर पैदल ही आराममें प्रविष्ट हुआ ।

उस समय बहुतसे भिक्षु लुली जगहमें दहल रहे थे ० । राजा प्रसेनजित्ने वहीं सद्ग और

\* देखो दुक्कर्मा, पृष्ठ ४७३ ।

उष्णीष दीर्घ कारायणको दे दिया । दीर्घ कारायणने सोचा—‘मुझे राजा यहीं ठहरा रहा है; इसलिए मुझे यहीं खड़ा रहना होगा ।’ तब राजा ० जहाँ वह द्वारबंद विहार था ० गया । भगवान्ने दूवोंका खोल दिया । राजा ० विहार (= गंधकुटी ) में प्रविष्ट हो, भगवान्के चरणोंमें शिरसे पककर <sup>१</sup> ० ।

“क्या है महाराज ! क्या बात देखकर महाराज ! इस शरीरमें इतना गौरव दिखलाने हो, निश्चय उपहार (= संमान ) प्रदर्शन कर रहे हो ?”

“भन्ते ! भगवान्में मेरा धर्म-अन्वय (= धर्म-संयन्त्र ) है—भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं, भगवान्का धर्म स्वाध्याय है, संघ सुमार्गापर आरुढ़ है । भन्ते ! किन्हीं किन्हीं श्रमण ब्राह्मणोंको मैं स्वयं-कालिक (= पर्यंतक ) ब्रह्मचर्य पालन करते देखता हूँ—दश वर्ष, बीस वर्ष, तीस वर्ष, चालीस वर्ष भी । यह दूसरे समय सु-स्नात, सु-विलिप्त, केश-इमधु बतवा (= कपित्थ कर ) पाँच कामगुणोंसे समर्पित = सम-अंगीभूत हो, विचरण करते हैं । भन्ते ! भिक्षुओंको मैं देखता हूँ, जोट-भर ‘परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य’ पालन करते हैं । भन्ते ! यहाँसे बाहर दूसरा इतना परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य नहीं देखता । भन्ते ! यह भी ( कारण है ) कि भगवान्में मुझे धर्म-दर्शन (= धर्म-अन्वय ) होता है,—‘भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं, भगवान्का धर्म स्वाध्याय है, संघ सु-प्रतिपन्न (= सुमार्गापर ) है ।

“और फिर भन्ते ! राजा भी राजाओंसे विवाद करते हैं, क्षत्रिय क्षत्रियके साथ विवाद करते हैं, ब्राह्मण भी ०, गृहपति (= वैश्य ) भी ०, माता भी पुत्रके साथ ०, पुत्र भी माताके साथ ०, पिता भी पुत्रके साथ ०, पुत्र भी पिताके साथ ०, भाई भी भाईके साथ ०, भाई भी बहिनके साथ ०, बहिन भी भाईके साथ ०, मित्र भी मित्रके साथ ० । किन्तु यहाँ भन्ते ! मैं भिक्षुओंको समय (= एकरात्र ), संनोदमान (= एक दूसरेसे मुदित ), विवाद-रहित, द्वेष-जल-घने, एक दूसरेको मित्र-वस्तुसे देखता विहार करता देखता हूँ । भन्ते ! यहाँसे बाहर मैं ( कहीं ) ऐसी एकरात्र परिपद् नहीं देखता । यह भी भन्ते ! ० ।

“और फिर भन्ते ! मैं ( एक ) आरामसे ( दूसरे ) आराममें, ( एक ) उद्यानसे ( दूसरे ) उद्यानमें, दहलता हूँ, विचरता हूँ; यहाँ मैं किन्हीं-किन्हीं श्रमण ब्राह्मणोंको कृश, रज, दुर्बल, पीले-पीले, बाड़ी घँघे गात्रवाले ( देखता हूँ ); मामों लोगोंके दर्शन करनेसे आँखको बंद कर रहे हैं । तब भन्ते ! मुझे ऐसा होता है—‘निश्चय यह आयुष्मान् या तो बेमन (= अन्-अभिरत ) हो ब्रह्मचर्य कर रहे हैं, या इन्होंने कोई छिपा हुआ पापकर्म किया है, जिससे कि यह आयुष्मान् कृश ० । उनके पास जाकर मैं ऐसे पूछता हूँ—‘आयुष्मानो ! तुम कृश ० ?’ वह मुझे कहते हैं—‘महाराज ! हमें बंधु-रोग (= कुल-रोग ) है ।’ किन्तु भन्ते ! मैं यहाँ भिक्षुओंको बृष्ट, ग्रहृष्ट = उद्वम, अभिरत = प्रसन्न-इन्द्रिय उत्सुकता-रहित, रोमांच-रहित, ‘सुदु-चित्तसे विहार करते देखता हूँ । यह भी भन्ते ! ० ।

“और फिर भन्ते ! मैं मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा हूँ, मारने योग्यको मरवा सकता हूँ, ‘निर्वासन योग्यका निर्वासन कर सकता हूँ । ऐसा होते भी भन्ते ! मेरे ( राज- ) कार्यमें बैठे वक्त, ( लोग ) बीच-बीचमें बात डाल देते हैं । उनको मैं ( कहता हूँ )—‘मैं ( काम करने ) नहीं पाता, आप लोग कार्य करनेके लिये बैठे वक्त बीच-बीचमें बात मत डालें, आप बात समाप्त हो जाने तक प्रतीक्षा करें ।’ तो ( भी ) ‘‘बीच-बीचमें बात डाल ही देते हैं । किन्तु यहाँ भन्ते ! मैं भिक्षुओंको देखता हूँ, जिस समय भगवान् अनेक बातकी परिपद्को धर्म-उपदेश करते हैं; उस



समय भगवान् के आवाजों के बुकने खासनेका भी शब्द नहीं होता । मन्ते ! पहिले एक समय भगवान् अनेक रात परिषद् को धर्म-उपदेश कर रहे थे; उस समय भगवान् के एक श्रावक (= शिष्य ) ने खीसा । तब उसे एक समझधारीने बुटनेको द्वाकर इशारा किया—आयुष्मान् निःशब्द हो, आयुष्मान् शब्द मत करें, शास्ता भगवान् हमें धर्म-उपदेश कर रहे हैं । तब मुझे ऐसा हुआ— 'आश्चर्य है जी ! बहुत है जी !! जो बिना दंडके ही, बिना शस्त्रके ही, इस प्रकारकी विनय-युक्त (= विनीत ) परिषद् !!!' यहाँसे बाहर मन्ते ! मैं दूसरी इस प्रकारकी सु-विनीत परिषद् नहीं देखता । यह भी ० ।

"और फिर मन्ते ! मैं किन्हीं किन्हीं निपुण, कृतपरप्रवाद (= प्रौढ़ शास्त्रार्थी ) बाल-बेटी क्षत्रिय-पंडितोंको देखता हूँ; ( जो ) मानों ( अपनी ) प्रज्ञा-गत ( बुद्धियोंसे ) ( दूसरेके ) दृष्टि-गत (= मतविषयक बातों )को टुकड़े टुकड़े करे डालते हैं । वह सुनते हैं— 'अमण गौतम अमुक ग्राम या निगममें आवेगा' वह प्रश्न तत्पार करते हैं—इस प्रश्नको हम अमण गौतमके पास जाकर पूछेंगे; ऐसा पूछनेपर यदि ऐसा उत्तर देगा, तो हम इस प्रकार उससे वाद रोपेंगे । वह सुनते हैं— 'अमण गौतम अमुक ग्राम या निगममें जा गया' । वह जहाँ भगवान् ( होते हैं ) वहाँ जाते हैं । वह भगवान् की धार्मिक-कथा द्वारा संदर्शित हो, प्रेरित हो, समुत्तेजित हो, संप्रहर्षित हो, भगवान् से प्रश्न भी नहीं पूछते, वाद कहाँसे रोपेंगे ? वल्कि भगवान् के आवाज ही बन जाते हैं । यह भी ० ।

"और फिर मन्ते ! मैं किन्हीं किन्हीं ० ब्राह्मण पंडितों ० ।"

"० गृहपति पंडितों ० ।"

"० अमण पंडितों ० । भगवान् से प्रश्न भी नहीं पूछते, वाद कहाँसे रोपेंगे, वल्कि भगवान् से ही घरसे बेघर हो प्रज्वला भाँपते हैं । उन्हें भगवान् प्रवर्जित करते हैं । वह इस प्रकार प्रवर्जित हो एकाकी ० आत्म-संयमी हो विहरते, लक्ष्मी ही जिसके लिये कुल-पुत्र ० प्रवर्जित होते हैं, उस अनुत्तर (= सर्वोत्तर ) प्रश्नचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं अभिज्ञान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरते हैं । वह ऐसा कहते हैं—हम नष्ट थे, हम प्र-नष्ट थे; हम पहिले अ-अमण होते ही 'अमण हैं' का दावा करते थे; अ-ब्राह्मण होते 'ब्राह्मण हैं' का दावा करते थे । अर्हत् न होते 'अर्हत् हैं' का दावा करते थे । अब हैं हम अमण, ० ब्राह्मण, ० अर्हत् । यह भी ० ।

"और फिर मन्ते ! यह क्षत्रिय और पुराण स्वपति (= कीलवान् ) मेरे ही ( भोजनसे ) भोजनवाले, मेरे ही ( पानसे ) पानवाले हैं, मैं ही उनके जीवनका प्रदाता, उनके यशका प्रदाता हूँ; तो भी ( वह ) मेरेमें जितना सम्मान नहीं करते, जितना कि भगवान् से । पहिले एक बार मन्ते ! मैं चड़ाईके लिये जाता था । क्षत्रिय और पुराण स्वपतिते खोज कर एक मोड़वाले आवतब (= सराय )में बाल किया । तब मन्ते ! वह क्षत्रिय और पुराण बहुत रात धर्म-कथामें बिता, जिस दिशामें भगवान् के होनेको सुना था, उधर गिर कर, मुझे पैरकी ओर करके लेट गये । तब मुझे ऐसा हुआ— 'आश्चर्य है जी ! अद्भुत है जी !!' यह क्षत्रिय, और पुराण स्वपति मेरे ही भोजनसे भोजनवाले ० । यह आयुष्मान् उन भगवान् के शासनमें (= अदालत ) हो, पहिलेसे अवश्य कोई विशेष देखते होंगे । यह भी ० ।

"और फिर मन्ते ! भगवान् भी क्षत्रिय हैं, मैं भी क्षत्रिय हूँ, भगवान् भी कोसलक (= कोसलवासी, कोसल-गोत्रज ) हैं, मैं भी कोसलक हूँ । भगवान् भी अस्सी वर्षके, मैं भी अस्सी वर्षका । मन्ते ! जो भगवान् भी क्षत्रिय ०, इससे भी मन्ते ! मुझे योग्य ही है, भगवान् का परम सम्मान करना, विविध गौरव प्रदर्शित करना । हन्त ! मन्ते ! अब हम जायेंगे, हम बहुकृत्य

बहु-करणीय हैं ।”

“अहाराज ! जिसका तुम काल समझते हो ( वैसा करो ) ”

तब राजा प्रसेनजित् ० आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादन कर, प्रक्षिणा कर चला गया ।

राजा ० के जानेके थोड़ी ही देर बाद भगवान्ने भिक्षुओंसे कहा—

“भिक्षुओ ! यह राजा प्रसेनजित् ० धर्म-चैत्योंको भाषणकर, आसनसे उठकर चला गया । भिक्षुओ ! धर्म-चैत्योंको सीखो, ० धर्म-चैत्योंको पूरा करो, ० धर्म-चैत्योंको धारण करो । भिक्षुओ ! धर्म-चैत्य सारथक और आदि ( = शुद्ध ) ब्रह्मपर्यन्तके हैं ।”

भगवान्ने यह कहा । सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया ।

१ अ. क. “राजगृह जाते हुये रास्तेमें कु-अन्न भोजन किया, और बहुत पानी पिया । शुकुमार स्वभाव होनेसे भोजन अच्छी तरह नहीं पचा । वह राजगृहके द्वारोंके बन्द हो जानेपर संन्या ( = विद्यालय ) को बर्हा पहुँचा ।” नगरके बाहर ( धर्म-शाला)में केटा । उसको रातके समय दस्त- ( = बुद्धान ) लगने शुरू हुये । कुछ बार वह बाहर गया । फिर पैरसे चलनेमें असमर्थ हो, उस कीन्हे अंकमें पड़कर बड़े मोर ही भर गया ।” राजा ( अजातशत्रु )ने”विद्वहके मित्रवके लिखे भेरी बजाकर सेना जमा की” । अमालोंने पैरों पर पड़कर”रोका” ।”



## ६०—कण्णत्थलक-सुत्तन्त ( २।४।१० )

सर्वज्ञता असंभव । वर्ग-व्यवस्था-संरक्षण । देव, भद्रा

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् उलुका<sup>१</sup> (= उलुजा = उरुजा) में कण्णत्थलक (= कर्ण-स्थलक) मृग-दाघमें विहार करते थे ।

उस समय राजा प्रसेनजित् कोसल किसी कामसे उलुका (= कलुका) में आया हुआ था, राजा प्रसेनजित् कोसलने एक आइसीको आमंत्रित किया—

“आजो हे पुरुष ! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाओ । जाकर मेरे वचनसे भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना करना । अल्पावाघा (= आरोम्य) = अल्पावक क्लृप्त-उत्थान (= फुर्ती) बल, प्राशु-विहार (= सुख पूर्वक विहरण) पूछना—‘मन्ते ! राजा प्रसेनजित् कोसल भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना करता है ० । और यह भी कहना—मन्ते ! आज भोजनोपरान्त, कलेक करनेपर, राजा प्रसेनजित् कोसल भगवान्‌के दर्शनार्थ जायेगा ।”

“अच्छा देव !”

सोमा और सकुला (दोनों) बहिर्ने सुना—‘आज राजा... भगवान्‌के दर्शनार्थ जायेगा । तब सोमा, सकुला बहिर्ने राजा प्रसेनजित् ० के पास, परोसनेके समय जाकर कहा—

‘तो महाराज ! हमारे भी वचनसे भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना करना । अल्पावाघा ० पूछना—० ।

तब राजा प्रसेनजित् कोसल कलेक करके भोजनोपरान्त जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया; जाकर भगवान्‌की अभिवादन कर... एक ओर बैठ भगवान्‌से बोला—

‘मन्ते ! सोमा और सकुला (दोनों) बहिर्ने भगवान्‌के चरणोंको शिरसे वन्दना करती हैं ० ।”

‘क्या महाराज ! सोमा और सकुला बहिर्नोंको दूसरा दूत नहीं मिला ?”

‘मन्ते ! सोमा और सकुला बहिर्ने सुना, कि आज राजा... भगवान्‌के दर्शनार्थ जायेगा... । आकर मुझे यह कहा... ।”

‘सुखिनी होवें महाराज ! सोमा और सकुला (दोनों) बहिर्ने ।”

तब राजा प्रसेनजित् कोसलने भगवान्‌से यह कहा—

‘मन्ते ! मैंने यह सुना है, कि अमण गौतम ऐसा कहता है—‘ऐसा ( कोई ) अमण या

<sup>१</sup>अ. क. “उस राष्ट्रा और नगरका भी यही नाम ( था ) ।”... उस नगरके अविदुर (= समीप) कण्णत्थलक नामक एक रमणीय मृगाग था... <sup>२</sup>अ. क. “यह दोनों बहिर्ने राजाकी सिद्दी थी ।”

ब्राह्मण नहीं है, जो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी ( हो ), निःशेष ज्ञान दर्शनको जाने, यह सम्भव नहीं है ।' मन्ते ! जो ऐसा कहते हैं कि भ्रमण गौतम ऐसा कहता है—'ऐसा ( कोई ) ० ।' क्या मन्ते ! यह भगवान् के बारेमें सच कहते हैं ? भगवान् को असत्य = अभूतसे लान्छन तो नहीं लगाते ? धर्मके अनुसार कहते हैं, कोई धर्माधुसारी कथन ( = वादानुवाद ) गहर्णीय ( = निन्दनीय ) तो नहीं होता ?"

"महाराज ! जो ऐसा कहते हैं कि भ्रमण गौतमने ऐसा कहा है—'ऐसा ( कोई ) भ्रमण या ब्राह्मण नहीं है, जो सर्वज्ञ = सर्वदर्शी ( होगा ), निःशेष ज्ञान दर्शनको जानेगा, यह सम्भव नहीं है ।' वह मेरे बारेमें सच नहीं कहते, वह असत्य = अभूतसे मुझे लान्छन लगाते हैं ।"

तब राजा प्रसेनजित् ० ने विदुष्य सेनापतिको आमंत्रित किया—

"सेनापति ! आज राजान्तःपुरमें किसने बात ( = कथावस्तु ) कही थी ?"

"महाराज ! आकाश-गोत्र संजय ब्राह्मणने ।"

तब राजा प्रसेनजित्ने ० एक पुरुषको आमंत्रित किया—

"आजो, रे पुरुष ! मेरे वचनसे ० संजय ब्राह्मणको कही—'मन्ते ! तुम्हें राजा प्रसेनजित् बुलाते हैं ।' "

"अच्छा देव !"

"तब राजा प्रसेनजित् ० ने भगवान् से कहा—

"मन्ते ! शायद आपने कुछ और सोच ( यह ) वचन कहा हो, आदमी अन्यथा..... के कहेंगा ।"

"तो मन्ते ! जो वचन कहा उसे कैसे भगवान् जानते हैं ?" "महाराज ! मैं जानता हूँ—जो वचन ( मैंने ) कहा ।"

"महाराज ! मैंने जो वचन कहा उसे इस प्रकार जानता हूँ—'ऐसा भ्रमण ब्राह्मण नहीं, जो एकही बार ( = सङ्कट एव ) सब जानेगा = सब देखेगा, यह सम्भव नहीं ।' "

"मन्ते ! भगवान् ने हेतु-रूप कहा, सहेतु-रूप मन्ते ! भगवान् ने कहा—'ऐसा भ्रमण ब्राह्मण नहीं जो एकही बार सब जानेगा = सब देखेगा, यह सम्भव नहीं ।' मन्ते ! यह चार वर्ण हैं—क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र । मन्ते ! इन चारों वर्णोंमें है कोई विभेद, है कोई नाश-करण ?"

"महाराज ! ० इन चार वर्णोंमें अमिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोड़ने ( = अञ्जलि-कर्म ) = सामीची-कर्ममें दो वर्ण अग्र ( = श्रेष्ठ ) कहे जाते हैं—क्षत्रिय और ब्राह्मण ।"

"मन्ते ! मैं भगवान् से इस जन्मके सब धर्मको नहीं पूछता, मैं... परलोकके सम्बन्ध ( = सांपरायिक ) में पूछता हूँ ।"

"महाराज ! यह पाँच प्रधानीय अंग हैं । कौनसे पाँच ? महाराज ! भिक्षु ( १ ) अज्ञात होता है । तथागतकी धोषि ( = बुद्ध-ज्ञान ) पर श्रद्धा करता—'ऐसे वह भगवान् अर्हत् ० ।' ( २ ) अणुपापाव ( = अरोग ) ० होता है । ( ३ ) शठ = मायावी नहीं होता है ० ( ४ ) ० आरब्ध-वीर्य ( = उद्योगशील ) होता है । ( ५ ) प्रज्ञावान् होता है ० । महाराज ! यह पाँच प्रधानीय अंग हैं । महाराज ! चार वर्ण—ब्राह्मण ० शूद्र हैं । वह यदि पाँच प्रधानीय-अंगोंसे मुक्त हों, तो वह उनके दीर्घ-नाश ( = चिरकाल ) तक हित, सुखके लिये होगा ।"



“मन्ते ! चार वर्ष ० है । और यदि वह प्रधानीय-अंगोंसे युक्त हों । तो मन्ते ! क्या उनमें भेद = नानाकरण नहीं होगा ?”

“महाराज ! उनका प्रधान, नानात्व (= भेद ) नहीं करता । जैसेकि महाराज ! दो दमनीय हाथी, दमनीय घोड़े, = बैल, सु-दान्त = सु-विनीत ( अच्छी प्रकार सिखलाये ) हों, दो दमनीय हाथी, ० घोड़े, ० बैल अ-दान्त = अ-विनीत (= विना सिखलाये ) हों तो महाराज ! जो वह ० सु-दान्त, सु-विनीत हैं, क्या वह दान्त होनेसे दान्त-पदकों पाते हैं = दान्त होनेसे दान्त-भूमिको प्राप्त होते हैं ?”

“हाँ मन्ते !”

“और जो महाराज ! अ-दान्त, अविनीत हैं, क्या वह अदान्त ( विना सिखाये ) ० ही, दान्त = पदकों पाते हैं, अदान्त हो दान्तभूमिको प्राप्त हो सकते हैं ? जैसेकि वह दो ० सुदान्त = सुविनीत ?”

“नहीं, मन्ते !”

“ऐसेही महाराज ! जोकि अट्ठालु, निरोग, अशठ = अमायावी, आरब्ध-वीर्य, प्रज्ञावान् द्वारा प्राप्त ( वस्तु ) है, उसे अ-अट्ठ, पशुरोगी, शठ = मायावी, आलसी, दुष्प्रज्ञ पायेगा, यह संभव नहीं है ।”

“मन्ते ! भगवान्ने हेतु-रूप (= ठीक ) कहा ० मन्ते ! चारों वर्ण क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र हैं, और वह यदि इन प्रधानीय अंगोंसे युक्त हों = सम्यक् प्रधानवाले हों । तो मन्ते ! क्या उनमें ( कुल ) भेद नहीं होगा = कुल नानाकरण नहीं होगा ?”

“महाराज ! मैं उनमें कुछ भी ‘यह जोकि विमुक्तिका विमुक्तिसे भेद (= नानाकरण ) है’ नहीं कहता । जैसे महाराज ! ( एक ) पुरुष सूते शाककी लकड़ीको लेकर अग्नि तैयार करे, तेज प्रादुर्भूत करे, और दूसरा पुरुष सूते प्राल (= सान् )-काष्ठसे आग तैयार करे ०, और दूसरा पुरुष सूते आमके काष्ठसे ०, और दूसरा पुरुष सूते गूलर-काष्ठसे ०, तो क्या मानते हो महाराज ! क्या उन नाना काष्ठोंसे बनाई आगोंका, लौसे लौका, रंगसे रंगका, आमासे आमाका कोई भेद होगा ?”

“नहीं, मन्ते !”

“ऐसे ही महाराज ! जिस तेज (= सुक्ति )को वीर्य (= उद्योग ) तैयार करता है । उसमें, इस विमुक्तिसे दूसरी विमुक्तिमें कुछ भी भेद मैं नहीं कहता हूँ ।”

“मन्ते ! भगवान्ने हेतुरूप (= ठीक ) कहा ० । क्या मन्ते ! देव (= देवता ) हैं ?”

“महाराज ! तू क्या ऐसा कह रहा है—‘मन्ते ! क्या देव हैं ?’

“कि मन्ते ! क्या देवता मनुष्यलोकमें जानेवाले होते हैं, या मनुष्यलोकमें जानेवाले नहीं होते ?”

“महाराज ! जो वह देवता लोभ-रहित हैं, वह मनुष्यलोक ( इत्यत्र )में जानेवाले होते हैं, जो लोभ-रहित हैं, वह ० नहीं जानेवाले होते हैं ।”

ऐसा कहनेपर विट्ठम सेनापतिने भगवान्से कहा—

“मन्ते ! जो वह देवता लोभ-रहित मनुष्यलोकमें न जानेवाले हैं, क्या वह देवता अपने स्वामसे ज्युत होने = प्रमजित होने ?”

तब आयुष्मान् आनन्दको यह हुआ—“यह विट्ठम सेनापति राजा प्रसेनजित् कोसलका पुत्र है, मैं भगवान्का पुत्र हूँ, यह समय है, जब पुत्रको, निमंत्रित करे ।” और आयुष्मान् आनन्द

ने विद्वदभ सेनापतिको आमंत्रित किया—

“तो सेनापति ! तुम्हें ही पूछता हूँ, जैसा तुम्हें ठीक जैसा कहो । तो सेनापति ! जितना राजा प्रसेनजित् कोसलका राज्य ( = विजित ) है, जहाँपर कि राजा प्रसेनजित् ० ऐश्वर्य = आधिपत्य करता है; राजा प्रसेनजित् ० अमण या बाह्यको; पुण्यवान् या अपुण्यवान्को, अश्वचर्यवान् या अश्वचर्यवान्को, क्या उस स्थानसे हटा या निकाल सकता है ?”

“० सकता हूँ ।”

“तो क्या मानते हो सेनापति ! जितना राजा प्रसेनजित् ० का अ-विजित ( = राज्यसे बाहर ) है, जहाँ ० आधिपत्य नहीं करता है, ० क्या उस स्थानसे हटा या निकाल सकता है ?”

“० नहीं सकता ।”

“तो क्या मानते हो सेनापति ! क्या तुमने त्र्यम्बिश देवोंको सुना है ?”

“हाँ, भो ! मैंने त्र्यम्बिश देव सुने हैं, आप राजा-प्रसेनजित् कोसलने भी त्र्यम्बिश देव सुने हैं ।”

“तो क्या मानते हो सेनापति ! क्या राजा-प्रसेनजित् कोसल त्र्यम्बिश देवोंको उस स्थानसे हटा या निकाल सकता है ?”

“त्र्यम्बिश देवोंको राजा प्रसेनजित् ० देखनेको भी नहीं पा सकता, कहाँसे उनको स्थानसे हटावे या निकालेगा ?”

“ऐसे ही सेनापति ! जो देवता लोम-सहित हैं, वह मनुष्य-लोकमें आते हैं, जो लोम-रहित हैं, वह ० नहीं आते । वह देखनेको भी नहीं पाये जा सकते, कहाँसे उस स्थानसे हटावे या निकाले जायेंगे ?”

तब राजा प्रसेनजित् कोसलने भगवान्से कहा—

“भन्ते ! यह कौन नामवाला भिक्षु है ?”

“आनन्द नामक महाराज !”

“ओ हो ! आनन्द हैं !! ओहो ! आनन्द-रूप हैं !! भन्ते ! आद्युक्तान् आनन्द ठीक कहते हैं । भन्ते ! क्या ब्रह्मा है ?”

“तू क्या महाराज ! ऐसे कहता है,—भन्ते ! क्या ब्रह्मा है ?”

“भन्ते ! क्या वह ब्रह्मा मनुष्यलोकमें आता है, या मनुष्य-लोकमें नहीं आता ?”

“महाराज ! जो ० ब्रह्मा लोम-सहित है ० आता है, लोम-रहित ० नहीं आता ।”

तब एक पुरुषने राजा प्रसेनजित् ० से कहा—

“महाराज ! आकाश-गोत्र संजय ब्राह्मण आ गया ।”

तब राजा प्रसेनजित् ० ने ० संजय ब्राह्मणसे कहा—

“ब्राह्मण ! किसने इस बात ( = क्या-वस्तु )को राज-भन्तःपुरमें कहा था ?”

“महाराज ! विद्वदभ सेनापतिने ।”

विद्वदभ सेनापतिने कहा—“महाराज ! आकाश-गोत्र संजय ब्राह्मणने ।”

तब एक पुरुषने राजा प्रसेनजित्से कहा—

“जानेका समय है, महाराज !”

तब राजा प्रसेनजित् ० भगवान्से यह बोला—

“हमने भन्ते ! भगवान्से सर्वज्ञता पूछी, भगवान्ने सर्वज्ञता बतलाई, वह हमको रुचती है, पसन्द है, उससे हम सन्तुष्ट हैं । चारों वर्णकी बुद्धि ( = चतुर्वर्णी बुद्धि ) ० पूछी ० । देवों



के विषयमें ० पूछा ० । मण्डाके विषयमें ० पूछा ० । जो जो ही मन्ते ! हमने भगवान्‌से पूछा, वही वही भगवान्‌ने घटलाया ; और वह हमको रुचता है, पसन्द है, उससे हम समुष्ट हैं । अच्छा तो मन्ते ! अब हम जायेंगे, हम बहु-कृत्य हैं, बहु-करणीय हैं ।”

“जिसका महाराज ! तू ( इस समय ) काल समझे ।”

तब राजा प्रसेनजित् ० भगवान्‌के भाषणको अभिनन्दित कर, अनुमोदित कर, आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर चला गया ।

( इति ९—राजवग्ग २।१ )

## ६१—ब्रह्मायु-मुत्तन्त (२।५।१)

महापुरुष-लक्षण । बुद्धका रूप, समन, गृहस्थोंके घरमें प्रवेश, मोननका डंग । ब्राह्मण, वेदगू आदिको व्याख्या

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् पाँच सौ मिथुनोंके महामिथु-संघके साथ विदेह ( देश )में चारिका कर रहे थे ।

उस समय ( एक ) जीर्ण = वृद्ध = महल्लभ = अश्वगत = वयःप्राप्त जन्मसे १२० वर्षोंका ब्रह्मायु नामक ब्राह्मण मिथिला ( -नगर )में प्रसूता था । ( वह ) पाँचवें इतिहास और निघंटु-केटुम ( = कल्प ), अक्षरप्रभेद ( = शिक्षा-निरुक्त )-सहित तीनों वेदों का पारंगत, पद-श, वैयाकरण, लोकायत ( -शास्त्र ) तथा महापुरुषलक्षण ( = सामुद्रिक शास्त्र )में परिपूर्ण था । ब्रह्मायु ब्राह्मणने सुना—शाक्यकुलसे प्रव्रजित शाक्यपुत्र श्रमण गौतम पाँचसौ मिथुनोंके महान् मिथु-संघके साथ विदेहमें चारिका कर रहे हैं । उन आप गौतमका ऐसा संगल कीर्ति-शब्द फैला हुआ है—“वह भगवान् अर्हत् है” \* भगवान् बुद्ध हैं । वह ब्रह्मलोक सहित \*<sup>१</sup> ब्रह्मचर्यको प्रकाशित करते हैं । ऐसे अर्हत्तोंका दर्शन अच्छा होता है ।

उस समय ब्रह्मायु ब्राह्मणका उत्तर नामक भाणवक शिष्य था, ( जोकि ) पाँचवें इतिहास और निघंटु-केटुम-अक्षरप्रभेद-सहित तीनों वेदोंका पारंगत, पद-श, वैयाकरण, लोकायत ( -शास्त्र ) तथा महापुरुषलक्षणमें परिपूर्ण था । तब ब्रह्मायु ब्राह्मणने उत्तर भाणवकको संबोधित किया—

“तात, उत्तर ! यह शाक्यकुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम \* विदेहमें चारिका कर रहे हैं । उन आप गौतमका ऐसा संगल कीर्ति-शब्द फैला हुआ है—\* ब्रह्मचर्यको प्रकाशित करते हैं । ऐसे अर्हत्तोंका दर्शन अच्छा होता है । आओ, तात, उत्तर ! जहाँ श्रमण गौतम हैं, वहाँ जाओ । जाकर, श्रमण गौतमको जानो, कि आप गौतमका शब्द यथार्थ फैला हुआ है, या अयथार्थ ? क्या आप गौतम वैसे हैं, या नहीं ! तेरे द्वारा हम आप गौतमको जानेंगे ।”

“कैसे, भो ! मैं उन गौतमको जानूँगा—कि आप गौतमका ( कीर्ति- ) शब्द यथार्थ फैला हुआ है, या अयथार्थ ? क्या आप गौतम वैसे हैं या नहीं ?

“तात, उत्तर ! हमारे संघोंमें वृत्तीय महापुरुष-लक्षण आये हैं, जिनसे युक्त पुरुषकी येही गतिर्था होती है, और नहीं । यदि वह घरमें रहता है, तो जनपदों ( के राजपदपर ) स्थिरताको प्राप्त, चारों ओरों ( तक पृथिवी )को जीतनेवाला, सात रत्नोंसे युक्त धार्मिक धर्मराज अक्षरवर्ती राजा होता है । उसके यह स्तुत रख होते हैं—( १ ) चक्र-रत्न, ( २ ) दस्ति-रत्न, ( ३ ) अश्व-रत्न,

\* उस समय ( ई. पू. पाँचवीं, छठीं शताब्दी तक ) अवधैको वेदमें नहीं शामिल किया गया था ।

\* देखो पृष्ठ २२३ । \* तुलना करो अम्बुमुच ( दी. नि. ) ।



(४) मणि-रत्न, (५) स्त्री-रत्न, (६) गृहपति-रत्न, और (७) मातृवाँ परिणायक-रत्न । सहस्राधिक इसके धर-सैन्य-प्रसर्पक, धूर, वीर पुत्र होते हैं । वह सागर-पर्यन्त इस पृथिवीको बिना दण्ड, बिना दासके धर्मसे जीत कर शासन करता है । यदि वह धरसे बेचरहो प्रसजित होता है, तो कपट-मुला महत्त्व, सम्पत्-संबुद्ध होता है । तात उत्तर ! तुम्हारा मंत्रोंका दाता हूँ, और तुम प्रतिगृहीता हो ।”

महामु ब्राह्मणको—“हाँ, भो !” कह, उत्तर भाणवक आसनसे उठ अभिवादनकर प्रदक्षिणा कर विदेहमें जियर भगवान् थे, डभर चारिका (= वाघा) पर चढ़ पड़ा । कमशः चारिका करते जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान् के साथ “सम्मोदनकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये उत्तर भाणवक भगवान् के शरीरमें बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंको हँद रहा था । उत्तर भाणवक ने भगवान् के शरीरमें दोको छोप बत्तीस महापुरुषलक्षणोंमेंसे अधिकोशको देख लिया । सुदीर्घ जिह्वा और कोषाच्छादित वस्त्रि दोके चारोंमें सन्देहमें पड़ा हुआ था । तब भगवान् को यह हुआ—“यह उत्तर भाणवक मेरे शरीरमें बत्तीस महापुरुषलक्षणोंको देख रहा है । उत्तर भाणवक मेरे शरीर में दोको छोप • सन्देहमें पड़ा हुआ है ।”

तब भगवान् ने इस प्रकारका कहि-प्रभाव प्रकट किया, कि उत्तर भाणवकने भगवान् की कोषाच्छादित वस्त्रिको देख लिया । तब भगवान् ने जिह्वाको निकालकर उससे दोनों कानोंकी लपको छु दिया, नाकके दोनों छिद्रोंको छु दिया, जिह्वासे ललाटको आच्छादित कर दिया । तब उत्तर भाणवकको यह हुआ—“भगवन् गौतम बत्तीस महापुरुषलक्षणोंसे युक्त है । क्यों न मैं भगवन् गौतमका अनुगमन करूँ, और उसके ईर्ष्यापथ (= चाल ढाल) को देखूँ । तब उत्तर भाणवक ने भास तक अन्यायिणी (= न छोड़नेवाली) छायाकी भाँति भगवान् के पीछे पीछे फिरता रहा । तब सात भासके बाद डभर भाणवक विदेह (= देश) में जहाँ मिथिला है, वहाँ चारिकाके क्रिये चला । कमशः चारिका करते जहाँ मिथिला थी, जहाँ महामु, ब्राह्मण था, वहाँ पहुँचा । पहुँच कर महामु ब्राह्मणको अभिवादनकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे महामु ब्राह्मणसे उत्तर भाणवकने यह कहा—

“क्या तात उत्तर ! वैसा होते भगवान् गौतमका ( कीर्ति-) शब्द सत्यके अनुसार ही उठा हुआ है, अन्याया तो नहीं है ? क्या वह आप गौतम वैसे ही है, अन्यायवा नहीं है ?”

“भो ! वैसा होते भगवान् गौतमका ( कीर्ति-) शब्द सत्यके अनुसार (= मर्यादा) ही उठा हुआ है, अन्याया नहीं । वह आप गौतम वैसे ही है, अन्यायवा नहीं । भो ! आप गौतम बत्तीस महापुरुषलक्षणोंसे युक्त हैं ।—( १ ) आप गौतम सुप्रतिष्ठित-पाद (= जिसका पैर जमीन पर दराधर बैठता हो ) हैं, यह भो आप महापुरुष गौतमके महापुरुष-लक्षणोंमें एक हैं । ( २ ) आप गौतमके नोथे पैरके तलवोंमें सर्वाकार-परिपूर्ण नाभि-नेत्रि (= पुट्टी) युक्त सहस्र-शरीर वाले, चक्र हैं । ( ३ ) आप गौतम आयत-पाणि (= चौड़ी बूट्टीवाले ) हैं । ( ४ ) • दीर्घ-अंगुल • । ( ५ ) • मृदु-तरुण-हस्त-पाद • । ( ६ ) • जाल-हस्त-पाद (= अंगुलियोंके बीच वस्तुके पंजेकी भाँति चमड़ा ) • । ( ७ ) • उस्संखपाद (= गुल्फ ऊपर अवस्थित हैं, जिस पादमें ) • । ( ८ ) • एणीजंघ (= रुग वैसा पैरुकी वाला भाग जिसका हो ) • । ( ९ ) ( सीधे ) खड़े बिना झुके वह आप गौतम दोनों जाँघोंको अपने हाथके तलवोंसे छूते हैं (= आजातु-वाहु ) • । ( १० ) कोषाच्छादित वस्त्रिगुह्य (= पुरुष-इन्द्रिय ) • । ( ११ ) सुवर्ण-वर्ण • कंचनसमान त्वचावाले • । ( १२ ) सूक्ष्म-त्व ( छवि = ऊपरी चमड़ा ) है • जिससे कायापर मैल-धूल नहीं चिपटती • । ( १३ ) एकैकलोम, एक एक रोम कृपमें उनके एक एक रोम हैं • । ( १४ ) • ऊर्ध्व-लोमा, • उनके अंगनसमान नोले तथा प्रदक्षिणा ( बायेंसे दाहिनी ओर )

से कुंडलित लोभोंके सिरे ऊपरको उठे हैं ० । ( १५ ) ब्राह्म-ऋजु-मात्र (= लम्बे अकुटिल शरीर वाले ) ० । ( १६ ) रस-उत्सव (= सातों अंगोंमें पूर्ण जाकारवाले ) ० । ( १७ ) सिंह-पूर्वाह्न-काय (= छाती आदि शरीरका ऊपरी भाग सिंहकी भाँति जिसका हो ) ० । ( १८ ) चितान्तरास (= दोनों कंधोंका बिचला भाग जिसका चित = पूर्ण है ) ० । ( १९ ) न्यग्रोध-परिमंडल है, ०, जितनी काया इसके अनुसार व्यावाम (= चौड़ाई ), जितनी चौड़ाई उतनी काया ० । ( २० ) समवर्त-स्कंध (= समान परिमाणके कंधेवाले ) ० । ( २१ ) रसग-समी (= सुन्दर सिराओंवाले ) ० । ( २२ ) सिंह-हनु (= सिंहसमान पूर्ण डोहीवाले ) ० । ( २३ ) चन्वालीस-दन्त ० । ( २४ ) सम-दन्त ० । ( २५ ) अ-विवर-दन्त ० । ( २६ ) सु-शुक्र-दाढ (= लूप लफेद दाढ़वाले ) ० । ( २७ ) प्रभूत-जिह्वा ( लम्बी जीमवाले ) ० । ( २८ ) ब्राह्म-स्वर, करविष्ट ( पक्षीसे ) स्वरवाले ० । ( २९ ) अभिनोल-नेत्र (= अतसी पुष्प जैसी नीली आँखों-वाले ) ० । ( ३० ) गो-पद्मा (= गाय जैसी पलकवाले ) ० । ( ३१ ) इस आप गौतमके मोहंछि बौद्धमें स्वेत कौमल कपास लो ऊर्णा (= रोम-राजी ) हैं ० । ( ३२ ) उष्णीषशीर्ष (= पगड़ी जैसे चारों ओर समानाकार शिरवाले ) हैं आप गौतम, वह भी आप महापुरुष गौतमके महापुरुष लक्षणोंमें हैं । भो ! आप गौतम इन वस्तुस महापुरुष-लक्षणोंसे युक्त हैं ।

“वह भगवान् चलते वक्त पहिले दाहिना ही पैर उठाते हैं । वह न बहुत दूरसे पैर उठाते हैं, न बहुत समीप रखते हैं ! वह न अति शीघ्र चलते हैं, न अति शैत चलते हैं । न जानुसे जानुकी घट्टि करते चले हैं, न गुल्फ (= गुड़ी ) से गुल्फकी घट्टि (= रगड़ते ) चलते हैं । शीतले वह शक्भि (= उरु ) को ऊपर उठाते हैं, न शक्भिको नवाते हैं, न शक्भिका सन्नामन (= सुभागा ) करते हैं, न विनामन (= हिलाना ) करते हैं । चलते वक्त आप गौतमका मिचला शरीर ही हिलता है, काय-वळ (= शरीर फेंकने ) से नहीं चलते । बिना अवलोकन करते वह आप गौतम खारी कायासे अवलोकन जैसे करते हैं । वह न ऊपरको ओर अवलोकन करते हैं, न नीचेकी ओर अवलोकन करते हैं, न चारों ओर देखते चलते हैं । युगमात्र (= चार हाथ ) देखते हैं, उससे आगे उनकी सुली ज्ञान-दृष्टि होती है ।

“वह गृहस्थोंके घाके भीतर (= अन्तरघर ) कायाका उन्नामन (= ऊपर उठाना ) करते हैं, न अवनामन करते हैं, न कायाको सन्नामन करते हैं, न विनामन करते हैं । वह न आसनसे मुर न अतिसमीप ( काया ) को पकड़ते हैं । न हाथका अवलंब लेकर आसनपर बैठते हैं, न आसनपर कायाको फेंकते हैं । वह अन्तरघरमें न हाथकी चंचलता दिखलाते हैं, न पैर की चंचलता दिखलाते हैं, न जालु पर जालु रखकर बैठते हैं, न गुल्फको गुल्फपर चढ़ाकर ०, न हाथको ठुड़ीपर रखकर बैठते हैं । वह अन्तरघरमें बैठे हुए न सज्ज होते हैं, न काँपते हैं, न हिलते हैं, न परिवास (= चंचलता ) को प्राप्त होते हैं वह आप गौतम बिना सज्जतारहित, कम्पनरहित, वेजनरहित, पत्रिासरहित, रोमांचरहित, विवेकयुक्त हो अन्तरघरमें बैठते हैं ।

“वह पात्रमें जल ग्रहण करते वक्त न पात्रको ऊपर उठाते हैं, न पात्रका अवनामन (= नवाना ) करते हैं, न पात्रको सन्नामन करते हैं, न पात्रको विनामन करते हैं । वह ओदन (= भात ) न बहुत अधिक न बहुत कम ग्रहण करते हैं । आप गौतम ध्वंजन (= तैलन ) को ध्वंजनकी मात्रासे ग्रहण करते हैं, ग्राममें अधिक मात्रामें ध्वंजन नहीं ग्रहण करते । दो तीन बार करके आप गौतम मुखमें ग्रामको चबा कर खाते हैं । भातका लूठन अलग होकर उनके शरीरपर नहीं गिरता । भातका लूठन सुँहमें धँचे रहते वह दूसरा भास ( सुँहमें ) नहीं डालते । आप गौतम रसको प्रतिस्वेदन (= अनुभव ) करते आहार ग्रहण करते हैं, किन्तु रसमें रागको प्रतिस्वेदन



करते नहीं। आप गौतम आठ अंगों (= बातों) से युक्त आहार ग्रहण करते हैं—न अपलताके लिये, न मद्देके लिये, न भयनके लिये, न विभ्रूषणके लिये; जितना (आहार) इस कायाकी स्थिति और थापनके लिये, (भूषणकी) पोषाकी प्राप्तिके लिये, महात्त्वकी सहायताके लिये (आवश्यक है उतना ही ग्रहण करते हैं); इस प्रकार (इस आहारकी भद्रसे) पुरानी वेदना (= भोग) को हटायेगे, नई वेदनाको उत्पन्न न होने देंगे, मेरी (शरीर-)यात्रा भी होगी, निर्दोषता और सरल विहार भी होगा।

“वह भोजनके बाद पानी जल ग्रहण करते न पात्रका उच्चासन करते हैं, न अवनासन, सञ्जामन या विनासन करते हैं। वह भाषासे न बहुत कम न बहुत अधिक जल ग्रहण करते हैं। वह न पात्रको तुल्यतुल्य करते धोते हैं, न डलटते हुये पात्रको धोते हैं; न पात्रको भूमिपर फेंक कर हाथ धोते हैं। (उनके) हाथ धोते वह पात्र धुल जाते हैं, पात्र धोते वह हाथ धुल जाते हैं। वह पात्रके जलको न अति-दूर (से) छोड़ते हैं, न अति-समीपसे, न धुमाते छोड़ते हैं। वह भोजन कर चुकने पर न पात्रको भूमिपर फेंकते हैं, न, अति-दूर न अति-समीप (रखते हैं)। न पात्रसे बेपर्वा होते हैं, न सर्वथा उसको रक्षामें ही तत्पर रहते हैं।

“भोजनोपरान्त वह बोधी देर चुपचाप बैठते हैं, और अनुमोदन (= भोजन संबंधी अनुमोदन) के कालको अति-क्रमण करते हैं। भोजनोपरान्त वह उस भोजनका अनुमोदन करते हैं, उसकी मित्रा नहीं करते। और मरु (= मातृ) नहीं चाहते। उस (मिथु-)परिषद्को धार्मिक-कथा द्वारा संदर्शन = समादपन = सुसुप्तेजन = संप्रशंसन करते हैं। धार्मिक कथा द्वारा संदर्शन ० करके आसनसे उठ कर चले जाते हैं।

“वह न अति-शीघ्र चलते हैं, न अति-शून्य चलते हैं, न छूटनेकी इच्छा (जैसे) चलते हैं। आप गौतमके शरीरमें चीवर न अत्यन्त ऊपर रहता है, न अत्यन्त नीचे, न कायामें अत्यधिक सदा, न कायासे अत्यधिक निकला हुआ। आप गौतमके शरीरसे हवा चीवर उड़ाती नहीं। आप गौतमके शरीरमें घल भी नहीं चिमटता।

“वह आरामके भीतर पिछे आसन पर बैठते हैं। बैठकर पैर पसारते हैं। आप गौतम पादके मंडनमें तत्पर हो नहीं विहरते। वह पाद पसार कर, शरीरको सीधा रख, स्मृति (= होश) को सामने रखकर बैठते हैं। वह न आत्म-पीडाके लिये सोचते हैं, न पर-पीडाके लिये सोचते हैं, न दोनों (आत्म-पर-)पीडाके लिये सोचते हैं। आप गौतम आत्महित, पर-हित, उभय-हित, लोक-हितको चिन्तन करते ही आश्रित रहते हैं।

“वह आरामके भीतर परिषद्में धर्मोपदेश करते हैं। न उस परिषद्को उत्साहित (= उठाते) करते हैं, न अपसाहित (= गिराते) करते हैं। वरिष्ठ धार्मिक कथा द्वारा उस परिषद्को संदर्शित, समादपित, सुसुप्तेजित, संप्रशंसित करते हैं। आप गौतमके मुखसे घोष आठ अंगों (= बातों) के सहित निकलता है—(१) प्रामाणिक, (२) विज्ञेय, (३) संज्ञ, (४) श्रवणीय, (५) किन्तु (= सारयुक्त), (६) अविचारित (= अ-कटु), (७) गंभीर, और (८) मिनीदी (= सनत्वन)। परिषद् (के परिमाण) के अनुसार स्वरसे आप गौतम उपदेशते हैं, उनका घोष परिषद्से बाहर नहीं जाता, आप गौतमकी धार्मिक कथासे संदर्शित ० (श्रोतागण) आसनसे उठकर विना (सुझकर) देखाते चले जाते हैं, (किन्तु) भावसे छोड़े नहीं (जाते)।

“ओ ! हमने आप गौतमको गमन करते देखा, हमने आप गौतमको जड़े हुये देखा, अन्तरमें प्रवेष्टा करते देखा, अन्तर-धर (= गृहस्थके घर) में चुपचाप बैठे देखा; भोजनोपरान्त (भोजनको) अनुमोदन करते देखा। आरामको जाते देखा। आरामके भीतर चुपचाप बैठे देखा,

आरामके भीतर परिपक्वकी धर्मापदेश करते देखा । आप गौतम ऐसे ऐसे हैं, इससे भी अधिक हैं ।”

ऐसा कहनेपर ब्रह्मायु ब्राह्मणने आसनसे उठकर, उत्तरासंगको एक कंधेपर कर, जिस ( दिशा-की ) ओर भगवान् थे, उधर अंजलि जोड़ तीन बार उद्गान उदाना—“उन भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धको नमस्कार है, उन भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धको नमस्कार है, उन भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धको नमस्कार है । क्या कभी उन आप गौतमके साथ हमारा समागम होगा ! क्या कुछ कथा-संलाप होगा !!”

तब भगवान् क्रमशः विदेहमें चारिका करते, जहाँ मिथिला थी, वहाँ पहुँचे । वहाँ मिथिला में भगवान् मत्तादेव-आश्रयनमें विहार करते थे । मैथिल ब्राह्मण गृहपतियोंने सुना—‘शाक्य-कुलसे प्रसूत शाक्यपुत्र भ्रमण गौतम विदेहमें चारिका करते पाँच सौके महान् मिथु-संघके साथ मिथिलामें प्राप्त हुये हैं, और मिथिलामें मत्तादेव-आश्रयनमें विहार करते हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा कल्याण कीर्तिशब्द उठा हुआ है—वह भगवान् अर्हत् ०<sup>१</sup> ऐसे अर्हत्तोंका दर्शन अच्छा होता है ।’

तब मैथिल ब्राह्मण गृहपति जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर कोई कोई भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये ०<sup>२</sup> कोई कोई खुपचाप हो एक ओर बैठ गये ।

ब्रह्मायु ब्राह्मण ने सुना—‘शाक्यकुलसे प्रसूत शाक्यपुत्र भ्रमण गौतम ० मिथिलामें प्राप्त हुये हैं । और मिथिलामें मत्तादेव-आश्रयनमें विहार करते हैं । तब ब्रह्मायु ब्राह्मण बहुतसे भाणवों के साथ जहाँ मत्तादेव-आश्रयन था, वहाँ गया । तब ब्रह्मायु ब्राह्मणको आश्रयनके पास जानेपर यह हुआ—‘यह मेरे लिये ठीक नहीं, कि बिना पहिले सूचित किये मैं दर्शनके लिये जाऊँ ।’

तब ब्रह्मायु ब्राह्मणने एक भाणव( = विद्यार्थी )से कहा—‘आओ भाणवक ! तुम जहाँ भ्रमण गौतम हैं, वहाँ जाओ । जाकर मेरे वचनसे भ्रमण गौतमकी अल्पावाधा ( = आरोप्य ) = अल्पातद्वा, लघुस्थान ( = कुर्ती ) बल, प्राशु-विहार ( = सुख पूर्वक विहरना ) पूछना, ‘ओ गौतम ! ब्रह्मायु ब्राह्मण आप गौतमकी अल्पावाधा ( = आरोप्य ) ० पूछता है’ । और यह भी कदना—‘ब्रह्मायु ब्राह्मण जीर्ण = वृद्ध = महल्लक, = अधवगत = वयोनुप्राप्त, जन्मसे एक सौ बीस वर्षका है । वह आप गौतमके दर्शनकी इच्छा रखता है’ ।”

“अच्छा, ओ”—( कह ) वह भाणवक ब्रह्मायु ब्राह्मणको उत्तर दे, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्के साथ—‘संमोदन कर एक ओर—‘खदा हो—‘भगवान्से बोला—

“ओ गौतम ! ब्रह्मायु ब्राह्मण आप गौतमकी अल्पावाधा ० पूछता है । ० ओ गौतम ! ब्रह्मायु ब्राह्मण ० वृद्ध ० एक सौ बीस वर्षका है । वह ०<sup>३</sup> तीनों वेदोंका पारंगत ० महापुरुष लक्षणमें परिपूर्ण है । मिथिलामें जितने ब्राह्मण गृहपति बसते हैं, ब्रह्मायु ब्राह्मण, भोग, मंत्र ( वेद ), आयु और यश—‘सब तरह इनमें अग्र ( = श्रेष्ठ ) है, वह आप गौतम का दर्शन चाहता है ।”

“भाणवक ! ब्रह्मायु ब्राह्मण इस वक्त जिसका काल समझे ( वँसा करे ) ।”

तब वह भाणवक जहाँ ब्रह्मायु ब्राह्मण था, वहाँ गया, जाकर ब्रह्मायु ब्राह्मणसे बोला—

“ओ ! भ्रमण गौतमने आपकी अवकाश दे दिया, अब आप जिसका काल समझें ।”

तब ब्रह्मायु ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । उस ( ब्राह्मण- ) परिपक्वने दूरसे ही ब्रह्मायु ब्राह्मणको आते देखा । देखते ही जात ( = प्रसिद्ध ) और यशस्वी, उसके लिये अवकाश कर दिया । तब ब्रह्मायु ब्राह्मणने उस परिपक्वसे यह कहा—

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ १५८ ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ १६८ ।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ १८६ ।



“वहीं, भो ! आप सब अपने आसनपर बैठें । मैं यहाँ भ्रमण गीतमके समीप बैठूँगा ।”

तब ब्रह्मायु ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहीं गया । जाकर भगवान्के साथ “संमोदन कर एक ओर बैठा । एक ओर बैठा ब्रह्मायु ब्राह्मण, भगवान्के शरीरमें महापुरुष लक्षणोंको ढूँढ़ रहा था ०” दोके बारेमें संदेहमें पड़ा हुआ था । तब ब्रह्मायु ब्राह्मणने भगवान्से गाथाओं द्वारा कहा—

“जो मैंने वत्सीस महापुरुष-लक्षण सुने हैं ।

उनमें से दोको आप गीतमके शरीरमें नहीं देखता ।

नरोत्तम ! क्या आपका वस्तिगुह्य कोपाच्छादित है -

स्त्री-इन्द्रिय-समान ? जीम छोटी तो नहीं ?

दीर्घजिह्वा तो हो ? जैसे हृन् उसे जानें,

( जैसे ) इसे ओषा निकालें । कपे ! शंका दूर करें;

इस जन्मके हितके लिये और पर-जन्ममें सुखके लिये ।

आज्ञा पाकर जो कुछ अभीष्ट है, पूछूँगा ।”

भगवान्को यह हुआ—“यह ब्रह्मायु ब्राह्मण मेरे शरीरमें वत्सीस महापुरुष-लक्षणोंको देख रहा है ०” जिह्वासे ललाटको आच्छादितकर दिया । तब भगवान्ने ब्रह्मायु ब्राह्मणसे गाथाओंमें कहा—

“जो तुने वत्सीस महापुरुष-लक्षण सुने हैं ।

वह सब मेरे शरीरमें हैं, ब्राह्मण ! तुझे संदेह मत हो ।

अभिज्ञेय, अभिज्ञात हो गया, भावनीयको भावित कर लिया ;

प्रहातय्यको प्रहीण कर दिया, इसलिये ब्राह्मण ! मैं खुद हूँ ।

इस जन्मके हितार्थ और जन्मान्तरके सुखार्थ ;

सुदी है, जो कुछ अभीष्ट हो पूछो ।”

ब्रह्मायु ब्राह्मणको यह हुआ—“भ्रमण गीतमने मुझे अवकाश दे दिया । क्या मैं भ्रमण गीतमसे इस लोकके संबंधमें पूछूँ, या परलोकके संबंधमें ( पूछूँ ) ? तब ब्रह्मायु ब्राह्मणको यह हुआ—“इस लोककी बातोंमें मैं चतुर हूँ, दूसरे भो मुझसे इहलौकिक बात पूछते हैं; क्यों न मैं भ्रमण गीतमसे सान्पराधिक ( = परलोक-संबंधी ) बातहीको पूछूँ ? तब ब्रह्मायु ब्राह्मणने भगवान्से गाथाओंमें कहा—

“भो ! कैसे ब्राह्मण होता है, कैसे वेदगू होता है ?

भो ! वैविद्य कैसे होता है, धोत्रिय क्या कहा जाता है ?

भो ! अहंत् कैसे होता है, कैसे केवली होता है ?

भो ! मुनि कैसे होता है, बुद्ध क्या कहा जाता है ?”

तब भगवान्ने ब्रह्मायु ब्राह्मणको गाथाओंमें उत्तर दिया—

“जो पूर्व जन्मको जानता है, स्वर्ग-नरकको जानता है ।

और ( जो ) जन्मके क्षयको प्राप्त, अभिज्ञा तत्पर ( है, वह ) मुनि है ।

जो रागोंसे बिलकुल मुक्त, विमोह-चित्तको जानता है ।

जन्म-मरण विलका नष्ट हो गया, ब्रह्मचर्म ( पूरा हो गया, वह ) केवली है ।

सारे भ्रमोंके पारंगु ( = पारंग )-तादिको बुद्ध कहा जाता है ।”

ऐसा कहनेपर ब्रह्मायु ब्राह्मण उत्तरासंगको एक कंधेपर कर भगवान्‌के चरणोंमें गिर रख, भगवान्‌के चरणोंको मुखसे चूमता, हाथको भी फेरता; नाम भी सुनाता—“ओ गौतम ! मैं ब्रह्मायु ब्राह्मण हूँ” “ओ गौतम ! मैं ब्रह्मायु ब्राह्मण हूँ”

तब वह परिपक्व विस्मृत चकित हो गई—“आश्चर्य मो ! अद्भुत मो ! असनकी महर्दिकता (= दिव्यशक्ति), भद्रानुभाक्ताको, जो कि ब्रह्मायु ब्राह्मण जैसा शात = यशस्वी इस प्रकार की परम नम्रता कर रहा है ।”

तब भगवान्‌ने ब्रह्मायु ब्राह्मणसे यह कहा—

“अलम्, ब्राह्मण उठो, पैदो अपने आसनपर ब्राह्मण ! तुम्हारा चित मेरेमें प्रसन्न है ।”

तब ब्रह्मायु ब्राह्मण उठकर अपने आसनपर बैठा ।

तब भगवान्‌ने ब्रह्मायु ब्राह्मणके लिये अनुपूर्विकथा जैसे—दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा, काम धातनाओंके दुष्परिमाण, अपकार, दोष; निष्काभताका माहात्म्य प्रकाशित किया । जब भगवान्‌ने ब्रह्मायु ब्राह्मणको मत्त्व-चित्त = मृदु-चित्त, जनाच्छादित-चित्त, आहादित-चित्त, प्रसन्न-चित्त देखा; तब जो बुद्धीकी उठानेवाली देशना (= उपदेश) है—दुःख, समुदय, निरोध और मार्ग—उसे प्रकाशित किया । जैसे कालिमा-रहित इत्येव वस्त्र अच्छी तरह रंग पकड़ता है; वैसे ही ब्रह्मायु ब्राह्मणको उसी आसनपर, ० ‘जो ह्रस्व समुदय-धर्म (= उत्पन्न होनेवाला) है, वह निरोध-धर्म (= नाशमान) है’—यह विरज = विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ ।

तब ब्रह्मायु ब्राह्मण रष्ट्रधर्म = प्राज्ञ-धर्म = विदित-धर्म पर्यवगात्र-धर्म, तीर्ण-विचिकित्स (= सुशान्त-रहित), कथोपकथन-विरत, वैशारद्य-प्राप्त (= निपुण), शास्ताके शासनमें अति श्रद्धावान्‌ हो, भगवान्‌से यह बोला—

“आश्चर्य ! ओ गौतम ! आश्चर्य !! ओ गौतम !! जैसे औधेको सीधा कर दे ०<sup>१</sup> आजसे मुझे अंबलिवद्ध शरणागत उपासक धारण करें । मिथु-संधके साथ आप गौतम कलका मेरा भोजन स्वीकार करें ।”

भगवान्‌ने औनसे स्वीकार किया ।

तब ब्रह्मायु ब्राह्मण भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादन कर, प्रदाक्षिणा कर चला गया ।

तब ब्रह्मायु ब्राह्मणने उस रातके बीच जानेपर, अपने घरपर उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार कर भगवान्‌को कालकी सूचना दी—

“यस्य हो गया, ओ गौतम ! भोजन तैयार है ।”

तब भगवान्‌ पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीवर ले जहाँ ब्रह्मायु ब्राह्मणका घर था, वहाँ गये; जाकर मिथु-संधके साथ घिरे आसनपर बैठे । तब ब्रह्मायु ब्राह्मणने अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य परोस कर, बुद्ध-प्रमुख मिथु-संधको संतर्पित = संप्रवारित किया ।

तब भगवान्‌ उस सप्ताहके बीचनेपर विदेह( देश )में चारिकाके लिये चल दिये । भगवान्‌के चले जानेके थोड़े ही समय बाद ब्रह्मायु ब्राह्मणने काल किया ।

तब बहुतसे मिथु जहाँ भगवान्‌ थे, वहाँ गये; जाकर भगवान्‌की अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे उन मिथुनें भगवान्‌से यह कहा—

“भन्ते ! ब्रह्मायु ब्राह्मण सर गया, इसकी क्या गति = क्या अभिसम्पराय है ?”



“मिथुनो ! अज्ञानु माहण पंडित था, धर्मके अनुसार चलनेवाला था, धर्मके विषयों उसने मुझे पंडित नहीं किया । मिथुनो ! अज्ञानु माहण पाँच अक्षरभागीय-संयोजनोंके श्रवसे औप-पातिक (= देवता ) हो, वहाँ निर्वाण प्राप्त करनेवाला है, उस लोकसे न लौट कर आनेवाला है ।”

भगवान् ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन मिथुनों ने भगवान् के भाषणको अभिनंदित किया ।

## ६२—सेल-सुत्तन्त (२।५।२)

हुक और धर्मके गुण । सेल ब्राह्मणकी प्रवचना

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् साढ़े बारह सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ, अंगुत्तराप ( देशमें ) चारिका करते हुये, जहाँपर—“आपण नामक निगम (=कथा) था, वहाँ पहुँचे ।

केणिय जटिलने सुना—शाक्य-कुलसे प्रव्रजित, शाक्य-पुत्र अमण गौतम साढ़े बारह सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ, अंगुत्तरापमें चारिका करते हुए, आपणमें आये हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा कल्याण कीर्ति-शब्द फैला हुआ है \* । \* । इस प्रकारके अर्हत्तोंका दर्शन उत्तम होता है ।

तब केणिय जटिल जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्के साथ—“संमोदन कर,“ ( कुशल-प्रश्न पूछ ) एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे केणिय जटिलको भगवान्ने धर्मके उपदेश द्वारा संदर्शन, समादपन, समुत्तेजन, संप्रशंसन किया । भगवान्के धर्म-उपदेश-द्वारा संदर्शित—“हो, केणिय जटिलने भगवान्से कहा—

“आप गौतम भिक्षु-संघ-सहित कलका मेरा भोजन स्वीकार करें ।”

ऐसा कहनेपर भगवान्ने केणिय जटिलसे कहा—

“केणिय ! भिक्षु-संघ बड़ा है, साढ़े बारह सौ भिक्षु हैं; और तुम ब्राह्मणोंमें प्रसन्न (= अग्रालु) हो ।”

दूसरी बार भी केणिय जटिलने भगवान्से कहा—

“क्या हुआ, ओ गौतम ! जो बड़ा भिक्षु-संघ है, साढ़े बारह सौ भिक्षु हैं, और मैं ब्राह्मणोंमें प्रसन्न हूँ ? आप गौतम भिक्षु-संघ-सहित कलका मेरा भोजन स्वीकार करें ।”

दूसरी बार भी भगवान्ने केणिय जटिलसे वही कहा—\* ।

\* तीसरी बार भी केणिय जटिलने भगवान्से वही कहा—\* ।

भगवान्ने मौन रह स्वीकार किया ।

तब केणिय जटिल भगवान्की स्वीकृतिको जान, भासनसे उठ, जहाँ उसका आलस था, वहाँ गया । जाकर मित्र-अमात्य, जाति-विराद्रीवालोंसे बोला—

“आप सब मेरे मित्र-अमात्य, जाति-विराद्री सुनें—मैंने भिक्षु-संघ-सहित अमण गौतम-को कलके भोजनके लिये निमंत्रित किया है, सो आप लोग शरीरसे सेवा करें ।”

“जच्छा, हो !” केणिय जटिलसे, \* मित्र-अमात्य, जाति-विराद्रीने कहा । ( उनमेंसे ) कोई चूल्हा खोदने लगे, कोई लकड़ी फाड़ने लगे, कोई घर्तन घोने लगे, कोई पानीके झटके

\* देखो एह १५८ ।



( = मणिक ) रखने लगे, कोई आसन बिछाने लगे । केणिय जटिल स्वयं घट-मंडप ( = मंडल-माल ) तैयार करने लगा ।

उस समय निघण्टु, कल्प ( = केटुम )—अक्षर-प्रभेद सहित तीनों वेद तथा पाँचवें इतिहासमें पारकृत, पट्टक ( = कवि ), वैपाकरण, लोकायत ( शास्त्र ) तथा महापुरुष-लक्षण ( = सामुद्रिक-शास्त्र )में निपुण ( = अन्वय ), शैल नामक ब्राह्मण आपणमें, वास करता था; और तीन सौ विद्यार्थियों ( = भाणवक )को मंत्र ( = वेद ) पढ़ाता था । उस समय शैल ब्राह्मण केणिय जटिलमें अत्यन्त प्रसन्न ( = खड़ावान् ) था । “तब ( वह ) तीन सौ भाणवकोंके साथ जंघा-विहार ( = चढ़ल-कदमी )के लिये दहलता हुआ, जहाँ केणिय जटिलका आश्रम था, वहाँ गया । शैल ब्राह्मणने देखा कि केणिय जटिलके जटिलों ( = जटाधारी, वाणप्रस्थी शिष्यों )में, कोई चूल्हा खोद रहे है ०, तथा केणिय जटिल स्वयं मंडल-माल तैयार कर ( रहा है ) । देखकर ( उसने ) केणिय जटिलसे कहा—

“क्या आप केणियके यहाँ आवाह होगा, विवाह होगा, या महा-यज्ञ या यहुँचा है ? क्या बल-काय ( = सेना )-सहित भगध-राज अंगिक विधिवत्, फलके भोजनके लिये निमंत्रित किया गया है ?”

“नहीं, शैल ! न मेरे यहाँ आवाह होगा, न विवाह होगा और न बल-काय-सहित भगध-राज अंगिक विधिवत् फलके भोजनके लिये निमंत्रित है, बल्कि मेरे यहाँ महायज्ञ है । शाक्य-कुलसे प्रसन्नित शाक्य-पुत्र अमण गौतम साठे बारह सौ भिक्षुओंके महामिक्षु-संघ-के साथ अंगुत्तरापमें पारिका करते, आपणमें जाये हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा अंगल कीर्ति-शब्द फैला हुआ है—वह भगवान् अहंत्, सम्यक्संबुद्ध, विद्या-आचरण-संपन्न, सुगत, लोकविद्, अनुत्तर ( = अनुपम ) पुरुषोंके चातुक्-सवार, देव-मनुष्योंके शास्त्रा, बुद्ध भगवान् हैं । वह भिक्षु-संघ-सहित फल मेरे यहाँ निमंत्रित हुये हैं । ० ।

“हे केणिय ! ( क्या ) ‘बुद्ध’ कह रहे हो ?”

“हे शैल ! ( हाँ ) ‘बुद्ध’ कह रहा हूँ ।”

“० बुद्ध कह रहे हो ?”

“० बुद्ध कह रहा हूँ ।”

“० बुद्ध कह रहे हो ?”

“० बुद्ध कह रहा हूँ ।”

तब शैल ब्राह्मणको हुआ—‘बुद्ध’ ऐसा घोष ( = आवाज ) भी लोकमें दुर्लभ है । हमारे भंत्रोंमें महापुरुषोंके वचन लक्षण आप् हुए हैं, जिनसे कुछ महापुरुषको दोहो गतिपाँईं । यदि वह घरमें वास करता है, तो चारों ओर तक्का राम्यवाला, धार्मिक धर्म-राजा चक्रवर्ती—राजा ( होता ) है—वह सागर-पर्यन्त इस पृथिवीको विना वृण्ड-वाचसे, धर्मसे विजय कर शासन करता है । और यदि घर छोड़ बेघर हो प्रव्रजित होता है, ( तो ) लोकमें आच्छादन-रहित अहंत् सम्यक्संबुद्ध होता है ।”—“हे केणिय ! तो फिर कहाँ वह आप गौतम अहंत् सम्यक्संबुद्ध, इस समय विहार करते हैं ?”

ऐसा कहने पर केणिय जटिलने दाहिनी बाँह पकड़ कर, शैल ब्राह्मणसे यह कहा—

“हे शैल ! जहाँ वह शैल वन-पाँती है ।”

तब शैल तीन सौ भाणवकोंके साथ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । तब शैल ब्राह्मणने उन भाणवकोंसे कहा—

“आप लोग निःशब्द ( = अल्प-शब्द ) हो, पैरों के बाद पैर रखते जायें । सिद्धोंकी भाँति वह भगवान् अकेले विचरनेवाले, ( और ) दुर्लभ होते हैं । और जब मैं श्रमण गौतमके साथ संवाद करूँ, तो आप लोग मेरे बीचमें घात न उठावें । आप लोग मेरे ( कथन )की स्मृति तक चुप रहें ।”

तब शैल ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्के साथ सम्मोदनकर—  
( = कुशल प्रश्न पूछ ) “एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठ शैल ब्राह्मण भगवान्के शरीरमें महापुरुषोंके वृत्तोंस लक्षण जोसने लगा । शैल ब्राह्मणने वृत्तोंस महापुरुष-लक्षणोंमेंसे दोको छोड़ अधिकांश भगवान्के शरीरमें देख लिये । दो महापुरुष-लक्षणों—शिल्लोसे ढँकी पुरुष-गुणोंद्रिय, और अति-दीर्घ-जिह्वा—के बारेमें—“सन्देहमें था—” तब भगवान्ने इस प्रकारका योग-बल प्रकट किया, जिससे कि शैल ब्राह्मणने भगवान्के कोप-आच्छादित वस्त्रि-गुणोंको ऐंसा । फिर भगवान्ने जोम निकालकर ( उतसे ) दोनों कानोंके ओतकी छुवा—, सारे ललाट-मंडलको जीमसे ढाँक दिया । तब शैल ब्राह्मणको ऐसा ( विचार ) हुआ—श्रमण गौतम अ-परिपूर्ण नहीं, परिपूर्ण वृत्तोंस महापुरुष-लक्षणोंसे युक्त है । लेकिन कह नहीं सकता—बुद्ध है, या नहीं । बुद्ध = महत्त्वक ब्राह्मणों आचार्य-प्रचार्योंको कहते सुना है—कि जो अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध होते हैं, वह अपने गुण कहे जानेपर अपनेको प्रकाशित करते हैं । क्यों न मैं श्रमण गौतमके सम्युच्च उपयुक्त गाथाओंसे स्तुति करूँ । तब शैल ब्राह्मण भगवान्के सामने उपयुक्त गाथाओंसे स्तुति करने लगा—

“परिपूर्ण-काया सुन्दर कवि ( = कवि ) वाले, सुजान, चारु-दर्शन,

सुवर्णवर्ण हो भगवान् ! सु-शुद्ध-दाँत हो, ( और ) वीर्यवान् ॥ १ ॥

सुवात ( = सुन्दर जन्मवाले ) पुरुषके जो व्यंजन ( = लक्षण ) होते हैं,

वह सभी महापुरुष-लक्षण तुम्हारी कायामें ( हैं ) ॥ २ ॥

प्रसन्न ( = निर्मल )-नेत्र, सुसुख, धई सीधे, प्रताप-वान्,

( आप ) श्रमण-संघके बीचमें आदिस्थकी भाँति विराजते हो ॥ ३ ॥

कल्याण-दर्शन, भो मिश्र ! कंचन-समान शरीरवाले !

ऐसे उत्तम वर्णवाले तुम्हें श्रमण-भाव ( = मिश्र होने )में क्या ( रक्ता ) है ? ॥ ४ ॥

तुम तो चारों ओरके राज्यवाले, अम्बूहोपके स्वामी ।

खर्चमें, चक्रवर्ती, राजा हो सकते हो ॥ ५ ॥

क्षत्रिय भाव-राजा ( = मांडलिक-राजा ) तुम्हारे अनुयायी होंगे ।

भो गौतम ! राजाधिराज अनुवेन्द्र हो, राज्य करो ॥ ६ ॥”

( भगवान्— ) “शैल ! मैं राजा हूँ, अनुपम धर्मराजा ।

मैं न पलटनेवाला—” चक्र धर्मके साथ चला रहा हूँ ॥ ७ ॥”

( शैलब्राह्मण— ) “अनुपम धर्म-राजा संबुद्ध ( अपनेको ) कहते हो ?

भो गौतम ! ‘धर्मसे चक्र चला रहा हूँ’ कह रहे हो ॥ ८ ॥

कौन सा आप शास्ताका दन्तप ( = नाग ) आवाक सेनापति है ?

कौन इस चलाये धर्म-चक्रको अनु-चालन कर रहा है ॥ ९ ॥

( भगवान्— ) “शैल ! ) मेरे द्वारा संचालित चक्र, अनुपम धर्म-चक्रको ।

तथागतका अनुजात ( = पीछे उत्पन्न ) सारिपुत्र अनुचालितकर रहा है ॥ १० ॥

हातधम्यको जान लिया, भावनीपकी भावना करली ।

परित्याज्यको छोड़ दिया, अतः हे ब्राह्मण ! मैं बुद्ध हूँ ॥ ११ ॥



ब्राह्मण ! मेरे विषयमें संशयको हटाओ, छोड़ो ।

बार बार संकुञ्चोंका दर्शन दुर्लभ है ॥ १२ ॥

लोकमें जिसका बार बार प्रादुर्भाव दुर्लभ है ,

वह मैं ( राग आदि ) शब्दका छेदनेवाला अनुपम, संकुञ्च हूँ ॥ १३ ॥

बद्ध-भूत तुलना-रहित, भार ( = रागादि शत्रु )-सेनाका प्रसर्दक ,

( मुझे ) देखकर कौन न संतुष्ट होगा, चाहे वह कृष्ण-<sup>१</sup>अभिजातिक क्यों न हो ॥ १४ ॥

( शैल — ) “ओ मुझे चाहता है, ( वह मेरे ) पीछे आवे, जो नहीं चाहता, वह जाने ।

( मैं ) यहाँ उत्तम-प्रज्ञावाले ( बुद्ध )के पास प्रव्रजित होऊँगा ॥ १५ ॥”

( शैलके शिष्य — ) “यदि आपको यह सम्यक्-संकुञ्चका शासन ( = धर्म ) रुचता है ।

( तो ) हम भी वर-प्रज्ञाके पास प्रव्रजित होंगे ॥ १६ ॥

यह जितने तीन सौ ब्राह्मण हाथ-जोड़े हैं ।

( यह ) सभी भगवन् ! तुम्हारे पास ब्रह्मचर्यचरण करेंगे ॥ १७ ॥

( भगवान् — “शैल ! ) ( यह ) <sup>२</sup>सांकेतिक <sup>३</sup>अकालिक <sup>४</sup>स्वाध्यायत ब्रह्मचर्य है ।

जहाँ प्रमाद-शून्य सीखनेवालेकी प्रव्रज्या अ-भोष है ॥ १८ ॥”

शैल ब्राह्मणने परिषद्-सहित भगवान्के पास प्रव्रज्या और उपसंपदा पाई ।

तब केणिय जटिलने उस रातके बीतनेपर, अपने आश्रममें उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा, भगवान्को कालकी सूचना दिलवाई<sup>५</sup> । तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहाँ केणिय जटिलका आश्रम था, वहाँ गये । जाकर बिछे आसनपर मिश्र-संघके साथ बैठे । तब केणिय जटिलने बुद्ध-प्रमुख मिश्र-संघको अपने हाथसे, संतर्पित किया, पूर्ण किया । केणिय जटिल भगवान्के भोजनकर, पात्रसे हाथ हटा लेनेपर एक मोचा आसन ले, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये केणिय जटिलको भगवान्ने इन गाथाओंसे ( वान्- ) अनुमोदन किया—

“यज्ञोंमें मुख अग्नि-होष है, ज्नोंमें मुख ( = मुख ) <sup>६</sup>सावित्री है ।

मनुष्योंमें मुख राजा है, नदियोंमें मुख सागर है ॥ १ ॥

तक्षशोंमें मुख चन्द्रमा है, तपनेवालों में मुख आदित्य है ।

इच्छितोंमें ( मुख ) पुण्य ( है ), यजन ( = पूजा ) करनेमें मुख संघ है ॥ २ ॥”

भगवान् केणिय जटिलको इन गाथाओंसे अनुमोदित कर आसनसे उठकर चल दिये ।

तब आयुष्मान् शैल परिषद्-सहित एकान्तमें प्रमाद-रहित, उद्योग-युक्त, आत्म-निग्रही हो विहरते अचिरमें ही, जिसके लिये कुल-पुत्र घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, उस अनुपम ब्रह्मचर्यके अन्त ( = निर्वाण ) को, इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात्कर, प्राप्तकर, विहरने लगे । ‘जन्म क्षय हो गया, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हो गया । करणीय कर लिया गया, और यहाँ कुछ करना नहीं’—यह जान गये । परिषद्-सहित आयुष्मान् शैल अर्हत् हुये ।

तब आयुष्मान् शैलने शास्ता ( = बुद्ध )के पास जाकर, चीवरको ( दक्षिण कंधा गंगा स्नान ) एक कंधेपर ( स्नान ), निधर भगवान् थे, ऊपर अञ्जलि जोड़, भगवान्से गाथाओंमें कहा—

“ओ चक्षु-मान् ! जो मैं आजसे आठ दिन पूर्व तुम्हारी शरण आया ।

ओ भगवान् ! तुम्हारे शासन में सातही रातमें मैं दत्त हो गया ॥ ३ ॥

<sup>१</sup> दुर्गोति भरा ।

<sup>२</sup> प्रत्यक्ष फल-प्रद ।

<sup>३</sup> न कालान्तरमें फल-प्रद ।

<sup>४</sup> सुन्दर प्रकारसे व्याख्यान किया गया ।

<sup>५</sup> सानिध्य गायत्री ।

तुम्हीं बुद्ध हो, तुम्हीं शास्ता हो, तुम्हीं मार-विजयी सुनि हो ।

तुम ( राम आदि ) अतुशयोंको छिन्नकर, ( स्वयं ) उत्तीर्ण हो, इस प्रजाको तारते हो ॥२॥

उपधि तुम्हारी हट गई, आध्रव तुम्हारे विदारित हो गये ।

सिंह-समान, भव( -सागर )की मोषणतासे रहित, तुम \*उपादान-रहित हो ॥३॥

यह तीन सौ मिथु हाथ जोड़े खड़े हैं ।

हे वीर ! पाद प्रसारित करो, ( यह ) नाग ( = पाप-रहित ) शास्ताकी वंदना करें ॥४॥<sup>१</sup>

\* परिश्रम ।



## ६३—अस्सत्तायण-मुत्तन्त (२।५।३)

वर्ण-व्यवस्थाका संवदन

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथापिण्डिकके आराम जेतवनमें विहार कर रहे थे ।

उस समय नाना देशोंके पाँच सौ ब्राह्मण किसी कामसे श्रावस्तीमें छद्रे थे । तब उन ब्राह्मणोंको यह ( विचार ) हुआ—यह श्रमण गौतम चारों वर्णोंकी बुद्धि ( = चातुर्व्यण्णी बुद्धि ) का उपदेश करता है । कौन है जो श्रमण गौतमसे इस विषयमें वाद कर सके ? उस समय श्रावस्ती में आश्वलायन नामक निर्घट्ट-केटुभ ( = कल्प )-अक्षर-प्रभेद ( = शिक्षा )-सहित गीनों वेदों तथा पाँचवें इतिहासमें भी पारङ्गत, यदक ( = कवि ), वैयाकरण, लोकायत महापुरुष-लक्षण ( शास्त्रों ) से निपुण, वपित ( = सुगन्धित )-शिर, तरुण भाणवक ( = विद्यार्थी ) रहता था । तब उन ब्राह्मणों को यह हुआ—यह श्रावस्तीमें आश्वलायन ० भाणवक रहता है, यह श्रमण गौतमसे इस विषय में वाद कर सकता है ।

तब वह ब्राह्मण जहाँ आश्वलायन भाणवक था, वहाँ गये । जाकर आश्वलायन भाणवकसे बोले—

“आश्वलायन ! यह श्रमण गौतम<sup>१</sup> चातुर्वर्णी बुद्धि उपदेश करता है । जाइये आप आश्वलायन श्रमण गौतमसे इस विषयमें वाद कीजिये ।”

ऐसा कहनेपर आश्वलायन भाणवकने उन ब्राह्मणोंसे कहा—

“श्रमण गौतम धर्मवादी है । धर्मवादी वाद करनेमें हुप्रति-मंथ ( = वाद करनेमें हुप्कर ) होते हैं । मैं श्रमण गौतमके साथ इस विषयमें वाद नहीं कर सकता ।”

दूसरी बार भी उन ब्राह्मणोंने आश्वलायन भाणवकसे कहा ० ।

तीसरी बार भी उन ब्राह्मणोंने आश्वलायन भाणवकसे कहा—

“मो आश्वलायन ! यह श्रमण गौतम चातुर्वर्णी बुद्धिका उपदेश करता है । जाइये आप आश्वलायन श्रमण गौतमसे इस विषयमें वाद कीजिये । आप आश्वलायन युद्धमें बिना पराजित हुये ही अत पराजित हो जायेंगे ।”

ऐसा कहनेपर आश्वलायन भाणवकने उन ब्राह्मणोंसे कहा—

“... मैं श्रमण गौतमके साथ नहीं ( बार ) या सकता । श्रमण गौतम धर्म-वादी है ० । मैं श्रमण गौतमके साथ इस विषयमें वाद नहीं कर सकता । तो भी मैं आप लोगोंके कहनेसे जाऊँगा ।”

तब आश्वलायन भाणवक बड़े भारी ब्राह्मण-गणके साथ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया ।

<sup>१</sup> केवल ब्राह्मणोंको नहीं, चारों वर्णोंकी व्यास आदिसे पाप-बुद्धि मिलाने माधुरिय सुप्त (३४०-४३) भी ।

जाकर भगवान्‌के साथ ० संमोदन कर ।''' ( कुशल-प्रश्न-पृष्ठ )''' एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये आचलायन भाणवकने भगवान्‌से कहा—

“भो गौतम ! ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—‘ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, दूसरे वर्ण छोटे हैं । ब्राह्मण ही शुद्ध वर्ण है, दूसरे वर्ण कृष्ण हैं । ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं, अ-ब्राह्मण नहीं । ब्राह्मण ही ब्रह्माके औरस पुत्र हैं, मुझसे उत्पन्न, ब्रह्म-न ब्रह्म-निर्मित, ब्रह्माके दायाद हैं’ । इस विषयमें आप गौतम क्या कहते हैं ।”

“लेकिन आचलायन ! ब्राह्मणोंकी ब्राह्मणियाँ अस्तुमती, गर्भिणी, जनन करती, पिताकी देखी जाती हैं । योनिसे उत्पन्न होते हुए भी वह ( ब्राह्मण ) ऐसा कहते हैं—ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है ० !!!”

“यद्यपि आप गौतम ऐसा कहते हैं, फिर भी ब्राह्मण तो ऐसा ही कहते हैं—ब्राह्मण ही श्रेष्ठ ० ।”

“तो क्या मानते हो आचलायन ! तुमने सुना है कि ‘यवन और कम्बोजमें और दूसरे भी सीमान्त देशोंमें दो ही वर्ण होते हैं—आर्य और दास ( = गुलाम ) । आर्य हो दास हो (सक) ता है, दास हो आर्य हो (सक)ता है ?”

“हाँ, भो ! मैंने सुना है कि यवन और कम्बोजमें ० ।”

“आचलायन ! ब्राह्मणोंको क्या पल = क्या आधास है, जो ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—‘ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है ० ?”

“यद्यपि आप गौतम ऐसा कहते हैं, फिर भी ब्राह्मण तो ऐसा ही कहते हैं ० ।”

“तो क्या मानते हो, आचलायन ! क्षत्रिय, प्राणि-हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, लुगलु-खोर, कटुभाषी, बकवादी, लोभी, द्वेषी, मिथ्या-दष्टि ( = झूठी धारणावाला ) हो; ( तो क्या ) काया डोव, भरनेके बाद अपाय = दुर्गति = विनिपात = नरकमें उत्पन्न होगा, या नहीं ? ब्राह्मण प्राणि-हिंसक ० हो ० नरकमें उत्पन्न होगा या नहीं ? वैश्य ० ? शुद्र ० नरकमें उत्पन्न होगा या नहीं ?”

“भो गौतम ! क्षत्रिय भी प्राणि-हिंसक ० हो ० नरकमें उत्पन्न होगा । ब्राह्मण भी ० । वैश्य भी ० । शुद्र भी ० । सभी चारों वर्ण भो गौतम ! प्राणि-हिंसक ० हो ० नरकमें उत्पन्न होंगे ।”

“तो फिर आचलायन ! ब्राह्मणोंको क्या पल = क्या आधास है, जो ब्राह्मण ऐसा कहते हैं ० ।”

“० फिर भी ब्राह्मण तो ऐसा ही कहते हैं ० ।”

“तो क्या मानते हो, आचलायन ! क्या ब्राह्मण ही प्राणि-हिंसासे विरत होता है, चोरीसे विरत होता है, दुराचार ०, झूठ ०, लुगलु ०, कटुवचन ०, बकवादसे विरत होता है, अ-लोभी, अ-द्वेषी, सम्यक्-दष्टि ( = सच्ची दृष्टिवाला ) हो, शरीर डोव भरनेके बाद, सुगति स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है; क्षत्रिय नहीं, वैश्य नहीं, शुद्र नहीं ?”

“नहीं, भो गौतम ! क्षत्रिय भी प्राणि-हिंसा-विरत ० सुगति स्वर्ग-लोकमें उत्पन्न हो सकता है, ब्राह्मण भी ०, वैश्य भी ०, शुद्र भी ०, सभी चारों वर्ण ० ।”

“आचलायन ! ब्राह्मणोंको क्या पल ० । ०

<sup>१</sup> रूसी तुर्किस्तान ( ? ) जहाँ सिकन्दरके बाद यवन ( ग्रीक ) लोग बसे हुये थे; अथवा यूनान ।

<sup>२</sup> काफिरस्तान ( अफगानिस्तान ), अथवा ईरान ।



“ तो क्या मानते हो, आधलायन ! क्या ब्राह्मण ही वैद-रहित द्वैप-रहित मंत्रचित्तकी भावना कर सकता है, क्षत्रिय नहीं, वैश्य नहीं, शूद्र नहीं ? ”

“ नहीं, भो गौतम ! क्षत्रिय भी इस स्थानमें, भावना कर सकता है ० । ० । सभी चारों भावना कर सकते हैं । ”

“ यहाँ आधलायन ! ब्राह्मणोंको क्या बल ० ? ” ० ।

“ तो क्या मानते हो, आधलायन ! क्या ब्राह्मण ही संगल (= स्वस्ति) स्नान-पूर्ण लेकर नदीको जा, मैल धो सकता है, क्षत्रिय नहीं ० ? ”

“ नहीं, भो गौतम ! क्षत्रिय भी संगल स्नान-पूर्ण ले, नदी जा मैल धो सकता है ०, सभी चारों पूर्ण ० । ”

“ यहाँ आधलायन ! ब्राह्मणोंको क्या बल ० ? ” ० ।

“ तो क्या मानते हो, आधलायन ! ( यदि ) यहाँ सुद्धा-भिषिक्त क्षत्रिय राजा, नाना जातिके सौ-पुरुष इकट्ठे करे ( और उन्हें बहे )—आवे आप सब, जो कि क्षत्रिय कुलसे, ब्राह्मण-कुलसे और राजस्य (= राजसूतान ) कुलसे उत्पन्न हैं, और शाह (= साहू) की या सरल (= वृत्र ) की या चन्द्रमकी या पद्म ( काह ) की उत्तरारणी लेकर आग बनावे, तेज प्रादुर्भूत करें । ( और ) आप भी आवें जो कि चण्डालकुलसे, निषादकुलसे वसोर (= वेषु )-कुलसे रवकार-कुलसे, पुष्क-सकुलसे उत्पन्न हुये हैं, और कुत्तेके पीनेकी, सूअरके पीनेकी कठरीकी, धोषीकी कठरीकी, या रेंव-की लकड़ीकी उत्तरारणी लेकर, आग बनावे, तेज प्रादुर्भूत करें । तो क्या मानते हो, आधलायन क्षत्रिय-ब्राह्मण-वैश्य-शूद्रकुलोंसे उत्पन्न-द्वारा शाह-सरल-चन्द्रम-पद्मकी उत्तरारणीको लेकर, जो आग उत्पन्नकी गई है, तेज प्रादुर्भूत किया गया, क्या वही अर्चिमान् (= लौबाला ), वर्णवान् प्रभास्वर अग्नि होगा ? उसी आगसे अग्निका काम लिया जा सकता है ? और जो वह चांडाल-निषाद-वसोर-रवकार-पुष्कस-कुलोत्पन्नों द्वारा ध्यान-कठरीकी सूअर-पान-कठरीकी, रेंव-काष्ठकी उत्तरारणीको लेकर उत्पन्न आग है, प्रादुर्भूत तेज ( है ), वह अर्चिमान् वर्णवान् प्रभास्वर न होगा ? उस आगसे अग्निका काम नहीं लिया जा सकेगा ? ”

“ नहीं, भो गौतम ! जो वह क्षत्रिय ० कुलोत्पन्न द्वारा ० आग बनाई गई है ० वह भी अर्चिमान् ० आग होगी, उस आगसे भी अग्निका काम लिया जा सकता है; और जो वह चांडाल ० कुलोत्पन्न द्वारा ० आग बनाई गई है ० वह भी अर्चिमान् ० आग होगी । सभी आगसे अग्निका काम लिया जा सकता है । ”

“ यहाँ आधलायन ! ब्राह्मणोंका क्या बल ० ? ” ० ।

“ तो क्या मानते हो, आधलायन ! यदि क्षत्रिय-कुमार ब्राह्मण-कन्याके साथ संवास करे । उनके सहवाससे पुत्र उत्पन्न हो । जो वह क्षत्रिय-कुमार द्वारा ब्राह्मण-कन्यामें पुत्र उत्पन्न हुआ है, क्या वह माताके समान और पिताके समान, ‘क्षत्रिय ( है )’, ‘ब्राह्मण ( है )’ कहा जाना चाहिये ? ” “ भो गौतम ! ० कहा जाना चाहिये । ”

“ ० आधलायन ! यदि ब्राह्मण-कुमार क्षत्रिय-कन्याके साथ संवास करे ० ‘ब्राह्मण ( है )’ कहा जाना चाहिये ? ” “ ० ‘ब्राह्मण ( है )’ कहा जाना चाहिये । ”

“ ० आधलायन ! यहाँ घोड़ीको गद्देसे जोड़ा खिलायें, उनके जोड़से किसोर (= बज्जा ) उत्पन्न हो । क्या वह माता ० पिताके समान, ‘घोड़ा है’ ‘गद्दा है’ कहा जाना चाहिये ? ”

“ ० भो गौतम ! वह अश्वर (= अश्वर ) होता है । यहाँ ‘भेद’ देखता हूँ । उन वृत्तोंमें कुछ भेद नहीं देखता । ”

“० आभलायन ! यहाँ दो माणवक जमुवे भाई हों । एक अभ्यायन करनेवाला, और उपनीत (= उपनयन द्वारा गुरुके पास प्राप्त) है; दूसरा अन्-अभ्यायक और अन्-उपनीत ( है ) । आह, यज्ञ या पाहुनाई (= पाहुने ) में, ब्राह्मण किसको प्रथम भोजन करावेंगे ?”

“भो गौतम ! जो वह माणवक अभ्यायक और उपनीत है, उसीको ० प्रथम भोजन करावेंगे । अन्-अभ्यायक अन्-उपनीतको देनेसे क्या महाफल होगा ?”

“तो क्या मानते हो, आभलायन ! यहाँ दो माणवक जमुवे भाई हों । एक अभ्यायक उपनीत, ( किन्तु ) दुःशील (= दुराचारी ) पाप-धर्मा (= पापी ) हो; दूसरा अन्-अभ्यायक अन्-उपनीत, ( किन्तु ) शीलवान् कल्याण-धर्मा । इनमें किसको ब्राह्मण साधु या यज्ञ या पाहुनाईमें प्रथम भोजन करावेंगे ?”

“भो गौतम ! जो वह माणवक अन्-अभ्यायक, अन्-उपनीत, ( किन्तु ) शील-वान् कल्याण-धर्मा है, उसीको ब्राह्मण ० प्रथम भोजन करावेंगे । दुःशील = पाप-धर्मको दान देनेसे क्या महा-फल होगा ?”

“आभलायन ! पहिले तू जातिपर पहुँचा, जातिपर जाकर भ्रष्टों पर पहुँचा, भ्रष्टोंपर जाकर अथ तू चातुर्वर्णीं शुद्धिपर भागवा, जिसका कि मैं उपदेश करता हूँ ।”

ऐसा कहनेपर आभलायन माणवक चुप होगया, मूक हो गया, “अधोमुख चिन्तित, निष्प्रतिम हो बैठा ।

तब भगवान् ने आभलायन माणवकको चुप मूक ० निष्प्रतिम बैठे देख...कहा—

“पूर्वकालमें आभलायन ! जंगलमें, पर्णकुटियोंमें वास करते हुये सात ब्राह्मण-ऋषियोंको, इस प्रकारकी पाप-दृष्टि (= बुरी धारणा ) उत्पन्न हुई—ब्राह्मणही श्रेष्ठ वर्ण है ० । आभलायन ! तब अस्तित्व देखल ऋषिने सुना, ० सात ब्राह्मण ऋषियोंको इस प्रकारकी पाप-दृष्टि उत्पन्न हुई है ० । तब आभलायन ! अस्तित्व देखल ऋषि तिर-दायी मुँडा भँजीठके रंगका (= लाल ) धूम्रा पहिन, कपडाँपर चढ़, सोने-चाँदीका वंड धारणकर, सातों ब्राह्मण ऋषियोंको कुटीके आँगनमें प्रादुर्भूत हुये । तब आभलायन ! अस्तित्व देखल ऋषि सातों ब्राह्मण ऋषियोंके कुटीके आँगनमें टहलते हुये कहने लगे—“है ! आप ब्राह्मण-ऋषि कहाँ चले गये ? है ! आप ब्राह्मण-ऋषि कहाँ चले गये ?” तब आभलायन ! उन सातों ब्राह्मण ऋषियोंको हुआ—“कौन है यह गँवार लड़केकी तरह सातों ब्राह्मण ऋषियोंके कुटीके आँगनमें टहलते ऐसे कह रहा है—है ! आप ० अच्छा तो इसे शाप देवें ।” तब आभलायन ! सात ब्राह्मण-ऋषियोंने अस्तित्व देखल ऋषिको शाप दिया—“वृद्ध ! (= वृषल ) भस्म हो जा ।” जैसे जैसे आभलायन ! सात ब्राह्मण ऋषि अस्तित्व देखल ऋषिको शाप देते थे, वैसेही वैसे...देवल ऋषि अधिक सुन्दर, अधिक दर्शनीय = अधिक प्रासादिक होते जा रहे थे । तब आभलायन ! सातों ब्राह्मण ऋषियोंको हुआ—“हमारा तप व्यर्थ है, ब्रह्मचर्य निष्फल है । इस पहिले जिसको शाप देते—“वृषल ! भस्म होजा”, भस्मही होता था । इसको हम जैसे जैसे शाप देते हैं, वैसे वैसे यह अभिरूप-तर, दर्शनीय-तर, प्रासादिक-तर, होता जा रहा है ।” ( देवलने कहा )—“आप लोगों का तप व्यर्थ नहीं, ब्रह्मचर्य निष्फल नहीं, आप लोगीका मन जो मेरे प्रति वृत्ति हो गया है, उसे छोड़ दें ।” ( उन्होंने कहा )—“जो मनोपदोस (= मानसिक दुःभाव ) है, उसे हम छोड़ते हैं, आप कौन हैं ?” “आप लोगोंने अस्तित्व देखल ऋषिको सुना है ?” “हाँ, भो !” “वही मैं हूँ ।”

“तब आभलायन ! सातों ब्राह्मण ऋषि, अस्तित्व देखल ऋषिको अभिवादन करनेके लिये पास गये । अस्तित्व देखल ऋषिने कहा—“मैंने सुना...” कि “अरण्यके भीतर पर्णकुटियोंमें वास



करते, सात \* कपिओंको इस प्रकारकी \* उत्पन्न हुई है—ब्राह्मणही ओठ वर्ण है \* । 'हाँ भो !' 'जानते हैं आप, कि जननी = माता ब्राह्मणहीके पास गई, अ-ब्राह्मणके पास नहीं ?' 'नहीं !' 'जानते हैं आप, कि जननी = माताको माता सात घोड़ी तक मातामहयुगल (= बानो ) ब्राह्मणहीके पास गई, अ-ब्राह्मणके पास नहीं ?' 'नहीं भो !' 'जानते हैं आप कि जनिता = पिता \* पितामह-युगल (= दादा ) सातवीं घोड़ी तक ब्राह्मणीहीके पास गये, अ-ब्राह्मणीके पास नहीं ?' 'नहीं भो !' 'जानते हैं आप, गर्भ कैसे ठहरता है ?' 'हाँ जानते हैं भो ! जब माता-पिता एकत्र होते हैं, माता क्लृप्त होती है, और गर्भ ( = उत्पन्न होने वाला स्त्व ) उत्पन्न होता है; इस प्रकार तीनोंके एकत्रित होनेसे गर्भ ठहरता है ।' 'जानते हैं आप, कि वह गर्भ अस्थि होता है, ब्राह्मण, वैश्य या क्षत्र होता है ?' 'नहीं भो ! हम नहीं जानते, कि वह गर्भ \* ।' 'जब ऐसा ( है ) तब जानते हो कि तुम कौन हो ?' 'भो ! हम नहीं जानते हम कौन हैं ।'

'हे आशलायन ! असित देवश कपि-द्वारा जातिवादके विषयमें पूछे जानेपर, "वह सातों ब्राह्मण कपि भी ( उत्तर ) न दे सके; तो फिर भाव तुम "क्या ( उत्तर ) दोगे, ( जब कि ) अपनी सारी दण्डिताई-सहित तुम उनके स्तोत्रेदार ( = दर्विब्राह्मण ) ( के समान ) हो ।"

ऐसा कहने पर आशलायन भाणवकने भगवान्से कहा—“आश्चर्य ! भो गौतम !! आश्चर्य ! भो गौतम !! \* । जानते मुझे अंगलि-यद् उपासक धारण करें ।”

## ६४—घोटमुख-सुत्तन्त (२।५।४)

चार प्रकारके पुरुष (आत्मन्तप...)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय आयुष्मान् उदयन वाराणसीमें खेमिय-अम्बवनमें विहार करते थे।

उस समय घोटमुख ब्राह्मण किसी कामसे बनारस (वाराणसी) आया हुआ था। तब घोटमुख-ब्राह्मण जंघा-विहारके लिये धूमते टहलते जहाँ खेमिय-अम्बवन (= खेमिक-आम्बवन) था, वहाँ गया। उस समय आयुष्मान् उदयन खुली जगहमें टहल रहे थे।

तब घोटमुख ब्राह्मण जहाँ आयुष्मान् उदयन थे, वहाँ गया; जाकर आयुष्मान् उदयनके साथ...संभोदन कर, आयुष्मान् उदयनके पीछे पीछे ० टहलते हुये वाह बोला—

“अहो अमण ! मुझे ऐसा होता है—धार्मिक प्रव्रज्या (= संन्यास) नहीं है। आप जैसेकि अ-व्रतन (= न देखे जाने) से ही यह है; किन्तु जो धर्म यहाँ है (वही) हमारे लिये प्रमाण है।”

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् उदयन चक्रम (= टहलनेके चक्रतरे) से उतर कर, विहार (= कोठरी) में प्रविष्ट हो बिछे आसनपर बैठे। घोटमुख ब्राह्मण भी विहारमें प्रविष्ट हो एक ओर सड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुये घोटमुख ब्राह्मणके आयुष्मान् उदयनने यह कहा—

“ब्राह्मण ! आसन मीनू है, यदि इच्छा हो तो बैठो।”

“आप उदयनकी इसी (आज्ञा) की प्रतीक्षामें हम नहीं बैठते थे। मेरे जैसा (पुरुष) बिना निमंत्रणके कैसे (स्वयं जाकर) आसन पर बैठ जायेगा।”

तब घोटमुख (= घोंघे जैसा झुंझवाला) ब्राह्मण एक नीचा आसन ले कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे घोटमुख ब्राह्मणने आयुष्मान् उदयनसे यह कहा—

“अहो अमण ! मुझे ऐसा होता है—० किन्तु जो धर्म यहाँ है, (वही) हमारे लिये प्रमाण है।”

“ब्राह्मण ! यदि मेरी (कोई बात) को स्वीकरणीय समझना, तो स्वीकार करना, संबन्धीय समझना, तो खंडन करना। जिस मेरे कथनका अर्थ न समझना, उसे मुझसे ही पूछना—“भो उदयन ! यह कैसे है, इसका क्या अर्थ है ?”—इस प्रकार हमारा यहाँ कथा-संलाप हो।”

“आप उदयनकी स्वीकरणीय (बात) को स्वीकार करूँगा, संबन्धीयको खंडन करूँगा। आप उदयनकी जिस बातका अर्थ न समझूँगा, उसे आपसे ही पूछूँगा—“हे उदयन यह कैसे है, इसका क्या अर्थ है ?”—इस प्रकार हमारा कथा-संलाप हो।”

“ब्राह्मण ! लोकमें चार (प्रकारके) पुद्गल (= पुरुष) विद्यमान हैं। कौनसे चार ?—ब्राह्मण ! ( १ ) यहाँ कई पुद्गल आत्मन्तप अपनेको संताप देनेवाले कामोंमें लगा होता है; ( २ )



० परंतप ०<sup>१</sup> ; ( ३ ) ० आत्मंतप-परंतप ० ; ( ४ ) ० न-आत्मंतप-न-परंतप ०<sup>२</sup> सुखानुभवी ब्रह्मभूत (= विशुद्ध )-आत्मासे विहरता है । ब्राह्मण ! इस चार पुद्गलोंमें कौन सा तुम्हारे चित्त-को पसन्द आता है ?<sup>३</sup>

“भो उदयन ! ०<sup>१</sup> जो यह अनात्मंतप-अ-परंतप ० पुद्गल है, वह ० मुझे पसंद है ।”

“ब्राह्मण ! क्यों यह तीन पुद्गल तुम्हारे चित्तको पसंद नहीं है ?”

“भो उदयन ! ०<sup>२</sup> ( जो ) ब्रह्मभूत आत्मासे विहरता है, ० यह पुद्गल मेरे चित्तको पसन्द आता है ।”

“ब्राह्मण ! यह दो ( प्रकारकी ) परिषद् होती है । कौन सी वो ?—( १ ) ब्राह्मण ! यहाँ एक परिषद् भणि-कुंडलमें सारस्व (= धन आदि )में रक्त (= अनुरक्त ) होती है, पुत्र-माया चाहती है, दास-दासी ०, क्षेत्र-वास्तु (= क्षेत्र-सकल ) ०, सोना-चाँदी चाहती है । और ( २ ) ब्राह्मण ! यहाँ एक परिषद् भणि-कुंडलमें विषयमें, सारस्वमें नहीं रक्त होती, पुत्र-माया छोड़ ० सोना-चाँदी छोड़ बरसे वे धन हो प्रयोजित हुई हैं । ब्राह्मण ! जो यह पुद्गल न आत्मंतप ०, न परंतप ०, न-आत्मंतप-न-परंतप ० है, यह अनात्मंतप-अपरंतप पुद्गल इसी जन्ममें जात, निर्वाण-प्राप्त, शीतल (= स्वभाव ) सुखानुभवी, ब्रह्मभूत आत्मासे विहरता है । ब्राह्मण ! इस पुद्गल-को तू किस परिषद् (= मंडल )में अधिक देखता है ? जो यह सारस्वमें रक्त होती है ० ; उसमें ; या जो कि ० सारस्वमें नहीं रक्त होती ० उसमें ?”

“भो उदयन ! जो यह पुद्गल ० अनात्मंतप-अपरंतप है ०, उसको इस परिषद्में अधिक देखता हूँ, जो कि ० सारस्वमें रक्त नहीं होती, ० बेधर हो प्रयोजित हुई है ।”

“ब्राह्मण ! अभी तूने कहा था, हम ऐसा जानते हैं—अहो भयन ! मुझे ऐसा होता है ०<sup>४</sup> ?”

“तो भो उदयन ! मैंने शरीर वात कहो, ‘है धार्मिक प्रयत्न’—ऐसा मुझे होता है, ऐसा मुझे आप उदयन समझे । आप उदयनने जो यह चार पुद्गल, विस्तारसे न विभाजित कर संक्षेपसे कहे ; अच्छा हो आप उदयन कृपाकर उन चारों पुद्गलोंको मुझे विस्तारसे कहे ।”

“तो ब्राह्मण ! सुनो अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा भो !”—( कह ) शौदमुक्त ब्राह्मणने आयुष्मान् उदयनको उत्तर दिया ।

आयुष्मान् उदयनने यह कहा—“ब्राह्मण ! कौनसा पुद्गल आत्मंतप, अपनेको सतानेवाले कामोंमें लब्ध है—ब्राह्मण ! यहाँ कोई पुद्गल ! अचेतक ०<sup>५</sup> ऐसे अनेक प्रकारसे कत्पाके जा-तापन परितापनके व्यापारमें लब्ध हो विहरता है । ब्राह्मण ! यह पुद्गल आत्मंतप ० कहा जाता है ।

“ब्राह्मण ! कौनसा पुद्गल परंतप ० है ?—ब्राह्मण ! यहाँ कोई पुद्गल औरभ्रिक (= भेड़ मारनेवाला ) ०<sup>६</sup> दूसरे कर व्यवसाय है ( उनका करनेवाला होता है ) ०<sup>७</sup> ।

“ब्राह्मण ! कौनसा पुद्गल आत्मंतप-परंतप ० है ?—यहाँ कोई पुरुष सूर्याभिमुक्त अश्विज राजा होता है ०<sup>८</sup> इसके दास ०<sup>९</sup> भी ०<sup>१०</sup> होते कामोंको करते हैं । ०<sup>११</sup> ।

“ब्राह्मण ! कौनसा पुद्गल अनात्मंतप-अपरंतप ० है ?—ब्राह्मण ! यहाँ लोकमें तयागत ०<sup>१२</sup> चतुर्थध्यानको प्राप्त हो विहरता है । सो वह इस प्रकार चित्तके एकाग्र परिशुद्ध ०<sup>१३</sup> अब

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ ४८, २०६-७ ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ २०६ ।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ ५४-५५ ।

<sup>४</sup> देखो पृष्ठ २०६-७ ।

<sup>५</sup> देखो पृष्ठ २०७ ।

<sup>६</sup> देखो पृष्ठ १५८ ।

<sup>७</sup> देखो पृष्ठ १५८-१६ ( नाकमें उत्तम पुरुषके स्थानमें प्रथम पुरुष करके ) ।

यहाँ करनेके लिये कुछ धोष नहीं है'—यह जान लेता है। ब्राह्मण ! यह कहा जाता है अनात्मतप-  
छपरंतप ० पुद्गल ० ।"

ऐसा कहनेपर घोटमुख ब्राह्मणने आयुष्मान् उदयनसे यह कहा—

"आश्चर्य ! भो उदयन ! आश्चर्य भो उदयन ! जैसे औंधेको सीधा करदे ० \* ऐसे ही आप उदयनने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया, यह मैं आप उदयनकी शरण जाता हूँ, धर्म और मित्र-संघकी भी। आजसे आप उदयन मुझे अंजलिवद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें।"

"अतः तू ब्राह्मण ! मेरी शरण जा, उसी भगवान्की तू भी शरण जा, जिसकी शरण मैं गया हूँ।"

"भो उदयन ! वह भगवान् अहंत् सम्बन्ध-संतुष्ट कहीं विहार कर रहे हैं ?" ० \* तो निर्वाण प्राप्त भी उन भगवान्की हम शरण जाते हैं, धर्म और मित्र-संघकी भी। आजसे आप उदयन मुझे अंजलिवद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें।

"भो उदयन ! मुझे अंग-राजा दैनिक नित्य-मिक्षा देता है, उनमेंसे मैं आप उदयनको एक नित्य मिक्षा देता हूँ।"

"ब्राह्मण ! अंग-राजा मुझे क्या दैनिक नित्य-मिक्षा देता है ?"

"भो उदयन ! पाँच सौ कार्पाण ( = कदापण, एक सिक्का )।"

"ब्राह्मण ! हमारे लिये सोना-चाँदी ग्रहण करना कल्प ( = विरतिहित ) नहीं है।"

"यदि वह आप उदयनको कल्प नहीं है, तो आप उदयनके लिये, विहार ( = निवास-स्थान ) बनवाईगा।"

"यदि ब्राह्मण ! तू मेरे लिये विहार बनवाना चाहता है, तो पाटलिपुत्र ( = पटना ) में संघकी उपस्थान-शाला ( = समागृह ) बनवा दे।"

"आप उदयनके इस ( कथन ) से मैं और भी सन्तुष्ट, प्रसन्न हुआ, जो कि आप उदयन मुझे संघकी दान देनेके लिये कहते हैं। सो मैं भो उदयन ! इस नित्य-मिक्षा और दूसरी नित्य-मिक्षासे पाटलिपुत्रमें संघकेलिये उपस्थान-शाला बनवाईगा।"

तब घोटमुख ब्राह्मणने इस नित्य-मिक्षा और दूसरी नित्य-मिक्षासे पाटलिपुत्रमें संघके लिये उपस्थान-शाला बनवाई; जो आज भी घोटमुखी कही जाती है।



## ६५-चंकिसुत्तन्त (२।५।५)

उदके गुप्त । ब्राह्मणोंके नेत्र और उनके कर्तौ । सत्यकी रक्षा और धार्मिके उपाय

ऐसा मैंने सुना—

एक समय महा-मिश्रसंघके साथ भगवान् कोसलमें चारिका करते जहाँ ओपसाद् नामक कोसलोंका ब्राह्मण-ग्राम था वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् ओपसादसे उत्तर देववन ( नामक ) शाल-वनमें विहार करते थे ।

उस समय चंकि ब्राह्मण, जनाकीर्ण, सुण-काष्ठ-उदक-धान्य-सम्पन्न, राजभोग्य, राजा प्रसेनजित् कोसलद्वारा प्रदत्त, राज-दायज, ब्रह्मदेय, ओपसादका स्वामी हो, वास करता था ।

ओपसादवासी ब्राह्मणोंने सुना—शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम कोसलमें चारिका करते, महा-मिश्र-संघके साथ ओपसादमें पहुँचे हैं, और ओपसादमें, ओपसादसे उत्तर देववन शाल-वनमें विहार करते हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा भंगल कीर्तिकण्ड उठा हुआ है ०<sup>१</sup> परिशुद्ध<sup>२</sup> ब्राह्मणमें प्रकाशित करते हैं, इस प्रकारके अर्हत्ताका दर्शन अच्छा होता है ।

तब ओपसाद-वासी ब्राह्मण-गृहस्थ ओपसादसे निकलकर, सुण्डके सुण्ड उत्तर सुँहकी ओर जहाँ देववन शालवन था, उधर जाने लगे । उस समय चंकि ब्राह्मण, दिनके शयनके लिये ओपसाद-के ऊपर गया हुआ था चंकि ब्राह्मणने देखा कि ओपसाद-वासी ब्राह्मण-गृहस्थ उत्तर सुँहकी ओर ० उधर जा रहे हैं । देखकर क्षत्ता ( = महामात्य ) को संबोधित किया—

“क्या है, हे क्षत्ता ! ( कि ) ओपसाद-वासी ब्राह्मण-गृहस्थ ० जहाँ देववन शाल-वन है, उधर जा रहे हैं ।”

“हे चंकि ! शाक्य कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र, श्रमण गौतम कोसलमें चारिका करते महामिश्र-संघके साथ ० देववन शालवनमें विहार कर रहे हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा भंगलकीर्ति-शब्द उठा हुआ है ० । उन्हीं भगवान् गौतमके दर्शनके लिये जा रहे हैं ।”

“तो क्षत्ता ! जहाँ ओपसादक ब्राह्मण-गृहपति हैं, वहाँ जाओ । जाकर ओपसादक ब्राह्मण गृहपतिघोँसे ऐसा कहो—चंकि ब्राह्मण ऐसा कह रहा है—‘थोड़ी देर आप सब ठहरें, चंकि ब्राह्मण-भी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा’ ।”

चंकि ब्राह्मणसे “अच्छा भो !” कह, वह क्षत्ता जहाँ ओपसादक ब्राह्मण थे वहाँ गया । जाकर ० बोले—

“चंकि ब्राह्मण ऐसा कह रहा है—‘थोड़ी देर आप सब ठहरें, चंकि ब्राह्मण भी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा’ ।”

<sup>१</sup> देखी पृष्ठ १५८ ।

उस समय माना देशोंके पाँच सौ ब्राह्मण किसी कामसे ओपसादमें वास करते थे। उन ब्राह्मणोंने सुना कि चंकि ब्राह्मण भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जानेवाला है। तब वह ब्राह्मण जहाँ चंकि ब्राह्मण था, वहाँ गये। जाकर चंकि ब्राह्मणसे बोले—

“सचमुच आप चंकि भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जानेवाले हैं ?”

“हाँ मो ! मुझे यह हो रहा है, मैं भी भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाऊँ।”

“आप चंकि ! गौतमके दर्शनार्थ मत जायें। आपको भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाना उचित नहीं है। भ्रमण गौतमको ही आप चंकि के दर्शनार्थ जाना योग्य है। आप चंकि दोनों ओरसे सुजात (= कुलीन) हैं, मातासे भी, पितासे भी; पितानह-पुगलकी सात पीढ़ियों तक, जाति-बादसे अक्षिप्त = अन-उपनिषत् (= अ-निन्दित) हैं। जो आप चंकि दोनों ओरसे सुजात हैं ०; इस कारणसे भी आप चंकि भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जानेके योग्य नहीं हैं। भ्रमण गौतम ही आप चंकि के दर्शनार्थ जाने योग्य है। आप चंकि ब्राह्मण, महापत्नी, महामोगवाले हैं; इस अंगसे भी ०। आप चंकि ० तीनों पेशेके पारंगत ०। आप चंकि अनिरूप = दर्शनीय = प्राप्तादिक, परम-वर्ण-सुन्दरतासे युक्त, ब्राह्मणवाले, ब्राह्मणचर्यवाले, दर्शनके लिये अल्प भी अवकाश न रखनेवाले ०। आप चंकि क्षीरवान् वृद्धशीली (= बड़ी हुई शीलवाले) वृद्धशीलसे युक्त हैं ०। आप चंकि कल्याण-वचन बोलनेवाले = कल्याण-नाककरण = पौर (= सामरिक, रम्य) वाणीसे युक्त ०। आप चंकि बहुतोंके आचार्य-प्राचार्य हैं, तीन सौ मानवकोंको मंत्र पढ़ाते हैं ०। आप चंकि राजा प्रसेनजित् कोसलसे सत्कृत = गुरुकृत = मानित, पूजित = अपचित हैं। आप चंकि पौष्करस्ताति ब्राह्मणसे ० हैं। आप चंकि ० ओपसादके स्वामी हो बसते हैं। इस अंगसे भी आप चंकि भ्रमण गौतम के दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं। भ्रमण गौतम ही आप चंकि के दर्शनार्थ जाने योग्य है।”

“तो मो ! मेरी भी सुनो—( कैसे ) हमो भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं, वह आप भ्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं। मो ! भ्रमण गौतम दोनों ओरसे सुजात हैं ०; इस अंगसे भी हमो भ्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं, आप भ्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं। भ्रमण गौतम बहुत सा भूमिस्थ और आकाशस्थ हिरण्य सुवर्ण कोष-कर, प्रवर्जित हुये हैं ०। भ्रमण गौतम बहुत काले केशवाले, भद्रवीचनसे संयुक्त, अतिरुण, प्रथम वयसमें ही घरसे बेघर हो, प्रवर्जित हुये ०। भ्रमण गौतम माता-पिताको अनिष्टक अशुभमुख होते हुये, ( कोड़ ), शिर-दादी सुँवाकर, कापाव-वस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रवर्जित हुये ०। भ्रमण गौतम अनिरूप = दर्शनीय ० ब्राह्मणचर्यवाले, दर्शनके लिये अल्प भी अवकाश न रखनेवाले ०। भ्रमण गौतम शीलवान् ०। भ्रमण गौतम कल्याण-वचन बोलनेवाले ०। भ्रमण गौतम बहुतोंके आचार्य-प्राचार्य हैं ०। ० काम-राग-विहीन ०। प्रपंच-रहित ०। भ्रमण गौतम कर्मवादी, क्रिया-वादी, ब्राह्मण-संतानके विष्पाप अग्रणी हैं ०। भ्रमण गौतम अदीन-अशिव-कुल, उच्च-कुलसे प्रवर्जित हुये ०। ० महापत्नी, महामोगवान् ब्राह्मण-कुलसे प्रवर्जित हुये ०। भ्रमण गौतमको देश-के बाह्यसे, राष्ट्रके बाहरसे भी ( लोग ) पूजनेकी आते हैं ०। भ्रमण गौतमकी अनेक सहस्र देवता ( अपने ) प्राणीसे शरणागत हुये हैं ०। भ्रमण गौतमका ऐसा मंगल कीर्ति-शब्द उठा हुआ है ०। ०। भ्रमण गौतम दक्षीत महापुरुष-लक्षणोंसे युक्त हैं ०। भ्रमण गौतमकी राजा मानव श्रेणिक विषयसार पुत्र-दार-सहित ब्राह्मण पौष्कर-स्ताति ०। ०। भ्रमण गौतम मो ! ओपसादमें प्राप्त हुये हैं, ओपसादमें ० देवदत्त शालवनमें विहार कर रहे हैं। जो कोई भ्रमण या ब्राह्मण हमारे गाँव-जेठमें जाते हैं, वह अतिथि होते हैं। अतिथि सत्करणीय = गुरुकरणीय = माननीय = पूजनीय है। चंकि मो ! भ्रमण गौतम ओपसादमें प्राप्त हुये ०। ( अतः ) हमारे अतिथि हैं।



अमण गौतम अतिथि हो हमारे सत्करणीय ० । इस अंगसे भी । इतना ही जो ! मैं उन आप गौतमका गुण कहता हूँ, लेकिन वह आप गौतम इतनेही गुणवाले नहीं हैं । वह आप गौतम अपरिमाण-गुणवाले हैं । एक एक अंगसे भी युक्त होनेपर, आप अमण गौतम हमारे दर्शन करनेके लिये आने योग्य नहीं हैं, बल्कि हमीं उन आप-गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं । इसलिये हम सभी अमण गौतमके दर्शनार्थ चले ।"

तब चंकि ब्राह्मण महान् ब्राह्मणोंके गणके साथ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्के साथ "संभोजन कर" एक ओर बैठ गया । उस समय भगवान् कुछ कुछ ब्राह्मणोंके साथ कुछ ( बात करते ) बैठे हुये थे ।

उस समय कापथिक नामक तरुण, मुण्डित-शिर, जन्मसे सोलह वर्षका, "तीनों वेदोंका पारंगत भाणवक" परिपद्में बैठा था । वह बड़े बड़े ब्राह्मणोंके भगवान्के साथ बातचीत करते समय, बीच-बीचमें बोल उठता था । तब भगवान्ने कापथिक भाणवकको भना किया ।

"आयुष्मान् भारद्वाज ! बड़े बड़े ब्राह्मणोंके बात करनेमें बात मत डालो । आयुष्मान् भारद्वाज ! क्या समाप्त होने दो !"

( भगवान्के ) ऐसा कहने पर चंकि ब्राह्मणने भगवान्से कहा—

"आप गौतम कापथिक भाणवकको मत रोकें, कापथिक भाणवक कुछ-कुछ (= कुलीन ) है०, बहुश्रुत है ०, सुवक्ता ०, पंडित ० । कापथिक भाणवक आप गौतमके साथ इस बातमें वाद कर सकता है ।"

तब भगवान्को हुआ—अवश्य कापथिक भाणवककी कथा त्रिवेद-प्रवचन (= वेदाध्ययन ) सम्बन्धी होगी, जिससे कि ब्राह्मण इसे आगे कर रहे हैं । उस समय कापथिक भाणवकको ( विचार ) हुआ—'जब अमण गौतम मेरी आँखोंकी ओर आँख लायेगा, तब मैं अमण गौतमसे प्रश्न पूछूँगा' । तब भगवान्ने ( अपने ) चित्तसे कापथिक भाणवकके चित्त-वितर्कको जानकर, विधर कापथिक भाणवक था, उधर ( अपनी ) आँख फेरी । तब कापथिक भाणवकको हुआ—'अमण गौतम मुझे देख रहा है, क्यों न मैं अमण गौतमसे प्रश्न पूछूँ ?' तब कापथिक भाणवकने भगवान्से कहा—

"भो गौतम ! जो यह ब्राह्मणोंका पुराता मंत्रपद (= वेद ) इस परम्परासे, पिष्टक (= वचन समूह )-सम्प्रदायसे है । उसमें ब्राह्मण पूर्ण रूपसे निष्ठा (= अज्ञा ) रखते हैं—'यही सत्य है, और सच झूठा' । इस विषयमें आप गौतम क्या कहते हैं ?"

"क्या भारद्वाज ! ब्राह्मणोंमें एक भी ब्राह्मण है, जो कहे—मैं इसे जानता हूँ, इसे देखता हूँ, यही सच है, और झूठ है ?"

"नहीं, हे गौतम !"

"क्या भारद्वाज ! ब्राह्मणोंका एक आचार्य भी ०, एक आचार्य-प्राचार्य भी, परमाचार्योंकी सार पीढ़ी तक भी ० । ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषि, ० अष्टक, ग्रामक ०, उन्होंने भी क्या कहा—'हम इसको जानते हैं, हम इसको देखते हैं, यही सच है और झूठ है ?'

"नहीं, हे गौतम !"

\* म. क. "( अष्टक आदि कापथीय ) दिव्य-वस्तुसे देखकर भगवान् काश्यप सम्मत्-संजुषने वचनके साथ मिलाकर, मंत्रोंकी पर-विज्ञानान्न, संश्लेषित किया था । उसमें दूसरे ब्राह्मणोंने प्राणि-विज्ञान आदि वाक्यकर तीन वेद बना, कुछ-वचनसे मिरट कर दिया ।"

“इस प्रकार मारदाज ! ब्राह्मणोंमें एक भी ब्राह्मण नहीं है, जो कहे ०।०। जैसे मारदाज ! अंध-नेत्र-परंपरा (= अंधोंकी लकड़ीका तौता ) लगी हो, पहिलेवाला भी नहीं देखता, बीचका भी नहीं देखता, पिछला भी नहीं देखता। ऐसेही मारदाज ! ब्राह्मणोंका कथन अंध-वेणु (= अंधेकी लकड़ी )के समान है, पहिलेवाला भी नहीं देखता, बीचका भी नहीं देखता, पिछला भी नहीं देखता। तो क्या मानते हो, मारदाज ! क्या ऐसा होनेपर ब्राह्मणों की श्रद्धा अमूलक नहीं होजाती ?”

“हे गौतम ! नहीं, ब्राह्मण श्रद्धाहीनकी उपासना नहीं करते, अनुश्रव (= श्रुति ) की भी उपासना करते हैं।”

“पहिले मारदाज ! श्रद्धा (= निष्ठ ) पर पहुँचा जा, अब अनुश्रव कहता है। मारदाज ! यह पाँच धर्म इसी जन्ममें दो प्रकारके विपाक (= फल ) देनेवाले हैं। कौनसे पाँच ? ( १ ) श्रद्धा, ( २ ) रुचि, ( ३ ) अनुश्रव, ( ४ ) आकार-परिवर्तिक, ( ५ ) दृष्टि-निष्पानाश (= द्विदिनिष्पानाश )। मारदाज ! यह पाँच धर्म इसी जन्ममें दो प्रकारके विपाक देनेवाले हैं। मारदाज ! सुन्दर-तौरसे श्रद्धा किया भी रिक्त = तुच्छ और शृषा हो सकता है, सुश्रद्धा न किया भी वयार्थ = तथ्य = अनन्यथा हो सकता है। सुरुचि किया भी ०। सु-अनुश्रुत किया भी ०। सु-परिवर्तिक किया भी। सु-निष्पान किया भी ० रिक्त = तुच्छ और शृषा हो सकता है। सु-निष्पान न किया भी वयार्थ = तथ्य = अनन्यथा हो सकता है। मारदाज ! सत्यानुरक्षण विज्ञ पुरुषको यहाँ एकांशसे ( सोलहो आना ) निष्ठा करना योग्य नहीं है, कि—‘यही सत्य है, और यही निष्ठा है।’

“हे गौतम ! सत्यानुरक्षा (= सत्यकी रक्षा ) कैसे होती है ? सत्यका अनुरक्षण कैसे किया जाता है, हम आप गौतमसे सत्यानुरक्षण पूछते हैं ?”

“मारदाज ! पुरुषको यदि श्रद्धा होती है ‘यह मेरी श्रद्धा है’, कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है। किन्तु यहाँ एकांशसे निष्ठा नहीं करता—‘यही सत्य है और ( सत्य ) श्रद्धा।’ मारदाज ! यदि पुरुषको रुचि होती है। ‘यह मेरी रुचि है’ कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है। किन्तु यहाँ एकांशसे निष्ठा नहीं करता—‘यदि सत्य है, और श्रद्धा।’

“मारदाज ! यदि पुरुषको अनुश्रव होता है। ‘यह मेरा अनुश्रव है’ कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है। किन्तु यहाँ एकांशसे निष्ठा नहीं करता—‘यही सत्य है, और श्रद्धा।’ मारदाज ! यदि पुरुषको आकार-परिवर्तिक होता है। ‘यह मेरा आकार-परिवर्तिक है’ कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है; किन्तु यहाँ एकांशसे निष्ठा नहीं करता—‘यही सत्य है, और श्रद्धा।’ मारदाज ! यदि पुरुषको दृष्टि-निष्पानाश होता है; ‘यह मेरा दृष्टि-निष्पानाश है’, कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है। किन्तु यहाँ एकांशसे निष्ठा नहीं करता ‘यही सत्य है और श्रद्धा।’ इतने से मारदाज सत्य-अनुरक्षण होता है। इतनेसे सत्यकी अनुरक्षा की जाती है। इतनेसे हम सत्यका अनुरक्षण (= रक्षण ) प्रज्ञापित करते हैं; किन्तु ( इतनेसे ) सत्यका अनुसंधान (= बोध ) नहीं होता।”

“मो गौतम ! इतनेसे सत्यानुरक्षण होता है, इतनेसे सत्यकी अनुरक्षाकी जाती है; इतने से सत्यका रक्षण हम भी देखते हैं। हे गौतम ! सत्यका बोध कितनेसे होता है, कितनेसे ( जर ) सब ब्रह्मता है ? मो गौतम ! हम इसे आपसे पूछते हैं।”

“मारदाज ! निष्ठ किसी ग्राम या निगमको आश्रय कर विहरता है। ( कोई ) गृहपति (= गृहस्थ ) या गृहपति-पुत्र जाकर लोम, द्वेप, मोह ( इन ) तीन धर्मोंके विषयमें उसकी परीक्षा करता है—‘क्या इस आयुष्मान्को वैसा लोमवीच धर्म (= बात ) है, जिस प्रकारके



लोम-सम्बन्धी धर्मोंके कारण न जानते 'जावता हूँ' कहें; न देखते 'देखता हूँ' कहें। या वैसे उपदेश करें, जो दूसरोंके लिये दीर्घकाल तक अहित और दुःखके लिये हो। इन आयुष्मान्का काय-समाधार (= कायिक-आचरण) ( और ) वचन-समाधार (= वाचिक-आचरण) वैसा है, जैसा कि अलोमीका। ( या ) यह आयुष्मान् जिस धर्मका उपदेश करते हैं ( क्या ) वह धर्म गंभीर, दुर्दृश = दुर्धीन, शांत, प्रणीत (= उत्तम ), आतर्काचर (= तर्कसे अप्राप्य ) निपुण = पंडित वेदनीय हैं ? वह धर्म लोमी-द्वारा उपदेश करना सुगम ( तो ) नहीं है ?"

"जब बोधते हुये लोम-सम्बन्धी धर्मोंसे ( उसे ) विक्षुब्ध पाता है। तब आगे द्वेष-सम्बन्धी धर्मोंके विषयमें उसकी परीक्षा करता है—'क्या इस आयुष्मान्को वैसा द्वेष-सम्बन्धी धर्म है ०; वह धर्म, द्वेषी द्वारा उपदेश करना ( तो ) सुगम नहीं है ?"

"जब परीक्षा करते हुये, द्वेष-सम्बन्धी धर्मोंसे उसे विक्षुब्ध पाता है। तब आगे मोह-सम्बन्धी धर्मोंके विषयमें उसको टोलता है—'क्या इस आयुष्मान्को वैसा मोह-सम्बन्धी धर्म तो है ०, वह धर्म ०, मोही (= मूढ़ ) द्वारा उपदेश करना सुगम ( तो ) नहीं ?"

"जब टोलते हुये उसे लोमनीय, द्वेषनीय, मोहनीय धर्मोंसे विक्षुब्ध पाता है; तब उसमें अज्ञा स्थापित करता है। अज्ञावान् हो पास जाता है, पास जाके परि-उपासन (= सेवन ) करता है। पर्युपासना करके कान लगाता है, कान लगाके धर्म सुनता है। सुनकर धर्मको धारण करता है। धारण किये हुये धर्मोंके अर्थकी परीक्षा करता है। अर्थकी परीक्षा करके धर्म ध्यान करने लायक होते हैं। धर्मके निष्पान ( ध्यान ) योग्य होनेसे स्मृति रुचि (= छन्द ) उत्पन्न होती है। छन्दवाला (= रुचिवाला ) उत्साह (= प्रयत्न ) करता है। उत्साह करते उत्थान (= तोलन ) करता है। तोलन करते पराक्रम (= पदहन ) करता है। परीक्षिणी हो, इसी क्रियामें ही परम-सत्यका साक्षात्कार (= दर्शन ) करता है, प्रज्ञामें उसे वेद्यकर देखाता है। इतनेसे भारद्वाज ! सत्य-बोध होता है, इतनेसे सच वृत्तता है। इतनेसे हम सत्य-अनुबोध घटलाते हैं, किन्तु ( इतनेहीसे ) सत्य-अनुपत्ति नहीं होती।"

"हे गौतम ! इतनेसे सत्यानुबोध होता है, इतनेसे सच वृत्तता है, इतनेसे हमसी सत्यानुबोध देखते हैं। परन्तु हे गौतम ! सत्य-अनुपत्ति कितनेसे होती है, कितनेसे सचको पाता है, हम आप गौतमसे सत्यानुपत्ति (= सत्य-प्राप्ति ) पूछते हैं ?"

"भारद्वाज ! उन्हीं धर्मोंके सेवने, भावना करने, पढ़ानेसे सत्य-प्राप्ति होती है। इतनेसे भारद्वाज सत्य-प्राप्ति होती है, सचको पाता है, इतनेसे हम सत्य-प्राप्ति घटलाते हैं।"

"इतनेसे हे गौतम ! सत्य-प्राप्ति होती है ० हम भी इतनेसे सत्य-प्राप्ति देखते हैं। हे गौतम ! सत्य-प्राप्तिका कौन धर्म अधिक उपकारी (= बहुकार ) है, सत्य-प्राप्तिके लिये अधिक उपकारी धर्मको हम आप गौतमसे पूछते हैं।"

"भारद्वाज ! सत्य-प्राप्तिका बहुकारी धर्म 'प्रधान' है। यदि प्रधान (= प्रयत्न ) न करे, तो सत्यको ( भी ) प्राप्त न करे। चूँकि 'प्रधान' करता है, इसीलिये सचको पाता है, इसलिये सत्य-प्राप्तिके लिये बहुकारी धर्म 'प्रधान' है।"

"प्रधानके लिये हे गौतम ! कौन धर्म बहुकारी है। प्रधानके बहुकारी धर्मको हम आप गौतमसे पूछते हैं ?"

"भारद्वाज ! प्रधानका बहुकारी उत्थान है, यदि उत्थान (= उद्योग ) न करे, तो प्रधान नहीं कर सकता। चूँकि उत्थान करता है, इसलिये प्रधान करता है। इसलिये उत्थान प्रधानका बहुकारी है।"

“०।० उत्साह उत्थान (= तुलना) का बहुकारी।” “०।० छन्द उत्साहका०।”  
 “०।० धम्म-निष्पन्नपक्ष (= धर्म-निष्पानाक्ष) छन्दका०।” “अर्थ-उपपरीक्षा (= अर्थका परीक्षण) धर्म-निष्पानाक्षका०।” “०।० धर्म-धारणा०।” “धर्म-श्रवण०।” “०।० कान लगाना (= श्रोत्र-अवधान)०।” “युग्मपासन (= सेवा)०।” “०।० पास जाना०।”  
 “०।० अदा०।”

“सत्य-अनुरक्षणको हमने आप गौतमसे पूछा। आप गौतमने सत्यानुरक्षण हमें बतलाया, वह हमें रुचता भी है, = समता भी है। उससे हम सन्तुष्ट हैं। सत्य-अनुबोध (= सचको क्लृप्ता) को हमने आप गौतमसे पूछा। ०। सत्य-प्राप्ति ०। ०। सत्य-प्राप्तिके बहुकारी धर्मको हमने आप गौतमसे पूछा। सत्य-प्राप्तिके बहुकारी धर्मको आप गौतमने बतलाया। वह हमें रुचता भी है = समता भी है। उससे हम सन्तुष्ट हैं। जिस जिसको हमने आप गौतमसे पूछा, उस उसीको आप गौतमने (हमें) बतलाया। और वह हमको रुचता भी है = समता भी है। उससे हम सन्तुष्ट हैं।

“हे गौतम ! पहिले हम ऐसा जानते थे, कहाँ इन्द्र (= नीच), काटे, मझाके पैरसे उत्पन्न (= शूद्र), सुंसक-श्रमण, और कहाँ धर्मका जानना। आप गौतमने मुझमें... श्रमण-प्रेम = श्रमण-प्रसाद०। आजसे आप गौतम मुझे अंजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें।”



## ६६-फासुकारि-सुचन्त (२।१।६)

वर्णनप्रमाण आश्रय

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् आश्रमीमें अनाथपिटृदिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब फासुकारि ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्के साथ "संमोदन कर एक ओर बैठा । एक ओर बैठे फासुकारि ( = ब्राह्मणकारि ) ब्राह्मणने भगवान्से यह कहा—

"भो गौतम ! ब्राह्मण चार ( प्रकारकी ) परिचर्या ( = सेवार्थ ) बतलाते हैं—ब्राह्मणकी परिचर्या बतलाते हैं, क्षत्रियकी परिचर्या ०, वैश्यकी परिचर्या ०, और शूद्रकी परिचर्या । वहाँ भो गौतम ! ब्राह्मण ब्राह्मणकी परिचर्या इस प्रकार कहते हैं—ब्राह्मणका परिचरण ( = सेवा ) करे, क्षत्रिय ब्राह्मणका परिचरण करे, वैश्य ब्राह्मणका परिचरण करे, शूद्र ब्राह्मणका परिचरण करे" । वहाँ, भो गौतम ! ब्राह्मण क्षत्रियकी परिचर्या इस प्रकार कहते हैं—क्षत्रिय क्षत्रियको परिचरण करे, वैश्य ०, और शूद्र क्षत्रियको परिचरण करे" । वहाँ, भो गौतम ! ब्राह्मण वैश्यकी परिचर्या इस प्रकार बतलाते हैं—वैश्य वैश्यको परिचरण करे, और शूद्र वैश्यको परिचरण करे" । "भो गौतम ! ब्राह्मण शूद्रकी परिचर्या इस प्रकार बतलाते हैं—शूद्र ही शूद्रको परिचरण करे—, यह भो गौतम ! ब्राह्मण शूद्रकी परिचर्या बतलाते हैं । भो गौतम ! ब्राह्मण यह चार ( प्रकारकी ) परिचर्या बतलाते हैं इस विषयमें आप गौतम क्या कहते हैं ?"

"क्या ब्राह्मण ! तारी बुनियाँ ( = लोक ) ब्राह्मणोंको इसके लिये अनुज्ञा देती है; कि इन चारों परिचर्याओंको यह प्रज्ञापन करें ?"—"नहीं, भो गौतम !"

"जैसे, ब्राह्मण ! कोई अ-स्वक = अन-आद्य, द्रिष्ट पुरुष हो; अमिच्छु होते भी उसके लिये एक घाँटी ( मान ) लगा दो जाय—हे पुरुष ! यह तुम्हारे स्वानेके लिये मान है और ( इसका ) मुख्य देना; इसी प्रकार ब्राह्मण ! ( अन्य संसारके ) अमण-ब्राह्मणोंकी अनुज्ञाके बिना ही ( स्वामत्ता ) ब्राह्मणोंका इन चार परिचर्याओंको प्रज्ञापन करते हैं । ब्राह्मण ! न मैं सभी परिचर्याओंको परिचरणीय ( = सेवनीय ) कहता हूँ, नहीं मैं सभीको अ-परिचरणीय कहता हूँ । ब्राह्मण ! जिसको परिचरण करते ( जिस ) परिचर्याके हेतु अहित ( = पापीय ) होता है, हित ( = श्रेय ) ( कर्म ) नहीं होता, उसे मैं परिचरणीय नहीं कहता । जिसको परिचरण करते, ( जिस ) परिचर्याके हेतु हित होता है, अहित नहीं, उसे मैं परिचरणीय कहता हूँ । ब्राह्मण ! क्षत्रियको भी पूछें—जिसको परिचरण करते ( जिस ) परिचर्याके हेतु तेरे लिये अहित होता है, हित न हो; और जिसको परिचरण करते ( जिस ) परिचर्याके हेतु तेरे लिये हित होता है, अहित नहीं; ( इन दोनों ) में किसे तू परिचरण करेगा ?—तो ब्राह्मण ! क्षत्रिय भी ठीकसे उत्तर देते यही उत्तर देगा—जिसकी परिचरण करते, ( जिस ) परिचर्याके हेतु हित होता है, अच्छा नहीं, उसे मैं नहीं परिचरण करूँगा; और जिसको परिचरण करते ( जिस ) परिचर्याके हेतु हित होता है, अहित नहीं, उसे मैं परिचरण

करूँगा । ब्राह्मण ! ब्राह्मणसे भी पूछें—० । वैश्यसे भी पूछें—० । शूद्रसे भी पूछें—० ।

( १ ) "ब्राह्मण ! मैं उच्च कुलीनताको श्रेय-हित ( अच्छी ) नहीं बतलाता, न मैं उच्च कुलीनताको पापीय ( = अहित-बुरी ) बतलाता हूँ । ( २ ) ब्राह्मण ! मैं उदार वर्णता ( = ऊँचे वर्णका होना, या अच्छे रंगका होना, को श्रेय नहीं बतलाता, न मैं उदार वर्णताको पापीय बतलाता हूँ । ( ३ ) ब्राह्मण ! मैं उदार-भोगता ( = बहुत धन-धान्य सम्पन्न होना ) को श्रेय कहता हूँ, न मैं उदार भाँगताको पापीय कहता हूँ ।

"ब्राह्मण ऊँचे कुल वाला भी कोई कोई प्राणातिपाती ( = हिंसक ) होता है, अदत्तादायी ( = चोर ) ०, काम मिथ्याचारी ०, सृषावादी ०, पिशुनभाषी ( = चुगुलखोर ) ०, परुष-भाषी ०, संप्रलापी ( = धकवादी ) ०, अभिष्यालु ( = लोभी ) ०, व्यापन्न-चित्त ( = द्वेषी ) ०, मिथ्या दृष्टि ( = झूठी धारणा वाला ) होता है । इसलिये ब्राह्मण ! मैं उच्चकुलीनताको श्रेय नहीं कहता । ऊँचे कुलवाला भी प्राणातिपात-विरत ( = अहिंसक ) होता है, अदत्तादान-विरत ( = अ-चोर ) ०, काम मिथ्याचार-विरत ०, सृषावाद-विरत ०, पिशुन भाषण-विरत ०, परुष-भाषण-विरत ०, संप्रलाप-विरत ०, अन्-अभिष्यालु ०, अ-व्यापन्न-चित्त ० ( और ) सम्यग्-दृष्टि होता है । इसलिये ब्राह्मण ! मैं उच्चकुलीनताको पापीय नहीं कहता ।

"ब्राह्मण ! उदार-वर्णवाला भी कोई कोई प्राणातिपाती ०, उदार वर्णवाला भी कोई कोई प्राणातिपात-विरत ० । उदार भोगवाला भी कोई कोई प्राणातिपाती ० । उदारभोग वाला भी कोई कोई प्राणातिपात-विरत ० सम्यग्-दृष्टि होता है, इसलिये ब्राह्मण ! मैं उदारवर्णता को पापीय नहीं कहता ।

"ब्राह्मण ! न मैं सबको परिचरणीय कहता हूँ, और न मैं सबको अ-परिचरणीय ( = अ-सेवनीय ) कहता हूँ । ब्राह्मण ! जिसको परिचरण करते = परिचर्यों के हेतु श्रद्धा बढ़ती है, शील ( = सदाचार ) बढ़ता है, धृत ( = ज्ञान ) बढ़ता है, त्याग बढ़ता है, ज्ञान बढ़ता है, उसे मैं परिचरणीय ( = परिचरितव्य ) कहता हूँ ।"

ऐसा कहनेपर फामुकारी ब्राह्मण भगवान्से यह बोला—

"भो गौतम ! ब्राह्मण चार ( प्रकार के ) स्वधन ( = अपना धन ) बतलाते हैं—( १ ) मिश्राचर्या-को ब्राह्मण का स्वधन बतलाते हैं, मिश्राचर्या स्वधनको अतिक्रमण करनेवाला ब्राह्मण अदत्तको लेनेवाले गोपकी भाँति अकृत्यकारी होता है । भो गौतम ! ब्राह्मण इसे ब्राह्मणोंका स्वधन बतलाते हैं । ( २ ) भो गौतम ! ब्राह्मण धनुकलाप ( = धाख-दिलव ) को क्षत्रियका स्वधन बतलाते हैं । धनुकलाप ( रूपी ) स्वधनको अतिक्रमण करनेवाला क्षत्रिय ० अकृत्यकारी होता है । ( ३ ) ० कृषि, गोरक्ष ( = गोपालन ) को वैश्यका स्वधन बतलाते हैं । ( ४ ) ० अस्तित्वार्भगि ( लकड़ी काटने डोने आदि ) को शूद्रका धन बतलाते हैं । अस्तित्वार्भगि ( रूपी ) स्वधनको अतिक्रमण करनेवाला शूद्र अदत्तको लेनेवाले गोपकी भाँति अकृत्यकारी ( = पापकारी ) होता है । भो गौतम ! ब्राह्मण यह चार ( प्रकार के ) स्वधन बतलाते हैं । यहाँ आप गौतम क्या कहते हैं ?"

"नवा ब्राह्मण ! सारी दुनिया ब्राह्मणोंको इसके लिये अनुज्ञा देती है ? इन चार स्वधनोंको प्रज्ञापन करें ?"

"नहीं, भो गौतम !"

"जैसे ब्राह्मण ! कोई ०<sup>१</sup> द्रविड पुरुष हो ०<sup>१</sup> ब्राह्मणोंका इन चार धनोंका प्रज्ञापन करना है ।"



“ब्राह्मण ! मैं लोकोत्तर आर्यधर्म को पुरुषका स्वधन प्रज्ञापन करता हूँ । ब्राह्मण ! माता-पिताके पुराने कुलवंशको अनुस्मरण करते जहाँ इस ( पुरुष ) का जन्म होता है, वही उसकी संज्ञा होती है । क्षत्रिय-कुलमें उत्पन्न होनेपर क्षत्रिय इसकी संज्ञा होती है । ब्राह्मण ० । वैश्य ० । शूद्रकुलमें उत्पन्न होनेपर शूद्र इसकी संज्ञा होती है ।

“जैसे ब्राह्मण ! जित जिस प्रत्यय ( = आश्रय ) को लेकर आग जलती है, वही वही ( उसकी ) संज्ञा होती है । काष्ठके आश्रयसे जो आग जलती है, काष्ठ-अग्नि उसकी संज्ञा होती है । शकलिका ( = चैली ) ० । गोमय ( = उपले ) के आश्रयसे जो आग जलती है, गोमय-अग्नि उसकी संज्ञा होती है । इस प्रकार हे ब्राह्मण ! मैं लोकोत्तर आर्यधर्मको पुरुषका स्वधन प्रज्ञापन करता ( = कहता ) हूँ । ० जहाँ इसका जन्म होता है, वही इसकी संज्ञा होती है ० शूद्र इसकी संज्ञा होती है ।

“ब्राह्मण ! क्षत्रियकुलसे भी यदि घरसे बेघर हो प्रव्रजित होता है । और वह तपामतके ज्ञानसाधने धर्म ( = धर्म-विनय ) को पा, प्राणातिपातसे विरत होता है ०<sup>१</sup> सम्यग्-दृष्टि होता है; तो वह न्याय = कुशल-धर्म ( = निर्वाण ) का आराधन करनेवाला होता है । ब्राह्मणकुल से ० । वैश्यकुलसे ० । शूद्रकुलसे ० तो वह न्याय कुशल धर्मका आराधन करनेवाला होता है ।

“तो क्या मानते हो, ब्राह्मण ! क्या ब्राह्मण ही इस प्रदेशमें वैर-रहित व्यापाद ( = द्वेष )-रहित मैत्री चित्तकी भावना कर सकता है, क्षत्रिय नहीं, वैश्य नहीं, शूद्र नहीं ?”

“नहीं, हे गौतम ! क्षत्रिय भी इस प्रदेशमें वैर-रहित, व्यापाद-रहित मैत्रीचित्तकी भावना कर सकता है । ब्राह्मण भी ०; वैश्य भी ०, शूद्र भी ० । सारे चारों वर्ण इस प्रदेश में ० मैत्री चित्तकी भावना कर सकते हैं ।”

“इसी प्रकार ब्राह्मण ! क्षत्रियकुल से भी यदि घरसे बेघर ० । सम्यग्-दृष्टि होता है; तो वह न्याय कुशल धर्म का आराधक होता है । ब्राह्मणकुलसे ० । वैश्यकुलसे ० । शूद्रकुलसे ० तो वह न्याय कुशल धर्मका आराधक होता है ।

“तो क्या मानते हो ब्राह्मण ! ! क्या ब्राह्मण ही ( = स्नान-चूर्ण-पिब ( = स्नान-स्नानाति ) ) ले, नदीपर जा मँल हो सकता है; क्षत्रिय नहीं, वैश्य नहीं, शूद्र नहीं ?”

“नहीं, मो गौतम ! क्षत्रिय भी ०; वैश्य भी ०; शूद्र भी स्नान-चूर्ण-पिब ( = स्नान-स्नानाति ) काहुन जैसा कोई पदार्थ ) ले नदीपर जा मँल हो सकता है । सारे चारों वर्ण ० ।”

“ऐसे ही ब्राह्मण ! क्षत्रिय कुलसे यदि घरसे बेघर ० । ० सम्यग्-दृष्टि हो; तो वह न्याय-कुशल-धर्मका आराधक होता है । ब्राह्मण कुलसे ० । वैश्य कुलसे ० । शूद्र कुलसे ० तो वह न्याय-कुशल-धर्मका आराधक होता है ।

“तो क्या मानते हो, ब्राह्मण ! ( यदि ) यहाँ सूर्याभिषिक्त क्षत्रिय राजा नाना जातिके सौ पुरुष इकट्ठा करे ( और उन्हें कहे— ) आये आप सब ०<sup>२</sup> उस जागसे अग्रिका काम नहीं लिया जा सकेगा ?”

“नहीं, मो गौतम ! जो वह क्षत्रिय ० कुलोत्पन्न द्वारा ० आग बनाई गई है ०, वह भी अर्चिमान् ० जाग होगी, उस जागसे भी आगका काम लिया जा सकता है । और जो वह चाँदाल ० कुलोत्पन्न द्वारा ० अग्नि बनाई गई है ० वह भी अर्चिमान् ० अग्नि होगी । सभी जागसे आगका काम लिया जा सकता है ।”

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ ४०२ ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ ४८८ ।

“ऐसे ही ब्राह्मण ! क्षत्रियकुलसे भी यदि घरसे बेघर ० । ० सम्यग्-दृष्टि हो, तो वह न्याय-कुशल-धर्मका आराधक होता है । ब्राह्मणकुलसे भी ० । वैश्यकुलसे भी ० । शूद्रकुलसे भी ० तो वह न्याय-कुशल-धर्मका आराधक होता है ।”

ऐसा कहनेपर पासुकारि ब्राह्मणने भगवानसे यह कहा—“आध्वर्य ! भो गौतम ! आध्वर्य ! भो गौतम ! जैसे श्रीवेको सीधा कर दे ०” आप गौतम आजसे मुझे अंबलिपद्म शरणागत उपासक स्वीकार करें ।”



## ६७—धानंजानि-सुत्तन्त (२।५।७)

अपना अपना किला अपने अपने साथ

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् राजगृहमें वैष्णुवन कलंदक-निवापमें विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र बड़े मिथु-संघके साथ दक्षिणागिरिमें चारिका कर रहे थे । तब कोई मिथु राजगृहमें वर्षावास कर, जहाँ दक्षिणागिरि था, जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे, वहाँ गया । जाकर आयुष्मान् सारिपुत्रके साथ—संमोदनकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे उस मिथु से आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा—

“आयुस ! भगवान् निरोग हैं न, बलवान् हैं न ?”

“आयुस ! भगवान् निरोग हैं, बलवान् हैं ।”

“आयुस ! मिथु-संघ निरोग है न, बलवान् है न ?”

“आयुस ! मिथु-संघ भी निरोग है, बलवान् है ।”

“आयुस ! वहाँ तण्डुलपट्ट द्वारमें धानंजानि नामक ब्राह्मण रहता है । आयुस ! धानंजानि ब्राह्मण निरोग है न, बलवान् है न ?”

“आयुस ! धानंजानि ब्राह्मण निरोग है बलवान् ( = समृद्ध ) है ।”

“आयुस ! धानंजानि ब्राह्मण अ-प्रमत्त ( = प्रमाद-रहित ) है न ?”

“आयुस ! धानंजानि ब्राह्मणको अप्रमाद कहाँसे । आयुस ! धानंजानि ब्राह्मण राजाका सहारा ले, ब्राह्मण गृहस्थोंको छूटता है ( = विलुम्पति ), ब्राह्मण-गृहपतिघोंका सहारा ले राजाको छूटता है । जो अद्भुतकुलसे काहे उसकी अद्भुत भाषा थी, वह भी मर गई । अद्भुतकुलसे दूसरी भाषा ( अर्थ ) काया है ।”

“आयुस ! दुःश्रुत ( = न सुनने योग्य ) हमने सुना ! दुःश्रुत हमने सुना !! जो कि हमने धानंजानि ब्राह्मणको प्रमत्त सुना । क्या कभी किसी समय धानंजानि ब्राह्मणके साथ हमारा सम्मेलन होगा ! क्या हमारा उसके साथ कुछ कथा-संलाप होगा !!”

तब आयुष्मान् सारिपुत्र दक्षिणागिरिमें इच्छानुसार विहार कर, जहाँ राजगृह था, उधर चारिकाके लिये चल पड़े । क्रमशः चारिका करते, जहाँ राजगृह है, वहाँ पहुँचे । वहाँ राजगृहमें आयुष्मान् सारिपुत्र वैष्णुवन कलंदक-निवापमें विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् सारिपुत्र पूर्वाह्न समय पहिचकर, पात्रधीवर ले राजगृहमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुये । उस समय धानंजानि ब्राह्मण नगरके बाहर मोष्ठ ( = बंधान ) में पायें बुद्धा रहा था । तब आयुष्मान् सारिपुत्र राजगृहमें पिंडधार कर, भोजनान्तर पिंडपातसे छुटी पा जहाँ धानंजानि ब्राह्मण था, वहाँ गये । धानंजानि ब्राह्मणने दूरसे ही आयुष्मान् सारिपुत्रको आते देखा । देखकर जहाँ

आयुष्मान् सारिपुत्र धे, वहाँ गया; जाकर आयुष्मान् सारिपुत्रसे यह बोला—

“भो सारिपुत्र ! यह दूध है इसे पिये, तब तक भोजनका समय होता है ।”

“अकम् (= बस) ब्राह्मण ! आज मैं भोजन-कृत्य समाप्तकर चुका हूँ । असुक वृक्षके नीचे मेरा दिनका विहार होगा, वहाँ जाना ।”

“अच्छा, भो !”—( कह ) धानंजानि ब्राह्मणने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया ।

तब धानंजानि ब्राह्मण प्रातराश कर, भोजनोपरांत जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र धे, वहाँ गया; जाकर आयुष्मान् सारिपुत्रके साथ स्नानोदन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे धानंजानि ब्राह्मणसे आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा—

“धानंजानि ! अ-प्रमत्त (= दुष्कर्ममें प्रमादी सुकर्ममें रत ) तो हो ?”

“भो सारिपुत्र ! कहाँसे हम जैसोंको अ-प्रमाद होगा, जिन्हें कि माता-पिताको पोषण करना हो, पुत्र-दाराको पोषण करना हो, दास-कर्मकरोंको पोषण करना हो; मित्र-अमात्र्योंका काम करना हो, जाति-भाह्यों (= जाति-सलोहित) का काम करना हो, अतिथियोंका ०, पूर्व-प्रेतों (= पितरों) का ०, देवताओंका ०, राजाका राज-कार्य करना हो, और इस ( अपने ) शरीरको भी तर्पित वर्द्धित करना हो ?”

“तो क्या मानते हो, धानंजानि ! यहाँ कोई ( पुरुष ) माता-पिताके लिये अधर्मचारी = विषमचारी होवे । ( उस ) अधर्मचर्या विषमचर्याके लिये उसे नरकपाल नरकमें ले जायें; क्या वह यह ( कहने ) पा सकता है—‘मैं माता-पिताके लिये अधर्मचारी = विषमचारी हुआ, नरकपालों ! मत मुझे नरकमें ( डालो )’ ? या उसके माता-पिता यह ( कहने ) पा सकते हैं—‘यह हमारे लिये, अधर्मचारी = विषमचारी हुआ, नरकपालों ! मत इसे नरकमें डालो’ ?”

“नहीं, भो सारिपुत्र ! वल्कि उसे चिल्लातेहीको नरकपाल (= निरय-पाल) नरकमें डाल देंगे ।”

“तो क्या मानते हो, धानंजानि ! यहाँ कोई पुत्र-दाराके लिये अधर्मचारी = विषमचारी होवे । ० । ० दास-कर्मकर पुरुषोंके लिये ० । ० मित्र-अमात्र्यों (= चार दोस्तों) के लिये ० । जाति-सालोहितों (= भाई-बंदों) के लिये ० । ० अतिथियोंके लिये ० । ० पूर्व-प्रेतोंके लिये ० । ० देवताओंके लिये ० । ० राजाके लिये ० । ० कायाके तर्पण वर्द्धनके लिये अधर्मचारी ० होवे । ० क्या वह यह ( कहने ) पा सकता है—‘मैं शरीरके तर्पण वर्द्धनके लिए अधर्मचारी = विषमचारी हुआ, नरकपालों ! मत मुझे नरकमें ( डालो )’ ? या दूसरे यह ( कहने ) पा सकते हैं—‘यह काया के तर्पण वर्द्धनके लिये अधर्मचारी = विषमचारी हुआ, नरकपालों ! मत इसे नरकमें ( डालो )’ ?”

“नहीं, भो सारिपुत्र ! वल्कि उस चिल्लातेहीको नरकपाल नरकमें डाल देंगे ।”

“तो क्या मानते हो, धानंजानि ! जो कि माता-पिताके हेतु अधर्मचारी = विषमचारी होता है, और जो कि माता-पिताके हेतु धर्मचारी = समचारी होता, इन दोनों ( कर्मों ) में कौन श्रेय (= अच्छा ) है ?”

“भो सारिपुत्र ! माता-पिताके हेतु अधर्मचारी = विषमचारी होता, यह श्रेय नहीं; किन्तु जोकि माता-पिताके हेतु धर्मचारी-समचारी होता है, यही श्रेय है । अधर्मचर्या = विषमचर्यासे भो सारिपुत्र ! धर्मचर्या = समचर्या श्रेय है ।”

“धानंजानि ! दूसरे भी स-हेतुक (= फलदायक) धार्मिक कर्मान्त (= पेतो) हैं, जिनसे माता-पिताका पोषण किया जा सकता है, किन्तु पाप-कर्मको न करना और पुण्य-मार्गको ग्रहण करना ( चाहिये ) ।

“तो क्या मानते हो, धानंजानि ! जोकि पुत्र-दाराके हेतु अधर्मचारी = विषमचारी होता



० । ० दास-कर्मकर-पुरुषोंके हेतु ० । ० मित्र-अमात्योंके हेतु ० । ० ज्ञाति-सालोहितोंके हेतु ० । ० अतिमित्रोंके हेतु ० । ० पूर्व-प्रेतोंके हेतु ० । ० देवताओंके हेतु ० । ० राजाके हेतु ० । ० कायाके तर्पण करनेके हेतु ० पुण्यमार्गका ग्रहण करना ( चाहिये ) ।”

तब धर्मजानि ब्राह्मण आयुष्मान् सारिपुत्रके भाषणको अभिन्नचित्त अनुमोदितकर आसनसे उठकर चला गया ।

दूसरे समय धर्मजानि ब्राह्मण दुःखित = व्याधित बहुत बीमार हुआ । तब धर्मजानि ब्राह्मणने किसी पुरुषको बुलाया—“लाओ हे पुरुष ! तुम जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाओ; जाकर मेरे वचनसे भगवान्के चरणोंको, शिरसे वेदना करो—मन्ते ! धर्मजानि ब्राह्मण ० बहुत बीमार है, वह भगवान्के चरणोंको शिरसे वेदना करता है” । ( फिर ) जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र हों, वहाँ जाओ, जाकर मेरे वचनसे आयुष्मान् सारिपुत्रके चरणोंको, शिरसे वेदना करो—मन्ते ! धर्मजानि ब्राह्मण ० बहुत बीमार है, वह आयुष्मान् सारिपुत्रके चरणोंको, शिरसे वेदना करता है; और वह भी कही—“अच्छा हो, मन्ते ! यदि आयुष्मान् सारिपुत्र कृपा कर जहाँ धर्मजानि ब्राह्मणका घर है, वहाँ चले” ।”

“अच्छा, मन्ते ( = स्वामी ) !”—( कह ) वह पुरुष धर्मजानि ब्राह्मणको उत्तर दे, जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठा । एक ओर बैठे उस पुरुषने भगवान्से यह कहा—“मन्ते ! धर्मजानि ब्राह्मण ० बहुत बीमार है, वह भगवान्के चरणोंको, शिरसे वेदना करता है” । ( फिर ) जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे, वहाँ गया; जाकर आयुष्मान् सारिपुत्रको अभिवादन कर एक ओर बैठा—आयुष्मान् सारिपुत्रसे बोला—“मन्ते ! धर्मजानि ब्राह्मण ० बहुत बीमार है, ० अच्छा हो, मन्ते ! यदि आयुष्मान् सारिपुत्र कृपाकर जहाँ धर्मजानि ब्राह्मणका घर है, वहाँ चले” ।”

आयुष्मान् सारिपुत्रने मौनसे स्वीकार किया । तब आयुष्मान् सारिपुत्र पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहाँ धर्मजानि ब्राह्मणका घर था, वहाँ गये; जाकर बिछे आसनपर बैठे । बैठकर आयुष्मान् सारिपुत्रने धर्मजानि ब्राह्मणसे यह कहा—

“धर्मजानि ! ठीक तो है ? ( काल- ) वापन तो हो रहा है, दुःखा वेदनायें हट तो रही हैं, लौट तो नहीं रही हैं ? ( व्याधिका ) हटना तो मालूम हो रहा है; लौटना तो नहीं मालूम हो रहा है ?”

“ओ सारिपुत्र ! मुझे ठीक नहीं है, नहीं वापन हो रहा है, भारी दुःखमय वेदनायें आ रही हैं, हटती नहीं हैं, ( पीडाका ) जाना ही जान पड़ता है, जाना नहीं । जैसे, ओ सारिपुत्र ! ( कोई ) बलवान् पुरुष तीक्ष्ण शिखरसे शिरको मथित करे, ऐसे हो, ओ सारिपुत्र ! वही जोरकी हवा मेरे शिरको ताकन करती है । ओ सारिपुत्र ! मुझे ठीक नहीं है ० ( पीडाका ) जाना ही जान पड़ता है, जाना नहीं । जैसे, ओ सारिपुत्र ! ( कोई ) बलवान् पुरुष मज्जित स्तनीसे शिरको—( जोरसे ) बाँध दे, ऐसे हो ओ सारिपुत्र ! मुझे वही जोरकी स्तनवेदना है । नहीं ० । जैसे, ओ सारिपुत्र ! चतुर गोघातक या गोघातकका अन्तेवासी तेज गो-विकर्तन ( = गाव काटनेके छुरे ) से पेटको काटे ऐसे ही, ओ सारिपुत्र ! जोरसे पायु मेरे पेटको काट रहे हैं । नहीं ० । जैसे, ओ सारिपुत्र ! दो बलवान् पुरुष ( किली ) अति दुर्बल पुरुषको अनेक बाँहोंसे पकड़कर और ( की आग ) पर तपायें, संतपायें, ऐसे हो, ओ सारिपुत्र ! मेरे शरीरमें अत्यधिक दाह हो रहा है । मुझे ठीक नहीं, ० ।”

“तो क्या भामते हो, धर्मजानि ! नरक अच्छा ( = श्रेय ) है, या निर्दम्य ( = यष्ट )-योनि ?”

“नरकसे, भो सारिपुत्र ! तिर्यग्-योनि अच्छी है ।”

“तो क्या मानते हो, धानंजानि ! तिर्यग्-योनि अच्छी है, या प्रेतलोक ?”

“० प्रेतलोक ० ।”

“० प्रेतलोक अच्छा है, या मनुष्य ?” — “० मनुष्य ० ।”

“० मनुष्य अच्छे हैं, या चातुर्महाराजिक देव ?” — “० चातुर्महाराजिक देव ० ।”

“० चातुर्महाराजिक देव ०, या त्रायस्त्रिंश देव ?” — “० त्रायस्त्रिंश देव ० ।”

“० त्रायस्त्रिंश देव ०, या याम देव ?” — “० याम देव ० ।”

“० याम देव ०, या तुषित देव ?” — “० तुषित देव ० ।”

“० तुषित देव ०, या निर्माणरति देव ?” — “० निर्माणरति देव ० ।”

“० निर्माणरति देव ०, या परनिर्मितवशवर्ती देव ?” — “० परनिर्मितवशवर्ती देव ० ।”

“तो क्या मानते हो, धानंजानि ! परनिर्मितवशवर्ती देव अच्छे हैं, या ब्रह्मलोक ?”

“ब्रह्मलोक आप सारिपुत्र कह रहे हैं ! ब्रह्मलोक आप सारिपुत्र कह रहे हैं !!”

तब आयुष्मान् सारिपुत्रको यह हुआ— “यह ब्राह्मण ब्रह्मलोकके भट्ठालु हैं, क्यों न मैं धानंजानि ब्राह्मणको ब्रह्मोंकी सहव्यता (= सारूप्य) का मार्ग उपदेशूँ ।” —

“धानंजानि ! ब्रह्मोंकी सहव्यताका मार्ग तुझे उपदेशता हूँ, उसे सुन, अच्छी तरह मनमें करो कहता हूँ ।”

“अच्छा, भो !” — ( कह ) धानंजानि ब्राह्मणने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया । आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा—

“क्या है, धानंजानि ! ब्रह्मोंकी सहव्यताका मार्ग ? — ( १ ) यहाँ धानंजानि ! भिक्षु मैत्रीपूर्ण चित्तसे ० । सारे लोकको पूर्ण कर विहार करता है यह भी धानंजानि ब्रह्मोंकी सहव्यताका मार्ग है । और फिर धानंजानि ! ( २ ) कृपापूर्ण चित्तसे ० । ( ३ ) और फिर धानंजानि ! मुदितापूर्ण चित्तसे ० । ( ४ ) उपेक्षापूर्ण चित्तसे ० । सारे लोकको पूर्ण कर विहरता है । यह भी धानंजानि ! ब्रह्मोंकी सहव्यताका मार्ग है ।”

“तो, भो सारिपुत्र ! मेरे वचनसे भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वंदना करें— “भन्ते ! धानंजानि ब्राह्मण ० बहुत बीमार है, वह भगवान्‌के चरणोंको, शिरसे वंदना करता है ।”

तब आयुष्मान् सारिपुत्रने धानंजानि ब्राह्मणको स-करणीय (= जहाँ पहुँचकर आगे भी कर्तव्य करनेको बाकी रहता है), हित, ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित कर आसनसे उठ चल दिये । तब आयुष्मान् सारिपुत्रके चले जानेके थोड़े ही समय बाद धानंजानि ब्राह्मण मर गया, और ( जाकर ) ब्रह्मलोकमें उत्पन्न हुआ ।

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको लाभप्रित किया—

“भिक्षुगो ! यह सारिपुत्र धानंजानि ब्राह्मणको स-करणीय, हित ( रूप ) ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित कर आसनसे उठकर चल दिया ।”

तब आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ भगवान्‌ थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌से यह कहा—

“भन्ते ! धानंजानि ब्राह्मण ० बहुत बीमार है, वह भगवान्‌के चरणोंको, शिरसे वंदना करता है ।”



“क्यों सारिपुत्र ! तुने धानंजानि ब्राह्मणको सं-करणीय, हित, ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित कर आसनसे उठकर चला लाया ?”

“भन्ने ! सुझे ऐसा हुआ—ब्राह्मण ब्रह्मलोकके प्रति झट्टालु होते हैं; क्यों न मैं धानंजानि ब्राह्मणको, ब्रह्मोंकी सदृश्यताका मार्ग उपदेखूँ ।”

“सारिपुत्र ! धानंजानि ब्राह्मण भर गया, धीरे ( जाकर ) ब्रह्मलोकमें उतरपड़ा हुआ है ।”

## ६८-वासेट-सुत्तन्त' (२।५।८)

वर्णव्यवस्था-संरचना

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् इच्छानगलमें इच्छानगलके वनपण्डमें विहार करते थे ।

उस समय बहुतसे अभिज्ञात अभिज्ञात (= प्रतिष्ठित) ब्राह्मण महाशाल (= महाधनी) जैसे कि—चूँकि ब्राह्मण, तारुक्ख (= तारुख) ब्राह्मण, जानुस्सोणि ब्राह्मण, तोदप्य ब्राह्मण, तथा दूसरे अभिज्ञात अभिज्ञात ब्राह्मण महाशाल, इच्छानगलमें वास करते थे ।

तब वासिष्ठ और भारद्वाज दो भाणवों (= छात्रों) की, लंघाविहारके लिये रहलते घूमते वक्त यह बात बीचमें चल पड़ी—'ब्राह्मण कैसे होता है भो ?' ।

भारद्वाज भाणवने कहा—“जब ( पुण्य ) दोनों ओरसे मातासे भी पितासे भी सुजात होता है, ( माता-पिता ) दोनों ओरके पितामहोंकी सात पीढ़ी तक विशुद्ध वंशवाले, जातिवादसे अश्लिष्ट = अनिन्दित हों—इतनेसे, भो ! ब्राह्मण होता है ।”

वासिष्ठ भाणवने यह कहा—“जब ( आदर्मी ) शीलवान् और अत-संपन्न होता है, इतनेसे, भो ! ब्राह्मण होता है ।”

भारद्वाज भाणव वासिष्ठ भाणवको नहीं समझा सका, वासिष्ठ भाणव भारद्वाज भाणवको नहीं समझा सका ।

तब वासिष्ठ भाणवने भारद्वाज भाणवको संबोधित किया—

“यह वाक्यकुलसे प्रसूतित शाक्यपुत्र अश्वमज गौतम इच्छानगलके वनपण्डमें विहार करते हैं । उन आप गौतमका ऐसा कल्याण कीर्तिसब्द उठा हुआ है—‘यह भगवान् \* खुद भगवान् हैं’ । चलो, भो भारद्वाज ! जहाँ अश्वमज गौतम हैं, वहाँ चलो । चलकर अश्वमज गौतमसे इस बातको पूछें, जैसा अश्वमज गौतम वतलायेंगे, वैसा धारण करेंगे ।”

“अच्छा, भो !”—( कह ) भारद्वाज भाणवने वासिष्ठ भाणवको उत्तर दिया—

तब वासिष्ठ और भारद्वाज भाणव जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान्के साथ सम्मोदन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे वासिष्ठ भाणवने भगवान्से राधाओंमें कहा—

“भो ! हम अनुज्ञात-प्रतिज्ञात<sup>१</sup> त्रैविष्ट<sup>२</sup> हैं ।

मैं पौष्करलातिका और यह तारुक्खके भाणव<sup>३</sup> हैं । ( १ ) ॥

<sup>१</sup> यह सूत्र अनुपनिषत्ति ( सुतपिटक )में भी आया है ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ १५८ ।

<sup>३</sup> मज्झिम ।

<sup>४</sup> तीनों वेदोंके शास्त्र ।

<sup>५</sup> त्रिषाणी ।



प्राणियोंका जो आश्रयान<sup>१</sup> है, उसमें हम केवली<sup>२</sup> है ।  
 पद्म, व्याकरण ( और ) जल्य<sup>३</sup> में हम ( अपने ) आचार्यके समान हैं ॥ ( २ ) ॥  
 गौतम ! ऐसे हम ( दोनों ) का जाति-वादके विषयमें विवाद है ।  
 भारद्वाज कहता है—‘जाति’से ब्राह्मण होता है’ ॥ ( ३ ) ॥  
 चक्षुमन् ! मैं कर्मसे कहता हूँ, ऐसा ( आप ) जानें ।  
 हम दोनों एक दूसरेको समझा नहीं सकते ।  
 ( तब ) संवृद्ध करके विस्तृत भगवान्के पास जाये हैं ॥ ( ४ ) ॥  
 भक्ष्य बंदमाको जैसे लोग जाकर हाथ जोड़,  
 वन्दना करके नमस्कार करते हैं, ऐसे ही लोकमें गौतमको ( भी ) ॥ ( ५ ) ॥  
 लोकके-बहु- ( जैसे )-उत्पन्न ( आप ) गौतमसे हम पूछते हैं—  
 ‘जन्मसे ब्राह्मण होता है, वा कर्मसे’ ?  
 हम अजानोंको धत्तापे, जिसमें हम ब्राह्मणको जानें” ॥ ( ६ ) ॥

( भगवान्—“वाशिष्ठ ! )—

सो तुम्हें मैं कमलाः यथार्थतः कहता हूँ ।  
 प्राणियोंकी जातियोंमें एक दूसरेसे जातिका भेद है ॥ ( ७ ) ॥  
 वृण और वृक्षमें भी, जानते हो ( इसके लिये ) वह प्रतिज्ञा नहीं करते,  
 जातिका लिंग है; इनमें जातियाँ एक दूसरेसे ( भिन्न ) हैं ॥ ( ८ ) ॥  
 फिर कीट, पतंगसे चींटी तक,  
 जातिका लिंग है; उनमें ० ॥ ( ९ ) ॥  
 छोटे पक्षे चौपायोंमें भी तुम जानते हो,  
 जातिका लिंग है; इनमें ० ॥ ( १० ) ॥  
 कन्धी पीठवाले पादोद्वर<sup>४</sup> सर्पको भी जानते हो,  
 जातिका लिंग ० ॥ ( ११ ) ॥  
 फिर जलचर पानीकी मछलियोंको भी जानते हो,  
 जातिका लिंग है ० ॥ ( १२ ) ॥  
 फिर आकाशचारी पक्षधाम<sup>५</sup> पक्षियोंको भी जानते हो,  
 जातिका लिंग है ० ॥ ( १३ ) ॥  
 जैसा इन जातियोंमें जातिका अलग अलग लिंग है ।  
 इस प्रकारका जाति-लिंग मनुष्योंमें अलग अलग नहीं है ॥ ( १४ ) ॥  
 न केशोंमें, न शिरमें, न कानमें, न आँखमें ।  
 न मुखमें, न नासिकामें, न ओठ और नोंमें ।  
 न ग्रीवामें, न कंधेमें, न पीठमें, न पैरमें ॥ ( १५ ) ॥  
 न अंगुलीमें, न उरमें, न गोप्यस्थानमें, न मूधुनमें ।  
 न हाथमें, न पैरमें, न अंगुली और नखमें ॥ ( १६ ) ॥

<sup>१</sup> आश्रयान, पाठा विषय ।

<sup>२</sup> वाद्वर्ती ।

<sup>३</sup> वाद ।

<sup>४</sup> कर्म ।

<sup>५</sup> ऊपर है पादका काम देता, निराला ।

<sup>६</sup> पक्ष ही निराला धाम (= सवारी ) है ।

न जंघामें, न उरुमें, न वर्ण या स्वरमें ।

जैसा कि अन्य जातियोंमें है, ( वैसा ) जातिका कोई ( दृष्टक् ) लिंग नहीं ॥ ( १३ ) ॥

मनुष्योंके शरीर शरीरमें यह ( भेदक लिंग ) नहीं मिलता ।

मनुष्योंमें भेद ( सिर्फ ) संज्ञामें है ॥ ( १४ ) ॥

मनुष्योंमें जो गौरवसे जीविका करता है ।

वाशिष्ठ ! ऐसेको कृषक जानो, ब्राह्मण नहीं ॥ ( १५ ) ॥

मनुष्योंमें जो किसी शिल्पसे जीविका करता है ।

वाशिष्ठ ! ऐसेको शिल्पी जानो, ब्राह्मण नहीं ॥ ( १६ ) ॥

मनुष्योंमें जो व्यापारसे जीविका करता है ।

वाशिष्ठ ! ऐसेको धनिया जानो, ब्राह्मण नहीं ॥ ( १७ ) ॥

मनुष्योंमें जो पर-प्रेषण<sup>१</sup>से जीविका करता है ।

वाशिष्ठ ! ऐसेको प्रेष्यक<sup>२</sup> जानो, ब्राह्मण नहीं ॥ ( १८ ) ॥

मनुष्योंमें जो अदत्तादानसे जीता है ।

वाशिष्ठ ! ऐसेको चोर जानो, ब्राह्मण नहीं ॥ ( १९ ) ॥

मनुष्योंमें जो इषु-अस्त्रसे जीता है ।

वाशिष्ठ ! ऐसेको ओघाजीवी<sup>३</sup> जानो, ब्राह्मण नहीं ॥ ( २० ) ॥

मनुष्योंमें जो पुरोहितीसे जीता है ।

वाशिष्ठ ! ऐसेको याजक जानो, ब्राह्मण नहीं ॥ ( २१ ) ॥

मनुष्योंमें जो ग्राम राष्ट्रका उपभोग करता है ।

वाशिष्ठ ! ऐसेको राजा जानो, ब्राह्मण नहीं ॥ ( २२ ) ॥

<sup>१</sup>भाता और पौनसे उत्पन्न होनेके कारण मैं ब्राह्मण नहीं कहता ।

वह 'भो-नादी' <sup>२</sup>है, वह ( तो ) संश्रयी है !

मैं ब्राह्मण उसे कहता हूँ, जो अपरिग्रही = न लेनेवाला है ॥ ( २३ ) ॥

जो सारे संयोजनों ( = वंशों ) को काटकर, भय नहीं खाता ।

जो संग और आसक्तिसे विरत है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( २४ ) ॥

गन्दी ( = फोड़ ), वस्त्रा ( = सृष्ट्या रूपी रस्सी ) सन्दान ( = ६२ प्रकारके मतवाद्-

रूपी पगड़े ), और हनुकम ( = हँहपर बाँधनेके जाड़े ) को काट एवं परिध ( = वृष्ट ) को फँक जो

बुद्ध ( = ज्ञानी ) हुआ, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( २५ ) ॥

जो बिना दूषित ( चित्त ) किये गाली, बध और धन्यनको सहन करता है, क्षमा प्रकटी

निसके बल ( = सेना ) का सेनापति है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( २६ ) ॥

जो अक्रोधी, मत्ती, शीलवान्, बहुश्रुत, संयमी ( = दान्त ) और अन्तिम शरीरवाला

है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( २७ ) ॥

कमलके पत्तेपर चल, और आरके नोकपर सरसों, की भाँति जो भोगोंमें लिप्त नहीं होता,

उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( २८ ) ॥

<sup>१</sup> पठवर्णिका का नाम । <sup>२</sup> पठवर्णिका ( = मालिकके भेजे अनुसार काम करनेवाला ) । <sup>३</sup> सिपाही ।

<sup>४</sup> यहाँसे "जो पूर्व जन्मको जानता है ०" तक धम्मपद ३५६-४२३ ( २६:१४-४६ ) में आया है ।

<sup>५</sup> उस समय ब्राह्मण ब्राह्मणको ही "भो" कहकर संबोधित करते थे ।



जो यही (= इसी जन्ममें) अपने दुःखोंके विनाशको जान लेता है, जिसने अपने घोसको उत्तर फेंका और जो आसक्तिरहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ३३ ) ॥

जो सम्भीर प्रज्ञावाला, मेधावी, मार्ग-अमार्गका ज्ञाता, उत्तम पदार्थ (= सत्य) को पाये है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ३४ ) ॥

घरवाले (= गृहस्थ) और बेघरवाले दोनोंहीमें जो लिस नहीं होता, जो बिना ठिकानेके घूमता तथा बेचाह है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ३५ ) ॥

चर-अचर (सभी) प्राणियोंमें प्रहारित हो, जो न मारता है, न मारनेको प्रेरणा करता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ३६ ) ॥

जो विरोधियोंके बीच विरोध-रहित रहता है, जो दंडधारियोंके बीच (दण्ड-)रहित है, संग्राहियोंमें जो संग्रह-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ३७ ) ॥

आरेके ऊपर सरसोंकी भौंति, जिसके ( जिससे ) राग, द्वेष, मात, बाह, फेंक दिये गये हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ३८ ) ॥

( जो इस प्रकारकी ) अकर्तृता, आदरयुक्त ( तथा ) सभी वाणीको बोले; कि, जिससे कुछ भी पीड़ा न होवे, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ३९ ) ॥

( चीज ) चाहे दीर्घ हो या ह्रस्व, मोटी हो या पतली, शुभ हो या अशुभ, जो संसारमें ( किसी भी ) बिना दी चीजको नहीं लेता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ४० ) ॥

इस लोक और परलोकके विषयमें जिसको आशायें (= चाह) नहीं रह गई हैं, जो आहाररहित और आसक्तिरहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ४१ ) ॥

जिसको आलस्य (= लृप्ता) नहीं है, जो भली प्रकार जानकर अकर्म (-पद) का कहने-वाला है, जिसने गाढ़े अमृतको पालिया, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ४२ ) ॥

जिसने यहाँ पुण्य और पाप दोनोंकी आसक्तिको छोड़ दिया, जो शोकरहित, निर्मल, ( और ) शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ४३ ) ॥

जो चन्द्रमाकी भौंति विमल, शुद्ध, स्वच्छ = अनाविल है, ( तथा जिसकी ) सभी जन्मोंकी लृप्ता नष्ट हो गई है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ४४ ) ॥

जिसने इस दुर्गम संसार, (= जन्म-मरण) के चक्रमें डालनेवाले मोह ( रूपी ) उल्टे मार्गको त्याग दिया, जो ( संसारसे ) पारगत, ध्यानी तथा तीर्ण (= तर गया ) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ४५ ) ॥

जो यहाँ भोगोंको छोड़, बेघर हो प्रव्रजित (= संन्यासी) हो गया है, जिसके भोग और जन्म नष्ट हो गये, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ४६ ) ॥

जो यहाँ लृप्ताको छोड़, बेघर वन प्रव्रजित है, जिसकी लृप्ता और ( पुनर-)जन्म नष्ट हो गये, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ४७ ) ॥

मातृप ( -भोगोंके ) लाभोंको छोड़, दिव्य ( भोगोंके ) लाभको भी ( जिसने ) त्याग दिया, सारे ही लाभोंमें जो आसक्त नहीं है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ४८ ) ॥

रति और अरति (= लृप्ता) को छोड़, जो शीतल-स्वभाव ( तथा ) क्लेशरहित है, ( जो ऐसा ) सर्वलोकविजयी, वीर है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ४९ ) ॥

जो प्राणियोंकी च्युति (= मृत्यु) और उत्पत्तिको भली प्रकार जानता है, ( जो ) आसक्तिरहित सुगत (= सुंदर गतिको प्राप्त) और शुद्ध (= शान्ति) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ५० ) ॥

जिसकी गति (= पहुँच) को देवता, गंधर्व, और मनुष्य नहीं जानते, क्षीणान्धव (= रागादि-रहित) और अर्हत् है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ५१ ) ॥

जिसके पूर्व और पश्चात् और मध्यमें कुछ नहीं है, जो परिग्रह-रहित = आदान-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ५२ ) ॥

( जो ) अथम (= श्रेष्ठ), प्रवर, वीर, महर्षि, विजेता, अकम्प्य, स्नातक और बुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ५३ ) ॥

जो पूर्व जन्मको जानता है, स्वर्ग और दुर्गतिको देखता है ।

और जिसका ( पुनर्- ) जन्म क्षीण होगया; जो अभिज्ञा-परायण<sup>१</sup> मुनि है ।

सारे कृत्य जिसके समाप्त होगये हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ( ५४ ) ॥

लोकमें यह संज्ञायें हैं, ( यह ) कल्पित नाम-गोत्र हैं ।

वहाँ वहाँ कल्पित ( करके ) लोक-व्यवहारसे चला आया है ॥ ( ५५ ) ॥

अज्ञोंकी धारणामें चिर कालसे ( यह ) धुसा हुआ है ।

जाननेवाले नहीं कहते—“ब्राह्मण जन्मसे होता है” ॥ ( ५६ ) ॥

जन्मसे न ब्राह्मण होता है, न जन्मसे अ-ब्राह्मण ।

कर्मसे ब्राह्मण होता है, ( और ) कर्मसे अ-ब्राह्मण ॥ ( ५७ ) ॥

कर्मसे कृषक होता है ( और ) कर्मसे शिल्पी ।

कर्मसे दनिया होता है, ( और ) कर्मसे प्रेम्पक ॥ ( ५८ ) ॥

कर्मसे चोर होता है, ( और ) योधा जीव भी कर्मसे ।

कर्मसे राजक होता है, ( और ) राजा भी कर्मसे ॥ ( ५९ ) ॥

“प्रतीत्य समुत्पाद-दर्शी ( और ) कर्म-विपाक-कोविद,

वर्द्धित ( जन ) इस प्रकार कर्मको खचार्यसे जानते हैं ॥ ( ६० ) ॥

लोक कर्मसे चल रहा है, प्रजा कर्मसे चल रही है ।

चलते हुये रखके ( चक्केकी ) जालोंकी भाँति प्राणी कर्ममें बँधे हैं ॥ ( ६१ ) ॥

तप, ब्रह्मचर्य, संयम और दम,

इनसे ब्राह्मण होता है, यही उत्तम ब्राह्मण है ॥ ( ६२ ) ॥

तीन<sup>२</sup> विद्याओंसे युक्त, शान्त ( और ) पुनर्जन्म-रहित,

वाशिष्ठ ! ऐसोंको ( तुम ) विज्ञोंके ब्रह्मा ( और ) शक्त जानो ॥ ( ६३ ) ॥”

ऐसा कहतेपर वाशिष्ठ और मारद्वाज भाणवर्द्धनि भगवान्से यह कहा—

“आश्चर्य ! ओ गौतम ! आश्चर्य !! ओ गौतम ! जैसे औषेको सीखा कर दे ०” यह हम भगवान् गौतमकी शरण जाते हैं, धर्म और मिथु-संघकी भी । आप गौतम आजसे हमें अंबलिषट् शरणागत उपासक स्वीकार करें ।”

<sup>१</sup> अभिज्ञा (= दिव्य शक्तियों) छः हैं । देखो पृष्ठ २५२ ।

<sup>२</sup> ज्ञान के कारण निवृत्तसे सभी चीजें जानने हैं, यह त्रिबलान्त प्रतीत्य-समुत्पाद कहा जाता है ।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ १५ ।

<sup>४</sup> देखो पृष्ठ १६ ।



## ६६—सुम-सुचन्त (२।५।६)

गृहस्थ और संन्यासकी तुलना, अण्डलीकका मार्ग

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिटिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे उस समय तौदेय्य-पुत्र शुभ माणवक किसी कामसे श्रावस्तीमें ( आकर ) एक गृहपतिके घरमें रहता था। तब तौदेय्य-पुत्र शुभ माणवकने, जिस गृहपतिके घरमें रहता था, उससे पूछा—

“गृहपति ! मैंने यह सुना है कि श्रावस्ती अहर्तासे रहित नहीं है। आज किस धमण या ब्राह्मणकी पर्युपासना ( = उत्सव ) करें ?”

“मन्ते ! यह भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिटिकके आराम जेतवनमें विहार करते हैं। मन्ते ! उन भगवान्की पर्युपासना करो।”

तब, शुभ माणवक उस गृहपतिकी ( बात ) सुनकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्के साथ “सम्मोदन” कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे, शुभ माणवकने भगवान्से यह कहा—

“भो गौतम ! ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—गृहस्थ ही न्याय-कुशल-धर्म ( = निर्वाण ) का आराधक होता है, प्रमज्जित ( = संन्यासी ) नहीं...। यहाँ आप गौतम क्या कहते हैं ?”

“माणव ! मैं यहाँ विमज्जवादी” ( = विमज्जवाद ) हूँ। एकाशवादी नहीं। गृहीके लिये भी और प्रमज्जितके लिये भी मैं मिथ्या-प्रतिपत्ति ( = झूठे विश्वास ) की प्रशंसा नहीं करता। चाहे गृही हो, चाहे प्रमज्जित, मिथ्या प्रतिज्ञावाला होनेपर मिथ्या प्रतिपत्तिके कारण वह न्याय-कुशल-धर्मका आराधक नहीं होगा। माणव ! गृहीके लिये भी और प्रमज्जितके लिये भी, मैं सम्यग्-प्रतिपत्ति ( = ठीक विश्वास ) की प्रशंसा करता हूँ। चाहे गृही हो, चाहे प्रमज्जित, सम्यक्-प्रतिपत्तिवाला होनेपर सम्यक् प्रतिपत्तिके कारण न्याय-कुशल-धर्मका आराधक होगा।”

“भो गौतम ! ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—( यह ) गृह-वास ( = गृहस्था ) का कर्मस्थान ( = कर्म, वेशा ) महा-अर्थ, महा-कृत्य, महा-अधिकरण, महा-समारम्भवाला है, ( इसलिये ) यह महाफल ( दावी ) है। यह प्रमज्जा-कर्म-स्थान अल्पार्थ, अल्प-कृत्य, अल्प-अधिकरण, अल्प-समारम्भवाला है, ( इसलिये ) यह अल्पफल ( दावी ) है। यहाँ आप गौतम क्या कहते हैं ?”

“माणव ! यहाँ भी मैं विमज्जवादी हूँ, एकाशवादी नहीं। ( १ ) है माणव ! ऐसा महार्थ, महाकृत्य, महाअधिकरण, महासमारम्भवाला कर्म-स्थान, ( जो ) पूरा न उत्तरनेपर अल्प-फल

\* विभाग करके अच्छेको अच्छा, बुरेको बुरा कहनेवाला; न कि सबको एक ही जाँटसे बाँटनेवाला ( = एकाशवादी ) ।

(-दायी) होता है। (२) है भागव ऐसा (भी) महार्थ ० कर्मस्थान, (जो) पूरा उतरनेपर अल्प-फल (-दायी) होता है। (३) है भागव ! ऐसा अल्पार्थ, अल्प-कृत्य, अल्पाधिकरण, अल्पारम्भवाला कर्मस्थान (जो) न पूरा उतरनेपर अल्प-फल होता है। (४) है भागव ! ऐसा (भी) अल्पार्थ ० कर्मस्थान, (जो) पूरा उतरनेपर महाफल होता है।

“क्या है, भागव ! (वह) कर्मस्थान (१) जो महार्थ, महाकृत्य, महाधिकरण, महा-समारम्भवाला है, (किन्तु) और न पूरा उतरनेपर अल्प-फल होता है ?—भागव ! कृपि (ऐसा) कर्मस्थान है, जो कि महार्थ ० महासमारम्भवाला है, किन्तु न पूरा उतरनेपर अल्प-फल (= कम-फल, अ-फल) होता है। (२) क्या है ० महासमारम्भवाला ०, (और) पूरा उतरनेपर महा-फल होता है ?—भागव ! कृपि ही ०। (३) क्या है ० ० अल्पारम्भवाला ०, (और) न पूरा उतरनेपर अल्प-फल होता है ?—भागव ! वाणिज्य ०। (४) क्या है ० अल्पारम्भवाला ०, (किन्तु) पूरा उतरनेपर महाफल होता है ?—भागव ! वाणिज्य ही ०। जैसे भागव ! कृपि कर्मस्थान ० महासमारम्भवाला है, (किन्तु) न पूरा उतरनेपर अल्प-फल होता है; ऐसे ही भागव ! गृह-वास (= गृहस्थ)-कर्मस्थान ० महासमारम्भवाला है, (किन्तु) न पूरा उतरनेपर अल्प-फल होता है। जैसे, भागव कृपि कर्मस्थान ही ० महासमारम्भवाला है; (और) पूरा उतरनेपर महाफल होता है; ऐसे ही ० गृहवास कर्मस्थान ०। जैसे ० वाणिज्य कर्मस्थान ० अल्प-समारम्भवाला है; और न पूरा उतरनेपर अल्पफल होता है; वैसे ही भागव ! ब्रह्मज्या-कर्म-स्थान ०। जैसे ० वाणिज्य कर्मस्थान ० अल्पसमारम्भवाला है; (किन्तु) पूरा उतरनेपर महाफल होता है। वैसे ही भागव ! ब्रह्मज्या कर्मस्थान ०।”

“भो गौतम ! ब्राह्मण पुण्यके करने, तथा कुशल (= पुण्य) के आराधनके लिये पाँच धर्म प्रज्ञापन करते हैं ० ?”

“भागव ! ब्राह्मण पुण्यके करने ० के लिये, जिन पाँच धर्मोंको प्रज्ञापन करते हैं, यदि सुखे भारी न हो, तो उन्हें इस परिफर्में कहो।”

“नहीं है सुखे भारी, भो गौतम ! जहाँ कि आप या आप जैसे बैठे हों।”

“तो भागव ! कहो।”

“भो गौतम ! (१) पुण्यके करने, तथा कुशलके आराधनके लिये सत्य, यह प्रथम धर्म ब्राह्मण प्रज्ञापन करते हैं। (२) ० तप, यह द्वितीय धर्म ०। (३) ० ब्रह्मचर्य ०, यह तृतीय धर्म ०। (४) ० अध्ययन यह चतुर्थ धर्म ०। (५) ० त्याग यह पंचम धर्म ०। भो गौतम ! ब्राह्मण पुण्य करनेके लिये, तथा कुशलके आराधनके लिये इन पाँच धर्मोंको प्रज्ञापन करते हैं।”

“भागव ! क्या ब्राह्मणोंमें कोई भी ब्राह्मण है, जो यह कहे—‘मैं इन पाँच धर्मोंको स्वयं जानकर, साक्षात्कारकर, (इनके) विपाकको जतलाता हूँ’ ?”

“नहीं, भो गौतम !”

“भागव ! क्या ब्राह्मणोंका एक आचार्य भी, एक आचार्य-प्राचार्य भी सात पीढ़ीतक महाचार्य-सुगल भी ऐसा है; जो यह कहे—‘मैं ० जतलाता हूँ’ ?”

“नहीं, भो गौतम !”

“भागव ! जो वह मंत्रों (= वेदों)के कर्ता, मंत्रोंके प्रवक्ता (= अभ्यापक) ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषि थे, जिनके गीत (= गाने) संगीत, प्रोक्त पुराने मंत्र-पद (= वेदवचन) को, आज भी ब्राह्मण उनके अनुसार जाते हैं, उनके अनुसार भाषण करते हैं, (पूर्वज ऋषियोंके) भाषणके



अनुसार भाषण करते हैं, वाचनके अनुसार वाचन करते हैं; ( यह पूर्वज ऋषि ) जैसे कि—अष्टक ( = अष्टक ), सामक, सामदेव, विश्वामित्र, यमदक्षि, अंगिरा, भारद्वाज, वशिष्ठ, कश्यप, श्रुग, ( क्या ) उन्होंने भी ऐसा कहा है—

‘हम इन पाँच धर्मोंको स्वयं जान कर साक्षात्कार कर ( इनके ) विपाकको जतलाते हैं’ !

“नहीं, भो गौतम !”

‘इस प्रकार भाणव ! ब्राह्मणोंमें कोई एक ब्राह्मण भी नहीं है, जो यह कहे—‘मैं ० जतलाता हूँ’ । ब्राह्मणोंका ० सार पीढ़ी तक महाचार्य युगल भी नहीं है ० । ब्राह्मणोंके ० पूर्वज ऋषियोंने ० भी नहीं कहा था—‘हम ० जतलाते हैं’ ।”

“नहीं, भो गौतम !”

‘जैसे भाणव ! अंध-वेणि-परंपरा ( = लगातार अंधोंकी पाँती ) खड़ी हो, अगला भी नहीं देखता, बिचला भी नहीं देखता, पिछला भी नहीं देखता; ऐसा ही भाणव ! अन्ध-वेणि-परंपरा-सदृश ब्राह्मणोंका कहना जान पड़ता है,—पहिला भी नहीं देखता, बिचला भी नहीं देखता, पिछला भी नहीं देखता ।”

ऐसा कहनेपर ० शुभ भाणव भगवान्‌के अंध-वेणि-परंपरा कहनेसे कुपित, असन्तुष्ट हो भगवान्‌को ही सुलाते, भगवान्‌को ही बाराज होते, भगवान्‌को—‘अध्वज गौतम खराब है’—कहते जैसे, भगवान्‌से यह बोला—

“भो गौतम ! सुभग-वन्निक औपमन्यव सुभग-चन्निक ( = सुभगवन<sup>१</sup>-निवासी ) औपमन्यव पौष्करसाति ब्राह्मण ऐसा कहता है—यह कोई कोई अमण-ब्राह्मण उत्तर-मनुष्य<sup>२</sup> ( = अलौकिक शक्ति ) = अलभ्य ज्ञान-दर्शन-विशेषका ऐसेही ( ऊँहल ) दावा करते हैं । उनका यह कथन बड़ा, नामक<sup>३</sup>, रिक्त = तुच्छही होता है । कैसे मनुष्य होकर कोई उत्तर-मनुष्य-धर्म अलभ्य-ज्ञान-दर्शन-विशेषको जानेगा, साक्षात्कार करेगा ? यह संभव नहीं ।”

“तो क्या भाणव ! ० पौष्करसाति ब्राह्मण सभी अमण ब्राह्मणोंके चित्तकी बातको जानता है ?”

“भो गौतम ! अपनी पूर्णिका दास्योके चित्तकी बातको भी सुभग-वन्निक औपमन्यव पौष्करसाति ब्राह्मण नहीं जानता; कहाँसे सारे अमण-ब्राह्मणोंके चित्तकी बात जानेगा ?”

‘जैसे भाणव ! जन्मांध पुरुष कृष्ण-शुद्ध रूपोंको न देखे, नीले रूपोंको न देखे, पीले रूपोंको न देखे, लाल रूपोंको न देखे, मजीठो रूपोंको न देखे, सम-विषम ( भूमि )को न देखे, तारेके रूपको न देखे, चन्द्र-सूर्यको न देखे । वह यह बोले—‘नहीं हैं कृष्ण-शुद्ध रूपोंके देखने वाले, ०, नहीं हैं चन्द्र-सूर्यके देखनेवाले । मैं इसे नहीं जानता, मैं इसे नहीं देखता, इसलिये नहीं हैं । भाणव ! वह वैसा कहते वह न कहेगा ?”

“नहीं, भो गौतम ! हैं कृष्ण-शुद्ध रूप, ०, हैं चन्द्र-सूर्य के देखनेवाले । मैं इसे नहीं जानता, मैं इसे नहीं देखता, इसलिये नहीं हैं—ऐसा कहते, वह ठीक नहीं कहेगा ।”

‘ऐसे ही भाणव ! ० पौष्करसाति ब्राह्मण अंधा, नेत्रहीन है, वह उत्तर-मनुष्य-धर्म अलभ्य-ज्ञान-दर्शन-विशेषको जानेगा-देखेगा, यह संभव नहीं ।

“तो क्या मानते हो, भाणव ! जो वह कोसल ( वासी ) ब्राह्मण महापातक है, जैसे कि—चूँकि ब्राह्मण, तात्स्य ब्राह्मण, पौष्करसाति ब्राह्मण, जानुश्रोणि ब्राह्मण, या तुम्हारा पिता

<sup>१</sup> ऊँहल-इसे सुभगवनका यह स्त्री नाम है ।

तौदेय्य । कौनसा इनका वचन अच्छा है, जो वह संवृति (= लोक सम्प्रति)-अनुसार बोलें, या जो वह संवृति-विरुद्ध बोलें ?”

“संवृति-अनुसार, भो गौतम !”

“कौनसा इनका वचन अच्छा है, जो वह मंत्र-अनुसार बोलें, या जो वह मंत्र-विरुद्ध बोलें ?”

“मंत्रानुसार, हो गौतम !”

“० जो वह प्रतिसंख्यान (= सोच-अमल) कर बोलें, या जो न-प्रतिसंख्यान कर बोलें ?”

“प्रतिसंख्यान कर, भो गौतम !”

“० जो वह सार्थक बोलें, या जो वह निरर्थक बोलें ?”

“सार्थक, भो गौतम !”

“तो क्या मानते हो, भाणव ! ऐसा होने पर ० पौष्करसाति ब्राह्मणने संवृति-अनुसार बात कही, या संवृति-विरुद्ध ?”

“संवृति-विरुद्ध, भो गौतम !”

“० मंत्रानुसार या मंत्र-विरुद्ध ?” — “मंत्र-विरुद्ध ० ।”

“० प्रतिसंख्यान करके, या न प्रतिसंख्यान करके ?” — “न प्रतिसंख्यान करके ० ।”

“० सार्थक या निरर्थक ?” — “निरर्थक ० ।”

“भाणव ! यह पाँच नीवरण (= आवरण) हैं । कौनसे पाँच ?—( १ ) कामच्छन्द (= विषयोक्ता राग)-नीवरण, ( २ ) व्यापाद (= द्वेष)-नीवरण, ( ३ ) स्त्यान-मुद (= शरीर-मनका आलस्य)-नीवरण, ( ४ ) औदस्य-कौटस्य (= उद्वतपन-हिचकिचाहट)-नीवरण, ( ५ ) विचिकित्सा (= संशय)-नीवरण । भाणव ! यह पाँच नीवरण हैं । ० पौष्कर-साति\* ब्राह्मण पाँच नीवरणोंसे आवृत = निवृत (= ढँका ) = आवृत, पर्यवतद (= चारों ओरसे घेरा ) है; वह अहो ! उत्तर अनुप्यधर्म, अलमार्थज्ञानदर्शन-विशेषको जानेगा, देखेगा, यह समझ नहीं ।

“भाणव यह पाँच काम-गुण (= विषयभोग) हैं । कौनसे पाँच ?—( १ ) इष्ट-कान्त, मनाप-प्रिय, कमनीय, रजनीय, स्वप्नु-विज्ञेय (= जानने योग्य) रूप; ( २ ) ०\* श्रोत्र-विज्ञेय शब्द; ( ३ ) ०\* घ्राण-विशेष गंध; ( ४ ) ०\* जिह्वा-विशेष रस; ( ५ ) ०\* काय-विशेष स्पर्श । भाणव ! यह पाँच काम-गुण हैं । ० पौष्करसाति ब्राह्मण इन पाँच गुणोंको, ग्रथित (= गँथा ), मुर्छित (= बेहोश ), अप्यापन्न, अदोष-दर्शी, निकलनेको-बुद्धि-न-रखनेवाला हो भोगता है; वह अहो ! ० ।

“तो क्या मानते हो भाणव ! जो आग तृण, काष्ठके उपादानको लेकर जलाई जाती है, और जो तृण-काष्ठके उपादानको बिना लिये जले; ( दोनोंमें ) कौन आग ( अधिक ) अर्चिमान्, वर्णवान्, और प्रभास्वर होगी ?”

“यदि, भो गौतम ! तृण-काष्ठ-उपादानके बिना आग जलाई जा सके, तो वह आग ( अधिक ) अर्चिमान्, वर्णवान् और प्रभास्वर होगी ।”

“भाणव ! इसका स्थान नहीं, इसका अवकाश नहीं, कि कदिको छेड़, तृण-काष्ठ-उपादान

\* देखो पृष्ठ ९३ ।

\* पौष्करसादि भी पाठ होता है ।



के बिना आग जले<sup>१</sup> । जैसे भाणव ! वृण-काष्ठ-उपादानसे आग जलती है, उसीके समान भाणव ! मैं इस प्रीति (= आनन्द) को कहता हूँ, जो प्रीति कि पाँच काम-गुणों (= विषयों) को लेकर (होती है) । जैसे भाणव ! वृण-काष्ठ-उपादानके बिना आग जले, उसीके समान भाणव ! मैं इस प्रीतिको कहता हूँ, जो प्रीति कि कामोंके बिना, अकुशल-धर्मों (= पापों)के बिना (उत्पन्न होती है) ।

“भाणव ! कौनसी प्रीति कामोंके बिना, अकुशल धर्मोंके बिना (उत्पन्न होती है) ? —यहाँ, भाणव ! मिथु कामोंसे विरहित<sup>२</sup> प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । भाणव ! यह भी प्रीति कामोंके बिना, अकुशल धर्मोंके बिना (उत्पन्न होती है) । और फिर भाणव ! मिथु वितर्क और विचारके शांत होनेपर<sup>३</sup> द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । भाणव ! यह भी ० ।

“भाणव ! पुण्यके करने, तथा कुशलके आराधनके लिये जिन पाँच धर्मोंको ब्राह्मण प्रज्ञापन करते हैं, उनमेंसे किसको वह पुण्यके करने, तथा कुशलके आराधनके लिये सबसे अधिक फलदायी कहते हैं ?”

“भो गौतम ! ० जिन पाँच धर्मोंको ब्राह्मण प्रज्ञापन करते हैं, उनमें त्याग धर्मको वह ० सबसे अधिक फलदायी कहते हैं ।”

“तो क्या मानते हो, भाणव ! यहाँ किसी ब्राह्मणके यहाँ महायज्ञ उपस्थित हो । तब दो ब्राह्मण आवें—असुक ब्राह्मणके यज्ञको अनुमत्त (= उपभोग) करें । उनमेंसे एक ब्राह्मणको वह हो—भोजनके समय प्रथम-आसन, प्रथम-जल, तथा प्रथम पिंड में ही पाऊँ, दूसरा ब्राह्मण न पावे—भोजनके समय प्रथम-आसन, प्रथम-जल, प्रथम-पिंड । हो सकता है, भाणव ! कि दूसरा ही ब्राह्मण ० प्रथम-पिंड पावे, और वह ब्राह्मण न पावे ० । तब—‘मुझे ० प्रथम-पिंड नहीं मिला’—( यह सोच ) वह कुपित, असन्तुष्ट होवे । भाणव ! ब्राह्मण इसका क्या विपाक बतलाते हैं ?”

“भो गौतम ! ब्राह्मण इसलिये ऐसा दान नहीं देते, कि उससे दूसरा कुपित, असन्तुष्ट होवे; बल्कि ब्राह्मण अनुकम्पाके ब्यालसे (= अनुकम्पा-जातिक) हो दान देते हैं ।”

“ऐसा होनेपर भाणव ! ब्राह्मणोंके लिये यह अनुकम्पा-जातिक, छठी पुण्य-क्रिया-वस्तु हुई ।”

“ऐसा होने पर, भो गौतम ! ० अनुकम्पा-जातिक छठी पुण्य क्रिया-वस्तु हुई ।”

“भाणव ! पुण्यके करने (= पुण्य किया ) ० के लिये जिन पाँच धर्मोंको ब्राह्मण प्रज्ञापन करते (= बतलाते) हैं, उन पाँच धर्मोंको तुम किनमें अधिक पाते हो, गृहस्थोंमें या ब्रह्मजितोंमें ?

“० जिन पाँच धर्मोंको ब्राह्मण प्रज्ञापन करते हैं, उन पाँच धर्मोंको ब्रह्मजितोंमें अधिक पाता हूँ, गृहस्थोंमें कम । “गृहस्थ महार्थ = महाकृत्य, महाधिकरण, महासमारम्भ हैं, ( वह ) सदा, निरन्तर सत्यवादी नहीं हो सकता । “ब्रह्मजित अर्थात् = अल्पकृत्य, अल्पाधिकरण, जलपारम्भ होता है, ( वह ) सदा, निरन्तर सत्यवादी हो सकता है । “गृहस्थ ० महासमारम्भ है, ( वह ) सदा, निरन्तर तपस्वी नहीं हो सकता ० । ० ब्रह्मचारी नहीं हो सकता ० । ० स्वाध्याय-बहुल नहीं हो सकता । “ब्रह्मजित ० जलपारम्भ होता है, ( वह ) सदा, निरन्तर स्वाध्याय-बहुल हो सकता है । पुण्य किया ० के लिये जिन पाँच धर्मोंको ब्राह्मण प्रज्ञापन करते हैं, उन पाँच धर्मोंको मैं ब्रह्मजितोंमें अधिक पाता हूँ, गृहस्थोंमें कम ।”

“भाणव ! पुण्य-क्रिया ० के लिये ब्राह्मण जिन पाँच धर्मोंको प्रज्ञापन करते हैं, मैं उन्हें

<sup>१</sup> यह वाक्य पूर्व-पर-मसंगके अनुकूल नहीं है । <sup>२</sup> देखो दृष्ट २५ ।

वैर-रहित = व्यापाद-रहित चित्तकी भावनाके लिये परिष्कार (= सहायक सामग्री) कहता हूँ ।

“वहाँ, भाणव ! मिथु सत्यवादी होता है; वह ‘मैं सत्यवादी हूँ’—( यह सोच ) अर्थ-वेदको पाता है, धर्म-वेद (= धर्मज्ञान) को पाता है, और धर्म सम्बन्धी प्रभोदको पाता है । कुशल-उपसंहित (= पुण्यमय) प्रभोदको मैं वैर-रहित = व्यापाद-रहित-चित्तकी भावनाके लिये परिष्कार कहता हूँ ।....”

ऐसा कहने पर ० शुभ भाणवने भगवान्‌से यह कहा—

“मैंने यह सुना है, भो गौतम ! कि अमण गौतम ब्रह्मोंकी सहज्यता (= सरूपता) का मार्ग उपदेशता है ।”

“तो क्या मानते हो, भाणव ! नलकार-ग्राम (= नलकार-ग्राम) यहाँसे समीप है, नलकार-ग्राम यहाँसे दूर नहीं है ?”

“हाँ, भो गौतम ! नलकार-ग्राम यहाँसे समीप है, ० यहाँसे दूर नहीं ।”

“तो क्या मानते हो, भाणव ! यहाँ कोई पुरुष, नलकार-ग्राममें जन्मे-बड़े ( बड़ी ) रहते पुरुषसे नलकार-ग्रामका मार्ग पूछें, तो भाणव ! क्या नलकार-ग्राममें जन्मे-बड़े पुरुषको नलकार-ग्राम का मार्ग पूछने पर दुविधा या जकता होगी ?”

“नहीं, भो गौतम !”

“तो क्यों ?”

“भो गौतम ! वह पुरुष नलकार-ग्राममें जन्मा-बड़ा है, उसको नलकार-ग्रामके सभी मार्ग सु-चिन्तित हैं ।”

“भाणव ! नलकार-ग्राममें जन्मे-बड़े उस पुरुषको नलकार-ग्रामका मार्ग पूछनेपर दुविधा, जकता हो सकती है, किन्तु तत्कालतको ब्रह्मलोक या ब्रह्मलोक-गामी मार्ग पूछनेपर दुविधा, जकता नहीं हो सकती। भाणव ! मैं ब्रह्मोंको जानता हूँ; ब्रह्मलोकको, और ब्रह्मलोक-गामी मार्ग (= प्रतिपद्) को, और जैसे प्रतिपल (= मार्गासूत्र) होनेपर ब्रह्मलोकमें उत्पन्न ( होगा ) उसे भी जानता हूँ ।”

“सुना है मैंने, भो गौतम ! अमण गौतम ब्रह्मोंकी सहज्यताका मार्ग देखता है; अच्छा हो, आप गौतम सुखे ब्रह्मोंकी सहज्यताका ही मार्ग उपदेशें ।”

“तो, भाणव ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा, भो !”—( कह ) ० शुभ भाणवने भगवान्‌को उत्तर दिया ।

भगवान्‌ने यह कहा—“क्या है भाणव ! ब्रह्मोंकी सहज्यताका मार्ग ?—यहाँ भाणव ! मिथु मैत्रीपूर्ण चित्तसे ० सारे लोकको पूर्णकर विहरता है । भाणव ! इस प्रकार मैत्री—चेतों-विमुक्ति (= मैत्रीभावना) के भावित करनेपर जितने प्रमाणमें काम किया जाता है, वह वहीं तक नहीं रह जाता, वहीं तक अवस्थित नहीं रहता है । जैसे भाणव ! ब्रह्मवान्‌ शंख-बजानेवाला बोलें प्रयाससे चारों दिशाओंको सुँगा दे, ऐसे ही भाणव ! मैत्री, चेतोविमुक्तिके साथ जितने प्रमाणमें ० अवस्थित नहीं रहता । यह भी भाणव ! ब्रह्मोंकी सहज्यताका मार्ग है ।

“और फिर भाणव ! मिथु करुणा-पूर्ण चित्त से ० सारे लोकको पूर्ण कर विहरता है ० । ० मुदित-पूर्ण चित्त से ० । ० उपेक्षा पूर्ण चित्तसे सारे लोकको पूर्ण कर विहरता है । भाणव ! इस प्रकार उपेक्षा-चेतोविमुक्तिके भावित करनेपर ० वहीं तक अवस्थित नहीं रहता । यह भी



माणव ! जलोंकी सहज्यताका भाग है ।”

ऐसा कहनेपर तैदेय्य-पुत्र शुभ माणवने भगवान्‌से यह कहा—

“आश्चर्य ! भो गौतम ! आश्चर्य !! भो गौतम ! जैसे औधेकी सीधा कर दे ०<sup>१</sup> यह मैं भगवान्‌ गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी । आप गौतम आजसे मुझे अंजलिपत्र शरणागत उपासक स्वीकार करें ।”

तब ० शुभ माणव भगवान्‌के भाषणको अभिनन्दित कर, अनुमोदित कर, आसनसे उठ भगवान्‌को कमिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया ।

उस समय जानुश्रोणि ब्राह्मण दिन-दिनको ( दोपहरको ) सारे श्वेत वर्णके घोड़ीके रथपर सवार हो श्रावस्तीसे बाहर जा रहा था । सब जानुश्रोणि ब्राह्मणने ० शुभ माणवको दूरसे ही आते देखा । देख कर ० शुभ माणवसे यह बोला—

“हन्त ! कहाँसे आप भारद्वाज दिन-दिनको आ रहे हैं ?”

“वहाँसे, भो ! मैं अमण गौतमके पाससे आ रहा हूँ ।”

“आप भारद्वाज अमण गौतमकी प्रज्ञा = व्यक्तताके बारेमें क्या समझते हैं, पंडित जान पड़ता है ?”

“भो ! कहाँ मैं और कहाँ अमण गौतमकी प्रज्ञा = व्यक्तताको जानूँगा । जो वैसा ही हो, वही अमण गौतमकी प्रज्ञा = व्यक्तताको जाने ।”

“आप भारद्वाज ! वही उदार प्रज्ञावाले अमण गौतमको प्रशंसते हैं ।”

“भो ! क्या मैं, और क्या अमण गौतमको प्रशंसूँगा । वह आप गौतम प्रशंसित हैं, अनुश्रुतोंमें श्रेष्ठ हैं । ब्राह्मण पुण्य-क्रिया = कुशलाराधनके लिये जिन पाँच धर्मोंको बतलाते हैं; उन्हें अमण गौतम वैर-रहित = व्यापाद-रहित चित्तकी भावना करनेके लिये चित्तका परिष्कार (= सहायक सामग्री ) बतलाते हैं ।”

ऐसा कहनेपर जानुश्रोणि ब्राह्मण सर्वश्वेत षड्वा-रथसे उतर कर उत्तरार्त्तग (= उपरने ) को ( जनेऊकी भाँति ) एक ( दाहिने ) कंधेपर कर, जिधर भगवान्‌ थे, उधर अंजलि जोड़ उद्दान (= चित्तोद्धारलसे निकला शब्द ) कहा—

“लाम है, राजा प्रसेनजित् कोसलको; सुंदर लाम मिले है राजा प्रसेनजित् कोसलको; जिसके राज्य (= विजित )में तथागत आईव सम्मत्-संघुद विहर रहे हैं ।”

## १००—संगारव-मुत्तन्त (२।५।१०)

बुद्ध-जीवनी (तपस्वियों)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् महान् मिथुसंघके साथ कोसल ( देश ) में चारिका करते थे ।

उस समय मंडलकप्य ( = मंडल कल्प ) में धार्मजानी नामक ब्राह्मणी रहती थी, ( जो ) बुद्ध, धर्म, संघमें अभिप्रसन्ना ( = अञ्जालु ) थी । तब ( एक समय ) धार्मजानी ब्राह्मणी ने ( अचलेका कोता ) पकड़ कर ( = पकड़लेत्वा ) उद्दान उद्दाता—

“उत्त भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धको नमस्कार ।

उत्त भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धको नमस्कार ।

उत्त भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धको नमस्कार ।”

उस समय मंडलकप्यमें संगारव नामक माणव ( = तक्ष्य ब्राह्मण पंडित ) रहता था, ( जो ) कि ) पंचिवे इतिहास और ( चौथे ) मिष्टु-केटुभ-अक्षर-प्रभेद-सहित तीनो वेदोंका पारंगत, पद्म, वैयाकरण, लोकायत ( -शास्त्र ) तथा महापुरुष-लक्षण ( -शास्त्र )में परिपूर्ण था । संगारव माणवने धार्मजानी ब्राह्मणीको ( उक्त ) वाणी उच्चारण करते सुना । सुनकर, धार्मजानी ब्राह्मणीसे यह बोला—

“अ-मंगला है यह धार्मजानी ब्राह्मणी, नष्टा है यह धार्मजानी ब्राह्मणी; जो ब्राह्मणोंके विद्यमान होते, उस मुंडक अमणककी प्रशंसा करती है ।”

“तात ! भद्रमुख ! तुम उन भगवान्के शील प्रज्ञाको नहीं जानते । यदि, तात ! भद्रमुख ! तुम उन भगवान्के शील, प्रज्ञाको जानते होते, तो, तात ! भद्रमुख ! तुम उन भगवान्का निन्दन = परिभाषण न करना चाहते ।”

“तो भवति ! जब अमण गौतम मंडलकप्य में आवें, तो मुझे कहियो ।”

“अच्छा, भद्रमुख !”—( कह ) धार्मजानी ब्राह्मणीने संगारव माणवको उत्तर दिया ।

तब भगवान् कोसलमें कर्मशः चारिका करते, वहाँ मंडल-कप्य था, वहाँ पहुँचे । वहाँ मंडलकप्यमें भगवान् तौदेय्य ब्राह्मणोंके आश्रमके बागमें विहार करते थे ।

धार्मजानी ब्राह्मणीने सुना, कि भगवान् मंडलकप्यमें पहुँच गये, और ० तौदेय्य ( = तौदेय्य ) ब्राह्मणोंके आश्रम-वनमें विहार करते हैं । तब धार्मजानी ब्राह्मणी वहाँ संगारव माणव था, वहाँ गई ; जाकर संगारव माणवसे यह बोली—

“तात ! भद्रमुख ! वह भगवान् मंडलकप्यमें पहुँच गये हैं, और ० तौदेय्य ब्राह्मणोंके आश्रम-वनमें विहार करते हैं । अब तात ! भद्रमुख ! जिसका काल समयो ( वह करो ) ।”

“अच्छा, भवति !”—( कह ) संगारव माणवने धार्मजानी ब्राह्मणीको उत्तर दे, वहाँ भग-



वान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌के साथ "संमोदन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे संगारव माणवने भगवान्‌से यह कहा—

"भो गौतम ! कोई कोई अमण-आह्वण दृष्ट-धर्म-अभिज्ञा-व्यवसान-पारमी-प्राप्त (= इसी संरीरमें जान कर, निर्वाणको-प्राप्त) हो आदि ब्रह्मचर्य (= शुद्ध-ब्रह्मचर्य) (प्रचार करने) का दावा करते हैं। वहाँ, भो गौतम ! जो अमण-आह्वण दृष्ट-धर्म-व्यवसान-पारमी-प्राप्त हो आदि-ब्रह्मचर्यका दावा करते हैं, उनमें आप कौन हैं ?"

"दृष्टधर्म-अभिज्ञा-व्यवसान-पारमी-प्राप्त हो आदि ब्रह्मचर्यके दावा करनेवालोंमें भी, भारद्वाज ! मैं भेद कहता हूँ। (१) भारद्वाज ! कोई कोई अमण-आह्वण अनुश्रविक (= अनुश्रवकों माननेवाले) हैं; यह अनुश्रव (= श्रुति)से दृष्टधर्म-अभिज्ञा-व्यवसान-पारमी-प्राप्त हो आदि ब्रह्मचर्यका दावा करते हैं; जैसे कि वैश्विद्य (= तीनों वेदोंके अनुवासी) आह्वण। (२) हैं, भारद्वाज ! कोई कोई अमण-आह्वण केवल अर्धा माणसे दृष्टधर्म-अभिज्ञा-व्यवसान-पारमी-प्राप्त हो आदि ब्रह्मचर्यका दावा करनेवाले, जैसे कि तार्किक = विमर्शी। (३) हैं, भारद्वाज ! कोई कोई अमण-आह्वण पहले न सुने गये धर्मोंमेंसे स्वयं धर्मको जानकर दृष्टधर्म-अभिज्ञा-व्यवसान-पारमी-प्राप्त हो आदि ब्रह्मचर्यका दावा करनेवाले होते हैं। वहाँ, भारद्वाज ! जो अमण-आह्वण पहिले न सुने गये ० आदि-ब्रह्मचर्यका दावा करनेवाले हैं, मैं उनमेंसे हूँ। सो इस पर्याय (= कथन)से, भारद्वाज ! तुम्हें जानना चाहिये, कि जो अमण-आह्वण पहिले न सुने गये ० आदि ब्रह्मचर्यका दावा करनेवाले हैं, मैं उनमेंसे हूँ।

"वहाँ भारद्वाज ! बोधिसे पहिले = बुद्ध न हो बोधिसत्त्व होते समय, मुझे ऐसा हुआ— 'गृह-वास अंजाल है, मैलका मार्ग है। प्रवज्या संदान (सा सुला स्थान) है। इस नितान्त सर्वथा-परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध, स्वरादे शंस जैसे (उल्लसल) ब्रह्मचर्यका पालन घरमें रहते सुकर नहीं है। क्यों न मैं शिर-दाही मुँहा, कापाय-वस्त्र पहन, घरसे बेघर (= अनागारिक) हो प्रव्रजित हो जाऊँ।' सो मैं भारद्वाज ! दूसरे समय दहर (तरुण) ही, बहुत काले काले केशोंवाला, सुंदर जीवनके साथ ही, प्रथम वयसमें, अश्रुमुख माता-पिताके रोते, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुआ।

"इस प्रकार प्रव्रजित हो, 'क्या कुशल (= अच्छा)' का बोली (वन), अनुपम दाति-पदको ढँकते, जहाँ आलार कालाम था, वहाँ गया। जाकर आलार कालामसे धोला—'आहुस कालाम ! मैं इस धर्म-विनय (= धर्म)में ब्रह्मचर्य-पाल करना चाहता हूँ ?' ०" भारद्वाज ! रातके तीसरे पहर यह तीसरी विद्या मुझे प्राप्त हुई; जविद्या गई, विद्या आई; तम नष्ट हुआ, आलोक उत्पन्न हुआ।"

यह कहनेपर संगारव माणवने भगवान्‌से यह कहा—

"अहो ! आप गौतमका प्रधान (= ध्यान-तत्परता) अद्वित (= उत्तम)-प्रधान था। अहो ! आप गौतमका प्रधान सत्पुरुष-प्रधान था, जैसा कि वह आप गर्हव सन्त्यक्संबुद्धका (प्रधान था)। भो गौतम ! क्या देव हैं ?"

"भारद्वाज ! मुझे स्थान (= कारण)से विदित है, कि देव हैं।"

"क्या है, भो गौतम ! जो—'क्या देव हैं'—पूछनेपर—भारद्वाज ! मुझे स्थानसे विदित है—'कि देव हैं'—कहते हो। ऐसा होने पर, भो गौतम ! (तुम्हारा कथन) क्या तुच्छ = मृदा नहीं होता ?"

\* देखो बोधिराजकुमारसूत ( २४५-५२ ), ( राजकुमारकी जगह भारद्वाजको संशोधन ) ।

“मारदाज ! ‘क्या देव है’—पूछने पर, जो ‘देव है’ कहे; त्यागने विदित होने पर—‘सुखे विदित है’—कहे; तभी वहाँ विश्व पुरुषको पूर्णरूपेण विश्वास करना चाहिये—‘देव है’ ।”

“क्यों नहीं, भो गौतम ! आरम्भमें ही सुखे ( आपने ) यह कह दिया ?”

“मारदाज ! लोकमें जैसे ( शब्द ) से यह प्रकट है—‘देव है’ ।”

ऐसा कहने पर संगारव भ्रातृवने भगवान्से यह कहा—

“आश्रय ! भो गौतम ! आश्रय !! भो गौतम ! जैसे जीषिको सीखा करे ०<sup>१</sup> यह मैं भगवान् गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और सिद्धु-संघकी भी । आप गौतम आजसे सुखे अंजलिपत्र शरणागत उपासक धारण करें ।”

१० ( इति माङ्गल्य-वना २१५ )





# उपरि-पराणासक

[ ३-तृतीय-पंचाशक १०१-१५२ ]



बुराईसे हटाकर, मलाईमें प्रतिष्ठित नहीं कर सकता । मिथुनों ! इस प्रकारके पुद्गलके लिये जो करनी चाहिये ।

“मिथुनों ! इस प्रकार ० विवाद-रहित हो, अभ्यास करते यदि परस्पर वचनका अन्तर पड़ जाये, सम्प्रतिमें फर्क पड़ जाये, या विसर्गमें आघात (= बुरा आव), अ-विश्वास, असंतोष (उन्पन्न हो जाये) ; तो यहाँ पहिले पक्षवालेमें जिस मिथुनको सु-वचन-तर सम्प्रति, उसे जाकर कहे—  
‘आयुस ! ० विवाद-रहित हो, अभ्यास करते जो हम लोगोंका परस्पर वचनका अन्तर पड़ गया, ० उसको जाननेवाला निन्दा करेगा न ?’ ठीकसे उत्तर देते हुये उस ( सु-वचन-तर ) मिथुनको कहना चाहिये—‘आयुस ! ०, ० जो हम लोगोंका परस्पर वचनका अन्तर पड़ गया ०, उसको जाननेवाला निन्दा करेगा । ‘आयुस ! इस धर्म (= वात, दोष) को छोड़े बिना निर्वाणका साक्षात्कार किया जा सकता है ?’ ठीकसे उत्तर देते हुये उस मिथुनको कहना चाहिये—‘आयुस ! इस धर्मको छोड़े बिना निर्वाणका साक्षात्कार नहीं किया जा सकता ।’ फिर दूसरे पक्षवालोंमें जिस मिथुनको सु-वचन-तर सम्प्रति, उसे जाकर कहे—०’ इस धर्मको छोड़े बिना निर्वाणका साक्षात्कार नहीं किया जा सकता ।

“मिथु ! उस ( गेलजोल करानेवाले ) मिथुनको यदि दूसरा यह पूछे—‘आयुसमान्ने इन मिथुनोंको बुराईसे हटाकर मलाईमें प्रतिष्ठित किया ?’ तो यथाथ उत्तर देते हुये वह मिथुन यह कहे—‘आयुस ! मैं जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । भगवान्ने मुझे धर्म उपदेशा । उस धर्मको सुनकर, मैंने इन मिथुनोंसे कहा । उस धर्मको सुनकर वह मिथुन बुराई छोड़, मलाईमें प्रतिष्ठित हुये । मिथुनों ! इस प्रकार उत्तर देते हुये वह मिथुन न अपनेको क्षाधेगा, न दूसरेको निन्देगा, धर्मके अनुसार ही उत्तर देगा, और न किसी धर्मोत्तरी वादानुवादमें वह निन्दाका पात्र होगा ।”

भगवान्ने यह कहा, संतुष्ट हो उन मिथुनोंने भगवान्के माषणको अभिनन्दित किया ।

## १०४-सामगाम-सुत्तन्त (३।१।४)

बुद्धके मूल उपदेश । संघमें विवाद होनेका कारण । सात प्रकारके फैसले । मेक-बोल्का उद्ग

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् शाक्य ( देश )में, सामगाममें विहार करते थे ।

उस समय निगंठ नात-पुत्त ( = जैन तीर्थङ्कर महावीर ) अभी अभी पावामें मरे <sup>१</sup> थे ।

उनके मरनेपर निगंठ ( = जैन साधु ) लोग दो भाग हो, भंडन = कलह = विवाद करते, एक दूसरेको सुखरूपी शक्तिसे छेदते विहार रहे थे—‘तू इस धर्म-विनय ( = धर्म )को नहीं जानता, मैं इस धर्म-विनयको जानता हूँ’ । ‘तू क्या इस धर्म-विनयको जानेगा, तू मिथ्यारूढ़ है, मैं सत्पारूढ़ हूँ’ । ‘मेरा ( कथन अर्थ-)सहित है, तेरा न-सहित है’ । ‘तूने पूर्व बोलने ( की बात ) को पीछे बोला, पीछे बोलने ( की बात )को पहिले बोला’ । ‘तेरा ( वाद ) विना-विचारका है’ । ‘तूने वाद रोपा, तू निग्रह-स्थानमें आ गया’ । ‘आ वादसे छूटनेके लिये फिरता फिर’, यदि सकता है तो समेट’ । नातपुत्तीय निगंठोंमें भागों युद्ध ( = वध ) हो हो रहा था ।

निगंठके श्रावक ( = शिष्य ) जो गृही इवेत क्लेशारी, ( थे ) वह भी नात-पुत्तीय निगंठोंमें ( वैसे ही ) निर्धिण्य = विरक्त = प्रतिपाण-रूप थे, जैसे कि ( नात-पुत्तके ) दुराध्यात ( = ठीक से न कहे गये ), दुष्प्रवेदित ( = ठीकसे न साक्षात्कार किये गये ), अनैवांगिक ( = पार न लगाने-वाले ), अनु-उपशम-संवर्तनिक ( = न-प्राप्ति-प्राप्ती ), असम्बन्ध-संबुद्ध-प्रवेदित ( = किसी बुद्धसे न जाने गये ), प्रतिष्ठा ( = नींव )-रहित = भित्त-रूप, आश्रय-रहित धर्म-विनयमें ( थे ) ।

तब <sup>२</sup> सुन्द समणुद्देश पावामें कर्णवास कर, जहाँ सामगाम था, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया । जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे सुन्द भ्रमणोद्देशने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

“मन्ते ! निगंठ नातपुत्त अभी अभी पावामें मरे हैं । उसके मरनेपर ० नात-पुत्तीय निगंठोंमें भागों युद्ध हो हो रहा है । ० आश्रय-रहित धर्म-विनयमें ( थे ) ।”

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने सुन्द भ्रमणोद्देशसे कहा—

“आतुस सुन्द ! भगवान्के दर्शनके लिये यह बात मंद-रूप है । आओ आतुस सुन्द !

<sup>१</sup> अ. क. “वह नात-पुत्त तो मालन्दा-प्राप्ती था, वह कैसे क्यों पावामें मरा ! सत्य-आत्मी उपालि लुहचलिके दश भाषाओंसे भाषित बुद्ध पुण्योंको सुनकर, उसने गर्म खून फेंक दिया । तब अक्षरवत् ही उसे पावा ले गये । वह वहाँ मरा ।”

<sup>२</sup> अ. क. “वह स्वविर धर्मेनापत्ति ( = सारिपुत्र )के छोटे भाई थे । उपसम्पन्न न होनेके समय भिक्षु लोग उनको सुन्द समणुद्देश कहा करते थे, स्वविर हो जानेपर भी वही कहते रहे ।”



जहाँ भगवान् हैं, वहाँ चले । चलकर यह बात भगवान्‌को कहें ।” — “अच्छा भन्ते !”.....

तब ब्राह्मणान् आनन्द और सुन्द श्रमणोद्देश जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुये ब्राह्मणान् आनन्दने भगवान्‌को कहा —

“भन्ते ! यह सुन्द समनुद्देश ऐसा कह रहे हैं— ‘भन्ते ! निर्गठ नातपुत्र अभी अभी पावामें मरे हैं ० ।’ तब भन्ते ! मुझे ऐसा होता है, भगवान्‌के बाद भी ( कहीं ) संघमें ऐसा ही विवाद मत उत्पन्न हो । यह विवाद बहुत जनोंके अहितके लिये, बहुत जनोंके असुखके लिये, बहुत जनोंके अनर्थके लिये, देव भनुर्योके अहित और दुःखके लिये ( होगा ) ।”

“तो क्या मानते हो आनन्द ! मैंने साक्षात्कार कर जिन धर्मोंका उपदेश किया, जैसे कि— ( १ ) चार स्मृति प्रस्थान, ( २ ) चार सम्बन्ध प्रधान, ( ३ ) चार कद्विपाद, ( ४ ) पाँच इन्द्रियो, ( ५ ) पाँच बल, ( ६ ) सात बोधभंग, ( ७ ) आर्य आष्टांगिक मार्ग । आनन्द ! क्या इन धर्मोंमें दो मिश्रणोंका भी अनेक मत ( दीखता ) है ?”

“भन्ते ! भगवान्‌ने जो यह धर्म साक्षात्कार कर उपदेश किये हैं, जैसे कि— ( १ ) चार स्मृति-प्रस्थान ० । इन धर्मोंमें भन्ते ! मैं दो मिश्रणोंका भी अनेक मत नहीं देखता । लेकिन भन्ते ! जो पुद्गल भगवान्‌के आश्रयसे विहृते हैं, वह भगवान्‌के न रहनेके बाद, संघमें आजीव (= जीविका) के विषयमें, प्रातिमोक्ष (= मिश्र नियम) के विषयमें विवाद पैदा कर सकते हैं, वह विवाद बहुत जनोंके अहितके लिये, बहुत जनोंके भ-सुखके लिये, बहुत जनोंके अनर्थ = अहितके लिये, देव-भनुर्योके ० दुःखके लिये होगा ।”

“आनन्द ! जो यह आजीवके विषयमें या प्रातिमोक्षके विषयमें विवाद है, उत्प-  
मत्तक (= छोटा) है । मार्ग या प्रतिपदके विषयमें यदि संघमें विवाद उत्पन्न हो, वह विवाद ० अहितके लिये ० । आनन्द ! यह छः विवादके मूल हैं । कौनसे छः ? आनन्द ! यहाँ मिश्र ( १ ) कोषी, पाण्डी (= उपनाही) होता है । जो मिश्र आनन्द ! कोषी उपनाही होता है, वह शास्त्र (= गुरु) में गौरव-रहित, आश्रय-रहित हो विहरता है, धर्ममें भी ०, संघमें भी ०, शिक्षा (= मिश्र-नियम) में घुटि करनेवाला होता है । जो मिश्र आनन्द ! शास्त्रामें ० गौरव-रहित ०, शिक्षामें घुटि करनेवाला होता है, वही संघमें विवाद पैदा करता है । वह विवाद बहुत जनोंके अहितके लिये ० होता है । इसलिये आनन्द ! इस प्रकारके विवाद-मूलको यदि तुम अपनेमें या दूसरेमें देखना, तो आनन्द ! तुम उस पापी विवाद-मूलके विनाशके लिये प्रयत्न करना । ० यदि ० यदि ० देखना, तो आनन्द ! तुम उस पापी विवाद-मूलको, सविष्यमें न होने देनेके लिये उपाय करना, इस प्रकार इस पापी विवाद-मूलकी सविष्यमें अनुत्पत्ति होगी । ( २ ) और फिर आनन्द ! मिश्र, मर्षी, पलासी होता है, जो मिश्र आनन्द ! मर्षी ० । ( ३ ) ईष्योलु, मत्सरो ० । ( ४ ) सठ, मायावी ० । ( ५ ) ० पापेष्णु (= बद्र-नीयत), मिथ्या-दृष्टि ० । ( ६ ) दृष्टि-परामर्षी, आधान-प्राही ० । आनन्द ! यदि अपनेमें या दूसरेमें इस प्रकारके विवाद-मूलको देखना, यहाँ आनन्द ! तुम इस पापी विवाद-मूलके विनाशके लिये प्रयत्न करना, ० इस पापी विवाद-मूलकी सविष्यमें अनुत्पत्तिके लिये उपाय करना, इस प्रकार इस पापी (= दुष्ट) विवाद-मूलका ग्रहण (= विनाश) होता है, इस प्रकार ० इस पापी विवाद-मूलकी सविष्यमें अनुत्पत्ति होती है । आनन्द ! यह छः विवाद-मूल हैं ।

“आनन्द ! यह चार अधिकरण हैं । कौनसे चार ? ( १ ) विवाद-अधिकरण, ( २ )

अनुवाद-अधिकरण, ( ३ ) आपत्ति-अधिकरण, ( ४ ) कृत्य-अधिकरण ।

“आनन्द ! यह सात अधिकरण-शमथ हैं, जिन्हें तब तब ( = समय समयपर ) उत्पन्न हुये अधिकरणों ० ( श्रमणों ) के शमथ = उपशम ( शांति ) के लिये देना चाहिये—( १ ) संमुख-विनय देना चाहिये, ( २ ) स्मृति-विनय ०, ( ३ ) अमूढ-विनय ० । ( ४ ) प्रतिज्ञात-करण, ( ५ ) यद्भूयसिक, ( ६ ) तत्पापीयसिक, ( ७ ) तिणवत्थारक ।”

( १ ) “आनन्द ! संमुख विनय कैसे होता है ?” आनन्द ! भिक्षु विवाद करते हैं, धर्म है या अधर्म, विनय है या अविनय । आनन्द ! उन सभी भिक्षुओंको एक जगह एकत्रित होना चाहिये । एकत्रित हो धर्म ( रूपी ) रस्तीका ( ज्ञानसे ) परीक्षण करना चाहिये, जैसे वह शीत हो, वैसे उस अधिकरण ( = श्रमण )को शांति करना चाहिये । इस प्रकार आनन्द ! संमुख-विनय होता है, इस प्रकार संमुख-विनयसे भी किन्हीं किन्हीं अधिकरणोंका शमन होता है ।

( २ ) “कैसे आनन्द ! स्मृति-विनय होता है ? यहाँ आनन्द ! भिक्षु भिक्षुपर पाराजिक या पाराजिक-समान ( = सामन्तक ) आपत्ति ( = दोष )का आरोप करते हैं—‘स्मरण करो आबुस ! तुम पाराजिक या पाराजिक-समान, ऐसी बनी ( = गुरुक ) आपत्तिसे आपन्न हुये, वह ऐसा उत्तर देता है—‘आबुस ! मुझे याद ( = स्मृति ) वहीं कि मैं ० ऐसी गुरुक-आपत्तिसे आपन्न हूँ । उस भिक्षुको आनन्द ! स्मृति-विनय देना चाहिये । इस प्रकार आनन्द ! स्मृति-विनय होता है । इस स्मृति विनयसे भी किन्हीं किन्हीं श्रमणोंका निषटारा होता है ।

( ३ ) “आनन्द ! अमूढ-विनय कैसे होता है ? यहाँ आनन्द ! भिक्षु भिक्षुपर गुरुक-आपत्तिका आरोप करता है । वह ऐसा उत्तर देता है—‘आबुस ! मुझे स्मरण नहीं, कि मैं ० आपत्तिसे आपन्न हूँ । तब वह छोड़ते हुयेको लपेटता है—‘तो आयुष्मान् ! अच्छी तरह ब्रह्म, क्या तुम स्मरण करते हो, कि तुम ० ऐसी ऐसी गुरुक आपत्तिसे आपन्न हुये ?’ वह ऐसा उत्तर देवे—‘मैं आबुस ! पागल हो गया था, अति-भ्रम ( हो गया था ), उन्मत्त हो मैंने बहुतसा भ्रमण-विरुद्ध आचरण किया, आपण किया, मुझे वह स्मरण नहीं होता । मूढ़ ( = बेहोश ) हो, मैंने वह किया । उस भिक्षुको आनन्द ! अमूढ-विनय देना चाहिये । इस अमूढ-विनयसे भी किन्हीं किन्हीं श्रमणोंका निषटारा होता है ।

( ४ ) “आनन्द ! प्रतिज्ञात-करण कैसे होता है ?” आनन्द ! भिक्षु आरोप करनेपर या आरोप न करनेपर भी आपत्ति ( = दोष )को स्मरण करता है, खो जाता है, स्पष्ट करता है । उस भिक्षुको ( अपनेसे ) बृहत्तर भिक्षुके पास जाकर, चौवरको एक ( बायें ) कंधेपर करके, पाद-बन्धनाकर, उकड़ें बैठ हाथ जोड़, ऐसा कहना चाहिये—‘भन्ते ! मैं इस नामकी आपत्तिसे आपन्न हुवा हूँ, उसकी मैं प्रतिदेशना ( = निवेदन ) करता हूँ । वह ( दूसरा भिक्षु ) ऐसा कहे—‘देखते हो ( उस दोषको ) ?’ देखता हूँ । ‘आगेसे ( इन्द्रिय- ) रक्षा करना’ ।—‘रक्षा करूँगा’ । इस प्रकार आनन्द ! प्रतिज्ञात-करण ( = स्वीकार=Confession ) होता है । ० ।

( ५ ) “आनन्द ! यद्भूयसिक कैसे होता है ?—आनन्द ! यदि वह भिक्षु उन अधिकरणको उस आवास ( = सठ )में शांति न कर सके । तो आनन्द ! उन सभी भिक्षुओंको जिस आवास में अधिक भिक्षु हैं, उसमें जाना चाहिये । वहाँ सबको एक जगह एकत्रित होना चाहिये । एकत्रित हो धर्म-नेत्री ( = धर्म-रूपी रस्ती )का समनुमार्जन ( = परीक्षण ) करना चाहिये । धर्म-नेत्रीका समनुमार्जन कर ० ।

( ६ ) “आनन्द ! तत्पापीयसिका ( = तत्स पापीयसिका ) कैसे होती है ? यहाँ आनन्द ! भिक्षु भिक्षुको ० ऐसी गुरुक-आपत्ति आरोप करते हैं—‘आयुष्मान् स्मरण करो ० तुम ऐसी



गुरुक-आपत्ति आपन्न हुये ?' वह ऐसा उत्तर देता है—'आयुस ! सुखे स्मरण नहीं, कि मैं ० ऐसी गुरुक-आपत्ति आपन्न हुआ ।' उसको छोड़ते हुयेको वह लपेटता है—'आयुष्मान् अच्छी तरह बूझो—क्या तुम्हें स्मरण है, कि तुम ० ऐसी गुरुक आपत्तिले आपन्न हुये ?' वह ऐसा उत्तर देवे—'आयुस ! मैं स्मरण नहीं करता कि मैं, ० ऐसी गुरुक आपत्ति आपन्न हुआ । स्मरण करता हूँ आयुस ! कि मैं इस प्रकारकी छोटी (= अल्पमात्रक ) आपत्तिसे आपन्न हुआ ।' खोलते हुये उसको वह फिर लपेटता है—'आयुष्मान् अच्छी तरह बूझो ० ?' वह ऐसा उत्तर दे—'आयुस ! मैं इस प्रकार की (= अल्पमात्र ) छोटी आपत्तिमें आपन्न हुआ, बिना पूछे ही स्वीकार करता हूँ; तो क्या मैं ० ऐसी गुरुक आपत्ति आपन्न हो पूछनेपर न स्वीकार करूँगा ?' वह ऐसा कहता है—'आयुस ! तुम इस छोटी आपत्तिको भी बिना पूछे नहीं स्वीकार करते, तो क्या तुम ० ऐसी गुरुक-आपत्ति आपन्न हो पूछनेपर स्वीकार करोगे ? तो आयुष्मान् ! अच्छी तरह बूझो ०'। वह यदि थोले—'आयुस ! स्मरण करता हूँ, मैं ० ऐसी गुरुक-आपत्ति आपन्न हुआ हूँ । दय (= सहसा )से, स्व (= प्रमाद ) से मैंने यह कहा—'मैं स्मरण नहीं करता, कि मैं ० ऐसी' । इस प्रकार आनन्द ! 'तत्त्वपापीयसिका' (= इसकी और भी कबी आपत्ति ) होती है । ऐसे भी यहाँ किन्हीं किन्हीं अधिकरणोंका निबटारा होता है ।

( ० ) 'आनन्द ! 'तिण-वत्थारक' कैसे होता है । आनन्द ! वहाँ भंडन = कलह = विवाद से युक्त हो विहरते ( समग्र ), मिथु बहुतसे-विरुद्ध आचरण, भाषण, किये होते हैं । उन सभी मिथुओंको एकराश हो एकत्रित होना चाहिये । एकत्र हो एक पक्षवालोंमेंसे चतुर मिथुको से उठकर चौवरको एक कंधेपर कर हाथ जोड़ संकको ज्ञापित करना चाहिये—

'अन्ते ! संघ सुने, भंडन=कलह = विवादसे युक्त हो विहरते ( समग्र ), हमने बहुतसे भ्रमण-विरुद्ध आचरण... किये हैं, यदि संघ दचित समझे, तो जो इन आयुष्मानोंका दोष है, और जो मेरा दोष है, इन आयुष्मानोंके लिये भी और अपने लिये भी, मैं तिणवत्थारक (= घासमे ढाँकना जैसा )से बयान करूँ, ( लेकिन ) स्थूल-वश (= बड़ा दोष ), गृही-प्रतिसंयुक्त (= गृहस्थ-संबंधी ) छोड़ कर । मय ( दूसरे ) पक्षवालोंमेंसे चतुर मिथुको आसनसे उठकर ० । ० । इस प्रकार आनन्द ! तिणवत्थारक (= घृणसे ढाँकने जैसा ) होता है ।

'आनन्द ! यह उः धर्म साराणोय भ्रिय-करण, गुरु-करण हैं; संग्रह, अ-विवाद, सामग्री (= एकता ) = एकीभावके लिये हैं । कौनसे उः ? ( १ ) आनन्द ! मिथुका समग्र-चारियोंमें, गुप्त भी प्रकट भी, मैत्रीभाव-युक्त कायिक कर्म हो; यह भी धर्म साराणोय ० । ( २ ) और फिर आनन्द ! ० मैत्रीभाव-युक्त वाचिक कर्म ० । ( ३ ) ० मैत्रीभावयुक्त मानसकर्म ० । ( ४ ) और फिर आनन्द ! जो कुछ मिथुको धार्मिक लाभ, धर्मसे लब्ध होते हैं, अन्तमें प्राप्त पुण्यने मात्र भी, वैसे लाभोंको बिना कटि उपभोग न करनेवाला हो, शीलवान् स-ब्राह्मचारियोंके साथ सह-मोणी हो; यह भी धर्म ० । ( ५ ) और फिर आनन्द ! जो वह शील (= आचार ) कि अर्द्ध-अ-छिद्र, अ-शयल = अ-कसमय, सेवनीय, पंडितोंसे प्रशंसित, अ-निंदित, समाधि-सहायक हैं, वैसे शीलोंमें शील-भ्रमण-भावयुक्त हो, गुप्त भी और प्रकट भी समग्रचारियोंके साथ विहार करता हो; यह भी धर्म ० । ( ६ ) और फिर आनन्द ! जो यह दृष्टि (= सिद्धान्त ), कार्य है, नैर्घोणिक = उसके ( अनुसार ) करनेवालेको दुःख-अपको ले जाती है, वैसे दृष्टिसे भ्रमण-भाव (= विचारोंके भ्रमण-पन )से युक्त हो; गुप्त भी, और प्रकट भी समग्रचारियोंके साथ विहार करता हो; यह भी धर्म ० । आनन्द ! यह उः धर्म साराणोय ० हैं ।

संगवान्ने यह कहा ; संतुष्ट हो आयुष्मान् आनन्दने संगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया ।

## १०५-सुनक्खत्त-सुत्तन्त (३।१।५)

प्यान । चित्त-संयम

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागारशालामें विहार करते थे ।

उस समय बहुतसे भिक्षुओंने भगवान्के पास ( अपनी ) आज्ञा ( = निर्वाण-प्राप्ति ) बखानी थी—'जन्म ( = आवागमन ) खतम हो गया, ब्रह्मचर्य-वास पूरा होगया, करना था तो कर लिया, और कुछ करनेको यहाँ ( वाकी ) नहीं है—यह मैं जानता हूँ ।'

सुनक्खत्त ( = सुनस्सत्त ) लिच्छवि-पुत्रने सुना, कि बहुतसे भिक्षुओंने भगवान्के पास आज्ञा बखानी है—० । तब सुनक्खत्त लिच्छवि-पुत्र, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे सुनक्खत्त ० ने भगवान्से यह कहा—

"मन्ते ! मैंने सुना, कि बहुतसे भिक्षुओंने भगवान्के पास आज्ञा बखानी है—० । मन्ते ! भिक्षुओंने भगवान्के पास आज्ञा बखानी है—०, क्या मन्ते ! उन्होंने'' ठीक ही आज्ञा बखानी है, या यहाँ कोई कोई भिक्षु ( ऐसे मो ) हैं, जिन्होंने अभिमानके लिये आज्ञा बखानी है ?"

"सुनक्खत्त ! जिन भिक्षुओंने मेरे पास आज्ञा बखानी है—०, ( उनमें ) हैं ऐसे भिक्षु जिन्होंने ठीक ही आज्ञा बखानी है; हैं ( उनमें ) ऐसे भिक्षु भी जिन्होंने अभिमान ( = अतिमान ) के लिये आज्ञा बखानी है । उनमें, सुनक्खत्त ! जिन भिक्षुओंने ठीक ही आज्ञा बखानी है, उनका वह ( कथन ) वैसा ही है; किन्तु, जिन भिक्षुओंने अभिमानके लिये आज्ञा बखानी है, उनके विषयमें तयागतको ऐसा होता है—'इन्हें धर्म उपदेशेंगा' ।" और फिर यहाँ, कोई कोई मोघ-पुरुष प्रश्न बनाकर, तयागतके पास आकर पूछते हैं । तब सुनक्खत्त ! जो कि तयागतको यह होता रहा—'इन्हें धर्म उपदेशेंगा', उसमें भी फर्क पड़ जाता है ।"

"भगवान् ! इसीका काल है, सुगत ! इसीका काल है, कि भगवान् धर्म उपदेशें । भगवान्से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे ।"

"तो, सुनक्खत्त ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।"

"अच्छा मन्ते !"—( कह ) सुनक्खत्त लिच्छविपुत्रने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—"सुनक्खत्त ! यह पाँच कामगुण हैं । कौनसे पाँच ?—( १ ) इष्ट ०<sup>१</sup> चतुर्विंशत्य रूप, शब्द, ० गंध, ० रस, ० स्पर्श । सुनक्खत्त ! यह पाँच काम-गुण हैं । हो सकता है, सुनक्खत्त ! यहाँ कोई पुरुष सांसारिक ज्ञानका इच्छुक ( = लोभ-आमिष-अभिसुक्त ) हो । सुन-

<sup>१</sup> विस्तारके लिये देखो पृष्ठ १३ ।



स्वत्त ! सांसारिक कामके इच्छुक पुरुष=पुद्गलकी बात उसके अनुरूप ही होती है, उसके अनुरूप ही वह सोचता-विचारता है, वैसे ही पुरुषका सेवन करता है, वैसेहीके साथ संसर्ग रखता है । आनिज्य (= सुख-दुःखसे परेकी समाधि ) संबंधिनी कथा कही जानेपर नहीं सुनना चाहता, नहीं कान देता, न चित्तको उपस्थित करता है, न उस ( वैया कहनेवाले ) पुरुषको मजता है, न उसके साथ संसर्ग रखता है । जैसे, सुनस्वत्त ! कोई पुरुष अपने गाँवसे या निगमसे चिरकालसे प्रवासी हुआ हो; वह उस ग्राम या निगमसे बोहेही दिन पूर्व जाये पुरुषको देखे । वह उस पुरुषसे उस ग्राम-निगमका कुशल-मंगल, सुनिश्चिता, अरोगता पूछे । उसकी वह पुरुष उस ग्राम-निगमकी \* अरोगता बतलावे । तो क्या मानते हो, सुनस्वत्त ! क्या वह ( चिरप्रवासी ) पुरुष, उस ( अचिरप्रवासी ) पुरुष ( की बात ) को सुनना चाहेगा, काम देगा, चित्तको अन्यत्रसे उपस्थित करेगा, उस पुरुषको भजेगा, उस पुरुषके साथ संसर्ग करेगा ?”

“हाँ, भन्ते !”

“ऐसे ही सुनस्वत्त ! सांसारिक कामके इच्छुक पुरुष = पुद्गलकी बात उसके अनुरूप ही होती है \* न उसके साथ संसर्ग करता है ।”

“हो सकता है, सुनस्वत्त ! यहाँ कोई पुरुष आनिज्यका अनुरागी (= अधिमुक्त ) । सुनस्वत्त ! आनिज्य-अनुरागी पुरुषकी कथा उसके अनुरूप होती है \* वैसेहीके साथ संसर्ग रखता है । सांसारिक-काम-संबंधिनी कथा कही जानेपर नहीं सुनना चाहता \* न उसके साथ संसर्ग रखता है । जैसे, सुनस्वत्त ! टेंपीसे टूटा पीला पत्ता फिर होनेके अयोग्य है, ऐसे ही सुनस्वत्त ! “आनिज्य-अनुरागी पुरुष \* के जो सांसारिक-कामके फंदे में, वह टूट गये । उसे ऐसा चाहिए—आनिज्यानुरागी पुरुष \* सांसारिक-कामके बंधनोंसे बंधुवा है ।

“हो सकता है, सुनस्वत्त ! यहाँ कोई पुरुष आकिचन्या-आयतन-अनुरागी हो । सुनस्वत्त ! आकिचन्यायतनानुरागी पुरुषकी कथा उसके अनुरूप होती है \* आनिज्य-संबंधिनी कथा कही जानेपर नहीं सुनना चाहता \* न उस ( कहनेवाले ) के साथ संसर्ग रखता है । जैसे, सुनस्वत्त ! कोई दो टुकड़े हुई सिला न-झड़नेवाली होती है, ऐसेही सुनस्वत्त ! आकिचन्यायतनानुरागी पुरुष \* के जो आनिज्य सम्बंधी फंदे में, वह टूट गये । उसे ऐसा समझना चाहिये—‘आकिचन्यायतनानुरागी पुरुष \* आनिज्य-बंधनोंसे बंधुवा है ।

“हो सकता है, सुनस्वत्त ! \* नैवसंज्ञा-नासंज्ञा-आयतन-अनुरागी हो । \* । जैसे, सुनस्वत्त ! भोजन कर चुका पुरुष मनोज्ञ भोजनको व्रमन करदे । तो क्या सुनस्वत्त ! उस पुरुषकी उस उचान्तके जानेकी फिर इच्छा होगी ?”

“नहीं, भन्ते !”

“सो क्यों ?”

“भन्ते ! वह उचान्त पूर्णाकी चोख है ।”

“ऐसेही, सुनस्वत्त ! नैव संज्ञा-नासंज्ञायतनानुरागी पुरुष \* आकिचन्यायतनके बंधनोंसे बंधुवा है ।

“हो सकता है, सुनस्वत्त ! \* सम्यक्-निर्वाण-अनुरागी हो । \* । जैसे, सुनस्वत्त ! चिर कटा ताड़ फिर बटने लायक नहीं होता । ऐसेही, सुनस्वत्त ! सम्यक्-निर्वाणानुरागी पुरुष \* के जो

\* पूर्व जैसे ही, सिर्फ आनिज्यके स्थानपर आकिचन्यायतन लायेगा ।

\* पूर्व ऐसा ही, नैव-संज्ञा \* के योगसे ।

नैव-संज्ञा-नासंज्ञापतन-सम्बन्धो कहे थे, वह छिन्न हो गये, उन्मूलित हो गये, शिर-कटे ताव जैसे हो गये, अनाक्यों प्राप्त हो गये, भविष्यमें न उगने-लायक हो गये । उसे ऐसा समझना चाहिये—सम्यक्-निर्वाणानुरागी पुरुष ० नैवसंज्ञा-नासंज्ञा-पतनके बंधनोंसे बंधुषा है ।

“हो सकता है, सुनवत्सल ! कि किसी भिक्षुको ऐसा हो—‘अमण (= बुद्ध) ने तृष्णाको शल्य (= बाणका कर) कहा है, अविद्याको विष-दोष, जो कि उन्द-राग (= लोभ) और व्याप (= झोह, द्वेष) से रोपी जाती है । सो उस तृष्णा (= रूपी) शल्यको मैंने फेंक दिया अविद्या (= रूपी) विष दोषको हटा दिया । वैसा न होते ही मैं सम्यक्-निर्वाण-अनुरागी हूँ—ऐसा माननेवाला (= एवं मानी) हो । और वह, जो धर्म (= बातें) कि सम्यक्-निर्वाणानुरागी पुरुषके लिये अहित (= अ-सुप्याय) हैं, उनमें लग्न हो; आँखसे अहित रूपको देखकर, ( उसमें ) अनुयुक्त हो’ कानसे अहित शब्दको सुनकर, ( उसमें ) अनुयुक्त हो; ०; कानसे अहित स्मरण्यको स्पर्श कर उसमें अनुयुक्त हो; मनसे अहित धर्मको जानकर उसमें अनुयुक्त हो । तब आँखसे अहित रूपमें अनुयुक्त होते ०, मनसे अहित धर्ममें अनुयुक्त होते, उसके चित्त राग भ्रस्त करे । वह रागके द्वारा भ्रस्त चित्तसे मरणको प्राप्त हो, या मरण-तुल्य दुःखको ।

“जैसे, सुनवत्सल ! कोई पुरुष गाढ़े विषके बुझे शल्यसे बिधा हो । उसके बार-दोस्त भाई-बंधु शल्यकर्ता भिक्षुको ला उपस्थित करें । वह शल्यकर्ता भिक्षु शल्यके घावके मुखसे चारों ओर से काटदे, फिर ऐपणी ( औजार ) से—‘खोजकर शल्यको निकालदे, फिर निःशेष जान किन्तु स-शेष विष-दोषको दूर करे । ( फिर ) वह ( रोगीको ) ऐसा कहे—‘हे पुरुष ! तेरा शल्य निकल गया, निःशेष निःशेषकरके हटा दिया गया, अब तुझे खतरा नहीं । ( किन्तु ) ( १ ) तू पथ्य (= संध्याय) भोजनहीको खाता; अ-पथ्य भोजनके खानेसे, कहीं तेरा घाव घटने न लगे । ( २ ) समय समयपर घावको धोना ( ३ ) समय समयपर घणके मुखपर लेप करना; समय समयपर घण-मुखके न धोनेसे, समय समयपर घणमुखके न लेप करनेसे, कहीं पीप-लोहू तेरे घण-मुखमें न भर जाये । ( ४ ) हवा-धूपमें चलना-फिरना मत; हवा-धूपमें चलने-फिरनेसे कहीं मैल-दूँद तेरे घण-मुख (= घाव) में न चले जाये । हे पुरुष ! ( ५ ) घावकी हिफाजत करना, ‘‘‘’ ( तब ) उस ( रोगी ) को ऐसा हो—‘शल्य निकल गया, विष-दोष निःशेष हट गया । अब मुझे खतरा नहीं ।’ ( और ) वह अ-पथ्य भोजन खाने । अपथ्य भोजन करनेसे उसका घाव घटने लगे । वह समय समयपर न घावको धोवे, न ० लेप करे । ० न धोवे, ० न लेपनेसे उसकी घावमें पीप-लोहू भर जाये । वह हवा-धूपमें चले-फिरे; ० चलने-फिरनेसे उसकी घावमें मैल-दूँद (= रज-श्लेक) चले जायें । वह न घावकी हिफाजत करे, उसकी इस अ-पथ्य क्रिया, और उस सशेष-विष-दोषापतनयन—इन दोनोंसे घाव भारी हो जाये । वह घावके भारी होनेसे मरणको प्राप्त होवे, या मरण-तुल्य दुःखको । ऐसे ही सुनवत्सल ! होसकता है किसी भिक्षुको ऐसा हो—अमणने तृष्णाको शल्य कहा है ०’ वह रागद्वारा भ्रस्त चित्तसे मरणको प्राप्त हो, या मरण-तुल्य दुःखको ।

“हो सकता है, सुनवत्सल ! कि किसी भिक्षुको ऐसा हो—‘अमणने तृष्णाको शल्य कहा है ०’ वैसा होते—‘मैं’ सम्यक्-निर्वाण-अनुरागी हूँ—ऐसा समझनेवाला । और वह, जो धर्म कि सम्यक्-निर्वाणानुरागी पुरुषके लिये अहित हैं, उनमें लग्न न हो; आँखसे अहित रूपको देखकर उसमें अनुयुक्त (= लग्न) न हो, ०, मनसे अहित धर्मको जानकर उसमें अनुयुक्त न हो, ० अनुयुक्त न होते उसके चित्तको राग न भ्रस्त करे । वह रागद्वारा न भ्रस्त हुये चित्तसे न मरणको प्राप्त हो,



न मरण-मुल्य दुःखको ।

“जैसे, सुनस्वच्छ ! कोई पुरुष गाढ़े विषमें डूबे शस्त्रसे विधा हो ०<sup>१</sup> निःशेष जान निःशेष विषदोषको दूर करे; ( फिर ) वह ऐसा कहे—‘हे पुरुष ! ०<sup>१</sup> चावको हिकाग्रत करना, ...’ । वह पथ्य भोजन लाये, पथ्य भोजन जानेसे उसका न बहने लगे, ० पीय-ओह न भरे, ० घावमें सैल-ईश न जाये । वह चावकी हिकाग्रत करे । उसकी इस पथ्य-क्रिया और उस निःशेष विषदोषापनयन—इन दोनोंसे घाव न पड़े । वह छवि (= उपरी चमका )-सहित भरे घावके कारण न मरणको प्राप्त हो, न मरण-मुल्य दुःखको । ऐसीही सुनस्वच्छ ! हो सकता है, किसी भिक्षुको ऐसा हो—अभरणने तृणाको शल्य कहा है ०<sup>१</sup> वह शय्यद्वारा न ध्वस्त हुये चित्तसे न मरणको प्राप्त हो, न मरण-मुल्य दुःखको ।

“सुनस्वच्छ ! अर्थ (= घात )को समझानेके लिये मैंने यह उपमा दी है । यहाँ यह अर्थ है—मृग (= घाव ) वह छः आध्यात्मिक (= शरीर संबंधी ) आयतनोंका नाम है । विष-शोष ... यह अविद्याका नाम है । शल्य वह ... तृणाका नाम है । पेपणा यह ... स्मृति (= होश रखने ) का नाम है । शय्य यह ... शय्य-प्रज्ञाका नाम है । शल्यकर्ता भिक्षु यह ... तथ्यागत-अर्हत् सम्यक्-संयुक्तका नाम है ।

“सुनस्वच्छ ! जो भिक्षु छः स्पर्शायतनों (= चक्षु, श्रोत्र, ग्राण, जिह्वा, काय, मनके ( विषयों )में संयमी है, ‘उपाधि (= विषय-संग्रह ) दुःखका मूल है’—इसे जान उपधि-रहित हो, उपधिके क्षयसे मुक्त हो गया है, वह उपधिमें कायाको लगायेगा, या चित्तको देगा, यह संभव नहीं । जैसे, सुनस्वच्छ ! आपाखोरा (= आपानोप-कांस ) वर्णवान् (= सुन्दर वर्ण ), ... हो, ( किन्तु ) विषसे लिस हो । तब कोई जीवनका इच्छुक, मरणका अनिच्छुक नहीं, सुखाकीभी, दुःख-विरोधी पुरुष जाये । तो क्या मानते हो, सुनस्वच्छ ! क्या वह पुरुष उस आवलारेसे पिबेगा । यदि जानता है, कि इससे पीनेसे मैं मरणको प्राप्त होऊँगा, या मरण-मुल्य दुःखको ?”

“नहीं, भन्ते !”

“ऐसे ही, सुनस्वच्छ ! जो भिक्षु छः स्पर्शायतनोंमें संयमी है ०<sup>१</sup> वह उपधिमें कायाको लगायेगा, या चित्तको देगा, यह संभव नहीं ।

“जैसे, सुनस्वच्छ ! जहरीला साँप (= आशीविष ) हो । तब कोई जीवनका इच्छुक ० पुरुष जाये । तो क्या मानते हो, सुनस्वच्छ ! क्या वह पुरुष इस जहरीले (= घोर विष ) साँपको अपना हाव या भँगुली देगा, यदि जानता है, कि इसके डँसनेसे मैं मरणको प्राप्त होऊँगा या मरण-मुल्य दुःखको ?”

“नहीं, भन्ते !”

“ऐसे ही, सुनस्वच्छ ! जो भिक्षु छः स्पर्शायतनोंमें संयमी है ०<sup>१</sup> वह उपधिमें कायाको लगायेगा, या चित्तको देगा, यह संभव नहीं ।”

मगवान्ने यह कहा, स्मृत्युप्त हो, सुनस्वच्छ लिच्छवियुक्ते भगवान्के भाषणको अभि-  
मन्दित किया ।

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ ४४७ ।

<sup>२</sup> देखो ऊपर ।

## १०६—आनंज-सप्पाय-सुत्तन्त (३।१।६)

भोग निस्तार है

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् कुन्द ( देश ) में, कुल्लोंके कम्मासद्म ( = कलमाप-द्रव्य ) नामक निगम ( = कस्ये ) में विहार करते थे ।

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भदन्त !” कह उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! काम ( = विषय भोग ) अनित्य, गुच्छ-सुषा ( झूठा ), नाशमान है । भिक्षुओ ! यह भाषासे बने, बर्णोंके बहलाव है । भिक्षुओ ! जो कि यह ऐहिक ( = दृष्ट-धर्मों, इस शरीरके ) काम है, और जो पारलौकिक ( सोपरायिक ) काम है, जो कि काम-संज्ञा ( = विषयों का ज्वाल ) और जो पारलौकिक काम संज्ञा है, वह दोनों मार का एक छोर ( = लक्ष्य ) है । यहाँ यह पापक = अ-कुशल ( = बुरे ) मनके ( भाव ) उत्पन्न होते हैं—अभिध्या ( = लोभ ) भी, व्यापार ( = द्वेष ) सारम्भ ( = पोषा ) भी, और वह इसे अभ्यास करनेवाले आर्य आचकके धम्माराय ( = विम ) होते हैं ।

( १ ) “यहाँ भिक्षुओ ! आर्य-आचक यह सोचता है—‘जो यह ऐहिक काम है ० आर्य-आचक के अन्तराय होते हैं । क्यों न मैं विपुल = महत्त ( = विस्तार ) चित्तसे लोकको अभिभूत ( = वश में ) कर, मनसे अविधित कर विहरूँ ( इस प्रकार ) जो अभिध्या, व्यापार, सारम्भ—मानसिक बुराईयाँ न होंगी । उनके नाश ( = प्रहाण ) से मेरा चित्त अ-परीत = अ-प्रमाण ( = विशाल ), सु-भावित ( = सुसंयत ) होगा ।’ उसके इस प्रकार संलग्न ( = प्रतिपन्न ) होने पर, बहुतायतसे इस प्रकार विहरने पर आद्यतन ( = स्थान ) में चित्त प्रसन्न होता है । सं-प्रसाद ( = पूरी प्रसन्नता, चित्त शुद्धि ) होने पर उली समय वह आनंजको प्राप्त होता है, या प्रशान्तद्वारा मुक्त होता है, और काया छोड़ करने के बाद, यह जगह ( = संभव ) है, कि उस प्रकार लग्न विज्ञान ( = जीवन ) आनंजको प्राप्त होवे । भिक्षुओ ! आनंज-सप्पाय ( = आनंज-सप्पाय = आनंज-उपयोगों ) की यह प्रथम प्रतिपदा ( = मार्ग ) कही जाती है ।

( २ ) और फिर भिक्षुओ ! आर्य-आचक यह सोचता है—‘जो यह ऐहिक काम है ० और जो पारलौकिक काम संज्ञा है । जो कुछ रूप—चार महाभूत हैं, और चारो महाभूतोंको लेकर जो रूप है, वह मार का फंदा है ०’ आर्य-आचकके विम होते हैं । क्यों न मैं विपुल ० चित्तसे ० विहरूँ ० ।

१ ऊपर आये बैठा ।



० मेरा चित्त ० सुभाषित होगा' । उसके इस प्रकार संलग्न होने पर ० । संप्रसाद होने पर उसी समय वह आर्नेजको प्राप्त होता है ० । और वह संभव है, कि काया छोड़ मरनेके बाद, इस प्रकार लग्न विज्ञान (= जीवन) आर्नेजको प्राप्त होवे । भिक्षुओ ! आर्नेज-संप्राप्त्यकी ( यह ) दूसरी प्रतिपदा कही जाती है ।

( ३ ) और "फिर ० जो पारलौकिक काम-संज्ञा है । जो ऐहिक रूप है, जो पारलौकिक रूप है; जो ऐहिक रूप-संज्ञा है, जो पारलौकिक रूप-संज्ञा है । वह दोनों अनित्य हैं । जो अनित्य (= नाशमान ) है, उसको अभिनंदित करना, अभिवंदित करना, उचित नहीं ।" उसके इस प्रकार संलग्न होने पर ०, ० । भिक्षुओ ! ० तीसरी प्रतिपदा कही जाती है ।

( १ ) "और फिर ० जो पारलौकिक काम-संज्ञा ०" जो पारलौकिक रूप संज्ञा है, और जो आर्नेज-संज्ञा (= आर्नेजपदका क्वाल ) यह सारी संज्ञायें (= क्वाल ) जहाँ बिल्कुल ही निरुद्ध होती हैं, वह आकिचन्धायातन शान्त, प्रणीत (= उत्तम ) है । उसके इस प्रकार संलग्न होने पर, बहुतायतसे इस प्रकार विहरने पर जायतनमें चित्त प्रसन्न होता है । संप्रसाद होने पर उसी समय वह आकिचन्धायातनको प्राप्त होता है, या प्रज्ञाद्वारा मुक्त होता है; और ( अन्यथा ) काया छोड़ मरने बाद, वह जगह है, कि उस प्रकार लग्न विज्ञान (= जीवन) आकिचन्धायातनको प्राप्त होवे । भिक्षुओ ! आकिचन्धायातन-संप्राप्त्यकी प्रथम प्रतिपदा कही जाती है ।

( २ ) "और फिर भिक्षुओ ! आर्य भ्रातृक, अरण्य, वृक्षके नीचे या शून्य गृहमें रहते हुये यह सोचता है—'यह ( सब संसार ) आत्मा वा आत्मीयसे शून्य है'—उसके इस प्रकार संलग्न होने पर ०" उस प्रकार लग्न विज्ञान आकिचन्धायातन को प्राप्त होवे । ० दूसरी प्रतिपदा कही जाती है ।

( ३ ) "०—'न मैं कहीं किसीका कुछ हूँ, न मेरा कहीं किसीमें कुछ है' । भिक्षुओ ! इस प्रकार संलग्न होने पर ०" ० । ० तीसरी प्रतिपदा कही जाती है ।

"और फिर भिक्षुओ ! आर्य भ्रातृक यह सोचता है—जो कुछ ऐहिक काम है, जो कुछ पारलौकिक काम—है; ० काम-संज्ञा ०; ० रूप ०; ० जो कुछ ऐहिक रूप-संज्ञा है, और जो कुछ पारलौकिक रूप-संज्ञा है, और जो आकिचन्धायातन-संज्ञा है—यह सारी संज्ञायें जहाँ बिल्कुल निरुद्ध होती हैं, वह नैवसंज्ञा-नासंज्ञायातन शान्त, प्रणीत है । उसके इस प्रकार संलग्न होने पर ० । संप्रसाद होने पर, उसी समय वह नैवसंज्ञा-नासंज्ञायातनको प्राप्त होता है, या प्रज्ञाद्वारा मुक्त होता है, ( अन्यथा ) काया छोड़ मरनेके बाद, संभव है, कि उस प्रकार लग्न विज्ञान नैवसंज्ञा-नासंज्ञायातनको प्राप्त होवे । भिक्षुओ ! यह नैवसंज्ञा-नासंज्ञायातन की प्रतिपदा कही जाती है ।"

ऐसा कहने पर आशुब्भान् आर्मद्वे भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! यहाँ ( कोई ) भिक्षु इस प्रकार प्रतिपन्न (= समझनेवाला ) है—'न होता, न मेरा होता, न होगा; न मेरा होगा; जो है, जो विद्यमान है, उसे मैं त्यागता हूँ'—इस प्रकार ( यह ) उपेक्षाको प्राप्त करता है । क्या भन्ते ! ऐसा भिक्षु परिनिर्वायी (= निर्वाण ) प्राप्त करने वाला है ?"

"आनन्द ! कोई ऐसा भिक्षु निर्वाण प्राप्त कर सकता है । कोई ऐसा भिक्षु नहीं भी... प्राप्त कर सकता है ।"

"भन्ते ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जो कि कोई ऐसा भिक्षु निर्वाण प्राप्त कर सकता है, कोई ऐसा भिक्षु नहीं भी... प्राप्त कर सकता है ?"

“आनन्द ! यहाँ ( जो ) भिक्षु इस प्रकार प्रतिपन्न है—‘न होता, ०, उसे मैं स्थायता हूँ’—इस प्रकार उपेक्षा को प्राप्त करता है । ( तब ) जो उस उपेक्षाको अभिनन्दित = अभिवन्दित करता है, उसमें आसक्त हो रहता है, ’’ ( तो ) विज्ञान ( = चित्त-प्रवाह ) उसमें निश्चित ( = लिप्त ) होता है, उसको उपादान ( = ग्रहणकी इच्छा, आसक्ति ) करनेवाला होता है । आनन्द ! उसको उपादान करनेवाला भिक्षु निर्वाणको नहीं प्राप्त होता । ”

“भन्ते ! कहाँ वह भिक्षु उपादान ( = ग्रहण ) करते, उपादान करता है ? ”

“आनन्द ! नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनको । ”

“भन्ते ! वह उपादान करते भी श्रेष्ठ उपादानको उपादान कर रहा है । ”

“आनन्द ! वह भिक्षु उपादान करते हुये, श्रेष्ठ उपादानको उपादान कर रहा है । आनन्द ! यही श्रेष्ठ उपादान है, जो कि ( यह ) नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतन है । आनन्द ! यहाँ इस प्रकार समझनेवाला होता है—‘न होता, ० उसे मैं स्थायता हूँ’—इस प्रकार वह उपेक्षाको प्राप्त करता है । ( किन्तु ) वह इस उपेक्षाको अभिनन्दित = अभिवन्दित नहीं करता, उसमें आसक्त नहीं होता; ’’ तो विज्ञान उसमें निश्चित ( = लिप्त ) नहीं होता, उसको उपादान करनेवाला नहीं होता । आनन्द ! उसको उपादान करनेवाला भिक्षु निर्वाणको प्राप्त होता है । ”

“आश्चर्यं भन्ते ! अद्भुत ! कारण-कारणसे ( = निस्साय ) भन्ते ! भगवान् ने हमें ओघ-निस्सरण ( = संसार-प्रवाहको पार होना ) बतलाया । भन्ते ! क्या है आर्य-विमोक्ष ? ”

“यहाँ, आनन्द ! आर्यश्रावक यह सोचता है—जो कुछ ऐहिक काम ०, जो आनेज-संज्ञा-न्यायतन-संज्ञा है, जो नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतन-संज्ञा है, यह स्वत्काय है; यहाँ तक स्वत्काय है । उरः न हो, चित्तका जो विमोक्ष ( मोक्ष, छूटना ) है, यह असूत है ।

“आनन्द ! इस प्रकार मैंने ज्ञानज-संपाद प्रतिपदा उपदेशों, नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतन प्रतिपदा उपदेशों, कारण ( कह कह कर ) ओघ-निस्सरणको उपदेशों, आर्य-विमोक्षको उपदेशों । आनन्द ! जो कुछ अनुकम्पा करके, अनुकम्पक, हितैषी आस्ता ( = गुरु ) को करना चाहिये, वह मैंने तुम्हारे लिये कह दिया । आनन्द ! यह वृक्ष-मूल ( = वृक्षोंकी ) छाया है, यह शून्य-गृह है, आनन्द ! ( इनमें बैठकर ) ध्यान करो, मत प्रमाद ( = मग्नलत ) करो; मत थोड़े अफसोस करना । तुम्हारे लिये यह हमारी सीख ( अनुशासन ) है । ”

भगवान् ने यह कहा, लब्धुष हो आमुष्मान् ज्ञानदने भगवान् के भाषणको अभिनन्दित किया ।



## १०७—गणक-मोगलान-सुत्तन्त ( ३।१।७ )

कर्मस्य धर्मो भवति

देखा मैंने सुना—

एक समय भगवान् धावस्तीमें मृगारमाताके भ्राताद् पूर्वोराममें विहार करते थे ।

तब गणक-मोगलान (= मीहगन्ध्यापन ) ब्राह्मण, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्के साथ संसोधन कर एक ओर बैठा । एक ओर बैठे गणक-मोगलान ब्राह्मणने भगवान्से यह कहा—

“जैसे, भो गौतम ! इस मृगार-माताके भ्रातादमें अंतिम सोपानके कलेवरतक कर्मिक (= दूँ-प्रदूँ) शिक्षा, कर्मिक विद्या, कर्मिक प्रतिपदा (= राला ) देखी जाती है । इन ब्राह्मणोंके अध्ययनमें भो, भो गौतम ! कर्मिक शिक्षा = देखी जाती है । इन धनुर्धरोंके इणु-अखमें भी कर्मिक शिक्षा = देखी जाती है । हम गणकों = गणनासे जीविका करनेवालोंके संख्या (= गण Account ) में भी कर्मिक शिक्षा = देखी जाती है । हम अन्तेवासी ( विद्यार्थी ) पाठ्य-पुस्तकें पढ़ गिनवाते हैं—एकका एक, दुकके दो, तिक्के तीन, चडक्के चार, पँचयें पाँच, छक्के छः, सत्ते सात, अट्टे आठ, नवाहें नौ, दहाहें दस । भो गौतम ! हम सौ ( तक ) भी ( इसी तरह ) गिनवाते हैं । क्या, भो गौतम ! इस ( आपके ) धर्म-विनय (= धर्म ) में भी इसी प्रकार कर्मिक शिक्षा... प्रतलाहें जा सकती है ?”

“बतलाहें जा सकती है, ब्राह्मण ! इस धर्म-विनयमें भी कर्मिक शिक्षा = । जैसे, ब्राह्मण ! चातुर चातुकसवार, उत्तम खेतके (= आजारीय ) भद्र अन्नको पाकर पहिले मुँहमें ( लगाम ) पकवानेकी क्रिया (= कारण ) सिखलाता है, फिर आगेकी क्रिया बतलाता है, ऐसे ही ब्राह्मण ! तत्प्रागत द्रव्य (= संयत ) बनाने लायक पुरुष को पाकर पहिले इस प्रकार सिखाते (= विनय देते ) हैं—‘आ, मित्रु ! तू शीलवान् बन, प्रातिमोक्ष (= मित्रु-नियम ) संवर ( संयम ) से संयत हो, आचार-गोचर (= सदाचार ) से सरपड (= युक्त ) हो, अणुमात्र वच (= दोष ) में भय खाते विहर, शिक्षा-पदों (= मित्रु-नियमों ) को ग्रहणकर ( उनका ) अभ्यास कर = ।

“ब्राह्मण ! जब मित्रु शीलवान् होता है, = शिक्षापदोंको स्वीकार कर ( उनका ) अभ्यास कर लेता है; तब उसे तत्प्रागत आगेका विनय देते (= छे चलते ) हैं—‘आ, मित्रु ! तू इन्द्रियोंमें गुह्यदार (= संयत-इन्द्रिय ) हो—चक्षुसे रूपको देण निमित्तप्राप्ती, अनुचर्यजन-प्राप्ती मत हो = चक्षु-इन्द्रियका संवर (= संयम ) कर । श्रोत्रसे शब्दको सुन =, श्राणसे गंधको सूँघ =, जिह्वासे रसको चख =, कायासे द्रव्यको छू =, मनसे धर्मको जान = मन-इन्द्रियका संवर कर’ ।

१ देखो पृष्ठ १५८ ।

“ब्राह्मण ! जब भिक्षु इन्द्रियोंमें गुप्तद्वार हो लेता है; तब उसे तत्प्राप्त भाग्यका विनय देते हैं—‘आ, भिक्षु ! तू भोजनमें मात्रा (= परिमाण) का स्वाल रखनेवाला बन, ० <sup>१</sup> सुखपूर्वक विहार होवेगा ।’

“ब्राह्मण ! जब भिक्षु भोजनमें मात्राश हो लेता है; तब उसे तत्प्राप्त भाग्यका विनय देते हैं—‘आ, भिक्षु ! तू जागरणमें तत्पर हो ० <sup>२</sup> अन्तिम धाममें बैठकर टहलने बैठने या ( अन्य ) आचरणोप धर्मोंसे चित्तको मुक्त कर’ ।

“ब्राह्मण ! जब भिक्षु जागरणमें तत्पर हो लेता है; तब उसे तत्प्राप्त भाग्यका विनय देते हैं—‘आ, भिक्षु ! तू स्मृति <sup>३</sup> संप्रजन्म’ से संयुक्त हो; जाने-जानेमें ० <sup>४</sup> धोलने, सुप रहनेमें संप्रज्ञानकारी हो’ ।

“०—‘आ, भिक्षु ! तू एकान्तमें—० <sup>५</sup> वासकर ० । विचिकित्तासे चित्तको मुक्त करता है । वह इन पाँच नीवरणोंको चित्तसे हटा ० <sup>६</sup> चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है ।

“ब्राह्मण ! जो भिक्षु दौष्ट्य (= जिन्हें अभी सीखना बाकी है, जो अभी निर्वाणको नहीं प्राप्त हुये), मतकी ( शुद्ध-जवत्वा ) को न-प्राप्त हैं, जो अनुपम योग-क्षेम (= निर्वाण) की इच्छासे विहर रहे हैं, उनके लिये मेरी खोज इस प्रकार होती है; और जो भिक्षु अर्हत् श्रीणाभव (= चित्त-मल-विमुक्त), ( ब्रह्मचर्य- ) वास-परा कर चुके, कृत-कृत्य, भार-मुक्त, तद्-अर्थ (= निर्वाण)-प्राप्त, मन्त्र-बंधन-विहीन, ठीकसे-ज्ञानकर-मुक्त हैं; उनके लिये यह बातें ( धर्म ) इसी शरीरमें सुख पूर्वक विहारके लिये, तथा स्मृति-संप्रजन्म (= होश-चेत) के लिये हैं ।”

ऐसी कहनेपर गणक भोगलान ब्राह्मणने भगवान्से यह कहा—

“जो आप गौतमके श्रावक (= शिष्य) आप गौतमके इस प्रकार अववाद = अनुशासन (= उपदेश) करनेपर सभी अत्यन्त-निष्ठावाले निर्वाणको आराधन करते हैं, या कोई कोई नहीं आराधन करते ?”

“ब्राह्मण ! मेरे कोई कोई श्रावक, ० अनुशासन करने पर अत्यन्त निष्ठावाले निर्वाणको आराधन करते हैं, कोई कोई नहीं भी आराधन करते ।”

“तो गौतम ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जो निर्वाणके रहते, निर्वाण-गामी प्रतिपदा (= मार्ग) के रहते, आप गौतम ( जैसे ) ( भार्ग- ) देष्टा रहते भी, कोई कोई आप गौतमके श्रावक ० अनुशासन करने पर भी, ० निर्वाणको आराधन करते हैं, और कोई कोई नहीं आराधन करते ?”

“तो, ब्राह्मण ! तुम ही पूछता हूँ; जैसा तुम्हें दीक मालूम हो, वैसे इसका उत्तर दो । तो क्या मानते हो, ब्राह्मण ! राजगृहको जानेवाले मार्गसे तुम सुपरिचित हो न ?”

“हाँ, भो ! मैं राजगृह-गामी मार्गसे सुपरिचित हूँ ।”

“तो क्या मानते हो, ब्राह्मण ! यहाँ कोई राजगृह जाने वाला पुरुष आवे; और तुम्हारे पास आकर यह कहे—‘भन्ते ! मैं राजगृह जाना चाहता हूँ, सो मुझे राजगृहका मार्ग बतलाइये ।’ तब उसे तुम यह बतलाओ—‘हे पुरुष ! यह मार्ग राजगृहको जाता है, इससे थोड़ा जाओ । इससे थोड़ा जाकर बहुत नामवाला गाँव देखोगे । वहाँसे थोड़ा ( आगे ) जाओ;...थोड़ा जाकर, बहुत नामवाला गाँव देखोगे । वहाँसे थोड़ा ( आगे ) जाओ;...थोड़ा जाकर, राजगृहके आराम-सौन्दर्य, वन-सौन्दर्य, भूमि-सौन्दर्य, पुष्करिणी-सौन्दर्यको देखोगे’ । वह तुम्हारे ऐसा कहने, ऐसा उपदेशने पर

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ १५८ ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ ५३ ।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ १५ ।



कुशास्ता पकड़ पीछेकी ओर चला जाये । फिर दूसरा राजगृह जानेवाला पुरुष आवे; और तुम्हारे पास आकर यह कहे—“भन्ते ! ०” । ०—“हे पुरुष ! ० पुष्करिणी सौंदर्यको देखोगे” । वह तुम्हारे ऐसा कहने ० पर स्थिति पूर्वक राजगृह चला जाये । ब्राह्मण ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जो राजगृहके रहते, राजगृह-गामी मार्गके रहते, तुम ( जैसे ) ( मार्ग- ) देहाके रहते, तुम्हारे द्वारा इस प्रकार उपदेशित = अनुशासित होनेपर भी एक पुरुष कुशास्ता पकड़ पीछेकी ओर चला जाता है; और दूसरा स्थिति पूर्वक राजगृह पहुँच जाता है ?”

“भो गौतम ! यहाँ मैं क्या करूँ ? भो गौतम ! मैं तो मार्ग चलानेवाला (= मार्ग-ज्वायी ) हूँ ।”

“ऐसे ही, ब्राह्मण ! निर्वाणके रहते, निर्वाणगामिनी प्रतिपदाके मेरे ( जैसे ) ( मार्ग- ) देहाके रहते भी, कोई कोई मेरे श्रावक ० अनुशासन करने पर भी, ० निर्वाणको आराधन करते हैं, और कोई कोई नहीं आराधन करते । ब्राह्मण ! यहाँ मैं क्या करूँ ? ब्राह्मण ! तथागत तो मार्ग चलानेवाले हैं ।”

ऐसा कहनेपर गणक भोगलान ब्राह्मणने भगवान्से यह कहा—

“भो गौतम ! जो पुद्गल (= पुरुष ) कि हैं—अज्ज्ञातु, संशयात्मा (= विचिकित्स ), अद्वापूर्वक-धरसे-बेधर हो-न-प्रमजित, शठ = मायावी, कैटुभी (= बाँगी ), उद्धत = उज्जल, चपल, सुखर, अर्सपत-भाषी, अर्सपत-इन्द्रिय, भोजनमें अ-मात्रा-ज्ञ, जागरणमें न-तत्पर, आमण्य (= मिथुके कर्त्तव्य )के-अनिच्छुक, शिक्षा (= मिथु-नियम )में-गौरव-रहित, बाहुलिक (= बटोर ) = साधलिक, भागनेमें पहिले होनेवाले, प्रविवेक (= एकान्त चिन्तन )में ज्ञा-कैङ्करे-देनेवाले, (= आलसी ), होनवीर्य (= अनुषोमी ), सुषित-स्मृति (= बे-होश ), अ-सम्प्रज्ञान (= स-चेत ), अ-समाहित = अन्त-चित्त, दुःप्रज्ञ, एव-मूक (= मेढ़ और गूँगे जैसे ); उनके साथ आप गौतम निवास नहीं करते । और जो कुल-पुत्र कि हैं—अद्वापूर्वक धरसे-बेधर हो-प्रमजित, अ-शठ=अ-मायावी, अ-कैटुभी, अन्-उद्धत=अन्-उज्जल, अ-चपल, अ-सुखर, संपत-भाषी, संपत-इन्द्रिय, भोजनमें-मात्रा-ज्ञ, जागरणमें-तत्पर, आमण्यके-इच्छुक, शिक्षामें-तीव्र-गौरव-पुक्त, न-बाहुलिक = न-साधलिक, भागनेमें—ज्ञा-कैङ्करे-देनेवाले, प्रविवेकमें-पहिले-होनेवाले, आरव्य-वीर्य (= उषोगी ), प्रहिताय्या ( समाहित ), उपस्मृत-स्मृति (= होशवाले ), सम्प्रज्ञान (= स-चेत ), समाहित-एकाग्रचित्त, ब्रह्मचानु, अन्-एव-मूक; उनके साथ आप गौतम निवास करते हैं ।

“जैसे, भो गौतम ! जितने मूल-गंध (= जड़ोंमें होने वाले सुगंधित द्रव्य ) हैं, कालानु-सारिक (= लव ) उनमें सर्वश्रेष्ठ है; जितने सार-गंध (= सारमें होनेवाले सुगंधित द्रव्य ) हैं, लोहित-चन्दन (= लाल चंदन ) उनमें सर्वश्रेष्ठ है; जितने पुष्प-गंध हैं, सर्पिका (= गुह्री ) उनमें सर्वश्रेष्ठ है; ऐसे ही आप गौतमका वाद (= मत ) आजकलके दूसरे वादोंमें सर्वश्रेष्ठ है ।

“आश्चर्य ! भो गौतम ! आश्चर्य ! भो गौतम ! जैसे अधिको सीधा करदे ०” आप गौतम आजते सुझे अंजलिबद्ध शरणागत, उपासक स्वीकार करें ।”

## १०८—गोपक-मोगलान-सुत्तन्त (३।१।८)

बुद्धके बाद मिश्रुओंका मार्ग देहा

ऐसा मैंने सुना—

एक समय—भगवान्‌के परिनिर्वाणके बोधेही समय बाद, आयुष्मान्‌ आनन्द राजगृहमें देणुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे ।

उस समय मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र, राजा प्रद्योतके भयसे नगरको सुरक्षित कर रहा था । तब आयुष्मान्‌ आनन्द पूर्वाह्न समय पहिन कर पाप-चीवरले राजगृहमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुये । तब आयुष्मान्‌ आनन्दको यह हुआ—राजगृहमें भिक्षाचारके लिये अभी बहुत सवेरा है, क्यों न मैं, जहाँ गोपक मोगलान (= औदुम्बरायन) ब्राह्मणकी खेती (= कर्मान्त) है, जहाँ गोपक मोगलान ब्राह्मण है, वहाँ चले । तब आयुष्मान्‌ आनन्द, जहाँ गोपक मोगलान ब्राह्मण ० था, वहाँ गये । गोपक मोगलान ब्राह्मणने दूरसे ही आयुष्मान्‌ आनन्दको आते देखा । तब आयुष्मान्‌ आनन्दसे यह बोला—

“आइये, आप आनन्द, स्वागत है, आप आनन्दका । चिरञ्जालके बाद आप आनन्दका यहाँ आना हुआ । आप आनन्द बैठिये, यह आसन बिछा है ।”

आयुष्मान्‌ आनन्द बिछे आसनपर बैठ गये । गोपक मोगलान ब्राह्मण भी एक नीचे आसनको लेकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे गोपक मोगलान ब्राह्मणने आयुष्मान्‌ आनन्द से यह कहा—

“ओ आनन्द ! क्या आप सबमें एक मिश्रु भी ( कोई ) ऐसा है, जो कि सारेके सारे, सब तरहसे सारे उन धर्मों (= गुणों) से युक्त हो, जिनसे संयुक्त कि आप गौतम ब्रह्म सम्यक्-संयुक्त थे ?”

“नहीं, ब्राह्मण ! हममें एक मिश्रु भी ऐसा ( नहीं ) है, जो कि सारेके सारे ० जिनसे संयुक्त कि वह भगवान्‌ ब्रह्म सम्यक्-संयुक्त थे । ब्राह्मण वह भगवान्‌ अनुत्पन्न मार्गके उपादक, न-जाने मार्गके जाननहार, अन्-आख्यात (= न कहे ) मार्गके आख्याता, मार्गज्ञ, मार्ग-विदु, मार्ग-कोविद थे । पीछेसे आये आजकलके आवक (= बुद्ध-शिष्य ) मार्ग-अनुगामी हो बिहर रहे हैं ।”

आयुष्मान्‌ आनन्द और गोपक मोगलान ब्राह्मणके बीच यह कथा चल रही थी, कि उसी समय मगध-महामान्य वस्सकार (= वर्षकार) ब्राह्मण राजगृहमें होते ( सैनिक तैयारीके ) कामों की देख बाल करते जो गोपक मोगलान ब्राह्मणका कर्मान्त (= स्वकार-वार ) था, जहाँ आयुष्मान्‌ आनन्द थे, वहाँ गया, जाकर आयुष्मान्‌ आनन्दके साथ “संमोदन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे ० वर्षकार ब्राह्मणने आयुष्मान्‌ आनन्दसे यह कहा—



“भो आनन्द ! किस बातको करते आप लोग बैठे थे, आप दोनोंमें क्या बात चल रही थी ?”

“ब्राह्मण ! अभी सुझेसे गोपक मोगलान ब्राह्मण पृथु रहा था—‘भो आनन्द ! क्या एक भिक्षु भी ० संवत्सरे ०’ ऐसा पूछने पर, ब्राह्मण ! मैंने गोपक मोगलान ब्राह्मणसे यह कहा—‘नहीं, ब्राह्मण ! ० आजकलके आपक धर्म-अनुगामी हो विहर रहे हैं’ । ब्राह्मण ! गोपक मोगलान ब्राह्मणके साथ हमारी यह कथा चल रही थी, कि तुम पहुँचे ।”

“भो आनन्द ! क्या आप सबमें एक भिक्षुको भी उन आप गौतमने ( यह कह ) स्थापित किया है—‘मेरे बाद यह तुम्हारा प्रतिशरण (= सात्वदाता ) होगा’ जिसका कि इस समय आप लोग अनुसरण करते हैं ?”

“नहीं, ब्राह्मण ! उन जाननेवाले, देखनेवाले, भगवान् अर्हत् सम्मत्-संवत्सरे एक भिक्षुको भी नहीं स्थापित किया—‘मेरे बाद यह तुम्हारा प्रतिशरण होगा, जिसका कि इस समय हम अनुसरण कर रहे हैं’ ।”

“भो आनन्द ! क्या आपमें एक भिक्षु भी ऐसा है, जो संवत्सरे सम्मत हो, बहुतसे स्वविर भिक्षुओं द्वारा ( यह वह कर ) स्थापित किया गया हो—‘भगवान् के बाद यह हमारा प्रतिशरण होगा’ ; जिसका कि इस समय आप लोग अनुसरण करते हैं ?”

“नहीं, ब्राह्मण ! एक भिक्षु भी ऐसा ( नहीं ) है, जो संवत्सरे ० जिसका कि इस समय हम अनुसरण कर रहे हैं ।”

“भो आनन्द ! इस प्रकार प्रतिशरण-रहित होने पर एकता (= सामप्रतिशरण) क्या हेतु है ?”

“ब्राह्मण ! हम प्रतिशरण-रहित नहीं हैं, ब्राह्मण ! हम धर्म-प्रतिशरण (= धर्म है शरण जिनका ) हैं ।”

“भो आनन्द !—‘आप सबमें एक भिक्षुको भी उन आप गौतमने स्थापित किया है ०’ —पूछनेपर—‘नहीं, ब्राह्मण ! ०’ ।—कहते हो । ‘भो आनन्द !—‘० एक भिक्षु भी ० संवत्सरे सम्मत ०’ —पूछने पर—‘नहीं, ब्राह्मण ! ०’ ।—कहते हो । ‘भो आनन्द ! ० प्रतिशरण-रहित ०’ —पूछने पर—‘० हम धर्म-प्रतिशरण हैं’ —कहते हो । भो आनन्द ! आपके इस कथनका अर्थ कैसे समझना चाहिये ?”

“ब्राह्मण ! उन जाननेवाले ० भगवान् ० ने भिक्षुओंके शिक्षाप्रद (= नियम)को प्रज्ञापन किया है, प्रातिमोक्ष कथित किया है । सो प्रत्येक उपोसथ (= अमावास्या, पूर्णिमा)को, हम जितने ( भिक्षु ) एक गाँव-लेठके पास विहरते हैं, वह सब एक जगह एकत्रित होते हैं, एकत्रित हो—‘उस ( प्रातिमोक्ष )को अध्ययन (= पाठ) करते हैं’ । उसके पाठ करते समय यदि किसी भिक्षुसे कोई आपत्ति (= पाप)-व्यातिक्रम (= क्रूर) हुआ रहता है, तो उसका ( प्रतीकार ) धर्मके अनुसार, सामित (= उपदेश)के अनुसार कराते हैं । हम नहीं कराते, धर्म ( प्रतीकार ) कराता है ।”

“भो आनन्द ! क्या इस समय एक भिक्षु भी आप सबने ऐसा है, जिसका आप सब सत्कार = गुरुकार, आनन = पूजन करते हैं । सत्कार = गुरुकार करके उसके समीप विहार करते हैं ?”

“है, ब्राह्मण ! ऐसा एक भिक्षु, जिसका हम सत्कार ० करके उसके समीप विहार करते हैं ।”

“भो, आनन्द !—‘आप सबमें एक भिक्षुको भी ०’ हम धर्म-प्रतिशरण हैं’—कहते ही ।  
—‘भो आनन्द ! क्या ० एक भिक्षु भी ० ऐसा है, जिसका आप सब सत्कार ० करके, उसके समीप विहार करते हैं ?—पूछने पर—है ० ऐसा एक भिक्षु ०,—कहते हैं । भो आनन्द ! आपके इस कथनका अर्थ कैसे समझना चाहिये ?”

“ब्राह्मण उन ० भगवान् बहूत सम्यक्-सम्बुद्धने दस प्रसादनीय (= श्रद्धा उत्पादन करनेवाले ) धर्म कहे हैं; जिसमें वह धर्म होते हैं, उसका हम सत्कार = गुरुकार, मानन = पूजन करते हैं । सत्कार = गुरुकार करके, उसके समीप विहार करते हैं । कौनसे दस ?—

( १ ) “यहाँ, ब्राह्मण ! भिक्षु शीलवान्, प्रातिमोक्ष-संचर (= भिक्षु-निषमरूपी संव्यम ) से संवृत (= संयत ) होता है, आचार-गोचर (= सदाचार ) से सम्पन्न हो ०” शिक्षापदोंको ग्रहण कर अभ्यास करता है ।

( २ ) “( जो भिक्षु ) बहुश्रुत, श्रुतधर (= पदोंको धारण करने वाला ), श्रुत-संचयी होता है । जो वह धर्म आदिकल्याण, भय-कल्याण, पर्यवसान (= अन्त्य )-कल्याण है, सार्थक = सव्यजन है, ( और जो ) केवल, परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्यको प्रगांठा करते हैं; वैसे धर्म (= उपदेश ) उसने बहुत सुने होते हैं; धारण किये ( होते हैं ), वचनसे परिचित, मनसे समीक्षित, और दृष्टि (= दर्शन, = दिलको आँख ) से सुप्रतिबिम्ब (= सुविदित ) होते हैं ।

( ३ ) “( जो भिक्षु ), वस्त्र, भोजन, शयन-आसन और रोगोंके पथ्य-औषधमें ( धोड़ेसे ) सन्तुष्ट रहनेवाला होता है ।

( ४ ) “आभिषेकसिक (= चित्त-सम्बन्धी ) इसी शरीरमें सुख-पूर्वक विहार करनेके उप-योगी योग, ध्यानोंका पूर्णतया लामी, अ-कृच्छ्र-लामी = बिना कठिनाईके-प्राप्त करनेवाला होता है ।

( ५ ) “अनेक प्रकारको कदियोंको अनुभव करता है—एक होकर ० अनेक हो जाता है, आविर्भाव ०” ( इसी ) कायासे प्रलोक-पर्यन्त ( सब ) को अपने वशमें करनेवाला होता है ।

( ६ ) “अमानुष विशुद्ध दिव्य श्रोत्र इन्द्रिय (= घातु ) से उभय प्रकारके शब्दोंको सुनता है—दिश्य ( शब्दों ) को भी, और मानुष ( शब्दों ) को भी, दूरवालेकी भी और समीपवाले ( शब्द ) को भी ।

( ७ ) “दूसरे सत्त्वों, दूसरे पुद्गलों (= व्यक्तियों ) के चित्तोंको अपने चित्तसे देखकर जान लेता है—०” अ-विमुक्त चित्तके होने पर ‘अ-विमुक्त चित्त है’—जानता है ।

( ८ ) “अनेक प्रकारके पूर्व-निवासों (= पूर्व जन्मों ) को जानता है, जैसे कि एक जन्मकी भी ०” ।

( ९ ) “अमानुष विशुद्ध दिव्य चक्षुसे अच्छे दूरे, सुवर्ण दुर्बर्ण ०” प्राणियोंको पहि-चानता है ।

( १० ) “( जो भिक्षु ) आश्रयोंके क्षयसे जो आश्रय रहित चित्तकी विमुक्ति है, प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति (= मुक्ति ) है, उसे इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर, विहार करता है ।

“ब्राह्मण ! उन ० भगवान् ० यह दस प्रसादनीय धर्म कहे हैं ०” उसके समीप हम विहार करते हैं ।”

ऐसा कहने पर ० वर्षकार ब्राह्मणने उपनन्द सेनापतिको सम्बोधित किया—

१ पृष्ठ ४५६ के सारे पैरेकी आधुति । २ देखो पृष्ठ २९ । ३ देखो पृष्ठ १५ ।

४ देखो पृष्ठ १५ ।

५ देखो ऊपर ।



“तो क्या मानते हो, सेनापति ! ऐसा होनेपर वह आप लोग सत्करणीयहीका सत्कार कर रहे हैं, गुणकरणीयहीका गुणकार कर रहे हैं, मानवीय ०, पूजनीयहीकी पूजा कर रहे हैं न ?”

“अरु, यह आप लोग ० पूजनीयहीकी पूजा कर रहे हैं, ऐसे ( पुरुष ) का यदि यह आप लोग सत्कार न करें ० पूजा न करें; तो कैसेका सत्कार ० पूजा करेंगे, ( किसका ) सत्कार ० पूजा करके उसके समीप ( = सहारे ) विहार करेंगे ?”

तब भगवन्-महामात्य ( = भगवत्का महामन्त्री ) ने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—

“कहाँ आप आनन्द इस समय विहार करते ( = रहते ) हैं ?”

“वेणुवनमें, ब्राह्मण ! इस समय मैं रहता हूँ ।”

“ओ आनन्द ! वेणुवन रमणीय, अल्प-शान्द = अल्प-निर्घोष, विज्ञान-वस्तु ( = आदृशियोंकी सीढ़ीसे रहित ), अनुपमसे एकान्त, ध्यानके लायक तो है न ?”

“हाँ, ब्राह्मण ! वेणुवन ० ध्यानके लायक है, क्योंकि तुम्हारे जैसे रक्षक = गोपक जो हैं ।”

“अच्छा तो ओ आनन्द ! वेणुवन ० ध्यानके लायक है, जहाँ कि आप लोगों जैसे ध्यायी = ध्यान-शीली ( रहते हैं ) । आप लोग ध्यायी = ध्यानशीली हैं । एक समय, ओ आनन्द ! वह आप गौतम वैशालीमें महावनकी कूटागार-शालामें विहार करते थे । तब, ओ आनन्द ! मैं जहाँ महावनमें कूटागार-शाला थी, जहाँ आप गौतम थे, वहाँ गया । जहाँ आप गौतम अनेक प्रकारसे ध्यानकी बात कर रहे थे । वह आप गौतम ध्यायी थे, ध्यान-शीली थे । वह आप गौतम इस सबको वर्णित ( = प्रशंसित ) कर रहे थे ।”

“ब्राह्मण ! वह भगवान् सभी ध्यानकी प्रशंसा न करते थे ।”

“किस प्रकारके ध्यानकी वह आप गौतम प्रशंसा न करते थे ?”

“ब्राह्मण ! यहाँ कोई ( पुरुष ) काम-राग ( = विषय-कामना ) से पर्युत्थित ( = व्यास ) = काम-राग-परेत चित्तसे विहरता है, ( वह ) उत्पन्न काम-रागके निस्तरण ( = निवृत्ति ) को नहीं जानता । वह काम-राग ( = विषय-कामना ) को ही बीचमें करके ध्यान = अ-ध्यान = नि-ध्यान = अप-ध्यान करता है । व्यापाद् ( = द्वेष ) से पर्युत्थित ० । स्तत्यान-मुद्ध ( = शारीरिक मानसिक आलस्य ) से पर्युत्थित ० । औदत्य-कौकृत्य ( = उदत्तपत्रा, हिचकिचाहट ) से पर्युत्थित ० । चिन्चिक्त्स्वा ( = संसर्ग ) से पर्युत्थित ० । ब्राह्मण ! वह भगवान् इस प्रकारके ध्यानकी प्रशंसा न करते थे ।

“ब्राह्मण ! किस प्रकारके ध्यानकी वह भगवान् प्रशंसा करते थे ?—ब्राह्मण ! यहाँ भिक्षु कामोंसे विरहित ० । प्रथम ध्यानकी प्राप्ति हो विहरता है । चित्त और विचारके शान्त होने पर ० । द्वितीय ध्यानकी प्राप्ति हो विहरता है । प्रीतिसे विरक्त हो ० । तृतीय ध्यानकी प्राप्ति हो विहरता है । सुख और दुःखके परित्यागसे ० चतुर्थ ध्यानकी प्राप्ति हो विहरता है । ब्राह्मण ! वह भगवान् इस प्रकारके ध्यानकी प्रशंसा करते थे ।”

“ओ आनन्द ! वह आप गौतम निन्दवीय ध्यानकी निन्दा करते थे, प्रशंसनीयकी प्रशंसा करते थे । हन्त, अब, ओ आनन्द ! हम जायेंगे, हम बहु-कृत्य = बहुकरणीय हैं ।”

“ब्राह्मण ! जिसका इस समय तुम काल समझते हो ( बैठा करो ) ।”

तब भगवन्-महामात्य स्वर्णकार ब्राह्मण आयुष्मान् आनन्दके भाषणकी अभिरुचि = अनुमोदितकर, आसनसे उठकर चला गया ।

तब मगध-महामारय ० के चले जानेके थोड़ीही देर बाद गोपक सोमलाल ब्राह्मणने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—

“जो हमने आप आनन्दसे पूछा था, वह हमें आप आनन्दने नहीं बतलाया ?”

“ब्राह्मण ! हमने कहा न—‘वहीं, ब्राह्मण ! हममें एक भिक्षु भी ऐसा नहीं है ०’ आज-कलके आवक मार्ग-अनुगामी हो विहर रहे हैं ।”



## १०६-महा-पुराण-सुचन्त (३।१।६)

स्कंध । आत्मवाद-खंडन

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तोमें, मृगारमाताके प्रासाद पूर्वोरामने विहार करते थे ।

उस समय भगवान् उस दिनके उपोसथकी पंचदशी = पूर्णिमाकी रातको भिक्षुसंघसे घिरे खुली जगहमें बैठे थे । तब एक भिक्षु आसनसे उठ उत्तरासंगकी एक कंधेपर रख, भगवान्की ओर हाथ जोड़े भगवान्से यह बोला—

“भन्ते ! भगवान्से कुछ बात पूछूँ, यदि भगवान् प्रश्नके उत्तर देनेकी आज्ञा करते हैं ?”

“तो, भिक्षु ! अपने आसनपर बैठकर, जो चाहता है, पूछ ।”

तब यह भिक्षु अपने आसनपर बैठकर भगवान्से यह बोला—

“भन्ते ! यह हैं न पाँच उपादान-स्कंध, जैसे कि—( १ ) रूप-उपादान-स्कंध, ( २ ) वेदना ०, ( ३ ) संज्ञा ०, ( ४ ) संस्कार ०, ( ५ ) विज्ञान ० ?”

“( हाँ, ) भिक्षु ! यह पाँच उपादान-स्कंध हैं, जैसे कि—( १ ) रूप ०, ( ५ ) विज्ञान ० ।”

“साधु, भन्ते !” ( कह ) उस भिक्षुने भगवान्के भाषणको अभिनंदित = अनुमोदित कर, भगवान्से आगेका प्रश्न पूछा—

“भन्ते ! यह पाँच उपादान-स्कंध किमूलक ( = क्या जलवाले ) हैं ?”

“भिक्षु ! यह पाँच उपादान-स्कंध छन्द ( = राग ) मूलक हैं ।”

“भन्ते ! उपादान और पाँच उपादान-स्कंध एक ही हैं, या पाँच उपादान-स्कंधोंसे अलग उपादान है ?”

“भिक्षु ! उपादान और उपादान-स्कंध एक नहीं हैं, और न पाँच उपादान-स्कंधोंसे अलग उपादान है । भिक्षु ! पाँच उपादान-स्कंधोंमें जो छन्द = राग है, वही वहाँ उपादान है ।”

“क्या, भन्ते ! पाँच उपादान-स्कंधोंमें छन्द = रागका वैमल्य ( = वैमल्यता = मिश्रमत होना ) हो सकती है ?”

भगवान्ने कहा—“हो सकती है, भिक्षु ! यहाँ—‘किसी ( पुरुष )को ऐसा होता है— भविष्यकालमें मैं इस रूपवाला होऊँ । ० इस वेदनावाला ० । ० इस संज्ञावाला ० । ० इस संस्कारवाला ० । ० इस विज्ञानवाला होऊँ । भिक्षु ! इस प्रकार पाँच उपादान-स्कंधोंमें छन्द = रागकी वैमल्यता हो सकती है ।”

“भन्ते ! कितने तथका—‘स्कंध नाम है ?”

“भिक्षु ! जो कोई भूत-भविष्य-वर्तमानका, शरीरके भीतर ( = आध्यात्मिक ) या बाहरका,

स्थूल या सूक्ष्म, हीन या प्रणीत (= उत्तम ) दूरस्थ या समीपस्थ रूप (= पृथिवी+जल+तेज+वायु) है, यह रूप-संकेत है। जो कोई ० वेदना ० । ० संज्ञा ० । ० संस्कार ० । जो कोई भूत-भविष्य-वर्तमानका, ( शरीरके ) भीतर या बाहरका, स्थूल या सूक्ष्म, हीन या प्रणीत, दूरस्थ या समीपस्थ विज्ञान है, वा विज्ञान-संकेत है। मिथु ! इतनेका नाम संकेत है ।"

"भन्ते ! रूप-संकेतके प्रज्ञापन (= जतलाने )में क्या हेतु = प्रत्यय है ? = वेदना-संकेत ० ? ० संज्ञा-संकेत ० ? ० संस्कार संकेत ० । विज्ञान संकेतके प्रज्ञापनमें क्या-हेतु = प्रत्यय है ?"

"मिथु ! चार महाभूत (= पृथिवी, जल, तेज, वायु) हेतु हैं, रूपके प्रज्ञानमें, चार महाभूतोंके कारण (= प्रत्यय) रूप-संकेतका प्रज्ञापन होता है। स्पर्श (= इन्द्रिय-विषयका संयोग) हेतु = प्रत्यय है, वेदना-संकेतके प्रज्ञापनके लिये। स्पर्श हेतु ० है, संज्ञा संकेत ० । ० संस्कारके प्रज्ञापनके लिये। मिथु ! नाम-रूप हेतु = प्रत्यय हैं, विज्ञान-संकेतके प्रज्ञापनके लिये ।"

"भन्ते ! सत्काय-दृष्टि (= नित्य आत्माकी धारणा) होती है ?"

"मिथु ! आर्योंके दर्शनसे संक्षिप्त ०" अज्ञ, अनायी ( जन ) रूपको आत्माके तौरपर, वा आत्माको रूपवान्, अथवा रूपमें आत्माको, वा आत्मामें रूपको समझता है। वेदनाको ० । संज्ञाको ० । संस्कारको ० । विज्ञानको आत्माके तौरपर, वा आत्माको विज्ञानवान्, अथवा विज्ञानमें आत्माको, वा आत्मामें विज्ञानको समझता है। मिथु ! इस प्रकार सत्काय-दृष्टि होती है ।"

"भन्ते ! किस प्रकार सत्काय-दृष्टि नहीं होती ?"

"मिथु ! आर्योंके दर्शनको प्राप्त ०" बहुभुत आर्य श्रावक न रूपको आत्माके तौरपर, न आत्माको रूपवान्, न रूपमें आत्माको, न आत्मामें रूपको समझता है । ० वेदना ० । ० संज्ञा ० । ० संस्कार ० । ० विज्ञान ० । मिथु ! इस प्रकार सत्काय-दृष्टि नहीं होती ।"

"भन्ते ! रूपका क्या आस्वाद (= स्वाद) है, क्या आदिनय (= दुष्परिणाम) है, क्या निस्सरण (= निकालका रालता) है ? वेदना ० ? संज्ञा ० ? संस्कार ० ? विज्ञान ० ?"

"मिथु ! जो रूपको लेकर सुख = सौमनस्य उत्पन्न होता है, वह रूपका आस्वाद है। जो कि रूप अनित्य, दुःख, विपरिणाम-धर्मा (= विकारी, परिवर्तन शील) है, वह रूपका दुष्परिणाम है। जो रूपमें छन्द = रागका हटाना, छन्द = रागका प्रहाण है, वह रूपका निस्सरण है। मिथु ! जो वेदनाको ले कर ० । ० संज्ञाको लेकर ० । ० संस्कारको ले कर ० । ० विज्ञान-को ले कर ० ।"

"भन्ते ! कैसे जानते-समझते इस स-विज्ञानक (= चेतना-युक्त) कायामें, वा बाहरी ( दुनियामें ) सभी निमित्तों (= लिंग आकार आदि )में अहंकार-ममकारको अभिमान और अनु-धाय (= संस्कार) नहीं होते ?"

"मिथु ! जो कोई भूत-भविष्य-वर्तमानका, शरीरके भीतर या बाहरका, स्थूल या सूक्ष्म, हीन या प्रणीत, दूरस्थ या समीपस्थ रूप है; ( वह ) सब रूप—'न यह मेरा है', 'न वह मैं हूँ', और 'न यह मेरा आत्मा है'—इस प्रकार इसे ठीकसे यथार्थ-प्रज्ञासे देखता है। जो कोई ० वेदना ० । ० संज्ञा ० । ० संस्कार ० । ० विज्ञान ० । मिथु ! इस प्रकार जानते-समझते ० अहंकार-ममकारके अभिमान और अनुधाय नहीं होते ।"

तब एक मिथुके मनमें ऐसा चित्तक उत्पन्न हुआ—'इस प्रकार, भो ! रूप अनारम्भा



( = आत्मा नहीं ) है, वेदना अनात्मा, संज्ञा अनात्मा, संस्कार अनात्मा, विज्ञान अनात्मा ( = अनित्य ) है । अनात्माके किये कर्म किस आत्मामें संयुक्त होंगे ?

तब भगवान् ने उस मिश्रुके चित्तके वितर्कको अपने मनसे जानकर मिश्रुओंको संबोधित किया—

“मिश्रुओ ! इसकी संभावना ( = उभाव ) है, कि कोई अविद्याग्रस्त, अविद्वान् मोघ-पुरुष ( फल का आदमी ) कृष्णापस्वश-चित्तसे आत्मा ( = गुरु ) के शासन ( = उपदेश ) को अतिक्रमण करना चाहे—‘इस प्रकार भो, रूप अनात्मा है ० अनात्माके किये कर्म किस आत्मामें संयुक्त होंगे ?’ मिश्रुओ ! कारणके साथ मैंने तहाँ तहाँ उन उन धर्मोंमें तुम्हें प्राप्त कराया है । तो क्या मानते हो, मिश्रुओ ! रूप नित्य है वा अनित्य ?”

“अनित्य है, मन्ते !”

“जो अनित्य है, वह दुःख ( -रूप ) है, वा सुख ( -रूप ) ?”

“दुःख है मन्ते !”

“जो अनित्य, दुःख, विपरिणाम-धर्मों ( = परिवर्तनशील ) है, क्या उसको ऐसा समझना ठीक है—‘वह ( अनित्य वस्तु ) मेरा है’, ‘वह मैं हूँ’, ‘वह मेरा आत्मा है’ ?”

“नहीं, मन्ते !”

“तो क्या मानते हो, मिश्रुओ ! वेदना नित्य है वा अनित्य ?

“० संज्ञा । ० संस्कार ० ।”

तो क्या मानते हो, मिश्रुओ ! विज्ञान नित्य है, वा अनित्य ?”

“अनित्य है, मन्ते !”

“जो अनित्य है, वह दुःख है, वा सुख ?”

“दुःख है, मन्ते !”

“जो, अनित्य, दुःख, विपरिणाम-धर्मों है, क्या उसको ऐसा समझना ठीक है—‘वह मेरा है’, ‘वह मैं हूँ’, ‘वह मेरा आत्मा है’ ?”

“नहीं, मन्ते !”

“इसलिये मिश्रुओ ! जो कोई भूत-भविष्य-वर्तमानका ० रूप है; ( वह ) सब रूप—‘न वह मेरा है’ ०<sup>१</sup> सब विज्ञान—‘न वह मेरा है’ ० । इस प्रकार इसे ठीकसे, यथार्थ प्रज्ञा द्वारा समझना चाहिये ।

“मिश्रुओ ! इस प्रकार समझते बहुभूत आर्यभावक रूपसे निर्वेद ( = उदासी ) को प्राप्त होता है, वेदनासे ०, संज्ञा से ० । संस्कारसे ० । विज्ञानसे ० । निर्वेदको प्राप्त हो विरक्त होता है, विरागके कारण विमुक्त होता है । विमुक्त होनेपर ‘मैं विमुक्त हूँ’—यह ज्ञान होता है, ( जन्म ) ( = आवागमन ) क्षीण होगया, अज्ञचर्यवास ( पूरा ) हो चुका, करना वा सो किया जा चुका, और कुछ यहाँ करनेको ( शेष ) नहीं है—जानता है ।”

भगवान् ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन मिश्रुओंमें भगवान् के भाषणको अभिनन्दित किया ।

उस उपदेशके कहे जाते समय साथ मिश्रुओंका चित्त आसक्तों ( = चित्तमग्न ) से उपादान रहित हो छूट ( = विमुक्त हो ) गया ।

## ११०-चूल-पुण्यम-सुत्तन्त (१।१।१०)

सत्पुरुष और अ-सत्पुरुष

पेसा मैने सुना—

एक समय भगवान् आधस्तीमें मृगारमाताके प्रासाद पूर्वाश्रममें विहार करते थे ।

उस समय भगवान् उस दिनके उपोसथकी<sup>१</sup> पंचदशी = पूर्णिमाकी रातको मिथुसंघसे घिरे, सुली जगहमें बैठे थे । तब भगवान्ने पुषचाप ( बैठे ) मिथु-संघकी देखकर, मिथुओंको संबोधित किया—

“मिथुओ ! क्या अ-सत्पुरुष अ-सत्पुरुषको जान सकता है—‘यह आप अ-सत्पुरुष हैं—?’”

“नहीं, भन्ते !”

“साधु, मिथुओ ! इसकी गुंजाहूश ( = अवकाश ) नहीं, कि अ-सत्पुरुष अ-सत्पुरुषको जान सके—‘यह ०’ । मिथुओ ! क्या अ-सत्पुरुष सत्पुरुषको जान सकता है—‘यह आप सत्पुरुष हैं’ ?”

“नहीं, भन्ते !”

“साधु, मिथुओ ! इसकी गुंजाहूश नहीं ० । मिथुओ ! अ-सत्पुरुष अ-सत्पुरुषसे युक्त है । अ-सत्पुरुषों का भक्त, अ-सत्पुरुष-चिन्ती, अ-सत्पुरुष-भन्ती, अ-सत्पुरुष-भाषी, अ-सत्पुरुष-कर्मान्त (= ० कामवाला ), अ-सत्पुरुष-दृष्टि होता है, अ-सत्पुरुषोंको दान देनेवाला होता है । कैसे ० अ-सत्पुरुषसे युक्त होता है ?—मिथुओ ! पहाँ अ-सत्पुरुष अ-अदालत, निर्लज्ज, संकोच रहित, अवय-कुत (= सख्त ), कुसीदी (= जालसी ), सुषित-नमृति (= बेहोश ), दुःप्रज्ञ होता है । मिथुओ ! इस प्रकार अ-सत्पुरुष अ-सत्पुरुषसे युक्त होता है ।

“कैसे, मिथुओ ! अ-सत्पुरुष अ-सत्पुरुषोंका भक्त होता है ?—मिथुओ ! अ-सत्पुरुषके मित्र = सहाय होते हैं, वह अमण-मायाण, जो कि अ-अदालत ० दुःप्रज्ञ होते हैं ।

“कैसे मिथुओ ! ० अ-सत्पुरुष-चिन्ती होता है ?—मिथुओ ! अ-सत्पुरुष आत्म-पीडाका भी चिन्तन करता है, पर-पीडा ०, उभय-पीडाका भी चिन्तन करता है । इस प्रकार ० ।

“० अ-सत्पुरुष-भन्ती होता है ?—मिथुओ ! अ-सत्पुरुष आत्म-पीडाकी भी भन्तना करता है, ० पर-पीडा ०, उभय-पीडा ० ।

“कैसे ० अ-सत्पुरुष-वाची होता है ?—मिथुओ ! अ-सत्पुरुष मृगवादी (= झूठा ) होता, सुगुल्लोर, कटुभाषी, प्रलापी होता है । इस प्रकार ० ।

“कैसे ० अ-सत्पुरुष-कर्मान्त होता है ?—मिथुओ ! अ-सत्पुरुष हिंसक होता है, चोर, व्यभिचारी होता है । इस प्रकार ० ।

<sup>१</sup> मिथुसंघके गणवेशनके दिन ।



“कैसे ० अ-सत्पुरुष-दृष्टि होता है ?—भिक्षुओ ! अ-सत्पुरुष इस प्रकारकी दृष्टि (= धारणा) वाशा होता है—‘दान नहीं, यज्ञ नहीं’ ० । इस प्रकार ० ।

“कैसे ० अ-सत्पुरुष-दान देता है ?—भिक्षुओ ! अ-सत्पुरुष अ-सत्कार-पूर्वक दान देता है, अपने हाथसे दान नहीं देता, बेव्याल किये दान देता है, निकृष्ट ( द्रव्यका ) दान देता है, ( प्रति-फलके ) न-लौटकर आनेकी दृष्टिसे दान देता है । इस प्रकार ० ।

“भिक्षुओ ! वह अ-सत्पुरुष इस प्रकार अ-सदमर्मेसे युक्त हो ० । अ-सत्पुरुषोंको दान दे, काया छोड़ भरनेके बाद जो अ-सत्पुरुषोंकी गति होती है, उसमें उत्पन्न होता है । भिक्षुओ ! क्या है, अ-सत्पुरुषोंकी गति ? नरक और तिर्यक्- (= पशु- ) धोमि ।

“भिक्षुओ ! क्या सत्पुरुष सत्पुरुषको जानेगा—‘वह आप सत्पुरुष है’ ?”

“हाँ, मन्ते !”

“साधु, भिक्षुओ ! इसकी गुंजाइश है, कि सत्पुरुष सत्पुरुषको जाने—० । भिक्षुओ ! क्या सत्पुरुष अ-सत्पुरुषको जानेगा—‘वह आप अ-सत्पुरुष है’ ?”

“हाँ, मन्ते !”

“साधु, भिक्षुओ !” इसकी गुंजाइश है ० ।

“भिक्षुओ ! सत्पुरुष सदमर्मेसे युक्त होता है, सत्पुरुष-भक्त, सत्पुरुष-चिन्ती, सत्पुरुष-मंत्री, सत्पुरुष-वाची, सत्पुरुष-कर्मान्त, सत्पुरुष-दृष्टि होता है, सत्पुरुषोंको दान देगेवाला होता है ।

“भिक्षुओ ! कैसे सत्पुरुष सदमर्मेसे युक्त होता है ?—भिक्षुओ ! सत्पुरुष अद्वाल, संकोची, बहुभुत आरुण्यवीर्य (= बघोसी), उपस्थित-न्युति (= बाहोश), प्रशान्त होता है । इस प्रकार भिक्षुओ ! सत्पुरुष सदमर्मेसे युक्त होता है ।

“कैसे ० सत्पुरुष-भक्त ० ?—सत्पुरुषके मित्र = सहाय होते हैं, वह अमण-आश्रय, जो कि अद्वाल ० प्रशान्त होते हैं । इस प्रकार ० ।

“कैसे ० सत्पुरुष-चिन्ती ० ?—० न आत्म-पीडाका चिंतन करता है, न पर-पीडाका ०, न उभय पीडाका ० ।

“कैसे ० सत्पुरुष-मंत्री ० ?—० न आत्म-पीडाके लिये मंत्रणा करता है, न पर-पीडा ०, न उभय-पीडा ० ।

“कैसे ० सत्पुरुष-वाची ० ?—० झूठसे विरत होता है, चुगलीसे ०, कठोर वचनसे ०, धकवाइसे विरत होता है । इस प्रकार ० ।

“कैसे ० सत्पुरुष-कर्मान्त ० ?—० हिंसासे विरत होता है, चोरीसे ०, व्यभिचारसे विरत होता है । इस प्रकार ० ।

“कैसे ० सत्पुरुष-दृष्टि ० ?—० दान है, यज्ञ है ० । इस प्रकार ० ।

“कैसे ० सत्पुरुष-दान देता है ?—० सत्कार-पूर्वक दान देता है, अपने हाथसे देता है, व्याल करके देता है, परिशुद्ध ( वस्तुका ) दान देता है । ( फलके ) लौट कर आनेकी दृष्टिसे दान देता है । इस प्रकार ० ।

“भिक्षुओ ! सत्पुरुष इस प्रकार सदमर्मेसे युक्त हो । ० । सत्पुरुषोंको दान दे, काया छोड़

मरनेके बाद, जो सत्पुरुषोंकी गति होती है, उसमें उत्पन्न होता है। भिक्षुओ ! क्या है, सत्पुरुषों की गति ? देवतार्थोंका महत्त्व और मनुष्योंका महा महत्त्व ।”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्के भाषण को अभिमंदित्र किया ।

( ११—इति देवदत्त-वग्ग ३।१ )



## १११-अनुपद-सुत्तन्त (३।२।१)

सारिपुत्रके गुण, प्रज्ञा, समाधि आदि

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् धावस्तीमें अनाथ-पिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भदन्त !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! सारिपुत्त पंडित है, ० महाप्रज्ञ, ० नाना-प्रज्ञ, ० भास्वर-प्रज्ञ, ० जवन (= ० क्षिप्रगति )-प्रज्ञ, ० निष्क (= शुद्ध )-प्रज्ञ, ० निर्वैधिक (= यह तक पहुँचने की )-प्रज्ञ है । भिक्षुओ ! सारिपुत्त आध मास तक अनुपद-धम्म-विसेस (= अनुपद-धर्म-विशेष ) की विपर्ययनाको विपर्यय (= दिलकी आँखसे देखना ) करता है ।

“भिक्षुओ ! सारिपुत्तकी यह ‘अनुपद-धर्म-विशेषकी विपर्ययना है—भिक्षुओ ! उस कामोंसे विरहित ०<sup>१</sup> प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । प्रथम ध्यानमें जो धर्म हैं ( जैसे )—वितर्क<sup>२</sup> विचार<sup>३</sup> प्रीति (= हर्षका सारे शरीर और चित्तपर प्रभाव ) सुख, चित्तकी-एकाग्रता, स्पर्श (= इन्द्रिय-विषयका संपर्क ), वेदना (= स्पर्शके याद विषयके संबंधका जो सुख, दुःख आदि रूपमें अनुभव ), संज्ञा (= संज्ञानना, समझना ), चेतना (= चित्तन ), चित्त (= मन ), छन्द (= राग ), अधिमोक्ष (= झुकाव ), चोषं (= उद्योग ), स्मृति, उपेक्षा, मनसिकार (= मनमें करना )—वह धर्म इसके व्यवस्थित होते हैं; वह धर्म इसको विदित हो उत्पन्न होते हैं; विदित हो स्थित होते हैं, विदित ही अस्त होते हैं । वह ऐसा जानता है—इस प्रकार पहिले न हुये धर्म उत्पन्न होते हैं, होकर प्रवेदित (= अनुभवगम्य होते हैं ) । वह उन धर्मोंमें अन्-उपाय = अन्-अपाय, अन्-आलस्य, = अ-प्रतिषेध = विप्रमुक्त = विसंयुक्त अ-वद चित्तसे विहरता है । वह जानता है—( इससे ) आगे भी निरस्तरण (= निकलनेका मार्ग ) है; उसके ( अभ्यास ) बढ़ानेसे ‘है’—यह उसको ( निश्चय ) होता है ।

“और फिर भिक्षुओ ! सारिपुत्त, वितर्क और विचारके शान्त होनेपर ०<sup>४</sup> द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । द्वितीय ध्यानमें जो धर्म हैं ( जैसे ) आप्यात्मिक संप्रसाद (= विषयमें चित्तका अलेप होना ), प्रीति, सुख ०<sup>५</sup> मनसिकार; वह धर्म उसके व्यवस्थित होते हैं । ०<sup>६</sup> ।

“ ० प्रीतिसे वित्त हो ०<sup>७</sup> तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । तृतीय ध्यानमें जो

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ २५ ।

<sup>२</sup> चित्तकी समूचावस्था वितर्क है, सक्रमानवस्था विचार ।

<sup>३</sup> प्रथम ध्यान जैसा यहाँ भी ।

धर्म है, ( जैसे )—उपेक्षा, सुख, स्मृति, सम्प्रग्रन्थ, चित्त-प्रकाशता ० मनसिकार : वह धर्म उसके व्यवस्थित होते हैं ० ।

“ ० सुख और दुःखके परित्यागसे ० ” अनुर्य ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । अनुर्य-ध्यान में जो धर्म है, ( जैसे ) उपेक्षा, अनु-स्व-असुखा वेदना, पद्मी वेदना = संज्ञा, चेतना, चित्त, छन्द, अभिमोक्ष, वीर्य, स्मृति, उपेक्षा, मनसिकार—यह धर्म उसके व्यवस्थित होते हैं ० १ ।

“ ० रूप ( = Matter )-संज्ञाको सर्वथा छोड़ने से, प्रतिहिताकी संज्ञा ( = ब्यालों )के सर्वथा भूल हो जाने से, नानापनकी संज्ञाको भूलने से—‘आकाश अनन्त है’—इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है । आकाशानन्त्यायतनमें जो धर्म हैं, ( जैसे ) आकाशानन्त्यायतनकी संज्ञा, चित्तैकाग्रता, स्पर्श, वेदना, संज्ञा, चेतना, चित्त, छन्द, अभिमोक्ष, वीर्य, स्मृति, उपेक्षा, मनसिकार—यह धर्म उसके व्यवस्थित होते हैं ० २ ।

“ ० आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर ‘विज्ञान अनन्त है’—इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है । विज्ञानानन्त्यायतनमें जो धर्म हैं, ( जैसे ) विज्ञानानन्त्यायतन-संज्ञा, चित्तैकाग्रता, स्पर्श ० मनसिकार—यह धर्म उसके व्यवस्थित होते हैं ० ३ ।

“ ० विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर—कुछ नहीं ( = ‘नहीं किंचित्’ )—इस आकिंचन्य ( = न-कुछ-भी-पना )-आयतनको प्राप्त हो विहरता है । आकिंचन्यायतनमें जो धर्म हैं, ( जैसे ) आकिंचन्यायतन-संज्ञा, चित्तैकाग्रता, स्पर्श ० मनसिकार—यह धर्म उसके व्यवस्थित होते हैं ० ४ ।

आकिंचन्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर नैवसंज्ञा-नैवसंज्ञा-आयतनको प्राप्त हो विहरता है, वह उस समापत्ति ( = समाधि )से स्मृति ( = होश )के साथ उठता है, ० उठकर जो धर्म व्यतीत = निरुद्ध = विपरिणत हो गये हैं, उन धर्मोंको देखता है । इस प्रकारसे सुखे यह धर्म ( = चित्त-प्रवाहका एक रूप ) पहले न हुये धर्म उत्पन्न होते हैं, होकर प्रतिवेदित होते हैं ० ५ ।

“और फिर मिथुओ ! सारिपुत्र नैवसंज्ञानासंज्ञायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर, संज्ञा-वेदित-निरोध ( = जिस समाधिमें संज्ञा और वेदनाका अभाव होता है ) । ० प्रज्ञासे देखकर उसके आसन्न ( = चित्तप्रल ) क्षीण होते हैं । वह उस समापत्तिसे स्मृतिके साथ उठता है, ० उठ कर जो धर्म व्यतीत = निरुद्ध = विपरिणत होगये हैं, उन धर्मोंको देखता है—‘इस प्रकार सुखे यह धर्म पहले न हुये उत्पन्न होते हैं, होकर प्रतिवेदित ( = अनुभव-गम्य ) होते हैं ० ६ वह जानता है—( इससे ) आगे निस्सरण नहीं है; और उसके ( अन्वयको ) बढ़ानेसे ‘नहीं है’—यह उसको ( निश्चय ) होता है ।

“मिथुओ ! जिसको ठीकसे कहते हुये कहना होता है—‘आर्य-शोलमें वशित्व-प्राप्त ( = अधिकार-प्राप्त ) है, पारमि-प्राप्त ( = पारंगत ) है । आर्य-समाधिमें ०, आर्य-प्रज्ञामें, आर्य-विमुक्तिमें वशित्व प्राप्त, पारमि प्राप्त है; तो ठीक कहते हुये, उसे सारिपुत्रके लिये ही कहना होगा—आर्य-शोलमें वशित्व-प्राप्त ० ।

“मिथुओ ! जिसको ठीकसे कहते हुये कहना होता है—( यह ) सुखसे उत्पन्न, धर्मसे उत्पन्न, धर्म-निर्मित, धर्म-दायाद ( = धर्मका वारिस ), न-आमिष-दायाद ( = धनका दायाद



वही) भगवान्का औरस (= हृदय या मनसे उत्पन्न) पुत्र है, तो ठीकसे कहते हुये सारिपुत्रके लिये ही कहना होगा—मुखसे उत्पन्न ० ।

“भिक्षुओ ! तज्जागतके चलावे (= प्रवर्तित) अनुसर (= अद्वितीय = अनुपम) धर्म-चक्र ( धर्मके चक्का = धर्म ) की सारिपुत्र ठीकसे अनु-प्रवर्तित कर रहा है ।”

भगवान्ने यह कहा, समुष्ट हो उन भिक्षुओंमें भगवान्के भाषणको अभिर्मदित किया ।

## ११२-छविमोक्षन-सुत्तन्त (३।२।२)

अर्हत्तु पहिचान

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् ध्याचस्तीमें अनाथ-पिण्डिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

यहाँ भगवान्ने मिथुओंको संबोधित किया—“मिथुओ !”

“भदन्त !”—( कह ) इन मिथुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“( यदि कोई ) मिथु आद्या ( = अर्हत्-पद-प्राप्ति ) की घोषणा करे—‘जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हो गया, करना था सो कर लिया, और कुछ ( करनेके लिये ) यहाँ नहीं है’—जानता हूँ । तो मिथुओ ! उस मिथुके भाषणको न अभिनन्दित करना चाहिये, न संबोधित ( = निन्दित ) करना चाहिये । अभिनन्दन, प्रतिकोषण ( = निन्दन ) न । प्रश्न पूछना चाहिये—‘आवुस ! उन जाननेवाले, देखनेवाले, भगवान् अर्हत्, सम्यक् संकुद्धने चार अच्छी तरह बतलाये हैं । कौनसे चार ?—(१) दृष्ट ( = देखे हुये ) में दृष्ट-वादिता ( = देखा जा कहना ), (२) श्रुत ( = सुने ) में श्रुत-वादिता, (३) स्मृत ( = याद किये ) में स्मृत-वादिता, (४) विज्ञात ( = जाने ) में विज्ञात-वादिता । आवुस ! उन ० भगवान् ० ने यह चार व्यवहार अच्छी तरह बतलाये हैं । इन चार व्यवहारोंमें कैसे जानते कैसे देखते ( आप ) आयुष्मान् का चित्त आस्रवों ( = चित्तमलों ) से विमुक्त हो गया ?” मिथुओ ! ( जो ) मिथु क्षीण-आस्रव, ( ब्रह्मचर्य-वास-समाप्त, कृतकृत्य, मुक्त-भार, सच्चे अर्थ ( = निर्वाण ) को प्राप्त, भव-बंधन-मुक्त, सम्यग्-ज्ञानकर विमुक्त ( होता है ), ( उस ) के उत्तर देते वक्त यह अनुधर्म ( = नियम, प्रकृति ) होते हैं—‘आवुस ! दृष्टमें अन्-उपाय = अन्-अपाय<sup>१</sup> = अ-निःशित = न-बद्ध, ० विप्रमुक्त = विसंयुक्त अ-संबोधित चित्तसे विहरता हूँ । आवुस ! श्रुतमें । ० स्मृतमें ० । ० विज्ञातमें ० । आवुस ! इस प्रकार जानते देखते मेरा चित्त इन चार व्यवहारोंमें आस्रवोंसे विमुक्त हो गया ।

“( तब ) मिथुओ ! उस मिथुके कथनको ‘साधु ( = ठीक )’ कह अभिनन्दित=अनुमोदित करना चाहिये । ० अभिनन्दित अनुमोदित कर आगेका प्रश्न पूछना चाहिये—‘आवुस ! इन ० भगवान् अर्हत् सम्यक्-संकुद्धने यह पाँच उपादान-स्कंध अच्छी तरह बतलाये हैं । कौनसे पाँच ? जैसे कि—रूप-उपादान-स्कंध, वेदना ०, संज्ञा ०, संस्कार ०, विज्ञान—इन पाँच उपादान-स्कंधोंके विषयमें कैसे जानते देखते आयुष्मान्का चित्त आस्रवोंसे विमुक्त हो गया ?’ ० उसके उत्तर देते वक्त यह अनुधर्म होते हैं—‘आवुस ! मैं रूपको अ-बल, विराग ( = रागके अयोध्य ), न-आश्वासन-प्रद, जानकर रूपके संबन्धमें जो उपाय=उपादान=चित्तके अधिष्ठान, अभिनिवेदा ( = ममता ) =

<sup>१</sup> विशेषके लिये देखो पृष्ठ ४६६ ।



अनुसप थे, उनके क्षय, विराग, निरोध, त्याग = प्रतिनिस्सर्गसे मेरा चित्त मुक्त हुआ—यह जानता हूँ । ० वेदना ० । संज्ञा ० । संस्कार ० । ० विज्ञान ० । आबुसो ! इस प्रकार पाँच उपादान संबंधोंके संबंधमें जानते देखते मेरा चित्त आत्मबोसे विमुक्त हो गया ० ।

“तब मिश्रुओ ! ० ‘साधु’ कह ० अभिर्नन्दित = अनुमोदित कर आगेका प्रश्न पूछना चाहिये—‘आबुस ! ० यह छः धातुएँ ० घटलाइं हैं । कौन सी छः ?—(१) पृथिवी-धातु, (२) आप (= जल) ०, (३) तेज ०, (४) वायु ०, (५) आकाश ०, और (६) विज्ञान-धातु ।” इन छः धातुओंके विषयमें कैसे जानते देखते ० ? ० यह अनुधर्म होते हैं—‘आबुसो ! न मैंने पृथिवी धातु को आत्माके तौर पर ग्रहण किया, न पृथिवीमें आत्माको आश्रित ग्रहण किया । पृथिवी धातुके निःश्रित (= आश्रित) जो उपाय ० अनुशय, उनके विराग ० प्रतिनिस्सर्गसे मेरा चित्त विमुक्त हुआ—यह जानता हूँ । ० तेज धातु ० । ० वायु धातु ० । ० आकाश धातु ० । ० विज्ञान ० । आबुसो ! इस प्रकार इन छः धातुओंके विषयमें जानते देखते ० ।

“०—आगेका प्रश्न ०—‘आबुस ! ० यह छः आध्यात्मिक (= शरीर संबंधी) और बाह्य आयतन ० धतलाये हैं । कौनसे छः ?—(१) चक्षु और रूप, (२) श्रोत्र और शब्द, (३) घ्राण और गंध, (४) जिह्वा और रस, (५) काया और रूपद्रव्य, (६) मन और धर्म ।” इन छः आयतनों के विषयमें कैसे जानते देखते ० ? ० यह अनुधर्म होते हैं—‘आबुसो ! चक्षुमें, रूपमें, चक्षुर्विज्ञान (= चक्षु द्वारा मिलनेवाले ज्ञान) में, और चक्षु-विज्ञान द्वारा विज्ञेय धर्मों (= पदार्थों) में जो छन्द-राग, नन्दी-तृष्णा, और जो उपाय ० अनुसप थे, उनके क्षयसे ० मेरा चित्त विमुक्त हुआ—यह जानता हूँ । श्रोत्र, शब्द, श्रोत्र-विज्ञान ० । घ्राण, गंध, घ्राण-विज्ञान ० । जिह्वा, रस, जिह्वा-विज्ञान ० । काया, रूपद्रव्य, काय-विज्ञान ० । मन, धर्म, मनोविज्ञान ०, आबुसो ! इस प्रकार इन छः आध्यात्मिक पाछे आयतनों के विषयमें जानते ० ।

“० आगेका प्रश्न ०—‘आबुस ! ० इस स-विज्ञानक (= जीवित) कायमें, और बाहर के सारे निमित्तों (= आकृति आदि) में कैसे जानते देखते अहङ्कार, भ्रमकार, भ्रान, अनुशय<sup>१</sup> अच्छी प्रकार नष्ट हुये ? ० यह अनुधर्म होते हैं—‘आबुसो ! पहिले गृहस्थ होते समय मैं भ्रजान था । तब मुझे तथागत या तथागत भावकने धर्म उपदेशा । इस धर्मको सुनकर मुझे तथागतके विषयमें अज्ञा हुआ । उस अज्ञासे युक्त हो मैं सोचने लगा—गृहवास जंजाल है ०<sup>२</sup> चतुर्थ ध्यावको प्राप्त हो विहरने लगा । सो इस प्रकार चित्तके एकग्र, परिशुद्ध = पर्यवदात, अंगणा-रहित = उपक्लेश (= मल) -रहित, सुदुभूत = कार्योपयोगी, स्थिर = अचलता-प्राप्त ( और ) समाधि-युक्त हो जाने पर आत्मबोके क्षयके ज्ञानके लिये मैंने चित्तको शुकाया । फिर मैंने—‘यह दुःख है’ इसे पदार्थसे जान लिया ०<sup>३</sup> ‘अब यहाँ ( करने ) के लिये कुछ ( शेष ) नहीं है’—इसे जान लिया । आबुसो ! इस प्रकार इस स-विज्ञानक कायामें ० अच्छी प्रकार नष्ट हुये ।”

“तब, मिश्रुओ ! उस मिश्रुके कथनको ‘साधु’—( कह ) अभिर्नन्दित अनुमोदित कर उसे ऐसा कहना—‘लाभ है हमें आबुस ! सुलभ मिला हमें आबुस ! जो कि हम आप जैसे समझ-चारीको देखते हैं’ ।”

भगवान् ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन मिश्रुजोने भगवान् के भाषणको अभिर्नन्दित किया ।

<sup>१</sup> राग, प्रतिय, मान, अविद्या, कृदि, और विचिकित्सा, सत्काम-दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, अन्तर्माद-दृष्टि, इष्टि-भरामर्थं शालजत-भरामर्थ ( १० ) ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ २५८ ।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ २६ ।

## ११३-सप्पुरिस-धम्म (३।२।३)

सत्पुरुष और अ-सत्पुरुष

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अजाथ-पिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

वहाँ भगवान्ने मिश्रुओंको संबोधित किया—“मिश्रुओ !”

“भवन्त !”—( कह ) उन मिश्रुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“मिश्रुओ ! तुम्हें सत्पुरुष ( ने ) का धर्म और अ-सत्पुरुष-धर्म उप-देखता हूँ । उसको सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा, मन्ते !”—( कह ) उन मिश्रुओंने भगवान्को उत्तर दिया । भगवान्ने यह कहा—“मिश्रुओ ! क्या है, अ-सत्पुरुष-धर्म ?—( १ )—( क ) मिश्रुओ ! ( यदि ) अ-सत्पुरुष धर्म प्रव्रजित ( = संन्यासी ) हुआ रहता है । वह क्याल करता है—‘मैं ऊँचे कुलसे प्रव्रजित हुआ हूँ, और यह दूसरे मिश्रु ऊँचे कुल से नहीं प्रव्रजित हुये हैं । सो वह उस उच्च-कुलीनता के कारण अपने लिये अभिमान करता है, दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । मिश्रुओ ! यह है, अ-सत्पुरुष-धर्म ।

( १ )—( ख ) “मिश्रुओ ! सत्पुरुष यह क्याल करता है—‘उच्च-कुलीनताके कारण मोम-धर्म ( = मोम ) नहीं बण्ड हुआ करते, द्वेष-धर्म ०, मोह-धर्म बण्ड नहीं हुआ करते । चाहे ऊँचे-कुल से न प्रव्रजित हुआ हो ; किन्तु यदि वह है धर्म-मार्ग पर आरुढ़, ठीक मार्ग पर आरुढ़, धर्मा-नुसार आचरण करनेवाला, तो वह पूज्य है, वह प्रशंसनीय है ।’ वह प्रतिपत्ति ( = प्राप्ति ) का ही क्याल कर, उच्च-कुलीनताके कारण न अपने लिये अभिमान करता है, न दूसरों को नीची निगाहसे देखता है, मिश्रुओ ! यह है सत्पुरुष-धर्म ।

( २ )—( क ) “और फिर मिश्रुओ ! अ-सत्पुरुष महाकुलसे प्रव्रजित हुआ रहता है । ० दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । मिश्रुओ ! यह है अ-सत्पुरुष-धर्म ।

( २ )—( ख ) “ ० सत्पुरुष महाकुलसे प्रव्रजित हुआ रहता है । ० न दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( ३ )—( क ) “ ० अ-सत्पुरुष महामोग ( = महाबनी ) कुलसे ० । ० ।

( ३ )—( ख ) “ ० सत्पुरुष महामोग कुलसे ० । ० ।

( ४ )—( क ) “ ० उदार-मोग ( = महाबनी ) कुलसे ० । ० ।

( ४ )—( ख ) “ ० सत्पुरुष उदारमोगकुल से ० । ० ।

( ५ )—( क ) “ ० और फिर मिश्रुओ ! ( कोई ) अ-सत्पुरुष ज्ञात ( = प्रसिद्ध ) वशास्वी होता है । वह क्याल करता है—‘मैं ज्ञात, वशास्वी हूँ, यह दूसरे मिश्रु अल्पज्ञात अल्पप्राप्ति हैं ।’



वह उस अपनी विज्ञानताके कारण अपने लिये अनिमान करता है, दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । मिथुनो ! यह है, अ-सत्पुरुष-धर्म ।

( ५ )—( ऋ ) “ ० सत्पुरुष ज्ञात, यशस्वी होता है । ० न दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । मिथुनो ! यह है, सत्पुरुष-धर्म ।

( ६ )—( क ) “ ० अ-सत्पुरुष बज्र, भोजन, शयन-आसन, पथ्य-औषधका पानेवाला होता है । वह श्वाक करता है—० । ० दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( ६ )—( ऋ ) “ ० सत्पुरुष बज्र, ० पानेवाला होता है । ० न दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( ७ )—( क ) “ ० अ-सत्पुरुष बहु-भुत होता है । ० दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( ७ )—( ऋ ) “ ० सत्पुरुष बहु-भुत होता है । ० न दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( ८ )—( क ) “ ० अ-सत्पुरुष विनयधर<sup>१</sup> होता है । ० दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( ८ )—( ऋ ) “ ० सत्पुरुष विनयधर होता है । ० न दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( ९ )—( क ) “ ० अ-सत्पुरुष धर्म-कथिक ( = व्याख्याता ) होता है । ० दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( ९ )—( ऋ ) “ ० सत्पुरुष धर्मकथिक होता है । ० न दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( १० )—( क ) “ ० अ-सत्पुरुष आरण्यक ( = वनवासी ) होता है । ० दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( १० )—( ऋ ) “ ० सत्पुरुष आरण्यक होता है । ० न दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( ११ )—( क ) “ ० अ-सत्पुरुष पांसु-कुलिक ( = चोपदेधारी ) होता है । ० दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( ११ )—( ऋ ) “ ० सत्पुरुष पांसुकुलिक होता है । ० न दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( १२ )—( क ) “ ० अ-सत्पुरुष पिंडपातिक ( = मधूकडीवाला ) होता है ० दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( १२ )—( ऋ ) “ ० सत्पुरुष पिंडपातिक होता है । ० न दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( १३ )—( क ) “ ० अ-सत्पुरुष वृक्षमूलिक ( = घरके भीतर न रहकर, सदा वृक्षके नीचे रहनेवाला ) होता है । ० दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( १३ )—( ऋ ) “ ० सत्पुरुष वृक्षमूलिक होता है । ० न दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( १४ )—( क ) “ ० अ-सत्पुरुष इन्द्रानिक ( = इन्द्रानमें रहनेवाला ) होता है । ० दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( १५ )—( ख ) “ ० सत्पुरुष इन्द्रानिक होता है । ० न दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( १५ )—( क ) “ ० अ-सत्पुरुष कामसे विरहित ०<sup>१</sup> प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ० दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( १५ )—( ख ) “ ० सत्पुरुष ० प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । वह ऐसा ब्याल करता है—‘प्रथम-ध्यानकी प्राप्तिके बाद भी भगवान्ने अ-तन्मयता होने ( की बात ) कही है । जो जो ब्याल करते हैं, उससे वह अन्यथा ही होता है ।’ वह उस अ-तन्मयताको ब्याल कर, उस प्रथम-ध्यानकी प्राप्तिसे न अपने लिये अभिमान करता है; न दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । भिक्षुओ ! वह है सत्पुरुष-धर्म ।

( १६ )—( क )—“ ० अ-सत्पुरुष ०<sup>१</sup> द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ० । दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( १६ )—( ख ) “ ० सत्पुरुष ०<sup>१</sup> द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ० उस अ-तन्मयताको ब्यालकर ० । ० न दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( १७ )—( क ) “ ० अ-सत्पुरुष ०<sup>१</sup> तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ० दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( १७ )—( ख ) “ ० सत्पुरुष ० तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ० उस अ-तन्मयताको ब्यालकर ० । ० न दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( १८ )—( क ) “ ० अ-सत्पुरुष ०<sup>१</sup> चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ० दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( १८ )—( ख ) “ ० सत्पुरुष ० चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ० उस अ-तन्मयताको ब्यालकर ० । ० न दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( १९ )—( क ) “ ० अ-सत्पुरुष रूपसंज्ञाको सर्वथा छोड़नेसे ०<sup>२</sup> आकाशानन्त्यायतनको प्राप्त हो विहरता है । ० । दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( १९ )—( ख ) “ ० सत्पुरुष ०<sup>२</sup> आकाशानन्त्यायतनको प्राप्त हो विहरता है । ० उस अ-तन्मयताको ब्यालकर ० । ० न दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( २० )—( क ) “ ० अ-सत्पुरुष ०<sup>२</sup> विज्ञान-आनन्द-आयतनको प्राप्त हो विहरता है । ० दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( २० )—( ख ) “ ० सत्पुरुष ०<sup>२</sup> विज्ञानानन्त्यायतनको प्राप्त हो विहरता है । ० उस अ-तन्मयताको ब्यालकर ० । ० न दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( २१ )—( क ) “ ० अ-सत्पुरुष ०<sup>२</sup> आर्किचन्त्यायतनको प्राप्त हो विहरता है । ० दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( २१ )—( ख ) “ ० सत्पुरुष ०<sup>२</sup> आर्किचन्त्यायतनको प्राप्त हो विहरता है । ० उस अ-तन्मयताको ब्यालकर ० । ० न दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ २५ ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ २७-२८ ।



( २२ )—( क ) “ ० अस्त्युरुष ०<sup>१</sup> नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनको प्राप्त हो विहरता है । ० दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । ० ।

( २२ )—( ख ) “ ० सस्त्युरुष ०<sup>१</sup> नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनको प्राप्त हो विहरता है । ० उस अ-तन्मस्यताका त्याग कर ० । ० न दूसरोंको नीची निगाहसे देखता है । मिश्रुओ ! यह है सस्त्युरुष-धर्म ।

( २३ )—और फिर मिश्रुओ ! सस्त्युरुष नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनको भी सर्वथा अतिक्रमणकर, संज्ञा-चेदित-निरोध को प्राप्त हो विहरता है । प्रज्ञामे उसे देश कितने ही ( उसके ) आकाश (= चित्तमल ) नष्ट होजाते हैं । मिश्रुओ ! यह मिश्रु न कुछ मान करता है, न कहीं मान करता है, और न किसी के साथ मान करता है । ”

भगवान्ने यह कहा, सम्पुष्ट हो, उन मिश्रुओंने भगवान्के भाषणको अभिनिन्दित किया ।

## ११४—सेवितव्य-नसेवितव्य-सुत्तन्त (३।२।४)

सेवनीय, अ-सेवनीय

देला मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तोमें धनाय-पिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“मदन्त !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! तुम्हें सेवितव्य-असेवितव्य ( = सेवन-योग्य, न-सेवन योग्य ) धर्म-पर्याय ( = धर्मोपदेश ) उपदेशता हूँ, उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा, मन्ते !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“ ( १ ) भिक्षुओ ! मैं काय-समाचार ( = कायिक कर्म ) को दो प्रकारका कहता हूँ, सेवनीय, अ-सेवनीय, वह काय-समाचार अन्योन्य है । ( २ ) • वाक्-समाचार ( = वाचिक कर्म ) • । ( ३ ) भिक्षुओ ! मैं मनः समाचार ( = मानसिक कर्म ) को दो प्रकारका कहता हूँ—सेवनीय, असेवनीय । वह मन-समाचार अन्योन्य है । ( ४ ) भिक्षुओ ! मैं चित्त-उत्पाद ( = चित्त या विचारोंकी उत्पत्ति ) को दो प्रकारका कहता हूँ—सेवनीय, अ-सेवनीय । वह चित्त-उत्पाद अन्योन्य है । ( ५ ) • संज्ञा-लामको • । ( ६ ) इण्डि-लामको • । ( ७ ) • आत्मभाव ( = शरीर )-लामको • ।”

ऐसा कहने पर आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्से यह कहा—“मन्ते ! भगवान्के इस संक्षिप्त, विचारसे अविमर्शित भाषणका मैं इस प्रकार क्लृप्तसे अपने जानता हूँ • ।”—( १ ) ‘भिक्षुओ ! मैं काय समाचारको दो प्रकारका कहता हूँ • ।’ यह जो भगवान्ने कहा, किस हेतुसे कहा ?—मन्ते ! जिस प्रकारके कायिक कर्मके सेवन करनेसे बुराईयाँ ( = अकृत्याल धर्म ) बढ़ती हैं, भलाइयाँ ( = कृत्याल धर्म ) क्षीण होती हैं, इस प्रकारका कायिक कर्म अ-सेवनीय है । और मन्ते ! जिस प्रकारके कायिक कर्मके सेवन करनेसे बुराईयाँ क्षीण होती हैं, भलाइयाँ बढ़ती हैं, इस प्रकारका कायिक कर्म सेवनीय है । मन्ते ! किस प्रकारके कायिक कर्मके सेवन करनेसे बुराईयाँ बढ़ती हैं • ?—यहाँ, मन्ते ! ( १ ) कोई ( पुरुष ) हिंसक, क्रूर, लोहितपाणि ( = खूनसे रंगे हाथोंवाला ), भास्काटमें रत, सारे प्राणियोंके प्रति निर्पक्षी होता है । ( २ ) अविद्यादायी ( = धोखे ) • । ( ३ ) कामोंमें अभिचारी • । अन्तमें भाला मात्र भी जिनपर डाल दी गई है । मन्ते ! इस प्रकारके कायिक कर्मके सेवन करने से बुराईयाँ बढ़ती हैं, भलाइयाँ क्षीण होती हैं । मन्ते ! किस प्रकारके कायिक कर्मके सेवन करनेसे बुराईयाँ क्षीण होती हैं • ?—यहाँ मन्ते ! ( १ )

\* देखो पृष्ठ १६८-६९ ।



कोई ( पुरुष ) प्राणातिपात (= हिंसा ) ओष प्राणातिपातसे विरत होता है ०<sup>१</sup> । ( २ ) ० अदिवादान (= चोरी )से विरत होता है ०<sup>१</sup> । ( ३ ) ० काम-मिथ्याचारसे विरत होता है ०<sup>१</sup> । मन्ते ! इस प्रकारके वाचिक कर्मके सेवन करनेसे बुराइयाँ क्षीण होती हैं ० । 'मिथुनो ! मैं काय-समाचार दो प्रकारका कहता हूँ ०'—यह जो भगवान् ने कहा, इसी हेतुसे कहा ।

( २ ) " 'मिथुनो ! मैं वाक्-समाचार दो प्रकारका कहता हूँ'—यह जो भगवान् ने कहा, किस हेतुसे कहा ?—मन्ते ! जिस प्रकारके वाचिक कर्मके सेवन करनेसे बुराइयाँ बढ़ती हैं ० इस प्रकारका वाचिक कर्म अ-सेवनीय है । ० सेवन करनेसे भलाईयाँ बढ़ती हैं, इस प्रकारका वाचिक कर्म सेवनीय है । ० किस प्रकारके वाचिक कर्मके सेवन करनेसे बुराइयाँ बढ़ती हैं ?—० ( १ ) कोई ( पुरुष ) मिथ्यावादी होता है, समामें ०<sup>१</sup> । ( २ ) ० जुगलुबोर ०<sup>१</sup> । ० ( ३ ) ० कटुभाषी ०<sup>१</sup> । ( ४ ) ० प्रलापी ०<sup>१</sup> निस्तार वाणीका धोलनेवाला होता है । मन्ते ! इस प्रकार ० भलाईयाँ क्षीण होती हैं । ० किस प्रकारके वाचिक कर्मसे बुराइयाँ क्षीण होती हैं ० ?—० कोई ( पुरुष ) ( १ ) ० मृषावादीसे विरत होता है । समामें ०<sup>१</sup> । ( २ ) ० पिशुन-वचन (= जुगली ) से विरत ०<sup>१</sup> । ( ३ ) ० परुषवचनसे विरत ०<sup>१</sup> । ( ४ ) प्रलापसे विरत ०<sup>१</sup> सारवाली वाणीका धोलनेवाला होता है । इस प्रकारके वाचिक कर्मके सेवनसे बुराइयाँ क्षीण होती हैं । ० भगवान् ने कहा, इसी हेतुसे कहा ।

( ३ ) " 'मिथुनो ! मैं मनःसमाचार दो प्रकारका कहता हूँ ०'—यह जो भगवान् ने कहा, किस हेतुसे कहा ?—० जिस प्रकारके मानसिक कर्मके सेवन करनेसे बुराइयाँ बढ़ती हैं, ० अ-सेवनीय हैं । ० सेवन करनेसे भलाईयाँ बढ़ती हैं, ० सेवनीय ० । ० किस प्रकारके मानसिक कर्मके सेवन करनेसे बुराइयाँ बढ़ती हैं ?—० कोई ( पुरुष ) ( १ ) ० अभिध्यालु (= लोभी ) होता है ०<sup>१</sup> । ० ( २ ) ० व्यापन्न-चित्त (= द्वेषी ) ०<sup>१</sup> । ( ३ ) मिथ्यादृष्टि ०<sup>१</sup> ऐसे अभ्रम-ब्राह्मण नहीं, ० जो ० स्वयं ज्ञान कर ० जललायेंगे । मन्ते ! इस प्रकार ० भलाईयाँ क्षीण होती हैं । ० किस प्रकारके मानसिक कर्मके सेवन करनेसे बुराइयाँ क्षीण होती हैं ० ?—कोई ( पुरुष ) ( १ ) अभिध्या-रहित (= निर्लोभी ) होता है ०<sup>१</sup> । ( २ ) ० अ-व्यापन्न-चित्त ०<sup>१</sup> । ( ३ ) ० सम्यग्-दृष्टि ०<sup>१</sup> । ० इस प्रकारके मानसिक कर्मके सेवन करनेसे बुराइयाँ क्षीण होती हैं । ० भगवान् ने कहा, इसी हेतुसे कहा ।

( ४ ) " 'मिथुनो ! मैं चित्त-उत्पादको दो प्रकारका कहता हूँ ०'—यह जो भगवान् ने कहा, किस हेतुसे कहा ?—० जिस प्रकारके चित्त-उत्पादके सेवनसे बुराइयाँ बढ़ती हैं, ० अ-सेवनीय हैं । ० सेवनसे भलाईयाँ बढ़ती हैं, ० सेवनीय ० । ० किस प्रकारके ० सेवनसे बुराइयाँ बढ़ती हैं ० ?—यहाँ मन्ते ! ( १ ) कोई ( पुरुष ) अभिध्यालु (= लोभी ) होता है, ( वह ) अभिध्या (= लोभ )युक्त चित्तसे विहरता है । ( २ ) व्यापाद-युक्त चित्त ० । ० ( ३ ) ० विहिंसा-युक्त चित्तसे विहरता है । इस प्रकारके चित्त-उत्पादके सेवनसे बुराइयाँ बढ़ती हैं ० । ० किस प्रकारके चित्त-उत्पादके सेवनसे बुराइयाँ क्षीण होती हैं ० ?—० कोई ( पुरुष ) ( १ ) अ-अभिध्यालु होता है ० । ( वह ) अभिध्या-रहित चित्तसे विहरता है । ( २ ) व्यापाद-रहित चित्तसे ० । ( ३ ) ० विहिंसा-रहित चित्तसे ० । ० इस प्रकारके चित्त-उत्पादके सेवनसे बुराइयाँ क्षीण होती हैं ० । ० भगवान् ने कहा, इसी हेतुसे कहा ।

( ५ ) " 'मिथुनो ! मैं संज्ञा-लाभको दो प्रकारका कहता हूँ ०'—यह जो भगवान् ने

कहा, किस हेतुसे कहा ?—०।०।० किस प्रकारके संज्ञा-लामसे बुराईयाँ बढती हैं ० ?—( १ ) ० कोई ( पुरुष ) अभिध्यातु होता है, ( वह ) अभिध्या ( = छोम ) युक्त संज्ञासे विहरता है । ( २ ) ० व्यापाद-युक्त संज्ञासे ० । ( ३ ) ० विहिंसा-युक्त संज्ञासे ० । इस प्रकार ० बुराईयाँ बढती हैं ० । ० किस प्रकारके संज्ञा-लामसे बुराईयाँ क्षीण होती हैं ० ?—( १ ) ० अभिध्या-रहित संज्ञासे विहरता है । ( २ ) ० व्यापाद-रहित संज्ञासे ० । ( ३ ) ० विहिंसा-रहित संज्ञासे ० । ० इस प्रकारके संज्ञा-लामके सेवनसे बुराईयाँ क्षीण होती हैं ० । ० भगवान्ने कहा, इसी हेतुसे कहा ।

( ६ ) “ मिथुनो ! मैं दृष्टि ( = धारणा )-लामको दो प्रकारका कहता हूँ ० ”—यह जो भगवान्ने कहा, किस हेतुसे कहा ?—०।०।० किस प्रकारके दृष्टि-लामसे बुराईयाँ बढती हैं ० ?—० यहाँ कोई ( पुरुष ) इस दृष्टिवाला होता है—‘दाव कुछ नहीं ०’ स्वयं जान कर ० जल-लायेंगे । इस प्रकारके दृष्टि लामसे बुराईयाँ बढती हैं ० । ० किस प्रकारके दृष्टि लामसे बुराईयाँ क्षीण होती हैं ० ?—यहाँ कोई ( पुरुष ) इस दृष्टिवाला होता है—‘यज्ञ है ०’ ऐसे भ्रमण माहण है, ० जललायेंगे । इस प्रकारके दृष्टि-लामसे बुराईयाँ क्षीण होती हैं ० । ० भगवान्ने कहा, इसी हेतुसे कहा ।

( ७ ) “ मिथुनो ! मैं आत्म-भाव ( = चरीर )-लामको दो प्रकारका कहता हूँ ० ”—यह जो भगवान्ने कहा, किस हेतुसे कहा ?—०।०।० किस प्रकारके आत्मभाव-लामसे बुराईयाँ बढती हैं ० ?—व्यापाद ( = द्वेष )-युक्त आत्मभाव-लामके निर्माण करनेसे, पूर्णता प्राप्त करनेके लिये बुराईयाँ बढती हैं, भलाइयाँ क्षीण होती हैं । व्यापादरहित आत्मभाव-लामके निर्माण करनेसे, २ ता प्राप्त करनेके लिये, बुराईयाँ क्षीण होती हैं, भलाइयाँ बढती हैं । ० भगवान्ने कहा, इसी हेतुसे कहा ।

“ भन्ते ! भगवान्ने इस संक्षिप्त ० ० भाषणका मैं इस प्रकार विस्तारसे अर्थ जानता हूँ । ”

“ साधु, साधु, सारिपुत्र ! तुम, सारिपुत्र ! मेरे इस संक्षिप्त भाषणका ठीक ही इस प्रकार विस्तारसे अर्थ जानते हो । ”

“ सारिपुत्र ! ( १ ) मैं चक्षुर्विशेष ( = चक्षुद्वारा ज्ञेय ) रूपोंको दो प्रकारका कहता हूँ—सेवनीय, अ-सेवनीय । ( २ ) ओष्ठविशेष शब्दको ० । ( ३ ) ग्राण-विशेष गंधको ० । ( ४ ) जिह्वाविशेष रसको ० । ( ५ ) काय-विशेष स्पर्शको ० । ( ६ ) मनो-विशेष चर्मको ० । ”

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्से यह कहा—“ भन्ते ! भगवान्ने इस संक्षिप्त ० ० भाषणका मैं इस प्रकार विस्तारसे अर्थ जानता हूँ—

( १ ) “ सारिपुत्र ! मैं चक्षुर्विशेष रूपोंको दो प्रकारका कहता हूँ—‘सेवनीय, अ-सेवनीय’—यह जो भगवान्ने कहा, किस हेतुसे कहा ?—भन्ते ! जिस प्रकारके चक्षुर्विशेष रूपोंके सेवन करनेसे बुराईयाँ बढती हैं, भलाइयाँ क्षीण होती हैं, इस प्रकारके चक्षुर्विशेष रूप अ-सेवनीय हैं । और, भन्ते ! जिस प्रकारके चक्षुर्विशेष रूपोंके सेवन करनेसे बुराईयाँ क्षीण होती हैं, भलाइयाँ बढती हैं, इस प्रकारके चक्षुर्विशेष रूप सेवनीय हैं ० । ० ओष्ठ-विशेष शब्द ० । ० ग्राण-विशेष गंध ० । ० जिह्वाविशेष रस ० । ० काय-विशेष स्पर्श ० । ० मनोविशेष चर्म ० इस प्रकारके मनोविशेष चर्म सेवनीय हैं । ० । भन्ते ! भगवान्ने इस संक्षिप्त भाषणका मैं इस प्रकार विस्तारसे अर्थ जानता हूँ । ”



“साधु, साधु, सारिपुत्र ! तुम ० ठीक ही इस प्रकार विस्तारसे अर्थ जानते हो ।”

“सारिपुत्र ! मैं चौबरको दो प्रकारका कहता हूँ—सेवितव्य, अ-सेवितव्य । ० पिंडपात (= भिक्षा ) ० । ० शयन-वासन ० । ० ग्राम ० । ० निगम ० । ० नगर ० । ० जनपद (= देश ) ० । ० पुद्गल (= व्यक्ति ) ० ।”

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्से यह कहा—“० मैं, इस प्रकार विस्तारसे अर्थ जानता हूँ—‘सारिपुत्र ! मैं चौबरको दो प्रकारका कहता हूँ—०’—यह जो भगवान्ने कहा, किस हेतुसे कहा ?—भन्ते ! जिस प्रकारके चौबरके सेवन करनेसे सुराह्याँ बढ़ती हैं, मलाह्याँ क्षीण होती हैं, उस प्रकारका चौबर अ-सेवनीय है । जिस प्रकारके चौबरके सेवन करनेसे सुराह्याँ क्षीण होती हैं, मलाह्याँ बढ़ती हैं, उस प्रकारका चौबर सेवनीय है । ० पिंडपात ० । ० शयन-वासन ० । ० ग्राम ० । ० निगम ० । ० नगर ० इस प्रकारका नगर सेवनीय है । ० । भन्ते ! ० मैं इस प्रकार विस्तारसे अर्थ जानता हूँ ।”

“साधु, साधु, सारिपुत्र ! तुम ० ठीक ही इस प्रकार विस्तारसे अर्थ जानते हो ।”

“सारिपुत्र ! इस मेरे संक्षिप्त भाषणका इस प्रकार विस्तारसे अर्थ यदि सारे अश्रिय जानें, तो वह सारे अश्रियोंको दीर्घ काल तक हित-सुखके लिये हो । ० सारे माषण ० । ० सारे वैश्य ० । ० सारे क्षत्र ० । ० इस मेरे संक्षिप्त भाषणका इस प्रकार विस्तारसे अर्थ यदि देव-भार (= प्रजापति )-मह्य-सहित सारा लोक, देव-मानुष-अमण-ब्राह्मणसहित प्रजा (= जनता ) जानें, तो यह... ( उसके ) लिये दीर्घकाल तक हित-सुखके लिये हो ।”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्के भाषणको अभिनन्दित किया ।

## ११५-बहु-धातुक-सुत्तन्त (३।२।५)

धातुयै । इष्टिमात्र पुरुष । स्थान-अस्थानका जानकारी

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुजो !”

“भदन्त !” ( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुजो ! जो कोई भय उत्पन्न होता है, वह सभी बाल (= मूर्ख ) से ही उत्पन्न होता है, पंडितसे नहीं । जो कोई उपद्रव उत्पन्न होते हैं, वह सभी बालसे ही उत्पन्न होते हैं, पंडितसे नहीं । जो कोई उपसर्ग (= विकर्ष ) ० । जैसे, भिक्षुजो ! तृणके घर या नरकट (= नख ) के घरसे निकली आग सुन्दर लिये, वायुरहित, कुंठे छोड़े, शिपकी-किवाड़-पुंछ कटाव्यों (= महलों ) को जला देती है; इसी प्रकार भिक्षुजो ! जो कोई भय ० पंडितसे नहीं । इन्द्र, भिक्षुजो ! बाल स-भय है, पंडित अ-भय, बाल स-उपद्रव है, पंडित अन्-उपद्रव; बाल स-उपसर्ग है, पंडित अन्-उपसर्ग । भिक्षुजो ! पंडितसे भय नहीं, पंडितसे उपद्रव नहीं, ० उपसर्ग नहीं । इसलिये भिक्षुजो !—‘हम पंडित=विमर्शक (= मोक्षार्थक ) होंगे’—यह तुम्हें सोच लेनी चाहिये ।”

ऐसा कहनेपर आलुप्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—“भन्ते ! कितनेसे भिक्षुको पंडित=विमर्शक कहा जा सकता है ?”

“आनन्द ! जब भिक्षु धातु-कुशल (= धातुका सुन्दर जानकारी ) होता है, जायतन-कुशल ०, प्रतीत्य-समुत्पाद-कुशल ०, स्थान-अस्थान-कुशल होता है । इतनेसे, आनन्द ! भिक्षुको पंडित कहा जा सकता है । आनन्द ! यह अठारह धातुयें हैं—( १ ) क्तु धातु, ( २ ) रूप ०, ( ३ ) चक्षुर्विज्ञान धातु, ( ४ ) श्रोत्र ०, ( ५ ) शब्द ०, ( ६ ) श्रोत्र-विज्ञान ०, ( ७ ) घ्राण ०, ( ८ ) गंध ०, ( ९ ) घ्राण-विज्ञान ०, ( १० ) जिह्वा ०, ( ११ ) रस ०, ( १२ ) जिह्वा-विज्ञान ०, ( १३ ) काम ०, ( १४ ) स्पर्श ०, ( १५ ) काय-विज्ञान ०, ( १६ ) मनोधातु, ( १७ ) धर्म-धातु, ( १८ ) मनोविज्ञान-धातु । आनन्द ! इन अठारह धातुओंकी जानता-देखता है, तब भिक्षुको धातु-कुशल कहा जा सकता है ।

“क्या, भन्ते ! और भी पर्याय (= विकल्प ) है, जिससे कि भिक्षु धातु-कुशल कहा जा सके ?”

“आनन्द ! यह छः धातुयें हैं—( १ ) वृत्तिधातु, ( २ ) आप (= जल )-धातु, ( ३ ) तेज ०, ( ४ ) वायु ०, ( ५ ) आकाश ०, ( ६ ) विज्ञान-धातु । आनन्द ! जब भिक्षु इन छः धातुओंकी जानता देखता है, इतनेसे भी—‘धातु-कुशल’ कहा जा सकता है ।”



“क्या, मन्ते ! और भी पर्याय है ० ?”

“है, आनन्द ! यह छः धातुयें हैं—( १ ) सुख-धातु, ( २ ) दुःख ०, ( ३ ) सौमनस्य ०, ( ४ ) दीर्घमनस्य ०, ( ५ ) उपेक्षा ०, ( ६ ) अविद्या-धातु । आनन्द ! जय मिथु ० ।”

“क्या, मन्ते ! और भी पर्याय है ० ?”

“है, आनन्द ! यह छः धातुयें ( -चित्त ) हैं—( १ ) काम-धातु, ( २ ) निष्काम ०, ( ३ ) व्यापाद ०, ( ४ ) अव्यापाद ०, ( ५ ) विहिंसा ०, ( ६ ) अ-विहिंसा-धातु । आनन्द ! जय मिथु ० ।”

“क्या, मन्ते ! और भी पर्याय है ० ?”

“है, आनन्द ! यह तीन धातुयें (= लोक ) हैं—( १ ) काम-धातु, ( २ ) रूप-धातु, ( ३ ) अ-रूप-धातु । आनन्द ! जय मिथु ० ।”

“क्या, मन्ते ! और भी पर्याय है ० ?”

“है, आनन्द ! यह दो धातुयें (= लोक ) हैं—( १ ) संस्कृत (= कृत ) धातु, और ( २ ) अ-संस्कृत-धातु । आनन्द ! जय मिथु ० ।”

“कितनेसे, मन्ते ! मिथुको आयतन-कुशल कहा जा सकता है ?”

“आनन्द ! यह आध्यात्मिक (= शरीरके भीतरके ) वाद्य आयतन हैं—( १ ) चक्षु और रूप, ( २ ) श्रोत्र और शब्द, ( ३ ) घ्राण और गंध, ( ४ ) विज्ञा और रस, ( ५ ) काय और स्पर्श, ( ६ ) मन और धर्म । आनन्द ! जय मिथु ० ।”

“कितनेसे, मन्ते ! मिथुको प्रतीत्य-समुत्पाद कुशल कहा जा सकता है ?”

“आनन्द ! यहाँ मिथु यह जानता है—‘इसके होनेपर यह होता है’; ‘इसके उतपन्न होनेपर यह उत्पन्न होता है’ । ‘इसके न होनेपर यह नहीं होता’; ‘इसके निरोध (= नाश ) होनेपर इसका निरोध होता है’ । जो कि यह अविद्याके कारण संस्कार, संस्कारके कारण विज्ञान, विज्ञानके कारण नाम-रूप, नाम-रूपके कारण पद्-आयतन, पद्-आयतनके कारण स्पर्श, स्पर्शके कारण वेदना, वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णाके कारण उपादान, उपादानके कारण भव, भवके कारण जाति, जातिके कारण जरा-मरण, शोक—रोना काँदना, दुःख-दीर्घमनस्य, हैरानी-परेशानी उत्पन्न होती है । इस प्रकार इस केवल दुःख-पुञ्जकी उत्पत्ति होती है । अविद्याके अशेष विराग, और निरोधसे संस्कारका निरोध होता है, संस्कार-निरोधसे विज्ञान-निरोध, विज्ञान-निरोधसे नाम-रूपका निरोध, नाम-रूपके निरोधसे पद्-आयतनका निरोध, पद्-आयतन-निरोधसे स्पर्श-निरोध, स्पर्श-निरोधसे वेदना-निरोध, वेदना-निरोधसे तृष्णाका निरोध, तृष्णा-निरोधसे उपादान-निरोध, उपादान-निरोधसे भव-निरोध, भव-निरोधसे जातिका निरोध, जाति-निरोधसे जरा-मरण, शोक परिदेव, दुःख-दीर्घमनस्य, उपादास का निरोध होता है । इस प्रकार इस केवल दुःख-पुञ्ज ( आवागमन ) का निरोध होता है । इतनेसे, आनन्द ! मिथुको प्रतीत्य-समुत्पाद-कुशल कहा जा सकता है ।

“आनन्द ! इसका स्थान नहीं, इसके लिये अवकाश नहीं, कि दृष्टि-प्राप्त (= सबे दर्शन को जाननेवाला ) पुद्गल (= पुरुष ) किसी संस्कार (= क्रिया, कृति ) को नित्यके तौर पर ग्रहण करे—इस स्थानको जानता है । इसके लिये स्थान है, कि प्रयोजन (= भज ) किसी संस्कारको नित्यके तौर पर ग्रहण करे—इसे जानता है । ‘अ-स्थान है, अवकाश नहीं, कि दृष्टि-प्राप्त पुद्गल किसी संस्कारको सुखके तौर पर ग्रहण करे’—इसका स्थान नहीं (= अ-स्थान ) इसे जानता है । ‘स्थान है, अवकाश है, जो प्रयोजन किसी संस्कारको सुखके तौरपर ग्रहण करे—यह स्थान (= संभव ) है—इसे जानता है । ‘अ-स्थान है—अवकाश है, कि दृष्टि-प्राप्त पुद्गल किसी धर्मजो

आत्माके तौर पर ग्रहण करे—यह स्थान नहीं है—इसे जानता है। 'स्थान है ० जो पृथग्जन किसी धर्मको आत्माके तौरपर ग्रहण करे—यह स्थान है'—इसे जानता है। 'अस्थान (= अ-संभव) है, अनवकाश है, जो इष्टि-प्राप्त माताकी हत्या करे—यह स्थान नहीं है'—इसे जानता है। 'स्थान है, अवकाश है, जो पृथग्जन माताकी हत्या करे—यह स्थान है'—इसे जानता है। 'अस्थान है ०, जो इष्टि-प्राप्त पिताकी हत्या करे—०' इसे जानता है। 'स्थान है ० जो पृथग्जन पिताकी हत्या करे—०—इसे जानता है। 'अस्थान है ० जो इष्टि-प्राप्त दुष्ट चित्तसे सध्यागतके (शरीरसे) लांछ निकाले—० इसे जानता है। 'स्थान है ० जो पृथग्जन ० लांछ निकाले—० इसे जानता है। 'अस्थान है ० जो इष्टि-प्राप्त संघ-भेद (= संघमें कूट) करे—० यह जानता है। 'स्थान है ० जो पृथग्जन संघ-भेद करे—० यह जानता है। 'अस्थान है ०, जो इष्टि-प्राप्त ० (बुद्धको छोड़) दूसरेको अपना शाला (= गुरु) बनावे—०—यह जानता है। 'स्थान है, जो पृथग्जन ० दूसरेको शाला बनावे—०—यह जानता है। 'अस्थान है ० जो एक लोक-धातु (= लोक) में पूर्व-प्रभात न हो (एक कालमें) दो अर्हत्-सम्बन्ध-संबुद्ध उत्पन्न हों—यह स्थान नहीं'—इसे जानता है। 'स्थान है ०, जो एक लोक धातुमें एक अर्हत् सम्बन्ध संबुद्ध उत्पन्न हों—यह स्थान है'—इसे जानता है। 'अस्थान है ०, जो एकलोक धातुमें एक कालमें (= पूर्व-पीछे नहीं) दो राजा चक्रवर्ती उत्पन्न हों—०—यह जानता है। 'स्थान है ०, जो एक लोक धातुमें एक-कालमें एक राजा चक्रवर्ती उत्पन्न हो—०—इसे जानता है। 'अस्थान है ०, जो स्त्री अर्हत् सम्बन्ध-संबुद्ध हो—०—०। 'स्थान है ०, जो पुरुष अर्हत् सम्बन्ध-संबुद्ध हो—०—०। 'अस्थान है ०, जो स्त्री राजा चक्रवर्ती है—०—०। 'स्थान है ०, जो पुरुष राजा चक्रवर्ती हो—०—०। 'अस्थान है ०, जो, स्त्री शक्र-पद, भार (= प्रजापति) -पद या ब्रह्माके पदपर आरूढ़ हो—०—०। 'स्थान है ०, जो पुरुष शक्रपद ०—०—०। 'अस्थान है ०, जो कायिक दुराचारका इष्ट = कान्त = मनाप (= प्रिय) विपाक हो—०—०। 'स्थान है ०, जो ० अनृ-इष्ट = अ-कान्त = अ-मनाप विपाक हो ०—०। 'अस्थान है ०, जो वाग्-दुश्चरितका इष्ट ०—०—०। स्थान है ०, जो वाग्-दुश्चरित (= वाचिक दुराचार) का अनिष्ट ०—०—०। 'अस्थान है ०, जो मनो-दुश्चरितका इष्ट ०—०—०। स्थान है ०, जो मनो-दुश्चरितका अनिष्ट ०—०—०। 'अस्थान है ०, जो काय-सुचरितका अनिष्ट ०—०—०। स्थान है ०, जो काय-सुचरितका इष्ट ०—०—०। 'अस्थान है ०, जो वाक्-सुचरितका अनिष्ट ०—०—०। स्थान है ०, जो वाक्-सुचरितका इष्ट ०—०—०। 'अस्थान है ०, जो मनःसुचरितका अनिष्ट ०—०—०। स्थान है ०, जो मनःसुचरितका इष्ट ०—०—०। 'अस्थान है ०, जो मनःसुचरितका इष्ट ० विपाक हो—०—०। 'अस्थान है ०, जो काय-दुश्चरितसे युक्त होते काया छोड़ मरनेके बाद सुगति = स्वर्गलोकमें उत्पन्न हो, यह स्थान नहीं—यह जानता है। स्थान है ०, जो ० अपाय = दुर्गति = विनिपात, नरकमें उत्पन्न हो—यह स्थान है—यह जानता है। 'अस्थान है ०, जो वाग्-दुश्चरित ० स्वर्गमें —०—०। स्थान है ०, जो वाग्-दुश्चरित ० नरकमें —०—०—०। 'अस्थान है ०, जो मनो-दुश्चरित ० स्वर्गमें —०—०। स्थान है ०, जो मनोदुश्चरित ०—नरकमें —०—०। 'अस्थान है ०, जो काय-सुचरित से युक्त होते, काया छोड़ मरनेके बाद अपाय = दुर्गति = विनिपात = नरकमें उत्पन्न हो—यह स्थान नहीं—जानता है। स्थान है ०, जो काय-सुचरित ०, सुगति, स्वर्गलोकमें उत्पन्न हो—यह स्थान है—यह जानता है। 'अस्थान है ०, जो वाक्-सुचरित ०, नरकमें —०—०। स्थान है ०, जो ० स्वर्गमें—०—०। 'अस्थान है ०, जो मनःसुचरित ०, नरकमें—०—०। स्थान है ०, जो मनःसुचरित ०—स्वर्गमें—०—०।

“जानन्द ! इतनेसे भिन्न स्थान-अस्थानमें कुशल कहा जा सकता है।”



ऐसा कहनेपर लायुष्मान् आनन्दने भगवान्‌को यह कहा—

“आश्चर्य ! भन्ते ! अद्भुत !! भन्ते ! किस नामका भन्ते ! यह धर्म-पर्याय (= धर्म-व्यपदेश ) है ?”

“तो आनन्द ! तू इस धर्मपर्यायको बहुधातुक यह भी धारण कर सकता है । चतुःपरिवर्त यह भी ० । धर्मादृशं यह भी ० । अमृतदुन्दुभि यह भी ० । अनुत्तर-संग्राम-विजय यह भी ० ।”

भगवान्‌ने यह कहा, सन्तुष्ट हो लायुष्मान् आनन्दने भगवान्‌के भाषणको अभिनन्दित किया ।

## ११६-इसिगिलि-सुत्तन्त (३।२।६)

ऋषि-गिरिके प्रत्येककुड

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् राजगृहमें ऋषिगिरि (= इसिगिलि ) पर्वतपर विहार करते थे । तब भगवान्ने मिथुओंको सम्बोधित किया—“मिथुओ !”

“मदन्त !”—( कह ) उन मिथुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“देखते हो, मिथुओ ! तुम इस वैभार पर्वतको ?”

“हाँ, भन्ते !”

“मिथुओ ! इस वैभार पर्वतको ( पहिले ) दूसरीही संज्ञा थी, दूसरीही प्रशंसि (= नाम ) थी ।”

“देखते हो, मिथुओ ! तुम इस पांडव-पर्वतको ?”

“हाँ, भन्ते !”

“मिथुओ ! इस पांडव पर्वतको ( पहिले ) दूसरी ही संज्ञा थी ० ।”

“देखते हो, मिथुओ ! तुम इस वैपुल्य-पर्वतको ?”

“हाँ, भन्ते !”

“मिथुओ ! इस वैपुल्य पर्वतको ( पहिले ) दूसरी ही संज्ञा थी ० ।”

“देखते हो, मिथुओ ! तुम इस गृध्रकूट पर्वतको ?”

“हाँ, भन्ते !”

“मिथुओ ! इस गृध्रकूट पर्वतको ( पहिले ) दूसरी ही संज्ञा थी ० ।”

“देखते हो, मिथुओ ! तुम इस ऋषिगिलि पर्वतको ?”

“हाँ, भन्ते !”

“मिथुओ ! इस ऋषि-गिलि-पर्वतको ( पहिले ) दूसरी ही संज्ञा थी ० । मिथुओ ! पूर्व-कालमें इस ऋषिगिलि पर्वतमें पाँच सौ प्रत्येककुड<sup>१</sup> चिर-निवासी थे । वह इस पर्वतमें प्रवेश करते दिखाई देते थे, प्रविष्ट हो जानेपर नहीं दिखाई पड़ते थे । यह देख मनुष्य कहते यह पर्वत इन ऋषियोंको गिलता (= निगलता ) है, ( इस प्रकार ) ‘ऋषि-गिलि’ (= ऋषियोंको निगलने-वाला ) ‘ऋषि-गिलि’ यही संज्ञा हो गई । मिथुओ ! ( उन ) प्रत्येककुडोंके नाम तुम्हें बतलाता हूँ । मिथुओ ! प्रत्येककुडोंके नाम तुम्हें कीर्तित करता हूँ । मिथुओ ! प्रत्येककुडोंके नाम तुम्हें देशता (= बतलाता ) हूँ, उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

<sup>१</sup> तीन प्रकारके मुक्त पुरुषोंमें एक ।



“अच्छा भन्ते !” — ( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दिया ।

भगवान्‌ने यह कहा —

“भिक्षुओ ! अरिष्ट ( = अरिष्ट ) नामक प्रत्येकबुद्ध इस ऋषिगिरि पर्वतके चिर-निवासी थे । ० उप-अरिष्ट ( = उपरिष्ट ) ० । ० तगर-शिखी ( = नगर-शिखी ) ० । ० यशस्वी ( = यशस्वी ) ० । ० सुदर्शन ( = सुदर्शन ) ० । ० प्रियदर्शी ( = प्रियदर्शी ) ० । ० गंधार ० । ० पिंडोल ० । ० उप-ऋषभ ( = उपाश्रय ) ० । ० नीथ ० । ० तत ० । ० श्रुत-वान् ( = श्रुतवा ) ० । ० भावितात्मा ( = भावितव्य ) ० ।

“जो प्राणिपोंके सार, दुःख-रहित, आशा-रहित, प्रत्येक-बोधि” को प्राप्त हुये ।

उन भगवानी शरोत्तमोंका नाम कहता हूँ, सुनो ।

अरिष्ट, उपारिष्ट, तगर-शिखी ।

यशस्वी, सुदर्शन, प्रियदर्शी, ( यह ) सु-सं-इन्द्र ।

गंधार, पिंडोल, और उपर्यभ ।

नीथ, तत, श्रुतवान्, भावितात्मा ।

शुम्भ, शुभ, मतुल, और अष्टम ।

अष्ट सुमेध, अनिध, सुदाठ ।

( यह ) प्रत्येकबुद्ध भव-बंधन-मुक्त ( हुये )

महानुभाव भिक्षु, भिमा, दो जाली, सुनिके अष्टक

तब कौसल्य, फिर सुबाहु बुद्ध

उपनेमिष, नेमिष उपशान्तचित्त ।

तब धृद्ध और पंडित विरज,

काल, उपकाल, विजित, और जित्

अंग, वंग, और शुभजित् ।

पद्मोने दुःखकी जड़ उपधि ( = लोभ ) को जड़ दिया ।

अपराजितने बार-सेनाको जीता ।

शास्ता, प्रवक्ता, और सभंग, लोमहर्ष,

उर्जागमाय, अस्मित, अनाम्रय ।

मतोमय, मानच्छित्, और यन्कुमान् ।

तब विमुक्त, विमल और केतुमान् ।

केतुम्पराय, और आर्य मातंग ।

तब अच्युत-अच्युतांग, व्यासांग ।

सुमंगल, दुर्धिल, सुप्रतिष्ठित ।

असेय्य, क्षेम्याभिरत, और सोरत ।

दुरन्वय, संघ, और उज्जय भी ।

दूसरे सुनि सेय्य, अनोमनिकम् ।

आनन्द, नन्द, उपनन्द ( यह ) बारह ।

अंतिम शरीरधारी भारद्वाज ।

बोधि, महानाम, और उत्तर भी ।  
 कोसो, शिखो, सुन्दर, भास्वराज ।  
 तिष्ठ, उपतिष्ठ भव-बन्धन-छेदक ।  
 उपशिखो, और वृष्णाछेदक शिखरो ।  
 वीतराग मंगल बुद्ध हुये,  
 दुःखमूल जालिनो ( = वृष्णा ) को छेद करपमने ।  
 उपनीत शांत-पदको प्राप्त हुये ।  
 उपोसथ सुन्दर और सत्य नामवाले ।  
 जेत, जयन्त, पद्म, और उपल ।  
 पद्मोत्तर, रक्षित और पर्वत ।  
 मानसाध्य, वीतराग बोधित ।  
 और सु-वि-मुक्त-चित्त वृष्णा बुद्ध ।  
 यह और दूसरे महासुभाव ।  
 भवबन्धन-मुक्त प्रत्येकबुद्ध ।  
 उन सभी सर्व संसर्गात्मागी ।  
 अरिक्क, निर्वाण-प्राप्त महर्षियोंको वन्दो । ”



## ११७—महा-चत्तारीसक-सुत्तन्त (३।२।७)

ठीक समाधि आदि

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिटिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भवन्त !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

“भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! उपनिषद् ( = रहस्य ) और परिष्कार ( = सहायक सामग्री )-सहित तुम्हें आर्य सम्यक्समाधिको उपदेशता हूँ, उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा, भन्ते !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! क्या है उपनिषद्-परिष्कार-सहित आर्य सम्यक्समाधि ?—जैसे कि सम्यग्-दृष्टि ( = ठीक धारणा ), सम्यग्-संकल्प, सम्यक्वाक्, सम्यक्-कर्मोन्त, सम्यग्-भाजीव, सम्यग्-व्यायाम, सम्यग्-स्मृति । भिक्षुओ ! इन सात अंगों ( = बातों )से चित्तकी एकाग्रता परिष्कृत होती है । भिक्षुओ ! यह उपनिषद्-सहित अथवा परिष्कार-सहित आर्य सम्यक्समाधि कही जाती है । वहाँ, भिक्षुओ ! सम्यग्-दृष्टि पूर्वगामी होती है । किस प्रकार भिक्षुओ ! सम्यग्-दृष्टि पूर्वगामी होती है, मिथ्या दृष्टिको—‘मिथ्या दृष्टि है’—जानता है ? सम्यग्-दृष्टिको—‘सम्यग्-दृष्टि है’—जानता है । यह उसकी सम्यग्-दृष्टि है । क्या है, भिक्षुओ ! मिथ्यादृष्टि ( = छूटी धारणा ) ?—‘दान कुछ नहीं ०’ स्वयं जानकर ० जतलायेंगे’—यह भिक्षुओ ! मिथ्या दृष्टि है । क्या है भिक्षुओ ! सम्यग्-दृष्टि ?—भिक्षुओ ! मैं सम्यग् दृष्टि दो प्रकारकी कहता हूँ । भिक्षुओ ! ( एक ) सम्यग् दृष्टि साक्षव ( = समल ), उपाधि नामक विषयको देनेवाली पुण्य-भागीय है । भिक्षुओ ! ( एक ) सम्यग्-दृष्टि आर्य, अनाक्षव ( = मल रहित ) लोकोत्तर ( = अलौकिक ) मार्गका अंग है । भिक्षुओ ! क्या है ० अनाक्षव सम्यग्-दृष्टि ?—‘दान है ०’ स्वयं जानकर ० जतलायेंगे’... । क्या है, भिक्षुओ ! ० अनाक्षव आर्य सम्यग्-दृष्टि ?—भिक्षुओ ! जो वह आर्य-मार्ग सम्यक् आर्य-चित्त = अनाक्षव-चित्तके आर्यमार्गकी भावना ( = अन्नास ) करते प्रजा, प्रजा-इन्द्रिय, प्रजाबल, धर्मविषय संबोधि-अंग, सम्यग्-दृष्टि मार्गका अंग है... । जो वह मिथ्या दृष्टिके डोहनेके लिये प्रयत्न करता है, और सम्यग्-दृष्टिकी प्राप्तिके लिये, यह सम्यग्-व्यायाम ( = ठीक उद्योग ) है । जो वह स्मृतिपूर्वक मिथ्यादृष्टिको डोहता है, स्मृतिपूर्वक सम्यग्-दृष्टिको ग्रहण कर विहरता है, सो यह सम्यग्-स्मृति है । इस प्रकार यह तीन धर्म ( = बातें ) जैसे

१ देखो पृष्ठ १०० ।

कि-सम्यग्-दृष्टि, सम्यग्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति, सम्यग्-दृष्टिका अनुगमन करते = अनु-परिवर्तन करते हैं; उनमें, मिश्रुओ ! सम्यग्-दृष्टि पूर्वगामी होती है ।

“कैसे मिश्रुओ ! सम्यग्-दृष्टि पूर्वगामी होती है ?—मिथ्या-संकल्पको ‘मिथ्या-संकल्प है’—जानता है । सम्यक्-संकल्पको ‘सम्यक्-संकल्प है’—जानता है; यह उसकी सम्यग्-दृष्टि होती है । क्या है, मिश्रुओ ! मिथ्या-संकल्प ? काम (= विषयका) -संकल्प, व्याघाद (= द्वेष) -संकल्प, विहिंसा (= हिंसा) -संकल्प—यह, मिश्रुओ ! मिथ्या-संकल्प है । क्या है, मिश्रुओ ! सम्यक्-संकल्प ?—मिश्रुओ मैं सम्यक्-संकल्पको दो प्रकारका बतलाता हूँ—( १ ) मिश्रुओ ! सम्यक्-संकल्प साक्षय, ० पुण्य भागीय है; ( २ ) मिश्रुओ ! सम्यक्-संकल्प आर्य, अनास्रव, लोकोत्तर मार्गका अंग है । मिश्रुओ ! क्या है, ० साक्षय सम्यक्-संकल्प ? नैष्काम्य (= निष्कामता) -संकल्प, अ-व्यापाद-संकल्प, अ-हिंसा-संकल्प—यह, मिश्रुओ ! ० साक्षय सम्यक्-संकल्प है । क्या है, मिश्रुओ ० अनास्रव सम्यक्-संकल्प ? मिश्रुओ ! जो आर्यमार्ग-संयत, आर्य-चित्त = अनास्रव-चित्तके आर्य-मार्गकी भावना करते, तर्कवितर्क, संकल्प, अर्पणा, व्यर्पणा (= तन्मायता), चित्तका अभि-निरोपण, वायिक संस्कार—यह है, मिश्रुओ ! ० अनास्रव सम्यक्-संकल्प । जो मिथ्या संकल्पके ग्रहाण (= नाश) और सम्यक्-संकल्पकी प्राप्तिके लिये, व्यायाम (= उद्योग) करता है; यह सम्यग्-व्यायाम है । यह जो स्मृति पूर्वक मिथ्या-संकल्पको छोड़ता है, और स्मृति-पूर्वक सम्यक्-चित्तको ग्रहणकर विहरता है,—यह सम्यक्-स्मृति है । इस प्रकार यह तीन धर्म, जैसे कि—सम्यग्-दृष्टि, सम्यग्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति—सम्यक्-संकल्पका अनुगमन = अनु-परिवर्तन करते हैं । वहाँ, मिश्रुओ ! सम्यग्-दृष्टि-पूर्वगामी है ।

“कैसे मिश्रुओ ! सम्यग्-दृष्टि पूर्वगामी होती है ?—मिथ्या-वचनको ‘मिथ्यावचन’—जानता है; सम्यग् (= सत्य) वचन को ‘सम्यग्-वचन है’—जानता है—सो यह होती है, उसकी सम्यग्-दृष्टि । क्या है, मिश्रुओ ! मिथ्यावचन ?—दुष्टावाद (= झूठ), चुगली, कटुवचन, षड्वाद—यह है, मिश्रुओ ! मिथ्यावचन । क्या है, मिश्रुओ ! सम्यग्-वचन ?—मिश्रुओ ! सम्यग्-वचनको मैं दो प्रकारका बतलाता हूँ—( १ ) सम्यग्-वचन, साक्षय, विपक उपधिसे पुण्यभागीय होता है; ( २ ) सम्यग्-वचन, आर्य = अनास्रव, लोकोत्तर-मार्गका अंग है । क्या है मिश्रुओ ! ० साक्षय सम्यग्-वचन ?—झूठ-चुगली-कटुवचन-षड्वादसे विरत होना—यह है, मिश्रुओ ! ० साक्षय सम्यग्-वचन । क्या है, मिश्रुओ ! अनास्रव सम्यग्-वचन ?—मिश्रुओ ! जो आर्यमार्ग-संयत आर्य-चित्त = अनास्रव-चित्तके आर्य-मार्गकी भावना करते, चार वायिक दुष्कर्मों (= झूठ, चुगली, कटुवचन, षड्वाद) से अ-रति, वि-रति = प्रति-वि-रति = निरमग—यह है, मिश्रुओ ! ० अनास्रव सम्यग्-वचन । यह जो मिथ्या-वचनके ग्रहाण, और सम्यग्-वचनकी प्राप्तिके लिये व्यायाम करता है; यह सम्यग् व्यायाम है । यह जो स्मृति-पूर्वक मिथ्या-वचन को छोड़ता है; और स्मृति पूर्वक सम्यग्-वचनको ग्रहण कर विहरता है; यह सम्यक्-स्मृति है । इस प्रकार यह तीन धर्म ० ।

“कैसे, मिश्रुओ ! सम्यग्-दृष्टि पूर्वगामी होती है ?—मिथ्याकर्मन्त (= अनुचित कर्म) को ‘मिथ्या कर्मन्त है’—जानता है । सम्यक्-कर्मन्तको ‘सम्यक् कर्मन्त है’—जानता है; सो यह होती है, उसकी सम्यग्-दृष्टि । क्या है, मिश्रुओ ! मिथ्याकर्मन्त ?—हिंसा, चोरी, व्यभिचार—यह है, मिश्रुओ ! मिथ्याकर्मन्त । क्या है, मिश्रुओ ! सम्यक्-कर्मन्त ?—मिश्रुओ ! सम्यक्-कर्मन्तको मैं दो प्रकारका बतलाता हूँ—( १ ) सम्यक्-कर्मन्त साक्षय ०; ( २ ) सम्यक्-कर्मन्त अनास्रव ० । क्या है, मिश्रुओ ! ० साक्षय सम्यक्-कर्मन्त ? हिंसा-चोरी-व्यभिचारसे



विरत होना—० । क्या है, मिश्रुओ ! ० अनाश्रव सम्यक्-कर्मन्त !—० जो ० आर्यभार्यकी भावना करते तीन काविक दुष्कर्मोंसे ० विरति ०—० । वह जो मिथ्या कर्मन्तके प्रहाण और सम्यक् कर्मन्तकी प्राप्तिके लिये व्यायाम करता है; वह सम्यग् व्यायाम है । ० स्मृति-पूर्वक सम्यक् वचनको ग्रहण कर विहरता है; वह सम्यक्-स्मृति है । इस प्रकार यह तीन धर्म ० ।

“कैसे, मिश्रुओ ! सम्यग्-दृष्टि पूर्वगामी होती है ?—वह सम्यग्-आजीवको ‘सम्यग्-आजीव है’—जानता है; मिथ्या-आजीवको ‘मिथ्या-आजीव है’—जानता है—० यह ० सम्यग्-दृष्टि । क्या है ० मिथ्या-आजीव ?—कुहना ( = पाखंड द्वारा धंधना ), लयना ( = धात धनाना ), वैमिचिकता ( = दैवज्ञका पेसा ), निष्पेक्षिकता ( = जादूगरी ), कामसे कामकी खोज—यह है, मिश्रुओ ! मिथ्या-आजीव । क्या है, ० सम्यग्-आजीव ?—० दो प्रकारका बतलाता हूँ—( १ ) सम्यग्-आजीव साक्षर ० ; ( २ ) सम्यग्-आजीव अनाश्रव । क्या है ० साक्षर सम्यग्-आजीव ?—मिश्रुओ ! यहाँ आर्यभार्यक मिथ्याजीवको जोक सम्यग्-आजीवसे जीविका करता है—यह है, मिश्रुओ ! ० साक्षर सम्यग्-आजीव । क्या है, ० अनाश्रव सम्यग्-आजीव ?—० जो ० आर्यभार्यकी भावना करते, मिथ्या-आजीवसे ० विरति ०—० । ० मिथ्याजीवके प्रहाण और सम्यग्-आजीवकी प्राप्तिकेलिये व्यायाम करता है; वह सम्यग्-व्यायाम है । ० स्मृति-पूर्वक सम्यग्-आजीवको ग्रहणकर विहरता है, यह सम्यक्-स्मृति है । इस प्रकार यह तीन धर्म ० ।

“कैसे मिश्रुओ ! सम्यग्-दृष्टि पूर्वगामी होती है ?—

मिश्रुओ ! सम्यग्-दृष्टि इसको सम्यक्-संकल्प होता है । सम्यक्-संकल्पको सम्यग्-वचन ०, सम्यग्-वचनको सम्यक्-कर्मन्त ०, सम्यक्-कर्मन्तको सम्यग्-आजीव ०, सम्यग्-आजीवको सम्यग्-व्यायाम ०, सम्यग्-व्यायामको सम्यक्-स्मृति ०, सम्यक्-स्मृतिको सम्यक्-समाधि ०, सम्यक्-समाधिको सम्यग्-ज्ञान ०, सम्यग्-ज्ञानको सम्यग्-विमुक्ति होती है । इस प्रकार, मिश्रुओ ! आठ अंगोंसे युक्त है, शेष ( = निर्वाण-पदका उन्मीदवार ) की प्रातिपद ( = मार्ग ) ; और दश अंगोंसे युक्त है अर्हत् । वहाँ, मिश्रुओ ! ज्ञानसे बहुतसी घुराइयाँ ( = अ-कुशल धर्म ) चली जाती हैं, ( और ) भावनाकी परिपूर्णताको प्राप्त होती है । यहाँ सम्यग्-दृष्टि पूर्वगामी होती है ।

“कैसे, मिश्रुओ ! सम्यग्-दृष्टि पूर्वगामी होती है ?—मिश्रुओ ! सम्यग्-दृष्टिसे मिथ्या-दृष्टि नष्ट ( = निजीर्ण ) होती है, और मिथ्या-दृष्टिके कारण जो अनेक पाप, घुराइयाँ ( = अकुशल-धर्म ) होती हैं वह भी इसके नष्ट होते हैं । सम्यग्-दृष्टिके कारण अनेक भलाइयाँ ( = कुशल धर्म ) भावनाकी परिपूर्णताको प्राप्त होती है । मिश्रुओ ! सम्यक्-संकल्पसे मिथ्या-संकल्प नष्ट होती है, और मिथ्या-संकल्पके कारण जो अनेक पाप = घुराइयाँ होती हैं, वह भी इसके नष्ट होते हैं । सम्यक्-संकल्पके कारण अनेक भलाइयाँ भावनाकी परिपूर्णताको प्राप्त होती हैं । ० सम्यग्-वचन ० । ० सम्यक्-कर्मन्त ० । ० सम्यग्-आजीव ० । ० सम्यग्-व्यायाम ० । ० सम्यक्-स्मृति ० । ० सम्यक्-समाधि ० । ० सम्यग्-ज्ञान ० । ० सम्यग्-विमुक्ति ० ।

“इस प्रकार, मिश्रुओ ! कुशल ( = अच्छे )-पक्षके धीस, और अकुशल ( = बुरे ) पक्षके धीस, ( दोनों मिलकर ) महा-वृत्तारीसक ( = महान् चञ्चालीस ) धर्म-पर्याय प्रचारित ( = प्रवर्तित ) किया गया, ( जो कि ) किसी भ्रमण, बाह्यण, देव, मार, ब्रह्मासे, या लोकमें किसीसे प्रतिषर्ण ( = मोक्ष ) नहीं किया जा सकता । मिश्रुओ ! जो कोई भ्रमण वा बाह्यण इस महावृत्तारीसक-धर्म-पर्याय ( = ० धर्मोपदेश )को गहणीय = निन्दनीय समझेगा; उसके लिये इसी समय ( = दृष्ट-धर्ममें ) धर्मोत्तारी दस बाद-अनुवादोंमें निन्दाका पात्र होगा—( १ ) यदि आप सम्यग्-दृष्टिको निन्दते हैं; तो जो मिथ्या-दृष्टि भ्रमण बाह्यण है, वह आपके पूज्य-

प्रशंसनीय होंगे । ( ३ ) यदि आप सम्यक्संकल्पको निन्दते हैं, तो जो मिथ्या-संकल्प अमण-  
ग्राह्य हैं, वह आपके पूज्य-प्रशंसनीय होंगे । ( ३ ) ० सम्यग्-वचन ० । ( ४ ) ० सम्यक्-  
कर्मान्त ० । ( ५ ) ० सम्यग्-आजीव ० । ( ६ ) ० सम्यग्-व्यायाम ० । ( ७ ) ० सम्यक्-स्मृति  
० । ( ८ ) ० सम्यक्-समाधि ० । ( ९ ) ० सम्यग्-ज्ञान ० । ( १० ) ० सम्यग्-विमुक्ति ० ।  
मिश्रुओं ! जो कोई ० निन्दनीय समझेगा, ० निन्दाका पात्र होगा । जो कि उत्कल-निवासी ०  
अहेतुवाद = अ-क्रियवाद = नास्तिकवादके माननेवाले, उत्कल(-देश) निवासी वृत्त्य (= वर्ष)  
और भञ्ज (= नश्य) वे, वह भी ( इस ) महा-वत्तारोसक धर्मपरायको गर्हणीय = निन्दनीय  
नहीं समझते । सो किमहेतु ? निन्दा, रोष, उपालम्भके भयसे । ”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन मिश्रुओंने भगवान्के भाषणको अभिनन्दित किया ।



## ११८-श्रानापान-सति-सुचन्त ( ३।२।८ )

प्राणपान । ध्यान

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान्, आयुष्मान् सारिपुत्र, ० महामौद्गल्यायन, ० महाकाश्यप, ० महाकात्यायन, ० महाकोट्टित ( = कोटिल ), ० महाकपिन, ० महासुन्द, ० अनुरुद्ध, ० रेवत, आनन्द, और दूसरे अभिज्ञात ( = प्रसिद्ध ) अभिज्ञात स्वविर आचर्यो ( = शिष्यों ) के साथ आश्वस्तीमें, मृगारमाताके प्रासाद, पूर्वरात्रमें विहार करते थे ।

उस समय स्वविर ( = बृद्ध )-भिक्षु नये भिक्षुओंको उपदेश = अनुशासन करते थे । कोई कोई स्वविर भिक्षु दस भिक्षुओंको भी उपदेश ० करते थे, कोई कोई स्वविर भिक्षु बीस भिक्षुओंको भी ०, ० तीस ०, चालीस भिक्षुओंको भी ० । स्वविर भिक्षुओं द्वारा उपदेशित = अनुशासित हो, वह नये भिक्षु अच्छी तरह ( = उदार ) पूर्वके बाद पीछे जानेवाले ( विषय )को समझते थे ।

उस समय, उपोसथको पंचदशी प्रवारणाकी पूर्णिमा<sup>१</sup>की रातको, भगवान् भिक्षुसंघसे घिरे सुली जगहमें बैठे थे । तब भगवान्ने चुपचाप ( बैठे ) भिक्षुसंघको देखकर, भिक्षुओंको संबोधित किया—

“भिक्षुओ ! मैंने इस प्रतिपद् ( = मार्ग )के लिये उद्योग किया है, इस प्रतिपद्के लिये मैं उद्योग-युक्त-चिन्तवाला रहा हूँ । इसलिये भिक्षुओ ! संतुष्ट ( = सोमन ) हो, अप्राप्तकी प्राप्ति = अनधिगतके अधिगत, न-साक्षात्कार कियेके साक्षात्कारके लिये और भी उद्योग ( = वीर्यात्म ) करो । भिक्षुओ ! यही आश्वस्तीमें मैं कौमुदी ( = चाँदनी, पूर्णिमा ) चातुर्मासीको वितार्ज्ज्वा ।”

जनपदवासी ( = देहातके ) भिक्षुओंने सुना, कि भगवान् कौमुदी चातुर्मासी ( = कार्तिक-पूर्णिमा )को आश्वस्तीमें ही वितार्ज्ज्वा । तब जनपदवासी भिक्षु भगवान्के दर्शनके लिये आश्वस्तीमें जाने लगे । वह स्वविर भिक्षु और भी सन्तुष्ट हो नये भिक्षुओंको उपदेश = अनुशासन करते । कोई कोई ० दस भिक्षुओंको भी ० । ० । ० चालीस भिक्षुओंको भी ० । ० वह नये भिक्षु ० और भी ० समझते थे ।

उस समय उपोसथको पंचदशी पूर्णो चातुर्मासी कौमुदी पूर्णिमाकी रातको भगवान् भिक्षु-संघसे घिरे सुली जगहमें बैठे थे । तब भगवान्ने चुपचाप ( बैठे ) भिक्षु-संघको देख कर, भिक्षुओंको संबोधित किया—

“भिक्षुओ ! यह परिषद् प्रलाप ( = शोर-गुल )-रहित है, = निरप्रलाप है”, सारमें प्रतिष्ठित, शुद्ध है यह परिषद्, उस प्रकारकी, भिक्षुओ ! यह भिक्षु-संघ है । उस प्रकारकी,

<sup>१</sup> आश्विन पूर्णिमा, जिस दिन भिक्षुओंका वर्षावास समाप्त होता है ।

मिथुनो ! यह परिपद् है इस प्रकारकी यह परिपद् आहुणेय = पाहुणेय (= कतिवि सत्कारके योग्य), दक्षिणेय (= दान-पात्र) संजलिय-करणीय (= हाथ जोड़ने योग्य), लोकमें पुण्यके (बोले)का अनुपम क्षेत्र (क्षेत्र) है। मिथुनो ! (यह) उस प्रकारका मिथु-संध है, ० उस प्रकारकी परिपद् है, जैसी परिपद्को थोड़ा देने पर बहुत (फल) होता है; बहुत (दान) देने पर बहुत (= फल) होता है।... (यह) उस प्रकारका मिथु-संध है, (यह) उस प्रकारकी परिपद् है, जिस प्रकार (की परिपद्)का लोगोंको दर्शन भी दुर्लभ है। ० जिस प्रकार (की परिपद्)को यौजनों दूर होने पर (पाधेयकी) पोटली बाँधकर भी जाना योग्य है।... मिथुनो ! इस मिथु-संधमें (प्रज्ञावर्ष) वात-समाप्त किये, कृतकृत्य, भारमुक्त, भद्र-अर्थ (= निर्वाण)को-प्राप्त, भव-बंधन-मुक्त सम्पन्न-ज्ञान द्वारा मुक्त क्षोणाश्रय (= मल-रहित) अर्हत् मिथु है।... मिथुनो ! इस मिथु-संधमें ऐसे मिथु है, जो पाँच अक्षर-आगीय-संयोजनोक्ति अक्षरे, औपपातिक (= देव) हो वहाँ (स्वर्गलोकमें) निर्वाण प्राप्त करनेवाले, उस लोकमें वहाँ न आनेवाले (= अनागामी) है।... ० ऐसे मिथु है, जो तीन संयोजनोक्ति अक्षरे राग-द्वेष-मोहके निर्वल (= तनु) हो जानेसे सद्गुणगामी है, (यह) एक ही बार (और) इस लोकमें बाहर दुष्कृष्ण अन्त करेंगे। मिथुनो ! इस मिथु-संधमें इस प्रकारके भी मिथु है, जो तीन संयोजनोक्ति अक्षरे स्रोत-आपन्न, (निर्वाण-भावेने) न-पतित-होनेवाले, निष्पत्ति (= निश्चित), सम्बोधि-परायण (= परमज्ञानको प्राप्त करनेवाले) है। ० जो चारों स्मृति-प्रस्थानकी भावनामें तत्पर हो विहरते हैं। ०। ० जो चार सत्य-प्रधानोंकी भावनामें तत्पर हो विहरते हैं। ०। ० चार अक्षिपादों ०। ०। ० चार इन्द्रियों ०। ०। ० पाँच प्रलयों ०। ०। ० सात बोध्यगों ०। ०। ० आर्य-अष्टांगिक-मार्ग ०। ०। ० मैत्री-भावना तत्पर हो विहरते हैं। ०। ० कल्याण-भावना ०। ०। ० मुदिता-भावना ०। ०। ० उपेक्षा-भावना ०। ० अनुम-भावना ०। ०। ० अनित्य-संज्ञा ०। ०। ० आनापान-सति (= प्राणापान)-भावना ०। ०।

“मिथुनो ! आनापानसतिकी भावना करनेपर, (उसके अन्वाप्तको) बढ़ानेपर वह महा-फल प्रद = महापुण्यदायक होती है। मिथुनो ! आनापान-सतिकी भावना = बहुलीकरण करनेपर चार स्मृति-प्रस्थानोंको परिपूर्ण करती है। भावना = बहुलीकरण करनेपर चार स्मृति-प्रस्थान सात बोध्यगोंको परिपूर्ण करते हैं। ० सात बोध्यग विद्या और विमुक्तिको परिपूर्ण करते हैं। ०

“मिथुनो ! किस प्रकार भावना = बहुलीकरण करनेपर, आनापानसति महाफलप्रद होती है ?—मिथुनो ! अरण्य-वृक्ष मूल या शृङ्खलागारमें बैठता है आसन भार, कायाको सीधा रख, स्मृतिको सम्मुख उपस्थित कर, वह स्मृति (= होत) पूर्वक श्वास लेता है, स्मृतिपूर्वक श्वास छोड़ता है। दीर्घ श्वास लेते समय—‘दीर्घ श्वास ले रहा हूँ’—जानता है। दीर्घ श्वास छोड़ते ०। हस्य-श्वास लेते समय—‘हस्य श्वास ले रहा हूँ’—जानता है। हस्य-श्वास छोड़ते ०। ‘सारी काया (की स्थिति)को अनुभव (= ध्यायन) करते श्वास लूँगा’—सोचता है। ० श्वास छोड़ूँगा’—सोचता (= अन्वाप्त करता) है। ‘कायिक संस्कारों (= हर्षतों, क्रियाओं)को रोक कर श्वास लूँगा’—अन्वाप्त करता है। ० श्वास छोड़ूँगा’—अन्वाप्त करता है। ‘प्रीति-अनुभव करते आश्वास (= श्वास लेना) ० प्रश्वास (= श्वास छोड़ना) लूँगा’—अन्वाप्त करता है। ० सुख-अनुभव करते ०। ०। ० चित्त-संस्कारों (= चित्तकी क्रियाओं)को अनुभव करते ०। ०। ० चित्त-संस्कारको रोक कर ०। ०। ० चित्तको अनुभव करते ०। ०। ० चित्तको प्रमुदित करते ०। ०। ० चित्तको समाहित करते ०। ०। ० चित्तको विमुक्त करते ०। ०। ० (सभी वस्तुओंके) अनित्य (होने)का



ब्याल करते ० । ० । ० विरागका ब्याल करते ० । ० । ० निरोधका ब्याल करते ० । ० । ०  
प्रतिनिवृत्तर्ग ( = त्याग ) का ब्याल करते ० । ० । ० मिश्रजो ! इस प्रकार भावित = बहुलीकृत  
आनापानसति महाफलप्रद = महानृधंस होती है ।

“मिश्रजो ! किस प्रकार भावित = बहुलीकृत आनापानसति चार स्मृति प्रस्थानोंको  
परिपूर्ण करती है ?—( १ ) जिस समय मिश्रजो ! मिश्र दीर्घ श्वास लेते ‘दीर्घ श्वास ले रहा  
हूँ’—जानता है ! दीर्घ श्वास छोड़ते ० । इस-श्वास लेते ० । इस श्वास छोड़ते ० सारी काया-  
को अनुभव करते ० । ० । कायिक संस्कारोंको रोक कर ० । ० । उस समय, मिश्रजो ! मिश्र  
लोकमें अभिप्पा ( = मोह ) और दौर्मनस्यको हटाकर, स्मृति-संप्रज्ञप्ति-पूर्वक स्मृतिमान् हो,  
कायामें कायानुपश्यी होकर विहरता है । मिश्रजो ! इस आश्वास-प्रश्वासको मैं कायामें दूसरी  
काया कहता हूँ । इसलिये उस समय, मिश्रजो ! मिश्र ० कायानुपश्यी होकर विहरता है ।  
( २ ) जिस समय मिश्रजो ! मिश्र प्रीति अनुभव करते ० । ० । ० सुख ० । ० । ० चित्त-  
संस्कारोंको अनुभव करते ० । ० । ० चित्त-संस्कारोंको रोक कर ० । ० । उस समय, मिश्रजो !  
मिश्र लोकमें अभिप्पा और दौर्मनस्यको हटाकर, स्मृति-संप्रज्ञप्ति-पूर्वक स्मृतिमान् हो, वेदनाओंमें  
वेदनानुपश्यी होकर विहरता है । मिश्रजो ! आश्वास-प्रश्वासको इस प्रकार अच्छी तरह मनमें  
करनेको मैं वेदनाओंमें इसे एक वेदना कहता हूँ । इसलिये उस समय मिश्रजो ! मिश्र ० वेदनानु-  
पश्यी होकर विहरता है । ( ३ ) जिस समय मिश्रजो ! मिश्र चित्तको अनुभव करते ० । ० । चित्त  
को प्रमुदित करते ० । ० । चित्तको समाहित करते । ० चित्तको विमुक्त करते ० । उस समय मिश्रजो !  
मिश्र ० स्मृतिमान् हो चित्तमें चित्तानुपश्यी होकर विहरता है । ( ४ ) जिस समय मिश्रजो !  
मिश्र अनित्यका ब्याल करते ० । ० विरागका ब्याल करते ० । ० निरोधका ब्याल करते ० । ०  
प्रतिनिवृत्तर्गका ब्याल करते ० । उस समय, मिश्रजो ! मिश्र ० स्मृतिमान् हो धर्मांमें धर्मानुपश्यी  
होकर विहरता है । सो वह अभिप्पा-दौर्मनस्योकि नाशको प्रज्ञासे देख देखकर, अच्छी तरह...  
उपेक्षित होती है । इसलिये, मिश्रजो ! उस समय मिश्र ० स्मृतिमान् हो धर्मांमें धर्मानुपश्यी  
होकर विहरता है । मिश्रजो ! इस प्रकार भावित = बहुलीकृत आनापानसति चार स्मृतिप्रस्थानों  
को परिपूर्ण करती है ।

“मिश्रजो ! किस प्रकार भावित = बहुलीकृत चार स्मृतिप्रस्थान सात बोध्मर्गोंको परिपूर्ण  
करते हैं ?—( १ ) मिश्रजो ! जिस समय मिश्र ० स्मृतिमान् हो कायामें कायानुपश्यी हो विहरता  
है, उस समय इसकी स्मृति उपस्थित = असेमुपित रहती है । जिस समय मिश्रजो ! मिश्रकी स्मृति  
उपस्थित ० रहती है, उस समय वह मिश्र स्मृति-संबोध्यंगमें लग्न रहता है, उस समय मिश्र  
स्मृति संबोध्यंगकी भावना करता है । उस समय भावना द्वारा मिश्रका स्मृति-संबोध्यंग परिपूर्ण  
होता है । ( २ ) वह वहाँ वहाँ विहार करते उस धर्मकी प्रज्ञासे ( = विचयन = ज्ञान-वीर्य )  
प्रविचयन = सीमासन करता है । जिस समय ० वहाँ वहाँ ० धर्मकी प्रज्ञासे विचयन ० करता है,  
उस समय वह मिश्र धर्म-विचय-संबोध्यंगमें लग्न रहता है, उस समय मिश्र धर्म-विचय सं० भावना  
करता है । उस समय भावना द्वारा मिश्रका धर्म-विचय-संबोध्यंग परिपूर्ण होता है । ( ३ ) उस  
धर्मकी प्रज्ञासे विचयन ० करते ० उस मिश्रने वीर्य ( = उद्योग ) आरम्भ किया होता है । ( वह )  
मिश्र उस समय वीर्य-संबोध्यंगकी भावना करता हुआ होता है । उस समय भावनाद्वारा मिश्रका  
वीर्य-संबोध्यंग परिपूर्ण होता है । ( ४ ) आरब्धवीर्य ( = उद्योगी )को निराभिप ( = चिन्तिते  
परेकी ) प्रीति उत्पन्न होती है । जिस समय ० आरब्ध-वीर्य मिश्रकी निराभिपदीति उत्पन्न होती  
है, उस समय मिश्र प्रीति-संबोध्यंगकी आरंभ किया होता है । उस समय मिश्र प्रीति संबो-

ध्वंगकी भावना करता है । ० उस समय भावना द्वारा मिथुका प्रीति संबोध्वांग परिपूर्ण होता है । ( ५ ) प्रीतिमान् ( साधक ) की काया और चित्त भी प्रबन्ध ( = शांत ) होता है ०<sup>१</sup> प्रबन्ध-संबोध्वांग परिपूर्ण होता है । ( ६ ) प्रबन्ध काय और सुखोक्ता चित्त समाहित ( = समाधि प्राप्त = एकाग्र ) होता है ०<sup>२</sup> समाधि-संबोध्वांग परिपूर्ण होता है । ( ७ ) वह जैसे जैसे समाहित चित्त अच्छी तरह उपेक्षायुक्त होता है । जिस समय, मिथुओ ! मिथु जैसे जैसे अच्छी तरह उपेक्षा-युक्त होता है । मिथुने उस समय उपेक्षा-संबोध्वांगको आरंभ किया होता है । ०<sup>३</sup> उस समय मिथुका उपेक्षा-संबोध्वांग परिपूर्ण होता है ! मिथुओ ! जिस समय मिथु ० स्मृतिमान् हो वेदनाओंमें वेदनानुपश्यी, चित्तमें चिंतानुपश्यी, धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है; उस समय उसको स्मृति उपस्थित = अ-संमुचित होती है ०<sup>४</sup> उस समय मिथुका उपेक्षा-संबोध्वांग परिपूर्ण होता है । मिथुओ ! इस प्रकार भावित = बहुलीकृत चारों स्मृतिप्रख्यापन सात बोध्वांगोंको परिपूर्ण करते हैं ।

“मिथुओ ! किस प्रकार भावित = बहुलीकृत सात बोध्वांग विद्या, विमुक्तिको परिपूर्ण करते हैं ?—यहाँ, मिथुओ ! मिथु विवेक-विराग-निरोधपर अवलंबित तत्त्वा त्वाग ( = व्यवसर्ग ) परिणामवाले स्मृति-संबोध्वांगकी भावना ( = अभ्यास ) करता है । ० धर्म विषय ० । ० वीर्य ० । ० प्रीति ० । ० प्रबन्ध ० । ० समाधि ० । ० उपेक्षा ० । मिथुओ ! इस प्रकार भावित = बहुलीकृत होनेपर सात संबोध्वांग विद्या और विमुक्तिको परिपूर्ण करते हैं”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन मिथुओंने भगवान्के भाषणको अमिर्तदित किया ।

<sup>१</sup> ऊपर जैसे, प्रीतिकी जगह प्रबन्धि रखकर । <sup>२</sup> ऊपर जैसे, प्रबन्धिकी जगह समाधि रखकर ।

<sup>३</sup> ऊपर जैसे, समाधिकी जगह उपेक्षा रखकर । <sup>४</sup> ऊपरकी भावति ।



## ११६-कायगता सति-मुत्तन्त (३।२।६)

काया योग

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथापिटिकके वाराम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब, भोजनोपरान्त उपस्थान-शालामें एकत्रित बैठे बहुतसे भिक्षुओंकी आपसमें यह बात शुरू हुई—“आश्चर्य ! आधुसो ! अद्भुत !! आधुसो ! जो उन जाननेवाले, देखनेवाले-भगवान् भर्तृव्य सम्यक्संबुद्धने कहा है, कि कायगतासति (= कायगत स्मृति ) भावित = बहुलीकृत होनेपर महाफलप्रद = महानृपांस होती है ।”

उन भिक्षुओंकी आपसमें यह कथा (= बात ) हो रही थी । तब भगवान् सार्वकाल स्थानसे उठकर, जहाँ उपस्थान-शाला थी, वहाँ गये । जाकर बिछे आसनपर बैठे । बैठकर भगवान् ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

“भिक्षुओ ! इस समय क्या बात ले कर तुम बैठे थे ? तुम्हारी आपसमें क्या बात हो रही थी ?”

“मन्ते ! भोजनोपरान्त यहाँ उपस्थानशालामें बैठे हमलोगोंकी आपसमें यह बात शुरू हुई— ० महानृपांस होती है । मन्ते ! हमारी आपसमें यह बात हो रही थी, कि भगवान् जा गये ।”

“भिक्षुओ ! किस प्रकार भावित = बहुलीकृत होनेपर कायगत-स्मृति महाफलप्रद ० होती है ?—यहाँ, भिक्षुओ ! भिक्षु वरण्य ० <sup>१</sup> कायिक संस्कारोंको रोककर ० इवास छोड़ेंगा—<sup>२</sup> सीमता है । इस प्रकार प्रमाद-रहित, तत्पर और संबन्धयुक्त हो विहरते उसके जो लोभपूर्ण स्वर-संकल्प थे, वह नष्ट होजाते हैं । उनके नष्ट होनेपर अपने भीतर ही शिथ स्थित होता है, बैठ जाता है, एकत्र होता है = समाहित होता है । भिक्षुओ ! इस प्रकार भिक्षु कायगत-स्मृतिकी भावना करता है ।

“और फिर, भिक्षुओ ! भिक्षु जानते हुए ‘जाता हूँ’ जानता है ० <sup>३</sup> वैसे ही वैसे जानता है । इस प्रकार प्रमाद-रहित ० समाहित होता है । भिक्षुओ ! इस प्रकार भी भिक्षु कायगत-स्मृतिकी भावना करता है ।

“और फिर, भिक्षुओ ! भिक्षु जानते हुये गमन-आगमन करता है ० <sup>४</sup> जागता, योक्ता, लुप रहता है । इस प्रकार प्रमाद-रहित ० ।

“और फिर, भिक्षुओ ! भिक्षु पैरके तलवेसे ऊपर ० <sup>५</sup> वह तंहुल है । ० इस काया में हैं ० । इस प्रकार प्रमाद-रहित ० ।

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ ४९१ ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ ४९-२७ ।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ १५ ।

“और फिर, मिथुनो ! मिथु इस कायाको ( इसकी ) स्थितिके अनुसार ०<sup>१</sup> काटकर चौरस्तेपर बैठा हो । ऐसे ही मिथुनो ! ० रचनाके अनुसार देखता है ०<sup>१</sup> । इस प्रकार प्रमाद-रहित ० ।

“और फिर, मिथुनो ! मिथु एक दिनके भरें ०<sup>२</sup> इससे न घब सकनेवाली है । इस प्रकार प्रमाद-रहित ० ।

“और फिर, मिथुनो ! मिथु कौनोंसे श्रावे जाते ०<sup>३</sup> इसी अपन कायापर घटावे—यह भी काया ० । इस प्रकार प्रमाद-रहित ० ।

“और फिर, मिथुनो ! मिथु मांस-लहू-नखोंसे घेरे ०<sup>४</sup> फेंकी देले ० । इस प्रकार प्रमाद-रहित ० ।

“० मांस-रहित लोहू लगे ०<sup>५</sup> ( अपनी ) कायापर घटावे ० । इस प्रकार प्रमाद-रहित ० ।

“० शंखके समान वर्णवाली सफेद हड्डी युक्तले शरीर ०<sup>६</sup> कृणुं होंगई हड्डियोंवाले ० । इस प्रकार प्रमाद-रहित ० ।

“और फिर, मिथुनो ! मिथु-कामोंसे विरहित ०<sup>७</sup> प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । वह इसी कायाको विवेकसे उत्पन्न प्रीति और सुखसे अभिरुचि-परिस्फुरित = परिस्फुरित = पूर्ण करता है, व्यास करता है<sup>८</sup>, इसके शरीरका कोई भी भाग विवेक-अप्रीति-सुखसे अव्यास नहीं रहता ।

“जैसे, मिथुनो ! चतुर नापित ( = नहापक, नहलानेवाला ) या नापितका अन्तर्वासी काँसेकी बालीमें स्नानचूर्ण डालकर पानीका छीटा दे दे ( उसे ) मिगोवे । सो वह स्नान-पिंडी स्नेह ( = गोलपन )से अनुगत, परिगत चारों ओर भीतर बाहर स्नेहसे व्यास हो, किन्तु पधरती न हो; इसी प्रकार मिथुनो ! मिथु इसी कायाको विवेकसे उत्पन्न प्रीति और सुखसे ० । इस प्रकार प्रमाद-रहित ० ।

“और फिर, मिथुनो ! चित्तके और विचारके श्रांत होनेपर ०<sup>९</sup> द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है, वह इसी कायाको समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुखसे ० व्यास करता है । उसके शरीरका कोई भी भाग समाधि-अप्रीति-सुखसे अव्यास नहीं रहता ।

“जैसे, मिथुनो ! पातालार्क, १ गंभीर उदक-हृद ( = जलकुंड ) हो । उसमें न पूर्वसे जल आनेका भारी हो, न पश्चिम ०, न दक्षिण ०, न उत्तर ० । दैव भी समय समयपर ठीकसे जलधारा उसमें न डाले, सो भी उस उदक-हृदसे शीतल जलकी धार फूट-निकल, उसी उदक-हृदको शीतल जल से अभिरुचि-परिस्फुरित, परिपूर्ण-परिस्फुरित करे । उस उदक-हृदका कोई भी भाग शीतल-जल से अव्यास नहीं रहे । इसी प्रकार, मिथुनो ! मिथु इसी कायाको समाधि-अप्रीति-सुखसे ० । इस प्रकार प्रमाद-रहित ० ।

“और फिर, मिथुनो ! मिथु प्रीतिसे विरक्त हो ०<sup>१०</sup> तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । वह इसी कायाको प्रीति-रहित सुखसे ० व्यास करता है । ० कोई भी भाग प्रीति-रहित-सुखसे अव्यास नहीं रहता ।

“जैसे, मिथुनो ! उत्पलिनी<sup>१</sup>, पद्मिनी, पुंडरीकिनीमें कोई कोई उत्पल, पद्म, या पुंडरीक उदकमें उत्पन्न, उदकमें वर्धित, उदकसे बाहर न निकल भीतर हुये ही पोषित होते हैं । वह जड़ से चोटी तक शीतल जलसे ० व्यास होते हैं । उस उत्पल, पद्म या पुंडरीककी सारी कायाका कोई भी भाग शीतल जलसे अव्यास नहीं होता । इसी प्रकार, मिथुनो ! मिथु इसी कायाको प्रीति-

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ १५ ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ १६-१७ ।

<sup>३</sup> नील कमलका समूह उत्पलिनी, लाल कमलका समूह पद्मिनी, श्वेत कमलका समूह पुंडरीकिनी ।



रहित सुखसे ० । इस प्रकार प्रमाद-रहित ० ।

“और फिर मिथुनो ! मिथु सुख और दुःखके परित्यागसे ० । चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । वह इसी कायाको परिशुद्ध = पर्यवदात चित्तसे व्यास कर बैठता है । कोई भी भाग परिशुद्ध ० चित्तसे अ-व्यास नहीं रहता ।

“जैसे, मिथुनो ! ( कोई ) पुरुष श्वेत ( = अवदात ) वस्त्रसे शिर तक ढाँक कर बैठा हो । ० कोई भी भाग श्वेत वस्त्रसे अनाच्छादित न हो । इसी प्रकार मिथुनो ! मिथु इसी कायाको परिशुद्ध ० चित्तसे व्यास कर बैठता है । इस प्रकार प्रमाद-रहित ० ।

“मिथुनो ! जिसने काय-गत-स्मृति भावित=बहुलीकृत की है, उसको अन्तर्गत हैं सभी विषय-भारीय कृतक धर्म ।

“जैसे, मिथुनो ! जिसने महासमुद्रको ( अपने ) चित्तसे व्यास कर लिया है, उसको अन्तर्गत हैं, समुद्रको जानेवाली सभी छोटी नदियाँ । इसी प्रकार, मिथुनो ! जिसने कायगत-स्मृति ० । मिथुनो ! जिसने कायगत-स्मृतिको भावित = बहुलीकृत नहीं किया, उसमें मारको मौका मिलता है, उसमें मारको आरम्भण ( = आलंब ) मिल जाता है । जैसे, मिथुनो ! ( कोई ) पुरुष भारी गिला-खंडको गीली मिट्टीके ढेरपर फेंके, तो क्या मानते हो, मिथुनो ! क्या वह भारी गिला-खंड उस गीली मिट्टीके ढेरमें धुस जायेगा या नहीं ?”

“हाँ, भन्ते !”

“इसी प्रकार, मिथुनो ! जिसने कायगत-स्मृतिको भावित ० नहीं किया ० ।

“जैसे, मिथुनो ! सूखा काष्ठ-खंड पानीसे दूर स्थलपर फेंका हो, तब अग्नि उत्पन्न करने, तेज-प्रादुर्भाव करनेकी इच्छासे ( कोई ) पुरुष उत्तरारणी लेकर आये । तो क्या मानते हो, मिथुनो ! क्या वह पुरुष उस सूखे काष्ठ-खंड—जो कि पानीसे दूर स्थलपर फेंका है—को उत्तरारणी से रगड़ते आग उत्पन्न कर सकेगा, तेज प्रादुर्भाव कर सकेगा ?”

“हाँ, भन्ते !”

“इसी प्रकार, जिसने काय-गत-स्मृति भावित की है ० ।

“जैसे, मिथुनो ! जलका मटका ( = उदक-मणिका ) रक्त-मुष्क घर्दीचीपर रक्खा हो । तब ( कोई ) पुरुष पानीका भार लेकर आये । तो क्या मानते हो, मिथुनो ! क्या वह पुरुष पानी को डाल सकता है ?”

“हाँ, भन्ते !”

“इसी प्रकार, मिथुनो ! जिसने ० नहीं भावितकी ० । मिथुनो ! जिसने ० भावित ० की है, उसमें मार मौका नहीं पाता, आलम्भन नहीं पाता ।

“जैसे, मिथुनो ! गीला हरा काष्ठ पानीके पास स्थलपर फेंका हो, तब अग्नि उत्पन्न करे, तेज-प्रादुर्भाव करनेकी इच्छासे ( कोई ) पुरुष उत्तरारणी लेकर आये । तो क्या मानते हो, मिथुनो ! क्या वह पुरुष उस गीले हरे काष्ठको—जो कि पानीके पास स्थलपर फेंका है—उत्तरारणीसे रगड़ कर आग उत्पन्न कर सकेगा ० ?”

“नहीं भन्ते !”

“इसी प्रकार, मिथुनो ! जिसने काय-गत-स्मृति नहीं भावित की ० ।

“जैसे, मिथुनो ! पानीसे कबाड़य भरा, काकपेय (= जिसके ऊपर कौआ बैठ आसानीसे

पानी पी सकता है ) जलका मटका घड़ीघीपर रखता हो । तब ( कोई ) पुरुष पानीका भार लेकर आये । तो क्या मानते हो, भिक्षुओ ! क्या वह पुरुष पानीको ढाल सकता है ?”

“नहीं, भन्ते !”

“इसी प्रकार, भिक्षुओ ! जिसने कायगत-स्मृतिको भावितकी, उसमें मारको मौका नहीं मिलता ० ।

“भिक्षुओ ! जिसने कायगत-स्मृतिको भावित ० किया है, वह अभिज्ञासे साक्षात्कार-करणीय जिस जिस धर्ममें, अभिज्ञासे साक्षात्कार करनेके लिये चित्तको झुकाता है; आपत्तन ( = स्थान ) होनेपर उसे साक्षात्कार कर लेता है ।

“जैसे, भिक्षुओ ! पानीसे लवालय भरा ० जलका मटका घड़ीघीपर रखा हो; उसको बलवान् पुरुष जिधर जिधरसे मारे, पानी आता है । ऐसेही ० । इसी प्रकार भिक्षुओ ! जिसने ० भावित ० किया है ० ।

“जैसे, भिक्षुओ ! समतल भूमिपर बाँध बँधी, पानीसे लवालय भरी, काकपेया चौकोर पुष्करिणी हो, उसकी आली ( = बाँध ) को बलवान् पुरुष जिधर जिधरसे हटावे, ऊपर उपरहीसे जल आये ।”

“हाँ, भन्ते !”

“इसी प्रकार भिक्षुओ ! ० भावित किया । ० ।

“जैसे, भिक्षुओ ! सुभूमि ( = बाग ) में सबके चौरस्ते ( = चतुर्मास्य ) पर घोड़े जुता, कोड़े-दँगा आत्तानेय ( = लच्छी जालिके घोड़ेका ) रख जड़ा हो । तब उसपर चतुर अश्व-दम्ब-सारथी = युग्याचार्य ( = रथवान् ) चढ़कर, बायें हाथमें पागडोर, और दाहिने हाथमें कोड़ा ले जिधर चाहे उधर लेजावे, ले जावे । ऐसेही ० इसी प्रकार भिक्षुओ ! जिसने ० भावित ० किया है ० ।

“भिक्षुओ ! जिसने कायगत स्मृतिको स्मृतिके आसेवित = भावित = बहुलोकृत = पानी-कृत = वस्तुकृत, अनुष्ठित = परिचित = सुसमारब्ध किया है; ( उसको ) दल लाभ ( = आनन्द ) होने चाहिये—( १ ) वह अ-रति-रतिसह होता है—उसको अ-रति ( = उदासी ) पराप्त नहीं कर सकती, वह उत्पन्न अरतिको दबाकर विहरता है । ( २ ) भय-भय-सह होता है—भय-भय-रव उसको पराप्त नहीं कर सकता; वह उत्पन्न भय रवको दबाकर विहरता है । ( ३ ) शोक उल्ल, भूषण-प्राप्त, दंष्ट्रा-महाक-वात-आतप ( = ० पूष )-सरीसृपोंके स्पर्श ( = आघात ) और दुस्स, दुरागत वचनोंको सहन कर सकता है; उत्पन्न दुःख, तीव्र, परुष = कटु, प्रतिकूल = अ-अनाप, प्राणहर शारीरिक वेदनाओंको ( सहर्ष ) स्वीकार करनेवाला होता है । ( ४ ) इसी जन्ममें सुख-विहार-उपयोगी चारों चैतन्य-ध्यानोका—कुण्डता विना—कठिनाई विना—पूर्णरूपेण लाभो होता है । ( ५ ) वह अनेक प्रकारकी कदियोंको अनुभव करता है—एक होकर बहुत होता है ० । ( ६ ) ० दिव्य-श्रोत्र ० । ( ७ ) दूसरे प्राणियों पुद्गलोंके चित्तको अपने चित्त द्वारा जानता है ० । ( ८ ) वह अनेक प्रकारके पूर्व-निवासोंको स्मरण करता है ० । ( ९ ) ० दिव्यचक्षु ० । ( १० ) आत्मवोंके श्रयसे अनाम्य वेत्तीविमुक्ति ० । भिक्षुओ ! जिसने कायगत-स्मृतिको ० ।”

भगवान् ने यह कहा, स्मृष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान् के भाषणको अभिनन्दित किया ।



## १२०—संस्कारपत्ति-सुत्तन्त (३।२।१०)

पुण्य-संस्कारोंका विधान

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिटिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—“भिक्षुओ !”

“मदन्त !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! संस्कारपत्ति ( = संस्कार-उत्पत्ति ) को तुम्हें उपदेशता हूँ, उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा, मन्ते !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! यहाँ भिक्षु अद्वासे युक्त होता है, क्षीलसे ०, भुत ( = विद्या ) से ०, त्यागसे ०, प्रज्ञासे ० । उसको ऐसा होता है—‘अहोवत ! मैं काया छोड़ मरनेके बाद महाशनी ( = महाशाल ) क्षत्रियोंके बीच जन्मूँ’ । यह उस चित्तको धारण करता है, उस चित्तका अधिष्ठान करता है, उस चित्तकी भावना करता है । उसके वह संस्कार, वह विहार, इस प्रकार भावित = बहुलीकृत हो, वहाँ ( = लोकान्तर ) उत्पत्तिके लिये ( समर्थ ) होते हैं । भिक्षुओ ! यह भाग्य है = यह प्रतिपदा है, वहाँ उत्पत्तिके लिये ।

“और फिर, भिक्षुओ ! भिक्षु अद्वासे युक्त होता है ०, ० ।—अहोवत ! मैं ० ब्राह्मण-महाशालोंके बीचमें जन्मूँ” । ० ।

“० —अहोवत ! मैं ० गृहपति ( = वैश्य )-महाशालोंके बीचमें जन्मूँ । ० ।

( १ ) “० प्रज्ञासे युक्त होता है । उसने सुना होता है—‘चातुर्मेहाराजिक देवता दीर्घायु, सुन्दर और बहुत सुखसम्पन्न होते हैं ।’ उसको यह होता है—‘अहोवत ! मैं काया छोड़, मरनेके बाद चातुर्मेहाराजिक देवोंमें जन्मूँ’ । यह उस चित्तको ० ।

( २ ) “० सुना होता है—त्रयस्त्रिंश देव ० ।

( ३ ) “० सुना होता है—याम-देव ० ।

( ४ ) “० सुना होता है—तुषित देव ० ।

( ५ ) “० सुना होता है—निर्माणरति ० ।

( ६ ) “० सुना होता है—परनिर्मितवशवर्ती ० ।

( ७ ) “० सुना होता है—साहस्र यज्ञा दीर्घायु, सुन्दर, बहुत सुख-सम्पन्न होता है ।

भिक्षुओ ! साहस्र यज्ञा साहस्री-लोकधातु ( = एक हजार यज्ञों ) को स्फुरण कर = परिग्रहण कर विहरता है । वहाँ जो भी प्राणी उत्पन्न होते हैं, वह भी ० परिग्रहण कर विहरते हैं । जैसे

मिश्रुओं ! आँखवाला पुरुष एक आमलक (= जौवले) को हाथमें ले प्रत्यवेक्षण करे (= निहारें) ; ऐसे ही मिश्रुओं ! साहस्र ब्रह्मा ० । वहाँ ० प्राणी ० भी ० परिग्रहण कर विहस्ते हैं । उस (पुरुष) को ऐसा होता है—“अहोवत ! मैं काया जेव मरनेके बाद साहस्र ब्रह्माकी सहस्यता (= समान-भोग-जागिता) में जन्मूँ ० ।

( ८ ) “ ० सुना होता है—द्विसाहस्र ब्रह्मा ० ।

( ९ ) “ ० सुना होता है—चतुः साहस्र ब्रह्मा ० ।

( १० ) “ ० सुना होता है—पंच साहस्र ब्रह्मा ० । ० पंच साहस्री लोक-धातु ० । जैसे, मिश्रुओं ! आँखवाला पुरुष पाँच आमलकको हाथमें ले प्रत्यवेक्षण करे ० ।

( ११ ) “ ० सुना होता है—दश-साहस्र-ब्रह्मा ० । ० दश-साहस्री लोक-धातु ० । जैसे, मिश्रुओं ! शुभ, उत्तमजातिकी अट्कोणी, पालिश की हुई वैदूर्य-मणि (= हीरा) पांडु-कम्यल (= लाल दोन्नाले) में रखी, भासित होती है, चमकती है, विरोचित होती है, इसी प्रकार, मिश्रुओं ! दशसाहस्र ब्रह्मा दश साहस्री लोक-धातुको स्पर्शण कर = परिग्रहण कर विहस्ता है । वहाँ जो भी प्राणी ० ।

( १२ ) “ ० सुना होता है—शतसाहस्र ब्रह्मा ० । ० शतसाहस्री लोक-धातु ० । जैसे, मिश्रुओं ! निष्क जाल्बुज (= सुवर्ण) चतुर कर्भारपुत्र (= सुनार) द्वारा ज्वालामुख (= मट्टी) में अच्छी प्रकार तथाकर, लाल दोन्नालेमें रखना भासित होता है, चमकता है, विरोचित होता है, इसी प्रकार मिश्रुओं ! शतसाहस्र ब्रह्मा ० ।

( १३ ) “ ० सुना होता है—आम देव दीर्घायु ० ।

( १४ ) “ ० सुना होता है—परीक्षाम देव ० ।

( १५ ) “ ० सुना होता है—अ-प्रमाणाम देव ० ।

( १६ ) “ ० सुना होता है—आभास्वर देव ० ।

( १७ ) “ ० सुना होता है—परीक्षशुभ देव ० ।

( १८ ) “ ० सुना होता है—अ-प्रमाण-शुभ देव ० ।

( १९ ) “ ० सुना होता है—शुभहस्त देव ० ।

( २० ) “ ० सुना होता है—बृहत्फल देव ० ।

( २१ ) “ ० सुना होता है—अ-विम देव ० ।

( २२ ) “ ० सुना होता है—अ-तप्य देव ० ।

( २३ ) “ ० सुना होता है—सुदर्श देव ० ।

( २४ ) “ ० सुना होता है—सुदर्श देव ० ।

( २५ ) “ ० सुना होता है—अ-कनिष्ठ देव ० ।

( २६ ) “ ० सुना होता है—आकाशानन्यायतनको प्राप्त देव ० ।

( २७ ) “ ० सुना होता है—विज्ञानन्यायतनको प्राप्त देव ० ।

( २८ ) “ ० सुना होता है—आकिंचन्यायतनको प्राप्त देव ० ।

( २९ ) “ ० सुना होता है—नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनको प्राप्त देव ० ।

“नौर फिर, मिश्रुओं ! मिश्रु अद्वा ०, शील ०, अत ०, त्याग ०, प्रशसे युक्त होता है । उसको ऐसा होता है—“अहोवत ! मैं आक्षों (= चित्त-मर्ज्ञों) के प्रयत्ने आसन्न-रहित चेतो-



विमुक्ति, प्रणा-विमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं ज्ञान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरे—(और) वह आत्मवैकि क्षयसे ० प्राप्त कर विहरता है । भिक्षुओ ! यह भिक्षु कहीं नहीं उत्पन्न होता, कहीं नहीं उत्पन्न होकर विहरता ।”

भगवान् ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान् के भाषणको अभिर्नन्दित किया ।

( १२—इति अनुपद-वग्ग ३।२ )

## १२१-चूल-सुञ्जता-सुत्तन्त (३।३।१)

चित्तकी शून्यताका योग

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें, मृगार-भाताके प्रासाद पूर्वाराममें विहार करते थे।

तब आयुष्मान् आनन्द सायकालको प्रतिसंलपन (= भ्रान्ति) से उठकर वहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

“भन्ते ! एक समय भगवान् शाक्य (देव) में नगरक नामक शाक्योंके निगम (= कल्पे) में विहार करते थे। वहाँ मैंने, भन्ते ! भगवान्के मुखसे सुना, संसृजसे ग्रहण किया—‘आनन्द इस समय मैं अधिकतर शून्यता-विहारसे विहरता हूँ’। क्या, भन्ते ! मैंने इसे ठीकसे सुना, ठीकसे ग्रहण किया, ठीकसे मनमें किया, ठीकसे धारण किया ?”

“हाँ, आनन्द ! तुने यह ठीकसे सुना ०। आनन्द ! पहिले भी, और इस समय भी मैं अधिकतर शून्यता-विहारसे विहरता हूँ। जैसे आनन्द ! यह मृगारभाताका प्रासाद हाथी-गाय-घोषा-घोषीसे शून्य है; सोना-चाँदीसे शून्य है; स्त्री-पुरुष-सन्निपात (= ० जमावड़े) से शून्य है; किन्तु यह एक मिश्र-संघसे अ-शून्य नहीं; ऐसे ही, आनन्द ! मिश्र ग्राम-संज्ञा (= गाँवके कपाल) को मनमें न कर, मनुष्य-संज्ञा मनमें न कर, एक अरण्य-संज्ञाको ले मनमें करता है। अरण्य-संज्ञा में उसका चित्त प्रसंकेतित = प्रसन्न होता है; ठहरता है, लगता है। यह वह जानता है—ग्राम-संज्ञाको लेकर जो द्रव्य (= खेद) थे, वह नहीं है; मनुष्य-संज्ञाको लेकर जो द्रव्य थे, वह भी नहीं है; किन्तु अकेली अरण्य-संज्ञाको लेकर वह द्रव्य-मात्रा है ही। वह जानता है—यह जो ग्राम-संज्ञा (= गाँवका कपाल) है, यह संज्ञा शून्य है। वह जानता है—यह जो मनुष्य-संज्ञा है ०। इस अकेली अरण्य-संज्ञाको ले कर अ-शून्यता तो है ही। इस प्रकार जो वहाँ नहीं होता, उससे उसे शून्य देखता है; और जो वहाँ बाकी रहता है, उस विद्यमानको ‘यह है’—जानता है। ऐसे भी आनन्द ! यह सधार्थ = अ-विपर्यय, परिशुद्ध शून्यतामें उसका प्रवेश होता है।

“और फिर, आनन्द ! मिश्र मनुष्य-संज्ञाको ०, अरण्य-संज्ञाको मनमें न कर, केवल पृथिवी-संज्ञा मात्रको लेकर मनमें करता है। पृथिवी-संज्ञामें उसका ‘चित्त ० ठहरता है ०। जैसे, आनन्द ! बैलका चमड़ा सौ काँटोंसे बना बलि (= शिकन) के बिना होता है; ऐसे ही आनन्द ! वह मिश्र इस पृथिवीके ऊँचे मोचे तट, नदी घाट, खौंड़, कंटकस्थान, पर्वतको विषमता—सभीको मनमें न कर, एक मात्र पृथिवी-संज्ञाको ही लेकर मनमें करता है। पृथिवी-संज्ञामें उसका चित्त ० ठहरता है ०। वह ऐसा जानता है—मनुष्य-संज्ञाको लेकर जो द्रव्य थे, वह नहीं है। अरण्य-संज्ञाको लेकर जो द्रव्य थे, वह नहीं है। किन्तु केवल पृथिवी-संज्ञाको लेकर द्रव्य तो है ही। वह



ज्ञानता है—वह जो मनुष्य-संज्ञा है, वह ( यहाँ ) शून्य है; ० जो अरण्य-संज्ञा है, वह भी शून्य है; किन्तु इस केवल पृथिवी-संज्ञाको लेकर अ-शून्यता तो है ही । इस प्रकार जो वहाँ नहीं होता ० । इस प्रकार भी आनन्द ! यथार्थ ० शून्यतामें उसका प्रवेश होता है ।

“और फिर, आनन्द ! मिथु अरण्य-संज्ञाको ०, पृथिवी-संज्ञाको मनमें न कर, केवल अन्तरहित आकाशके आयतन (= अधिकरण, स्थान) (= अकाशानन्त्यायतन) की संज्ञा (= कयाल) को लेकर मनमें करता है । आकाशानन्त्यायतन-संज्ञामें उसका चित्त ० टहरता है ० । वह ऐसा जानता है—अरण्य संज्ञा ०, पृथिवी-संज्ञाको लेकर जो द्रव्य थे, वह नहीं हैं । किन्तु आकाशानन्त्यायतन-संज्ञाको लेकर द्रव्य तो हैं ही । ० अरण्य-संज्ञा ० शून्य है; ० पृथिवी-संज्ञा ० शून्य है; किन्तु इस केवल आकाशानन्त्यायतन-संज्ञाको लेकर अशून्यता तो है ही । इस प्रकार जो वहाँ नहीं होता ० । ऐसे भी, आनन्द ! यथार्थ ० शून्यतामें उसका प्रवेश होता है ।

“और फिर, आनन्द ! मिथु पृथिवी-संज्ञाको मनमें न कर आकाशानन्त्यायतन-संज्ञाको मनमें न कर, अन्तरहित-विज्ञानके आयतन (= विज्ञानानन्त्यायतन) की संज्ञाको लेकर मनमें करता है । ० ।

“० आकाशानन्त्यायतन-संज्ञाको मनमें न कर, विज्ञानानन्त्यायतन-संज्ञाको भी मनमें न कर, केवल आर्किचम्य (= नहीं-कुछ-पन)-आयतनकी संज्ञाको लेकर मनमें करता है ० २ ।

“० विज्ञानानन्त्यायतन-संज्ञाको मनमें न कर, आर्किचम्यायतन-संज्ञाको भी मनमें न कर, केवल नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतन-संज्ञाको लेकर मनमें करता है ० २ ।

“० आर्किचम्यायतन-संज्ञाको मनमें न कर, नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतन-संज्ञाको भी मनमें न कर, केवल अ-निमित्त (= लिंग आदि रहित) चेतःसमाधिको लेकर मनमें करता है । ० आर्किचम्यायतन-संज्ञाको लेकर जो द्रव्य थे, वह नहीं हैं; नैवसंज्ञानासंज्ञायतन-संज्ञाको लेकर जो द्रव्य थे, वह नहीं हैं; किन्तु जीवन (= जीवित) के कारण इसी पद्-आयतनवाली कायाको लेकर वह द्रव्य तो है ही । ० आर्किचम्यायतन-संज्ञा ० शून्य है; ० नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतन-संज्ञा ० शून्य है; किन्तु जीवनके कारण, इसी पद्-आयतनवाली कायाको लेकर अ-शून्यता तो है ही । इस प्रकार जो वहाँ नहीं होता ० । ऐसे भी आनन्द ! ० ।

“० आर्किचम्यायतन-संज्ञाको मनमें न कर, नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतन-संज्ञाको भी मनमें न कर, ( जो ) केवल अ-निमित्त चेतःसमाधिको लेकर मनमें करता है; ( सो ) उसका चित्त अनिमित्त चेतःसमाधिमें ० टहरता है ० । वह ऐसा जानता है—चूँकि वह अनिमित्त चेतःसमाधि अभि-संस्कृत (= कृत) है, चिन्तन करते ( यह ) अभिसंस्कृत (= कृत ) हुए हैं । जो अभिसंस्कृत (= कृत ) है, वह अनित्य है, नाशमान (= निरोपधर्मा) है—वह जानता है । तब इस प्रकार जानते-देखते उसका चित्त काम-आस्रवों (= मोगेच्छा सम्बन्धी चित्त कालुष्यों) से मुक्त होता है, ० भव-आस्रव (= जन्मान्तरकी लालसा रूपी आस्रव) ०, अविद्या-आस्रवों (= अज्ञान ० ) से भी मुक्त होता है । विमुक्त होने पर ‘विमुक्त हूँ’—ज्ञान होता है । ‘आवागमन अतम होगया, ( ब्रह्मचर्य- ) व्रत पूरा होगया, करना था, सो कर लिया, और यहाँके लिये ( कुछ देख ) नहीं है—जानता है । वह ऐसा जानता है—‘काम-आस्रवको लेकर जो द्रव्य थे, वह नहीं हैं । भव-आस्रव ० अविद्या-आस्रवको लेकर जो द्रव्य थे, वह नहीं हैं; किन्तु जीवनके कारण, इसी पद्-आयतनवाली काया-

१ ऊपरकी तरह ही, ( अरण्य-संज्ञाको छोड़, और विज्ञानानन्त्यायतनको जोड़ ) ।

२ ऊपर जैसे ही ( प्रथम-संज्ञाको छोड़, और नई संज्ञा जोड़ ) ।

को लेकर द्रव्य तो है ही। वह जानता है—कामाक्षव सम्बन्धी संज्ञासे वह शून्य है। ० भवा-  
क्षव ०। ० अविद्याक्षव-सम्बन्धी संज्ञासे वह शून्य है; किन्तु, ० इसी पडापतनवाली कायाको  
लेकर अशून्यता तो है ही। इस प्रकार जो वहाँ नहीं होता, उससे इसे शून्य देखता है, और जो  
वहाँ बाकी रहता है, उस विद्यमानको—‘वह है’—जानता है। ऐसे, आनन्द ! यह वयार्थ =  
अ-विपर्यस्त, परिशुद्ध परम-अनुत्तर (= सर्वोत्तम) शून्यतामें प्रवेश होता है।

“आनन्द ! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण अतीतकालमें परमानुत्तर-शून्यताको प्राप्त कर विहरे,  
वह सभी इसी परमानुत्तर-शून्यताको प्राप्त कर विहरे। ० भविष्यकालमें ० विहरेंगे, वह सभी  
इसी परमानुत्तर-शून्यताको प्राप्त कर विहरेंगे। ० वर्तमानकालमें ० विहरते हैं, वह सभी इसी  
परमानुत्तर-शून्यताको प्राप्त कर विहरते हैं। इसलिये, आनन्द ! ‘परिशुद्ध, परमानुत्तर शून्यताको  
प्राप्त कर विहर्षेण’—यह तुझे सीखना चाहिये।”

भगवान् ने यह कहा, तन्मुष्ट हो आयुष्मान् आनन्दने भगवान् के भाषणको अमिनन्दित  
क्रिया।



## १२२—महा-सुञ्जता-सुचन्त (३।३।२)

विचकी शून्यताका योग

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् शाक्य(-देश) में कपिलवस्तुके न्यमोधाराममें विहार करते थे।

तब भगवान्ने पूर्वाह्न समय पहिनकर पाव-चीवर ले कपिलवस्तुमें भिक्षाके लिये प्रवेष्ट किया। कपिलवस्तुमें भिक्षादन कर, भोजनोपरान्त, भिक्षासे निवृत्त हो दिनके विहारके लिये जहाँ काल-खेमक शाक्यका विहार था, वहाँ गये। उस समय काल-खेमक शाक्यके विहारमें बहुतसे शयन-आसन लगे हुये थे। भगवान्ने ० बहुतसे शयनासन लगे हुये देखे। देखकर भगवान्को यह हुआ—‘यहाँ काल-खेमक शाक्यके विहारमें बहुतसे शयनासन लगे हुये हैं, यहाँ बहुतसे भिक्षु विहरते होंगे।’

उस समय आयुष्मान् आनन्द, बहुतसे भिक्षुओंके साथ घटाय शाक्यके विहारमें चीवर-कर्म (= भिक्षुवस्त्रकी सिलाई) कर रहे थे। तब भगवान् सायंकालको ध्यानसे उठकर जहाँ घटाय शाक्यका विहार था, वहाँ गये। जाकर थोड़े आसनपर बैठे। बैठकर भगवान्ने आयुष्मान् आनन्द की संबोधित किया—

“आनन्द ! कालखेमक शाक्यके विहारमें बहुतसे शयनासन लगे हुये हैं, वहाँ बहुतसे भिक्षु विहार करते हैं ?”

“भन्ते ! ० विहारमें बहुतसे शयनासन लगे हुये हैं, वहाँ बहुतसे भिक्षु विहार करते हैं। भन्ते ! यह हम लोगोंका चीवर-कार (= वस्त्र सीने) का समय है।”

“आनन्द ! संगणिका (= जमात-बंदीमें) राम, संगणिकारत, संगणिकाराप्रतामें संलग्न, गणाराम = गण-रत, गण (= जमात) में प्रमुदित भिक्षु नहीं शोभा देता। आनन्द ! वह ० गण में प्रमुदित भिक्षु निष्कामताके सुख, प्रविवेक (= एकांत-चिंतन)-सुख, उपशम (= समाधि)-सुख सम्बोध-सुख, विचैकाग्रता-सुखका इच्छानुसार लाभ, बिना कठिनाईके लाभ = अकृच्छलाभी होगा, इसके लिये जगह नहीं। आनन्द ! जो भिक्षु गणसे अलग अकेला विहरता है, उसके लिये आज्ञा रखनी चाहिये, कि वह उस निष्कामताके सुख ० का ० अकृच्छलाभी होगा, इसके लिये जगह है। आनन्द ! वह ० गणमें प्रमुदित भिक्षु तात्कालिकी (= सामयिक) कान्त (= प्रिय) चेतोविमुक्तिको प्राप्त हो विहरेगा, या न करते सार्वकालिकी (= असामयिक) को—इसके लिये स्थान नहीं। आनन्द ! जो भिक्षु गणसे अलग अकेला विहरता है, उसके लिये आज्ञा रखनी चाहिये, कि वह तात्कालिकी कान्त चेतोविमुक्तिको प्राप्त हो विहरेगा ० या न करते हुये सार्व-कालिकीको—इसके लिये स्थान है। आनन्द ! मैं एक रूप (= पदार्थ) को ऐसा नहीं देखता, जिसमें रक्त, यथा-मिस्तको, रूपका विपरिणाम = अन्वयामावके कारण, शोक, परिदेव (= रोना-काँदना), दुःख,

दौर्जन्य, उपायास (= हेरानी-परेशानी) न उत्पन्न हो। आनन्द ! तद्वागतने इस सारे निमित्तों (= लिंग, आकृति आदि) को मनमें न कर, आध्यात्मिक (= भीतरी) शून्यताको प्राप्तकर विहरनेको अच्छी तरह कृता (= अमि-संशुद्ध) है। वहाँ, यदि आनन्द ! इस विहारसे विहरते तद्वागतके पास मिथु, मिथुणी, उपासक, उपासिका, राजा, राज-महामात्य, तीर्थिक, तीर्थिक-आवक आते हैं; तो तद्वागत विवेक (= एकाग्रताकी ओर) झुके = विवेक-प्रवण = विवेक-प्राग्भा, एकाकी, निष्कामता-रत, सारे वास्त्व (= चित्तमल)-स्थानीय धर्मोंसे अलग चित्त हो उद्योजन (= उद्योग) सम्बन्धी बातको ही करनेवाले होते हैं। इसलिये आनन्द ! यदि मिथु आध्यात्मिक शून्यताके साथ विहरना चाहे, तो, आनन्द ! उस मिथुको जन्वात्ममें (= अपने भीतर) ही चित्तको संस्थापित = सञ्जितारित, एकाग्र = समाहित करना चाहिये। आनन्द ! किस प्रकार मिथु जन्वात्ममें ही चित्तको संस्थापित करता है ?—यहाँ आनन्द ! मिथु कामोंसे विरहित ०<sup>१</sup> प्रथमध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ० द्वितीयध्यान ०<sup>१</sup> । ० तृतीयध्यान ०<sup>१</sup> । ० चतुर्थध्यान ०<sup>१</sup> । इस प्रकार, आनन्द ! मिथु जन्वात्ममें ही चित्तको संस्थापित करता है। वह अध्यात्म शून्यताको मनमें करता है। अध्यात्म शून्यताको मनमें करते हुये, उसका चित्त शून्यतामें ० नहीं ठहरता ०। ऐसा होते, “मिथु ऐसे जानता है—‘अध्यात्म शून्यताको मनमें करते मेरा चित्त अध्यात्मशून्यतामें ० नहीं ठहरता ०—इस प्रकार यहाँ समझनेवाला होता है। वह बाह्य शून्यताको मनमें करता है ०। वह आनिज्य (= चित्तको अन्व-चलता) को मनमें करता है। ० आनिज्यको मनमें करते हुये, उसका चित्त आनिज्यमें नहीं ठहरता ०। ० ऐसे जानता है—आनिज्यको ० नहीं ठहरता ०—समझनेवाला होता है।

आनन्द ! उस मिथुको उस पहिले वाले समाधि-निमित्त (= ० लज्ज) में, अपने भीतर ही चित्तको ० संस्थापित ० करना चाहिये। (तब) वह अध्यात्म शून्यताको मनमें करता है। ०।—समझनेवाला होता है।

“आनन्द ! इस विहारसे विहरते हुये उस मिथुका चित्त यदि टहलने (= टहलने) को चाहता है; (तो) वह टहलता है—‘इस प्रकार टहलते हुये मेरे (चित्तमें) अभिष्या (= लोभ), दीर्घ-नरस (= बुरा मन होना), (वह) पाप = अकुशल धर्म (= बुराईयाँ) नहीं आ चूँगी’—इस प्रकार वह समझनेवाला होता है।

“आनन्द ! इस विहारसे विहरते हुये, उस मिथुका चित्त यदि नष्ट होना चाहता है; (तो) वह नष्ट होता है। ‘इस प्रकार नष्ट हुये मेरे (चित्तमें) अभिष्या, दीर्घनरस पाप ० नहीं आ चूँगी’—इस प्रकार वह समझनेवाला होता है।

“आनन्द ! इस विहारसे विहरते हुये, उस मिथुका चित्त यदि बैठनेको चाहता है; (तो) वह बैठता है। ‘इस प्रकार बैठे हुये ०।

“० यदि छेदने को चाहता है; (तो) वह छेदता है। ‘इस प्रकार छेदे हुये ०।

“० यदि कथा (= बात) करनेको चाहता है; (तो) वह, जो वह कथाओं हीन, प्राम्य, पृथग्जनीय (= अशोक), अनार्यकी, अमर्थ-युक्त निर्वेद-विराग-निरोध-के अनुपयोगी, उपशम-अभिज्ञा-सम्बोध-निर्वाण-के अवोग्य हैं; जैसे कि राज-कथा ०<sup>१</sup> ऐसी इस प्रकारकी कथाओंको नहीं कहेंगे’—इस प्रकार यहाँ जाननेवाला होता है। और आनन्द ! जो यह कथा अमि-संशुद्ध (= मानस तप)वाली, चित्तसंशुद्ध-सद्भाव, सर्वथा निर्वेद-विराग-निरोध-उपयोगी, उपशम-अभिज्ञा-



सम्बोध-निर्वाणके योग्य है; जैसे कि अस्वेच्छ (= निर्लोभ)-कथा, सन्तोष-कथा, प्रविवेक-कथा, अ-संस्पर्श-कथा, वीर्यारम्भ (= उद्योग)-कथा, शील-कथा, समाधि-कथा, प्रज्ञा-कथा, विमुक्ति-कथा, विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-कथा—ऐसी इस प्रकारकी कथाओंको कहूँगा—इस प्रकार वहाँ जाननेवाला होता है ।

“० यदि वितर्क करनेको चाहता है, तो जो वह वितर्क हीन, ग्राम्य ० निर्वाणके अयोग्य है; जैसे कि काम-वितर्क, व्यापार-वितर्क, विहिंसा-वितर्क, ऐसे इस प्रकार के वितर्कोंको नहीं वितर्कन करूँगा—इस प्रकार वहाँ संप्रजन्य-युक्त (= जाननेवाला) होता है । और आनन्द ! जो यह वितर्क भार्य, नैर्वाणिक = वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दुःखके क्षयको और ले जानेवाले है; जैसे कि—निष्कामता-वितर्क, अव्यापाद-वितर्क, अ-विहिंसा (= अ-हिंसा)-वितर्क, ऐसे इस प्रकारके वितर्कोंका वितर्कन करूँगा—इस प्रकार वहाँ संप्रजन्य-युक्त होता है ।

“आनन्द ! यह पाँच काम-गुण हैं । कौन से पाँच ?—इष्ट ०<sup>१</sup> प्रिय ०<sup>२</sup> चक्षु द्वारा विशेष रूप, ०<sup>३</sup> ओत्र-विशेष शब्द ०<sup>४</sup>, प्राण-विशेष गंध, ०<sup>५</sup> जिह्वा-विशेष रस, ०<sup>६</sup> काय-विशेष स्पष्टव्य आनन्द ! यह पाँच काम-गुण हैं ; जिनसे भिक्षुको निरंतर अपने चित्तोंको अन्वेषण करना चाहिये—क्या इन पाँच काम-गुणोंमेंसे किसी एकमें भी, या किसी एक आयतनमें चित्तका संपर्क होता है ?” यदि आनन्द ! भिक्षु अन्वेषण करते यह जानता है—इन पाँच काम-गुणोंमेंसे किसी एकमें, या किसी एक आयतनमें मेरे चित्तका संपर्क (= समुदाचार) उत्पन्न होता है—वह भिक्षु—ऐसा होते हुयेको ऐसे जानता है । इन पाँच काम-गुणोंमें जो छन्द = राग है, सो मेरा प्रहीण (= नष्ट) नहीं हुआ—इस प्रकार वह समझनेवाला होता है । यदि, आनन्द ! भिक्षु अन्वेषण करते यह जानता है—इन पाँच काम-गुणोंमें किसी एकमें ० मेरे चित्तका समुदाचार उत्पन्न नहीं होता, वह भिक्षु—ऐसा होते हुयेको ऐसे जानता है । इन पाँच काम-गुणोंमें जो छन्द = राग है, सो मेरा प्रहीण है—इस प्रकार वह समझनेवाला होता है ।

“आनन्द ! यह पाँच उपादान-स्केध हैं ; जिनमें भिक्षुको उद्य-व्यय (= उत्पत्ति-विनाश) देखते हुये विहरना चाहिये—इस प्रकार रूप है, इस प्रकार रूपका समुच्च (= उत्पत्ति) होता है, इस प्रकार रूपका अलगमन (= नाश) होता है । इस प्रकार वेदना है ० । इस प्रकार संज्ञा ० । इस प्रकार संस्कार ० । इस प्रकार विज्ञान ० । इस प्रकार इन पाँच उपादान-स्केधोंमें उद्यव्यय देखते हुये विहरते, उन पाँच उपादान-स्केधोंमें अस्मि-मान (= यह मैं हूँ, यह क्वाल) नष्ट हो जाता है । वह भिक्षु ऐसा होते हुयेको ऐसे जानता है । इन पाँच स्केधोंमें जो अस्मिमान है, सो मेरा प्रहीण (= नष्ट) हो गया—इस प्रकार वह समझनेवाला होता है । आनन्द ! यह धर्म हैं एकान्त-कुशल (= बिल्कुल अच्छे) से आये, आर्य, लोकोत्तर, चाप्सा (= मार) की पहुँचसे बाहर ।

“तो क्या मानते हो, आनन्द ! कि आसक (= शिष्य)को मतलब (= अर्थ) देखकर मगाये जाने पर भी शास्ताका अनुसरण करना चाहिये ?”

“मन्ते ! मगवान् हमारे धर्मके मूल हैं, मगवान् नेता हैं, मगवान् प्रतिधारण (= अवलंब) हैं । अच्छा हो, मन्ते ! मगवान् ही इस वचन का अर्थ कहें । मगवान्से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे ।”

“आनन्द ! सूत्र, गेय, व्याकरण (भेदवाले उपदेशों)के लिये शिष्यको शास्ता (=

गुरु) का अनुसरण नहीं करना चाहिये। सो किस हेतु ?—दीर्घकाल के हितके लिये, आनन्द ! धर्म सुने, धारण किये जाते हैं, वचनसे परिचित् मनसे अनुपेक्षित (= विचारित), दृष्टिसे सुप्रति-  
बिद्ध (= तब तक पहुँचकर समझे गये) होते हैं। आनन्द ! जो यह कथा (= बात) अभि-  
संलेखवाली ० विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-कथा है; आनन्द ! इस प्रकारकी कथाके लिये शिष्यको ०  
शास्त्राका अनुसरण करना चाहिये।

“ऐसा होनेपर, आनन्द ! आचार्य-उपद्रव होता है, ० अन्तेवासी-उपद्रव ०, ० ब्रह्मचारी-  
उपद्रव होता है। आनन्द ! कैसे आचार्य-उपद्रव होता है ?—यहाँ, आनन्द ! कोई शास्त्रा (= गुरु)  
अरण्य, वृक्ष-छाया, पर्वत-कन्दरा, गिरि-गुहा, झरना, वनप्रस्थ, सुले-सैदान, पुत्रालके गंज—ऐसे  
एकान्त शयनासनको सेवन करता है। ऐसे एकान्तमें विहरते हुये उसका, नैगम (= नागरिक)  
और ज्ञानपद (= दीहाती), ब्राह्मण-गृहपति अनुगमन करते हैं। ० ब्राह्मण-गृहपतियों द्वारा अनु-  
गमन किये जानेपर वह प्रशङ्का इच्छुक होता है, लोभ (= गंध) को प्राप्त होता है, बटोरू होने  
लगता है। आनन्द ! यह है आचार्य-उपद्रव। आचार्य-उपद्रवके कारण, संक्लेशिक (= मलिन करने-  
वाले) पौनर्भविक् (= जायागमन देनेवाले), भयावह, दुःख-परिणामी, भविष्यमें-जन्म-उत्पत्ति-अरण्य-  
देनेवाले, पापक = अकृशाल-धर्मों (= कुराइयों) ने उसे मार दिया। आनन्द ! इस प्रकार आचार्य-  
उपद्रव होता है। और कैसे, आनन्द ! अन्तेवासी-उपद्रव होता है ?—आनन्द ! उसी शास्त्राका  
शिष्य, अपने शास्त्राके विवेक (= एकान्त-चिन्तन) का अनुकरण करते अरण्य ० ऐसे एकान्त  
शयनासनको सेवन करता है। ० बटोरू होने लगता है। आनन्द ! यह है अन्तेवासी-उपद्रव। ० ।  
आनन्द ! इस प्रकार अन्तेवासी-उपद्रव होता है। और कैसे, आनन्द ! ब्रह्मचारी-उपद्रव होता है ?  
आनन्द ! यहाँ लोकमें पद्मागत अर्हत्-सम्यक्-संशुद्ध, विद्या-वर्ण-युक्त, सुगत, लोकविद्, पुरुषोंके  
अनुपम चातुक सवार, देवताओं और मनुष्योंके उपदेशा भगवान् बुद्ध उत्पन्न होते हैं। वह अरण्य ०  
ऐसे एकान्त शयनासन (= निवास) को सेवन करते हैं। ऐसे एकान्तमें विहरते उनका नैगम,  
ज्ञानपद ब्राह्मण-गृहपति अनुगमन करते हैं। ० ब्राह्मण-गृहपतियों द्वारा अनुगमन किये जानेपर  
( भी ) वह प्रश्न (= गुलार) के इच्छुक नहीं होते, लोभको प्राप्त नहीं होते, बटोरू नहीं धन  
जाते। आनन्द ! उसी शास्त्राका श्रावक, अपने शास्त्राके विवेका अनुकरण करते अरण्य ० बटोरू  
होने लगता है। आनन्द ! यह है ब्रह्मचारी-उपद्रव। ० । आनन्द ! इस प्रकार ब्रह्मचारी-उपद्रव  
होता है।

“यहाँ, आनन्द ! जो यह आचार्य-उपद्रव है, और जो अन्तेवासी-उपद्रव है, इन ( दोनों )-  
से ब्रह्मचारी-उपद्रव ही अधिक दुःख विपाकवाला, अधिक कटु-विपाकवाला है; और पत्तनकी ओर  
ले जानेवाला है। इसलिये, आनन्द ! तुझे मिश्रवत् बनाओ, शत्रुवत् नहीं। यह तुम्हारे लिये दीर्घ-  
कालतक हित-सुखके लिये होगा। आनन्द ! किस प्रकार शिष्य शास्त्राको शत्रुवत् बनाते हैं, मिश्र-  
वत् नहीं ?—यहाँ, आनन्द ! अनुकम्पक, हितैषी शास्त्रा, अनुकम्पा करके शिष्योंको धर्म उपदेशाते  
हैं—यह तुम्हारे हितके लिये है, यह तुम्हारे सुखके लिये है। ( किन्तु ) श्रावक उसको सुनना नहीं  
चाहते, काम नहीं देते, दूसरी ओरसे ( हटाकर ) चित्तको ( यहाँ ) नहीं स्थापते; शास्त्राके शासन  
( = उपदेश ) को अतिक्रमण कर वर्तते हैं। इस प्रकार, आनन्द ! शिष्य शास्त्राको शत्रुवत् व्यवहार  
करते हैं, मिश्रवत् नहीं। कैसे आनन्द ! शिष्य शास्त्राको मिश्रवत् बनाते हैं, शत्रुवत् नहीं ?—यहाँ,  
आनन्द ! ० शास्त्रा ० धर्म उपदेशाते हैं—० । और श्रावक उसको सुनना चाहते हैं, काम देते हैं,



बूझरी ओरसे ( हटाकर ) चिरको ( वहाँ ) स्थापते हैं; शास्त्राके शासनको अतिक्रमण कर नहीं करते । इस प्रकार, आनन्द ! ० शत्रुवत् नहीं । इसलिये, आनन्द ! तुझे मित्रवत् बनाओ, शत्रुवत् नहीं । यह तुम्हारे लिये दीर्घकाल तक हित-सुखके लिये होगा । आनन्द ! मैं उस प्रकार पराक्रम नहीं करता, जैसे कुम्हार कच्चे, कच्चे माच ( बर्तनों ) में । आनन्द ! निग्रह कर करके मैं व्याख्यान करता हूँ । प्रसन्न कर करके व्याख्यान करता हूँ; जो सार है, वह ठहरेगा । ”

भगवान् ने यह कहा, सन्मुख हो आधुन्यान् आनन्दने भगवान् के भाषणको अभिलक्षित किया ।

## १२३-अच्छरिय-धम्म-सुत्तन्त (३।३।३)

कुरु कहाँ और कैसे उत्पन्न होते हैं ?

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें, अनाघपिण्डिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

तब भिक्षासे निवृत्त हो भोजनोपरान्त उपस्थान शालामें एकत्र बैठे, बहुतसे भिक्षुओंकी आपसमें यह बात उठी—

“आश्चर्य है आमुसो ! अद्भुत है !! आमुसो ! तथागतकी महाकद्विसत्ता = महासु-  
नायताको, जो कि तथागत, छिन्न-प्रपंच = छिन्न-वर्त = पपादिसवष्ट, सर्वे दुःख-निवृत्त निर्घाण  
प्राप्त अतीतकालके दुर्दोंको स्मरण करते हैं, जानते हैं—यह भगवान् जर्हत् इत्यति के थे—यह  
भी। इस नाम ०। इस गोत्र ०। ० शील ०। ० चर्म ०। ० प्रज्ञा ०। ० विहार ०। ०  
विमुक्ति ०।”

ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्दने उन भिक्षुओंसे यह कहा—

“आमुसो ! तथागत आश्चर्य हैं, और आश्चर्य ( -कर ) धर्मोंसे युक्त हैं। तथागत अद्भुत  
हैं, और अद्भुत धर्मोंसे युक्त हैं।”

यह उस समय उन भिक्षुओंकी आपसमें क्या हो गयी थी। तब भगवान् सार्यकाल ध्यान-  
से उठकर जहाँ उपस्थान-शाला थी, वहाँ गये। जाकर बिठे आसनपर बैठे। बैठ कर भगवान्ने  
भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

“भिक्षुजो ! इस समय क्या बात लेकर तुम बैठे थे, तुम्हारी आपसमें क्या बात हो  
रही थी ?”

“भन्ते ! भोजनोपरान्त” वहाँ उपस्थान-शालामें बैठे हम लोगोंकी आपसमें यह बात कुरु  
हुई—‘आश्चर्य है ! आमुसो ! ०। ० विमुक्ति ०।’ ऐसा कहने पर, भन्ते ! आयुष्मान् आनन्दने  
हमें यह कहा—‘आमुसो ! तथागत ० अद्भुत धर्मोंसे युक्त हैं।’ भन्ते ! हमारी आपसमें यह बात  
हो रही थी, कि भगवान् जा गये।”

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको सम्बोधित किया—

“तो, आनन्द ! तू और मैं प्रसन्नता पूर्वक तथागतके आश्चर्य अद्भुत धर्मोंको जान।”

“भन्ते ! भगवान्के मुखसे मैंने इसे सुना, भगवान्के मुखसे मैंने इसे ग्रहण किया।”  
‘आनन्द ! बोधिसत्त्व स्मृति-सम्प्रजन्म-युक्त तुषित लोकमें उत्पन्न होते हैं’। जो कि भन्ते !  
बोधिसत्त्व स्मृति-सम्प्रजन्म-युक्त तुषित लोकमें उत्पन्न होते हैं—इसे भी मैं भन्ते ! भगवान्  
का आश्चर्य अद्भुत धर्म समझता हूँ। भन्ते ! भगवान्के मुखसे मैंने सुना ०—आनन्द ! बोधिसत्त्व  
स्मृति-सम्प्रजन्म-युक्त ( हो ) तुषित लोकमें उदरे—इसे भी ०। ०—आनन्द ! बोधिसत्त्व सारी



आयु भर तुषित लोकमें स्मृति-सम्प्रजन्म-युक्त रहे'—० । ०—'आनन्द ! बोधिसत्त्व तुषित लोकसे व्युत्त हो माताके गर्भमें स्मृति-सम्प्रजन्म-युक्त प्रविष्ट हुये'—० । ०—'आनन्द ! जिस समय बोधिसत्त्व तुषित लोकसे व्युत्त हो माताके गर्भमें प्रविष्ट होते हैं, तो देव-भार जग्रा सहित ( सारे ) लोकमें श्रमण-ब्राह्मण-देव-मनुष्य सहित ( सारी ) प्रजामें, देवताओंके तेजको भी भात करनेवाला, अप्रमाण, उदार (= महान् ) प्रकाश लोकमें प्रकट होता है; जो वह घने अंधकारसे पूर्ण तमसावृत दूसरे लोक हैं, जहाँ पर कि इतने तेजस्वी = इतने महाबुभाव यह सूर्य-चंद्र भी प्रकाश नहीं पहुँचा सकते; वहाँ पर भी ० उदार प्रकाश प्रकट होता है । उस लोकमें जो प्राणी उत्पन्न हैं, वह भी उस प्रकाशसे एक दूसरेको पहिचानते हैं—'और भी' प्राणी यहाँ उत्पन्न हैं' । और यह दस-साहस्री लोक-धातु कंचित = प्रकंचित, = संप्र-वेधित होती है । ० उदार प्रकाश प्रकट होता है । जो कि, भन्ते ! ० । ०—'आनन्द ! जब बोधिसत्त्व माताके गर्भमें रहता है, तो चार देव पुत्र आकर चारों दिशाओंमें रक्षा करते हैं—( जिसमें कि ) बोधिसत्त्व या बोधिसत्त्व-माताको कोई मनुष्य या अ-मनुष्य हानि न पहुँचा सके' । जो कि, भन्ते ! ० । ०—'आनन्द ! जब बोधिसत्त्व माताके गर्भमें रहता है, तो बोधिसत्त्व-माता स्वभावतः क्षीलघृती होती है—यह हिंसा-धोरी-व्यभिचार-वृद्ध-सुरापान आदिसे विरत होती है' । जो कि भन्ते ! ० । ०—'आनन्द ! जब बोधिसत्त्व माताके गर्भमें रहता है, तो बोधिसत्त्व माताका चित्त भोगकी इच्छासे किसी पुरुषमें नहीं जाता । किसी रासयुक्त पुरुषसे बोधिसत्त्व-माता अतिक्रमणोप नहीं होती । जो कि, भन्ते ! ० । ०—'आनन्द ! जब बोधिसत्त्व-माताके गर्भमें रहता है, तो बोधिसत्त्व-माता पाँच कामगुणों ( = भोगों ) को पानेवाली होती है । वह पाँच कामगुणोंसे समर्पित = युक्त हो परिचारित होती है' । जो कि, भन्ते ! ० । ०—'आनन्द ! जब बोधिसत्त्व-माताके गर्भमें रहता है, तो बोधिसत्त्व-माताको कोई रोग नहीं होता, बोधिसत्त्व-माता सुखी अ-क्लान्त-काया होती है । जो कि, भन्ते ! ० । ० और बोधिसत्त्व-माता आदमें गर्भके भीतर रहते बोधिसत्त्वको इन्द्रिय-जंग-प्रत्यंग-सहित देखती है, जैसे आनन्द ! शुभ्र, उत्तम जातिकी, अठकोंगी पालिशकी हुई वैदुर्यमणि ( = हीरा ) हो; उसके भीतर नीला, पीला, लाल, श्वेत, या नारंगी ( = पांडु )-रंगका सूत पिरोया हो । उसे हाथमें लेकर आँसवाला पुरुष देखे—यह ० वैदुर्यमणि है, इसके भीतर नीला ० सूत पिरोया है । इसी प्रकार, आनन्द ! बोधिसत्त्व-माता आदमें ०' । जो कि, भन्ते ! ० । ०—'आनन्द ! बोधिसत्त्वको जन्मे खताह होने पर, बोधिसत्त्व-माता घृत्युको प्राप्त हो, तुषित-लोकमें उत्पन्न होती है' । जो कि, भन्ते ! ० । ०—'आनन्द ! जैसे अन्य स्त्रियाँ बी या दस मास गर्भको कुक्षिमें रख, प्रसव करती हैं, इस प्रकार बोधिसत्त्व-माता प्रसव नहीं करती । बोधिसत्त्व-माता ( पूरे ) दस मास ही बोधिसत्त्वको कुक्षिमें धारणकर प्रसव करती है' । जो कि, भन्ते ! ० । ०—'आनन्द ! जैसे अन्य स्त्रियाँ पैदा या लेटी प्रसव करती हैं, इस प्रकार बोधिसत्त्व-माता प्रसव नहीं करती । बोधिसत्त्वमाता जो रह बोधिसत्त्वको जनती हैं । जो कि, भन्ते ! ० । ०—'आनन्द ! जब बोधिसत्त्व माताकी कुक्षिसे निकलता है, पहिले उसे देवता ग्रहण करते हैं, पीछे मनुष्य' । जो कि, भन्ते ! ० । ०—'आनन्द ! जब बोधिसत्त्व-माताकी कुक्षिसे निकलता है, तो बोधिसत्त्व अभी पृथिवीको 'वहीं' प्राप्त होता, कि चार देव-पुत्र उसे ग्रहणकर माताके सामने रख देते हैं—'देवि ! प्रसन्न होओ, महाप्रतापी ( = महेश्वर ) पुत्र तुम्हें उत्पन्न हुआ' । जो कि, भन्ते ! ० । ०—'आनन्द ! जब बोधिसत्त्व-माताकी कुक्षिसे निकलता है, तो उद्द-श्लेष्म-अधिर-पीष आदि किसी अ-शुचि ( पदार्थ )से अलिस हो मुद = विशद हो ( उत्पन्न होता है ); जैसे आनन्द ! मणि-रत्न काशीके वस्त्रमें रक्खा हो, न उसे काशिक वस्त्र जिस करता है, न वह काशिक वस्त्रको किस करता है । वी किस हेतु ?—दोनोंके शुद्ध होनेसे । ऐसे ही,

आनन्द ! जय बोधिसत्त्व ०<sup>१</sup> । जो कि, भन्ते ! ० । ०—‘आनन्द ! जय बोधिसत्त्व माताकी कुक्षिसे निकलता है, तो आकाशसे एक प्रीतल दूसरी गर्भ—दो जल धारायें प्रकट होती हैं, जिनसे कि बोधिसत्त्व और बोधिसत्त्व-माताका उदककृत्य (= स्नान, प्रक्षालन आदि ) किया जाता है । जो कि, भन्ते ! ० ।—‘आनन्द ! सद्यः उत्पन्न बोधिसत्त्व पैरको समथर रख, पृथिवी पर अक्षा हो, उत्तराभिमुख सात कदम चलता है, श्वेत-वस्त्र-धारित हो सारी दिशाओंको विलोकन करता है । और आर्यभी (= महती ) वाणीको बोलता है—मैं लोकमें अग्र हूँ, ० ज्येष्ठ हूँ, ० श्रेष्ठ हूँ, यह अन्तिम जन्म है, अब पुनर्भव (= आवागमन ) नहीं, जो कि, भन्ते ! ० । ०—आनन्द ! जय बोधिसत्त्व-माताकी कुक्षिसे निकलता है, तो देव-सार-ब्रह्मा-सहित ( सारे ) ०<sup>१</sup> प्रकाश लोकमें प्रकट होता है ०<sup>१</sup> दश-साहस्री-लोकधातु कंपित ०<sup>१</sup> होती है ।...’ । जो कि भन्ते ! ० ।”

‘तो, आनन्द ! इसे भी तत्थागतका आश्रय = अद्भुत धर्म धारणकर—यहाँ तत्थागतको वेदनायें (= अनुभव ) विदित हो उत्पन्न होती हैं, ० स्थित होती हैं । ० अस्त होती हैं, ० संशयें ० । ० वितर्क ० इसे भी तू आनन्द तत्थागत ० धारणकर ।”

‘जो कि, भन्ते ! भगवान्को वेदनायें ०, ० संशयें ०, ० वितर्क विदित हो उत्पन्न होते हैं, ० स्थित होते हैं, ० अस्त होते हैं,—इसे भी भन्ते ! मैं भगवान्का आश्रय = अद्भुत धर्म धारण करता हूँ ।”

आयुष्मान् आनन्दने यह कहा, शास्ता उससे सहमत हुये, और उन भिक्षुजंगे सन्तुष्ट हो आयुष्मान् आनन्दके भाषणको अभिनन्दित किया ।



## १२४-वक्कुल-सुत्तन्त ( ३।३।४ )

वक्कुलका लायमम विष्णु-जीवन

ऐसा मैंने सुना—

एक समय आयुष्मान् वक्कुल राजगृहमें वेणुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् वक्कुलका पहिले गृही होते वक्कुल भित्र अचेल (= नग्न ) काश्यप, जहाँ आयुष्मान् वक्कुल थे, वहाँ गया, जाकर आयुष्मान् वक्कुलके साथ "संभोदन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे अचेल काश्यपने आयुष्मान् वक्कुलसे यह कहा—

"आवुस वक्कुल ! प्रव्रजित ( संन्यासी ) हुये कितना समय हुना ?"

"आवुस ! मुझे प्रव्रजित हुये अस्सी वर्ष होगये ।"

"आवुस ! प्रव्रजित हुये इन अस्सी वर्षोंमें कितनी बार तुमने मैथुन सेवन किया ?"

"आवुस काश्यप ! मुझे इस तरह नहीं पूछना चाहिये—'० कितनी बार तुमने मैथुन सेवन किया ?' आवुस काश्यप ! मुझसे इस प्रकार पूछना चाहिये—'० कितनी बार काम-संज्ञा (= काम का ज्ञान ) उत्पन्न हुई ?"—आवुस काश्यप ! ( एक बार भी ) काम-संज्ञा उत्पन्न होना मैं नहीं जानता ।"

"ओ कि ( आप ) आयुष्मान् वक्कुल प्रव्रजित हुये इन अस्सी वर्षोंमें काम-संज्ञाका उत्पन्न होना भी नहीं जानते; इसे हम आयुष्मान् वक्कुलका आश्चर्य = अद्भुत धर्म धारण करते (= समझते ) हैं ।"

"आवुस ! अपने प्रव्रजित हुये इन अस्सी वर्षोंमें व्यापाद् (= द्वेष ) संज्ञा उत्पन्न होनेको नहीं जानता ।"

"० इसे भी हम आयुष्मान् वक्कुलका आश्चर्य-अद्भुत धर्म समझते हैं ।"

"० विहिंसा (= हिंसा )-संज्ञा ० नहीं जानता ।" "इसे भी ० ।"

"० काम-वितर्क (= काम संबंधी विचार ) ० नहीं जानता ।" "इसे भी ० ।"

"० व्यापाद्-वितर्क ० नहीं जानता ।" "इसे भी ० ।"

"० विहिंसा-वितर्क ० नहीं जानता ।" "इसे भी ० ।"

"० गृहपति-चीवर "सेवन किया नहीं जानता ।" "इसे भी ० ।"

"० शस्त्र (= कैंची आदि )से चीवरका काटना नहीं जानता ।" "इसे भी ० ।"

"० सूईसे चीवरका सीना नहीं जानता ।" "इसे भी ० ।"

\* गृहस्थोंको दिया गया वस्त्र । यह इनका कैंची चीवरोंका वस्त्र बनाते थे ।

“० कठिन चीवर<sup>१</sup> का सीना नहीं जानता ।” — “इसे भी ० ।”

“० समझाचारियोंके चीवर धनानेको नहीं जानता ।” — “इसे भी ० ।”

“० निमंत्रण खाना नहीं जानता ।” — “इसे भी ० ।”

“० जहो ! मुझे कोई निमंत्रित करे, इस प्रकार चित्का उपपन्न होता भी नहीं जानता ।”  
— “इसे भी ० ।”

“० अन्तर-घर ( = गृहस्थके घर ) में बैठनेको नहीं जानता ।” — “इसे भी ० ।”

“० अन्तर-घरमें भोजन करनेको नहीं जानता ।” — “इसे भी ० ।”

“० मातृ-ग्राम ( = बिराँ ) के आकार प्रकारको कपालमें छानेको नहीं जानता ।”  
— “इसे भी ० ।”

“० मातृग्रामको चार पदकी गायतक उपदेश धर्मको नहीं जानता ।” — “इसे भी ० ।”

“० मिश्रुणियोंके निवास ( = उपस्थ ) में जानेको भी नहीं जानता ।” — “इसे भी ० ।”

“० मिश्रुणियोंको धर्म उपदेशनेको ० ।” — “इसे भी ० ।”

“० शिखमाणा<sup>२</sup> को धर्म उपदेशनेको ० ।” — “इसे भी ० ।”

“० आमनेरीको धर्म उपदेशनेको ० ।” — “इसे भी ० ।”

“० ( किसीको ) प्रव्रज्या दो ० ।” — “इसे भी ० ।”

“० उपसम्पदा दी ० ।” — “इसे भी ० ।”

“० निःश्रय ( = गुरु धनमा ) देनेको ० ।” — “इसे भी ० ।”

“० आमनेरसे सेवा लेनेको ० ।” — “इसे भी ० ।”

“० जन्ताघर ( = स्नानगृह ) में नहानेको ० ।” — “इसे भी ० ।”

“० ( स्नानीय- ) चूर्णसे नहानेको ० ।” — “इसे भी ० ।”

“० समझाचारियोंसे देह मलवानेको ० ।” — “इसे भी ० ।”

“० क्षण भरके लिये भी धोमारोंकी उत्पत्तिको ० ।” — “इसे भी ० ।”

“० हरेके ठुकवे भर भी औषधके खानेको ० ।” — “इसे भी ० ।”

“० अपश्रयण ( = खाट ) बिछानेको ० ।” — “इसे भी ० ।”

“० शय्यापर सोनेको ० ।” — “यह भी ० ।”

“० वर्षा में गाँवके भीतर निवासको ० ।” — “यह भी ० ।”

“आयुस ! सप्ताह भर ही मैंने स-रण ( = चित्त-मल युक्त = अर्-अर्हत् ) दो राष्ट्र-पिंड  
खाया, फिर आठवें दिन आह्वा ( = अर्हत्त्व ) उत्पन्न हुई ।” — “यह भी ० ।”

“आयुस वक्कुल ! इस धर्म-विनय ( = धर्म ) में मैं प्रव्रज्या पाऊँ, ० उपसंपदा पाऊँ ।”

जबैल काश्यपने इस धर्ममें प्रव्रज्या पाई, उपसंपदा पाई । आयुष्मान् काश्यप उपसंपदा  
पानेके पोछे ही समय बाद, एकाकी ०<sup>३</sup> और कुछ यहाँ करनेको नहीं रहा — यह जान गये । आयु-  
ष्मान् काश्यप अर्हत्तामेंसे एक हुये ।

तब पीछे एक समय आयुष्मान् वक्कुल कुंजी ( = अपाश्रयण ) से ( एक ) विहाससे ( दूसरे )  
विहारमें जा कहते थे — “निकलो आयुष्मानो ! निकलो, आयुष्मानो ! आज मेरा परिनिर्वाण  
होगा ।”

<sup>१</sup> वर्षान्तमें संवसारा दिया जानेवाला चीवर ( = मिश्रु-वस्त्र ) ।

<sup>२</sup> जो मिश्रुणी बननेके छिने तैयारी कर रही है ।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ २६३ ।



जो कि आयुष्मान् वस्तुल कुंजी के विहारसे विहारमें जा कहते थे—'निकलो न परिनिर्वाण होगा'—यह भी इस आयुष्मान् वस्तुलका आश्चर्य अद्भुत धर्म समझते हैं। आयुष्मान् वस्तुल मिथु-संघ के बीच में बैठे बैठे परिनिर्वाणको प्राप्त हुये। यह भी इस आयुष्मान् वस्तुलका आश्चर्य अद्भुत धर्म समझते हैं।

## १२५—दन्त-भूमि-सुत्तन्त (३।३।५)

निष्ठकी रक्षाप्रता, सितमकी शिक्षा

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् राजगृहमें धेनुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे ।

उस समय अचिरवत् अमणोद्देश जंगलकी कुटियामें विहरता था । तब जयसेन<sup>१</sup> राज-कुमार जंघा-विहारके लिये टहलते घूमते हुए, वहाँ अचिरवत् अमणोद्देश आ, वहाँ गया । जाकर अचिरवत् अमणोद्देश (= समगुह्य) के साथ<sup>२</sup> संमोदन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे जयसेन राजकुमारने अचिरवत् अमणोद्देशसे यह कहा—

“अग्निवेश<sup>३</sup> ! मैंने यह सुना है, कि भिक्षु प्रमाद-रहित, उद्योगी, संयमी हो विहरते चित्त की एकाग्रताकी प्राप्त होता है ।”

“ऐसा ही है, राजकुमार ! ऐसा ही है, राजकुमार ! भिक्षु प्रमादरहित ० विहरते ० ।”

“अच्छा, आप अग्निवेश, ( अपने ) सुने और समझे अनुसार धर्मका उपदेश करें ।”

“राजकुमार ! मैं तुम्हें सुने-समझे अनुसार धर्म नहीं उपदेश सकता । राजकुमार ! मैं तुम्हें सुने-समझे अनुसार धर्म उपदेशूँ, और तुम मेरे भाषणका अर्थ न समझो, तो वह मेरे लिये ( नाटक की ) परेशानी, पीड़ा होगी ।”

“उपदेशें आप अग्निवेश ! मुझे सुने-समझे अनुसार धर्मको; क्या जाने, आप अग्निवेशके भाषणका अर्थ मैं समझ पाऊँ ।”

“राजकुमार ! मैं तुम्हें ० धर्म उपदेशूँगा; यदि तुम मेरे भाषणका अर्थ समझ पाये, तो अच्छा; यदि तुम मेरे भाषणका अर्थ न समझ पाये, तो अपने ( मत ) के अनुसार स्थित रहना; यहाँ फिर आगेकी ( बात ) मुझसे न पूछना ।”

“उपदेशें आप अग्निवेश ०; यदि मैंने आप अग्निवेशके भाषणका अर्थ समझ पाया ० फिर आगेकी ( बात ) आपसे न पूछूँगा ।”

तब अचिरवत् अमणोद्देशने जयसेन राजकुमारके लिये ( अपने ) सुने-समझे अनुसार धर्मको उपदेशा । उपदेशनेके बाद जयसेन राजकुमारने अचिरवत् अमणोद्देशसे यह कहा—

“भो अग्निवेश ! इसके लिये स्थान (= कारण ) नहीं, ज्ञानका नहीं, कि भिक्षु प्रमाद-रहित ० विहरते चित्तकी एकाग्रताकी प्राप्त होता है ।”

<sup>१</sup> विस्तारका पुत्र ( अनुकथा ) ।

<sup>२</sup> वह अचिरवत्तका गौतम था, बादके साथ बुजानेमें उस

समय गौतम नामका ही प्रयोग होता था ।



तब जयसेन राजकुमार अचिरवत् अमणोद्देशको स्थान नहीं, 'अवकाश नहीं'—बतला, आसनसे उठकर चला गया।

जयसेन राजकुमारके जानेके थोड़े समय बाद अचिरवत् अमणोद्देश, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया; जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ अचिरवत् अमणोद्देशने जो कुछ कथा-संलाप जयसेन राजकुमारके साथ हुआ था, (उसे) भगवान्‌से कह सुनाया। ऐसा कहनेपर भगवान्‌ने अचिरवत् अमणोद्देशसे यह कहा—

“अग्निवेश ! वह यहाँ कैसे मिल सकता है; जो वह निष्कामतासे ज्ञातव्य (= जाना जा सकता है) ० दृश्य है, ० प्राप्त्य है, ० साक्षात्कर्तव्य है, उसे, कामों (= भोगों)के मध्य बसता, कामोंको भोगता, काम-वितर्कोंसे खाया जाता, काम-दाहसे दग्ध किया जाता, कामोंकी पर्येषणा (= फिक)में चिन्तापन्न जयसेन राजकुमार जानेगा, देखेगा, साक्षात्कार करेगा, इसका स्थान नहीं; अवकाश नहीं। जैसे, अग्निवेश ! सुशिक्षित (= सुदान्त) = सुविनीत दो दम्प हाथी, ० घोड़े, या ० बैल हों और अदान्त = अविनीत दो दम्प हाथी, ० घोड़े, या ० बैल हों। तो क्या मानते हो, अग्निवेश ! जो वह सुशिक्षित ० दो दम्प हाथी ० हैं; क्या शिक्षित होते वह शिक्षित क्रियाको समझ जायेंगे ? वह दान्त (= शिक्षित) दान्त-भूमि (= शिक्षित-अवस्था)को प्राप्त होंगे ?”

“हाँ, मन्ते !”

“और जो वह, अग्निवेश ! अदान्त = अविनीत दो हाथी ० हैं; क्या वह अदान्त होते शिक्षित-क्रियाको समझ जायेंगे, वह अदान्त दान्त-भूमिको प्राप्त होंगे ? जैसेकि वह दान्त = विनीत दो हाथी ?”

“नहीं, मन्ते !”

“दूसरी प्रकार, अग्निवेश ! जो वह निष्कामतासे ज्ञातव्य ०<sup>१</sup> उसे ० जयसेन राजकुमार ० साक्षात्कार करेगा, इसका स्थान नहीं। जैसे, अग्निवेश ! ग्राम या निगमके पास महापर्वत हो। तब दो मित्र उस गाँव या निगमसे निकलकर, जहाँ वह पर्वत है, वहाँ जायें। जाकर एक मित्र नीचे पर्वतकी जड़में खड़ा रहे; दूसरा मित्र पर्वतके ऊपर चढ़ जाये। तब नीचे खड़ा मित्र ऊपर पर्वतपर स्थित मित्रसे यह कहे—

‘सौम्य ! ऊपर पर्वतपर खड़े तुम क्या देख रहे हो ?’

“वह यह कहे—‘सौम्य ! मैं ऊपर पर्वतपर खड़ा आराम-रमणीयता, वन ०, भूमि ०, पुष्करिणी-रमणीयताको देख रहा हूँ।’

“वह यह कहे—‘सौम्य ! इसके लिये स्थान नहीं, अवकाश नहीं; कि तुम ऊपर पर्वतपर खड़े आराम-रमणीयता ० को देखो।’

“तब वह ऊपर पर्वतपर स्थित मित्र नीचे पर्वत-पादपर उतर, उस मित्रका हाथ पकड़, ( फिर ) पर्वतके ऊपर चढ़, बोबी देर सुस्ता लेनेपर यह कहे—

‘सौम्य ! ऊपर पर्वतपर खड़े तुम क्या देख रहे हो ?’

“वह यह कहे—‘सौम्य ! मैं ० आराम-रमणीयता ० को देख रहा हूँ।’

“तब ( दूसरा ) यह कहे—‘सौम्य ! अभी अभी तुमने कहा—हम ऐसा जानते हैं—इसके लिये स्थान नहीं ० आराम-रमणीयता को देखो।’ और अभी तुम कह रहे हो—हम ऐसा जानते हैं—‘सौम्य ! मैं ० आराम-रमणीयता ० को देख रहा हूँ।’

<sup>१</sup> देखो ऊपर।

“वह ऐसा बड़े—‘सौम्य ! मैं इस महापर्वतसे इस प्रकार छिपा हुआ था, कि इसको नहीं देख सकता था’ ।”

“अग्निवेश ! जयसेन राजकुमार इस ( महापर्वत ) से भी बड़े अ-विद्या-स्वभावसे आच्छादित = निष्पृष्ट = अव्यकुल, परिग्रह है; वह, जोकि वह निष्कामतासे ज्ञातव्य ० । उसे ० । साक्षात्कार करेगा, इसके लिये स्थान नहीं, अवकाश नहीं । यदि अग्निवेश ! तू जयसेन राजकुमारको इन दो उपमाओं ( = दृष्टान्तों ) को सुनाता, आश्चर्य नहीं, जयसेन राजकुमार प्रसन्न ( = सन्तुष्ट ) होता, प्रसन्न हो प्रसन्नाकार ( किया ) तेरे लिये करता ।”

“किन्तु, मन्ते ! कहाँसे मैं जयसेन राजकुमारको अश्रुपूर्व दो उपमायें सुनता, जैसे कि भगवान्ने ( सुनाया ) ?”

“जैसे, अग्निवेश ! सूर्याभिषिक्त अग्निव राजा नागवर्निक ( = हाथीके जंगलके रक्षक ) को संबोधित करे—‘आओ, सौम्य नागवर्निक ! राजकीय नागपर आरुढ़ हो, नागवनमें प्रवेश कर, नागराजके गलेमें बाँधन डाल दो ।’ ‘अच्छा, देव !’ —( कह ) अग्निवेश ! नागवर्निक ० राजाको उत्तर दे; राजकीय नागपर आरुढ़ हो नागवनमें प्रवेश कर, जंगली नाग ( = हाथी ) को देख उसे राजकीय नागके गलेमें बाँध दे । फिर उसे राजकीय नाग सुली जगहमें ले जाये । अब अग्निवेश ! आरण्यक नाग सुली जगहमें चला जाये । अग्निवेश ! आरण्यक नागको नागवन प्रिय ( = गंधा-वर्हि ) होता है । तब नागवर्निक—‘राजासे जाकर कहे—‘देव ! आपका नाग सुली जगहमें ( लाया गया ) है’ । तब—‘० राजा हस्ति-दम्बक ( = हाथीको सिखलानेवाले ) को संबोधित करे—‘आओ, तुम सौम्य ! हस्ति-दम्बक ! आरण्यक नागके जंगली आदृतों ० । जंगली स्वर-संकल्पों ०, जंगली द्रव्य = क्लिप्तव्य ( = उत्पीड़ा ) ० - परिदाहों ० के हटानेके लिये, गाँवमें अभिरक्षण करनेके लिये, मनुष्योंको पलन्द होनेवाली आदृतोंको बतानेके लिये, शिखा दो ।’ ‘अच्छा, देव !’ ( कह ) ० राजाको उत्तर दे, वह हस्ति-दम्बक भूमिमें महास्तम्भको गाढ़ कर, उससे आरण्यक नागके गलेको बाँध दे । और जंगली आदृतों ०, ०, मनुष्योंको पलन्द आदृतोंको बतलानेके लिये, उसे वह हस्ति-दम्बक, कौमल कर्ण-प्रिय, प्रेमाशीस = हृदयंगम, पौरी, बहुजन-कान्त = बहुजनमनाप ( = ० प्रिय ) वाणीका प्रयोग करे । जब अग्निवेश ! आरण्यक नाग, हस्ति-दम्बकके वैसे वचनोंसे समुदाचरित ( = प्रेरित ) हो ( उसे ) सुनना चाहे, उधर कान लगाये, चित्तको अन्यत्रसे ( हटा ) वहाँ स्थापित करे; तब हस्तिदम्बक उसे आगे मृण-भोजन-जल प्रदान करे । जब, अग्निवेश ! आरण्यक नाग हस्ति-दम्बकके मृण-धास-जलको ग्रहण करने लगे; तब हस्ति-दम्बकको ऐसा हो—‘अब आरण्यक नाग जियेगा’ । तब हस्ति-दम्बक उससे आगेके करण ( = शिखा ) को कराये—‘पकवो हो’, ‘छोवो हो’ । जब, अग्निवेश ! नागराज, पकवने, छोवनेमें हस्ति-दम्बकको बातका करनेवाला होवे, शिखाको आचरण करनेवाला होवे; तब उसे हस्ति-दम्बक आगेका करण कराये—‘चलो हो’, ‘लौटो हो’ । ० ; तब ० आगेका करण कराये—‘उठो हो’, ‘बैठो हो’ । ० ; तब आगेका आर्निज नामक करण कराये—उसके सूँघमें बड़ी डाल ( = फलक ) बाँधे; भाला ( = तोमर ) हाथमें लिये पुरुष उसकी गर्दनपर बैठा रहे । चारों ओर भी तोमर हाथमें लिये पुरुष घेर कर खड़े हों । हस्ति-दम्बक लम्बी तोमर-पट्टीको ( हाथमें ) लिये सामने खड़ा रहे । वह आर्निज-करणको कराये न जगले पैरके पास जाये, न पिछले पैर ०, न शरीरके अगले भाग को ०, न शरीरके पिछले भागको ०, न शिरको ०, न कर्णको ०, न दाँतको ०, न पूँछको ०,



न सूँवको ० । (तब) वह राजाका नाग शक्ति (= शस्त्र) के प्रहारोंका, तलवारकी चोटोंका, इधु-प्रहारोंका, शर-पन्न-प्रहारोंका सहनेवाला होये । भेरी-पणव-वंश-शंख-हिंडिमके कोलाहलका सहनेवाला हो । सारी कुटिलता, और दोषोंसे रहित, कषायसे मुक्त हो वह राजाई = राजभोग्य, राजाका अंग ही कहा जायेगा ।

“इसी प्रकार, अग्निवेश ! यहाँ लोकमें तथ्यागत ०<sup>१</sup> घरसे बेघर हो प्रव्रजित होता है । अग्निवेश ! इतनेसे आर्यश्रावक ( आरम्यक नागकी भाँति ) सुली जगहमें प्राप्त होता है । ... देव मनुष्य इन पाँच काम-गुणोंमें आसक्त होते हैं । तब उसे तथ्यागत विनयन (= शिक्षण, लेखाना ) कहते हैं—आ नू भिक्षु ! शीलवान् धन । प्रातिमोक्ष संवरसे संवृत (= रक्षित ) हो विहर । आचार-मोचरसे युक्त हो, अणु मात्र पाप (= वष ) में भी भयदर्शी हो, स्वीकृत कर शिक्षापदों (= भिक्षु नियमों ) का अभ्यास कर । जब अग्निवेश ! आर्यश्रावक शीलवान् होता है, प्रातिमोक्ष संवरसे संवृत हो विहरता है । आचार-मोचरसे युक्त ० शिक्षापदोंका अभ्यास करता है । तब उसे तथ्यागत आगेको विनयन करते हैं—आ, नू भिक्षु ! इन्द्रियोंमें गुस्सहार (= संयम-युक्त ) धन—आँखसे कृपको देख कर ०<sup>२</sup> वह हटा, प्रज्ञाको दुर्बल करनेवाले चित्तके उपक्लेश (= कालुष्य ) इन पाँच नीचताओंकी ० कायामें कायानुपश्यी<sup>३</sup> हो विहरता है । ०<sup>३</sup> वेदनाओंमें वेदना-नुपश्यी ० । ०<sup>४</sup> चित्तमें चित्तानुपश्यी ० । ० धर्ममें धर्मानुपश्यी ० । जिस प्रकार, अग्निवेश ! हन्ति-दम्भक महासम्भको पृथिवीमें गाड़कर, आरम्यक नागके गलेमें बाँधता है, और जंगली आदतों ०, मनुष्योंको पसन् आदतों को बतलाने के लिये, ऐसे ही, अग्निवेश ! आर्यश्रावकके लिये वह चार स्मृति-प्रत्यान, चित्तके बंधन होते हैं ; गेहमें बँधे शीलोंके हटानेके लिये, ० स्वरसंकल्पोंके ०, ० द्रव्य-जलमय ०, म्याय (= निर्वाण ) की प्राप्तिके लिये, निर्वाणके साक्षात्कारके लिये । तब उसे तथ्यागत आगेको विनयन करते हैं—आ, नू भिक्षु ! कायामें कायानुपश्यी हो विहर, और मत काम-सम्बन्धी चित्तकोंका चित्तर्कन कर । वेदनाओंमें ० । चित्तमें ० । धर्ममें धर्मानुपश्यी हो विहर, और मत काम सम्बन्धी चित्तकोंका चित्तर्कन कर । वह चित्तर्क और विचारके शान्त होनेपर ०<sup>४</sup> द्वितीय ध्यान ० । ०<sup>५</sup> तृतीय ध्यान ०<sup>५</sup> । ०<sup>६</sup> चतुर्थ ध्यान ०<sup>६</sup> । वह इस प्रकार चित्तके पञ्चाम ०<sup>६</sup> पूर्व जन्मोंकी स्मृतिके ज्ञानके लिये चित्तको हुकाता है ०<sup>६</sup> । ०<sup>७</sup> प्राणिजोंके प्लुति और उत्पत्तिके ज्ञानके लिये ०<sup>७</sup> स्वर्गलोकको प्राप्त हुये हैं । ० आत्मर्षिके क्षयके ज्ञानके लिये ०<sup>८</sup> अब यहाँ ( करने ) के लिये कुछ ( शेष ) नहीं है—इसे जानता है । अग्निवेश ! वह भिक्षु शीत-उत्पन्न, भूस्न-प्यासके प्रतिघात, दाँस-मशक-वायु-जातप-सरीसृपोंको स्पर्श, दुरुक्त, दुरामत वचनोंका सहनेवाला उत्पन्न दुःख, तीव्र, खर, कटुक, अपात = अस्माय (= अग्रिय ), प्राणहर वेदनाओंको अधिवासन (= सहर्ष स्वीकार ) करनेवाला होता है । सारे राग-द्वेष-मोह ( रूपी ) कषायसे विरहित = निश्चित हो, ( वह ) आहुणेय = पाहुणेय, दक्षिणेय, अजलिकरणीय, लोकके लिये पुण्य ( धोने ) का अनुपम क्षेत्र होता है ।

“अग्निवेश ! राजकीय नाग चाहे बृद्ध भी हो, ( किन्तु ) यदि वह अ-दान्त = अ-विनीत मरता है; तो कहा जाता है,—‘राजकीय नाग बृद्ध अदान्त = अविनीत ही मरा’ । ० अश्वस-वयस्क भी ० । ० अल्पवयस्क भी ० । इसी प्रकार, अग्निवेश ! यदि स्वविर भिक्षु भी, क्षीणाम्भव (= अर्हत् ) हुये बिना मरता है; तो कहा जाता है—स्वविर भिक्षुने अदान्त हो मरण पाया । ०

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ २४-२५ ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ २५८ ।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ १५-४० ।

<sup>४</sup> देखो पृष्ठ २५ ।

<sup>५</sup> देखो पृष्ठ २६ ।

मध्यम वयस्क भिक्षु भी ० । ० नया भिक्षु भी ० । अग्निवेश ! यदि राजाका नाग बृद्ध भी, दान्त = विनीत हो सरता है, तो कहा जाता है—'राजाका नाग बृद्ध भी दान्त = विनीत सरा है । ० मध्यम वयस्क ० । ० अथ वयस्क ० । इसी प्रकार अग्निवेश ! स्वविर भिक्षु भी यदि क्षीणाश्रव (= अर्हत् ) हो सरता है, तो कहा जाता है—स्वविर भिक्षुने दान्त हो सरा पाया । ० मध्यम-वयस्क भिक्षु भी ० । ० नया भिक्षु भी ० ।"

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो अचिरवत् अमणोद्देवाने भगवान्के भाषणको अभिर्नन्दित किया ।



## १२६-भूमिज-सुत्तन्त ( ३।३।६ )

वर्णित रीतिसे प्राकृत किया गयाचर्च ही फलदायक होता है

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् राजगृहमें वैष्णुवन कलंदक-निवापमें विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् भूमिज<sup>१</sup> पूर्वाह्न समय पहिनकर प्राथ-चीवर ले जहाँ जयसेन राजकुमारका घर था, वहाँ गये । जाकर धिले आसनपर बैठे । तब जयसेन राजकुमार जहाँ आयुष्मान् भूमिज थे, वहाँ गया, जाकर आयुष्मान् भूमिजके साथ संभोदन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठकर आयुष्मान् भूमिजसे यह बोला—

“भो भूमिज ! कोई कोई क्षमण ब्राह्मण इस वाद = इस दृष्टिवाले हैं—‘आशाकरके भी यदि ब्रह्मचर्यवास करते हैं, ( तो ) भी वह फल पानेके अयोग्य है । आशा न करके भी यदि ० । आशा और अन-आशा करके भी यदि ० । न-आशा-न-अनाशा करके भी यदि ० । यहाँ, आप भूमिजके शास्ता किस वाद = किस दृष्टिवाले, क्या कहनेवाले हैं ?”

“राजकुमार ! मैंने भगवान्के मुखसे यह नहीं सुना है, मुखसे न ग्रहण किया है; ( किन्तु ) सम्भव है, कि भगवान् इस प्रकार व्याख्यान करें—‘आशा करके भी यदि अ-योनितः (= कार्य-कारणका भनमें ध्यान न रख ) ब्रह्मचर्य वास करते हैं, ( तो ) वह फल पानेके अयोग्य है । आशा करके भी यदि अयोनितः ० । आशा और अनाशा करके भी ० । न-आशा-न-अनाशा करके भी यदि ० । आशा करके भी यदि योनितः ब्रह्मचर्य-वास करते हैं, ( तो ) वह फल पानेके योग्य हैं । अनाशा करके भी ० । आशा-अनाशा करके भी ० । न-आशा-न-अनाशा करके भी ० । राज-कुमार ! मैंने भगवान्के मुखसे यह नहीं सुना है ० ।”

“यदि आप भूमिजके शास्ता इस वाद = दृष्टि = व्याख्यानवाले हैं; तो मैं समझता हूँ, वह सारे ही दूसरे क्षमण-ब्राह्मण, बुद्धोंको मातकर स्थित हैं ।”

तब जयसेन राजकुमारने आयुष्मान् भूमिजको अपने स्वालीपाक (= भोजन )से परोसा । तब आयुष्मान् भूमिज मित्रासे निवृत्त हो भोजनोपरांत जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् भूमिजने भगवान्से यह कहा—

“मन्ते ! ( भाव ) मैं पूर्वाह्न समय पहिनकर ०<sup>१</sup> जहाँ जयसेन राजकुमारका घर था, वहाँ गया ०<sup>१</sup> तो मैं समझता हूँ, वह सारे ही दूसरे क्षमण-ब्राह्मण-बुद्धोंको मातकर स्थित हैं । क्या मन्ते ! वैसा पहलेपर यह उत्तर दे मैं भगवान्के लिये सुक कहनेवाला हूँ, भगवान्पर असत्यका

<sup>१</sup> आयुष्मान् भूमिज जयसेन राजकुमारके मामा थे ( अ. क. ) ।

आरोप तो नहीं करता ? धर्मके अनुसार कहनेवाला हूँ न; कोई धर्मानुसारी वाद = अनुवाद ( मेरे इस कथनसे ) निन्दित तो नहीं होता ?”

“हाँ, भूमिज ! वैसे पहलेपर यह उत्तर दे तू मेरे लिये युक्त कहनेवाला है ० कोई धर्मानुसारी वाद = अनुवाद निन्दित नहीं होता । भूमिज ! जो अमण या बाह्य मिथ्या-दृष्टि, मिथ्या-संकल्प, मिथ्या-वचन, मिथ्या-कर्मान्त, मिथ्या-आजीव, मिथ्या-व्यायाम, मिथ्या-स्मृति, मिथ्या-समाधि ( वाले ) हैं, ( वही कहते हैं )—‘आशाकरके भी यदि ब्रह्मचर्यवास करते हैं, ( तो ) भी वह फल पानेके अयोग्य है । ० । न-आशा-न-अनाशाकरके भी ०, सो किस हेतु ? अ-योनिशः होनेसे, भूमिज ! वह फल पानेके अयोग्य है ।

“जैसे भूमिज ! पुरुष तेल-अर्धी = तेल-गवेषी, तेलकी खोज करते, द्रोणीमें घाल डालकर पानीका छीटा दे दे तेल ( = योजित करे ) । यदि आशाकरके भी घालको द्रोणीमें डालकर, पानीका छीटा दे दे पेलें, तो ( वह ) तेल पानेके योग्य नहीं है । यदि अनाशा करके भी ० । यदि आशा-अनाशा करके भी ० । यदि न-आशा-न-अनाशा करके भी ० । सो किस हेतु ?—भूमिज ! वह तेल पानेका ( प्रयत्न ) अयोनिशः ( = कार्य-कारणका ब्यालक्ष्यविना ) है । इसी प्रकार भूमिज ! जो कोई अमण बाह्य मिथ्या दृष्टि ( = झूठी धारणा वाले ) ० मिथ्या समाधि ( वाले ) हैं, यदि वह आशा करके भी ब्रह्मचर्य-वास करें, तो भी वह फल पानेके अयोग्य हैं । ० । न-आशा-न-अनाशा करके भी ० । सो किस हेतु ?—भूमिज ! वह फल पानेका ( प्रयत्न ) अयोनिशः है ।

“जैसे, भूमिज ! पुरुष क्षीर-अर्धी = क्षीर-गवेषी क्षीरकी खोज करते, तरुण-वत्सा ( = धेनु ) गायको सींगसे पकड़कर आर्घिजन ( = दूहन ) करे, ( तो ) वह क्षीर पानेके अयोग्य है । अनाशा-करके भी ० । आशा-अनाशा करके भी ० । न-आशा-न-अनाशा करके भी ० । सो किस हेतु ?—भूमिज ! वह दूध पानेका ( प्रयत्न ) अयोनिशः है । ऐसे ही भूमिज ! जो कोई अमण बाह्य मिथ्या दृष्टि ० ।

“जैसे, भूमिज ! पुरुष नवनीत ( = मक्खन )-अर्धी, नवनीत-गवेषी, नवनीतकी खोज करते, कलशमें पानी डालकर मधानीसे मये, ( तो वह ) नवनीत पानेके योग्य नहीं है । आशा करके भी ० । ० । सो किस हेतु ?—अयोनिशः है । ऐसेही भूमिज ! जो अमण-बाह्य ० ।

“जैसे, भूमिज ! पुरुष अग्नि-अर्धी, अग्नि-गवेषी, अग्निका खोज करते हरे गीले काष्ठको ले उत्तारणीसे मंथन करे । आशा करके भी ० । ० । ० ।

“जैसे, भूमिज ! पुरुष तिल-अर्धी ० द्रोणीमें तिल-पिष्टको डालकर पानी का छीटा दे दे पेलें, यदि आशा करके तिल-पिष्ट ( = तिलकी लुगदी ) द्रोणीमें डाल पानी का छीटा दे दे पेलें, ( तो वह ) तिलके पानेके योग्य है । अ-आशा करके ० । आशा-अनाशा करके ० । न-आशा-न-अनाशा करके ० । सो किस हेतु ?—भूमिज ! तिलके पानेका ( वह प्रयत्न ) योनिशः है । ऐसेही, भूमिज ! जो कोई अमण या बाह्य सम्मग्न-दृष्टि ( = ठीक धारणा वाले ), सम्मग्न-संकल्प, सम्मग्न-वचन, सम्मग्न-कर्मान्त, सम्मग्न-आजीव, सम्मग्न-व्यायाम, सम्मग्न-स्मृति, सम्मग्न-समाधि ( वाले ) हैं । वह यदि आशा करके भी ब्रह्मचर्यवास करते हैं, फल पानेके योग्य हैं । ० । न-आशा-न-अनाशा करके भी ० । सो किस हेतु ?—भूमिज ! फलके पाने का ( वह प्रयत्न ) योनिशः है ।

“जैसे, भूमिज ! पुरुष क्षीर-अर्धी ० तरुण-वत्सा गायको स्तनसे दूध ० । ० ।

“जैसे, भूमिज ! पुरुष नवनीत-अर्धी ० कलशमें दधि डाल कर मधानीसे मये ० । ० ।

“जैसे, भूमिज ! पुरुष अग्नि-अर्धी ० सूखे कड़े काष्ठको ले उत्तारणीसे मंथन करे । आशा करके भी ० । ० ।



“भूमिज ! यदि तू जयसेन राजकुमारको यह चार डपमायें बतलाता, आश्चर्य नहीं जयसेन राजकुमार प्रसन्न होता; और प्रसन्न हो प्रसन्नाकार किया तेरे लिये करता ।”

“कहाँसे, मन्ते ! मैं जयसेन राजकुमारको अबतुल्य ये चार डपमायें बतलाता, जैसे कि भगवान् ने बतलाया ?”

भगवान् ने यह कहा, सन्तुष्ट हो आयुष्मान् भूमिजने भगवान् के भाषणको अभिमन्त्रित किया ।

## १२७—अनुरुद्ध-सुत्तन्त ( ३।३।७ )

भावना-योग (अप्रमाणा चेतो-विमुक्ति)

पेसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिटिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब पंचकांग स्वपतिने एक पुरुषसे कहा—

“आओ, हे पुरुष ! तुम जहाँ आयुष्मान् अनुरुद्ध है, वहाँ जाओ । जाकर मेरे वचनसे आयुष्मान् आनन्दके चरणोंमें शिरसे वन्दना करो—‘मन्ते ! पंचकांग स्वपति आयुष्मान् अनुरुद्धके चरणोंमें शिरसे वन्दना करता है’ । और यह भी कहना—मन्ते ! आयुष्मान् अनुरुद्ध अपने लेकर धारका, कलके लिये पंचकांग स्वपतिकी भोजन स्वीकार करें; और मन्ते ! आयुष्मान् अनुरुद्ध जल्दी ही आयें । पंचकांग स्वपति राजकीय कार्यसे बहुकृत्य = बहुकरणीय है ।”

“अच्छा, मन्ते !”—( कह ) वह पुरुष पंचकांग स्वपतिको उत्तर दे; वहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया; जाकर आयुष्मान् अनुरुद्धको अभिवादन कर एक ओर बैठ गया, एक ओर बैठे, उस पुरुषने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—मन्ते ! पंचकांग स्वपति आयुष्मान्के चरणोंमें = बहुकरणीय है ।”

आयुष्मान् अनुरुद्धने भीनसे स्वीकार किया ।

तब आयुष्मान् अनुरुद्ध उस रातके बीचनेपर पूर्वाह्नके समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहाँ पंचकांग स्वपतिका घर था, वहाँ गये । जाकर बिठे आसनपर बैठे । तब पंचकांग स्वपतिने आयुष्मान् अनुरुद्धको उत्तम खाद्य-भोजनसे अपने हाथसे सन्तर्पित = सम्प्रसारित किया । तब आयुष्मान् अनुरुद्धके भोजनकर पात्रसे हाथ स्वीच लेनेपर, पंचकांग स्वपति एक नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गया ।

एक ओर बैठे पंचकांग स्वपतिने आयुष्मान् अनुरुद्धसे यह कहा—

“मन्ते ! मेरे पास स्वयं मित्रमैने जाकर यह कहा—‘गृहपति ! अ-प्रमाण (= विराज) चेतोविमुक्तिकी भावना करनी चाहिये’ । किन्हीं किन्हीं स्वयंमैने यह कहा—‘गृहपति ! महद्गता (= महती) चेतोविमुक्तिकी भावना करना चाहिये’ । मन्ते ! जो यह अ-प्रमाणा चेतोविमुक्ति है; और जो यह महद्गता चेतोविमुक्ति है; क्या मन्ते ! यह दो धर्म (= बातें) भिन्न अर्थवाले और भिन्न-व्यंजन (= नाम) वाले हैं; या एक अर्थवाले हैं, सिर्फ व्यंजन ही माना है ?”

“तो गृहपति ! न ही कह, यहाँ तेरा ( कहना ) अ-पर्यंक (= द्विविधा-रहित) होगा ।”

“मन्ते मुझे पेसा होता है—जो यह अ-प्रमाणा चेतोविमुक्ति है, और जो यह महद्गता चेतोविमुक्ति है; यह धर्म एक अर्थवाले हैं, सिर्फ व्यंजन ही माना है ।”

“गृहपति ! जो यह अ-प्रमाणा चेतोविमुक्ति है, और जो यह महद्गता चेतोविमुक्ति है;



यह धर्म नाना-अर्थवाले हैं, और नाना व्यंजनवाले भी । गृहपति ! इसे इस बातसे भी जानना चाहिये, कि कैसे यह धर्म नानार्थ हैं, और नाना व्यंजन भी । गृहपति ! क्या है, अप्रमाणा चेतो-विमुक्ति ?—यहाँ गृहपति ! भिक्षु मैत्रीभावयुक्त चित्तसे ०<sup>१</sup> सारे छोकड़ों पूर्ण कर विहरता है । करुणामावपूर्ण चित्तसे ०<sup>१</sup> । सुदृतामावयुक्त चित्तसे ०<sup>१</sup> । उपेक्षाभावयुक्त चित्तसे ०<sup>१</sup> । गृहपति ! यह कही जाती है, अप्रमाणा-चेतोविमुक्ति । क्या है, गृहपति ! महद्गता चेतो-विमुक्ति ?—यहाँ गृहपति ! भिक्षु एक वृक्ष-छायाके बराबर महद्गत (= वने) को व्याप्त कर = अभिमुक्त कर विहरता है । गृहपति ! यह कही जाती है, महद्गता चेतोविमुक्ति । और यहाँ गृह-पति ! भिक्षु दो या तीन वृक्ष छायाके बराबर महद्गतको व्याप्त ० कर विहरता है । गृहपति ! यह कही जाती है, महद्गता चेतोविमुक्ति । ० एक ग्राम-क्षेत्र ० महद्गतको ० । ० दो या तीन ग्राम-क्षेत्र ० महद्गतको ० । ० एक महाराज्य ० महद्गतको ० । ० दो या तीन महाराज्य ० महद्गतको ० । ० महा-समुद्रपर्यन्त एक महापृथिवीके बराबर महद्गतको ० । ० महामसमुद्रपर्यन्त दो या तीन महापृथिवी ० । गृहपति ! यह कही जाती है, महद्गता चेतोविमुक्ति । गृहपति ! इस बातसे भी जानना चाहिये, कि यह धर्म नानार्थ हैं, और नाना व्यंजन भी ।

“गृहपति ! यह चार भव-उत्पत्तियाँ (= लोकमें उत्पत्तियाँ) हैं । कौनसी चार ?—( १ ) यहाँ गृहपति ! कोई ( पुरुष ) परीक्षाओंको व्याप्त कर = अभिमुक्त कर विहरता है ; वह काया छेद करनेके बाद परीक्षाओंके स-दृश्यता (= समानता) में उत्पन्न होता है । ( २ ) ० अप्रमाणाओंको व्याप्त कर ० विहरता है ; वह ० करनेके बाद अप्रमाणाओंके स-दृश्यतामें उत्पन्न होता है । ( ३ ) ० संक्षिप्तोंके स-दृश्यतामें उत्पन्न होता है । ० ( ४ ) परि-शुद्धोंके स-दृश्यतामें उत्पन्न होता है । गृहपति ! यह चार भव-उत्पत्तियाँ हैं । गृहपति ! ऐसा समय होता है, जब वह देवता एक जगहपर जमा होते हैं । इकट्ठा होनेपर उनके वर्णोंका नानापन नहीं जान पड़ता, न आभा (= प्रकाश) का नानापन (= फर्क) ही । गृहपति ! ऐसा समय होता है, जब वह देवता बाहर जाते हैं, बाहर जाते हुये उन देवताओंके वर्णोंका नानापन जान पड़ता है, और आभाका नानापन भी । जैसे, गृहपति ! कोई पुरुष बहुतसे तेलके दीपोंको एक घरमें प्रविष्ट करे; तो एक घरमें प्रविष्ट उनकी अर्ची (= लौ) का नानापन तो मालूम होता है, किन्तु आभाका नानापन नहीं मालूम होता । ऐसे ही, गृहपति ! वह समय होता है, जब वह देवता एक जगहपर जमा होते हैं ० । जैसे गृहपति ! ( कोई ) पुरुष उन अनेक तेल दीपोंको उस घरसे बाहर करे; तो बाहर किये जाते उन तेलदीपोंकी अर्चीका नानापन भी जान पड़ता है, और आभाका नानापन भी ( जान पड़ता है ) । ऐसे ही, गृहपति ! ० बाहर जाते हैं ० ।

“गृहपति ! उन देवताओंकी ऐसा नहीं होता—‘वह हम लोगोंका ( रूप ) नित्य, भुव या शाश्वत है; बल्कि जहाँ जहाँ वह देवता अभिनिवेश (= चाह) करते हैं, वहाँ वहाँ ही, वह देवता अभिरमण करते हैं’ । जैसे, गृहपति ! वहाँगी (= काज) टोकरी (= घटक) में ले जाई जाती मन्त्रियोंको ऐसा नहीं होता—यह हमारा नित्य, भुव या शाश्वत है, बल्कि जहाँ जहाँ वह मन्त्रियों जाती हैं, वही वही वह अभिरमण करती हैं । इसी प्रकार, गृहपति ! उन देवताओंको ऐसा नहीं ० ।”

ऐसा कहनेपर आशुमान् सभ्य कान्याग्रज (= समिव कान्चाग्रज) ने आशुमान् अनुसूय से यह कहा—

“साधु, भन्ते अनुरुद्ध ! यहाँ मुझे कुछ आगे ( की बात ) को पूछना है—“भन्ते ! जो वह ज्ञाता देवता है, क्या सभी परीक्ष-आम (= अल्प-प्रकाश ) हैं, या कोई कोई देवता अग्रभाष-आम भी हैं ?”

“उस अंगसे, आबुस कात्यायन ! कोई कोई देवता परीक्षाम हैं, कोई कोई देवता अग्रभाषाम हैं ।”

“भन्ते अनुरुद्ध ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है जिससे कि, एक देव-निकाय (= देव समुदाय, देव योनि )में उत्पन्न होनेपर भी उन देवताओंमें कोई कोई देवता परीक्षाम हैं, और कोई कोई देवता अग्रभाषाम हैं ?”

“तो, आबुस कात्यायन ! तुम्हें ही यहाँ पूछता हूँ ; जैसा तुम्हें ठीक जैसा, वैसा उत्तर दो, तो क्या मानते हो, आबुस कात्यायन ! जो वह भिन्न एक वृक्ष मूल (= वृक्ष-काया )के बराबर महद्गत (= बड़े स्थान )को व्याप्त कर = अधिभुक्त कर विहरता है; और जो वह भिन्न दो या तीन वृक्ष मूलके बराबर महद्गतको व्याप्त कर = अधिभुक्त कर विहरता है; इन दोनों ही वृक्षकी भावनाओंमें कौन वृक्ष-भावना महद्गततरा (= विशालतर ) है ?”

“जो यह, भन्ते ! भिन्न दो या तीन वृक्ष मूलोंके बराबर ० ।”

“तो क्या मानते हो, आबुस कात्यायन ! जो यह ० दो या तीन वृक्ष मूलों ०; और जो वह भिन्न एक ग्राम-क्षेत्रके बराबर महद्गत ० ।”

“० जो यह, ० ग्राम-क्षेत्रके बराबर महद्गत ० ।”

“० ग्राम-क्षेत्रके बराबर महद्गत ०; और जो ० दो या तीन ग्राम-क्षेत्र ० ।”

“जो यह, ० दो या तीन ग्राम-क्षेत्र ० ।”

“० दो या तीन ग्राम-क्षेत्र ०; और जो ० एक महाराज्य ० ।”

“जो यह, ० एक महाराज्य ० ।”

“० एक महाराज्य ०; और जो ० दो या तीन महाराज्य ० ।”

“जो यह, ० दो या तीन महाराज्य ० ।”

“० दो या तीन महाराज्य ०; और जो ० महासमुद्र पर्यन्त एक महापृथिवी ० ।”

“जो यह, ० महासमुद्र पर्यन्त एक महापृथिवी ० ।

“० महासमुद्र पर्यन्त एक महापृथिवी ०; और जो ० महासमुद्र पर्यन्त दो या तीन महापृथिवी ० ।”

“जो यह, ० महासमुद्र पर्यन्त दो या तीन महापृथिवी ० ।”

“आबुस कात्यायन ! यह हेतु है = यह प्रत्यय है, जिससे एक देव-निकायमें उत्पन्न होनेपर भी, इन देवताओंमें कोई कोई देवता परीक्षाम हैं, और कोई कोई देवता अग्रभाषाम हैं ।”

“साधु, भन्ते अनुरुद्ध ! यहाँ, मुझे कुछ आगे ( की बात )को पूछना है—“भन्ते ! जो वह ज्ञाता देवता है, क्या सभी उनमें क्लिष्ट (= मल-युक्त )-आम हैं, या कोई कोई परिशुद्धाम भी हैं ?”

“उस अंगसे, आबुस कात्यायन ! कोई कोई देवता क्लिष्टाम हैं । कोई कोई देवता हैं परिशुद्धाम ।”

“भन्ते अनुरुद्ध ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जिससे कि देव-निकायमें उत्पन्न होनेपर भी उन देवताओंमें कोई कोई देवता क्लिष्टाम हैं, कोई परिशुद्धाम हैं ?”



“तो आलुस कात्यायन ! उपमा (= इष्टांत) तुम्हें कहता हूँ। उपमासे भी कोई कोई विशु मुरुष भाषणका अर्थ समझ जाते हैं। जैसे, आलुस कात्यायन ! जलते तेल-प्रदीपमें तेल भी अ-परिशुद्ध (= अशुद्ध, मलिन) हो, घसी भी अ-परिशुद्ध हो। वह तेलकी अपरिशुद्धतासे, घसी की भी अपरिशुद्धतासे अंधला-धुंधला सा जलता हो, ऐसे ही आलुस कात्यायन ! कोई भिक्षु संक्लिष्ट (= मलिन) आत्माको न्यास कर = अधिमुक्त कर विहरता है। उसका कायिक दौस्थ्य ( = व्यतिक्रम ) भी अच्छी तरह शान्त (= सुप्रती प्रसन्न) नहीं हुआ रहता, स्वान-मृद ( = नालस्य ) भी अच्छी तरह नष्ट नहीं हुआ रहता; औदत्य-कौट्य (= उद्वतपना, हिचकिचाहट) भी अच्छी तरह हटाया नहीं गया रहता। वह कायिक दौस्थ्यके अच्छी तरह शान्त न होनेसे, स्वान-मृदके अच्छी तरह नष्ट न होनेसे, औदत्य-कौट्यके अच्छी तरह हटाये गये होनेसे, अंधला-धुंधलासा ध्यान करता है। वह काया छेद करनेके बाद संक्लिष्टात्म देवताओंकी सहज्यतामें उत्पन्न होता है।

“जैसे, आलुस कात्यायन ! जलते तेल-प्रदीपमें तेल भी परिशुद्ध हो, घसी भी परिशुद्ध हो; वह तेलकी परिशुद्धतासे, घसीकी भी परिशुद्धतासे अंधला-धुंधला न जलता हो, ऐसे ही, आलुस कात्यायन ! यहाँ कोई भिक्षु परिशुद्धात्मको न्यास कर = अधिमुक्त कर विहरता है। उसका कायिक दौस्थ्य भी अच्छी तरह शांत हुआ रहता है, स्वान-मृद भी अच्छी तरह नष्ट हुआ रहता है; औदत्य-कौट्य भी अच्छी तरह हटाया गया रहता है। वह ० औदत्य-कौट्यके अच्छी तरह हटाये गये होनेसे अंधला-धुंधलासा नहीं ध्यान करता। वह काया छेद करनेके बाद परिशुद्धात्म देवताओं की सहज्यतामें उत्पन्न होता है। आलुस कात्यायन ! यह हेतु = यह प्रत्यय है ० ।”

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् सम्य कात्यायनने आयुष्मान् अनुरुद्धसे यह कहा—

“साधु, भन्ते अनुरुद्ध ! भन्ते ! आयुष्मान् अनुरुद्धने यह नहीं कहा—‘ऐसा मैंने सुना’ या ‘ऐसा होता चाहिये’, बल्कि आयुष्मान् अनुरुद्ध यह कहते हैं—‘ऐसे वह देवता’, ‘इस प्रकारके वह देवता’, ( यह सोचकर ) भन्ते ! ऐसा होता है—जब पहिले आयुष्मान् अनुरुद्ध उन देवताओंके साम रहें, संलाप किये हैं, साक्षात्कार किये हैं ।”

“जब, आलुस कात्यायन ! जानकर मैंने वह बात कही और बल्कि मैं तुमसे कहता हूँ—पहिले आयुस कात्यायन ! दीर्घ काल तक मैं देवताओंके साम रहा हूँ, संलाप किये हूँ, साक्षात्कार किये हूँ ।”

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् सम्य कात्यायनने पंचकांग गृहपतिसे यह कहा—

“गृहपति ! काम है तुम्हें, सुलाम मिला तुम्हें, जो कि तुम अपनी संशयको मिटा सके, और मुझे भी यह धर्म-पर्याय (= धर्मोपदेश ) सुननेकी मिला ।”

## १२८—उपकिलेस-सुत्तन्त (३।३।८)

कलहका कारण, और विचित्रता। योग-युक्तियों

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् 'कौशाम्बीके शोपिताराममें विहार करते थे। उस समय कौशाम्बीमें भिक्षु भंडन करते, कलह करते, विवाद करते, एक दूसरेको मुल (रूपी) शक्ति (= हथियार) से बेधते फिरते थे। तब कोई भिक्षु, जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्को अभिवादन कर, एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुये उस भिक्षुने भगवान्से वीं कहा—“यहाँ कौशाम्बीमें मन्ते ! भिक्षु भंडन करते, कलह करते, विवाद करते, एक दूसरेको मुलशक्तिसे बेधते फिरते हैं। अच्छा हो यदि मन्ते ! भगवान्, जहाँ वह भिक्षु है, वहाँ चले।”

भगवान्ने मौनसे उसे स्वीकार किया। तब भगवान् उहाँ वह भिक्षु थे, वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओंसे बोले—

“यस भिक्षुओ ! भंडन, कलह, विग्रह, विवाद ( मत ) करो।”

ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्से कहा—

“मन्ते ! भगवान् ! धर्म-स्वामी ! रहने दें। परवाह मत करें। मन्ते ! भगवान् ! धर्म-स्वामी ! एष्ट-धर्म ( इसी जन्म ) के सुलके साथ विहार करें। हम इस भंडन, कलह, विग्रह, विवादसे ( स्वयं गिफ्ट लेंगे )।”

दूसरी बार भी भगवान्ने उन भिक्षुओंसे कहा—“यस भिक्षुओ ० ! ०”। ०। तीसरी बार भी भगवान् ०। ०।

तब भगवान् पूर्वाह्न समय ( वस ) पहनकर राज-बोचरले कौशाम्बीमें भिक्षाचार कर, भोजन कर, पिंड-पातसे उठ, आसन समेट, पाय चौकर ले, गढ़े ही लड़े इस गाथाको बोले।

“गढ़े शब्द करनेवाले एक समान ( यह ) कम कोई भी अपनेको घाल (= अज्ञ ) नहीं मानते,

संघके भंग होने ( और ) मेरे लिये मनमें नहीं करते ॥

सूद, पंडितसे दिखलाते, जीभपर जाई बातको बोलनेवाले ;

मन-चाहा मुल फैलाना चाहते हैं; जिस ( कलह ) से ( अयोग्य मार्गपर )

ले जाये गये हैं, उसे नहीं जानते ॥

‘सुझे निम्दा’, ‘सुझे भारा’, ‘सुझे जीता’, ‘सुझे त्यागा’ ।

( इस तरह ) जो उसको ( मनमें ) धाँधते (= उपनहन ) हैं, उनका वर शक्ति नहीं होता ॥

१ कौत्तम्, जिहा इकाइयाद ।



‘मुझे निम्दा’, ‘मुझे मारा’, ‘मुझे जीता’, ‘मुझे त्वागा’ ।

( इस तरह ) जो उसको नहीं बाँधते, उनका पैर शांत हो जाता है ॥

वैरसे वैर वहाँ कभी शांत नहीं होता ।

अ-वैरसे ( ही ) शांत होता है, यही सनातन-धर्म है ॥

दूसरे ( = अप्रसिद्ध ) नहीं जानते, कि हम यहाँ मृत्युको प्राप्त होंगे ।

जो वहाँ ( मृत्युके पास ) जाना जानते हैं, वे ( पंडित ) बुद्धिमत ( कलहोंको ) प्रामन करते हैं ॥

हड्डी तोड़नेवालों, प्राण हरनेवालों, गाय-घोड़ा-धन-हरनेवालों ।

राष्ट्रको विनाश करनेवालों ( तक )का भी मेल होता है ॥

यदि मत्त-साधु-विहारी धीर ( गुरुषु ) सहचर-सहायक ( = साथी ) मिले ।

तो सब झगड़ोंको छोड़, प्रसन्न हो, बुद्धिमान् उसके साथ विचरे ॥

यदि मत्त साधु-विहारी धीर सहचर सहायक न मिले ।

तो राजाकी भाँति विजित राष्ट्रको छोड़, उत्तम भ्रातृ-राजकी भाँति अकेला विचरे ॥

अकेला विचरना अच्छा है, बालसे मिथ्यता नहीं ( अच्छी ) ।

बे-पर्याह हो उत्तम भ्रातृ- ( = नाग ) राजकी भाँति अकेला विचरे, और पाप न करे ।”

तब भगवान् खड़े खड़े इन यात्राओंको कहकर, जहाँ बालक-लौणकार ग्राम था, वहाँ

गये । इस समय आयुष्मान् भृगु बालक-लौणकार ग्राममें वास्तु करते थे । आयुष्मान् भृगुने दूर

से ही भगवान्को आते देखा । देखकर आसन बिछाया, पैर धोनेको पानी भी ( रक्षणा ) ।

भगवान् बिछाये आसनपर बैठे । बैठ कर चरण धोये । आयुष्मान् भृगु भी भगवान्को

अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् भृगुसे भगवान्ने यों कहा—

“मित्र ! क्या क्षमनीय ( = ठीक ) तो है, क्या पापनीय ( = अच्छी गुजरती ) तो है ? पिंड

( = मित्र ) के लिये तो तुम तकलीफ नहीं पाते ?”

“क्षमनीय है भगवान् ! पापनीय है भगवान् ! मैं पिंडके लिये तकलीफ नहीं पाता ।”

तब भगवान् आयुष्मान् भृगुको धार्मिक कथासे ० समुत्तेजित कर ०, आसनसे उठकर, जहाँ

प्राचीन-वंश-दाव है, वहाँ गये । इस समय आयुष्मान् अनुसूद, आयुष्मान् मन्दिष और

आयुष्मान् किम्बिल प्राचीन-वंश-दावमें विहार करते थे । दाव-पालक ( = जन-पाल ) ने दूरसे

ही भगवान्को आते देखा । देखकर भगवान्से कहा—

“महाश्रमण ! इस दावमें प्रवेश मत करो । वहाँपर तीन कुल-पुत्र यथाकाम ( = मौज

से ) विहर रहे हैं । उनको तकलीफ मत दो ।”

आयुष्मान् अनुसूदने दाव-पालको भगवान्के साथ बात करते सुना । सुनकर दाव-पालसे

यह कहा—

“आवुस ! दाव-पाल ! भगवान्को मत बना करो । हमारे शास्ता भगवान् आये हैं ।”

तब आयुष्मान् अनुसूद जहाँ आयुष्मान् मन्दिष और आयु. ० किम्बिल थे वहाँ गये ।

जाकर बोले—

“आयुष्मानो ! चलो आयुष्मानो ! हमारे शास्ता भगवान् आ गये ।”

तब आ. अनुसूद, आ. मन्दिष, आ. किम्बिल भगवान्की भगवानी कर, एकने पात्र-

चीकर ग्रहण किया, एकने आसन बिछाया, एकने पादोदक रक्षणा । भगवान्ने बिछाये आसनपर

बैठ पैर धोये । वे भी आयुष्मान् भगवान्को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुये

आयुष्मान् अनुसूदसे भगवान्ने कहा—

“अनुब्रूओ ! स्वमनीष त्वो है ? वापनीय त्वो है ? पिंडके लिये तो तुम लोग तकलीफ नहीं पाते ?”

“स्वमनीष है, भगवान् !०”

“अनुब्रूओ ! क्या एकत्रित, परस्पर मोद-सहित, दूध-पानी हुये, परस्पर प्रिय-इष्टिसे देखते, विहरते हो ?”

“हाँ भन्ते ! हम एकत्रित० ।”

“तो कैसे अनुब्रूओ ! तुम एकत्रित० ।”

“भन्ते ! मुझे, यह विचार होता है—‘मेरे लिये लाभ है ! मेरे लिये सुखान् प्राप्त हुआ है, जो ऐसे स-अङ्गचारियों ( = गुरु भाइयों ) के साथ विहरता हूँ’ । भन्ते ! इन आयुष्मानोंमें मेरा कायिक-कर्म अन्दर और बाहरसे मिश्रतापूर्ण होता है, वाचिक-कर्म अन्दर और बाहरसे मिश्रता-पूर्ण होता है, मानसिक-कर्म अन्दर और बाहर० । तब भन्ते ! मुझे यह होता है—क्यों न मैं अपना मन हटा कर, इन्हीं आयुष्मानोंके चित्तके अनुसार पाऊँ । सो भन्ते ! मैं अपने चित्तको हटा-कर इन्हीं आयुष्मानोंके चित्तोंका अनुवर्तन करता हूँ । भन्ते ! हमारे शरीर नाना हैं, किन्तु चित्त एक...।”

आयुष्मान् मन्दीने भी कहा—“भन्ते ! मुझे यह होता है० ।”

आयुष्मान् किम्बिलने भी कहा—भन्ते ! मुझे यह० ।

“साधु, साधु, अनुब्रूओ ! अनुब्रूओ ! क्या तुम प्रमाद-रहित, आलस्य-रहित, संयमी हो, विहरते हो ?”

“भन्ते ! हाँ ! हम प्रमाद-रहित० ।”

“अनुब्रूओ ! तुम कैसे प्रमाद-रहित० ?”

“भन्ते ! हमारेमें जो पहिले ग्रामसे मित्राचार करके लौटता है, वह आसन लगाता है, पीनेका पानी रखता है, कुड़ेकी माली रखता है । जो पीछे गाँवसे पिंडचार करके लौटता है, ( वह ) भोजन ( मेसे जो ) बैचा रहता है, यदि चाहता है, खाता है, ( यदि ) नहीं चाहता है, तो ( ऐसे ) स्थानमें, जहाँ हरियाली न हो, छोड़ देता है, या जीव-रहित पानीमें छोड़ देता है । आसनोंको समेटता है । पीनेके पानीको समेटता है । कुड़ेकी मालीको धोकर समेटता है । खानेकी जगहपर झाड़ू देता है । पानीके घड़े, पीनेके घड़े, या पाखानेके घड़ेमें जिसे खाली देखता है, उसे ( भर कर ) रख देता है । यदि वह उसके होने लायक नहीं होता तो हाथके इशारेसे, हाथके संकेत ( = हृत्प-विलम्बक )से तूखोंको बुलाकर, पानीके घड़े, या पीनेके घड़ेको ( भर कर ) रखवाता है । भन्ते ! हम उसके लिये वाग्-बुद्ध नहीं करते । भन्ते ! हम पाँचवें दिन सारी रात धर्म-सम्बन्धी कथा करते बैठते हैं । इस प्रकार भन्ते ! हम प्रमाद-रहित० ।”

“साधु, साधु, अनुब्रूओ ! अनुब्रूओ ! इस प्रकार प्रमाद-रहित, निरालस, संयमी हो विहरते, क्या तुम्हें उत्तर-अनुब्रू-धर्म अलमार्य-ज्ञान-दर्शन-विशेष अनुकूल-विहार प्राप्त है ?”

“भन्ते ! हम प्रमाद-रहित० विहार करते, अवभास और रूपोंके दर्शनको जानते हैं । किन्तु वह अवभास, और रूपोंके दर्शन हम लोगोंको जड़ ही अन्तर्धान होजाते हैं । हम इसका कारण नहीं जान पाते ।”

“अनुब्रूओ ! तुम्हें वह कारण जान लेना चाहिये । मैं भी सम्बोधिते पूर्व, न बुद्ध हुआ, बोधि-सख होते ( समय ) अवभास और रूपोंके दर्शनको जानता था । मेरा वह



अवभास और रूपोंका दर्शन जल्द ही अन्तर्धान होजाता था । तब मुझे, अनुरुद्धो ! यह हुआ—क्या है हेतु (= कारण), क्या है प्रत्यय (= कार्य), जिससे मेरा अवभास और रूपोंका दर्शन अन्तर्धान होजाता है । तब मुझे अनुरुद्धो ! यह हुआ—( १ ) विचिकित्सा (= शंका, सन्देह ) मुझे उत्पन्न हुई, विचिकित्साके कारण मेरी समाधि च्युत हो गई । समाधिके च्युत होनेपर अवभास और रूपोंका दर्शन अन्तर्धान होता है । सो मैं ऐसा कहूँ, जिसमें फिर विचिकित्सा न उत्पन्न हो । सो मैं अनुरुद्धो ! प्रमाद-रहित० विहार करते, अवभास (= प्रकाश) और रूपोंका दर्शन देखने लगा । ( किंतु ) वह अवभास और रूपोंका दर्शन जल्द ही ( फिर ) अन्तर्धान होजाता था । तब मुझे अनुरुद्धो ! यह हुआ—क्या है हेतु० । तब मुझे अनुरुद्धो ! हुआ—( २ ) अमनसिकार (= मनमें न दृढ़ करता), मुझे उत्पन्न हुआ । अ-मनसिकारके कारण मेरी समाधि च्युत हुई० । सो मैं ऐसा कहूँ, जिसमें फिर न विचिकित्सा न अमनसिकार उत्पन्न हो । सो मैं ० । ० ( ३ ) धीन-मिद्ध (= स्थान-मिद्ध ) ० । ० न विचिकित्सा न अमनसिकार, न धीन-मिद्ध उत्पन्न हो । सो मैं ० । ० ( ४ ) स्तम्भितत्व (= स्तम्भितत्व ) ० । स्तम्भितत्व (= उपलब्ध ) के कारण मेरी समाधि च्युत हुई । समाधिके च्युत होनेपर, अवभास और रूपोंका दर्शन अन्तर्धान हुआ । अनुरुद्धो ! जैसे पुरुष ( जैसेही शस्त्रमें ) शस्त्रमें जा रहा हो, उसके दोनों ओर घटें उड़ जायें । उसके कारण उसको स्तम्भितत्व उत्पन्न हो । ऐसे ही अनुरुद्धो ! मुझे स्तम्भितत्व उत्पन्न हुआ । स्तम्भितत्वके कारण० । सो मैं ऐसा कहूँ, जिसमें फिर न विचिकित्सा उत्पन्न हो, न अ-मनसिकार, न स्थान-मिद्ध, न स्तम्भितत्व । सो मैं अनुरुद्धो ० । ( ५ ) ० उत्पीडा (= उद्विग्न = उत्पीडा = विद्वलता ) ० । अनुरुद्धो ! पुरुष एक मित्र (= स्वजाना ) को दंडता, एक ही धार पाँच मित्रियोंके मुखको पा जाय, जिसके कारण उसे उत्पीडा उत्पन्न हो । ऐसे ही अनुरुद्धो ! उत्पीडा उत्पन्न हुई । उत्पीडाके कारण मेरी समाधि च्युत हुई० । सो मैं ऐसा कहूँ, जिसमें मुझे फिर न विचिकित्सा उत्पन्न हो ० न उत्पीडा । सो मैं अनुरुद्धो ! ० । ० ( ६ ) दुःखौत्सव (= दुःखौत्सव ) ० । सो मैं ऐसा कहूँ, जिसमें मुझे न विचिकित्सा उत्पन्न हो ०, न दुःखौत्सव । सो मैं ० । तब मुझे अनुरुद्धो ! यह हुआ—( ७ ) अति-आरब्ध-वीर्य (= अत्यारब्ध-वीर्य, अत्यधिक अभ्यास ) मुझे उत्पन्न हुआ० । जैसे अनुरुद्धो ! पुरुष दोनों हाथोंसे घटेंको जोरसे पकड़े, वह वहाँ भर जाय । ऐसे ही मुझे अनुरुद्धो ! ० । सो मैं ऐसा कहूँ, जिसमें मुझे ० अत्यारब्ध वीर्य० । ( ८ ) अति-लोभ-वीर्य (= अतिलोभवीर्य ) ० । जैसे अनुरुद्धो ! पुरुष घटेंको दीक्षा पकड़े, वह उसके हाथसे उड़ जाय ० । सो मैं ० अति-लोभ-वीर्य ० । ० ( ९ ) अभिजल्प (= अभिजल्प ) ० । सो मैं ० अभिजल्प ० । ० ( १० ) नानात्व-प्रज्ञा (= नानात्वप्रज्ञा ) ० ।

“सो मैं ० नानात्व-प्रज्ञा ० । ० ( ११ ) अतिनिष्पावितत्व (= अतिनिष्पावितत्व ) रूपोंका मुझे उत्पन्न हुआ । अतिनिष्पावितत्वके कारण मेरी रूपोंकी समाधि-च्युत हुई । समाधिके च्युत होनेसे अवभास, और रूपोंका दर्शन अन्तर्धान हुआ । सो मैं ऐसा कहूँ, जिसमें मुझे फिर न ( १ ) विचिकित्सा उत्पन्न हो, न ( २ ) अ-मनसिकार, न ( ३ ) स्थान-मिद्ध, न ( ४ ) स्तम्भितत्व, न ( ५ ) उत्पीडा, न ( ६ ) दुःखौत्सव, न ( ७ ) अत्यारब्ध-वीर्य, न ( ८ ) अति-लोभ-वीर्य, न ( ९ ) अभिजल्प, न ( १० ) नानात्व-प्रज्ञा, न ( ११ ) रूपोंका अति-निष्पावितत्व । सो मैंने अनुरुद्धो ! ‘विचिकित्सा चित्तका उप-क्लेश (= मल ) है’ जानकर, चित्तके उप-क्लेश विचिकित्साको छोड़ दिया; ‘अ-मनसिकार चित्तका उप-क्लेश है’ जानकर, चित्तके उप-क्लेश अ-मनसिकारको छोड़ दिया, ० स्थान-मिद्ध ०; ० स्तम्भितत्व ०; ० उत्पीडा ०;

• दुःस्वीत्य • । अत्यारब्ध-वीर्य • अति-लौन-वीर्य • । जमि-जल्प • । नानात्व-प्रज्ञा • ।  
 • रूपोंका अति-निष्प्रापितत्व चित्तका उप-क्लेश है' जानकर, चित्तके उप-क्लेश रूपोंके अति-  
 निष्प्रापितत्वको छोड़ दिया। सो मैं अनुरद्धो! प्रमाद-रहित निरालस, संयमी हो विहरते  
 अवभासको जानता, और रूपोंको नहीं देखता; रूपोंको देखता, और अवभासको नहीं पहिचानता  
 ( कि ) 'केवल रात ( है, या ) केवल दिन, या केवल रात-दिन' ।

"तब मुझे अनुरद्धो! यह हुआ—क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, ( कि ) मैं अवभासको  
 जानता हूँ • ? तब मुझे अनुरद्धो! यह हुआ—जिस समय मैं रूपके निमित्त ( = विशेषता )  
 को मनमें न कर, अवभासके निमित्तहीको मनमें करता हूँ, उस समय अवभासको पहिचानता  
 हूँ, और रूपों को नहीं देखता। जिस समय मैं अवभासके निमित्तको मनमें न कर, रूपोंके  
 निमित्तको मनमें करता हूँ, उस समय रूपोंको देखता हूँ, 'केवल रात है, केवल दिन है, केवल  
 रात-दिन है' इस अवभासको नहीं पहिचानता। सो मैं अनुरद्धो! प्रमाद-रहित • विहरते,  
 अल्प ( = परिच्छिन्न ) अवभासको भी पहिचानता, अल्प रूपको भी देखता; अ-प्रमाण ( = महान् )  
 अवभासको भी पहिचानता, अ-प्रमाण रूपोंको भी देखता—'केवल रात है, केवल दिन है,  
 केवल रात-दिन है' । तब मुझे अनुरद्धो! ऐसा हुआ—क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जो मैं  
 अल्प अवभासको भी पहिचानता • ? तब अनुरद्धो! मुझे यह हुआ—जिस समय समाधि  
 अल्प होती है, उस समय मेरा चक्षु अल्प होता है; सो मैं अल्प चक्षुसे परिच्छिन्न ( = अल्प )  
 ही अवभासको जानता हूँ, परिच्छिन्न ही रूपोंको देखता हूँ । जिस समय अप्रमाण समाधि होती  
 है, उस समय मेरा चक्षु अप्रमाण होता है; सो मैं अप्रमाण चक्षुसे अ-प्रमाण अवभासको जानता;  
 अप्रमाण रूपों—केवल दिन, केवल रात, केवल रात-दिनको देखता। क्योंकि अनुरद्धो! मैंने  
 'विचिकित्सा चित्तका उप-क्लेश है' जानकर, चित्तके उप-क्लेश विचिकित्साको छोड़ दिया था।  
 'अमनसिकार • । स्त्याजकृष्ट • । स्तम्भितत्व • । उत्पीडा • । दुःस्वीत्य • । अत्यारब्ध-वीर्य • ।  
 अति-लौन वीर्य • । जमि-जल्प • । नानार्थ-संज्ञा • । 'रूपोंका अति-निष्प्रापितत्व चित्तका  
 उपक्लेश है' जानकर, चित्तके उप-क्लेश अतिनिष्प्रापितत्वको छोड़ दिया था ।

"तब मुझे अनुरद्धो ! ऐसा हुआ—जो मेरे चित्तके उप-क्लेश में, था छूट गये। हाँ  
 तो, जब मैं तीन प्रकारके समाधि भावना करूँ । सो मैं अनुरद्धो ! वितर्क-रहित भी समाधिकी  
 भावना करता । वितर्क-रहित विचार भावनावाली समाधिकी भावना करता । वितर्क-रहित समाधिकी  
 भी भावना करता । प्रीति ( = स-प्रीतिक ) समाधिकी भी • ; प्रीति विनाशाली ( = निःप्रीतिक )  
 समाधि • । सात ( = सुख )-संयुक्त समाधि • । उपेक्षा-युक्त समाधि • । क्योंकि, अनुरद्धो !  
 मैंने स-वितर्क स-विचार समाधिकी भी भावना की थी; अवितर्क विचारभावनावाली समाधि • ।  
 अवितर्क अविचार समाधि • । स-प्रीतिक • । निःप्रीतिक • । सात-सह-रात • । मेरे लिये शान-  
 त्वान हो गया। मेरी चित्तकी चिमुक्ति ( = मुक्ति ) अटल होगई। यह अन्तिम जन्म है। अब  
 पुनर्भव ( = जावामग्न ) नहीं ।"

भगवान् ! ( इस प्रकार बोले ); आयुष्मान् अनुरद्धने सन्तुष्ट हो भगवान्‌के भाषणको  
 अभिनन्दित किया ।



## १२६—बाल-पंडित-सुत्तन्त (३।३।६)

नरक । पापी मूर्ख कर्म । स्वर्ग । चक्रवर्ती राजा

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिट्टिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे । वहाँ भगवान्ने मिश्रुओंको संबोधित किया—“मिश्रुओ !”

“भयन्त !”—( कह ) उन मिश्रुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“मिश्रुओ ! यह तीन बाल ( = अज्ञ )के लक्षण, = निमित्त, पदान हैं । कौनसे तीन ?—यहाँ, मिश्रुओ ! ( १ ) बाल दुःखित्व ( = चिन्ता न करने लायक ) की चिन्ता करनेवाला होता है, ( २ ) दुर्वचनका बोलनेवाला होता है, ( ३ ) दुष्कृत कर्मका करनेवाला होता है । यदि, मिश्रुओ ! बाल दुःखिता-चिन्ती, दुर्वचन-भाषी, दुष्कृत कर्मकारी न होवे, तो पंडित उसे न समझे—‘यह आप बाल, अ-सत्पुरुष है’ । चूँकि मिश्रुओ ! बाल दुःखित्व-चिन्ती ० होता है, इसलिये पंडित इसे जानते हैं—‘यह आप बाल, अ-सत्पुरुष है’ ।

“मिश्रुओ ! वह बाल ( = मूर्ख ) इसी जन्ममें तीन प्रकारके दुःख = दोर्मनस्वको अनुभव करता है ।—( १ ) मिश्रुओ ! यदि बाल सभामें बैठा रहता है, रथ्या ( = सड़क )में ०, या चौरस्ते ( = ग्यहाटक )में बैठा रहता है ; वहाँ लोक उसके संबंधकी, उसके अनुरूप बात चलाते हैं यदि मिश्रुओ ! ( वह ) बाल हिंसक, चोर व्यभिचारी, झूठा, शराबी ( = सुग-मैरैय-मद्य-प्रमाद स्थायी ) होता है,—‘वहाँ बालको ऐसा होता है । लोग उस संबंधकी, उसके अनुरूप जो बात चलाते हैं, वह धर्म ( = दुर्गुण ) सुखमें हैं ही, मैं उन धर्मोंमें कैसे हूँ’ । मिश्रुओ ! बाल इसी जन्ममें इस प्रथम दुःख, दोर्मनस्वको अनुभव करता है ।

“( २ ) और फिर मिश्रुओ ! बाल देखता है—राजा ( लोग ) चोर, आग जगानेवालेको पकड़ कर अनेक प्रकारके दंड ( = कष्टकरणा ) देते हैं—चाबुकसे भी पिटाते हैं ०<sup>१</sup> तलवारसे शीश कटवाते हैं । मिश्रुओ ! बाल इसी जन्ममें इस द्वितीय दुःख दोर्मनस्वको अनुभव करता है ।

“( ३ ) और फिर मिश्रुओ ! बाल पीठपर आसीन, भंचपर बैठे ( = आसीन ) या घरतीपर बैठे, जो इसने पहिले पाप-कर्म किये हैं—कायाके दुश्चरित, वाणीके दुश्चरित, मनके दुश्चरित—वह उस समय उससे कटकते ( = अकलम्वित होते ) हैं, अधि-अकलम्वित = अभि-प्र-संघित होते हैं । जैसे, मिश्रुओ ! पर्वतके महाकूटोंकी छाया सायंकाल, पृथिवी पर अथर्वलवती, अप्यथर्वलवती, अभि प्रलवती है, ऐसे ही मिश्रुओ ! बाल पीठपर ० । वहाँ मिश्रुओ बालको ऐसा होता है—‘हाय, मैंने कल्याण, कुशल, हिरुत्ताण ( = सलज्ज कर्म ) नहीं किया ! मैंने पाप-रुद्ध ( = कर्म ), किरिय

<sup>१</sup> देखो एत ५४-५५ ।

किया है। जो कुछ भति है, कल्याण-कुशल-हिरुताण न किये की, पाप-रुद्ध-किल्बिष किये की; उस भतिको मैं प्राप्त होऊँगा—वह यह शोक करता है, कलपता है, रूंदन करता है, छाती पीटकर रोता है, मूर्च्छित होता है। भिक्षुओ! बाल इसी जन्ममें इस तृतीय दुःख-दीर्घमनस्यको अनुभव करता है।

“भिक्षुओ! वह बाल काया और वचन से दुश्चरित (= पाप) करके, काया छोड़ मरनेके बाद अपाय = दुर्गति, विनिपात, नर्कमें उत्पन्न होता है। जिसके लिये कि भिक्षुओ! ठीकसे कहने पर कहें—सर्वोद्यतः अनिष्ट, सर्वोद्यतः अ-काम्य, सर्वोद्यतः अ-मनाप (= अ-प्रिय) है, तो वह ठीकसे कहने पर नर्कको ही कहना चाहिये”। नर्कमें जितना दुःख है, भिक्षुओ! उसकी उपमा देनी भी सुकर नहीं है।”

ऐसा कहने पर एक भिक्षुने भगवान्से यह कहा—

“भन्ते! उपमा दो जा सकती है ?

भगवान्ने कहा—“दो जा सकती है, भिक्षु! जैसे, भिक्षु! चोर, जाग लगानेवालेको पकड़कर राजाको दिखावायें—‘देव! यह चोर, जाग लगानेवाला है, इसे देव! जो चाहें वह दंड प्रदान करें।’ उसको राजा यह कहै—‘जाओ, भो! इस पुरुषको पूर्वाह्न-समय एक सौ शक्ति (= कोड़े) मारो।’ तब उसे पूर्वाह्न समय एक सौ शक्ति मारें। राजा मध्याह्नके समय पूछे—‘कहो, वह पुरुष कैसे है ?’। ‘वैसे ही, देव! जी रहा है।’ तब उसको राजा यह कहें—‘जाओ, भो! उसे मध्याह्न समय एक सौ शक्ति मारो।’ ०। ०—‘जाओ, भो! उसे सायंकाल एक सौ शक्ति मारो।’ तब उसे सायंकाल भी एक सौ शक्ति मारें। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! क्या वह पुरुष तीन सौ शक्तियोंसे मारा जाकर, उसके कारण दुःख-दीर्घमनस्य अनुभव करेगा ?”

“भन्ते! एक शक्तिये भो मारे जानेपर वह पुरुष, उसके कारण दुःख-दीर्घमनस्य अनुभव करेगा; तीन सौ शक्तियोंकी तो बात ही क्या करनी ?”

तब भगवान्ने हाथके बराबरके एक छोटे पत्थरको हाथमें ले भिक्षुओंको संबोधित किया—

“तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! कौन अधिक क्या है, यह जो हाथके बराबरका छोटा पत्थर मैंने हाथमें लिया है, या हिमवान् (= हिमालय) पर्वतराज ?”

“भन्ते! भगवान्ने जो यह हाथके बराबरका छोटा पत्थर (? डेला ) हाथमें लिया है, यह अति छोटा है; हिमवान् पर्वतराजके मुकाबिलेमें इसकी गिनती भी नहीं हो सकती, कला-भागको भी (यह) नहीं पा सकता, निम्न (श्रेणी) के पास भी नहीं पहुँच सकता।”

“ऐसे ही, भिक्षुओ! जो वह पुरुष तीन सौ शक्ति मारे जानेपर, उसके कारण दुःख-दीर्घमनस्य अनुभव करेगा, नर्कके दुःखके मुकाबिलेमें उसकी गिनती भी नहीं हो सकती ०।

“भिक्षुओ! निरयपाल (= नरकपाल) जरका पंच-विध-बंधन नामक दंड घेते हैं—गर्भ लोहेकी कीलको हाथमें ठोकते हैं, गर्भ लोहेकी कील दूसरे हाथमें ठोकते हैं। ० पैरमें ठोकते हैं, ० दूसरे पैरमें ठोकते हैं ० छातीके बीचमें ठोकते हैं। यह वहाँ दुःखा, तीखा, खरी, कटुका सेपना अनुभव करता है, किन्तु तब तक नहीं मरता, जब तक कि उसके पाप कर्मका अन्त नहीं हो जाता।

“तब, भिक्षुओ! निरयपाल उसे पैठाकर कुल्हाड़ेसे काटते हैं। वह वहाँ दुःखा ०।

“० उसे ऊपर पैर और नीचे शिर रखकर बसूलेसे काटते हैं। वह वहाँ दुःखा ०।

“० उसे रथमें जोतकर आदीप्त, सं-प्रज्वलित, दहकती भूमिमें ले जाते हैं, ले आते हैं। वह वहाँ दुःखा ०।



“उसे आदीप्त = सं-प्रज्वलित, दहकते अंगारके समान पर चढ़ाते हैं, उतारते हैं। वह वहाँ दुःखा ० ।

“० उसे ऊपर पैर नीचे फिर पकड़ कर आदीप्त ० तब लोह-कुम्भीमें डालते हैं; वह वहाँ पेणुदेहक (= ग्राहक) पकता है। वह वहाँ पेणुदेहक पकता हुआ एक बार ऊपर आता है, एक बार नीचे जाता है, एक बार तिलें जाता है। वह वहाँ ० ।

“तब, मिथुनो ! निरयपाल उसे पुनःपुनः महानिरय (= महानरक) में डालते हैं। मिथुनो ! वह महानिरय (ऐसा) है—

‘चार कोनोंवाला, चार द्वारोंवाला,  
और खंड खंडमें नाप कर बँटा हुआ ।  
लोहेके आकारसे परिवेष्टित,  
और लोहासे प्रतिकुम्बित (= गठित) ।  
उसकी लोह (= अयः)-मयी मृत्ति,  
तेजसे युक्त जलती हुई,  
चारों ओर एक ही योजना (वित्त)  
(भागसे) व्याप्त हो सर्वदा स्थित रहती है ।’

“मिथुनो ! नाना प्रकारसे यदि मैं निरय (= नरक) की कथा कहता रहूँ, तो भी... उसके दुःखका पूरा वर्णन करना सुकर नहीं है ।

“मिथुनो ! तिर्यग् (= पशु)-घोनिमें मृगमयी प्राणी हैं। वह हरे मृगोंकी भी सुखे मृगोंकी भी दाँतसे चाटकर खाते हैं। कौन हैं, मिथुनो ! मृगमयी तिर्यग्-घोनिमें प्राणी ?—हाथी, घोड़ा, गाय, गव्हा, बकरी, मृग, और जो कोई और भी मृगमयी तिर्यग्-घोनिमें प्राणी। सो वह बाल, मिथुनो ! पहिले रस-मयी, वहाँ पाप कर्मोंको करके, काया छोड़ भरनेके बाद उन मृगमयी प्राणियोंकी सहज्यता (= घोनि) में उत्पन्न होता है ।

“मिथुनो ! तिर्यग्घोनिमें गृध्र (= विष्टा)-मयी प्राणी हैं। वह दूरसे ही गृध्र-गंधको सूँघकर धावते हैं—‘वहाँ खाँयेंगे’, ‘वहाँ खाँयेंगे’; जैसे कि ब्राह्मण आहुति-गन्धसे धावते हैं—‘वहाँ खाँयेंगे’, ‘वहाँ खाँयेंगे’।... मिथुनो ! कौन हैं, गृध्र-मयी तिर्यग्घोनिमें प्राणी ?—कुकुर, शूकर, कुत्ता, स्वार, और जो कोई और भी ० । सो वह बाल, मिथुनो ! पहिले रसमयी ० इन गृध्र-मयी प्राणियोंकी सहज्यतामें उत्पन्न होता ।

“० तिर्यग्घोनिमें प्राणी हैं, जो अंधकारमें जन्मते हैं, अंधकारमें बड़े होते हैं, और अंधकार हीमें मरते हैं, ० कोट, पतंग, गंड (= कोवे) से उत्पन्न ० । ० ।

“० तिर्यग्घोनिमें प्राणी हैं, जो जलमें जन्मते, बड़े होते, मरते हैं । ० मत्स्य, कच्छप, शिशुसार (= मगर) ० । ० ।

“० तिर्यग्घोनिमें प्राणी हैं, जो अशुचि (= गन्ध) में जन्मते, बड़े होते, मरते हैं । ० जो वह प्राणी सड़ी भल्ली, सड़े मृत शरीर, या सड़े अन्न (= कुलमाष), चन्दनिका (= गव्हा) या ओलिगल (= गव्ही) में जन्मते हैं ० । ० ।

“मिथुनो ! नाना प्रकारसे भी यदि मैं तिर्यग्घोनिमें कथा कहता रहूँ, तो भी उसके दुःखका पूरा वर्णन करना सुकर नहीं है। जैसे, मिथुनो ! कोई पुरुष एक छिमाछके जोड़ेकी महा-समुद्रमें फेंक दे। उसे पुरुषा हवा पच्छिमकी ओर बहावे, पछवाँ हवा पूर्वकी ओर ० । उत्तरहिवा हवा दक्षिणकी ओर ०, दक्षिणहिवा हवा उत्तरकी ओर बहावे। वहाँ एक काना कछुवा हो, ( जो

कि) लौ लौ वर्ष बाद एक बार उतराता हो। तो क्या मानते हो, मिथुनो! क्या वह काना कबुवा इस एक ज़िगल-जोड़ेमें अपनी गर्दनको घुसायेगा?"

"नहीं, मन्ते! शायद कभी किसी समय दीर्घकालके बाद।"

"मिथुनो! वह काल शीघ्रही होगा जब कि वह काना कबुवा उस ० में अपनी गर्दनको घुसायेगा, (लेकिन) मिथुनो! एक बार पतित हुये बालके लिये (फिर) मनुष्यत्वकी प्राप्तिमें मैं (उससे) दुर्लभतर कहता हूँ। सो किस हेतु?—मिथुनो! यहाँ (तिथ्यन्तर्गते) धर्मचर्या (= धर्माचरण) = समचर्या, कुशल-क्रिया (= पुण्यकर्म), पुण्यक्रिया (संभव) है। यहाँ मिथुनो! एक दूसरेके स्थानेवाले दुर्बलोंको स्थानेवाले रहते हैं। यह बाल... कदाचित् कभी, दीर्घकालके बाद मनुष्यत्वको प्राप्त होता; (तो वह) जो कि वह नीचकुल है—चाणालकुल, निपादकुल, यत्नोर (= वेशुकार) कुल, रथकायकुल, या पुष्कलकुल—ऐसे दरिद्र, अल्प-अज्ञ-यान-भोजन, कृच्छ्र-वृत्ति कुलोंमें जन्मता है। यहाँ मुदिकलसे उसे खाना-रूपवा (= घास-आन्नादान) मिलता है। (और वहाँ भी) वह दुर्धर्म (= कुकर्म), दुर्दर्शन, लुसी गर्दनवाला, जहुरोपी, काना, लला, कुवदा, पक्षाघात वाला, होता है। अन्न-यान-वस्त्र-यान-भाला-गन्ध-विलेपनोका, शय्या-निवासस्थान (= आवास) -प्रदोषों का लामी नहीं होता। वह काया वचन और मनसे दुश्चरित (= दुष्कर्म) करता है। वह काय-वचन-मनसे दुश्चरित करके, काया छोड़ मरनेके बाद अपाय, दुर्भृति, विनिपात, मरकमें उत्पन्न होता है। जैसे, मिथुनो! लुभारी पहिले ही दाव (= कलिग्रह) में पुत्रको हार जाये, फिर स्त्री को भी, फिर सारी सम्पत्तिको, और फिर वन्धनमें जला जाये। मिथुनो! यह कलिग्रह (= दाव) स्वल्पमात्र है; जो कि वह लुभारी पहिले ही दावमें ०। उससे कहीं बड़ा कलिग्रह यह है, जो कि यह बाल काय-वचन-मनसे दुश्चरित करके ०।

"मिथुनो! यह केवल परिपूर्ण बालभूमि है।

"मिथुनो! यह तीन पंडितके लक्षण = निर्मित, पदान है। कौनसे तीन?—यहाँ मिथुनो! पंडित (१) सुचिंतित-चिन्ती होता है, (२) सुभाषित-भाषी होता है, और (३) सुकृत कर्मकारी होता है। ०" मिथुनो! वह पंडित काय-वचन-मनसे सुचरित करके, काया छोड़ मरनेके बाद सुगति स्वर्ग लोकमें उत्पन्न होता है। जिसके लिये कि मिथुनो! ठीकसे कहने पर कहे—सर्वांशतः दृष्ट, सर्वांशतः कान्त, सर्वांशतः मनाप है; तो यह ठीकसे कहनेपर स्वर्ग को ही कहना चाहिये"। स्वर्गमें जितना सुख है मिथुनो! उसको उपमा देनी भी सुकर नहीं है।"

ऐसा कहनेपर एक मिथुने भगवान्से यह कहा—

"मन्ते! उपमा दी जा सकती है।"

भगवान्ने कहा—"दो जा सकती है। मिथु! जैसे चक्रवर्ती राजा सात रत्नों और चार आदिष्योंसे युक्त हो, उनके कारण सुख और सौमनस्यको प्राप्त हो। किन्तु सात रत्नोंसे ?

(१) "यहाँ मिथुनो! पूर्णिमाके उपोसत्रके दिन पारसे नहाने उपोसध-मती हो मण्डलके ऊपर स्थित मूर्धामिषिक क्षत्रिय राजाके लिये, नेमि-नामि-युक्त सर्वांग-परिपूर्ण सहस्र-अरोंवाला दिव्य-चक्र-रत्न प्रकट होता है। उसको देखकर ० क्षत्रिय राजाको यह होता है—मैंने यह सुना है, 'जित ० क्षत्रिय राजाके लिये ० चक्ररत्न प्रकट होता है; वह चक्रवर्ती राजा होता है'। क्या मैं चक्रवर्ती राजा हूँ? तब मिथुनो! ० क्षत्रिय राजा पायें हाथमें सोनेकी शारी (= सुंगार) से, दाहिने हाथसे चक्र-



रखपर धीटता है—‘चलें आप चक्ररत्न विजय करें आप चक्ररत्न’। तब भिक्षुओं ! चक्ररत्न पूर्व दिशाको चलता है । चक्रवर्ती राजा भी चतुरंगिनी सेनाके साथ अनुगमन करता है । ... जिस प्रदेशमें चक्ररत्न स्थित होता है, वहीं चक्रवर्ती राजा भी चतुरंगिनी सेनाके साथ वास करता है । भिक्षुओं ! पूर्व दिशाके जो प्रतिराजा ( = अधीन राजा ) हैं, वह चक्रवर्ती राजाके पास आकर कहते हैं—‘आइये, महाराज ! स्वागत है आपका, महाराज ! ( यह तब कुछ आपका ) अपना है, अनुशासन कीजिये, महाराज !’ चक्रवर्ती राजा यह कहता है—‘घाण नहीं मारना चाहिये, चोरी नहीं करनी चाहिये, स्वभिचार नहीं करना चाहिये, झूठ नहीं बोलना चाहिये, शराब नहीं पीनी चाहिये, जैसे ( आज तक राज्यको ) भोगे, वैसे ही भोगों ।’ भिक्षुओं ! ( तब ) जितने पूर्व दिशामें प्रतिराजा थे, सभी चक्रवर्ती राजाके अनुगामी हो गये । तब, भिक्षुओं ! चक्ररत्न पूर्वीय-समुद्रको पारकर... , दक्षिण दिशामें चलता है । ० । ० दक्षिण-समुद्रको पार कर... पश्चिम दिशामें चलता है । ० । ० पश्चिम समुद्रको पार कर उत्तर दिशामें चलता है । चक्रवर्ती राजा भी चतुरंगिनी सेनाके साथ अनुगमन करता है । ० ( तब ) जितने उत्तर दिशामें प्रतिराजा थे, सभी चक्रवर्ती राजाके अनुगामी हो गये । तब भिक्षुओं ! चक्ररत्न समुद्रपर्यन्त पृथिवीको जोतकर, राजधानीमें लौट चक्रवर्ती राजाके अन्तःपुर ( = भीतरी दुर्ग ) के द्वारपर, ० अन्तःपुर-द्वारकी ओर पड़ावे, अक्ष ( = धुरे ) में लगा जैसा स्थित होता है । भिक्षुओं ! चक्रवर्ती राजाको इस प्रकारका चक्ररत्न प्रकट होता है ।

( २ ) “और फिर, भिक्षुओं ! चक्रवर्ती राजाका, तत्त्वप्रतिष्ठ ( = पहादुर ), कदिमान्, आकाश-गामी, उपोस्रथ नागराज नामक सर्वज्ञेय हस्तिरत्न उत्पन्न होता है । उसको देखकर चक्रवर्ती राजाका चित्त प्रसन्न होता है—‘ओ ! ( यह ) हस्ति-यान ( = ० सवारी ) बढ़िया ( = भद्र ) है, यदि शिक्षा ग्रहण कर लेता !’ तब भिक्षुओं ! वह हस्तिरत्न, अच्छी जातिका हाथी जैसे दीर्घ-कालसे शिक्षित हो, वैसे शिक्षाको ग्रहण कर लेता है । उस भूतकालमें भिक्षुओं ! चक्रवर्ती राजाने उसी हस्तिरत्नकी परीक्षाके लिये एपाङ्ग समूहमें आरुढ़ हो समुद्र पर्यन्त पृथिवीका अनुसंयान ( = निरीक्षण ) कर अपनी राजधानीमें लौटकर प्रालराश ( = नाइता ) किया । भिक्षुओं ! चक्रवर्ती राजाको इस प्रकारका हस्तिरत्न प्रकट होता है ।

( ३ ) “और फिर, भिक्षुओं ! चक्रवर्ती राजाको ( जो कि ) सर्वज्ञेय, काक-शीर्ष, मुञ्ज-केय, कदिमान्, आकाशगामी, अश्वराज खलाहक नामक अश्वरत्न प्रकट होता है । ०<sup>१</sup> लौटकर प्रालराश किया । भिक्षुओं ! ० इस प्रकारका अश्वरत्न प्रकट होता है ।

( ४ ) “और फिर, भिक्षुओं ! चक्रवर्ती राजाको मणिरत्न प्रकट होता है । वह होता है, वैदूर्यमणि ( = हीरा ), शुभ्र, अच्छी जातिकी, अठकोणी, सुपरिकर्मकृत ( = पालिश की ) होती है । भिक्षुओं ! उस मणिरत्नका प्रकाश चारों ओर योजन भर तक भर जाता है । पहिले समय, भिक्षुओं ! चक्रवर्ती राजाने इस मणिरत्नकी परीक्षाके लिये, चतुरंगिनी सेनाको तय्यार कर, मणिको ध्वजाके ऊपर लगा रातके घोर अंधकारमें यात्रा की । भिक्षुओं ! जो चारों ओर गाँव थे; ( वहाँके लोग ) दिन समझ, मणिके प्रकाशमें काम करने लगे । भिक्षुओं ! ० इस प्रकारका मणिरत्न प्रकट होता है ।

( ५ ) “और फिर भिक्षुओं ! ० खौरत्न प्रकट होता है । ( वह स्त्री ) अनिरूपा = दुर्बलीया = प्रासादिका, परम वर्ण-पुष्कलतासे युक्त, नातिदीर्घा, नातिदृग्वा, नातिकृपा, नातिस्थूला ( = न बहुत मोटी ), न-बहुत काठी, न-बहुत सफेद, मनुष्यवर्णको पारकर तथा

<sup>१</sup> ऊपर जैसे ही ( हस्तीकी जगह अश्व रखकर ) ।

विश्ववर्णसे कुछ घटकर होती है। '... उस खीरसके कायाका स्पर्श होता है, मुँहके फाड़े, धा कपास के फाड़े जैसा। '... उस खीरसका गात्र शीतकालमें उष्ण और उष्णकालमें शीत होता है। उस ० के कायासे चंदनकी गंध आती है, मुँहसे कमलकी गंध आती है। '... वह खीरस चक्रवर्ती राजाकी पूर्वोत्थायिनी (= पहिले जागनेवाली), पद्माक्षिपातिनी (= धीले सोनेवाली), 'क्या-करना है'—सुनानेवाली, मित्र-चारिणी, मित्रवादिनी होती है। वह '... खीरस मनसे भी चक्रवर्ती राजाकी अतिचारिणी नहीं होती, कायासे तो क्या। मिथुनो ! ० इस प्रकारका खीरस ०।

( ६ ) 'और फिर, मिथुनो ! ० गृहपति (= वैश्य-रत्न प्रकट होता है। ( पूर्व- ) कर्मके विपाकसे उसे दिव्यचक्षु उत्पन्न होती है, जिससे मालिक-बेमालिकवाले ( जमीनके गधे ) खजानोंको वह देखता है। वह चक्रवर्ती राजाके पास आकर यह कहता है—'देव ! आप वेष्टिक रहिये, आपके धनवाले कार्यको मैं करूँगा'। मिथुनो ! पहिले समयमें चक्रवर्ती राजा उस गृहपति-रत्नकी परीक्षाके लिये, नाकमें चंद्र गंगानदीकी मलधारमें जा गृहपतिरत्नसे यह बोला—'गृहपति ! मुझे सोने-जवाही (= हिरण्य-सुवर्ण ) की जरूरत है'। 'तो महाराज ! इस या उस तीरपर चले।' 'गृहपति ! वही मुझे हिरण्य-सुवर्णकी जरूरत है।' तब मिथुनो ! गृहपतिरत्न दोनों हाथोंसे पानीको छुकर हिरण्य-सुवर्णसे भरे घड़े निकालकर चक्रवर्ती राजाको दे यह बोला—'इतना ही बस, महाराज ! इतना ही पर्याप्त महाराज ! पुज गया (= पूजित ) महाराज ! इतनेसे।' चक्रवर्ती राजाने कहा—'इतना ही बस, गृहपति ! ० पुज गया गृहपति ! इतनेसे'। मिथुनो ! इस प्रकारका गृहपति-रत्न ०।

( ७ ) 'और फिर मिथुनो ! ० परिणायक-रत्न प्रकट होता है : ( जो कि होता है ) पंडित=व्यक्त, मेधावी। चक्रवर्ती राजाके पानेकी चीजको प्राप्त करानेमें, हटानेकी चीजको दूर करानेमें, रत्न छोड़ने लायक चीजको रत्न छोड़नेमें समर्थ होता है। वह चक्रवर्ती राजाके पास आकर यह बोलता है—'देव ! आप वेष्टिक रहिये, मैं अनुशासन (= शासन ) करूँगा।' मिथुनो ! ० इस प्रकारका परिणायक-रत्न प्रकट होता है।

'मिथुनो ! चक्रवर्ती राजा इन सात रत्नोंसे युक्त होता है।

'किन चार ऋद्धियोंसे ( युक्त होता है ) ?—( १ ) मिथुनो ! चक्रवर्ती राजा अभिरूप = दर्शनीय = आसादिक, अन्य मनुष्योंसे अत्यंत परमवर्ण-पुष्कलता (= परम सौंदर्य ) से युक्त—चक्रवर्ती राजा इस प्रथम ऋद्धिसे युक्त होता है।

( २ ) 'और फिर, मिथुनो ! चक्रवर्ती राजा अन्य मनुष्योंसे अत्यंत अधिक दीर्घायु चिर-स्थितिक होता है। ० इस द्वितीय ऋद्धिसे युक्त होता है।

( ३ ) 'और फिर, मिथुनो ! चक्रवर्ती राजा नीरोग = निरातंक होता है, अन्य मनुष्योंकी अपेक्षा अत्यधिक समपाचनवाली, न-जति-शीत, न-जति-उष्ण पाचनशक्ति (= ग्रहणी ) से युक्त होता है ० इस तृतीय ऋद्धिसे युक्त होता है।

( ४ ) 'और फिर मिथुनो ! चक्रवर्ती राजा ब्राह्मण गृहपतियोंको प्रिय होता है, जैसेकि मिथुनो ! पिता पुत्रोंको प्रिय = मनाप होता है। इसी प्रकार ०। ० राजाको ब्राह्मण गृहपति प्रिय होते हैं, जैसेकि पुत्र पिताके प्रिय = मनाप होते हैं।' पहिले समयमें, मिथुनो ! चक्रवर्ती राजा चतुरंगिनी सेनाके साथ उत्थान भूमिमें जा रहा था। तब मिथुनो ! ब्राह्मण गृहपति ० राजाके पास आकर बोले—'देव ! धीरे धीरे जाइये, जिसमें कि हम अधिक देरतक ( आपको ) देख सकें।' ( तब ) मिथुनो ! ० राजाने भी सारथीसे कहा—'सारथि ! धीरे धीरे ले चलो, जिसमें कि ब्राह्मण गृहपति मुझे देरतक देख सकें। मिथुनो ! चक्रवर्ती राजा इस चतुर्थ ऋद्धिसे युक्त होता है।



“भिक्षुओ ! चक्रवर्ती राजा इन चार ऋद्धियोंसे युक्त होता है ।

“तो क्या मानते हो, भिक्षुओ ! क्या चक्रवर्ती राजा इन सात रत्नों<sup>१</sup>, इन चार ऋद्धियोंसे युक्त होनेके कारण सुख-सौमनस्य अनुभव करेगा ?”

“मन्ते ! ० एक एक रत्नसे युक्त होनेके कारण भी सुख-सौमनस्य अनुभव करेगा; सातों रत्नों और चारों ऋद्धियोंकी तो बात ही क्या कहनी ?”

तब भगवान्ने हाव भरके एक छोटे पत्थरको हाथमें ले भिक्षुओंको संबोधित किया—

“तो क्या मानते हो, भिक्षुओ ! ०<sup>१</sup> या हिमवान् पर्वतराज ?”

“मन्ते ! ०<sup>१</sup> कला भागको भी ( वह ) नहीं पहुँच सकता ० ।”

ऐसेही भिक्षुओ ! चक्रवर्ती राजा ( अपने ) सात रत्नों और चार ऋद्धियोंसे युक्त होनेके कारण जो सुख-सौमनस्य अनुभव करता है, दिव्य-सुखके सुकाविलेमें उसकी गिनती भी नहीं हो सकती ०<sup>१</sup> ।

“( तब ) वह पंडित भिक्षुओ ! कदाचित्, कभी दीर्घ कालके बाद जब मनुष्य योनिमें जाता है; तो जो वह आप्त, महाप्राप्ति, महाभोग, बहुत सोने चाँदी बहुत-बित्त-उपकरणवाले, बहुत धन धान्यवाले कैंचे कुल है—अत्रिय महापालकुल । आश्रय ०, या गृहपति ( = वैश्य )-महापालकुल, वैसे कुलोंमें उत्पन्न होता है । और वह अभिरूप = दर्शनयोग आसादिक ०<sup>२</sup> होता है । अन्न-पान वस्त्र-दानका ०<sup>३</sup> समी होता है । ०<sup>३</sup>

“जैसे, भिक्षुओ ! जुहारी पहिलेही दावमें महान् भोग-स्वर्ग ( = धनराशि ) को पाजाये । भिक्षुओ ! यह कलिग्रह ( = दाव, पाशा ) स्वल्प-मात्र है<sup>४</sup>; उससे कहीं बड़ा कलिग्रह यह है, जो कि यह पंडित काय-वचन-मनसे सुचरित ( = सुकर्म ) करके, काया छोड़ मरनेके बाद सुगति स्वर्ग-लोकमें उत्पन्न होता है ।

“भिक्षुओ ! यह केवल परिपूर्ण पंडित-भूमि है ।”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्के भाषणको अभितर्कित किया ।

## १३०—देवदूत-सुत्तन्त ( ३।३।१० )

नरक वर्णन

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्वाघस्तोम अनाथपिटृदिके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भदन्त !”—( कह ) इन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—

“जैसे, भिक्षुओ ! ( सामने-सामने ) जुड़े दो घर हों, उनके बीचमें खड़ा आँसवाला पुरुष मनुष्योंको घरमें प्रवेश करते भी, निकलते भी, उड़लते भी, विचरते भी, देखे । इसी प्रकार भिक्षुओ ! मैं अमानुष पिबुद्ध दिव्य-बभ्रुसे ०<sup>१</sup> नरकमें उत्पन्न हुये हैं । उसे भिक्षुओ ! निरवपाल (= नरकपाल ) अनेक बाहोंसे पकड़कर यमराजको दिखलाते हैं । तब यमराज प्रथम देवदूतके द्वारमें समनुयोग = सम्-अनुग्रहण समनुभाषण (= भाषण ) करते हैं—‘हे पुरुष ! मनुष्योंमें क्या तुने प्रथम देवदूतको प्रकट हुआ नहीं देखा ?’—‘नहीं देखा, भन्ते !’ तब उसे भिक्षुओ ! यमराज यह कहते हैं—‘हे पुरुष ! क्या मनुष्योंमें तुने उत्तल ( ही ) सो सकनेवाले, अपने मल-मूत्रमें लिपटे सोये, भयोच छोटे घन्चेको नहीं देखा ?’ वह ऐसा घोलता है—‘देखा, भन्ते !’ तब भिक्षुओ ! उसे यमराज यह कहते हैं—‘हे पुरुष ! जानकार, बूढ़ होते हुये तुझे तब क्या यह नहीं हुआ—मैं भी जातिधर्मा (= जन्मनेके स्वभाववाला ) हूँ<sup>२</sup> जन्मनेसे परे नहीं हूँ । हन्त ! मैं काय-वचन-भनसे कल्याण (= अच्छा ) कर्म कहे ?’ वह ऐसा घोलता है—‘नहीं कर सका भन्ते ! मैंने प्रमाद (= भूल ) किया भन्ते !’ तब, भिक्षुओ ! उसे यमराज यह कहते हैं—‘हे पुरुष ! प्रमादो होकर तुने काय-वचन-भनसे कल्याण कर्म नहीं किया; तो हे पुरुष ! तुने वैसा किया, वैसा प्रमाद किया । सो वह कर्म न माताने किया, न धिताने किया, न भाईने ० । न भगिनीने ०, न मित्र-अभाल्योंने ०, न जात-विराद्रीवालोंने ०, न अमण-माह्वानोंने, न देवताओंने किया; तुने ही इस पाप कर्मको किया; तूही उसके विपाकको भोगेगा ।’

‘तब, भिक्षुओ ! यमराज उसे प्रथम देवदूतके द्वारमें ० भाषण करते हैं—‘हे पुरुष ! मनुष्योंमें तुने द्वितीय देवदूतको प्रकट हुआ नहीं देखा ?’—‘नहीं देखा, भन्ते !’ तब उसे भिक्षुओ ! यमराज यह कहते हैं—‘हे पुरुष ! क्या तुने मनुष्योंमें नहीं देखा—उड़े हो गये, दंड लेकर चलते, काँपते हुये बलते, आतुर, गत-जीवन, दृढ़े दाँत, सकेद बाल, इधर उधर हिलते-डुलते शिरवाले, गुरीं पने, काले दाग (= तिलक ) रंगे शरीरवाले, टोड़े (=

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ १५-१६ ।



गोपामसी) से वह जीर्ण स्त्री या पुरुषको ? ० वह ऐसा बोलता है—'देखा, भन्ते !' तब उसे, भिक्षुओं ! यमराज यह कहते हैं—'हे पुरुष ! तब जानकर वृद्ध होते हुये, तुझे क्या यह नहीं हुआ—मैं भी जरा-धर्मा (= वृद्ध होनेवाला हूँ ) जरासे परेका नहीं हूँ ।' हन्त ! ० तू ही उसके विपाकको भोगेगा ।'

"तब, भिक्षुओं ! यमराज उसे ० तृतीय देवदूतके बारेमें ० भाषण करते हैं—'हे पुरुष ! मनुष्योंमें तूने तृतीय देवदूतको प्रकट हुआ नहीं देखा ?'—'नहीं देखा, भन्ते !' तब उसे भिक्षुओं ! यमराज यह कहते हैं—'हे पुरुष ! क्या तूने मनुष्योंमें नहीं देखा—अपने मल-मूत्रमें लिपटे सोये, दूसरों द्वारा डाँपे जाते, दूसरों द्वारा सेवा किये जाते, बहुतही धीमार दुःखी स्त्री या पुरुषको ?' ० । 'हे पुरुष ! तब जानकर वृद्ध होते हुये तुझे क्या यह नहीं हुआ—मैं भी व्याधि-धर्मा हूँ, व्याधिसे परे नहीं हूँ ? हन्त ! ० तू ही उसके विपाकको भोगेगा ।

"० चतुर्थ देवदूतके बारेमें ० भाषण करते हैं—०—'हे पुरुष ! क्या तूने मनुष्योंमें नहीं देखा—राजा लोग घोर, आगलगानेवालेको प्रकटकर नाना प्रकारके दंड (= कर्मकारणा) देते हैं—चाडुकासे भी मरवाते हैं ० ' तलवारसे सीसा कटवाते हैं ?' ० । ० तुझे क्या यह नहीं हुआ—जो पाप कर्म करते हैं, वह इसी जन्ममें इस प्रकारसे नाना दंडोंको भोगते हैं ? हन्त ! ० तू ही उसके विपाकको भोगेगा ।

"० पंचम देवदूतके बारेमें ० भाषण करते हैं—० 'हे पुरुष ! क्या तूने मनुष्योंमें नहीं देखा' फूले नीला पत्र या पीछमरे हो गये एक दिन दो दिन तीन दिनके सुर्वेको ?' ० । ० तुझे क्या यह नहीं हुआ—मैं भी मरण-धर्मा हूँ, मरणसे परे नहीं हूँ ? हन्त ! ० तू ही उसके विपाकको भोगेगा ।

"तब, भिक्षुओं ! यमराज उस ( पुरुष ) से पंचम देवदूतके बारेमें ० भाषणकर श्रुप्त हो गये । तब उसे लेजाकर निरयपाल, पंच-विध्य-बंधननामक दंड (= कर्मकारणा) करते हैं—० ' ( आगसे ) व्याप्त हो सर्वदा स्थित रहती है । भिक्षुओं ! उस महानिरय (= महानरक ) के पूर्व दीवारसे उठी लौ (= अग्नि ) पश्चिमकी दीवारसे टकराती है । पश्चिम दीवारसे उठी लौ पूर्वकी दीवारसे टकराती है । उत्तरी दीवारसे उठी लौ दक्षिणकी दीवारसे टकराती है ; दक्षिणकी दीवारसे उठी लौ उत्तरी दीवारसे टकराती है । नीचेसे उठी लौ ऊपरको टकराती है, ऊपरसे उठी लौ नीचेको टकराती है । वह वहाँ दुःखा, तीव्रा, खरा, कटुका, वेदना अनुभव करता है ; किन्तु तब तक नहीं भरता, जब तक कि उसके पाप कर्मका अन्त नहीं हो जाता ।

"भिक्षुओं ! ऐसा समय होता है, जब कदाचित् कमो दीर्घकालके बाद उस महानिरय का पूर्वद्वार खुलता है, वह ( प्राणी ) उस ओर शीघ्र वेगसे दौड़ता है । शीघ्रसे दौड़ते वह उसकी छवि (= ऊपरी चमका) भी दृष्ट होता है, धर्म भी ०, मोक्ष भी ०, स्वायु भी ०, अस्ति भी सुझाँ देती है । ऐसेही वह ( वहाँ ) रहता है । जब भिक्षुओं ! उसे वहाँ प्राप्त हुये बहुत ( काल ) हो जाता है, तब वह द्वार बंद हो जाता है । वह वहाँ दुःखा ० ।

"भिक्षुओं ! ऐसा समय होता है ० पश्चिमद्वार ० । ० उत्तरद्वार ० । ० दक्षिणद्वार ० ।

"भिक्षुओं ऐसा समय होता है, जब ( अन्तमें ) कदाचित् ० उस महानिरयका पूर्वद्वार खुलता है, वह उस ओर शीघ्र वेगसे दौड़ता है । ० अस्ति भी सुझाँ देती है । ऐसे ही वह ( वहाँ ) रहता है । ( तब ) वह उस द्वारसे निकलता है । भिक्षुओं ! उस महाद्वारके बाद, लगे हुये महान्

\* देखो पृष्ठ ५४०-५४१ । \* देखो पृष्ठ ५३३ । \* इस नरकका नाम आ-वीचि भी है ( अ. क. )

गृध-निरय ( = विष्टाका नरक ) है । यह वहाँ गिरता है । मिथुओ ! उस गृधनिरयमें सूची-  
मुख ( = सुई जैसे तेज नोकके सुँहवाले ) प्राणी ( इसकी ) छवि डेढ़ते हैं, छविको डेढ़कर चर्मको  
डेढ़ते हैं, ० माँतको ०, ० स्नायुको ०, ० अस्त्रिको ०, ० अस्त्रिमज्जाको ० । यह वहाँ दुःखा ० ।

“मिथुओ ! उस गृध-निरयके पास लगा हुआ कुञ्जकूल-निरय है; यह वहाँ गिरता है ।  
यह वहाँ दुःखा ० ।

“मिथुओ ! उस कुञ्जकूल-निरयके पास लगा हुआ, योजन भर ऊँचा महान् सिष्वलि-वन  
है । वहाँ आदीप्त = ज्वलित भाग हो गये दस अंगुल लम्बे काँटे हैं, उनपर ( उसे ) चढ़ाते उतारते  
हैं । यह वहाँ दुःखा ० ।

“मिथुओ ! उस सिष्वलि-वनके पास लगा हुआ, महान् अस्त्रिमज्जा-वन है । यह वहाँ  
प्रविष्ट होता है । हवासे प्रेरित पत्ते गिरकर हाथको भी काटते हैं, पैरको भी ०, हाथ-पैरको भी ०,  
कानको भी ०, नाकको भी ०, कान-नाकको भी ० । यह वहाँ दुःखा ० ।

“मिथुओ ! उस अस्त्रिमज्जा-वनके पास लगी हुई क्षारोदका नदी ( = पारे जलकी नदी )  
है । यह उसमें गिरता है । वहाँ यह धारकी ओर ( = अनुस्रोत ) भी बहता, जलटी धार भी  
बहता है । यह वहाँ दुःखा, तीव्रता, स्फा, कटुका, वेदना अनुभव करता है; किन्तु तब तक नहीं  
मरता, जब तक कि उसके पाप कर्मका अन्त नहीं हो जाता ।

“तब, मिथुओ ! उसे निरय-पाल निकाल कर स्थलपर रख यह कहते हैं—‘हे पुरुष ! तू  
क्या चाहता है ?’ यह यह कहता है—‘मन्ते ! मैं भूखा हूँ’ । तब उसे, मिथुओ ! निरयपाल  
आदीप्त ० तस लोहके छत्र ( = शंकु ) से सुँहको फाड़कर, आदीप्त = प्रज्वलित = सज्ज्योतिर्भूत  
आदीप्त ०, तस लोहकृतको सुँहमें डालते हैं । यह उसके ओढ़को भी दहता है, कंठको भी ०, उरको  
भी ०, अँतको भी ०, अंतर्को ( = अंतगुण ) को भी लेते हुये अधोभागसे निकल जाता है । वह  
वहाँ दुःखा ० ।

“तब उसे मिथुओ ! निरयपाल ( = यमदूत ) यह कहते हैं—‘हे पुरुष ! तू क्या चाहता  
है ?’ यह यह कहता है—‘मन्ते ! मैं प्यासा हूँ’ । तब उसे मिथुओ ! निरयपाल आदीप्त ० तस  
लोहके छत्र से सुँहको फाड़कर, आदीप्त ० तपे तपे ( = ताम्रलोह ) को शीकते हैं । ० अँतर्को  
लेते हुये अधोभागसे निकल जाता है । यह वहाँ दुःखा ० ।

“तब उसे, मिथुओ ! निरयपाल फिर महानिरयमें डालते हैं ।

“मिथुओ ! भूतपूर्व ( = पूर्वकाल ) में यमराजको ऐसा हुआ—‘लोकमें जो पाप = अकृतल  
कर्म करते हैं, वह इस प्रकारकी नाता यातनायें ( = कर्मकारणा ) पाते हैं । अहोवत ! मैं मनुष्यत्व-  
को प्राप्त होऊँ, और लोकमें तबामत बर्तव्य सम्भक्-सम्भुद उत्पन्न होयें, उन भगवान्का मैं सत्संग  
( = पर्युपासन ) करूँ, और वह भगवान् मुझे धर्मापदेश करें । उन भगवान्के धर्मको मैं समझूँ’ ।  
मिथुओ ! यह मैं किसी दूसरे भ्रमण माध्वणसे सुनकर नहीं कह रहा हूँ; बल्कि जो मुझे स्वयं  
ज्ञात = इष्ट = विदित है, उसीको कहता हूँ ।”

भगवान्ने यह कहा, यह कह कर सुगत, शास्ताने यह भी कहा—

“देवदूतसे प्रेरित होकर ( भी ) जो मनुष्य प्रमाद करते हैं ।

वह नर नीची योनि<sup>१</sup> में प्राप्त हो, दीर्घकाल तक शोक करते हैं ।

<sup>१</sup> योनि = योनि ।



जो सन्त = सत्पुरुष वहाँ पर देवदुत द्वारा,  
प्रेरित हो, आर्यधर्ममें कभी प्रमाद नहीं करते ।

जन्म-मरणके भय ( सागर )में, और उपादानमें भय देख जन्म-मरणके क्षयसे उपादान  
रहित हो विमुक्त होने हैं ।

वह क्षेमको प्राप्त, सुखी, इसी जन्ममें निर्वाण-प्राप्त,  
सारे वैर और भयसे पार, सारे दुःखको पार हो गये ।

( १३-इति सुज्जता-वग्ग ३।३ )

## १३१-भद्रदेकरत्न-सुत्तन्त ( ३।४।१ )

मूल-भविष्यकी चिन्ता छोड़ वर्तमानमें लगे

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनायासिकिके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भदन्त !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ !! तुम्हें भद्रदेकरत्न ( = अङ्केले अङ्केमें अनुरक्त ) के उद्देश ( = नाम-कथन ), और विभंग ( = विभाग ) को उपदेशता हूँ, उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा, भन्ते !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—

“अतीतका अनुगमन न करे, न भविष्यकी चिन्तामें पड़े ।

जो अतीत है, वह तो नष्ट हो गया, और भविष्य अभी आ नहीं पाया । ( १ ) ।

वर्तमान जो धर्म ( = बात है ), ( उसीको ) तहाँ तहाँ देखे ।

जो असंहारी, असंकोपी<sup>१</sup> है, उसे विद्वान् बनावे ॥ ( २ ) ॥

आज ही कर्त्तव्यमें लड़ना चाहिये, कौन जानता है, कल मरण हो ।

महासेन मृग्युसे युद्ध करते हमारा ( कोई निग्रह ) नहीं है ॥ ( ३ ) ॥

रात दिन निरालस, उद्योगी हो इस प्रकार विहरनेवालेको ही ,

ज्ञाना मुनि ( जन ) भद्रैक-रत्न कहते हैं ॥ ( ४ ) ॥

“कैसे, भिक्षुओ ! अतीतका अनुगमन करता है ?—‘अतीतकालमें मैं इस प्रकारके रूप-वाला था’—( सोच ) उसमें नन्दी ( = राग ) लाता है । ‘० वेदनावाला ० । ‘० संज्ञा ० । ‘० संस्कार ० । ‘० विज्ञान ० । इस प्रकार, भिक्षुओ ! अतीतका अनुगमन करता है । कैसे, भिक्षुओ ! अतीतका अनुगमन नहीं करता ?—‘अतीतकालमें मैं इस प्रकारके रूपवाला था’—( सोच ) उसमें नन्दी नहीं लाता । ‘० वेदनावाला ० । ‘० संज्ञा ० । ‘० संस्कार ० । ‘० विज्ञान ० । इस प्रकार, भिक्षुओ ! अतीतका अनुगमन नहीं करता ।

“कैसे भिक्षुओ ! भविष्य ( = अनागत ) की चिन्ता नहीं करता ?—‘भविष्यमें इस प्रकारके रूपवाला होऊँगा’—( सोच ) उसमें नन्दी करता है । ‘० वेदना ० । ‘० संज्ञा ० । ‘० संस्कार ० । ‘० विज्ञान ० । इस प्रकार भिक्षुओ ! अनागतकी चिन्ता नहीं करता ।

<sup>१</sup> न दनेवाला ।



“कैसे, भिक्षुओ ! प्रत्युत्पन्न (= वर्तमान, विद्यमान ) धर्मीमें आसक्त होता है ?—  
यहाँ, भिक्षुओ ! आर्योके दर्शनसे वंचित ०<sup>१</sup> अश्रुतवान्, पृथक्त्वन (= अनादी ), रूप  
( = Matter )को आत्माके तौरपर या आत्माको रूपवान् ( Material ), आत्मामें रूपको  
या रूपमें आत्माको देखता (= समझता ) है। वेदना ० । संज्ञा ० । संस्कार ० । ० विज्ञानको आत्मामें  
तौर पर, ० । इस प्रकार भिक्षुओ ! प्रत्युत्पन्न धर्मीमें आसक्त होता है (= संहिरति ) । कैसे, भिक्षुओ !  
प्रत्युत्पन्न धर्मीमें नहीं आसक्त होता ?—यहाँ भिक्षुओ ! आर्योके दर्शनको प्राप्त ०<sup>२</sup> बहुश्रुत आर्य-  
भावक, रूपको आत्मामें तौरपर, या आत्माको रूपवान्, आत्मामें रूपको, या रूपमें आत्माको  
नहीं देखता । वेदना ० । संज्ञा ० । संस्कार ० । ० । विज्ञानको आत्मामें तौरपर, या आत्माको  
विज्ञानवान् ; आत्मामें विज्ञानको, या रूपमें विज्ञानको नहीं देखता । इस प्रकार, भिक्षुओ !  
प्रत्युत्पन्न धर्मीमें नहीं आसक्त होता—

“अतीतका अनुगमन न करे ०<sup>३</sup>

शान्त, सुनि ( वन ) भद्रैकरक कहते हैं ।

“भिक्षुओ ! जो मैंने कहा—‘भिक्षुओ ! तुम्हें ० भरेकरके उद्देश और विभंगको उपदेशता  
हूँ’; वह इसीके लिये कहा ।”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्के भाषणकी अभिनन्दित किया ।

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ १ ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ ७ ।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ ५४३ ।

## १३२-आनन्द-भद्रकरत्त-सुत्तन्त (३।४।२)

भूत-भविष्यको चिन्ता छोड़ वर्तमानमें लगे

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् आचस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् आनन्द, उपस्थान-शालामें भिक्षुओंको धार्मिक कथाद्वारा संदर्शित (= सुझाना) = समावृत्त, समुत्तेजित = संप्रहरित करते थे । भद्रकरत्तके उद्देश और विभंगको कहते थे । तब भगवान् सायंकाल, ध्यानसे उठकर वहाँ उपस्थान-शाला थी, वहाँ गये । जाकर घिरे आसनपर बैठे । बैठकर भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

“भिक्षुओ ! किसने ( आज ) उपस्थान-शालामें भिक्षुओंको धार्मिक कथा द्वारा • समुत्तेजित किया । भद्रकरत्तके उद्देश और विभंगको कहा ?”

“भन्ते ! आयुष्मान् आनन्दने उपस्थान-शालामें • ।”

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

“कैसे, आनन्द ! तुने भिक्षुओंको • समुत्तेजित • किया, भद्रकरत्तके उद्देश और विभंग को कहा—

भन्ते ! इस प्रकार मैंने भिक्षुओंको • उद्देश और विभंगको कहा—

“अतीतका अनुगमन न करे •”

शान्त, मुनि ( जन ) भद्रकरत्त कहते हैं ।

“कैसे आयुसो ! अतीतका अनुगमन करता है •” भिक्षुओ ! प्रत्युत्पन्न धर्मीमें नहीं आसक्त होता ।

“अतीतका अनुगमन न करे •”

शान्त, मुनि ( जन ) भद्रकरत्त कहते हैं ।

“इस प्रकार, भन्ते ! मैंने भिक्षुओंको • समुत्तेजित • किया । भद्रकरत्तके उद्देश और विभंगको कहा ।”

“साधु, साधु, आनन्द ! ठीक ही तुने, आनन्द ! भिक्षुओंको • भद्रकरत्तके उद्देश और विभंगको कहा ।—

“अतीतका अनुगमन न करे •”

शान्त, मुनि ( जन ) भद्रकरत्त कहते हैं ।

•” प्रत्युत्पन्न धर्मीमें नहीं आसक्त होता । “अतीतका अनुगमन •” ।”

भगवान्ने यह कहा, संतुष्ट हो आयुष्मान् आनन्दने भगवान्के भाषणको अभिनन्दित किया ।

१ देखो सू ५४१ ।

२ देखो सू ५४३-४४ ।



## १३३—महाकव्यायन-भवेकरत्त-सुत्तन्त (३।४।३)

भूत-भविष्यकी किन्ता जोष, वर्तमानमें जगो ( सविस्तर )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् राजगृहमें तपोदाराममें<sup>१</sup> विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् समिद्धि रातको भिनसारमें उठकर जहाँ तपोदा थी, वहाँ स्नानके लिये गये । तपोदामें शरीरको पारिसिधितकर निकलकर गात्रको सुखाते हुए, एक वस्त्र पहिने खड़े हुये । तब प्रकाशयुक्त रात्रिमें सारी तपोदाको प्रकाशित करता, कोई प्रकाशमान देवता वहाँ आयुष्मान् समिद्धि थे, वहाँ गया । जाकर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े उस देवताने आयुष्मान् समिद्धिको यह कहा—

“भिन्नु ! भवेकरत्तके उद्देश और विभंगको तुम धारण करते ( = याद किये ) हो ?”

“नहीं, आवुस ! मुझे याद ( नहीं ) है; भवेकरत्तके उद्देश और विभंग । और क्या, आवुस ! तुमको याद है ० ?”

“मुझे भी, भिन्नु ! याद नहीं है ० । क्या तुम्हें, भिन्नु ! भवेकरत्त की गाथायें याद हैं ?”

“वहीं, आवुस ! मुझे याद ( नहीं ) है ०, क्या, आवुस ! तुमको याद है ० ?”

“मुझे भी, भिन्नु याद नहीं है ० । भिन्नु ! भवेकरत्तके उद्देश और विभंगको सीखो, ० पूरा करो, ० याद करो । भिन्नु ! भवेकरत्तके उद्देश और विभंग सार्थक हैं, आदि ब्रह्मचर्यक ( = शुद्ध ब्रह्मचर्योपयोगी ) हैं ।”

उस देवताने यह कहा । यह कह कर वहीं अन्तर्धान हो गया ।

तब आयुष्मान् समिद्धि उस रातके धीतनेपर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् समिद्धिने भगवान्से यह कहा—

“( आज ), भन्ते ! मैं रातको भिनसारमें उठकर ०” यह कह कर वहीं अन्तर्धान हो गया । अच्छा हो, भन्ते ! भगवान् मुझे भवेकरत्तके उद्देश और विभंगका उपदेश करें ।”

“तो, भिन्नु ! सुन, अच्छी तरह मनमें कर, कहता हूँ ।”

“अच्छा, भन्ते !” ( कह ) आयुष्मान् समिद्धिने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“०” अतीतका अनुगमन न करे ०” शान्त मुनि ( जन ) भवेकरत्त कहते हैं ।”

भगवान्ने यह कहा; यह कहकर सुगत आसनसे उठकर विहारमें चले गये । तब भगवान्के

<sup>१</sup> वैभारगिरिपर्वतके नीचे गर्म पानी ( अ.क. ) ।    <sup>२</sup> ऊपरकी भावृषि ।    <sup>३</sup> भूतकाकके पीछे न दीये ।    <sup>४</sup> देखो पृष्ठ ५४३-४४४ ।

चले जानेके भोजे ही समय बाद उन भिक्षुओंको यह हुआ—

“आवुसो ! भगवान् जो यह हमें संक्षेपसे उद्देश कर, विस्तारसे विभाग किये बिना ही, आसनसे उठकर विहारमें चले गये—‘अतीतका ०’। कौन है, आवुसो ! जो भगवान् के इस संक्षेपसे उद्देश किये विस्तारसे न विभाजित कियेका विस्तारसे अर्थ-विभाग करे ।”

तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—“यह आयुष्मान् महाकाव्यायन शास्ता (= बुद्ध) से भी प्रशंसित, और विश्व सम्प्रदाचारियोंसे भी संभावित है। आयुष्मान् महाकाव्यायन भगवान् के इस ० विस्तारसे न विभाजित कियेका विस्तारसे अर्थ-विभाग कर सकते हैं। क्यों न हम, आवुसो ! जहाँ आयुष्मान् महाकाव्यायन है, वहाँ चलकर आयुष्मान् महाकाव्यायनसे इसका अर्थ पूछें ।”

तब वह भिक्षु, जहाँ आयुष्मान् महाकाव्यायन थे वहाँ गये, जाकर आयुष्मान् महाकाव्यायनके साथ “संभोदनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन भिक्षुओंने आयुष्मान् महाकाव्यायनसे यह कहा—

“आवुस काव्यायन ! भगवान् यह संक्षेपसे उद्देश कर, विस्तारसे विभाग किये बिना ही, आसनसे उठकर विहारमें चले गये—‘अतीतका ०’। ०। तब हमको यह हुआ—‘यह आयुष्मान् महाकाव्यायन ० इसका अर्थ पूछें। विभाग करें आयुष्मान् महाकाव्यायन !”

“जैसे, आवुसो ! ( कोई ) सार-अर्थी = सार-गोवेपी पुरुष सारको खोजते हुये, सब्दे महान् सारवान् बुद्धके मूल और स्तंभको खोज, शास्त्र और पत्रमें सार (= साल, लकड़ोंका ढीरा ) ढूँढना पसंद करे। इसी प्रकार इस समय शास्त्राके संमुखीभूत (= विद्वान् ) होते, उन भगवान् को खोज, आयुष्मान् हमलोगोंको यह बात पूछना चाहते हैं। आवुसो ! वह भगवान् जानकार जानते हैं, देशनद्वार देखते (= समझते ) हैं, चक्षुभूत (= आँख-समान ), शानभूत, धर्मभूत, महाभूत हैं, वक्ता, प्रवक्ता, अर्थके निर्णेता, अमृतके दाता, धर्म-स्वाभी तथागत हैं। अब यही काल था, कि उन भगवान् से ही यह बात पूछी जाये। जैसा भगवान् आपको व्रतछायेँ, वैसा इसे धारण (= याद ) करता ।”

“ठीक, आवुस काव्यायन ! भगवान् जानकार जानते हैं ० भगवान् से ही यह बात पूछी जाये । ० वैसा हम इसे धारण करें। किन्तु, आयुष्मान् महाकाव्यायन भी शास्त्रासे प्रशंसित ० । विस्तारसे अर्थ विभाग कर सकते हैं। भार न मानकर विभाग (= व्याख्यान ), करें आयुष्मान् महाकाव्यायन !”

“तो, आवुसो ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा, आवुस !” —( कह ) उन भिक्षुओंने आयुष्मान् महाकाव्यायनको उत्तर दिया ।

आयुष्मान्-महाकाव्यायनने यह कहा—“आवुसो ! जो हमें भगवान् ने यह संक्षेपसे ० । उठकर विहारमें चले गये—‘अतीतका ०’। आवुसो ! विस्तारसे अ-विभाजित भगवान् के इस संक्षिप्त भाषणका अर्थ मैं इस प्रकार विस्तारसे जानता हूँ—‘कैसे, आवुसो ! अतीतका अनुगमन करता है ?’—‘अतीत कालमें मेरा चक्षु इस प्रकारका था, रूप इस प्रकारका था’—यह ( सोच ) उसमें विज्ञान छन्द = राग प्रतिपद्य होता है। विज्ञान (= चित्त ) के छन्द = राग प्रतिपद्य होनेसे, उसे अभिनन्दित (= स्वागत ) करता है। उसका अभिनन्दन करते अतीतका अनुगमन करता है, ‘० मेरा भोज इस प्रकारका था, शब्द इस प्रकारका था’—० । ‘० मेरा प्राण ०, शेष ०’—० । ‘० मेरी जिह्वा ०, रस ०’—० । ‘० मेरी काया ०, स्पृष्टव्य ०’—० । ‘० मेरा मन ०, धर्म ०’—० ।



इस प्रकार, आबुसो ! अतीतका अनुगमन करता है । कैसे, आबुसो ! अतीतका अनुगमन नहीं करता ?—‘अतीत कालमें मेरा चक्षु इस प्रकारका था, रूप इस प्रकारका था’—यह ( सोच ) उसमें विज्ञान ( = चित्त, मन ) छन्द = रागसे प्रतिबद्ध नहीं होता । विज्ञानके ० प्रतिबद्ध न होनेसे, उसे अभिनन्दित नहीं करता । उसका अभिनन्दन न करनेसे अतीतका अनुगमन नहीं करता । ‘० ओत्र ०, शब्द ०—० । ० । ‘० मन ०, धर्म ०’—० । इस प्रकार आबुसो ! अतीतका अनुगमन नहीं करता ।

‘कैसे, आबुसो ! अनागतकी चिन्ता करता है ?—‘अनागत कालमें मेरा चक्षु इस प्रकारका हो, रूप इस प्रकारका’—यह ( सोच ) अ-प्राप्तकी प्राप्तिके लिये चित्तमें प्रणिधान ( = आग्रह ) करता है । चित्तके प्रणिधान द्वारा उसे अभिनन्दित करता है । उसका अभिनन्दन करते, अनागतकी चिन्ता करता है । ‘० ओत्र ०, शब्द ०’—० । ‘० घ्राण ०, गंध ०’—० । ‘० जिह्वा ०, रस ०’—० । ‘० काय ०, स्पृष्टव्य ०’—० । ‘० मन ०, धर्म ०’—० । इस प्रकार, आबुसो ! अनागतकी चिन्ता करता है । कैसे, आबुसो ! अनागतकी चिन्ता नहीं करता ?—‘अनागत कालमें मेरा चक्षु इस प्रकारका हो, रूप इस प्रकारका’—यह ( सोच ) अ-प्राप्तकी प्राप्तिके लिये चित्तमें प्रणिधान नहीं करता । चित्तके प्रणिधानके न होनेसे उसे अभिनन्दित नहीं करता । उसको अभिनन्दन न करते, अनागतकी चिन्ता नहीं करता । ‘० ओत्र ०, शब्द ०’—० । ‘० घ्राण ०, गंध ०’—० । ‘० जिह्वा ०, रस ०’—० । ‘० काय ०, स्पृष्टव्य ०’—० । ‘० मन ०, धर्म’—० । इस प्रकार, आबुसो ! अनागतकी चिन्ता नहीं करता ।

‘कैसे, आबुसो ! प्रत्युत्पन्न ( = वर्तमान )-धर्मों ( = पदार्थों )में आसक्त होता है ?—आबुसो ! जो चक्षु है, और जो रूप है, दोनों ही यह वर्तमान हैं । यदि उस वर्तमान ( = विद्यमान ) में विज्ञान ( = चित्त ) छन्द = रागसे प्रतिबद्ध होता है । विज्ञानके छन्द = राग प्रतिबद्ध होनेसे, उसे ( = विद्यमान वस्तु को ) अभिनन्दित करता है । उसका अभिनन्दन करते प्रत्युत्पन्न धर्मों ( = पदार्थों )में आसक्त होता है । जो ओत्र है, और जो शब्द है ० । ० घ्राण ०, ० गंध ० । ० जिह्वा ०, ० रस ० । ० काय ०, ० स्पृष्टव्य ० । ० मन ०, ० धर्म ० । इस प्रकार, आबुसो ! प्रत्युत्पन्न धर्मोंमें आसक्त होता है । कैसे, आबुसो ! प्रत्युत्पन्न धर्मोंमें आसक्त नहीं होता ?—आबुसो ! जो चक्षु है, और जो रूप है, दोनों ही यह प्रत्युत्पन्न ( = विद्यमान ) हैं । यदि उस वर्तमानमें विज्ञान छन्द = रागसे प्रतिबद्ध नहीं होता । विज्ञानके छन्द = राग प्रतिबद्ध न होनेसे, उसे अभिनन्दित नहीं करता । उसका अभिनन्दन न करते प्रत्युत्पन्न धर्मोंमें आसक्त नहीं होता । ० ओत्र ०, ० शब्द ० । ० घ्राण ०, ० गंध ० । ० जिह्वा ०, ० रस ० । ० काय ०, ० स्पृष्टव्य ० । ० मन ०, ० धर्म ० । आबुसो ! इस प्रकार प्रत्युत्पन्न धर्मोंमें आसक्त नहीं होता ।

‘आबुसो ! जो हमें मगवान्ने यह संक्षेपसे ० ’ उठकर विहारमें चले गये—‘अतीतका ० ’ । आबुसो ! मगवान्ने इस संक्षिप्त भाषणका अर्थ मैं इस प्रकार कितारसे जानता हूँ । इच्छा हो, तो तुम आबुध्मानो ! मगवान्ने पास भी जाकर इस अर्थ ( = बात )को पूछो, जैसा तुम्हें मगवान्ने बतलावे, वैसा धारण करो ।’

तब वह भिक्षु आबुध्मान महाकात्यायनके भाषणको अभिनन्दित = अनुमोदित कर, आपससे उठ जहाँ मगवान्ने थे, वहाँ गये । जाकर मगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे उन भिक्षुओंने मगवान्से यह कहा—

“अन्ते ! भगवान् जो यह हमें ० विलारसे विभाग किये बिना ही आसनसे उठकर विहारमें चले गये—‘अतीतका ०’ । तब भगवान् के चले जानेके बोधेही समय बाद हमें यह हुआ—०’ । तब हमको यह हुआ—०’ । ० जहाँ आयुष्मान् महाकाव्यायन थे, वहाँ गये । जाकर हमने आयुष्मान् महाकाव्यायनसे इस अर्थ को पूछा । तब हमें आयुष्मान् महाकाव्यायनने इस आकारसे, इन पदों (= वाक्यों) से, इन व्यंजनोंसे अर्थको विभाजित किया ।”

“मिथुजो ! महाकाव्यायन पंडित है । मिथुजो ! महाकाव्यायन महाप्रज्ञ है । मुझे भी, मिथुजो ! यदि तुम इस बातको पूछने, तो मैं भी इसका इसी प्रकार व्याख्यान करता, जैसा कि इसका महाकाव्यायनने व्याख्यान किया । यही इसका अर्थ है, इसी प्रकार इसे धारण करना ।”

भगवान् ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन मिथुजोंने भगवान् के भाषणको अभिनंदित किया ।



## १३४—लोमसकंगिय-भट्टदेकरत्त-सुत्तन्त (३।४।४)

भूत-मणिभ्यको चिन्ता छोड़, वर्तमानमें लगे

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् लोमसकंगिय (= लोमसक-अंगिक ) शाक्य ( देश )में, कपिल-वस्तुके न्यग्रोधारागमें विहार करते थे । तब प्रकाशयुक्त रात्रिमें, सारे न्यग्रोधारागको प्रकाशित करती, प्रकाशमानवर्णवाला चन्दन देवपुत्र जहाँ आयुष्मान् लोमसकंगिय थे, वहाँ गया । जाकर एक ओर खड़ा हुआ । एक ओर खड़े चन्दन देवपुत्रने आयुष्मान् लोमसकंगियसे यह कहा—

“मिथु ! भट्टदेकरत्तके उद्देश और विभंग तुम्हें याद हैं ?”

“नहीं, आयुस ०<sup>१</sup> । क्या, आयुस ! तुमको याद हैं ० ?”

“सुझे भी, मिथु ! याद नहीं है ० । क्या तुम्हें, मिथु ! भट्टदेकरत्तकी गायार्थें याद हैं ?”

“नहीं, आयुस ! सुझे याद ( नहीं ) है ० । क्या, आयुस ! तुमको याद हैं ० ?”

“हाँ, मिथु ! मुझे भट्टदेकरत्तकी गायार्थें याद हैं ।”

“कैसे, आयुस ! तुमने भट्टदेकरत्तकी गायार्थें याद कीं ?”

“मिथु ! एक समय भगवान् त्रयस्त्रिंश देव ( लोक )में पारिकत्रक ( वृक्ष )के नीचे पांडुकम्बल (= लाल पुशाले नामकी )-शिलापर विहार करते थे । वहाँ भगवान्ने आगस्त्रिंश देवों को भट्टदेकरत्तके उद्देश और विभंग कहे—“अतीतका ०<sup>२</sup> भट्टदेकरत्त कहते हैं” । मिथु ! इस प्रकार मैंने भट्टदेकरत्तकी गायार्थोंको याद किया । मिथु ! भट्टदेकरत्तके उद्देश और विभंगको सीखो ०<sup>३</sup> आदि-ब्रह्मचर्यक हैं ।”

चन्दन देवपुत्र यह कह कर वहीं अंतर्धान हो गया ।

तब आयुष्मान् लोमसकंगिय उस रातके धीतनेपर, शयन-आसन सँभाल, पात्र-चीवरले, विधर श्रावस्ती है, उधर चारिकाके लिये चल पड़े । क्रमशः चारिका करते, जहाँ श्रावस्ती थी, जहाँ अनाथपिण्डिकका आराम जेतवन था, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् लोमसकंगियने भगवान्से यह कहा—

“मन्ते ! एक समय मैं शाक्य ( देश )में कपिलवस्तुके न्यग्रोधारागमें विहार करता था ।

तब ० कोई देवपुत्र जहाँ मैं था वहाँ आया । जाकर एक ओर खड़ा हुआ ०<sup>४</sup> मुझे वह बोला—“मिथु ! भट्टदेकरत्तके उद्देश और विभंग तुम्हें याद हैं ? ०<sup>५</sup> मिथु ! भट्टदेकरत्तके उद्देश और विभंग को सीखो ०<sup>६</sup> आदि-ब्रह्मचर्यक हैं ।” ० मन्ते ! उस देवपुत्रने यह कहा, यह कहकर वहीं अंतर्धान

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ ५४७

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ ५४३-४४ ।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ ५४६ ।

<sup>४</sup> देखो ऊपर ।

हो गया । अच्छा हो, भन्ते ! भगवान् मुझे भरेकरचके उद्देश और विर्भावका उपदेश करें ।”

“व्याह, भिक्षु ! इस देवपुत्रको जानता है ?”

“नहीं, भन्ते ! मैं इस देवपुत्रको ( नहीं ) जानता ।”

“भिक्षु ! वह चन्दन नामक देवपुत्र है । भिक्षु ! चन्दन देवपुत्र मन लगा कर सबको चित्त से समन्वाहरण (= ठीक ) कर, काग लगा धर्मको सुनता है । तो, भिक्षु ! सुन अच्छी तरह मन में कर, कहता हूँ ।”

“अच्छा, भन्ते !”—( कह ) आयुष्मान् श्रीमत्कण्वियने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—

“अतीतका ०<sup>१</sup> भरेकरच कहते हैं ।”

“कैसे, भिक्षु ! अतीतका अनुगमन करता है ?—०<sup>१</sup> इस प्रकार, भिक्षु ! प्रत्युत्पन्न धर्म में आसक्त नहीं होता ।—‘अतीतका ०<sup>१</sup> भरेकरच कहते हैं ।’”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो आयुष्मान् श्रीमत्कण्वियने भगवान्के भाषणको अभिनन्दित किया ।



## १३५-चूल-कम्मविभंग-सुचन्त (३।४।५)

कर्मोका फल

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् धावस्तीमें अनाथपिट्टिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब तोदेष्णपुत्त शुभ भाणव, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया; जाकर भगवान्‌के साथ 'संसो-  
दन कर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे ० शुभ भाणवने भगवान्‌से यह कहा—

“भो गौतम ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है—मनुष्य ही होते, मनुष्य-रूपियोंमें हीनता, और  
प्रणीतता (= उच्चता, उत्तमता ) दिखाई पड़ती है ? भो गौतम ! यहाँ मनुष्य अण्णालु देखनेमें  
आते हैं; दीर्घालु ०, बहु रोगी ०, अल्प रोगी (= अरोगी ) ०, दुर्बल (= कुरूप ) ०,  
जर्णवान् ०, अ-समर्थ (= अक्षयशाल्य ) ०, महोशाल्य (= महासमर्थी ) ०, अल्प-भोग ०  
( = दृष्टि ) ०, महा-भोग ०, मोचकुलीन ०, उच्चकुलीन ०, दुष्प्रज्ञ (= निबुद्धि ) ०,  
प्रज्ञावान् ०, भो गौतम ! क्या हेतु है ० प्रणीतता दिखाई पड़ती है ?”

“भाणव ! प्राणी कर्म-फल (= कर्म ही बन है, जिनका ) हैं, कर्म-दायाद, कर्म-योनि,  
कर्म-वन्धु, कर्म-प्रतिधारण (= कर्म ही शक्त है, जिनका ) हैं । कर्म प्राणियोंको इस ( हीन-  
प्रणीततामें ) विभक्त करता है ।”

“इस आप गौतमके संक्षिप्तसे कही, विस्तारसे विमाजित न की गई बातका अर्थ में नहीं  
समझता । अच्छा हो, आप गौतम इस प्रकार धर्म-उपदेश करें, जिसमें कि आपकी इस संक्षिप्तसे  
कही ० बातका मैं विस्तारसे अर्थ जान जाऊँ ।”

“तो, भाणव ! सुनो अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा, भो !”—( कह ) ० शुभ भाणवने भगवान्‌को उत्तर दिया ।

भगवान्‌ने यह कहा—“यहाँ, भाणव ! कोई स्त्री या पुरुष प्राणातिपाती, खद, लोहितपाणि  
( = खून रंगे हाथवाला ), मार काटमें रत, सारे प्राणि = मृतोंके विषयमें अ-दयापन्न होता है ।  
इस प्रकार दुहीत = इस प्रकार समादत्त उस कर्मसे काया छोड़ मरनेके बाद, अपाच =  
दुर्गति, विनिपात, नरकमें उत्पन्न होता है । यदि अनुष्यत्व (= अनुष्य योनि )में जाता है, तो  
जहाँ जहाँ उत्पन्न होता है, अण्णालु होता है । भाणव ! ० प्राणातिपाती (= हिंसक ) हो  
निर्दयी हो विहरता—यह प्रतिपदा (= मार्ग ) अण्णालुताकी ओर ले जानेवाली है । और यहाँ,  
भाणव ! कोई स्त्री या पुरुष दंढरहित, शस्त्ररहित ० दयापन्न प्राणातिपात छोड़, प्राणाति-  
पातसे विरत होता है, सर्वत्र सारे प्राणि = मृतोंका हित = अनुकम्पक हो विहरता है । वह

\* देखो पृष्ठ १६९-७० ।

इस प्रकार गृहीत = इस प्रकार समादत्त उस कर्मसे काया छोड़ मरनेके बाद सुगति, स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य योनिमें जाता है, तो जहाँ जहाँ उत्पन्न होता है, दीर्घायु होता है। माणव ! ० प्राणातिपातसे विरत होना ० दयापन्न होना—यह प्रतिपदा दीर्घायुताकी ओर ले जानेवाली है।

“यहाँ माणव ! कोई स्त्री या पुरुष हाथ-डले-डंडे या शस्त्रसे प्राणियोंका मारनेवाला होता है, वह ० उस कर्मसे काया छोड़ मरनेके बाद ० नरकमें उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य योनिमें जाता है, तो जहाँ जहाँ उत्पन्न होता है, बहुरोगी होता है। माणव ! ० ० प्राणियोंका मारनेवाला होना—यह प्रतिपदा बहुरोगिताकी ओर ले जानेवाली है। और माणव ! यहाँ कोई स्त्री या पुरुष ० प्राणियोंको मारनेवाला नहीं होता, वह ० उस कर्मसे ० स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य-योनिमें जाता है, तो ० निरोग (= अल्पाबाध) होता है। ० यह प्रतिपदा अल्पाबाधताकी ओर ले जानेवाली है।

“यहाँ, माणव ! कोई स्त्री या पुरुष कौधी बहुत परेशान रहनेवाला (= उपायात-बहुल) होता है, जोधा भी कहनेपर बुरा मान लेता है, कुपित होता है, झोह कर लेता है, कोप = द्वेष = अ-प्रत्यय प्रकट करता है। वह ० उस कर्मसे ० नरकमें उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य योनिमें जाता है, तो ० दुर्बल (= कुरुप) होता है। ०—यह प्रतिपदा दुर्बलताकी ओर ०। किन्तु, माणव ! यहाँ कोई स्त्री या पुरुष ० न कौधी है, न बहुत परेशान रहनेवाला—बहुत भी कहनेपर बुरा कहीं मानता, कुपित नहीं होता, झोह नहीं कर लेता, कोप ० नहीं प्रकट करता। वह ० उस कर्मसे ० स्वर्गमें उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य-योनिमें जाता है, तो ० प्रासादिक (= सुन्दर) होता है। ०—यह प्रतिपदा प्रासादिकताकी ओर ०।

“यहाँ, माणव ! कोई स्त्री या पुरुष बाह करनेवाला होता है, बूसरेके लाभ, सत्कार, गुरु-कार, मानन = धंदन, पूजनमें, ईर्ष्या करता है, द्वेष करता है, ईर्ष्या बाँधता है। वह ० इस कर्मसे ० नरकमें उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य-योनिमें जाता है, तो ० अस्येशास्य होता है। ०—यह प्रतिपदा अस्येशास्यताकी ओर ०। और, माणव ! यहाँ कोई स्त्री या पुरुष बाह करनेवाला नहीं होता, बूसरेके लाभ ० मैं ईर्ष्या नहीं करता, द्वेष नहीं करता, ईर्ष्या नहीं बाँधता है। वह ० इस कर्मसे ० स्वर्गमें उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य-योनिमें जाता है, तो ० भद्रेशास्य होता है। ०—यह प्रतिपदा भद्रेशास्यताकी ओर ०।

“यहाँ, माणव ! कोई स्त्री या पुरुष अन्न या वाह्यको अन्न, पान, वस्त्र, दान, माला-गोघ-विलेपन, द्रव्या, निवास स्थान, प्रदीप ( आदि ) का देनेवाला नहीं होता। वह ० इस कर्मसे ० नरकमें उत्पन्न होता है, यदि मनुष्य-योनि में जाता है, तो ० अव्य-भोग (= इन्द्रि) होता है। ०—यह प्रतिपदा अव्य-भोगताकी ओर ०। और माणव ! यहाँ कोई स्त्री या पुरुष अन्न या वाह्यको अन्न-पान ० का देनेवाला होता है। वह ० इस कर्मसे ० स्वर्गमें उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य योनिमें जाता है, तो ० महा-भोग (= घनी) होता है। ०—यह प्रतिपदा महा-भोगता की ओर ०।

“यहाँ, माणव ! कोई स्त्री या पुरुष स्तब्ध, अभिमानी होता है, अभिवादनीयको अभि-वादन नहीं करता, प्रत्युत्पातव्यका प्रत्युत्थान नहीं करता, आसनार्थको आसन नहीं देता, मार्गार्थके लिये मार्गको नहीं ( छोड़ ) देता, सत्कर्तव्यका सत्कार नहीं करता, गुरुकर्तव्यका गुरुकार (= पूजा) नहीं करता, माननीयका मान नहीं करता, पूजनीयकी पूजा नहीं करता। वह ० इस कर्मसे ० नरकमें उत्पन्न होता है। यदि मनुष्य-योनिमें जाता है, तो ० मोघकुलीन होता है।



०—यह प्रतिपदा भी बीचकुलीनताकी ओर ० । और, भाणव ! यहाँ कोई स्त्री या पुरुष अ-  
सुख, अन्-अभिमानी होता है, अभिवादनोद्यको अभिवादन करता है, ० अत्युत्थान करता है, ०  
आसन देता है, ० मार्ग देता है, ० सत्कार करता है, ० गुरुकार करता है, ० मान करता है, ०  
पूजा करता है । यह ० इस कर्मसे ० स्वर्गमें उत्पन्न होता है । यदि मनुष्य-योनिमें आता है, तो ०  
उच्चकुलीन होता है । ०—यह प्रतिपदा उच्चकुलीनताकी ओर ० ।

“यहाँ, भाणव ! कोई स्त्री या पुरुष अमरण या ब्राह्मणके पास जाकर नहीं पढ़नेवाला  
होता—भन्ते ! क्या कुशल ( = अच्छा ) है, क्या अकुशल है ? क्या सावध ( = स-दोष ) है, क्या  
भिरवण ( = निर्दोष ) ? क्या सेवितव्य है, क्या नहीं सेवितव्य है ? क्या मेरा करना दीर्घकाल तक  
अहित = दुःखके लिये होगा, और क्या मेरा करना दीर्घकाल तक हित = सुखके लिये होगा ?  
यह ० इस कर्मसे ० नरकमें उत्पन्न होता है, यदि मनुष्य-योनिमें आता है, तो ० दुःप्रज  
होता है । ०—यह प्रतिपदा दुःप्रजताकी ओर ० । और, भाणव ! यहाँ कोई स्त्री या पुरुष अमरण  
या ब्राह्मणके पास जाकर पढ़नेवाला होता है—भन्ते ! क्या कुशल है ० दीर्घकाल तक हित =  
सुखके लिये होगा ? यह ० इस कर्म से ० स्वर्गमें उत्पन्न होता है । यदि मनुष्य-योनिमें आता है,  
तो महाप्रज होता है । ०—यह प्रतिपदा महाप्रजताकी ओर ० ।

“इस प्रकार, भाणव ! अन्धाधुताकी ओर छे जानेवाली प्रतिपदा ( = मार्ग ) अन्धाधु-  
त्वमें पहुँचती है । दीर्घायुता ० । बह्वापाधता ( = बहुरोगोपन ) ० । अन्धापाधता ० । दुर्वर्णता  
० । प्रासादिकता ० । अश्लेषता ० । महेशाश्वता ० । अल्पभोगता ० । महा-भोगता ० । बीच-  
कुलीनता ० । उच्चकुलीनता ० । दुष्प्रजता ० । महाप्रजता ० ।

“भाणव ! प्राणी कर्मस्त्वक है ० । कर्म प्राणिघोंको इस हीन-प्रणीततामें विनक्त  
करता है ।”

ऐसा कहनेपर तोदेव्यपुत्र शुभ ( = सुभ ) भाणवने भगवान्से यह कहा—

“आश्वर्य ! भो गौतम ! आश्वर्य !! भो गौतम ! जैसे औंधेको लोधा करदे ०<sup>१</sup> आप गौतम  
आजसे मुझे अंजलिपद धारणागत, उपासक स्वीकार ( = धारण ) करें ।”

## १३६—महा-कम्म-विभंग-सुत्तन्त (३।४।६)

कर्मोंका फल

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् राजगृहमें वेणुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् समिद्धि (= समृद्धि) जंगलकी कुट्टियामें विहार करते थे । तब पोतलि-पुत्र परिव्राजक जंघाविहार (= टहलने) के लिये टहलते चिचरते, जहाँ आयुष्मान् समिद्धि थे, वहाँ गया । जाकर आयुष्मान् समिद्धि के साथ "संभोदन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे पोतलि-पुत्र परिव्राजकने आयुष्मान् समिद्धिसे यह कहा—

"आयुस समिद्धि ! मैंने इसे अमण गौतमके सुखसे सुना है, सुखसे ग्रहण किया है—'भोष (= निष्फल) है कायिक कर्म, भोष है वायिक-कर्म, मानस कर्म ही सब है । क्या ऐसी ( कोई ) समापत्ति (= समाधि ) है, जिस समापत्तिको प्राप्त कर कुछ नहीं वेदन (= अनुभव ) करता ।"

"आयुस पोतलिपुत्र ! मत ऐसा कहो, आयुस पोतलिपुत्र ! मत ऐसा कहो । मत भगवान्-पर झूठ लगाओ (= अम्वास्वान करो ), भगवान्-पर झूठ लगाना अच्छा नहीं । भगवान् ऐसा नहीं कह सकते—'भोष है कायिक कर्म ० मानसकर्म ही सब है ।' और आयुस ! है ऐसी समापत्ति, जिस समापत्तिको प्राप्त कर कुछ नहीं वेदन करता ।"

"आयुस समिद्धि ! कितने चिरसे प्रव्रजित हुये ?"

"कुछ चिर नहीं, आयुस ! तीन वर्ष ( हुये ) ।"

"वहाँ, हम स्थविर (= बृद्ध ) भिक्षुओंको क्या कहेंगे, जब कि ( एक ) नया भिक्षु इस प्रकार ( अपने ) शास्ता (= गुरु ) परि-रक्षा करनेको तैयार है । आयुस समिद्धि ! जानते हुये काय-वचन-मनसे कर्म करके क्या संवेदन करता है ?"

"आयुस पोतलिपुत्र ! जानते हुये काय-वचन-मनसे कर्म करके वह दुःख संवेदन करता है ।"

तब पोतलिपुत्र परिव्राजकने आयुष्मान् समिद्धि के भाषणको न अभिनन्दित किया, न प्रतिकोशित (= निन्दित) किया । बिना अभिनन्दित-प्रतिकोशित किये आसनसे उठकर चला गया ।

तब आयुष्मान् समिद्धि, पोतलि-पुत्र परिव्राजकके चले जानेके थोड़ीही देर बाद, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गये । जाकर आयुष्मान् आनन्दके साथ "संभोदन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् समिद्धिने जो कुछ पोतलिपुत्र परिव्राजकके साथ कथासंलाप हुआ था, वह सब आयुष्मान् आनन्दको कह सुनाया । ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने आयुष्मान् समिद्धिसे यह कहा—

"आयुस समिद्धि ! भगवान् के दर्शनके लिये यह क्या ( रूपी ) भेंट है, चलो आयुस समिद्धि ! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ चलें । चल कर इस अर्घ ( = दात ) को भगवान्-से कहेंगे, जैसे



हमें भगवान् बतलायेंगे, वैया उसे धारण करेंगे ।”

“अच्छा, आबुस !” ( कह ) आधुष्मान् समिद्धिने आधुष्मान् आनंदको उत्तर दिया ।

तब आधुष्मान् आनंद और आधुष्मान् समिद्धि जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आधुष्मान् आनंदने जो कुछ आधुष्मान् समिद्धिका पोतलिपुत्त परिव्राजकके साथ कथा-संलाप हुआ था, वह सब भगवान्को कह सुनाया, ऐसा कहनेपर भगवान्ने आधुष्मान् आनंदसे यह कहा—

“आनन्द ! पोतलिपुत्त परिव्राजकको देखनेकी भी बात मुझे मायूम नहीं है, कहाँसे इस तरहका कथा संलाप होगा ? आनन्द ! इस मोक्षपुरुष समिद्धिने पोतलिपुत्त परिव्राजकको विभाग करके उत्तर देने लायक प्रश्नका एकांशसे उत्तर दिया ।”

ऐसा कहनेपर आधुष्मान् उदायीने भगवान्से यह कहा—

“भन्ते ! आधुष्मान् समिद्धिने क्या ख्याल करके यह कहा—जो कुछ वेदन (= अनुभव ) है, वह दुःख-विषयक है ?”

तब भगवान्ने आधुष्मान् आनंदको सन्बोधित किया—“आनन्द ! देख रहे हो, तुम इस मोक्ष पुरुष उदायीके उन्मंगको । आनंद ! मैंने इसी वक्त जान लिया कि वह मोक्षपुरुष उदायी दुःखकी लगाते हुये अयोनिशः (= मूलपर बिना ध्यान दिये ) दुःखकी लगायेगा । आनन्द ! आराममें ही पोतलिपुत्त परिव्राजकने तीन वेदनायें पूँछी, और आनन्द ! इस मोक्षपुरुष समिद्धिको पोतलिपुत्त परिव्राजकके वैया पूछनेपर ऐसा उत्तर देना चाहिये था—‘आबुस पोतलिपुत्त ! जानते हुये काय-वचन-मनसे कर्म करके सुखवेदनीय (= जिसका अनुभव सुखमय है ) सुखको वह अनुभव करेगा । आबुस ! पोतलिपुत्त ! जानते हुये काय-वचन-मनसे कर्म करके दुःखवेदनीय दुःखको वह अनुभव करेगा । ० कर्म करके अदुःख-असुख-वेदनीय अदुःख-असुखको वह अनुभव करेगा । आनन्द ! इस प्रकार पोतलिपुत्त परिव्राजकको उत्तर देकर मोक्षपुरुष समिद्धि ठीकसे उत्तर देता । और आनन्द ! कोई कोई अण्यतीर्थिक परिव्राजक बाल (= अज्ञ ) = अनव्यक्त हैं, कोई कोई तथागतके महाकर्म-विभंग<sup>१</sup> को जानेंगे । वैया, आनन्द ! तुम सुनोगे, तथागतको महाकर्मविभंग विभाजित करते ?”

“इसीका भगवान् काल है, इसीका सुगत काल है, कि भगवान् महाकर्मविभंग विभाजित करें । भगवान्से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे ।”

“तो, आनन्द ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा, भन्ते !” ( कह ) आधुष्मान् आनन्दने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“आनन्द ! लोकमें चार ( प्रकारके ) पुद्गल (= पुरुष ) विद्यमान हैं । कौनसे चार ?—वहाँ, आनन्द ! कोई पुद्गल हिंसक होता है, चोर, स्वमिचारी, लूट, चुगलखोर, कटुभाषी, प्रलापी, अभिध्यालु (= लोभी ), व्यापाद (= द्रोह )-युक्त-चित्तवाला, मिथ्या-दृष्टि होता है; वह काया छोड़ मरनेके बाद अपाय = दुर्गति, विनिपात, नरकमें उत्पन्न होता है । और वहाँ आनन्द ! कोई पुद्गल हिंसक ०<sup>१</sup> मिथ्यादृष्टि होता है; ( किन्तु ) वह काया छोड़ मरनेके बाद सुगति, स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है । और वहाँ आनन्द ! कोई पुद्गल अहिंसक, अ-चोर, अ-स्वमिचारी, लूट नहीं, चुगलखोर-नहीं, कटुभाषी-नहीं, प्रलापी-नहीं, अन्-अभिध्यालु, अ-व्यापाद-चित्त, सम्यग्-दृष्टि होता है; वह काया छोड़ मरनेके बाद सुगति स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता

<sup>१</sup> ऐसी नृल-कर्मविभंग सुगत भी ( ५५३-५४ पृष्ठ )

है। और यहाँ आनन्द ! कोई पुद्गल अ-हिंसक • सम्यग्-दृष्टि होता है; ( किन्तु ) वह काया छोड़ मरनेके बाद • नरकमें उत्पन्न होता है।

( १ ) “यहाँ, आनन्द ! कोई भ्रमण या ब्राह्मण आतप्य = उद्योग, अभिसाद ( = सफल-कार्य ), और अच्छी तरह भग्न करनेसे मुक्त हो, इस प्रकारकी चेतः समाधि ( = चित्तकी एकाम्रता ) को प्राप्त होता है; कि जिस चित्तकी समाधिके कारण असामुष विमल दिव्य चक्षुसे उस पुद्गलको देखता है।—वह देखता है—यह पुद्गल हिंसक • मिथ्या दृष्टि था, वह ( अब ) काया छोड़ मरनेके बाद • नरकमें उत्पन्न हुआ है। वह ( समाधि-प्राप्त पुरुष ) ऐसे कहता है—‘पाप कर्म हैं, दुश्चरित ( = पाप कर्म ) का विपाक भी है। और हमने ( ऐसे ) पुद्गलको देखा है—कोई पुरुष यहाँ हिंसक • मिथ्या-दृष्टि था, वह काया छोड़ मरनेके बाद • नरकमें उत्पन्न हुआ। वह यह ( भी ) कहता है—‘जो कोई हिंसक • मिथ्या-दृष्टि होता है, वह सारे ही • मरने के बाद • नरकमें उत्पन्न होते हैं। जो ऐसे जानते हैं, वही ठीक जानते हैं। जो अन्यथा जानते हैं, उनका ज्ञान मिथ्या है। इस प्रकार उसे जो स्वयं ज्ञान, स्वयं दृष्टि, स्वयं विदित है, उसे वह हृदयसे पकड़ कर, आग्रह करके आग्रहके साथ उसका व्यवहार करता है—यही सच है, और सब मिथ्या ( = मोघ ) है।

( २ ) “और यहाँ, आनन्द ! कोई भ्रमण या ब्राह्मण • उद्योग • से मुक्त हो • चित्तकी समाधिके कारण • दिव्य-चक्षुसे • देखता है—यह पुद्गल हिंसक • मिथ्या दृष्टि था, वह अब • मरनेके बाद • स्वर्गलोकमें उत्पन्न हुआ है। वह ऐसा कहता है—‘नहीं है पापकर्म, नहीं है दुश्चरित का विपाक’; हमने ऐसे पुद्गलको देखा है—स्वर्गलोकमें उत्पन्न हुआ है। वह ऐसा कहता है—‘जो ( कोई ) हिंसक • मिथ्या-दृष्टि होता है, वह सभी • मरनेके बाद • स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है। जो ऐसा जानते हैं, वही ठीक जानते हैं • और सब मिथ्या है।

( ३ ) “और यहाँ, आनन्द ! • दिव्य-चक्षुसे • देखता है—यह पुद्गल अ-हिंसक • सम्यग्-दृष्टि था, वह ( अब ) • मरनेके बाद • स्वर्गलोकमें उत्पन्न हुआ है। वह ऐसा कहता है—‘है पुण्य-कर्म, है सुचरितका विपाक; हमने ऐसे पुद्गल को देखा है—• स्वर्गलोकमें उत्पन्न हुआ है वह ऐसा कहता है—‘जो ( कोई ) अ-हिंसक • सम्यग्-दृष्टि होता है, वह सभी • मरनेके बाद • स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है। जो ऐसा जानते हैं, वही ठीक जानते हैं • और सब मिथ्या है।

( ४ ) “और यहाँ, आनन्द ! • दिव्य-चक्षुसे • देखता है—यह पुद्गल अ-हिंसक • सम्यग्-दृष्टि था, वह ( अब ) • मरनेके बाद • नरकमें उत्पन्न हुआ है। वह ऐसा कहता है—‘नहीं है पुण्य-कर्म, नहीं है सुचरितका विपाक; हमने ऐसे पुद्गलको देखा है—• नरकमें उत्पन्न हुआ है—वह ऐसा कहता है—‘जो ( कोई ) अ-हिंसक • सम्यग्-दृष्टि होता है, वह सभी • मरनेके बाद • नरकमें उत्पन्न होता है। जो ऐसा जानते हैं, वही ठीक जानते हैं • और सब मिथ्या है।

( ५ ) “यहाँ, आनन्द ! जो भ्रमण या ब्राह्मण यह कहता है—‘पाप कर्म हैं, दुश्चरितका विपाक है’—उसकी इस बातसे मैं सहमत हूँ। और जो कि वह यह कहता है—‘मैंने ऐसा पुद्गल देखा है; • हिंसक • मिथ्या दृष्टि था, वह ( अब ) स्वर्गलोकमें उत्पन्न हुआ। •—जो • मिथ्यादृष्टि होता है, वह सभी • मरनेके बाद • नरकमें उत्पन्न होता है’—उसकी इस बातसे मैं सहमत नहीं हूँ। और जो वह यह कहता है—‘जो ऐसा जानते हैं, वही ठीक जानते हैं, जो अन्यथा जानते हैं, उनका ज्ञान मिथ्या है’—उसकी इस बातसे भी मैं सहमत नहीं। और जो कि—‘जो उसे स्वयं ज्ञात • वह • आग्रहके साथ उसका व्यवहार करता है—यही सच है, और सब मिथ्या’—उसकी इस बातसे भी मैं सहमत नहीं। तो किस हेतु ?—आनन्द ! महाकर्म-विभाग



( = कर्मके फलके विभाजन करने ) के विषयमें तथागतका ज्ञान दूसरी तरह है ।

( २ ) “वहाँ, आनन्द ! जो वह अमण या ब्राह्मण यह कहता है—‘नहीं है पाप कर्म ०, नहीं है सुचरितका विपाक’—उसको इस बातसे मैं सहमत नहीं । और जो कि वह यह कहता है—‘हमने ऐसे पुद्गलको देखा है ० स्वर्गलोकमें उत्पन्न हुआ है’—० मैं सहमत नहीं । ०—जो ० मिथ्यादृष्टि होता है, वह सभी ० मरनेके बाद ० स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है’—० सहमत नहीं । और जो कि वह यह कहता है—‘जो ऐसा जानते हैं, वही ठीक जानते हैं, जो अन्यथा जानते हैं, उनका ज्ञान मिथ्या है’—० मैं सहमत नहीं । और जो कि—‘जो उसे स्वयं ज्ञात ० वह आग्रहके साथ उसका व्यवहार करता है—‘यही सच है, और सब मिथ्या’—उसकी इस बात से भी मैं सहमत नहीं । सो किस हेतु ?—आनन्द ! महाकर्म-विभंगके विषयमें तथागतका ज्ञान दूसरी तरह होता है ।

( ३ ) “वहाँ, आनन्द ! जो वह अमण या ब्राह्मण यह कहता है—‘हैं पुण्य कर्म, हैं सुचरित का विपाक’—उसकी इस बातसे मैं सहमत हूँ । और जो कि वह यह कहता है—‘हमने ऐसे पुद्गल को देखा है ० स्वर्गलोक में उत्पन्न हुआ है’—० मैं सहमत हूँ । ०—जो ० सम्यग्-दृष्टि होता है, वह सभी ० मरनेके बाद ० स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है’—० मैं सहमत हूँ । जो कि वह यह कहता है—‘जो ऐसा जानते हैं, वही ठीक जानते हैं, जो अन्यथा जानते हैं, उनका ज्ञान मिथ्या है’—० मैं सहमत नहीं । और जो कि—‘जो उसे स्वयं ज्ञात ० वह आग्रह के साथ उसका व्यवहार करता है—‘यही सच है, और सब मिथ्या’—उसकी इस बातसे भी मैं सहमत नहीं । सो किस हेतु ?—आनन्द ! महाकर्म-विभंगके विषयमें तथागतका ज्ञान दूसरी तरह है ।

( ४ ) “वहाँ, आनन्द ! जो वह अमण या ब्राह्मण यह कहता है—‘नहीं हैं पुण्य कर्म, नहीं हैं सुचरितका विपाक’—० मैं सहमत नहीं हूँ । ०—‘हमने ऐसे पुद्गलको देखा है ० नरक में उत्पन्न हुआ है’—० मैं सहमत नहीं हूँ । ०—जो ० सम्यग्-दृष्टि होता है, वह सभी ० मरनेके बाद ० नरकमें उत्पन्न होता है’—० मैं सहमत नहीं । ०—‘जो ऐसा जानते हैं, वही ठीक जानते हैं, जो अन्यथा जानते हैं, उनका ज्ञान मिथ्या है’—० मैं सहमत नहीं । और जो कि—‘जो उसे स्वयं ज्ञात ० वह आग्रहके साथ उसका व्यवहार करता है—‘यही सच है, और सब मिथ्या’—० मैं सहमत नहीं । सो किस हेतु ?—आनन्द ! महाकर्म-विभंगके विषयमें तथागतका ज्ञान दूसरी तरह है ।

( १ ) “आनन्द ! जो वह पुद्गल हिंसक ० मिथ्यादृष्टि होता है, ० मरनेके बाद ० नरकमें उत्पन्न होता है; तो उस दुःखवेदनीय ( = जिसका अनुभव दुःखमय होगा ) पाप कर्मको उसने पहिले ही कर लिया होता है; या ० पीछे कर लिया होता है; या मरणकालमें उसने मिथ्यादृष्टि ग्रहण = समाधिन्न की होती है; इसलिये वह ० मरनेके बाद ० नरकमें उत्पन्न होता है । और जो कि वह वहाँ हिंसक ० मिथ्यादृष्टि होता है, उसका विपाक वह ( या तो ) इसी जन्ममें भोग लेता है, या उत्पन्न होकर दूसरी बार ।

( २ ) “आनन्द ! जो वह पुद्गल हिंसक ० मिथ्यादृष्टि होता है, ० मरनेके बाद ० स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है; तो उस सुखवेदनीय पुण्यकर्मको उसने पहिले ही कर लिया होता है, या ० पीछे कर लिया होता है; या मरणकालमें उसने सम्यग्-दृष्टि ग्रहण ० की होती है; इसलिये ० मरनेके बाद ० स्वर्गलोक में उत्पन्न होता है । और जो कि वह वहाँ हिंसक ० मिथ्यादृष्टि होता है, उसका विपाक वह ( या तो ) इसी जन्ममें भोग लेता है, या उत्पन्न होकर दूसरी बार भोगेगा ।

( ३ ) "आनन्द ! जो वह पुद्गल अहिंसक ० सम्बन्ध-रहित होता है, ० मरनेके बाद ० स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है; तो ० पुण्यकर्मको उसने पहिले ही कर लिया होता है, या ० पीछे कर लिया होता है, या मरणकालमें उसने सम्बन्ध-रहित ग्रहण ० की होती है; इसलिये ० मरनेके बाद ० स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है । और जो कि वह वहाँ अ-हिंसक ० सम्बन्ध-रहित होता है, उसका विपाक वह ( या तो ) इसी जन्ममें भोगता है, या उत्पन्न होकर दूसरी पार ।

( ४ ) "आनन्द ! जो वह पुद्गल अहिंसक ० सम्बन्ध-रहित होता है, ० मरनेके बाद ० तरकमें उत्पन्न होता है; तो ० पापकर्मको उसने पहिले ही कर लिया होता है, या ० पीछे कर लिया होता है; या मरणकालमें उसने मिथ्या-रहित ग्रहण ० की होती है; इसलिये ० मरनेके बाद ० तरकमें उत्पन्न होता है । और जो कि वह वहाँ अ-हिंसक ० सम्बन्ध-रहित होता है, उसका विपाक वह ( या तो ) इसी जन्ममें भोग लेता है, या उत्पन्न होकर दूसरी पार ।

"इस प्रकार, आनन्द ! ( १ ) अ-भय्य-आमास ( बुरेको तथा दिक्काई पकनेवाले ) अ-भय्य ( = बुरे, पाप ) कर्म हैं; ( २ ) भय्यामास भी अ-भय्य कर्म हैं; ( ३ ) भय्यामास भी भय्य कर्म हैं; ( ४ ) अ-भय्यामास भी भय्यकर्म हैं ।"

भगवान् ने यह कहा, सन्तुष्ट हो आशुप्मान् आनन्द ने भगवान् के भाषणको अभिनन्दित किया ।



## १३७—सञ्जायतन-विभंग-सुत्तन्त ( ३।४।७ )

छः आयतन । कामना और निष्कामना । स्मृति-प्रस्थान

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् ध्यावस्थीमें अनाथपिट्टिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

वहाँ, भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“अवन्त !” कह उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! तुम्हें सञ्जायतन-विभंग (= छः आयतनोंका विभाग ) उपदेशता हूँ, उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा, मन्ते !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! छः आध्यात्मिक ( शरीरके भीतरके ) आयतनोंको जानना चाहिये, छः बाह्य आयतनोंको जानना चाहिये । छः विज्ञान-कार्योंको जानना चाहिये । छः स्पर्श-कार्योंको जानना चाहिये । अठारह मनोपविचारों (= मन-उपविचारों )का जानना चाहिये । उत्तम सप्तपदोंको जानना चाहिये । वहाँ—‘इसके द्वारा इसे ज्ञावो’ । तीन स्मृति-प्रस्थान, जिनमें आर्य ० ( सुप्र, मोक्षभागी पुरुष ) सेवन करते हैं, जिनमें सेवन करते आर्य शास्ता, राण (= अनुयायि-समुदाय )को अनुज्ञासन (= उपदेश ) कर सकता है । वह ( ऐसा शास्ता ) गुम्पाचार्यों<sup>१</sup>में अनुपम पुरुष-दम्ब-सारथी ( पुरुषोंको विनय सिखानेवाला चातुक्-सवार ) कहा जाता है ।

“यह सञ्जायतन-विभंगका उद्देश ( प्रतिपाद्य विषयोंका नाम गिनना ) है ।

“जो यह कहा—‘छः आध्यात्मिक आयतनों (= इन्द्रियोंको ) जानना चाहिये’—यह किसके द्वारेमें कहा ?—( १ ) चक्षु-आयतन, ( २ ) श्रोत्र-आयतन, ( ३ ) घ्राण-आयतन, ( ४ ) जिह्वा-आयतन, ( ५ ) काय-आयतन, और ( ६ ) मन-आयतन, ० वह इन्हींके द्वारेमें कहा । जो यह कहा—‘छः बाह्य आयतनों (= विषयों )को जानना चाहिये’—यह किसके द्वारेमें कहा ?—( १ ) रूप-आयतन, ( २ ) शब्द ०, ( ३ ) गंध ०, ( ४ ) रस ०, ( ५ ) स्पृष्ट्य ०, और ( ६ ) धर्म-आयतन । ० वह इन्हींके द्वारेमें कहा । जो यह कहा—‘छः विज्ञान (= इन्द्रिय-विषय के योगसे प्राप्त ज्ञान ) कार्योंको जानना चाहिये’—यह किसके द्वारेमें कहा ?—( १ ) चक्षु-विज्ञान, ( २ ) श्रोत्र ०, ( ३ ) घ्राण ०, ( ४ ) जिह्वा ०, ( ५ ) काय ०, और ( ६ ) मनो-विज्ञान । ० वह इन्हींके द्वारेमें कहा । जो यह कहा—‘छः स्पर्श-कार्योंको जानना

<sup>१</sup> इन्द्रिय और विषयके संपर्कको स्पर्श या संस्पर्श कहते हैं ।

<sup>२</sup> बाइलीको चक्रानेमें पवित्र ।

चाहिये'—यह किसके धारमें कहा ?—( १ ) चक्षुः-संस्पर्श, ( २ ) श्रोत्र ०, ( ३ ) घ्राण ०, ( ४ ) जिह्वा ०, ( ५ ) काय ०, और ( ६ ) मनः-संस्पर्श ० । वह इन्हींके धारमें कहा । जो यह कहा—'अठारह मनोप विचारों' को जानना चाहिये'—यह किसके धारमें कहा ?—( १ ) चक्षुसे रूपको देखकर रूपको सौमनस्य-स्थानीय<sup>१</sup> उपविचारता (= विचारता) है; ( २ ) श्रोत्रमनस्य<sup>२</sup> स्थानीय उपविचारता है; ( ३ ) उपेक्षा<sup>३</sup> स्थानीय उपविचारता है । ( ४-६ ) श्रोत्रसे शब्दको सुनकर ० । ( ७-९ ) घ्राणसे गंधको सूँघ कर ० । ( १०-१२ ) जिह्वासे रसको चखकर ० । ( १३-१५ ) काया से स्पर्शको छू कर ० । ( १६-१८ ) मनसे धर्मोंको जानकर ० । इस प्रकार छः सौमनस्यके उप-विचार, छः दौर्मनस्यके उपविचार, और छः उपेक्षाके उपविचार—इन अठारह मनोपविचारोंको जानना चाहिये—यह जो कहा, वह इन्हींके धारमें कहा । "जो यह कहा—'छत्तीस सप्तपदोंको जानना चाहिये'—यह किसके धारमें कहा ? ( १-६ ) गेय ( लोभ ) सम्यन्धी सौमनस्य, ( ७-१२ ) निष्कामता संबंधी सौमनस्य, ( १३-१८ ) छः गेय-सम्यन्धी दौर्मनस्य, ( १९-२४ ) छः निष्कामता संबंधी-दौर्मनस्य, ( २५-३० ) छः गेय संबंधी उपेक्षा, ( ३१-३६ ) छः निष्कामता-संबंधी उपेक्षा ।

"कौन हैं गेय-संबंधी सौमनस्य ?—( १ ) इष्ट = कान्त = भवाप = भवोरम लोकाभिप (= लौकिक भोग )से संबद्ध चक्षु (- द्वारा ) विशेष रूपोंके लाभको लाभके तौरपर समझते, या अतीत = निरुद्ध (= नष्ट ), विपरिणत (= विकार-प्राप्त ) ( ० रूपोंके ) पहिले प्राप्त लाभको; लाभके तौरपर स्मरण करते । सौमनस्य उत्पन्न होता है । जो इस प्रकारका सौमनस्य है; वह गेय-संबंधी (= गेय-सिद्ध, गेय-संबद्ध ) सौमनस्य कहा जाता है । ( २ ) ० श्रोत्र-विशेष शब्दोंके लाभको ० । ( ३ ) ० घ्राण-विशेष गंधोंके लाभको ० । ( ४ ) ० जिह्वा-विशेष रसोंके लाभको ० । ( ५ ) ० काय-विशेष स्पर्शोंके लाभको ० । ( ६ ) ० मनो-विशेष धर्मोंके लाभको ० । यह कहा जाता है गेय संबंधी ( गेय-सिद्ध ) सौमनस्य । यह छः गेय-संबंधी सौमनस्य हैं ।

"क्या हैं छः निष्कामता संबंधी सौमनस्य ?—( ७ ) रूपोंकी अनित्यता, विपरिणाम, निरोध, विरागको जानकर—( जो ) पूर्व ( काल )के रूप थे, और जो इस समय हैं, वह सभी रूप अनित्य, दुःख, विपरिणाम धर्मा (= चिह्नित होनेवाले ) हैं—इस प्रकार इसे अच्छी तरह प्रज्ञाये देखते सौमनस्य उत्पन्न होता है । जो इस प्रकारका सौमनस्य है; वह निष्कामता-संबंधी (= नेचल-मन-सिद्ध ) सौमनस्य कहा जाता है । ( ८ ) शब्दोंकी अनित्यता ० ( ९ ) गंधोंकी अनित्यता ० । ( १० ) रसोंकी अनित्यता ० । ( ११ ) स्पर्शोंकी अनित्यता ० । ( १२ ) धर्मोंकी अनित्यता ० । यह कहा जाता है, निष्कामता-संबंधी सौमनस्य ।—यह छः निष्कामता-संबंधी सौमनस्य हैं ।

"क्या हैं, छः गेय-संबंधी दौर्मनस्य ?—( १३ ) इष्ट ० रूपोंके अलाभको अलाभके तौरपर समझते, या अतीत ० ( ० रूपोंके ) पहिले अलाभको अ-लाभके तौरपर स्मरण करते दौर्मनस्य (= खेद ) उत्पन्न होता है । जो इस प्रकारका दौर्मनस्य है; वह गेय-संबंधी दौर्मनस्य कहा जाता है । ( १४ ) इष्ट ० शब्दोंके अलाभको ० । ( १५ ) इष्ट ० गंधोंके अलाभको ० । ( १६ ) इष्ट ० रसोंके अलाभको ० । ( १७ ) इष्ट ० स्पर्शोंके अ-लाभको ० । ( १८ ) इष्ट ० धर्मोंके अ-लाभको ० । यह कहा जाता है, गेय-संबंधी दौर्मनस्य ।—यह छः गेय-संबंधी दौर्मनस्य हैं ।

<sup>१</sup> सौमनस्य आदि लानेवाले अनुभवपर मनकी क्रिया ।

<sup>२</sup> जिस स्थानसे सौमनस्य (= आनंदसे मिश्रित मनकी अवस्था ) प्राप्त होता है ।

<sup>३</sup> दुःखमय अनुभवसे मनकी अवस्था ।

<sup>४</sup> न. दुःखमय न दुःखमय अनुभवसे मनकी अवस्था ।



“क्या है, छः निष्कामता-संबंधी दीर्घमनस्य ?—( १९ ) रूपोंकी अनित्यता ० को जान कर ० अच्छी तरह प्रज्ञासे देख, अनुपम विमोक्षोंमें स्पृहा उपस्थापित करता है—‘अहो ! कब मैं उस अवस्थाको ( = भावतन ) को प्राप्त हो विहरूँगा, जिस भावतनको प्राप्त कर आज कार्य ( काम ) विहर रहे हैं’—इस प्रकार अनुपम विमोक्षोंमें स्पृहा उपस्थापित करते, स्पृहाके कारण दीर्घमनस्य ( = संवद ) उत्पन्न होता है । जो इस प्रकारका दीर्घमनस्य है, यह कहा जाता है, निष्कामता संबंधी दीर्घमनस्य । ( २० ) शब्दोंकी अनित्यता ० । ( २१ ) गंधोंकी अनित्यता ० । ( २२ ) रसोंकी अनित्यता ० । ( २३ ) रूपरसगंधोंकी अनित्यता ० । ( २४ ) धर्मोंकी अनित्यता ० । यह कहा जाता है, निष्कामता-संबंधी दीर्घमनस्य ।—यह छः निष्कामता-संबंधी दीर्घमनस्य हैं ।

“क्या है, छः गेघ-संबद्ध उपेक्षाएँ ?—( २५ ) मृदु, मन्द, पुष्पजन ( = अनादी ), यक्ष, ( कर्म- ) विपाकको-न-जोते, दुष्परिणाम-अ-दर्शी, भय, अनादी-बाह्यको चक्षुसे रूप देख कर उपेक्षा उत्पन्न होती है । जो इस प्रकारकी उपेक्षा है, यह रूपको ( कालान्तरमें ) अतिक्रमण नहीं कर सकती; इस लिये यह उपेक्षा गेघ-संबद्ध कही जाती है । ( २६ ) ० श्रोत्रसे शब्द ० । ( २७ ) ० ज्ञानसे गंध ० । ( २८ ) ० जिह्वासे रस ० । ( २९ ) ० कायसे रूपरस ० । ( ३० ) ० मनसे धर्म ० इस लिये यह उपेक्षा गेघ-संबद्ध कही जाती है । यह छः गेघ-संबद्ध उपेक्षाएँ हैं ।

“क्या है, छः निष्कामता-संबद्ध उपेक्षाएँ ?—( ३१ ) रूपोंकी अनित्यता ० को जान कर ० अच्छी तरह प्रज्ञासे देखते उपेक्षा उत्पन्न होती है । जो इस प्रकारकी उपेक्षा है, यह ( निष्कामता- ) धर्मोंकी अतिक्रमण नहीं करती; इस लिये यह उपेक्षा निष्कामता-संबद्ध कही जाती है । ( ३२ ) शब्दोंकी ० । ( ३३ ) गंधोंकी ० । ( ३४ ) रसोंकी ० । ( ३५ ) रूपरसगंधोंकी ० । ( ३६ ) धर्मों की ० । यह छः निष्कामता-संबद्ध उपेक्षाएँ हैं ।

“यह जो कहा—‘छत्तीस सस्यपदोंको जानना चाहिये’—यह इन्हींके लिये कहा ।

“यह जो कहा—‘इसके द्वारा इसे छोड़ो’ यह किसके बारेमें कहा ?—वहाँ भिक्षुओ ! जो छः निष्कामता-संबद्ध सौमनस्य हैं, उनके द्वारा, उनको लेकर, जो वह छः गेघ-संबद्ध सौमनस्य हैं, उन्हें छोड़ो, उन्हें अतिक्रमण करो । इस प्रकार उनका प्रहाण होता है, इस प्रकार उनका अतिक्रमण होता है । वहाँ, भिक्षुओ ! जो छः निष्कामता-संबद्ध दीर्घमनस्य हैं, उनके द्वारा, उनको लेकर, जो वह छः गेघ-संबद्ध दीर्घमनस्य हैं, उन्हें छोड़ो, उन्हें अतिक्रमण करो । ० । वहाँ, भिक्षुओ ! जो छः निष्कामता-संबद्ध उपेक्षाएँ हैं, उनके द्वारा, उनको लेकर, जो वह छः गेघ-संबद्ध उपेक्षाएँ हैं, उन्हें छोड़ो, उन्हें अतिक्रमण करो । ० । वहाँ भिक्षुओ ! जो छः निष्कामता-संबद्ध सौमनस्य हैं, उनके द्वारा, उनको लेकर, जो वह छः निष्कामता-संबद्ध दीर्घमनस्य हैं, उन्हें छोड़ो, उन्हें अतिक्रमण करो । ० । वहाँ, भिक्षुओ ! जो छः निष्कामता-संबद्ध उपेक्षाएँ हैं, उनके द्वारा, उनको लेकर, जो वह छः निष्कामता-संबद्ध सौमनस्य हैं, उन्हें छोड़ो, उन्हें अतिक्रमण करो । ० । भिक्षुओ ! उपेक्षा नानार्थ है, नाना अर्थोंसे संबद्ध है । उपेक्षा एकार्था है । एक अर्थसे संबद्ध है । कौन है, भिक्षुओ ! उपेक्षा नानार्था, नाना अर्थोंसे संबद्ध ?—हे भिक्षुओ ! उपेक्षा रूपोंमें, है शब्दोंमें, है गन्धोंमें, है रसोंमें, है रूपरसगंधोंमें । भिक्षुओ ! यह उपेक्षा नानार्था है, नाना अर्थोंसे संबद्ध है । कौन है, भिक्षुओ ! उपेक्षा एकार्था, एक अर्थसे संबद्ध ?—हे भिक्षुओ ! उपेक्षा आकाशानन्त्यायतनसे सम्बद्ध ; ० विज्ञानानन्त्यायतन ० ; ० आकिंचन्यायतन ० ; ० नैव-संज्ञा-वासंशयतनसे संबद्ध । भिक्षुओ ! यह उपेक्षा एकार्था है, एक अर्थसे संबद्ध । वहाँ, भिक्षुओ ! जो उपेक्षा एकार्था ० है, उसके द्वारा उसको लेकर, जो वह उपेक्षा नानार्था ० है, उसे छोड़ो, उसे अतिक्रमण करो । इस प्रकार इसका प्रहाण होता है, इस प्रकार इसका अतिक्रमण होता है । अ-तन्मयताके द्वारा, अ-तन्मयताको लेकर,

मिथुनो! जो यह एकाकी ० उपेक्षा है, उसे छोड़ो, उसे अतिक्रमण करो। इस प्रकार इसका ग्रहाण ० अतिक्रमण होता है। मिथुनो! यह जो कहा—'इसके द्वारा इसे छोड़ो'—यह इसीके बारेमें कहा।

“यह जो कहा—‘तीन स्मृति-प्रस्थान, जिन्हें आर्य सेवन करते हैं, जिन्हें सेवन करते आर्य शास्त्रा गणका अनुशासन कर सकता है’—यह किसके बारेमें ( किस लिये ) कहा ?— ( १ ) यहाँ मिथुनो! अनुक्रमक, हितैषी शास्त्रा अनुकम्पा करके आशकों ( = शिष्यों ) को धर्म उपदेशते हैं—‘यह तुम्हारे हितके लिये है, यह तुम्हारे सुखके लिये है’। उसे आवश्यक नहीं सुनना चाहते, नहीं कात देते, अन्वयसे ( हटाकर ) चित्तको ( उसमें ) उपस्थित नहीं करते, और शास्त्राके शासन ( = उपदेश ) को अतिक्रमण कर वर्तते हैं। यहाँ मिथुनो! तथ्यागत असंतुष्ट नहीं होते, न असन्तोषको अनुभव करते हैं। स्मृति-सम्प्रजन्यके साथ अनासक्त हो विहरते ( = रहते ) हैं। मिथुनो! यह प्रथम स्मृति-प्रस्थान कहा जाता है, जिसे कि आर्य सेवन करते हैं ० अनुशासन कर सकता है। ( २ ) और फिर, मिथुनो! ० शास्त्रा ० उपदेशते हैं—०। कोई कोई आवश्यक उसे नहीं सुनना चाहते हैं ० शास्त्राके शासनको अतिक्रमण कर वर्तते हैं। कोई कोई आवश्यक उसे सुनना चाहते हैं ० शास्त्राके शासनको अतिक्रमण नहीं करते। यहाँ, मिथुनो! तथ्यागत न असंतुष्ट होते हैं, न असन्तोषको अनुभव करते हैं, और नहीं तथ्यागत सुख होते हैं, सुखी अनुभव करते हैं। उन दोनों ( सन्तोष अ-सन्तोष ) को छोड़ कर, तथ्यागत उपेक्षा हो स्मृति-सम्प्रजन्यके साथ विहरते हैं। मिथुनो! यह द्वितीय स्मृति प्रस्थान कहा जाता है, जिसे कि आर्य सेवन करते हैं ० अनुशासन करते हैं। ( ३ ) और फिर, मिथुनो! ० शास्त्रा ० उपदेशते हैं—०। आवश्यक उसे सुनना चाहते हैं ० शास्त्राके शासनको अतिक्रमण नहीं करते। यहाँ, तथ्यागत संतुष्ट होते हैं, सन्तोष अनुभव करते हैं, स्मृति-सम्प्रजन्यके साथ अनासक्त हो विहरते हैं! मिथुनो! यह तृतीय स्मृति प्रस्थान कहा जाता है, जिसे कि आर्य सेवन करते हैं ० अनुशासन कर सकता है। ‘तीन स्मृति-प्रस्थान ०’—यह जो कहा, सो इसीके लिये कहा।

“यह जो कहा—‘यह युन्याचार्योंमें अनुपम पुरुष-दम्प-सारथी कहा जाता है’—यह किसके बारेमें ( किसलिये ) कहा ?—मिथुनो! हस्ति दम्पक ( = महावत ) द्वारा चलाया सींषा हाथी एक ही दिशाकी ओर धावता है—पूर्व या पश्चिम, या उत्तर या दक्षिण। मिथुनो! अश्वदम्पक ( = सवार ) से चलाया सींषा अश्व एक ही दिशाको धावता है ०। मिथुनो! गोदम्पकसे चलाया सींषा बैल एक ही दिशाको धावता है ०। मिथुनो! तथ्यागत अश्व सम्बन्ध-संतुष्ट द्वारा चलाया पुरुष-दम्प ( = सींषा पुरुष ) आठों दिशाओंमें धावता है—( १ ) रूपी रूपोंको देखता है यह प्रथम दिशा है ( २ ) भीतर ( = अध्यात्म ) अ-रूप-संज्ञी ( = रूपका ब्याल न रहनेवाला ) बाहर रूपोंको देखता है, यह दूसरी दिशा है। ( ३ ) शुभ ( = अनुकूल ) से ही अधिमुक्त ( = मुक्त ) होता है, यह तीसरी दिशा है। ( ४ ) रूपसंज्ञाके सर्वथा छोड़नेसे ० १ आकाशा-मन्त्रायायतनको प्राप्त हो विहरता है; यह चौथी दिशा है। ( ५ ) ० १ विज्ञानानन्त्यायतनको ०। ( ६ ) ० १ आग्निधन्यायतनको ०। ( ७ ) ० नैवसंज्ञानासंज्ञायतनको ०। ( ८ ) नैवसंज्ञाना-संज्ञायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर संज्ञा-वेदित-निरोधको प्राप्त हो विहरता है; यह आठवीं दिशा है। मिथुनो! तथ्यागत ० द्वारा चलाया पुरुष-दम्प आठों दिशाको धावता है। यह जो कहा—‘यह युन्याचार्योंमें अनुपम पुरुषदम्प-सारथी कहा जाता है’—यह इसीलिये कहा।”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन मिथुनोंमें भगवान्के भाषणको अभिर्निदिष्ट किया।



## १३८—उद्देश-विभंग-सुत्तन्त ( ३।४।८ )

इन्द्रिय-संयम । ख्यान । अ-परिश्रम

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् आश्वस्तोमें अलाय-पिण्डिकके आराम जैनघनमें विहार करते थे ।

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भदन्त !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! उद्देश-विभंग ( = उद्देश-विभंग = व्याख्येय विषयोंके मामोंके विभाग ) को तुम्हें उपदेष्टा हूँ; इसे सुनो अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा, भन्ते !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! भिक्षुको वैसे वैसे उपपरीक्षण कहना चाहिये, जैसे जैसे उपपरीक्षण करनेसे उसका विज्ञान ( = चित्त ) बाहर विक्षिप्त = विमृष्ट न हो, और भीतर ( = अध्यात्म ) भी अ-संस्थित होने के कारण परित्यक्त न हो । भिक्षुओ ! विज्ञानके बाहर विक्षिप्त = विमृष्ट न होने से, और अपने भीतर अ-संस्थित होने तथा उपादान ( = ग्रहण ), न करनेके कारण परित्यक्त न होने से, उसके लिये, अनेक जन्म-जरा मरण ( रूपों ) दुःखका हेतु नहीं रह जाता ।”

भगवान्ने यह कहा; यह कहकर सुगत आसनसे उठकर विहारमें चले गये । तब भगवान्के चले जानेके थोड़े ही समय बाद उन भिक्षुओंको यह हुआ—“० <sup>१</sup> आबुस कात्यायन ! ० <sup>१</sup> भगवान् यह संक्षेपसे उद्देश कहकर ० <sup>१</sup> विहारमें चले गये—‘वैसे वैसे उपपरीक्षण करना चाहिये ० दुःखका हेतु नहीं रह जाता ।’ तब हमको यह हुआ—० <sup>१</sup> विभाग करें आबुध्मान् महाकात्यायन ।”

“जैसे, आबुसो ! ० <sup>१</sup>”

“अच्छा आबुस”—कह उन भिक्षुओंने आबुध्मान् महाकात्यायनको उत्तर दिया ।

आबुध्मान् महाकात्यायनने यह कहा—“आबुसो ! जो भगवान् यह संक्षेपसे उद्देश कहकर ० <sup>१</sup> विहारमें चले गये—‘वैसे वैसे उपपरीक्षण करना चाहिये ० दुःखका हेतु ( = समुदय ) नहीं रह जाता । आबुसो ! विचारसे अविभाजित भगवान्के इस संक्षिप्त भाषणका अर्थ मैं इस प्रकार विचारसे जानता हूँ । आबुसो ! कैसे विज्ञानको बाहर विक्षिप्त = विमृष्ट कहा जाता है ?—यहाँ, आबुसो ! वस्तुसे रूप देकर भिक्षु का विज्ञान ( = चित्त ) रूपके निमित्त ( = किम, रंग आदि ) या अनुसमरण करनेवाला होता है । रूपके निमित्तके स्वादमें प्रथित, ० बद्ध, ० संयोजनसे

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ ५४६-४७ ।

( = संयोजनसे ) संयोजित विज्ञान 'बाह्य विक्षिप्त' = विमृष्ट कहा जाता है । श्रोत्रसे शब्द सुनकर ० । घ्राणसे गंध सूँघकर ० । जिह्वासे रस चखकर ० । कायसे स्पर्शव्य छूकर ० । मनसे धर्म जानकर ० ।—इस प्रकार, आबुसो ! विज्ञानको बाह्य विक्षिप्त = विमृष्ट कहा जाता है ।

"आबुसो ! कैसे विज्ञानको बाह्य अ-विक्षिप्त=अ-विमृष्ट कहा जाता है ?—यहाँ, आबुसो ! चक्षुसे रूप देखकर भिक्षुका विज्ञान रूपके निमित्तका अनुस्मरण करनेवाला नहीं होता । रूप-निमित्त के स्वादमें अग्रहित ०, ० अ-वद, ० संयोजनसे अ-संयोजित विज्ञान 'बाह्य' अ-विक्षिप्त = अ-विमृष्ट कहा जाता है । श्रोत्र ० । घ्राण ० । जिह्वा ० । काय ० । मनसे धर्म जानकर ० अनुस्मरण करने वाला नहीं होता ०, ० असंयोजित विज्ञान 'बाह्य' अ-विक्षिप्त = अ-विमृष्ट कहा जाता है ।—इस प्रकार, आबुसो ! विज्ञानको बाह्य अ-विक्षिप्त = अ-विमृष्ट कहा जाता है ।

"आबुसो ! कैसे ( विज्ञान ) 'अपने भीतर ( = अभ्यात्म ) संस्थित' कहा जाता है ? यहाँ, आबुसो ! भिक्षु कामसे विरहित ०<sup>१</sup> प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ( उस समय ) उसका विज्ञान निवेकज प्रीत-मुखको अनुस्मरण करनेवाला, निवेकज प्रीत-मुखके आस्वादसे प्रीति, ० वद, ०-संयोजनसे संयोजित चित्त 'अपने भीतर ( = अभ्यात्म ) संस्थित ( स्थित )' कहा जाता है । और फिर आबुसो ! भिक्षु वितर्क और विचारके शांत होनेपर ०<sup>२</sup> द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ( उस समय ) उसका विज्ञान समाधि-ज प्रीत-मुखको अनुस्मरण करनेवाला, ०, ०-संयोजनसे संयोजित चित्त 'अपने भीतर संस्थित' कहा जाता है । और फिर, आबुसो ! भिक्षु प्रीतिसे विरक्त हो, ०<sup>३</sup> तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ( उस समय ) उसका विज्ञान उपेक्षाका अनुस्मरण करने वाला, उपेक्षा-मुखके आस्वादसे प्रीति, ०, ० संयोजनसे संयोजित चित्त 'अपने भीतर संस्थित' कहा जाता है । और फिर, आबुसो ! भिक्षु सुख और दुःखके परित्याग से ०<sup>४</sup> चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ( उस समय ) उसका विज्ञान अदुःख-अमुखका अनुस्मरण करनेवाला, अदुःख अमुखके आस्वादसे प्रीति, ०, ०-संयोजनसे संयोजित चित्त 'अपने भीतर संस्थित' कहा जाता है । इस प्रकार आबुसो ! ( विज्ञान ) 'अपने भीतर संस्थित' कहा जाता है ।

"आबुसो ! कैसे ( विज्ञानको ) 'अपने भीतर अ-संस्थित' कहा जाता है ?—यहाँ, आबुसो ! भिक्षु ०<sup>१</sup> प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है; ( किन्तु ) उसका विज्ञान निवेकज प्रीति-मुखको न अनुस्मरण करनेवाला, ०, ०-संयोजनसे संयोजित नहीं होता । ( ऐसा ) चित्त 'अपने भीतर अ-संस्थित' कहा जाता है । और फिर ०<sup>२</sup> द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ( किन्तु ) उसका विज्ञान समाधि-ज प्रीत-मुखको न अनुस्मरण करनेवाला, ०, ०-संयोजनसे संयोजित नहीं होता । ( ऐसा ) चित्त 'अपने भीतर अ-संस्थित' कहा जाता है । और फिर ०, ०<sup>३</sup> तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ( किन्तु ) उसका विज्ञान उपेक्षाका न अनुस्मरण करनेवाला, ०, ०—संयोजनसे संयोजित नहीं होता । ० । और फिर ०, ०<sup>४</sup> चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ( किन्तु ) ० अदुःख-अमुखका न अनुस्मरण करनेवाला, ०, ०-संयोजनसे संयोजित नहीं होता । ( ऐसा ) चित्त 'अपने भीतर अ-संस्थित' कहा जाता है । इस प्रकार, आबुसो ! ( विज्ञान ) 'अपने भीतर अ-संस्थित'—कहा जाता है ।

"आबुसो ! कैसे 'उपादान ( = रागयुक्त ग्रहण ) न करनेसे परित्रास नहीं होता' ?—यहाँ आबुसो ! आर्योके दर्शनसे वंचित ०<sup>१</sup> अभुतवान् ( = अज्ञ ) पृथग्जन ( = अनाथी ) रूपको आत्माके तौरपर मानता है, या आत्माको रूपवान्, आत्मामें रूपको, या रूपमें आत्माको ( मानता है ),



उसका (माना) वह रूप विकृत होता है = अन्यथा होता है। उसके रूपके विपरिणाम (= विकार) = अन्यथाभावसे, विज्ञान भी परिवर्तित होता है। (फिर) उसे रूपके विपरिणाम = परिवर्तनसे उत्पन्न परित्रास धर्मकी उत्पत्तिसे चित्तको पकड़ कर ठहरते हैं। चित्तको पकड़नेसे (विज्ञान) त्रासयुक्त, विघात (= प्रतिहिंसा) युक्त, अपेक्षावान् होता है। अनुपादान (= अस्वीकार) परित्रासको प्राप्त होता है। वेदनाको ०। संज्ञाको ०। संस्कारको ०। विज्ञानको ० परित्रासको प्राप्त होता है।—इस प्रकार, आहुसो ! अनुपादान करनेसे परित्रास होता है।

“कैसे, आहुसो ! अनुपादान (अ-परिग्रह) करनेसे परित्रासको नहीं प्राप्त होता ?—यहाँ, आहुसो ! आपोके दर्शनको प्राप्त ०<sup>१</sup> बहुधृत आर्य भावक, रूपको आत्माके तौरपर नहीं मानता, या आत्माको रूपवान्, आत्मामें रूपको, या रूपमें आत्माको नहीं मानता। उसका वह रूप विपरिणत (= विकृत) होता है = अन्यथा भावको प्राप्त होता है। उस रूपके विपरिणाम = अन्यथा भावसे विज्ञान रूप विपरिणामी = परिवर्तन शील नहीं होता। तब उसे रूपके विपरिणाम = परिवर्तनसे उत्पन्न परित्रास धर्मकी उत्पत्तिसे चित्तके परिपादान (= पकड़ने) से (विज्ञान) त त्रासयुक्त, विघातयुक्त, अपेक्षावान् (होता है), अनुपादानसे परित्रासको नहीं प्राप्त होता। वेदनाको ० संज्ञाको ०। संस्कारको ०। विज्ञानको ० परित्रास नहीं प्राप्त होता।—इस प्रकार, आहुसो ! अनुपादान करनेसे परित्रास नहीं होता।

“आहुसो ! जो भगवान् यह संक्षेपसे उद्देश कर ०<sup>२</sup> विहारमें चले गये—‘वैसे वैसे उपपरीक्षण करना चाहिये ० बुद्धका हेतु नहीं रह जाता। आहुसो ! विस्तारसे अविभाजित भगवान्के इस संक्षिप्त भाषणका अर्थ मैं इस प्रकार विस्तारसे जानता हूँ। इच्छा हो, तो तुम आहुष्मानो ! भगवान्के पास भी जा कर इस अर्थको पूछो ०<sup>३</sup> भिक्षुजनों भगवान्से यह कहा—

“मन्ते ! भगवान् जो यह हमें ० विस्तारसे विभाग किये बिना ही आसनसे उठ कर विहार में चले गये—‘वैसे वैसे उपपरीक्षण करना चाहिये ०’ ०<sup>४</sup> हमने आहुष्मान् महाकात्यायनसे इस अर्थको पूछा ०<sup>५</sup> इन व्यंजनोंसे अर्थको विभाजित किया ०<sup>६</sup> इसे धारण करना ।”

भगवान्ने यह कहा, समुत्त हो उन भिक्षुजनों भगवान्के मापणको अभिर्नदित किया।

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ ३।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ ५४६-४७।

<sup>३</sup> देखो पृष्ठ ५४४-४६।

<sup>४</sup> देखो पृष्ठ ५४६-४७।

## १३६-अरण-विभंग-सुत्तन्त ( ३।४।६ )

समुत्तमी चर्चा

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिट्टिकके बाराम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भदन्त !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! अरण-विभंग तुम्हें उपदेशता हूँ, उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा, भन्ते !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“( १ ) हीन ( = निजृष्ट ) = आत्म, पृथग्जनिक ( = अनादियोंके ), अनार्य, अनर्थ-युक्त कामके सुखमें अनुयुक्त ( = लस ) न होना चाहिये; और नहीं दुःख, अनार्य, अनर्थयुक्त आत्म-पीडामें अनुयुक्त होना चाहिये । ( २ ) भिक्षुओ ! इन दोनों अन्तों ( = अतिसों )को न ले, तत्प्राप्तने मध्यम मार्गको खोज निकाला है, ( जो कि ) भाँख देनेवाला, क्षाम करनेवाला, उपशम-अभिज्ञ-संबोध-निर्वाणके लिये है । ( ३ ) उत्सादनको भी जाने, जय-सादनको भी जाने । उत्सादनको जान और ज-प्रसादनको जानकर, न उत्सादन करे, न ज-प्रसादन करे, धर्म हीका उपदेश करे । ( ४ ) सुख-विनिश्चयको जाने । सुख-विनिश्चयको जानकर, अपने भीतरके सुखमें अनुयुक्त होवे । ( ५ ) एकान्तमें घात ( = अववाद ) नहीं करे । सुँहपर बहुत धोसा न धोले । ( ६ ) जल्दी बिना बोले, जल्दी जल्दी न ( बोले ) । ( ७ ) देशोंकी भाषा ( = जनपद-निरुक्ति )को न सुझावे, ‘संज्ञाओंके पीछे न अतिपावन करे’—यह अरण-विभंगका उद्देश है ।

( १ ) “यह जो कहा—‘० कामके सुखमें अनुयुक्त न होना चाहिये, और नहीं ० आत्म-पीडामें अनुयुक्त होना चाहिये’—सो किसलिये कहा ?—जो काम ( = विषयभोग )के संबंधसे सुखी होनेवालेका सौमनस्यके साथ लग्न होता है, ( वह ) हीन ० अनर्थयुक्त है । यह धर्म ( = कामसुख ) दुःख, उपघात-उपायास ( = हैरानी परेशानी ) दाहसे युक्त है, ( यह ) मिथ्या-प्रतिपदा ( = झूठा मार्ग ) है । जो कामके संबंधसे सुखी होनेके सौमनस्यके अनुयोग ( = संपर्क )का अनुयोग न होना है, ( वह है ) हीन ० अनर्थ-युक्त । यह धर्म दुःख-उपघात-उपायास दाहसे रहित है, सम्यक्-प्रतिपदा ( = ठीकमार्ग ) है । जो आत्म-पीडामें लगना है, ( वह धर्म ) दुःख, अनार्य, अनर्थ-युक्त है । यह धर्म दुःख-उपघात-उपायास-दाहसे युक्त है, यह मिथ्या प्रतिपदा है । जो आत्म-पीडामें उद्योगमें योग न देना, दुःख-अनार्य, अनर्थयुक्त है । यह धर्म दुःख-उपघात-उपायास-दाहसे रहित, सम्यक् प्रतिपदा है । यह जो कहा—‘० कामके सुखमें अनुयुक्त



नहीं होना चाहिये, और नहीं ० आत्मपीडामें अनुसुक्त होना चाहा—वह इसीलिये कहा ।

( २ ) “यह जो कहा—‘इन दोनों अन्तोंको न ले, तयागतने मध्यममार्गं खोज निकाला है ०’—सो किसलिये कहा ?—यही ( वही ) आर्य-अष्टांगिक-मार्ग है, जैतेकि—सम्यग्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वचन, सम्यक्-कर्मन्त, सम्यग्-आजीव, सम्यक्-व्यायाम, सम्यक्-स्थिति, ( और ) सम्यक्-समाधि । यह जो कहा—उन दोनों अन्तों ( = अतियों )को न ले तयागतने मध्यम-मार्गं खोज निकाला है ०’—सो इसीलिये कहा ।

( ३ ) “उत्सादनकोभी जाने, अ-प्रसादनको भी जाने ० धर्महीका उपदेश करे”—सो किसलिये कहा ?—कैसे, भिक्षुओ ! उत्सादना, और अ-प्रसादना होती है, किन्तु धर्मदेशना ( = धर्मका-उपदेश ) नहीं होती ?—‘जो कामके संबंधसे सुखी होने वालेका सौमनस्य ०’ परिदाहसे युक्त है, वह मिथ्याप्रतिपक्ष है—( = छटे मार्गपर आरुढ़ ) है—इस प्रकार कोई कोई दूसरेको अ-प्रसादित ( = नाराज ) करते हैं । जो कामके संबंधसे सुखी होनेवालेके सौमनस्यके अनुयोगका अनुयोग न होना ०’ सम्यक्-प्रतिपक्ष है—इस प्रकार ( कह ) कोई कोई दूसरेको उत्सादित ( = प्रसन्न ) करते हैं । जो ( पुरुष ) दुःख, अनार्य, अनर्थयुक्त आत्मपीडाके व्यापारमें लगे हुये हैं; वह सभी दुःख-उपधात-उपायास-परिदाहसे युक्त हैं, वह मिथ्या मार्गपर आरुढ़ ( = मिथ्या-प्रतिपक्ष ) है—इस प्रकार ( कह ) कोई कोई दूसरेको अ-प्रसादित ( = नाराज ) करते हैं । जो ० आत्मपीडाके व्यापारमें लगे नहीं हैं, वह सभी दुःख-उपधात-उपायास-परिदाहसे युक्त नहीं हैं, वह ठीक मार्गपर आरुढ़ हैं—इस प्रकार ( कह ) कोई कोई दूसरेको प्रसादित ( = सुख ) करते हैं । जिस किसोका भव-संयोजन ( = भवबंधन ) ग्रहीण ( = गृह ) नहीं हुआ, वह सभी दुःख-उपधात-उपायास-परिदाहसे युक्त हैं । वह मिथ्या मार्गपर आरुढ़ हैं—इस प्रकार ( कह ) कोई कोई दूसरेको अ-प्रसादित करते हैं । वह जिस किसीका भवसंयोजन ग्रहीण होगया है, वह सभी दुःख-उपधात-उपायास-परिदाहसे रहित हैं । ठीक मार्गपर आरुढ़ है—इस प्रकार ( कह ) कोई कोई दूसरेको उत्सादित ( = प्रसन्न ) करते हैं ।—इस प्रकार भिक्षुओ ! उत्सादना और अ-प्रसादना ( = नाराज करना ) होती है, किन्तु धर्मदेशना नहीं होती ।

“कैसे भिक्षुओ ! उत्सादना और अ-प्रसादना नहीं होती, ( धर्मा ) धर्मदेशना ( होती है ) ?—जो कामके संबंधसे सुखी होनेवाले का सौमनस्य ० परिदाहसे युक्त है, वह मिथ्या मार्गपर आरुढ़ है—यह नहीं कहता । वह अनुयोग दुःख है दुःख-उपधात-उपायास-परिदाहसे युक्त है, मिथ्या मार्ग है—इस प्रकार ( कह ) दूसरेको धर्महीको उपदेशता है । जो कामके सम्बन्धसे सुखी, होन ० अनर्थयुक्त सौमनस्यके अनुयोगमें अनुसुक्त नहीं हैं, वह सभी दुःख-उपधात-उपायास-परिदाहसे रहित हैं, ठीक मार्गपर आरुढ़ है—यह नहीं कहता । ‘अनु-अनुयोग अ-दुःख है । और यह धर्म उपधात-उपायास-परिदाहसे रहित है, ठीक मार्ग है—इस प्रकार ( कह ) दूसरेको धर्मही उपदेशता है । ‘जो दुःख, अनार्य, अनर्थयुक्त आत्म-पीडाके व्यापारमें अनुसुक्त ( लग्न ) है; वह सभी दुःख-उपधात-उपायास-परिदाहसे युक्त हैं, मिथ्या-मार्ग पर आरुढ़ है—यह नहीं कहता । ( धर्मा ) अनुयोग सदुःख है, यह धर्म उपधात-उपायास-परिदाहसे युक्त है, मिथ्या मार्ग है—इस प्रकार दूसरेको धर्मही ही उपदेशता है । जो दुःख, अनार्य, अनर्थयुक्त आत्मपीडाके व्यापारमें अनुसुक्त ( = लग्न ) नहीं हैं; वह सभी दुःख-उपधात-उपायास-परिदाह-रहित हैं, ठीक मार्ग पर आरुढ़ है—यह नहीं कहता । ( धर्मा ) कहता है—अनुयोग न करना दुःख ० रहित है, ठीक

मार्ग है—इस प्रकार दूसरेको धर्म ही उपदेशता है। 'जिन किन्हींका भव-संयोजन (= भव-यन्त्रण) नष्ट नहीं हुआ, वह सभी दुःख ०—सहित है, मिथ्या मार्गपर आरुढ़ है'—यह नहीं कहता। ( वल्कि कहता है )—'भव-संयोजनके नष्ट न होनेपर भव (= जन्म मरण) भी नष्ट नहीं होता है'—इस प्रकार ० धर्महीको उपदेशता है। 'जिन किन्हींका भव-संयोजन नष्ट हो गया, वह सभी दुःख-० रहित है, ठीक मार्गपर आरुढ़ है'—यह नहीं कहता। ( वल्कि कहता है )—'भव-संयोजनके नष्ट होनेपर भव भी नष्ट हो जाता है'—इस प्रकार ० धर्महीको उपदेशता है।—इस प्रकार, भिक्षुओं ! व उत्सादना होती है, न अ-प्रसादना, ( वल्कि ) धर्म-देसना होती है। वह जो कहा—'उत्सादनाको भी जाने ०' धर्म हीका उपदेश करे'—सो इसी-लिये कहा।

( ४ ) "जो यह कहा—'सुख-विनिर्ग्रहको जाने। सुख विनिर्ग्रहको जानकर, अपने भीतर सुखमें अनुयुक्त होवे'—सो किस लिये कहा?—भिक्षुओं ! यह पाँच काम-गुण है। कौनसे पाँच ?—( १ ) इष्ट ०<sup>१</sup> बहुद्वारा विशेषरूप । ०<sup>२</sup> काय-विशेष स्पर्शव्य । भिक्षुओं ! यह पाँच कामगुण है। भिक्षुओं ! इन पाँच कामगुणोंके द्वारा जो कुछ सुख, सौमनस्य उत्पन्न होता है, वह क्या जाता है काम-सुख, भीकसुख, पृथग्जनोका सुख = अनार्य-सुख । ( वह ) न-सेवितव्य = न भावयितव्य = न बहुलीकर्तव्य, इस सुखसे भय खाना चाहिये—मैं यह कहता हूँ। यहाँ, भिक्षुओं ! भिक्षु कामोंसे विरहित ०<sup>३</sup> प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ०<sup>४</sup> द्वितीय-ध्यान को ० । ०<sup>५</sup> तृतीय ध्यानको ० । ०<sup>६</sup> चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। यह कहा जाता है, निष्कामता-सुख, प्रविवेक-सुख, उपशम-सुख, संशोधि-सुख । यह सेवितव्य = भावयितव्य, बहुली-कर्तव्य है, इस सुखसे भय नहीं खाना चाहिये—मैं यह कहता हूँ। जो यह कहा—'सुखविनिर्ग्रह को जाने ०'—सो इसीलिये कहा।

( ५ ) "यह जो कहा—'एकान्तमें घात नहीं को, सुँहपर बहुत धीमा न बोले'—सो किस लिये कहा ?—यहाँ भिक्षुओं ! जिस एकान्त-वादको अ-भूत = अ-तथ्य (= अ-सत्य ), अनर्थ-युक्त को प्राप्त जाने, उस एकान्तवादको न कहे। और जिस एकान्तवादको भूत = सत्य ( किन्तु ) अनर्थ-युक्त जाने, उस ० को भी न कहना, भिक्षुओं ! सीले। और जिस रहोवाद (= एकान्तमें कहनेकी बात ) को भूत = तथ्य, सार्यक समझे, तो उस रहोवादके कथनके लिये कालज (= काल देख कर कहनेवाला ) होना चाहिये। यहाँ भिक्षुओं ! जिस सम्युक्तके धीणवाद (= धीमें बोलनेकी बात ) को अ-भूत = अ-तथ्य, अनर्थ-युक्त समझे, तो उस ० को न कहे। जिस ० को भूत = तथ्य ( किन्तु ) अनर्थ-युक्त जाने, उस ० को भी न कहे। जिस ० को भूत = तथ्य ( और ) सार्यक जाने, उस ० के कथनके लिये कालज होना चाहिये। यह जो कहा—'एकान्तमें न कहे, सुँहपर बहुत धीमा न बोले'—सो इसीलिये कहा।

( ६ ) "जो यह कहा—'जल्दी चिन्ता बोले, जल्दी जल्दी न बोले'—सो किसलिये कहा ?—यहाँ, भिक्षुओं ! जल्दी बोलनेवालेके शरीरको भी कष्ट होता है, चित्त भी पीड़ित होता है, स्वर भी विकृत होता है, कण्ठ भी जातुर होता है, अ-विस्पष्ट (= साफ नहीं ) भी होता है, जल्दी बोलनेवालेकी बात ( दूसरोंको ) अ-विश्वस्य होती है। यहाँ, भिक्षुओं ! जल्दी जल्दी न बोलनेवालेके शरीरको भी कष्ट नहीं होता, चित्त भी पीड़ित नहीं होता, स्वर भी विकृत नहीं होता, कण्ठ भी जातुर नहीं होता, विस्पष्ट भी होता है, जल्दी जल्दी न बोलनेवालेकी बात ( दूसरोंको ) विश्वस्य

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ ५६०।<sup>२</sup> देखो पृष्ठ ५६।<sup>३</sup> देखो पृष्ठ ५५।



( = सुगम ) होती है । जो यह कहा—‘जदी बिना बोले ०’—सो इसी लिये कहा ।

( ३ ) ‘जो यह कहा—‘देशोंकी भाषाका आग्रह न करे, न संज्ञाओंके पीछे धावन करे’—सो किस लिये कहा ?—कैसे भिक्षुओ ! दीहाती भाषासे अभिनिवेश ( = आग्रह ) होता है ? और संज्ञासे अतिसार ( = बहुत धावना ) ? वहाँ भिक्षुओ ! वही ( वस्तु ) किन्हीं किन्हीं जनपदोंमें पाती भी पुकारी जाती ( = संज्ञा ) है, पक्ष भी ०, वित्त भी ०, शराव भी ०, धारोप भी ०, पोष भी ०, पिप्पीलव भी ० । इस प्रकार जैसे जैसे उन उन जनपदोंमें पुकारते हैं, वैसे वैसे स्वतासे ग्रहण कर, विद् ( = अभिनिवेश ) के साथ व्यवहार करता है—‘वही सत्य है, और सब मिथ्या’ । इस प्रकार भिक्षुओ ! जनपद-भाषामें अभिनिवेश ( = विद् ) होती है, और संज्ञा-से अतिसार ( = विलगाव ) होता है । कैसे, भिक्षुओ ! जनपद भाषामें अभिनिवेश नहीं होता, और संज्ञासे अतिसार नहीं होता ?—यहाँ, भिक्षुओ ! वही ( वस्तु ) किन्हीं जनपदोंमें पाती पुकारी जाती है, ०, पिप्पीलव भी ० । इस प्रकार जैसे जैसे इसे उन उन जनपदोंमें पुकारते हैं, ‘वह आयुष्मान् इसके बारेमें ( वह शब्द ) व्यवहृत करते हैं’—यह ( सोच ) वैसे ही वैसे व्यवहार करता है, ( किन्तु ) आग्रह बिना । इस प्रकार, भिक्षुओ ! देशोंकी भाषाओंका आग्रह नहीं होता, और न संज्ञाओंके पीछे धावन होता है । जो यह कहा—‘देशोंकी भाषाका आग्रह न करे, न संज्ञाओंके पीछे अतिधावन करे’—सो इसीलिये कहा ।

‘यहाँ, भिक्षुओ ! जो काम सम्बन्धसे सुखीके हीन ० अनर्थयुक्त सौमनस्यका अनुयोग ( = सम्बन्ध ) है, वह स-दुःख है । यह धर्म उपधात-उपायास-परिवाह-युक्त है, ( वह ) मिथ्या मार्ग है । इसलिये यह धर्म स्मरण है । वहाँ, भिक्षुओ ! जो ० हीन ० अनर्थ युक्त सौमनस्यके अनुयोगमें अनुयोग ( = सम्बन्ध ) न करता है, वह दुःख-रहित है; यह धर्म उपधात-उपायास-परिवाह-रहित है, ठीक मार्ग है । इसलिये यह धर्म अ-रण ( = दुःख रहित ) है । वहाँ, भिक्षुओ ! जो दुःख, अनार्य, अनर्थयुक्त आत्म-पीडा है, वह दुःख सहित; यह धर्म उपधात-उपायास-परिवाह-युक्त है, मिथ्या मार्ग है । इसलिये स्मरण है । वहाँ, भिक्षुओ ! जो दुःख ० अनर्थयुक्त आत्म-पीडाके अनुयोगमें अनुयोग न करना है, वह दुःख-रहित है, ० ठीक मार्ग है । इसलिये यह धर्म अ-रण है ।

‘यहाँ, भिक्षुओ ! जिस आँस देनेवाले ० मध्यम मार्ग ( = महिम्ना पटिपदा ) को सधा-गतने शीघ्र निकाला, यह धर्म दुःख रहित है, उपधात-उपायास-परिवाह-सहित है, ठीक मार्ग है । इसलिये यह धर्म अ-रण है ।

‘यहाँ, भिक्षुओ ! जो यह उत्सादन ( = सुख करना ) अ-प्रसादन ( = नाराज करना ), और धर्म देना है, यह धर्म दुःख-सहित है, ० मिथ्यामार्ग है । इसलिये यह धर्म स्मरण है ।

‘यहाँ, भिक्षुओ ! जो यह उत्सादन बिना, अ-प्रसादन बिना धर्म देना है; यह धर्म दुःख-रहित है, ० ठीक मार्ग है । इसलिये ० अ-रण है ।

‘यहाँ, भिक्षुओ ! जो यह काम-सुख, मृद-सुख, शृण्मनका सुख-अनार्यका सुख है; यह धर्म दुःख-सहित है, ० झूठा मार्ग है । इसलिये ० स्मरण है ।

‘० जो निष्कामता-सुख ० संबोधि-सुख है । यह धर्म अ-दुःख है, ० ठीक मार्ग है ० अ-रण है ।

‘० जो रहोवाद् अ-मृत = अ-तथ्य, अनर्थयुक्त है, यह धर्म दुःख-सहित है, ० मिथ्या-मार्ग है । ० स्मरण है ।

‘० जो रहोवाद् मृत = तथ्य, अनर्थयुक्त है । यह धर्म दुःख-रहित है, ० मिथ्यामार्ग है । ० स्मरण है ।

“ ० जो रहोवाद भूत = तथ्य, सार्थक है । यह धर्म दुःख-रहित है, ० ठीक मार्ग है । ० अ-रण है ।

“ ० जो संसुखमें क्षीण-वाद अभूत = अ-तथ्य, अनर्थयुक्त है । ० दुःख-सहित है, ० मिथ्या-मार्ग है । स-रण है ।

“ ० जो संसुखमें क्षीण-वाद भूत = तथ्य, अनर्थयुक्त है । ० दुःख-सहित है, ० मिथ्यामार्ग है । ० स-रण है ।

“ ० जो संसुखमें क्षीण-वाद भूत = तथ्य और सार्थक है । ० दुःख-रहित है, सवामार्ग है । ० अ-रण है ।

“ ० जो यह जल्दी करनेवालेका धोखता है ! ० दुःख-सहित है, ० मिथ्यामार्ग है । ० स-रण है ।

“ ० जो यह जल्दी न करनेवालेका धोखता है । ० दुःख-रहित है, ० ठीक मार्ग है । ० अ-रण है ।

“ ० जो यह, जनपद-भाषामें अभिनिवेश (= दुराग्रह), और संज्ञामें अतिसार (= भावना) है । ० दुःख-सहित है । ० मिथ्यामार्ग है । ० है ।

“ ० जो यह जनपद-भाषामें अभिनिवेश ( नहीं ) और संज्ञामें अतिसार नहीं । ० दुःख-रहित है, ० ठीक मार्ग है । ० अ-रण है ।

“इसलिये, मिश्रुओ ! स-रण और अ-रण धर्मोंको जानो । स-रण धर्मको जानकर, अ-रण धर्मको जानकर, 'हम अ-रण (= दुःख-रहित) प्रतिपदा (= मार्ग) पर आरुह्य हमें—इस प्रकार तुम्हें सीखना चाहिये ।

“मिश्रुओ ! सुभूति कुल-पुत्र अ-रण प्रतिपदापर आरुह्य हो ।”

भगवान् ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन मिश्रुओंने भगवान् के भाषणको अभिनन्दित किया ।



## १४०—घातु-विभंग-सुत्तन्त (३।४।१०)

घातु-विभाग । मनकी साधना

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् प्रगाथ ( देश ) में चारिका करते, जहाँ राजगृह है, वहाँ पहुँचे ।  
( और ) जहाँ भार्गव कुंभकार था, वहाँ गये । जाकर भार्गव कुंभकारसे यह बोले—

“यदि, भार्गव ! तुम्हें भारी न हो, तो मैं एक रात ( इस ) घरमें विहार (= वास ) करूँ ।”

“भन्ते ! भारी नहीं है, किन्तु यहाँ पहिलेसे जाकर ठहरा एक प्रमजित है, यदि वह अनु-  
मति दे, तो भन्ते ! सुखपूर्वक विहार कीजिये ।”

उस समय पुष्कसाति<sup>१</sup> नामक कुल-पुत्र भगवान् के नामपर घरसे घेघर (= अनागारिक )  
हो प्रमजित हुआ था । वह इस कुंभकार-निवेशनमें पहिलेहीसे जाकर ठहरा हुआ था । तब भग-  
वान् जहाँ आयुष्मान् पुष्कसाति थे, वहाँ गये, जाकर आयुष्मान् पुष्कसातिसे यह बोले—

“यदि, मिश्र ! तुम्हें भारी (= गुरु ) न हो तो, मैं एक रात ( इस ) घरमें विहार करूँ ।”

“आतुस ! कुंभकार-निवेश सुखा है, आयुष्मान् सुख-पूर्वक विहार करें ।”

तब भगवान् कुंभकार-निवेशनमें प्रवेश कर, एक ओर तृणका वासन घिसा, वासन मार,  
कायाको सीधा कर, स्मृति को सम्युक्त उपस्थित रख बैठे । तब भगवान् ने बहुत रात बैठे-बैठे धिता  
दी आयुष्मान् पुष्कसातिने भी बहुत रात बैठे-बैठे धिता दी । तब भगवान् को यह हुआ—“इस कुल-  
पुत्रकी चाल-ढाल बहुत अच्छी है ; क्यों न मैं इससे पूछूँ ।” तब भगवान् ने आयुष्मान् पुष्कसातिसे  
यह कहा—

“मिश्र ! किसके नामपर तू प्रमजित हुआ है ? कौन तुम्हारा नाम्ना (= गुरु ) है । किसके  
धर्मको तू मानता है ?”

“आतुस ! नामक कुलसे प्रमजित नामक पुत्र अमण गौतम हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा  
मंगल कीर्तिशब्द फैला हुआ है—०” । उन भगवान् के धर्मको मैं मानता हूँ ।”

“मिश्र ! वह भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्ध इस समय कहाँ विहरते हैं ?”

“आतुस ! उत्तरके देशोंमें श्रावस्ती नामक नगर है । वहाँ वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध  
इस वक्क विहरते हैं ।

<sup>१</sup> पहिले तपस्विकाके राजा ने । ( बातिके पुस्तक ) । विस्तारके पत्रसे बुद्धके बारेमें जान कर मिश्र  
बो गये । ( अ. क. ) <sup>२</sup> देखो पृष्ठ १५८ ।

“मिश्र ! क्या तुने उन भगवान्‌को पहिले (कभी) देखा है ? देखकर पहिचान सकता है ?”

“आयुस ! नहीं, मैंने उन भगवान्‌को पहिले नहीं देखा है । देखकर मैं पहिचान नहीं सकता । तब भगवान्‌को यह हुआ—‘मेरे ही नामपर यह कुल-पुत्र प्रसूजित हुआ है; क्यों न मैं इसे धर्मोपदेश करूँ ।’

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् पुच्छुसातिको संबोधित किया—

“मिश्र ! तुझे धर्म उपदेशता हूँ, उसे सुन, अच्छी तरह मनमें कर, कइता हूँ ।”

“अच्छा, आयुस !”—( कह ) आयुष्मान् पुच्छुसायिने भगवान्‌को उत्तर दिया ।

भगवान्‌ने यह कहा—“मिश्र ! यह पुरुष ( १ ) छः धातुओं, ( २ ) छः स्पर्शायतनों, ( ३ ) अठारह मनोपविचार, ( ४ ) चार अधिष्ठानों वाला है, ( ५ ) जहाँ स्थित ( इसके ) मान और उत्सव नहीं प्रवृत्त होते । मान और उत्सवके न प्रवृत्त होनेपर—( वह ) शान्त मुनि कहा जाता है । ( ६ ) प्रज्ञासे प्रमाद न करे, सत्य को रखा करे, त्यागको बढ़ावे, उपशम ( = शांति ) ही वह अभ्यास करे—यह धातु-विमर्शका उद्देश है ।

( १ ) “मिश्र ! यह जो कहा—‘यह पुरुष छः धातुओंवाला है’—सो किस लिये कहा ?—मिश्र ! यह छः धातु हैं ?—पृथिवी-धातु, आप ०, तेज ०, वायु ०, आकाश ०, विज्ञान-धातु । यह जो कहा—‘यह पुरुष छः धातुओंवाला है’—सो इसी लिये कहा ।

( २ ) “मिश्र ! यह जो कहा—‘यह पुरुष छः स्पर्शायतन है’—सो किस लिये कहा ?—चक्षु-स्पर्शायतन, श्रोत्र ०, ग्राण ०, जिह्वा ०, काय ०, मनः स्पर्शायतन । ० ।

( ३ ) “मिश्र ! यह जो कहा—‘यह पुरुष अठारह मनोपविचारों वाला है’—सो किस लिये कहा ?—चक्षुसे रूपको देखकर रूपको सौमनस्य स्वामीय उपविचारता है ०<sup>१</sup> और छः उपेक्षाके उपविचार हैं । ० ।

( ४ ) “मिश्र ! यह जो कहा—‘यह पुरुष चतुरधिष्ठान है’—सो किस लिये कहा ?—प्रज्ञाअधिष्ठान, सत्य ०, त्याग ०, उपशम-अधिष्ठान । ० ।

( ६ ) “ ०—‘प्रज्ञासे प्रमाद न करे ० उपशम ( = शांति ) का ही वह अभ्यास करे’—सो किस लिये कहा ?—कैसे मिश्रभो ! मिश्र प्रज्ञासे प्रमाद नहीं करता ?—मिश्रभो ! यह छः धातु हैं—पृथिवी धातु, ०, विज्ञान-धातु । क्या है मिश्र पृथिवी धातु ?—पृथिवी धातु ( दो प्रकारकी ) है—आध्यात्मिक और बाह्य । क्या है, मिश्र ! आध्यात्मिक पृथिवी धातु ? शरीरके भीतर ( = अध्यात्म ), प्रति शरीरमें ( = प्रत्यात्म ) कर्कश खर्चरा लिये हुये हैं; जैसे कि केस, ओम ०<sup>२</sup> पेटके भीतरका मल; और जो कुछ और भी प्रति शरीरमें कर्कश ० लिये हुये हैं । मिश्र ! यह कही जाती है, आध्यात्मिक पृथिवी धातु । जो आध्यात्मिक पृथिवी धातु है, और जो बाह्य पृथिवी धातु है; यह ( दोनों ) पृथिवी धातु ही है । ‘यह न मेरा है’ ‘न यह मैं हूँ’, और ‘न वह मेरा आत्मा है’ । इस प्रकार इसे यथार्थसे भली प्रकार प्रज्ञासे देखना चाहिये । ऐसे इसे यथार्थतः अच्छी प्रकार देखनेसे पृथिवी धातुसे निर्वेद ( = उदासीनता ) को प्राप्त होता है; पृथिवी धातुसे चित्तको विरक्त करता है । क्या है, मिश्र ! आपोधातु ?—( दो प्रकारकी है ) आध्यात्मिक और बाह्य । क्या है, मिश्र ! आध्यात्मिक आप-धातु ? जो कुछ अध्यात्ममें=प्रति शरीरमें आप ( = जल ) वा आप संबंधी लिया गया है; जैसे कि पित्त, श्लेष्म ( = कफ ), पीष, मूत्र, स्वेद, मेद, अश्रु, वसा,

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ ५६१ ।    <sup>२</sup> देखो पृष्ठ १२०-११ ।



संज्ञ ( = स्पर्शर ) कान-नासिका मूत्र, मूत्र, और जो और भी अध्यात्ममें ० आप या आप-संबंधी लिया गया है। यह भिक्षुओं ! आध्यात्मिक आप धातु कही जाती है। जो आध्यात्मिक आप-धातु है ० और जो बाह्य आप-धातु है; यह ( दोनों ) पृथिवी धातु ही है। 'यह न मेरा है' ० । ऐसे इसे बचार्थतः अच्छी प्रकार देखनेसे आप-धातुसे निर्वेदको प्राप्त होता है; आप-धातुसे चित्तको विरक्त करता है। क्या है, भिक्षु ! तेज-धातु ?—( दो प्रकारकी ) आध्यात्मिक और बाह्य। क्या है भिक्षु आध्यात्मिक तेज-धातु ?—जो कुछ अध्यात्ममें—प्रति शरीरमें तेज या तेज संबंधी ( वस्तु ) ली गई है; जैसे कि—जिससे ( शरीरसे ) ताप-वृद्ध होता, जोर्ण होता है; जिससे कि अशित-खाया पिपा अच्छी तरह पचता है; और भी ० आप संबंधी लिया गया है। यह भिक्षु ! आध्यात्मिक तेज धातु कही जाती है। जो आध्यात्मिक तेज-धातु है, और जो बाह्य तेज-धातु है; यह ( दोनों ) तेज-धातु ही है। 'यह न मेरा है' ० । ० तेज धातुसे चित्तको विरक्त करता है। क्या है, भिक्षु ! वायु-धातु ?— ० । ०—जो अध्यात्ममें—प्रति शरीरमें वायु या वायु-संबंधी ( वस्तु ) ली गई है; जैसे कि—ऊर्ध्वगामी वायु, अधोगामी वायु, पेटमें रहने वाले वायु, अंग अंगमें रहनेवाले वायु, आश्वास-प्रश्वास, और जो और भी ० वायु-संबंधी लिया गया है। यह भिक्षु ! आध्यात्मिक वायु-धातु है। ० यह ( दोनों ) वायु धातु ही है। 'यह न मेरा है' ० । ० वायु धातुसे चित्तको विरक्त करता है। क्या है, भिक्षु ! आकाश-धातु ?— ० । ०—जो अध्यात्ममें = प्रति शरीरमें आकाश या आकाश सम्बन्धी है। जैसे कि—कर्ण-छिद्र, नासिका-छिद्र, मुख-द्वार जिससे कि...खाया पिपा निगला जाता है, जहाँ...खाया पिपा दहरता है; जहाँसे जिससे कि...खाया पिपा अधोभागसे निकलता है। और जो और भी ० आकाश सम्बन्धी है। ० । ० यह ( दोनों ) आकाशधातु ही है। 'यह न मेरा है' ० । ० आकाशधातुसे चित्तको विरक्त करता है। तब फिर परिशुद्ध = पर्यवदात विज्ञान-धातु ही शेष रहता है। उस विज्ञानसे जानता है ? 'सुख है'—जानता है; 'दुःख है'—जानता है; 'अदुःख-असुख है'—जानता है। भिक्षु ! सुख-वेदनीय ( = जिससे सुखात्मक अनुभव मिले ) स्पर्श ( = विषय-इन्द्रिय संयोग ) के कारण ( = प्रतीत्य ) सुखा वेदना उत्पन्न होती है। वह सुखा वेदनाको अनुभव करते 'सुखा वेदनाको अनुभव कर रहा हूँ'—जानता है। 'उसी सुख-वेदनीय स्पर्शके निरोध ( = लुप्त ) हो जानेसे, उससे उत्पन्न अनुभव ( = वेदित )—सुखवेदनीय स्पर्शके द्वारा उत्पन्न सुखा वेदना—वह निरुद्ध होती है = वह उपशान्त होती है'—जानता है। भिक्षु ! दुःख-वेदनीय स्पर्शके कारण दुःखा वेदना उत्पन्न होती है। ० वह उपशान्त होती है—जानता है। भिक्षु ! अदुःख-असुख-वेदनीय स्पर्शके कारण अदुःख-असुखा वेदना उत्पन्न होती है। ० वह उपशान्त होती है—जानता है।

“जैसे, भिक्षु ! दो काष्ठोंके संघर्षणसे रागसे उष्मा ( = गर्मी ) पैदा होती है, आग प्रकट होती है। उन्हीं दोनों काष्ठोंके अलग होनेसे, विक्षेप होनेसे जो उससे उत्पन्न उष्मा है, वह निरुद्ध = उपशान्त हो जाती है, ऐसे ही भिक्षु ! सुख-वेदनीय स्पर्शके कारण सुखा वेदना उत्पन्न होती है। ० उपशान्त होती है—जानता है। दुःख वेदनीय स्पर्शके कारण दुःखा वेदना उत्पन्न होती है। ० उपशान्त होती है—जानता है। अदुःख-असुख वेदनीय स्पर्शके कारण अदुःख-असुखा वेदना उत्पन्न होती है। ० उपशान्त होती है—जानता है। तब फिर परिशुद्ध = पर्यवदात, शूद्र, कर्मण्य, प्रमाखर उपेक्षा ही बाकी रहती है। जैसे, भिक्षु ! चतुर सोनार या सोनारका पारिगद ( = अन्तेवासी ) उल्का ( = जंगोठी ) बाँधे, उल्काको बाँध कर उल्कामुख ( = अंगोठी ) को छोड़े ( = जोड़े )। उल्कामुखको जोपकर संबंसी ( = संदास ) से सोनेको प्रकट कर उल्का-मुखमें डाले। उसे समय समय पर चौंके, समय समय पर पानीसे छीटा दे, समय समय पर

( लुप चाप ) छोड़ रखते । ( तब ) वह सोना, मृदु, कर्मण्य ( = कामके लायक ), प्रभास्वर, शुद्ध, निर्मल, निहत ( = धुला ), कषाययुक्त होता है । तब जिस जिस आभूषण...को चाहे—चाहे पट्टिका, चाहे कुंडल, चाहे ग्रैवेयक ( = कंठा ), चाहे सुवर्णमाला—इसी चीज ( = अर्थ ) अनुभव कर सकता है । ऐसे ही मिथु ! तब फिर ० उपेक्षा ही पाकी रहती है । वह इस प्रकार जानता है—‘ऐसी परिशुद्ध = पर्यवदात, इस उपेक्षासे मैं आकाशानन्त्यापतनको प्राप्त हो विहर्ष, उसके धर्मानुसार चित्तको भावित ( = अभ्यस्त ) करूँ, इस प्रकार मेरी यह उपेक्षा उस ( आकाशानन्त्यापतन )में आश्रित हो, उसे उपादान बना फिर = दीर्घकाल तक ठहरेगी । यदि मैं ऐसी परिशुद्ध = पर्यवदात इस उपेक्षासे विज्ञानानन्त्यापतनको प्राप्त हो विहर्ष, ० दीर्घकाल तक ठहरेगी । यदि मैं ऐसी परिशुद्ध = पर्यवदात इस उपेक्षासे आकिन्त्यन्यापतनको प्राप्त हो विहर्ष, ० दीर्घकाल तक ठहरेगी । ० नैवसंज्ञानासंज्ञायतनको प्राप्त हो विहर्ष, ० दीर्घकाल तक ठहरेगी । वह ऐसा जानता है—यदि ऐसा परिशुद्ध = पर्यवदात इस उपेक्षासे आकाशानन्त्यापतनको प्राप्त हो विहर्ष, उसके धर्मानुसार चित्तको भावित करूँ, ( तो ) भी यह संस्कृत ( = कृत ) है । ० विज्ञानानन्त्यापतन ० । ० आकिन्त्यन्यापतन ० । ० नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हो विहर्ष, उसके धर्मानुसार चित्तको भावित करूँ, ( तो ) भी यह संस्कृत है ।—( यह सोच ) वह न उसके भव ( = उत्पत्ति ) या विभय ( = विनाश )के लिये न अभिसंस्कार ( = बनाया ) करता है, न अभिसंचितन ( = ब्यापार ) करता है । वह भव ० अभिसंचितन न करने लोकमें किसी ( वस्तु )का उपादान ( = संग्रह ) नहीं करता; उपादान न करनेसे श्रावको नहीं प्राप्त होता । परित्रास न पत्ते वह इसी शरीर ( = प्रत्यात्म ) मिश्रणको प्राप्त होता है । जन्म ( = आवागमन ) स्वतन्त्र होना ० <sup>१</sup> इसे जानता है । वह यदि सुखा वेदनाको अनुभव करता है, ( तो भी ) ‘यह अनित्य है’—जानता है ‘अन्-अभ्यवसित ( = अ-निश्चित ) है’—जानता है । ‘अन्-अभिनिर्दिष्ट है’—जानता है । यदि दुःख वेदनाको अनुभव करता है ० । यदि अ-दुःख-असुखा वेदनाको अनुभव करता है । वह यदि सुखा वेदनाको वेदन ( = अनुभव ) करता है, तो वि-संयुक्त ( = विमुक्त ) हो उसे नहीं वेदन करता । यदि दुःखा वेदनाको ० । यदि अदुःख-असुखा वेदनाको ० । वह काया पर्यन्तको वेदनाको वेदन करते हुये—‘काय-पर्यन्त वेदनाको वेदन करता हूँ’—जानता है । जीवित ( = जीवन )-पर्यन्त वेदनाको वेदन करते हुये—० । ‘काया छोड़ मरनेके बाद जीवन स्वतन्त्र होने ( = पर्यादान )के पश्चात् यही सारे अनुभव ( = वेदीयत ), अन्-अभिनिर्दिष्ट हो ठंडे हो जायेंगे’—जानता है । जैसे, मिथुनो ! तेल और बत्ती के सहारे तेल-प्रदीप जलता है । इसकी तेल और बत्तीके स्वतन्त्र होने पर और दूसरेके न मिलने पर ( = अनुपादानात् ) निराहार हो बुझ जाता है । ( = निश्चायति ) मिश्रणको प्राप्त होता है, इसी प्रकार, मिथु ! काय-पर्यन्तकी वेदनाको वेदन करते हुये—० ठंडे हो जायेंगे—जानता है । इसलिये इस प्रकार ऐसे ( गुणोंसे ) युक्त मिथु, इस परम प्रज्ञा-अधिष्ठानसे संयुक्त होता है । मिथु ! यही परम आर्य प्रज्ञा है, जो कि यह सारे दुःखोंके अथका ज्ञान ! उसकी यह विमुक्ति ( = मुक्ति ) सत्य में स्थित, अ-कोप्य ( = चल ) होती है । मिथु ! वह सृष्टा ( = असत्य ) है, जो कि नाश-मान ( = मोषधर्मा ) है, जो मोषधर्मा नहीं है, वह निघाणि है । इसलिये ऐसे ( गुणोंसे ) युक्त मिथु इस परम-सत्य अधिष्ठानसे युक्त होता है । मिथु ! यही परम आर्य-सत्य है, जो कि यह अ-मोषधर्मा निघाणि है ।



“पहिले अज्ञान होते समय उसने ही उपधियों (= स्तंभ, काय, स्लेष, कर्म ) ग्रहणकी = समादिन्न होती है; ( अब ) वह उसकी प्रमिष्ट = उच्छिन्न-मूल, कटे शिर वाले ताड़ जैसी, अभाव-प्राप्त, नविष्यमें उत्पन्न होनेके अयोग्य होती है । इसलिये ऐसे ( गुणोंसे ) युक्त भिक्षु इस परम त्याग-अधिष्ठान से संयुक्त होता है । भिक्षु ! यही परम आर्य-स्वाम है, जो कि सारी उपधियोंका परित्याग ।

“० अज्ञान होते समय उसे अभिष्या (= लोभ ) छन्द, राग होता है; ( अब ) वह ० उच्छिन्न मूल ० होते है । ० अज्ञान होते समय, उसे आघात व्यापाद संप्र-द्वेष होते है; ० । ० अज्ञान होते समय अविद्या, सम्मोह होता है; ० । इसलिये ऐसे ( गुणोंसे ) युक्त भिक्षु इस परम उपशम-अधिष्ठानसे युक्त होता है । भिक्षु ! यही परम आर्य उपशम है, जो कि यह राग, द्वेष और मोहका उपशम (= शमन, शांत होना ) ।

“यह जो कहा—‘प्रज्ञासे प्रमाद न करे, सत्यकी रक्षा कर, त्यागको बढ़ाये, उपशमका ही अभ्यास करे’—यह इसीलिये कहा ।

( ५ ) ‘यह जो कहा—‘जहाँ स्थित ( इसके ) ज्ञान और उत्सव नहीं प्रवृत्त होते । मान और उत्सवके न प्रवृत्त होनेपर—( वह ) शान्त मुनि कहा जाता है’—जो किस लिये कहा ? भिक्षु ! ‘मैं हूँ’—यह ज्ञान (= मन्यता ) है । ‘यह मैं हूँ’—यह मान है । ‘हूँगा’—यह मान है । ‘नहीं होऊँगा’—यह मान है । ‘अ-रूपी होऊँगा’—० । ‘संज्ञी होऊँगा’—० । ‘अ-संज्ञी होऊँगा’—० । ‘नैवसंज्ञी-नासंज्ञी होऊँगा’—० । भिक्षु ! ज्ञान (= मान्यता ) रोग है, ० गंड (= फोड़ा ) है, मान शूल है । भिक्षु ! सारे भागोंका अतिक्रमण कर शान्त मुनि कहा जाता है । भिक्षु ! शान्त मुनि जन्म-जरा-मरणको नहीं प्राप्त होता, न कुपित होता है, न सृष्टा करता है । वही उसके पास नहीं है, जिस जन्मतासे न जन्मा क्या जराको प्राप्त होगा ? न जराको प्राप्त क्या कोपेगा ? न कुपित हुआ क्या सृष्टा करेगा । यह जो कहा—‘जहाँ स्थित ०’—सो इसलिये कहा ।

“भिक्षु ! मेरे संक्षेपसे कहे इन छः चातुर्णोंको धारण कर ।”

तब आयुध्मान् पुक्कुस्ताति—‘अहो, शायदा मुझे मिल गये, सुगत ०’ सम्यक्-संबुद्ध मुझे मिल गये’—( सोच ); आसनसे उठ उत्तरासंग (= उपरने )को एक ( यावें ) कंधेपर कर, भगवान्‌के पैरोंमें शिरसे पड़कर भगवान्‌से यह बोले—

“भन्ते ! बाल = मूढ़ = अकुशलकी तरह ( मेरे ) अपराधको क्षमा करें, जो कि मैंने भगवान्‌को ‘आवुस’<sup>१</sup> कह कर पुकारा । भन्ते ! उस मेरे अपराधको, आगे संवत्स करनेके लिये भगवान्‌ बोलेके तौरपर स्वीकार करें ।”

“भिक्षु ! जो तुने बाल ० की तरह अपराध किया । जो कि तुने मुझे ‘आवुस’ कह कर पुकारा । वृत्ति, भिक्षु ! तू अत्यध (= अपराध )को अत्यधिक तौर पर देखकर धर्मानुसार प्रतीकार करता है; ( इसलिये ) उसे हम स्वीकार करते हैं । भिक्षु ! आर्य-विनय ( सत्पुरुषोंकी रीति )में यह वृद्धि (= लाम ) ही है, जो कि अपराधको अपराधके तौरपर देखकर धर्मानुसार प्रतीकार करता है, नविष्यमें संवर (= संवत्स ) रखता है ।”

“मिले भन्ते ! मुझे भगवान्‌के पाससे उपसंपदा ।”

“भिक्षु ! क्या तेरे पास पात्र-बीवर<sup>२</sup> पुरे हैं ?”

<sup>१</sup> आवुस विष या मारके अर्थमें बराबरवालेके लिये प्रयुक्त होता था ।

<sup>२</sup> हीन बीवर है—अन्तरवासक (= छुंगी ), उत्तरासंग (= बख्खरी कपर केनेकी चादर ), संवादी (= डुबरा उत्तरासंग सर्दके लिये ) और एक मिट्टापात्र एक भिक्षुके लिये जरूरी है ।

“मन्ते ! मेरे पास पात्र-चीवर पूरे नहीं हैं ।”

“मिथु ! तयागत अ-परिपूर्ण पात्र-चीवर वालेको उपसंपादित (= मिथुकी दीक्षासे दीक्षित ) नहीं करते ।”

तब आयुष्मान् पुक्कुराति भगवान्के भाषणको अभिनंदित = अनुमोदित कर, भासनसे उठ कर, भगवान्को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर, पात्र-चीवरकी खोजमें चल पड़े । तब पात्र-चीवर की खोजमें फिरते आयुष्मान् पुक्कुरातिको एक पागल गायने मार डाला । तब बहुतसे मिथु वहाँ भगवान् पे, वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे उन मिथुओंने भगवान्से यह कहा—

“मन्ते ! जो वह पुक्कुराति नामक कुल-पुत्र, जिसे कि भगवान्ने संक्षेपसे उपदेश किया, वह काल कर गया । उसकी क्या गति होगी = क्या अभिसंपराय (= परलोक ) होगी ?”

“मिथुओ ! पुक्कुराति कुलपुत्र पंडित, क्षत्र्यवादी धर्मात्तुसार ( चलनेवाला ) था, उसने मुझे धर्मसे कोई परीक्षा नहीं दी । मिथुओ ! पुक्कुराति कुलपुत्र पाँचों अवसर-भागीय-संयोजनोंके क्षयसे औपपातिक (= अपोनिज देव ) हो वहाँ ( देवलोकमें ) निर्वाण पानेवाला है, उस लोकसे न लौटनेवाला है ।”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन मिथुओंने भगवान्के भाषणको अभिनंदित किया ।



## १४१-सच्च-विभंग-मुत्तन्त (३।४।११)

चार आर्य-सत्त्व

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् वाराणसीमें ऋषिपत्तन-सुगदाव<sup>१</sup>में विहार करते थे ।

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“मदन्त !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! तत्वागत आहं<sup>२</sup> सम्यक्-संशुद्धने वाराणसी ऋषिपत्तन-सुगदावमें अनुपम धर्म-चक्रको प्रवर्तित किया ( = बुझाया ), ( जोकि ) श्रमण-प्राप्त्यण, देव, मार, मन्त्रा या लोकेमें किसीसे भी उल्टाया नहीं जा सकता । जोकि यह चार आर्य-सत्त्वोंका आख्यान = वेदाना = प्रज्ञापन = प्रस्थापन = विपरण = विभाजन = उत्तानीकरण ( = स्पष्टीकरण ) करना है । किन चारोंका ?—दुःख-आर्य-सत्त्वका आख्यान ० । दुःख-समुद्भय-आर्य-सत्त्वका ० । दुःख निरोध-आर्य-सत्त्वका ० । दुःख निरोध-गामिनी प्रतिपदा-आर्य-सत्त्वका ० । भिक्षुओ ! तत्वागत ० ने ० धर्म-चक्रको प्रवर्तित किया, ( जोकि ) ० ।

“भिक्षुओ ! सारिपुत्र, और मौद्गल्यायनको सेवन करो, ० भजन करो । भिक्षुओ ! सारि-पुत्र, मौद्गल्यायन पंडित हैं, सबज्ञ-चारियोंके अनुग्राहक हैं । भिक्षुओ ! जन्मदाता ( = पिता ) की तरह सारिपुत्र हैं; जन्मेको पोषनेवालेकी तरह मौद्गल्यायन हैं । भिक्षुओ ! सारिपुत्र ( अधिकारीको ) स्रोत-आपत्तिकालमें प्राप्त कराता है; और मौद्गल्यायन उत्तम-अर्थ ( = पदार्थ = निवाण ) में ! भिक्षुओ ! सारिपुत्र चार आर्य-सत्त्वोंका विस्तारपूर्वक आख्यान ० उत्तानीकरण कर सकता है ।”

भगवान्ने यह कहा, यह कह सुगत आसनसे उठ विहारमें चले गये ।

तब भगवान्के चले जानेके थोड़े ही समय बाद आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको संबोधित किया—“आवुस भिक्षुओ !”

“आवुस !”—( कह ) उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया ।

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा—“आवुसो ! तत्वागत ० ने वाराणसी ० में अनुपम धर्म चक्रको प्रवर्तित किया ० दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपदा आर्य-सत्त्वका ० उत्तानीकरण किया ।” क्या है आवुसो ! दुःख आर्य-सत्त्व ?—०<sup>३</sup>

“यह कही जाती है, आवुसो ! दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपदा आर्य-सत्त्व । आवुसो ! तत्वागत ० ने ० धर्म-चक्रको प्रवर्तित किया । ० दुःख निरोध-गामिनी आर्य-सत्त्वका ० उत्तानीकरण किया ।”

आयुष्मान् सारिपुत्रने यह कहा, समुष्ट हो उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रके भाषणको अभिनन्दित किया ।

<sup>१</sup> सारनाथ ।

<sup>२</sup> देखो बुद्धचर्या, पृष्ठ-१२३-२७ ।

## १४२—दक्खिणा-विभंग-सुत्तन्त (३।४।१२)

संघ व्यक्ति ऊपर है

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् शाक्यों ( के देश ) में कपिलवस्तुके न्यग्रोधाराममें विहार करते थे । तब महाप्रजापती गौतमी नये दुस्स ( = पुस्ते ) के जोड़ेको लेकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ आई । आकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गई । एक ओर बैठो, महाप्रजापती गौतमीने भगवान्को यों कहा—“भन्ते ! यह अपना ही काता, अपना ही बुना, मेरा यह नया धुस्सा-जोड़ा भगवान्को ( अर्पण है ) । भन्ते ! भगवान् अनुकम्पा ( = कृपा ) कर, इसे स्वीकार करें ।”

ऐसा कहनेपर भगवान्ने महाप्रजापती गौतमीसे कहा—

“गौतमी ! ( इसे ) संघको देदे । संघको देनेसे मैं भी पूजित हूँगा, और संघ भी ।”

दूसरी बार भी ० कहा—“भन्ते यह ०” । “गौतमी ! संघको दे ०” । तीसरी बार भी ० ।

यह कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यों कहा—

“भन्ते ! भगवान् महाप्रजापती गौतमीके धुस्सा-जोड़ेको स्वीकार करें । भन्ते ! आपादिका ( = अभिसाविका ), पोषिका, छोर-दायिका ( होमसे ), भगवान्की मौसी महाप्रजापती गौतमी बहुत उपकार करनेवाली है । इसने जननीके मरनेपर भगवान्को दूध पिलाया । भगवान् भी महाप्रजापती गौतमीके महापकारक हैं । भन्ते ! भगवान्के कारण महाप्रजापती ० बुद्धकी शरण आई, धर्मकी शरण आई, संघकी शरण आई । भगवान्के कारण भन्ते ! महाप्रजापती गौतमी प्राणातिपात ( = हिंसा ) से विरत हुई । अदत्तादान ( = बिना दिये लेना = चोरीसे ) विरत हुई । काम-मित्राचारसे ० मृपावादसे ( = झूठ बोलना ) से ० । सुरा-मेरय ( = कच्ची शराब )-मण-प्रसादस्थान ( = प्रसाद करनेकी जगह ) से ० । भगवान्के कारण भन्ते ! महाप्रजापती गौतमी बुद्धमें अत्यन्त ब्रद्धा ( = प्रसाद ) युक्त, धर्ममें अत्यन्त प्रसाद-युक्त, संघमें अत्यन्त प्रसाद-युक्त ( हुई ); आर्य ( = उत्तम ) कीर्ति ( = कमनीय = सुन्दर ) शीलोंसे युक्त ( हुई ) । भगवान्के ही कारण भन्ते ! ० दुःखसे बेफिक्र हुई, दुःख-समुदयसे ०, दुःख-निरोधसे ०, दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपदसे ० । भगवान् भी भन्ते ! महाप्रजापती गौतमीके महाउपकारक हैं ।”

“आनन्द ! यह ऐसा ही है, पुद्गल ( = व्यक्ति = प्राणी ) पुद्गलके सहारे बुद्धका शरणागत होता है, धर्मका ०, संघका ० । लेकिन आनन्द ! जो यह अभिवादन, प्रत्युपस्थान ( = सेवा ), अञ्जलि जोड़ना = समीचीन करना, चोकर, पित्र-पात, शयनासन, ज्ञान ( = रोगी ) को पथ-औषध देना है, ( इसे ) मैं इस पुद्गलका उस पुद्गलके प्रति सुप्रतिहार ( = प्रत्युपकार ) नहीं कहता । जो ( कि यह ) पुद्गल ( वृत्तरे ) पुद्गलके सहारे प्राणातिपात ०, अदत्तादान ०,



काम-मिथ्याचार ०, सुपापाद ०, सुरा-मेरय-मद्य-प्रमाद-स्थानसे विरत होता है ! आनन्द ! जो यह अभिवादन ० । जो यह आनन्द ! पुद्गल पुद्गलके सहारे दुःखसे बेफिक होता है ० ।

आनन्द ! यह चौदह प्राति-पुद्गलिक (= व्यक्तिगत) दक्षिणार्थ (= दान) हैं । कौनसी चौदह ? तथागत अर्हत्-सम्पत्-संबुद्धको दान देता है; यह पहिली प्राति-पुद्गलिक दक्षिणा है । प्रत्येक संबुद्धको दक्षिणा देता है; यह दूसरी ० । तथागतके श्रावक (= शिष्य) अर्हत्को ० तीसरी ० । अर्हत्-फलके साक्षात् करनेमें लगे हुयेको ० चौथी ० । अनागामीको ० पाँचवीं ० । अनागामि-फल साक्षात् करनेमें लगे हुयेको ० छठी ० । सकृदागामीको ० सातवीं ० । सकृदागामि-फल साक्षात् करनेमें लगेको ० आठवीं ० । सोतापन्नको ० नवीं ० । सोतापत्ति (= स्रोत आपत्ति)-फल साक्षात् करनेमें लगेको ० दसवीं ० । गाँवके बाहरके वीत-रागको ० ब्यारहवीं ० । शीलवान् पृथग्जन ( स्रोत आपत्ति आदिको न प्राप्त )को ० बारहवीं ० । दुःशील पृथग्जनको ० तेरहवीं ० । तिर्यग्गोत्रगत (= पशु पक्षी आदि)को ० चौदहवीं ० । वहाँ आनन्द ! तिर्यग्गोत्रि-गतको दान देनेमें सौगुनी दक्षिणाकी आज्ञा रखनी चाहिये । दुःशील पृथग्जनमें ० हजार गुनी ० । शील-वान् पृथग्जनमें ० सौ हजार ० । ० सौ हजार करोष ० । स्रोत आपत्ति फल साक्षात् करनेमें लगेको दान दे ० असंख्य (= अनगिनत) अजमेय (= प्रमाण रहित) दक्षिणाकी आज्ञा रखनी चाहिये । फिर स्रोतआपन्नकी बात क्या कहनी है ? फिर सकृदागामी ० ? फिर अनागामी ० ? फिर अर्हत् ० ? फिर प्रत्येक-बुद्ध ० ? फिर तथागत अर्हत् सम्पत् संबुद्ध ० ?

“आनन्द ! यह सात संघ-गत (= संघमेंकी) दक्षिणार्थ हैं । कौनसी सात ? बुद्ध प्रमुख दोनों संघोंको दान देता है; यह पहिली संघ-गत दक्षिणा है । तथागतके परिनिर्वाणपर १ दोनों संघोंको ० दूसरी ० । भिक्षु-संघको ० तीसरी ० । भिक्षुणी-संघको ० चौथी ० । मुझे ० व इतने भिक्षु भिक्षुणी उद्देश करें (= दान देनेके लिये दे ), ऐसे दान देता है ० वह पाँचवीं ० । मुझे संघमेंसे इतने भिक्षु ० छठी ० । मुझे संघमेंसे इतनी भिक्षुणियाँ ०, सातवीं ० ।

“आनन्द ! भविष्यकालमें भिक्षु-नाम-धारी (= गोत्रन्), काषाय-मात्र-धारी (= काषाय-कण्ड) दुःशील, पाप-धर्मां (= पापी) ( भिक्षु ) होंगे । ( लोग ) संघके ( नामपर) उन दुःशीलों को दान देंगे । उस वक्तभी आनन्द ! मैं संघ-विषयक दक्षिणाको असंख्येय, अपरिमित ( फलवाली ) कहता हूँ । आनन्द ! किसी तरह भी संघ-विषयक दक्षिणासे प्राति-पुद्गलिक (= व्यक्तिगत) दक्षिणाको अधिक फल-दायक मैं नहीं मानता ।

“आनन्द ! यह चार दक्षिणा (= दान) की विशुद्धियाँ (= शुद्धियाँ) हैं । कौनसी चार ? आनन्द ! ( कोई कोई ) दक्षिणा तो दायकसे परिशुद्ध होती है, प्रतिग्राहकसे नहीं । ( कोई ) दक्षिणा प्रतिग्राहकसे परिशुद्ध होती है, दायकसे नहीं । आनन्द ! ( कोई ) दक्षिणा न दायकसे शुद्ध होती है, न प्रतिग्राहकसे । ( कोई ) दक्षिणा दायकसे भी शुद्ध होती है प्रतिग्राहकसे भी... आनन्द ! दक्षिणा कैसे दायकसे शुद्ध होती है, प्रतिग्राहकसे नहीं... आनन्द ! जब दायक शीलवान् (= सदाचारी ) और कल्याणधर्मां (= पुण्यात्मा ) हो, और प्रतिग्राहक हो दुःशील (= दुराचारी ) पाप-धर्मां (= पापी ); तो आनन्द ! दक्षिणा दायकसे शुद्ध होती है, प्रतिग्राहकसे नहीं । आनन्द ! कैसे दक्षिणा प्रतिग्राहकसे शुद्ध होती है, दायकसे नहीं ? आनन्द ! जब प्रतिग्राहक शीलवान् और कल्याण-धर्मां हो, ( और ) दायक हो दुःशील, पाप-धर्मां ० । आनन्द ! कैसे दक्षिणा न दायकसे शुद्ध होती है, न प्रतिग्राहकसे ? आनन्द ! जब

दायक दुःशील, पाप-धर्मा हो, और प्रतिग्राहक भी दुःशील पाप-धर्मा हो । आनन्द ! कैसे दक्षिणा दायकसे भी शुद्ध होती है, और प्रतिग्राहकसे भी ? आनन्द ! ( तब ) दायक शीलवान् कल्याण-धर्मा हो ( और ) प्रतिग्राहक भी शीलवान् कल्याण-धर्मा हो, तो ० । आनन्द ! यह चार दक्षिणा की विशुद्धियाँ हैं ।”

( १४-वृत्ति विभंग-वग ३।४ )



## १४३-अनाथपिंडिकोवाद-सुत्तन्त ( ३।५।१ )

अनाथपिंडिको मृत्यु । अनासक्ति योग ।

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय अनाथपिंडिक गृहपति बहुत अधिक रुग्ण, दुःखित, बीमार था । तब अनाथपिंडिक गृहपतिने एक आदर्शसे कहा—“हे पुरुष ! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाओ; जाकर मेरे वचनसे भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना करो; और यह भी कहो—‘भन्ते ! अनाथपिंडिक गृहपति ० बीमार है; वह भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना करता है’ । ( फिर ) जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र हैं, वहाँ जाओ; जाकर मेरे वचनसे आयुष्मान् सारिपुत्रके चरणोंमें शिरसे वन्दना करो; और यह भी कहो—‘भन्ते ! अनाथपिंडिक गृहपति ० बीमार है; वह आयुष्मान् सारिपुत्रके चरणोंमें शिरसे वन्दना करता है; और यह भी कहो—‘अच्छा हो भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ अनाथपिंडिक गृहपतिका घर है, कृपा कर वहाँ चले’ ।”

“अच्छा, भन्ते !”—( कह ) उस पुरुषने अनाथपिंडिक गृहपतिसे कह, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया; जाकर भगवान्‌को अभिवादित कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे, उस पुरुषने भगवान्‌से यह कहा—

“भन्ते ! अनाथपिंडिक गृहपति ० बीमार है; ० वन्दना करता है ।”

( फिर ) जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे, वहाँ गया । जाकर आयुष्मान् सारिपुत्रको अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे, उस पुरुषने आयुष्मान् सारिपुत्रसे यह कहा—

“भन्ते ! अनाथपिंडिक गृहपति ० बीमार है; ० वन्दना करता है । और यह भी कहता है—‘अच्छा हो, भन्ते ! ० कृपा कर वहाँ चले’ ।”

आयुष्मान् सारिपुत्रने मौनसे स्वीकार किया ।

तब आयुष्मान् सारिपुत्र पहिनकर, पात्र-बीजर ले, आयुष्मान् आनन्दको अनुगामी ब्रमण बना, जहाँ अनाथपिंडिकका घर था, वहाँ गये । जाकर बिछे आसनपर बैठे । बैठकर आयुष्मान् सारिपुत्रने अनाथपिंडिक गृहपतिसे यह कहा—

“गृहपति ! ठीक तो है ? ( काल- ) यापन तो हो रहा है ? दुःखा वेदना इट तो रही है, लीट तो नहीं रही है ? ( व्याधिका ) दटना तो मालूम हो रहा है; लीटना तो नहीं मालूम हो रहा है ?”

“भन्ते सारिपुत्र ! सुखे ठीक नहीं है; ० अत्यधिक दाह हो रहा है । भन्ते सारिपुत्र ! सुखे ठीक नहीं है ० ।”

\* देखो पृष्ठ ४०६ ।

“तो ऐसा गृहपति ! अभ्यास करो ( = शिक्षितव्य )—‘चक्षुका उपादान न करूँगा, और मेरा विज्ञान ( = चित ) चक्षुमें निहित ( = आश्रित, आस्तक ) न होगा’। ऐसा गृहपति ! अभ्यास करो । तो ० ओन्न ० । ० घ्राण ० । ० जिह्वा ० । ० मन ० । ० रूप ० । ० शब्द ० । ० गंध ० । ० रस ० । ० स्पर्श ० । ० चक्षुर्विज्ञान ० । ० ओन्न-विज्ञान ० । ० घ्राण-विज्ञान ० । ० जिह्वा-विज्ञान ० । ० काय-विज्ञान ० । ० मनो-विज्ञान ० । ० चक्षु-संस्पर्श १ ० । ० ओन्न-संस्पर्श ० । ० घ्राण-संस्पर्श ० । ० जिह्वा-संस्पर्श ० । ० काय-संस्पर्श ० । ० मन-संस्पर्श ० । ० चक्षु-संस्पर्शजा वेदना २ ० । ० ओन्न-संस्पर्शजा वेदना ० । ० घ्राण-संस्पर्शजा वेदना ० । ० जिह्वा-संस्पर्शजा वेदना ० । ० काय-संस्पर्शजा वेदना ० । ० मन-संस्पर्शजा वेदना ० । ० पृथिवी-धातु ३ ० । ० आप-धातु ० । ० तेज-धातु ० । ० वायु-धातु ० । ० आकाशधातु ० । ० विज्ञान-धातु ० । ० रूप ० । ० वेदना ० । ० संज्ञा ० । ० संस्कार ० । ० विज्ञान ० । ० आकाशानन्त्या-यतन ० । ० विज्ञानानन्त्यायतन ० । ० आकित्तन्त्यायतन ० । ० नैव संज्ञा-नासंज्ञायतन ० । ० इस लोको ० । तो ऐसा, गृहपति ! अभ्यास करो—‘परलोका उपादान न करूँगा, और मेरा विज्ञान परलोकमें निहित न होगा’—ऐसे गृहपति तुम अभ्यास करो । तो ऐसा, गृहपति ! अभ्यास करो, कि जो कुछ भी तुम्हारा दृष्ट, श्रुत, स्मृत, विज्ञान, प्राप्त, पर्येष्ट ( = खोज किया ), अनु-पर्येष्ट, मन द्वारा अनुचरित है, उसका भी उपादान न करूँगा, और मेरा विज्ञान उसमें निहित न होगा—ऐसे गृहपति तुम अभ्यास करो ।”

ऐसा कहनेपर अनाथपिंडिक गृहपति से यथा, अस् गिराने लगा । तब आयुष्मान् आनन्दने अनाथपिंडिक गृहपतिसे यह कहा—

“गृहपति ! क्या धररा रहे हो, दिल छोटा कर रहे हो ?”

“भन्ते आनन्द ! मैं धररा नहीं रहा हूँ, दिल छोटा नहीं कर रहा हूँ; बल्कि भन्ते ! मैंने दीर्घकालसे शास्ताकी उपासना ( = सत्संग ) की और मनोभावनीय ( = भावनामें तत्पर ) भिक्षु भी; किन्तु मैंने ऐसी धार्मिक कथा पहिले नहीं सुननेको पाई ।”

“गृहपति ! श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थोंको ऐसी धार्मिक कथा नहीं समझमें आती; प्रव्रजितको, गृहपति ! ऐसी धार्मिक कथा समझमें आती है ।”

“तो, भन्ते सारिपुत्र ! ० गृहस्थोंको भी ऐसी धार्मिक कथा समझनेको मिले । भन्ते ! जल्प मतवाले भी कुलपुत्र हैं; धर्मसे न अवगणसे वह परिहीन ( = वंचित ) होंगे । ( वह ) धर्मसे जाननेवाले होंगे ।”

तब आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् आनन्द, अनाथपिंडिक गृहपतिको इस अववाद ( = उपदेश ) से उपदेश कर, आसबसे उठकर चले गये । आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् आनन्द के चले जानेके थोड़े ही समय बाद अनाथपिंडिक गृहपतिने काल किया । ( और ) तुषित-काय ( = तुषित देव-लोको ) में वह उत्पन्न हुआ ।

तब प्रकाश युक्त रात्रिको ०<sup>४</sup> प्रकाशमान वर्णवाला अनाथपिंडिक देवपुत्र, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया; जाकर भगवान्को अनिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े अनाथ-पिंडिक देवपुत्रने भगवान्से गाथाओंमें कहा—

<sup>१</sup> इन्द्रिय और विषयके समागमको संस्पर्श कहते हैं । <sup>२</sup> इन्द्रिय और विषयके संस्पर्श होनेपर जो मनकी दुःखमय, सुखमय वा अदुःख-असुखमय अवस्था होती है, उसे वेदना कहते हैं । <sup>३</sup> जो पदार्थ वस्तुको पारण करते हैं, वा उसके उपादान कारण होते हैं । <sup>४</sup> देखो पृष्ठ ५५० ।



“ऋषि-संघसे सेवित ।

धर्मराज<sup>१</sup> का वास रह चुका वह जैनवन सुझे प्रीति<sup>२</sup>दायक है ॥ ( १ ) ॥

कर्म, विद्या, धर्म, शील और उत्तम जीवन,

इनसे समुप्य शुद्ध होते हैं, मोत्र और वनसे नहीं ॥ ( २ ) ॥

इसलिये पंडित पुरुष अपने हितको देखते,

मोनिशः<sup>३</sup> धर्मका चयन करे, ऐसे ( वह ) वहाँ शुद्ध होता है ॥ ( ३ ) ॥

प्रज्ञा, शील और उपशममें सारिपुत्रसा देवपुत्र,

पारंगत, जो भिक्षु ( हो वह ) भी इतना ही महान् होगा ।”

अनाथ-पिंडिक देवपुत्रने यह कहा, ( जिससे ) शास्ता सहमत हुये । तब अनाथपिंडिक ‘शान्ता सहमत है’—( सोच ) भगवान्‌को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान होगया ।

तब भगवान्‌ने उस रातके धीत जानेपर भिक्षुओंको संबोधित किया—

“भिक्षुभो ! आज रातको ०<sup>४</sup> एक देवपुत्र, वहाँ मैं था, वहाँ आया । आकर सुझे अभिवादन कर एक और खड़ा हो गया । एक और खड़े उस देवपुत्रने सुझे गाम्भार्थोंमें कहा—

‘ऋषिसंघसे सेवित ०’<sup>५</sup> इतना ही महान् होगा ।

“उस देवपुत्रने, भिक्षुभो ! यह कहा । ‘शास्ता सहमत है’—( सोच ) सुझे अभिवादन कर ० वहीं अन्तर्धान होगया ।”

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से यह कहा—

“वह, भन्ते ! जरूर अनाथपिंडिक देवपुत्र होगा । भन्ते ! अनाथपिंडिक गृहपति आयुष्मान् सारिपुत्रने अभिप्रसन्न ( = अतिभ्रष्टावान् ) था ।

“साधु, साधु, आनन्द ! जितना कुछ आनन्द ! तर्कसे पाया जा सकता है, वह तुने पा लिया है । आनन्द ! वह देवपुत्र अनाथपिंडिक था ।”

भगवान्‌ने यह कहा, सन्तुष्ट हो आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌के भाषणको अभिनन्दित किया ।

<sup>१</sup> उज्ज ।

<sup>२</sup> सुखी ।

<sup>३</sup> कार्य कारणका खूब कपाल करने ।

<sup>४</sup> देखो पृष्ठ ५८३, ५५० ।

<sup>५</sup> देखो ऊपर ।

## १४४-छन्नोवाद-सुत्तन्त (३।५।२)

जनाम-बार, छन्नको जाम-दत्ता

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् राजगृहमें वेणुवन कलंदकनिघापमें विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र, आयुष्मान् महाचुन्द, और, आयुष्मान् महाछन्न, गृध्रकूट पर्वतपर विहार करते थे । उस समय आयुष्मान् छन्न बहुत अधिक रुग्ण, दुःखी<sup>१</sup> बीमार थे । तब आयुष्मान् सारिपुत्र सायंकाल, ध्यानसे उठे जहाँ आयुष्मान् महाचुन्द थे, वहाँ गये । जाकर आयुष्मान् महाचुन्दसे यह कहा—

“छन्नो, आयुस पुन्द ! बीमारी मूढ़नेको जहाँ आयुष्मान् छन्न हैं, वहाँ चले ।”

“अच्छा, आयुस !”—( कह ) आयुष्मान् महाचुन्दने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया ।

तब आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् महाचुन्द जहाँ आयुष्मान् छन्न थे वहाँ गये । जाकर आयुष्मान् छन्नके साथ “संमोदनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने आयुष्मान् छन्नसे यह कहा—

“आयुस छन्न ! ठीक तो है ? ( काल- ) वापन तो हो रहा है ?<sup>२</sup> लौटना तो नहीं मालूम हो रहा है ?”

“आयुस सारिपुत्र ! मुझे ठीक नहीं है,<sup>३</sup> अत्यधिक दह हो रहा है । आयुस सारिपुत्र ! मुझे ठीक नहीं है<sup>३</sup> । आयुस सारिपुत्र ! शस्त्रमार ( आत्महत्या ) करूँगा; मैं जीना नहीं चाहता ।”

“मत आयुष्मान् छन्न ! शस्त्रमार ( आत्महत्या ) करें । गुजार दें, आयुष्मान् छन्न ! हम आयुष्मान् छन्नको गुजारते ( देखना ) चाहते हैं । यदि आयुष्मान् छन्नको अनुकूल ( = सन्पाप ) भोजन नहीं ( प्राप्त ) है, ( तो ) मैं<sup>०</sup> खोज लाऊँगा । यदि आयुष्मान् छन्नको अनुकूल औषध नहीं ( प्राप्त ) है, ( तो ) मैं आयुष्मान् छन्नको अनुकूल औषध खोज लाऊँगा । यदि आयुष्मान् छन्नको योग्य ( = प्रतिरूप ) उपस्थान ( = सेवा करनेवाला ) नहीं है, तो मैं आयुष्मान् छन्नका उपस्थान ( = सेवा ) करूँगा । मत आयुष्मान् छन्न शस्त्र-मार आत्महत्या करें<sup>०</sup> गुजारते ( देखना ) चाहते हैं ।”

“आयुस सारिपुत्र ! मुझे अनुकूल भोजनका अभाव नहीं है । मुझे अनुकूल औषधका अभाव नहीं है । मुझे योग्य उपस्थाकका अभाव नहीं है । बल्कि, आयुस सारिपुत्र ! मैंने चिरकाल तक प्रेमेके साथ शान्ता ( = बुद्ध )का परिचरण ( = सेवन ) किया, अ-प्रेम ( = अ-मनाप )से

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ ५८२ ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ ४०६ ।



नहीं। आयुस सारिपुत्र ! आबकके लिये यही योग्य है, जो कि वह शाकाका प्रेमसे परिचरण करे, अ-प्रेमसे नहीं। 'इस भिक्षु पुनर्जन्म-रहित हो शक्यमार ( आत्महत्या ) करेंगे—ऐसा ही, आयुस सारिपुत्र ! तुम धारण करो ।'

"इस आयुष्मान् छत्रसे कुछ पूछें, यदि आयुष्मान् छत्र प्रश्नका उत्तर देनेका अवकाश करें ।"

"पूछो, आयुस सारिपुत्र ! सुनकर समझेंगा ।"

"आयुस छत्र ! चक्षु, चक्षु-विज्ञान, और चक्षु-विज्ञान द्वारा ( = विज्ञातव्य ) जानने योग्य धर्मोंको—'यह मेरा है', 'यह मैं हूँ', 'यह मेरा आत्मा है'—समझते हो ? ओत्र ० ? प्राण ० ? जिह्वा ० ? काय ० ? मन ० ?"

"आयुस सारिपुत्र ! चक्षु, चक्षु-विज्ञान, और चक्षु-विज्ञान द्वारा विज्ञातव्य धर्मों ( = पदार्थों )को—'यह मेरा नहीं है' 'यह मैं नहीं हूँ', 'यह मेरा आत्मा नहीं है'—मैं समझता हूँ । ओत्र ० । प्राण ० । जिह्वा ० । काय ० । मन ० ।"

"आयुस छत्र ! चक्षुमें, चक्षु-विज्ञानमें, चक्षु-विज्ञान द्वारा विज्ञातव्य धर्मोंमें क्या देख, क्या जान, चक्षु, चक्षु-विज्ञान, चक्षु-विज्ञान द्वारा विज्ञातव्य धर्मोंको—'यह मेरा नहीं है'—समझते हो ? ओत्र ० ? प्राण ० ? जिह्वा ० ? काय ० ? मन ० ?"

"आयुस सारिपुत्र ! चक्षुमें ० धर्मोंमें निरोध ( = विनश्यत्ता )को देख, निरोधको जान, चक्षु ० धर्मोंको—'यह मेरा नहीं है' ०—समझता हूँ । ओत्र ० । प्राण ० । जिह्वा ० । काय ० । मन ० ।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् महापुन्दने आयुष्मान् छत्रसे यह कहा—

"तो, आयुस छत्र ! उन भगवान्‌के इस सनातन ( = नित्यकल्प ) शासन ( = उपदेश ) को भी मनमें करना चाहिये—' ( तृष्णामें ) निश्चित ( = बद्ध )का ( चित्त ) चलित होता है, अ-निश्चितका चलित नहीं होता । चलित ( रागादिके पर्युत्थान ) न होनेपर प्रवृत्ति ( = एकाग्रता ), प्रवृत्ति होनेपर नति ( = तृष्णा ) नहीं होती; नतिके न होनेपर आगति-नति ( = आवागमन ) नहीं होती । आगति-नतिके न होनेपर च्युति ( = स्तुत्यु ) उपपाद ( = उत्पत्ति ) नहीं होती । च्युति-उपपाद न होनेपर न वहाँ ( = इस लोकमें ) न वहाँ ( = परलोकमें ) न दोनोंमें होता है । यही दुग्गका अंत है ।"

तब आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् पुन्द इस जववाद ( = उपदेश )में आयुष्मान् छत्रको उपदेश कर आसनसे उठकर चले गये । तब आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् पुन्दके चले जानेके ओड़ेही समय बाद, आयुष्मान् छत्रने शक्यमार ( आत्महत्या ) करली । तब आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ भगवान्‌ थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्‌की अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! आयुष्मान् छत्रने शक्यमार ( आत्महत्या ) करली । उनकी क्या गति, क्या अभिसंपराप ( = परलोक ) होगा ?"

"क्यों, सारिपुत्र ! छत्र भिक्षुने तेरे सामने ही पुनर्जन्म-रहित होनेका व्याकरण ( = कथन ) किया था ।"

"भन्ते ! वज्जो" ( देश )में पथवज्जित-द्वित गाँव है; वहाँ भन्ते ! आयुष्मान् छत्रके मित्र-कुल, सुहृद्-कुल उपगतव्य ( = जिनके पास जाया जाये ) कुल हैं ( रहते हैं ) ।"

<sup>१</sup> मुज्जकपुर, चम्पारनके जिले तथा कुछ आसपासके प्रदेश ।

“सारिपुत्र ! मैं इतनेसे ‘उपमन्य’ (= जाने आनेके संसर्गवाला) नहीं कहता । सारि-  
पुत्र ! जो इस कायाको छोड़ता है, और दूसरी कायाको ग्रहण करता है उसे मैं ‘उप-मन्य’ कहता  
हूँ । वह छत्र मिथुको नहीं था । ‘अनू-उप-मन्य’ (= पुनर्जन्मरहित) हो छत्र मिथुने शच्चनार  
( आत्म-हत्या ) की—इस प्रकार इसे सारिपुत्र ! समझो (= धारण करो ) ।”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो आधुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्के भाषणको अभिनन्दित  
किया ।



## १४५—पुण्योवाच-सुत्तन्त (३।५।३)<sup>१</sup>

धर्म भगवानकी सङ्क्षिप्तता और त्याग

ऐसा मैंने सुना—०

एक समय भगवान् ध्यावस्तीमें अनाथपिटिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब आसुष्मान् पूर्ण जहाँ भगवान् थे, यहाँ गये । जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे आसुष्मान् पूर्णने भगवान्‌से कहा—

“अच्छा हो, भन्ते ! भगवान् मुझे संक्षिप्तसे धर्म-उपदेश करें, जिस धर्मको भगवान्‌से सुनकर मैं एकाकी, एकांती, अग्रमादी, उद्योगी, संयमी हो विहार करूँ ।”

“पूर्ण ! चक्षुसे विज्ञेय रूप इष्ट = कान्त = सनाप, प्रियरूप = कामोपसंहित, रंजनीय होते हैं । जब मनु जनका अभिनन्दन करता = स्वागत करता, अध्यवसाय करता है । अभिनन्दन करते, ० अध्यवसाय करते हुये इसको, नन्दी (= वृष्णा) उत्पन्न होती है । पूर्ण ! नन्दीकी उत्पत्ति (= समुदय) से दुःखका समुदय कहता हूँ । पूर्ण ! जिह्वासे विज्ञेय रस इष्ट ० । पूर्ण ! चक्षुसे विज्ञेय रूप इष्ट ० हैं । यदि मनु उन्हें अभिनन्दन ० नहीं करता । ० । उसकी नन्दी (= वृष्णा) निरुद्ध (= विलीन) हो जाती है । पूर्ण ! नन्दीके निरोधसे दुःखका निरोध कहता हूँ । ० । पूर्ण ! मनसे विज्ञेय (= ज्ञातव्य) धर्म इष्ट ० हैं । ० । पूर्ण मेरे इस संक्षिप्तमें कथित अवगाद (= उपदेश) से उपदिष्ट हो, कौनसे जनपदमें तू विहार करेगा ?”

“भन्ते ! सूनापरान्त नामक जनपद है, मैं वहाँ विहार करूँगा ।” — “पूर्ण ! सूनापरान्तके मनुष्य घण्ट हैं, ० पशु (= कठोर) हैं । जो पूर्ण ! तुझे सूनापरान्तके मनुष्य आकोषन = परिभाषण (= कृपाय) करेंगे, तो……तुझे क्या होगा ?”

“यदि भन्ते ! सूनापरान्तके मनुष्य मुझे आकोषन = परिभाषण करेंगे, तो मुझे ऐसा होगा—‘सूनापरान्तके मनुष्य भद्र हैं ०, सुमद्र हैं, जो कि यह सुनपर हाथसे प्रहार नहीं करते’—मुझे भगवान् ! ( ऐसा ) होगा, सुगत ! ऐसा होगा ।”

“यदि, पूर्ण ! सूनापरान्तके मनुष्य तुझपर हाथसे प्रहार करें, तो पूर्ण ! तुझे क्या होगा ?”

“० भन्ते ! मुझे ऐसा होगा—‘यह सूनापरान्तके मनुष्य भद्र हैं, ० सुमद्र हैं, जो कि यह मुझे डंडेसे नहीं मारते ० ।’”

० । ० डंडेसे नहीं मारते । ० ० । ० शस्त्रसे नहीं मारते । ० ० । ० शस्त्रसे मेरे प्राण नहीं ले लेते । ०

<sup>१</sup> संयुक्त-निकाय ( ३।५।३ ) में भी ।

“यदि पूर्ण ! सूनापरान्तके मनुष्य मुझे तीक्ष्ण शस्त्रसे मार डालें। तो पूर्ण ! तुझे क्या होगा ?”

“० मुझे, मन्ते ! ऐसा होगा—‘उन भगवान्‌के कोई कोई भावक ( शिष्य ) हैं, जो जिन्दगीसे तम आकर, ऊब कर पूजा कर, ( आत्म-हत्याार्थ ) शस्त्र-हारक ( = शस्त्र लगा लेना ) खोजते हैं। सो मुझे यह शस्त्र-हारक बिना खोजे ही मिल गया।’ भगवान् ! मुझे ऐसा होगा। सुगत ! मुझे ऐसा होगा।”

“साधु ! साधु !! पूर्ण !!! साधु पूर्ण ! तू इस प्रकारके शत्रु, दमसे युक्त हो, सूनापरान्त जनपदमें जास कर सकता है। जिसका तू काल समझे ( वैसा कर )।”

तब आयुष्मान् पूर्ण भगवान्‌के वचनको अभिनन्दन कर अनुमोदन कर, आज्ञागते उठ, भगवान्‌को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर, शयनासन सँभाल, पाश-चीवर ले, निघर सूनापरान्त जनपद था, उधर चारिकाको चढ़ पड़े। कमलः चारिका करते जहाँ सूनापरान्त जनपद था, वहाँ पहुँचे। आयुष्मान् पूर्ण सूनापरान्त जनपदमें विहार करते थे।

तब वहाँ आयुष्मान् पूर्णने उसी वर्षाके भीतर पाँच सौ उपासकोंको ज्ञान कराया। उसी वर्षाके भीतर पाँच सौ उपासिकाओंको ज्ञान कराया, उसी वर्षाके भीतर उन्होंने ( स्वर्ग ) भी तीनों विद्याओंका साक्षात्कार किया। तब आयुष्मान् पूर्ण दूसरे समस्त परिनिर्वाणको प्राप्त हुये।

तब बहुतसे भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ, “जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर, “एक ओर बैठे हुने यह बोले—

“मन्ते ! वह पुण्य ( = पूर्ण ) भाषक कुलपुत्र था, जिसे कि भगवान्‌ने संक्षेपसे उपदेश दिया था, वह काल कर गया; उसकी क्या गति है, क्या अभितंपराय होगा ?”

“भिक्षुओ ! पुण्य कुलपुत्र, पंडित, सत्यवादी, धर्मानुसार ( चलनेवाला ) था। उसने धर्म से मुझे कोई पीड़ा नहीं दी। भिक्षुओ ! पूर्ण कुलपुत्र परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ।”

भगवान्‌ने यह कहा, संतुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणको अभिनंदित किया।



## १४६—नन्दकोवाद-सुत्तन्त (३।५।४)

अनात्म-वाद । बोधव्य

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनार्यपिटिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब महाप्रजापती गौतमी पाँच सौ भिक्षुणियोंके साथ, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गईं; जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर खड़ी हुईं । एक ओर खड़ी महाप्रजापती गौतमीने भगवान्‌से यह कहा—

“भन्ते ! भगवान् भिक्षुणियोंको उपदेश दे । भन्ते ! भगवान् भिक्षुणियोंको अनुशासन करें । भन्ते ! भगवान् भिक्षुणियोंको धार्मिक कथा कहें ।”

उस समय स्वविर भिक्षु बारी बारी ( = पर्वोप ) से भिक्षुणियोंको उपदेश किया करते थे । आयुष्मान् नन्दक ( अपती ) बारीमें भिक्षुणियोंको उपदेश देना नहीं चाहते थे ।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् नन्दकको संबोधित किया—

“नान्द ! बारी बारीसे भिक्षुणियोंको उपदेश करनेमें, आज किसकी उपदेश करनेकी बारी है ?”

“भन्ते ! यह आयुष्मान् नन्दक बारीमें भिक्षुणियोंको उपदेश देना नहीं चाहते ।”

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् नन्दकको संबोधित किया—

“नन्दक ! भिक्षुणियोंको उपदेश दे । नन्दक ! भिक्षुणियोंको अनुशासन कर । माझण ! तू भिक्षुणियोंको धार्मिक कथा कह ।”

“अच्छा, भन्ते !”—( कह ) भगवान्‌को उत्तर दे, आयुष्मान् नन्दक पूर्वाह्न समय पहिन कर, पात्र-चीवर से श्रावस्तीमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुये । श्रावस्तीमें भिक्षाटन कर भोजनोपरान्त भिक्षामे भिक्षु हो, एक भिक्षुके साथ ( = आत्मद्वितीय ) जहाँ राजकाराम<sup>१</sup> था, वहाँ गये । उन भिक्षुणियोंने दूरसे ही आयुष्मान् नन्दकको आते देखा । देखकर आसन बिछा दिया, और पैरोंको ( धोनेके लिये ) पानी भी ( रख दिया ) । आयुष्मान् नन्दक बिछे आसनपर बैठ गये; बैठकर पात्रोंको पछारा, वह भिक्षुणियाँ भी आयुष्मान् नन्दकको अभिवादनकर एक ओर बैठ गईं । एक ओर बैठी उन भिक्षुणियोंने आयुष्मान् नन्दकसे यह कहा—

“सगिनिपो ! प्रतिपूज्य ( = पूज्यकर ) क्या होगी, सो जो जानती है, उन्हें ‘जानती हूँ’—कहना चाहिये; जो नहीं जानती, उन्हें ‘नहीं जानती हूँ’—कहना चाहिये । और जिसका काक्षा ( = संदेह ) वा विमति ( = अग्र ) हो, ( उन्हें ) सुझे ही पूजना चाहिये—‘यह भन्ते !

<sup>१</sup> श्रावस्ती नगरके भीतर यह भिक्षुणियोंका निहार था ।

कैसे, इसका क्या अर्थ है' ।"

"मन्ते ! आर्य मन्दकके इतने ( कहने )से भी हम सन्तुष्ट, = अभिरुद्धा है, जोकि ज्ञाप्य ( = ज्ञप्य ) मन्दक हमें प्रचारित ( = सुष्ट ) करते हैं ।"

"तो क्या मानती हो, मगिनियो ! चक्षु निश्चय है वा अनिश्चय ?"

"अनिश्चय है, मन्ते !"

"जो ( पदार्थ ) अनिश्चय है, वह दुःख है वा सुख ?"

"दुःख, मन्ते !"

"जो अनिश्चय, दुःख, विपरिणामधर्मा ( = परिवर्तन शील ) है, क्या उसे—'यह मैं हूँ', 'यह मेरा है', 'यह मेरा आत्मा है'—ऐसा समझना युक्त ( = कल्प ) है ?"

"नहीं, मन्ते !"

"तो क्या मानती हो, मगिनियो ! श्रोत्र ० । ० ग्राण ० । ० जिह्वा ० । ० काय ० ।"

"तो क्या मानती हो, मगिनियो ! मन निश्चय है वा अनिश्चय ?"

"० ऐसा समझना युक्त है ?"

"नहीं मन्ते !"

"सो किस हेतु ?"

"मन्ते ! पूर्व ही हमने इसको यथार्थ कह ठीकसे प्रज्ञा द्वारा सुवेक्षा था—'यह मेरे आध्यात्मिक आधतन अनिश्चय है' ।"

"साधु, साधु, मगिनियो ! आर्यवाचकको इसे यथार्थतः ठीकसे प्रज्ञाद्वारा वेक्षणपर ऐसा होता है ।"

"तो क्या मानती हो, मगिनियो ! रूप निश्चय है वा अ-निश्चय ?"

"अनिश्चय है, मन्ते !" ० ।

"० शब्द ० ?" "० अ-निश्चय ० !" ० ।

"० गन्ध ० ?" "० अ-निश्चय ० !" ० ।

"० रस ० ?" "० अ-निश्चय ० !" ० ।

"० स्पर्श ० ?" "० अ-निश्चय ० !" ० ।

"० धर्म ० ?" "० अ-निश्चय ० !" ० ।

"सो किस हेतु ?" "मन्ते ! पूर्व ही ०" ।

"साधु, साधु, मगिनियो ! ० ।

"तो क्या मानती हो, मगिनियो ! चक्षु-विज्ञान निश्चय है वा अनिश्चय ?"

"अ-निश्चय, मन्ते !" ० ।

"० श्रोत्र-विज्ञान ० ?" "० अ-निश्चय ० !" ० ।

"० ग्राण-विज्ञान ० ?" "० अ-निश्चय ० !" ० ।

"० जिह्वा-विज्ञान ० ?" "० अ-निश्चय ० !" ० ।

"० काय-विज्ञान ० ?" "० अ-निश्चय ० !" ० ।

"० मनो-विज्ञान ० ?" "० अ-निश्चय ० !" ० ।

"सो किस हेतु ?" "मन्ते ! पूर्व ही ०" ।

"साधु, साधु, मगिनियो ! ० ।

"जैसे, मगिनियो ! जलते तेल-प्रदीपका तेल भी अ-निश्चय है = विपरिणामधर्मा है, वस्तु



मी अनित्य = विपरिणाम-धर्मा है, अर्चि (= जौ ) मी अनित्य = विपरिणाम-धर्मा है, आभा (= प्रकाश ) मी ० । भगिनियो ! जो ऐसा कहे—इस जलते तेल-प्रदीपका तेल मी अनित्य है ०, बत्ती मी ०, अर्चि मी ०, किन्तु जो इसकी आभा (= प्रकाश ) है, वह नित्य = ध्रुव = शाश्वत = अ-विपरिणाम-धर्मा है । भगिनियो ! वह ऐसा कहते क्या ठीक कहेगा ?”

“नहीं, मन्ते !”

“सो किस हेतु ?”

“मन्ते ! इस जलते तेल-प्रदीपका तेल मी अनित्य है, बत्ती मी ०, अर्चि मी ०, तो आभा तो पहिले ही अनित्य = विपरिणाम-धर्मा हो गई ।”

“ऐसे ही, भगिनियो ! जो यह कहे—‘मेरे छः आध्यात्मिक आयतन’ तो अनित्य हैं; किन्तु छः आप्तनोंको लेकर (= प्रतीत्य ) जो अनुभव (= प्रतिसंवेदन होता है—सुख, दुःख, या अ-दुःख-अ-सुख, वह नित्य = ध्रुव = शाश्वत = अ-विपरिणाम धर्मा है । भगिनियो ! वह ऐसा कहते क्या ठीक कहेगा ?”

“नहीं, मन्ते !”

“सो, किस हेतु ?”

“मन्ते ! उस उस प्रत्यय (= कारण )को लेकर वह वेदना उत्पन्न होती है; उस उस प्रत्ययके निरोधसे वह वह वेदना निरुद्ध होती है ।”

“साधु, साधु, भगिनियो ! ० ।

“जैसे, भगिनियो ! ( एक ) छप्पे सारवान् महावृक्षका मूल मी अनित्य है = विपरिणाम धर्मा है, स्कंध मी ०, शाखा-पत्र मी ०, छाया मी ० । भगिनियो ! जो यह कहे—इस ० महावृक्ष का मूल मी ०, स्कंध मी ०, शाखा-पत्र मी अनित्य = विपरिणाम-धर्मा है, किन्तु जो इसकी छाया है, वह नित्य ० है । भगिनियो ! वह ऐसा कहते क्या ठीक कहेंगे ?”

“नहीं, मन्ते !”

“सो किस हेतु ?”

“मन्ते ! इस ० महावृक्षका मूल मी ०, ० शाखा-पत्र मी अनित्य ० है; तो छाया तो पहिले ही, अनित्य ० हुई ।”

“ऐसे ही भगिनियो ! जो यह कहे—‘मेरे छः धातु आयतन तो अनित्य हैं, किन्तु छः धातु-आप्तनोंको लेकर जो अनुभव (= वेदना ) सुख, दुःख या अ-दुःख-अ-सुख होता है, वह नित्य = ध्रुव ० है । भगिनियो ! वह ऐसा कहते क्या ठीक कहेगा ?”

“नहीं मन्ते !”

“सो किस हेतु ?”

“मन्ते ! उस उस प्रत्ययको लेकर ० निरुद्ध होती है ।”

“साधु, साधु, भगिनियो ! ० ।

“जैसे, भगिनियो ! चतुर गोघातक या गोघातकका आगिर्द (= अन्तेवासी ) गायको मारकर, तेज गाय काटनेके छुरेसे गायके भीतरी मांस और बाहरी चमड़ेको लुकसान पहुँचाये बिना (= अनुपहत्य ) गायको काटे—जो जो वहाँ भीतर विलिप्त, स्वाधु (= नश ), रंधन है, उसे तेज ० छुरेसे छिन्न करे, काटे—‘‘ छिन्नकर काटकर—‘‘, बाहरी चमड़ेको आग फटकार कर, उसी चमड़ेमें उस गायको डीक कर यह कहे—‘यह गाय वैसे (= पहिलेकी तरह ) ही इस चर्मसे युक्त है’ । भगिनियो ! वह ऐसा कहते क्या ठीक कहेगा ?”

“नहीं मन्ते !”

“सो किस हेतु ?”

“उसे मन्ते ! चतुर गोघातकने • इस धर्मसे युक्त है, लेकिन वह गाय उस धर्मसे युक्त नहीं है ।”

“मगिनियो ! अर्थको समझानेके लिये मैंने यह उपमा (= इष्टांत ) कही । यह यहाँ अर्थ है—भीतरी मांस-काय (= • समुदाय ) यह छः आध्यात्मिक आद्यतनोंका नाम है । बाहरी धर्मकाय यह छः बाह्य आद्यतनोंका नाम है । भीतरी विज्ञान, भीतरी स्नायु भीतरी बंधन, यह मगिनियो ! मन्दो = रामका नाम है । तीक्ष्ण गोविकर्त्तन (= गाय काटनेका दुरा ) यह आर्य प्रजाका नाम है, जो यह आर्य प्रजा भीतर क्लेश (= मल ), भीतरी संयोजन = भीतरी बंधनको छेदन करती है, काटती है” ।

“मगिनियो ! यह सात बोध्यंग हैं, जिनकी भावना = बहुलीकरण (= अन्वयस ) करनेसे, मिथु इसी जन्ममें आत्सर्विके अपसे आत्मव-रहित (= अनात्मव ) चेतो-विमुक्ति प्रज्ञामुक्ति-को स्वयं जान कर, साक्षान्कार कर, प्राप्त कर विहरता है । कौनसे सात ?—यहाँ, मगिनियो ! मिथु विषेक-निश्चित (= एकान्त चिन्तनसे संबद्ध ), विराग-निश्चित, निरोध-निश्चित अवसर्ग (= त्याग ) परिणामवाले स्मृति-संबोध्यांगकी भावना करता । • धर्म-विषय-संबोध्यांग • । • धीर्य-संबोध्यांग • । • प्रीति-संबोध्यांग • । • प्रश्रद्धा-संबोध्यांग • । • समाधि-संबोध्यांग • । • उपेक्षा-संबोध्यांग • । • मगिनियो ! यह सात बोध्यंग हैं, जिनकी भावना • करनेसे • इसी जन्ममें • प्रज्ञा विमुक्तिको • प्राप्त कर विहरता है ।”

तब आयुष्मान् नन्दकने मिथुणियोंको इस अववाच (= उपदेश )से उपदेश कर प्रेरित किया—

“जाओ, मगिनियो ! ( जानेका ) काल है ।”

तब वह मिथुणियाँ आयुष्मान् नन्दकके माधनको अभिनन्दित = अनुमोदित कर, जासनसे उठ, आयुष्मान् नन्दकको अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गईं । जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर खड़ी हो गईं । एक ओर खड़ी उन मिथुणियोंसे भगवान्ने यह कहा—

“जाओ, मिथुणियो ! ( यह जानेका ) काल है ।”

तब वह मिथुणियाँ भगवान्को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर, चली गईं । तब उन मिथुणियोंके चले जानेके बोधे ही समय बाद भगवान्ने मिथुओंको संबोधित किया—

“जैसे, मिथुओ ! उसी दिन चतुर्दशी (= अमावास्या )के उपोसवके दिन बहुत लोगोंको कांक्षा या विमति (= संशय ) नहीं होती—‘क्यों जी, चन्द्रमा क्षीण है, वा पूर्ण है’, क्योंकि चन्द्रमा क्षीण ही होता है । इसी प्रकार, मिथुओ ! वह मिथुणियाँ नन्दककी धर्म-देशनासे सन्तुष्ट हुई हैं, किन्तु परिपूर्ण-संकल्प नहीं हुई हैं ।”

तब भगवान्ने आयुष्मान् नन्दकको संबोधित किया—

“तो नन्दक ! तू कल भी उसी मिथुणियोंको उस अववाचसे उपदेश कर ।”

“अच्छा, मन्ते !”—( कह ) आयुष्मान् नन्दकने भगवान्को उत्तर दिया ।

तब आयुष्मान् नन्दक उस रातके भीतनेपर, पूर्वाह्न-समय पहिन कर, पात-बीवर ले आबस्तीमें बिछके लिये प्रविष्ट हुये । आबस्तीमें निश्वादन कर, भिक्षासे निवृत्त (= निवृत्त ) हो भोजनोपरान्त, जहाँ राजकाराम था, वहाँ गये । उन मिथुणियोंने दूरसेही आयुष्मान् नन्दकको



आते देखा । देव कर आसन बिछा दिया; और पैरोंको ( धोनेके लिये ) पानी भी ( रख-  
दिया ) । \* एक ओर बैठी उन भिक्षुणियोंसे आयुष्मान् नन्दकने यह कहा—

“भगिनिबो ! प्रतिपृच्छ कथा होगी \* ” भिक्षुणियोंसे भगवान्ने यह कहा—

“जाबो, भिक्षुणियो ! ( यह जानेका ) काल है ।”

\* उन भिक्षुणियोंके चले जानेके बोदे हो समय बाद भगवान्ने भिक्षुकोंको संबोधित  
किया—

“जैसे भिक्षुजो ! उसी दिन श्रवदशी ( = पूर्णिमा )के उपोसवको बहुत ( = सारे )  
लोगोंको वीक्षा या विभक्ति ( = संशय ) नहीं होती—‘क्यों जी, चन्द्रमा क्षीण है, या पूर्ण है’—  
क्योंकि चन्द्र पूर्ण होता है, इसी प्रकार, भिक्षुजो ! वह भिक्षुणियाँ नन्दककी धर्म-देशनासे संतुष्ट  
हुई हैं, और परिपूर्ण संकल्प भी हुई हैं । भिक्षुजो ! उन पाँच सौ भिक्षुणियोंमें जो ( सबसे )  
पिछली हैं, वह भिक्षुणियाँ भी स्मृतआरम्भ हैं, ( निर्वाण-मार्गसे ) न पतित होनेवाली, ( निर्वाण-  
प्राप्तिमें ) नियत, संबोधि-परायण हैं ।”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्के भाषणको अभिनन्दित किया ।

## १४७-चूल-राहुलोवाद-सुत्तन्त (३।५।५)

अनात्म-वाद

ऐसा मैंने सु-।

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिटिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब एकान्तमें ध्यानावस्थित भगवान्को यह हुआ—

“राहुलको विमुक्ति (= मुक्ति) के लिये परिपाक होने लायक धर्म (= विचार) परिपाक हो गये हैं; क्यों न मैं राहुलको आगे आश्रयों (= चित्त-मलों) के क्षयकी ओर ले चलूँ।”

“तब भगवान् पूर्वोक्त-समय पहिन कर, पात्र-चीवर ले श्रावस्तीमें पिण्ड (= भिक्षा) के लिये प्रविष्ट हुये । आश्रयोंमें निवाटनकर मोज्जोपरान्त, भिक्षासे निवृत्त कर आयुष्मान् राहुलको संबोधित किया—

“राहुल ! आसन (= विषोद्वन) को लो, दितके विहारके लिये जहाँ अन्धवृद्ध है, वहाँ चलेंगे।”

“अच्छा, मन्ते !” ( यह ) आयुष्मान् राहुलने भगवान्को उत्तर दे, आसन ले भगवान्के पीछे पीछे चले ।

उस समय जनेक बात-सदृश (= सात्व) देक्ता भगवान्का—‘आत भगवान् आयुष्मान् राहुलको आगे आश्रयोंके क्षयकी ओर ले चलेंगे’—( सोच ) भगवान्का अनुगमन कर रहे थे ।

तब भगवान् अन्धवृद्धमें प्रविष्ट हो एक वृद्धके नीचे बिठे आसनपर बैठे । आयुष्मान् राहुल भी भगवान्को अनुगमन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् राहुलसे भगवान्ने यह कहा—

“तो क्या मानता है, राहुल ! चक्षु (= आँख) नित्य है, या अ-नित्य ?”

“अ-नित्य है, मन्ते !”

“जो, अनित्य है, वह दुःख है या सुख ?”

“दुःख, मन्ते !”

“जो अनित्य, दुःख, विपरिणाम-धर्मा है, क्या उसे—‘यह मैं हूँ’, ‘यह मेरा है’, ‘यह मेरा आत्मा है’—ऐसा समझना युक्त है ?”

“नहीं, मन्ते !”

० रूप ० । ० चक्षुर्विज्ञान ० । ० चक्षु-संस्पर्श ० । ० जो चक्षु-संस्पर्शके कारण उत्पन्न वेदना-संज्ञा-संस्कार-विज्ञान विषयक ( ज्ञान ) ० ।

१ विषय और इन्द्रियके समागमको संस्पर्श कहते हैं ।



० ओत्र ० । ० शब्द ० । ० ओत्र-विज्ञान ० । ० ओत्र-संस्पर्श ० । ० जो ओत्र-संस्पर्शके कारण उत्पन्न वेदना ० ।

० घ्राण ० । ० गंध ० । ० घ्राण-विज्ञान ० । ० घ्राण-संस्पर्श ० । ० जो घ्राण-संस्पर्शके कारण उत्पन्न वेदना ० ।

० जिह्वा ० । ० रस ० । ० जिह्वा-विज्ञान ० । ० जिह्वा-संस्पर्श ० । ० जो जिह्वा-संस्पर्शके कारण उत्पन्न वेदना ० ।

० काय ० । ० स्पर्श ० । ० काय-विज्ञान ० । ० काय-संस्पर्श ० । ० जो काय-संस्पर्शके कारण उत्पन्न वेदना ० ।

० मन ० । ० धर्म ० । ० मनो-विज्ञान ० । ० मन-संस्पर्श ० । ० जो मन-संस्पर्शके कारण उत्पन्न वेदना-संज्ञा-संस्कार-विज्ञान-विषयक ( ज्ञान ) ० ।

“राहुल ! इस प्रकार देखते भुगवान् ( = बहुश्रुत ) आर्य-आवक चक्षुमें निर्वेद ( = उदासीनता ) को प्राप्त होता है । रूप ० । चक्षु-विज्ञान ० । चक्षु-संस्पर्श ० । चक्षु-संस्पर्शके कारण उत्पन्न वेदना-संज्ञा-संस्कार-विज्ञान विषयक ( ज्ञान ) से निर्वेदको प्राप्त होता है ।

० ओत्र ० । शब्द ० । ओत्र-विज्ञान ० । ओत्र-संस्पर्श ० । ओत्र-संस्पर्शके कारण उत्पन्न वेदना-संज्ञा-संस्कार-विज्ञान विषयक ( ज्ञान ) ० ।

० घ्राण ० गंध ० । घ्राण-विज्ञान ० । घ्राण-संस्पर्श ० । जो घ्राण-संस्पर्शके कारण उत्पन्न वेदना ० ० ।

० जिह्वा ० । रस ० । जिह्वा-विज्ञान ० । जिह्वा-संस्पर्श ० । जिह्वा-संस्पर्शके कारण उत्पन्न वेदना ० ० ।

० काय ० । स्पर्श ० । काय-विज्ञान ० । काय-संस्पर्श ० । काय-संस्पर्शके कारण उत्पन्न वेदना ० ० ।

० मन ० । धर्म ० । मनो-विज्ञान ० । मन-संस्पर्श ० । मन-संस्पर्शके कारण उत्पन्न वेदना-संज्ञा-संस्कार-विज्ञान विषयक ( ज्ञान ) से निर्वेदको प्राप्त होता है । निर्वेदको प्राप्त हो विरक्त होता है । विरक्त होनेसे विमुक्त होता है । विमुक्त ( = मुक्त ) होनेपर ‘विमुक्त हूँ’—ज्ञान होता है; ( फिर ) ‘जन्म ( = आवागमन ) नष्ट होगया, ब्रह्मचर्यवास अन्तम होगया, करणीय किया जा चुका, और अब यहाँ करनेको ( दोष ) नहीं’—यह जानता है ।”

भगवान् ने यह कहा, संस्तुष्ट हो आयुष्मान् राहुलने भगवान् के भाषणको अभिर्नन्दित किया । इस व्याकरण ( = उपदेश ) के कहे जाते समय आयुष्मान् राहुलका चित्त, उपादान ( = ग्रहण ) न कर, आसक्तों ( = जन्म मरणके कारण भूत चित्त-मल ) से मुक्त होगया । और इन अनेक शत-सहस्र देवतार्थोंको विरज = निर्मल धर्म चक्षु—‘जो कुछ उत्पन्न होता है, वह नाश होता है’—उत्पन्न हुआ ।

## १४८—छ-छक्क-सुत्तन्त (३।५।६)

इन्द्रिय, विषय, विज्ञान और तीनोंका समागम । अनात्म-वाद ( विस्तार-पूर्वक )

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिटिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

वहाँ भगवान्ने मिश्रुजोंको संबोधित किया—“मिश्रुजो !”

“भदन्त !”—( कह ) उन मिश्रुजोंने भगवान्को उत्तर दिया ।”

भगवान्ने यह कहा—“मिश्रुजो ! तुम्हें आदि कल्याण, मध्य-कल्याण पर्यवसान (= अन्त ) कल्याण, सार्यक = स-स्यञ्जन धर्मको कहता हूँ ; केवल, परिपूर्ण, परिशुद्ध मध्यधर्मको प्रकाशित करता हूँ ; जो कि यह छःछक्क हैं, उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।”

“अच्छा, भन्ते !”—( कह ) उन मिश्रुजोंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“ ( १ ) छ आध्यात्मिक आयतनोंको जानना चाहिये । ( २ ) छ बाह्य आयतनोंको जानना चाहिये । ( ३ ) छ विज्ञान-कार्योंको जानना चाहिये । ( ४ ) छ स्पर्श-कार्योंको जानना चाहिये । ( ५ ) छ वेदना-कार्योंको जानना चाहिये । ( ६ ) छ मृत्पा-कार्योंको जानना चाहिये ।

( १ ) “यह जो कहा—‘छ आध्यात्मिक आयतनोंको जानना चाहिये’—सो किसके लिये कहा ?—( १ ) चक्षु-आयतन\*, ( २ ) श्रोत्र ०, ( ३ ) घ्राण ०, ( ४ ) जिह्वा ०, ( ५ ) काय ०, ( ६ ) मन-आयतन\*\*\* इन्हींके लिये कहा । यह प्रथम छक्क है ।

( २ ) “यह जो कहा—‘छ बाह्य आयतनोंको जानना चाहिये’—सो किस लिये कहा ?—( १ ) रूप-आयतन, ( २ ) शब्द ०, ( ३ ) गंध ०, ( ४ ) रस ०, ( ५ ) स्पर्श ०, ( ६ ) धर्म-आयतन,\*\*\* इन्हींके लिये कहा । यह द्वितीय छक्क है ।

( ३ ) “०—‘छ विज्ञान-कार्य ०’ ० ?—( १ ) चक्षुद्वारा रूपमें चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है ; ( २ ) श्रोत्र ०, ( ३ ) घ्राण ०, ( ४ ) जिह्वा ०, ( ५ ) काय ०, ( ६ ) मनो-विज्ञान ।\*\*\* इन्हींके लिये कहा । यह तृतीय छक्क है ।

( ४ ) “०—‘छ स्पर्श-कार्य ०’ ० ?—( १ ) चक्षुद्वारा रूपमें चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है ; ( चक्षु, रूप और चक्षुर्विज्ञान ) इन तीनोंका संगम ( चक्षु-स्पर्श ) है । ( २ ) श्रोत्र ० । ( ३ ) घ्राण ० । ( ४ ) जिह्वा ० । ( ५ ) काय ० । मनः ० ।\*\*\* इन्हींके लिये कहा । यह चतुर्थ छक्क है ।

( ५ ) “०—‘छ वेदना-कार्य ०’ ० ?—( १ ) चक्षुद्वारा रूपमें चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है ; तीनोंका संगम स्पर्श है ; स्पर्शके कारण वेदना होती है । ( २ ) श्रोत्र ० । ( ३ ) घ्राण ० ।

\* काय = निकाय = समुदाय ।

\*\* आयतन = इन्द्रिय ।



( ४ ) जिह्वा ० । ( ५ ) काय ० । ( ६ ) मन ० । 'इन्हींके लिये कहा । यह पंचम छक (= षट्क) है ।

( ६ ) " ०—'इ तृष्णा-कार्योको जानना चाहिये'—० ?—( १ ) चक्षुद्वारा रूपसे चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है; तीनोंका संगम स्पर्श है; स्पर्शके कारण वेदना होती है । ( २ ) श्रोत्र ० । ( ३ ) घ्राण ० । ( ४ ) जिह्वा ० । ( ५ ) काय ० । ( ६ ) मनद्वारा धर्ममें मनोविज्ञान उत्पन्न होता है; तीनोंका संगम स्पर्श है; स्पर्शके कारण वेदना होती है; वेदनाके कारण तृष्णा होती है । यह जो कहा—'इ तृष्णा-कार्योको जानना चाहिये'—सो इसीलिये कहा । यह षट् छक है ।

( शब्दिय आत्मा नहीं )

( १ ) 'जो कहे—'चक्षु आत्मा है', उसे ( क्याळ ) नहीं पैदा होता, चक्षुको उत्पत्ति या विनाश (= शब्द ) भी दिखाई देता है । किन्तु जिसे उत्पत्ति भी, विनाश भी दिखाई देता है—'मेरा आत्मा उत्पन्न होता है, नाश होता है'—ऐसा उसे ( क्याळ ) आता है; इसलिये उसे ( यह क्याळ ) नहीं उत्पन्न होता । जो कहे—'चक्षु आत्मा है', ( सो नहीं ) चक्षु अनात्मा (= नहीं आत्मा ) है । ( २ ) ० रूप ० । रूप अनात्मा है । इस प्रकार चक्षु अनात्मा है, रूप अनात्मा है । ( ३ ) ० चक्षु-विज्ञान ०; चक्षुर्विज्ञान अनात्मा है । इस प्रकार चक्षु अनात्मा है, रूप अनात्मा है, चक्षुर्विज्ञान अनात्मा है । ( ४ ) ० चक्षु-संस्पर्श ०; चक्षु-संस्पर्श अनात्मा है । इस प्रकार चक्षु अनात्मा है, रूप अनात्मा है, चक्षुर्विज्ञान अनात्मा है, चक्षु-संस्पर्श अनात्मा है । ( ५ ) ० वेदना ०; वेदना अनात्मा है । इस प्रकार चक्षु अनात्मा है, रूप अनात्मा है, चक्षुर्विज्ञान अनात्मा है, चक्षु-संस्पर्श अनात्मा है, वेदना अनात्मा है । ( ६ ) ० तृष्णा ०; तृष्णा अनात्मा है । इस प्रकार चक्षु-अनात्मा है, रूप अनात्मा है, चक्षुर्विज्ञान अनात्मा है, चक्षु-संस्पर्श अनात्मा है, वेदना अनात्मा है, तृष्णा अनात्मा है ।

( २ ) 'जो कहे—'श्रोत्र आत्मा है', ० । ० । इस प्रकार श्रोत्र-अनात्मा है, शब्द ०, श्रोत्र-विज्ञान ०, श्रोत्र-संस्पर्श ०, वेदना ०, तृष्णा अनात्मा है ।

( ३ ) " ०—'घ्राण आत्मा है', ० । ० । ० ।

( ४ ) " ०—'जिह्वा आत्मा है', ० । ० । ० ।

( ५ ) " ०—'काय आत्मा है', ० । ० । ० ।

( ६ ) " ०—'मन आत्मा है', ० । ० । इस प्रकार मन अनात्मा है, धर्म अनात्मा है, मनोविज्ञान अनात्मा है, मन-संस्पर्श अनात्मा है, वेदना अनात्मा है, तृष्णा अनात्मा है ।

( साक्षात्प-वाद )

( १ ) 'मिथुजो ! यह साक्षात्- (= आत्म-नित्यतावाद ) के समुद्र (= उत्पत्ति ) को ओर ले जानेवाली प्रतिपदा (= मार्ग ) है—

'चक्षुको समझता है—'यह मेरा है', 'यह (= चक्षु ) मैं हूँ', 'यह मेरा आत्मा है' । रूपको ० । चक्षुर्विज्ञानको ० । चक्षु-संस्पर्शको ० । वेदनाको ० । तृष्णाको ० ।

( २ ) 'श्रोत्रको ० । ० । ०, 'यह मेरा आत्मा है' ।

( ३ ) 'घ्राणको ० । ० । ०, 'यह मेरा आत्मा है' ।

( ४ ) 'जिह्वाको ० । ० । ०, 'यह मेरा आत्मा है' ।

( ५ ) 'कायको ० । ० । ०, 'यह मेरा आत्मा है' ।

( ६ ) 'मनको समझता है—'यह ( मन ) मेरा है', 'यह मैं हूँ', 'यह मेरा आत्मा है' । धर्मको ० । मनो विज्ञानको ० । मन-संस्पर्शको ० । वेदनाको ० । तृष्णाको ० ।

( संन्यास-वाद-संगम )

“भिक्षुजो ! यह सत्कायके निरोध (= विनाश) की ओर ले जानेवाली प्रतिपदा है—

( १ ) “चक्षुको समस्तता है—‘यह (= चक्षु) मेरा नहीं’, ‘यह मैं नहीं’, ‘यह मेरा आत्मा नहीं’ । रूपको ० । चक्षुर्विज्ञानको ० । चक्षु-संस्पर्शको ० । वेदनाको ० । तृष्णाको ० ।

( २ ) “श्रोत्रको ० । ० । ०, ‘यह मेरा आत्मा नहीं’ ।

( ३ ) “घ्राणको ० । ० । ०, ‘यह मेरा आत्मा नहीं’ ।

( ४ ) “जिह्वाको ० । ० । ०, ‘यह मेरा आत्मा नहीं’ ।

( ५ ) “कायको ० । ० । ०, ‘यह मेरा आत्मा नहीं’ ।

( ६ ) “मनको समस्तता है—‘यह मेरा नहीं’, ‘यह मैं नहीं’, ‘यह मेरा आत्मा नहीं’ । धर्मको ० । मनो-विज्ञानको ० । मन-संस्पर्शको ० । वेदनाको ० । तृष्णाको ० ।

( अनुशयोको कल्पति )

( १ ) “भिक्षुजो ! चक्षुद्वारा, रूपमें, चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है; तीनोंका संगम स्पर्श है; स्पर्शसे सुखा, दुःखा या अदुःख-असुखा वेदना (= अनुभव) उत्पन्न होती है । वह (अनुभव करनेवाला व्यक्ति) सुखा वेदनासे संयुक्त होनेपर अभिनन्दन = अभिवन्दन करता है, आसक्त हो ठहरता है । उसे (मनसे) राग-अनुशय<sup>१</sup> चिपटता है । वह दुःखा वेदनासे संयुक्त होनेपर, शोक करता है, कलपता है, विलाप करता है, छाती पीट कर रोता है, मूर्छित होता है । उसे प्रतिघ<sup>२</sup> अनुशय चिपटता है । वह अदुःख-असुखा वेदनासे संयुक्त होनेपर, उस वेदनाके समुदय (= उत्पन्न), विनाश (= क्लृप्तगमन), आत्माद, दुष्परिणाम (= आदिनव), और निस्सरण (= निकलनेका रास्ता) की धार्यसे नहीं जानता । उसे अविद्या-अनुशय चिपटता है (= अनुशेते) । वह, सुखा वेदनावाले राग-अनुशयको बिना छोड़े, दुःखा वेदनावाले प्रतिघ-अनुशयको बिना हटाये, अदुःख-असुखा वेदनावाले अविद्या-अनुशयको बिना मारे, अविद्याको बिना छोड़े, विद्याको बिना उत्पादित किये, इसी जन्ममें ( संसार- ) दुःखका अन्त करनेवाला होगा, यह स्थान (= संभव) नहीं ।

( २ ) “० श्रोत्र ० । ० । ०; यह स्थान नहीं ।

( ३ ) “० घ्राण ० । ० । ०; यह स्थान नहीं ।

( ४ ) “० जिह्वा ० । ० । ०; यह स्थान नहीं ।

( ५ ) “० काय ० । ० । ०; यह स्थान नहीं ।

( ६ ) “० मन ० । ० । ०; यह स्थान नहीं ।

( अनुशयोका विनाश, दुःखका विनाश )

( १ ) “भिक्षुजो ! चक्षुद्वारा, रूपमें, चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है; तीनोंका संगम स्पर्श है; स्पर्शसे सुखा, दुःखा, अदुःख-असुखा वेदना उत्पन्न होती है । वह सुखा वेदनासे संयुक्त होनेपर अभिनन्दन = अभिवन्दन नहीं करता, न आसक्त हो ठहरता है । उसे राग-अनुशय नहीं चिपटता । दुःख वेदनासे संयुक्त होनेपर न शोक करता है, न कलपता है, न विलाप (= परिदेवन) करता है, न छाती पीट कर रोता है, न मूर्छित होता है । उसे प्रतिघ-अनुशय नहीं चिपटता । वह अदुःख-असुखा वेदनासे संयुक्त होनेपर, उस वेदनाके समुदय, विनाश, आत्माद, दुष्परिणाम और

<sup>१</sup> यक्ष्म संस्कार ।<sup>२</sup> प्रतिहिंसा दुःख देनेवालेके प्रति ।



निसंस्पर्शको धर्माधीन जानता है। उसे अ-विद्या-अनुशय नहीं विपटता। वह सुखा वेदनावाले राग-अनुशयको छोड़, दुःखा वेदनावाले प्रतियोगानुशय को हटा, अदुःख-असुखा वेदनावाले अविद्या-अनुशयको मार, अ-विद्याको छोड़, विद्याको उत्पादित कर, इसी जन्ममें दुःखका अन्त करनेवाला होगा; यह स्थान (= संसृति ) है।

( २ ) “ ० ओन्न ० । ० । ० ; यह स्थान है ।

( ३ ) “ ० प्राण ० । ० । ० ; यह स्थान है ।

( ४ ) “ ० जिह्वा ० । ० । ० ; यह स्थान है ।

( ५ ) “ ० काय ० । ० । ० ; यह स्थान है ।

( ६ ) “ ० मन ० । ० । ० ; यह स्थान है ।

( निर्वाण-प्राप्ति )

“मिथुनो ! इस प्रकार देखते, भूतवान् आर्षेयायक चक्षुर्मे निर्वेद (= इयामीनता ) को प्राप्त होता है, रूप ० । चक्षुर्विज्ञान ०, चक्षुर्संस्पर्श ०, वेदना ०, तृष्णा ० । ओन्न ०, शब्द ०, ओन्न-विज्ञान ०, ओन्नसंस्पर्श ०, वेदना ०, तृष्णा ० । प्राण ०, संघ ०, प्राणविज्ञान ०, प्राण-संस्पर्श ०, वेदना ०, तृष्णा ० । जिह्वा ०, रस ०, जिह्वा विज्ञान ०, जिह्वा-संस्पर्श ०, वेदना ०, तृष्णा ० । काय ०, स्पर्श ०, काय-विज्ञान ०, काय-संस्पर्श ०, वेदना ०, तृष्णा ० । मन ०, धर्म ०, मनो-विज्ञान ०, मन-संस्पर्श ०, वेदना, तृष्णामें निर्वेदको प्राप्त होता है। निर्वेदको प्राप्त हो विरक्त होता है। ०<sup>१</sup> ; और कुछ करनेको यहाँ ( शेष ) नहीं—यह जानता है।”

मगवान्ने यह कहा, समुत्त हो उन मिथुनोंने मगवान्के भाषणको अभिनन्दित किया।

इस व्याकरण (= उपदेश ) के कहे जाते समय साथ मिथुनोंका उपादान न कर, आजपोंसे चित्त मुक्त हो गया।

## १४६—महा-सङ्ख्यतन-सुत्तन्त (३।५।७)

तृष्णा और दुःख

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान्ने श्रावस्तीमें अनाधर्पिण्डिके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

वहाँ भगवान् भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ !”

“भद्रेत !”—( कह ) उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—“भिक्षुओ ! महा-सङ्ख्यतन ( = ० स आद्यतन ) तुम्हें उपदे-  
शाता हूँ, सुनो अच्छी तरह मनमें करो । कहता हूँ ।”

“अच्छा, भन्ते !”—( कह ) इन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान्ने यह कहा—( १ ) “भिक्षुओ ! चक्षुको यथार्थतया न जाने, न देखे, रूपोंको ०, चक्षुर्विश्रामको ०, चक्षुःसंस्पर्शको ०, और चक्षुःसंस्पर्शसे जो सुखा, दुःखा, अदुःख-असुखा वेदना उत्पन्न होती है, इसे भी यथार्थतया न जाने, न देखे, चक्षुमें रक्त होता है, रूपमें ०, चक्षु-विश्राममें ०, चक्षु-संस्पर्शमें ०, और चक्षु-संस्पर्शसे जो सुखा, दुःखा, अदुःख-असुखा वेदना उत्पन्न होती है, उसमें रक्त होता है । रक्त, संयुक्त, संसृष्ट ( = मोह प्राप्त ), आस्वाद देखनेवाले हो विहरते उस ( पुरुषके लिये, भविष्यमें पाँच उपादान-स्फंध संचित हो जाते हैं । और वहाँ वहाँ अभिनन्दन करनेवाली, राग-युक्त, पुनर्जन्म देनेवाली उसकी मन्दनी = तृष्णा बढ़ती है । इसके कायिक दरघ ( = डर, खेद ) भी बढ़ते हैं, चेतसिक ( = मानस ) दरघ भी बढ़ते हैं, कायिक सन्ताप भी ०, चेतसिक सन्ताप ०, कायिक परिदाह ( = जलन ) भी ०, चेतसिक परिदाह भी ०, । वह कायिक दुःखको भी, चेतसिक दुःखको भी अनुभव करता है ।

( २ ) “० औन्नको ० । ० । ०, चेतसिक दुःखको अनुभव करता है ।

( ३ ) “० घ्राणको ० । ० । ०, ० ।

( ४ ) “० जिह्वाको ० । ० । ०, ० ।

( ५ ) “० काय ० । ० । ०, ० ।

( ६ ) “० मन ० । ० । ०, ० ।

( ७ ) “भिक्षुओ ! चक्षुको यथार्थतया जानते देखते, ०<sup>१</sup> चक्षुमें रक्त नहीं होता । ० न रक्त हो ० विहरते, उसके लिये भविष्यमें पाँच उपादान-स्फंध अप-चित ( विलग्न ) होते हैं । और ० तृष्णा नष्ट होती है । इसके कायिक दरघ भी नष्ट होते हैं, ० । वह कायिक सुखको भी, चेतसिक सुखको भी अनुभव करता है ।

<sup>१</sup> देखो ऊपर ।



“ऐसेको जो इष्टि होती है, वह इसकी ( १ ) सम्यक्-इष्टि होती है। ऐसेका जो संकल्प होता है, वह इसका ( २ ) सम्यक्-संकल्प होता है। ( ३ ) सम्यक्-व्यायाम ०।० ( ४ ) सम्यक्-स्मृति ०।० ( ५ ) सम्यक्-समाधि होती है। पहिले ही इसका ( ६ ) काम-कर्म, ( ७ ) वचन-कर्म, ( ८ ) आजीव (= जीविका ) सुपरिशुद्ध होती है। इस प्रकार उसके आर्य अष्टांगिक मार्ग भावनाद्वारा परिपूर्ण हुये होते हैं। उसके इस प्रकार आर्य-अष्टांगिक-मार्गकी भावना करते चारों स्मृति प्रस्थान भावना द्वारा परिपूर्ण होते हैं। ० चारों सम्यक्-प्रधान ०।० चारों ०।० ऋद्धिपाद ०।० पाँचों इन्द्रियाँ ०।० पाँचों बल ०।० सातों बौद्ध्यंग ०।० उसके यह दोनों धर्म-शमथ (= समाधि) और विपश्यना (= प्रज्ञा युगबद्ध ( जुड़े ) रहते हैं ) वह अभिज्ञा द्वारा जानने लायक धर्मोंको अभिज्ञासे जानता है; जो धर्म अभिज्ञा द्वारा त्याज्य (= प्रहातव्य) है, उन्हें अभिज्ञासे त्यागता है; ० भावना करने योग्य है, उन्हें अभिज्ञासे भावना करता है; जो धर्म अभिज्ञाद्वारा साक्षात्कार करने योग्य है, उन्हें अभिज्ञाद्वारा साक्षात्कार करता है।

“भिक्षुजो ! कौनसे धर्म अभिज्ञाद्वारा परिशेय (= जानने योग्य) हैं ?—पाँच उपादान स्कंध कहने चाहिये; जैसे कि रूप-उपादान-स्कंध, वेदना ०। संज्ञा, संस्कार ० विज्ञान स्कंध ।”

“ ० कौनसे धर्म अभिज्ञाद्वारा प्रहातव्य हैं ?—अ-विद्या, और भव-तृष्णा = लोकतरसे जावागमनका लोभ ।”

“ ० कौनसे धर्म अभिज्ञाद्वारा भावना करने योग्य हैं ?—शमथ, और विपश्यना ।”

“ ० कौनसे धर्म अभिज्ञाद्वारा साक्षात्कार करने योग्य हैं ?—विद्या और विमुक्ति ।”

( २ ) “भिक्षुजो ! श्रोत्रको ०।०।०, ०।

( ३ ) “ ० घ्राणको ०।०।०, ०।

( ४ ) “ ० गिह्वाको ०।०।०, ०।

( ५ ) “ ० कायको ०।०।०, ०।

( ६ ) “ ० मनको ०।०।०—विद्या और विमुक्ति यह धर्म अभिज्ञाद्वारा साक्षात्कार करने योग्य हैं।”

भगवान् ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुजोंने भगवान् के भाषणको अभिनन्दित किया।

## १५०—नगर-विदेय्य-सुत्तन्त (३।५।८)

सत्कारके पात्र

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् महान् भिक्षुसंघके साथ, कोसल ( देश )में चारिका करते, जहाँ नगर-विदेय्य नामक कोसलोका ब्राह्मण-ग्राम था, वहाँ पहुँचे ।

नगर विदेय्यके रहनेवाले ब्राह्मण गृहपतियोंने सुना—शाक्यकुलसे प्रव्रजित शाक्यपुत्र अमण गौतम महान् भिक्षु-संघके साथ चारिका करते नगर विदेय्यमें आ पहुँचे हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा प्रंगल-कीर्तिशब्द उठा हुआ है—‘वह भगवान् अर्हत् है ०’ ऐसे अर्हत्तोंका दर्शन अच्छा होता है’ ।

तब नगर विदेय्य-निवासी ब्राह्मण गृहस्थ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; ०<sup>१</sup> चुपचाप एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठे नगर विदेय्य-निवासी ब्राह्मण-गृहपतियोंने भगवान्‌ने यह कहा—

“यदि, गृहपतियो ! तुम्हें अन्य मतवाले ( = अन्य तीर्थिक ) परिब्राजक यह पूछें—‘गृह-पतियो ! कैसे अमण ब्राह्मणोंका सत्कार = गुरुकार, मानन = पूजन नहीं करता चाहिये ?’ ऐसा पूछनेपर, गृहपतियो ! तुम उन अन्यतीर्थिक परिब्राजकोंको यह कहना—‘जो अमण-ब्राह्मण चक्षु- ( द्वारा ) विज्ञेय रूपोंमें अ-वीत-राग, अ-वीत-द्वेष, अ-वीत-मोह, भीतर जिनका चित्त शांत नहीं हुआ है, जो काय-वचन-मनसे सम-विषम ( = बुरा-भला ) आचरण करते हैं । ऐसे अमण-ब्राह्मणोंका सत्कार ० नहीं करना चाहिये । सो किस हेतु ?—हम भी चक्षुर्विज्ञेय रूपोंमें अ-वीत-राग ० हममें भी काय-वचन-मनसे सम-विषम आचरण करते हैं । उन्हें हम आगे धर्माचरण करते नहीं देखते हैं, इसलिये उन अमण ब्राह्मणोंका सत्कार ० नहीं करना चाहिये’ ।

“जो अमण ब्राह्मण श्रोत्र-विज्ञेय शब्दोंमें अ-वीतराग ० । ० घ्राण-विज्ञेय गंधों ० । ० जिह्वा-विज्ञेय रसोंमें ० । ० काय-विज्ञेय स्पर्शस्थानोंमें ० । ० मनो-विज्ञेय धर्मोंमें, अ-वीतराग ० । ० सत्कार ० नहीं करना चाहिये । ..... ”

“यदि, गृहपतियो ! अन्यतीर्थिक परिब्राजक यह पूछें—‘गृहपतियो ! कैसे अमण-ब्राह्मणों का सत्कार ० करना चाहिये ?’—ऐसा पूछनेपर गृहपतियो ! तुम उन ० को यह कहना—‘जो अमण-ब्राह्मण चक्षुर्विज्ञेय रूपोंमें वीत-राग, वीत-द्वेष, वीत-मोह हैं; भीतर जिनका चित्त शांत है; जो काय-वचन-मनसे समचर्या ( = धर्माचरण ) करते हैं, ऐसे अमण-ब्राह्मणोंका सत्कार ० करना चाहिये । सो किस हेतु ?—हम चक्षुर्विज्ञेय रूपोंमें अ-वीतराग ०<sup>२</sup>, उन्हें हम आगे यह धर्मा-चरण

<sup>१</sup> देखो पृष्ठ १४, १५८ ।

<sup>२</sup> देखो पृष्ठ १६८ ।

<sup>३</sup> देखो कपर ।



करते देखते हैं। इसलिये उन आप अमण-ब्राह्मणोंका सत्कार ० करना चाहिये'।

“जो अमण ब्राह्मण श्रोत विशेष शब्दोंमें वीतराग ० । ० प्राण-विशेष गंधोंमें ० । ० जिह्वा-विशेष रसोंमें ० । ० काय-विशेष स्पर्शधर्मोंमें ० । ० मनोविशेष धर्मोंमें वीतराग ० । ० सत्कार ० करना चाहिये ।.....”

“यदि, गृहपतियो ! अन्यतीर्थिक परिव्राजक यह पूछें—‘गृहपतियो ! ( उन ) आयुष्मानों के क्या आकार हैं, क्या अन्यथ हैं ; जिससे कि तुम आयुष्मान् ऐसा कह रहे हो ? ( कैसे ) जरूर ही वह आयुष्मान् वीतराग हैं या राग हटाने में लग्न हैं, वीतद्वेष हैं, या द्वेष हटाने में लग्न हैं ; वीत-भोह हैं, या भोह हटाने में तत्पर हैं’ ऐसा पूछनेपर, गृहपतियो ! तुम उन ० को यह कहना—‘क्योंकि वह आयुष्मान् जरण्य = वनप्रस्थमें एकान्त प्रायन-आसनका सेवन करते हैं। वहाँ वैसे चक्षु-विशेष रूप तो नहीं, जिन्हें देख देख वह अभिरमण करें। वहाँ वैसे श्रोतविशेष शब्द तो नहीं हैं, जिन्हें अमण कर कर वह अभिरमण करें। ० प्राण-विशेष गंध ० ; जिन्हें सूँघ सूँघ कर ० । ० जिह्वा-विशेष रस ० ; जिन्हें चस्म चस्म कर ० । ० काय-विशेष स्पर्शधर्म ०, जिन्हें छू छू कर ० । आयुषो ! यह आकार हैं = यह अन्यथ हैं, जिससे हम यह कहते हैं—जरूर ही वह आयुष्मान् वीत-राग ० या भोह हटाने में तत्पर हैं। ऐसा पूछनेपर गृहपतियो ! तुम उन अन्यतीर्थिक परिव्राजकोंको ऐसा कहना’ ।”

ऐसा कहनेपर नगर-विदेव्य-निवासी ब्राह्मण गृहपतियोंने भगवान्से यह कहा—

“आश्चर्य ! भो गौतम ! आश्चर्य !! भो गौतम ! जैसे औंधेको सीधा कर दे ०<sup>१</sup> यह हम भगवान् गौतमकी शरण जाते हैं, धर्म और मित्र-संघकी भी। जाइसे आप गौतम हमें अजलिपद् शरणागत उपासक धारण करें।

## १५१-पिंडपात-सारिसुद्धि-सुत्तन्त (३।५।६)

विषयोंका त्याग । स्तुति-प्रशंसा आदिकी भावना

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् राजगृहमें घेणुवन-कलंवक-निवापमें विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् सारिपुत्र सायंकाल ध्यानसे उठ, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रसे भगवान्ने यह कहा—

“सारिपुत्र ! तेरी इन्द्रियाँ (= शरीर ) विप्रसन्न हैं, त्वि-वर्ण (= शरीरके चमड़ेका रंग ) परिशुद्ध = पर्यवशात है । सारिपुत्र ! आजकल किस विहारमें अधिकतर विहार करता है ?”

“मन्ते ! आजकल मैं अधिकतर शून्यता-विहारसे विहरता हूँ ।”

“साधु, साधु, सारिपुत्र ! महापुरुष-विहारसे ही, सारिपुत्र ! तू आजकल अधिकतर विहार रहा है । सारिपुत्र ! यह शून्यता<sup>१</sup> महापुरुष विहार है । इसलिये सारिपुत्र ! जो भिक्षु भी आकांक्षा करे, शून्यता विहारसे मैं अधिकतर विहरूँ; उस भिक्षुको, सारिपुत्र ! यह सोचना चाहिये—‘जिस मार्गसे मैं भिक्षुके लिये गाँवमें प्रविष्ट हुआ, जिस प्रदेशमें पिंडके लिये घूमा, और जिस मार्गसे पिंड (ले) गाँवसे बाहर हुआ । क्या, वहाँ चक्षुर्विशेष रूपोंमें मेरे मनका छन्द = राग, द्वेष, मोह या प्रतिष ( = प्रतिहिंसा ) है या नहीं ?’ यदि, सारिपुत्र ! भिक्षु प्रत्यवेक्षण ( = परीक्षण ) करते ऐसा जाने—‘जिस मार्गसे मैं ० प्रविष्ट हुआ, ० बाहर हुआ, वहाँ चक्षुर्विशेष रूपोंमें मेरे चित्तका ० राग ० प्रतिष है’ तो सारिपुत्र ! उस भिक्षुको उन्हीं पापों-अकुशल धर्मोंके प्रहाण ( = नाश ) के लिये उद्योग करना चाहिये । यदि, सारिपुत्र ! भिक्षु प्रत्यवेक्षण करते ऐसा जाने—‘० चक्षुर्विशेष रूपोंमें मेरे चित्तका ० राग ० प्रतिष नहीं है’ । तो सारिपुत्र ! उस भिक्षुको उसी प्रीति = प्रामोदके साथ, रात-दिन कुशल-धर्मों ( = अच्छे कर्मों )का परिशीलन करते, विहार करना चाहिये ।

“और फिर, सारिपुत्र ! भिक्षुको यह सोचना चाहिये—‘जिस मार्गसे ० गाँवसे बाहर हुआ । क्या वहाँ श्रोत्र-विशेष शब्दोंमें ० । ० घ्राण-विशेष गन्धोंमें ० । ० जिह्वा-विशेष रसोंमें ० । ० काय-विशेष छप्रदर्थोंमें ० । ० मनो-विशेष धर्मोंमें ० रात-दिन कुशल-धर्मोंका परिशीलन करते विहार करना चाहिये ।

“और फिर, सारिपुत्र ! भिक्षुको यह सोचना चाहिये—‘मेरे पाँच काम-गुण ( = विषय-भोग ) प्रहीण हो गये हैं न ?’ यदि, सारिपुत्र ! भिक्षु प्रत्यवेक्षण करते ऐसा जाने—‘मेरे पाँच काम-गुण प्रहीण ( = नष्ट ) नहीं हुए तो, सारिपुत्र ! उस भिक्षुको पाँच काम-गुणोंके प्रहाणके लिये उद्योग करना चाहिये । यदि सारिपुत्र ! भिक्षु प्रत्यवेक्षण करते ऐसा जाने—‘मेरे पाँच काम-

<sup>१</sup> देखो सुव्वता-सुत्त ५०२-८ ।



गुण ग्रहीण हो गये'। तो, सारिपुत्र ! उस भिक्षुको ठसी मोति = प्राप्तोद्यके साथ रात-दिन कुशल-धर्मोंका परिशीलन करते, विहार करना चाहिये ।

“और फिर, सारिपुत्र ! भिक्षुको यह सोचना चाहिये—‘मेरे पाँच मोचरण ग्रहीण हो गये हैं न ?’ ०<sup>१</sup> ।

“०—‘मैंने पाँच उपादान-स्थानोंको परिज्ञात (= ज्ञात ) कर लिया न ? ० ।

“०—‘मैंने चार स्थिति-प्रस्थानोंकी भावना की है न ? ०<sup>१</sup> ।

“०—‘मैंने चार सत्यक्-प्रधानोंकी भावना की है न ? ०<sup>१</sup> ।

“०—‘मैंने चार क्षुद्धि-पादोंकी भावना की है न ? ०<sup>१</sup> ।

“०—‘मैंने पाँच इन्द्रियोंकी भावना की है न ? ०<sup>१</sup> ।

“०—‘मैंने पाँच कर्तव्योंकी भावना की है न ? ०<sup>१</sup> ।

“०—‘मैंने सात बोध्योंकी भावना की है न ? ०<sup>१</sup> ।

“०—‘मैंने आर्य अष्टांगिक मार्गकी भावना की है न ? ०<sup>१</sup> ।

“०—‘मैंने शमथ (= समाधि ) और विपश्यना (= प्रज्ञा )की भावना की है न ? ० ।

“०—‘मैंने विद्या और विमुक्तिका साक्षात्कार किया है न ? ० ।

“सारिपुत्र ! जो कोई श्रमण-ब्राह्मणोंने अतीतकालमें पिंडपात-परिशुद्धि (= निश्चायकी शुद्धि ) की; उन सभीने इसी प्रकार प्रत्यवेक्षण (= परीक्षण ) कर करके पिंडपातको परिशोधित किया । सारिपुत्र ! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण भविष्यकालमें पिंडपात-परिशुद्धि करेंगे; वह सभी इसी प्रकार ० । जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इस समय पिंडपात-परिशुद्धि करते हैं, वह सभी इसी प्रकार पिंडपातको परिशोधित करते हैं । इसलिये, सारिपुत्र ! प्रत्यवेक्षण कर करके पिंडपातको परिशोधित कहेंगा’—ऐसे सारिपुत्र ! सीखना चाहिये ।”

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो आसुप्मान् सारिपुत्रने भगवान्के भाषणको अभिनन्दित किया ।

<sup>१</sup> कपर जैसा ही, सिर्फ कामगुणके स्थानपर यह शब्द रख दिया जाये । <sup>२</sup> इन्द्रिय = अन्तः, बोध, स्थिति, समाधि, प्रज्ञा ।

## १५२-इन्द्रिय-भावना-सुत्तन्त (३।५।१०)

इन्द्रिय-संयम

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् कर्जंगलामें सुवेणुवन (= 'सुवेणुवन') में विहार करते थे।

तब पारासिवियका अन्तेवासी (= शिष्य) उत्तर-माणवक सहै भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान् के साथ संमोदन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे पारासिवियके अन्तेवासी उत्तर माणवकको भगवान् ने कहा—

“उत्तर ! क्या पारासिविय ब्राह्मण शिष्योंको इन्द्रिय-भावना (= सम्बन्धी) उपदेश करता है ?”

“ओ गौतम ! पारासिविय ब्राह्मण शिष्योंको इन्द्रिय भावनाका उपदेश करता है।”

“तो उत्तर ! कैसे ? इन्द्रिय-भावनाका उपदेश करता है ?”

“ओ गौतम ! आँखसे रूप नहीं देखता, कानसे शब्द नहीं सुनता। इस प्रकार ओ गौतम ! पारासिविय ब्राह्मण शिष्योंको इन्द्रिय-भावनाका उपदेश करता है।”

“वैसा पारासिविय ब्राह्मणका वचन है, वैसा होनेपर, उत्तर ! अन्धा इन्द्रिय-भावना करनेवाला (= भावितेन्द्रिय) होगा, बधिर भावितेन्द्रिय होगा। क्योंकि उत्तर ! अन्धा आँखसे रूप नहीं देखता, बधिर कानसे शब्द नहीं सुनता।”

ऐसा कहनेपर पारासिवियका अन्तेवासी उत्तर माणवक चुप, मूक, गर्दन झुकाये, अधोमुख, सोभता, प्रतिभाहीन, हो बैठा। तब भगवान् ने ० उत्तर माणवकको चुप ० जानकर आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

“आनन्द ! पारासिविय ब्राह्मण भावकों (= शिष्यों) को दूसरी तरह (= अन्यथा) इन्द्रिय-भावना उपदेश करता है, और आयोकि विनयमें दूसरी तरह अनुसर (= सर्वोत्कृष्ट) भावना होती है।”

“भगवान् इसीका काल है, सुनत ! इसीका काल है, कि भगवान् आर्य-विनय (= वीर-धर्म) के अनुसार इन्द्रिय-भावनाका उपदेश करें। भगवान् से सुन कर भिक्षु धारण करेंगे।”

“तो आनन्द ! सुनो, अच्छो तरह मनमें करो, कहता हूँ।” “अच्छा भन्ते !”...

भगवान् ने यह कहा—

“कैसे आनन्द ! आर्य-विनयमें अनुसर इन्द्रिय-भावना होती है ? यहाँ आनन्द ! चक्षु (= आँख) से रूपको देख कर भिक्षुको समाय (= पसन्द आलस्य) होता है, अ-मनाप होता है,

\* 'वेणुवन', 'सुवेणुवन' भी पाठ है।



मनाप-अमनाप होता है। वह ऐसा जानता है—'यह मुझे मनाप उत्पन्न हुआ, अ-मनाप ०, मनाप-अमनाप ०। किन्तु यह संस्कृत (= कृत, कृत्रिम) = औदारिक = प्रतीत्य-समुत्पन्न (= हेतु-जनित) है। यही शान्त, यही प्रणीत (उत्तम) है, जो कि यह (रूप आदिसे) उपेक्षा। (तब) इसका यह उत्पन्न मनाप, उत्पन्न अ-मनाप, ० मनाप-अमनाप निरुद्ध (= नष्ट) हो जाता है। उपेक्षा ठहरती है। जैसे आनन्द! आँखवाला पुरुष पलक चढ़ा कर गिरा दे, पलक गिरा कर चढ़ा दे; इसी तरह आनन्द! जिस किसीको इतना शीघ्र, इतनी जल्दी, इतनी आसानीसे, उत्पन्न मनाप, उत्पन्न अ-मनाप, उत्पन्न मनाप-अमनाप दूर हो जाते हैं, उपेक्षा ठहरती है। यह आनन्द! आर्ध-विनयमें चक्षुसे जाने जानेवाले (= चक्षुर्विश्लेष) रूपोंके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना कही जाती है। और फिर आनन्द! ओष्ठसे शब्दको सुनकर ०। ० उपेक्षा ठहरती है। जैसे कि आनन्द! चलवान् पुरुष अप्रवास चुटकी बजावे; ऐसे ही आनन्द! जिस किसीको इतना शीघ्र ०। यह आनन्द! आर्ध-विनय में श्रोत्र-विश्लेष शब्दोंके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना कही जाती है। और फिर आनन्द! घ्राणसे गंधको सूँघ कर ०। ० उपेक्षा ठहरती है। जैसे कि आनन्द! पद्म-पत्रमें बोबीसी हवासे पानीके बुलबुले उठते हैं, ठहरते नहीं; ऐसे ही आनन्द! ०। ० यह ० घ्राण-विश्लेष गन्धोंके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना है। और फिर आनन्द! जिह्वासे रस चख कर ०। ० उपेक्षा ठहरती है। जैसे कि आनन्द! चलवान् पुरुष जिह्वाके नोकपर खेळ-पिंड (= धूक-कक) जमा कर, अप्रवास ही फेंक दे; ऐसे ही आनन्द! ०। यह ० जिह्वा-विश्लेष रसोंके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना है। और फिर आनन्द! काया (= त्वक्)से स्पर्शके स्पर्शसे ०। ० उपेक्षा ठहरती है। जैसे कि आनन्द! चलवान् पुरुष समेटी बाँहको फैलावे, फैलाई बाँहको समेटे, ऐसे ही आनन्द! ०। यह ० काय-विश्लेष स्पर्शस्थानोंके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना है। और फिर आनन्द! मनसे धर्मको जानकर ०। ० उपेक्षा ठहरती है। जैसे कि आनन्द! चलवान् पुरुष दिनमें तपे लोहेके कढ़ाहपर दो-तीन पानीकी बूँद डाले; आनन्द! पानीकी बूँद पड़कर 'तुरन्त ही' 'क्षयको प्राप्त हो जाये। ऐसे ही आनन्द! ०। यह मन-विश्लेष धर्मोंके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना है।

“यहाँ आनन्द! चक्षुसे रूपको देखकर, भिक्षुको मनाप (= प्रिय) उत्पन्न होता है, अ-मनाप उत्पन्न होता है, मनाप-अमनाप उत्पन्न होता है। वह उस उत्पन्न मनाप, ० अमनाप, मनाप-अमनापसे दुःखित होता है, प्रवराता है, घृणा करता है। ओष्ठसे शब्द सुनकर ०। घ्राणसे गंध सूँघकर ०। जिह्वासे रस चखकर ०। कायासे स्पर्शस्थान छूकर ०। मनसे धर्म जानकर, भिक्षुको मनाप ०, अमनाप ०, मनाप-अमनाप उत्पन्न होता है। वह उस उत्पन्न मनाप, अ-मनाप, मनाप-अमनापसे दुःखित होता है, प्रवराता है, घृणा करता है। इस प्रकार आनन्द! दौश्य (= जिसको अभी सीखना है, सेख) -प्रतिपद् (= पटिपदा) होती है।

“कैसे आनन्द! भावितेन्द्रिय हो, आर्ष (अर्हत्, अर्हत्त्व = अ-सेख) होता है? यहाँ आनन्द! चक्षुसे रूपको देखकर ० ओष्ठसे ०, घ्राणसे ०, जिह्वासे ०, कायासे ०, मनसे धर्म जानकर, मनाप ०, ० अ-मनाप, ० मनाप-अमनाप उत्पन्न होता है। वह यदि चाहता है, कि प्रतिकूलमें अ-प्रतिकूल ज्ञान विहार करूँ, अ-प्रतिकूल जानते ही वहाँ विहार करता है। यदि चाहता है, कि अ-प्रतिकूलमें प्रतिकूल ज्ञान विहार करूँ, प्रतिकूल जानते ही वहाँ विहार करता है। यदि चाहता है,—प्रतिकूल, अ-प्रतिकूल दोनों वर्जित कर, स्थिति-सम्प्रजन्य-युक्त उपेक्षक हो विहार करूँ, वह स्थिति सम्प्रजन्य-युक्त उपेक्षक हो विहारता है। इस प्रकार आनन्द! भावितेन्द्रिय आर्ष (= मुक्त) होता है।

“इस प्रकार आनन्द ! मैंने आर्य-विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना उपदेश कर दी, शैश्व-प्रतिपद भी उपदेश कर दी, भावितेन्द्रिय आर्य भी उपदेश कर दिया । हितैषी, अनुकम्पक शास्त्रा (= गुरु) को अनुकम्पा (= दया) भावकोंके लिये जैसे करना चाहिये, वैसा मैंने तुम लोगोंके लिये कर दिया । आनन्द ! यह वृक्षमूल (= वृक्षके नीचेकी भूमि) है, यह धूल्य घर है, ध्यान करो आनन्द ! मत प्रमाद करो, पीछे अफसोस मत करना । यह तुम्हारे लिये हमारे अनुशासन है ।”

भगवान्ने यह कहा, आयुष्मान् आनन्दने सन्तुष्ट हो, भगवान्के भाषणको अनुमोदित किया ।

( १५—इति सत्तायतन-वग्मा ३।५ )

इति उपरि-पञ्चासक ३।

समाप्त





## १-उपमा (= दृष्टांत ) अनुक्रमणी

अक्षि-हारक । १२८	लौका कथा । ३४९
अग्नि । ३८८	ऊँटका पैर । ३४५
अग्निका उपादान । ४१८	उर्मि-भय । २६९
अग्निकी संज्ञा । १५३	अरुण । १६२
अग्निके नाम आश्रयसे । ४०२	ओषधि तारा । ३२०
अंगारका । ८४, २१७	कबरी छाया । ४७
अंगारोंका ढेर । ४७	कंसपाती । १७, १८, १९, २०
अचिरवती और पर्वतपर वृष्टि । ३४३	काष्ठ-खंड । ४५६
अंडकोरा-हारक । १२८	काष्ठ, गोला । ३४६, ३४७
अन्ध-वेणि-परंपरा । ४१६	काष्ठ, नीरस । ३४७
अमावास्याका चंद्रमा । ५९३	काष्ठ-संघर्षण । ५७४
अलगह (= सर्व) -गवेषी । ८६	कान्तार-मार्ग । १६३
अरवन्तर । ३८८	कालानुसारिक मूलगंध । ४५४
अरव-शिक्षा । २६१	कुक्कुटी-अंड ( देखो मुर्गोंके अंड ) ।
असित देवल । ३८९	कुदाल-हस्त पुरुष । ८२
असि-सूना । ८४, ९३, ९१४	कुम्भीर-भय । २६९
आकाश । ११९	कुल । ८६, ८७,
आकाशमें चित्रकारी । ८२	कुटसे मुक्तको जवर्दस्तों आगपर तपाना । २९४
आगार । २०९	कुटसे मुक्तको चावसें करनेकी अनिच्छा । २९४
आपानीय कांस्थ । १८८	कूर्म । ९३
आवस्रोरा । १८८	कृषि । ४१५
आमने सामनेके घरोंके बीचमें मनुष्य । ५३९	केकड़ा (= कर्कट ) । १४१
आवर्त-भय । २६९	कोठको आगपर तपाना । २९५
आशीविष (= साँप ) ४४८	ककचोपम । ८३, ११८
आसौतिककी गाँठ । ३४८	गंगा नदी । काक-पेया—२५५
उत्तरारणो । ५२१	गंगा-नदी ( समुद्र-निष्ठा ) । २८६
उत्पलिनो और जल । १०६, ३१०, ४५५	गोला काष्ठ । १४६
उदक-हृद ( पर्वतसे घिरा ) । ३१३	गोघातक । ३४८, ४०६, ५९२
उदकहृद । ३१०, ४९५	गोघातकका सुना । २१६
उदपानमें तारा । ३४८	गोपानसी ( ओलुग-बिलुग ) । ३४८



गोपालक । १३३-३५, १३६  
 गोमूत्र । १८८  
 ग्रामसे ग्रामान्तर-नामन । ३१२  
 ग्रामसे प्रवासो । ४४६  
 घटिकार । ३२५  
 चक्रवर्तीके सात रत्न । ५३५  
 चंगवार । ९३  
 चौरस्तेपर रथ । ४९७  
 जनपद-कल्याणीका चाहनेवाला । ३१९, ३२३  
 जनपद-भाषा ( में पाती ) । ५७०  
 जन्मान्व । ४१६  
 जन्माधिको नेत्र-चिकित्सा । २९६  
 जन्मान्वको रंगसे वंचित करना । २९६  
 जुआरीका दाव । ५३८  
 जुगनू । ३१९  
 क्षत्र कड़ाह पर जल-विन्दु । २६५  
 तिलपिष्टसे तेल । ५२१  
 तृण-उल्का । ८४, २१७  
 तृण-उल्कासे गंगाका संतप्त करना । ८२  
 तेल-प्रदीप । ३२०  
 तेल-प्रदीप । मलिन—५२६  
 तेलप्रदीप । शुद्ध—५२६  
 तेलप्रदीपका सब अनित्य । ५९१  
 तेल और बत्तीसे प्रदीप । ५०५  
 दन्तकार । ३११  
 दरिद्रको समता । २६४  
 दरिद्रके लिये बाँटो । ४००  
 दहर स्त्री-मुख और पुष्पमाला । ६४  
 दहीसे मक्खन । ५२१  
 दही-माधु-घी-खीर । १८८  
 दास । १६३  
 दीर्घाका एक प्रकाश । ५२४  
 देवदूत । ५३९  
 देवोंकी मानव-भोगमें अनिच्छा । २९४  
 नाग । ९३  
 नाग-वनिक । ५१७  
 नापित । ४९५  
 निधि-मुख । २०९  
 निवाप । ९८

घानोसे मक्खन । ५२१  
 पाश-राशि । १०९, ११२  
 पिटारीसे साँप । ३११  
 पीला पत्ता ( दृष्टा ) । ४४६  
 पुष्करिणी । ४८, १६६  
 पुष्करिणी । चौकोर—४९७  
 पुष्पमाला । २३०  
 पूर्णिमाका चंद्रमा । ५९४  
 पृथिवीके आश्रयसे प्राणि और भूत । १३९  
 प्रसाद । ४८  
 बन्धनागार । १६३  
 बलवान्का हाथ समेटना । १०६  
 बलवान् और दुर्बल । ४०६  
 बलवान् और भेड़ । १३८  
 बलवान् और शिखरसे शिर टकराना । ४०६  
 बलवान् और शौडिका-किलज । १३९  
 बालसे तेल । ५२१  
 बिल्लीकी खालका खर्चरा करना । ८३  
 बीज । तरुण—२६८  
 बूढ़ा । अस्ती-वर्षका । ५०  
 मटका खाली । ४९६, ४९७  
 मटज-आयुध । १२५  
 मधु-पिंड । ७३  
 मर्कट-शावक । २२९  
 महाधनीका त्याग । २६४  
 महावनमें पल्लव । ७६  
 मालुवा लता । १८४  
 मांस-पेशी । ८४, ९३, २१७  
 मुर्गीके अंडे । ६७, २१२  
 मूँजसे सीक । ३११  
 मूर्धाभिषिक्त राजा । ३६५  
 मृतमाता । पगली—३५९  
 म्यानसे तलवार । ३११  
 याचितकूपम । २१७  
 याचितकोपम । ८४  
 रथके अंग-प्रत्यंगमें चतुर । २३५  
 रथ-विनोत (= डाक ) । ९६  
 रोग । १६२

लकुटिका (= गौस्य्या) । २३३

लौका कड़वा । १८८

खज्जी-मल्लके संघ । १४०

वत्स । तरुण—२६८

वर्मिक । ९३

वस्त्रपर रंग । २४

वस्त्रसे शिर ढँका । ४१६

वाणिज्य । ४१५

वृत्तका सब अनित्य । ५९२

वृत्त-फल । ८४

वृत्तफलोपम । २१८

वैदुर्य-मणि (= हीरा) । ३११, ३१९, ३२३

वैदेहिका और काली । ८०

व्याघ्रा । ३३४

शक्ति-शूल । ८४

शस्त्र-धमक । ३११

शस्त्र बजाने वाला । ४१९

शरदका सूर्य । ३२०

शल्य-विद और वैद्य । ४४७, ४४८

शाल-वृक्ष ( सार-भाज ) । २८३

शिला, न जुड़नेवाली । ४४६

शुष्क काष्ठ । १२६

समान-द्वारवाले दो घर । ३१२

समुद्र ४९६

सर्प-शिर । ८४

सारगवेषी । १२१, १२३, १२४, १४१

सार-गवेषी पुरुष । ७१

सौगंसे दूध । ५२१

सुवर्णकार । ३११

सुशिक्षित हाथी आदि । ५१६

सुसुका-भय । २७०

सूअोंको पाँती । ३४८

सूर्य । शरद— १८८

सोनार और सोना । ५७४

स्तनसे दूध । ५२१

स्नान-वृण । ३१०

स्वप्न । ८४, २१७

हस्तिपद । १११, ११६, ११७

हस्तो । हरिस-दन्त राज— २४६, २६३



## २-नाम-अनुक्रमणी

- अ-कनिष्ठ ४९९ ( देव ) ।  
 अ-कनिष्ठक । १७० ( देवता ) ।  
 अग्निवेश । १३८ ( वैशालीके लक्ष्मका गोत्र ) ।  
 अग्निवेश । ५१५ ( अचिरवत अमणोद्देशका गोत्र ) ।  
 अग्निवेश । २८७ ( दीर्घनक्ष परिमालकका गोत्र ) ।  
 अंग । ( में लक्ष्मपुर ) १६१, १६५ ।  
 अंग । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 अंगुत्तराप देश । ( में आपण ) , २१४, २६२, ३८१ ।  
 अंगुलिमाल । ३५३ ( काहु, प्रसेनजित्के राज्यमें ) । ३५४ ( बुद्धका शिष्य ) , ३५५ ( मैत्रावर्णी-पुत्र गार्ग्य ) , ३५६ ( की सिखाई ) , ३५७ ( मुक्त ) ।  
 अचिरवत । ५१५ ( अमणोद्देश, राजगृहमें, गोत्रसे अभिवेश ) ।  
 अचिरवती । २१४ टि० ( = रापती ) , ३६३ ( पर्वतसे आई नदी, आवस्तीमें ) ।  
 अच्युत । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 अच्युतांग । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 अजातशत्रु । १४० ( मगध-राज वैदेही-पुत्र ) ; ( -मागध वैदेही-पुत्र राजा प्रसेनजित्को भेजा बाहीतिक वस्त्र ) ;  
 अजातशत्रु । ४५५ ( मगधराज, वैदेहिपुत्र, बुद्ध निर्वाणके दोसरे ही समय बाद राजा प्रद्योतके भयसे नगरको सुरक्षित कर रहा था ) ।  
 अजित केश-कम्बली । १२४, ( तीर्थंकर ) , १४७, ( कोषी ) , ३०० ( उच्छेदवादी ) ।  
 अट्टक । ३९६ ( बाणिकोंके पूर्वज मंत्रकतांक्षि ) ।  
 अट्टक नागर । ( देखो दत्तम गृहपति ) ।  
 अ-तप्य । ४९९ ( देव ) ।  
 अतवतप्रदह । २१४ ।  
 अनाद्यपिण्डिक । ५८२ ( आवस्तीमें, बीमार, ) , ५८३ ( सत्यु, देवपुत्र, ) , ५८४ ।  
 अनाद्य-पिण्डिकका आराम । ( देखो आवस्ती ) ।  
 अनाद्यव । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 अतिथ । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 अनुगार वरचर । ३०५ ( राजगृहमें अभिजात धर्मिजाक ) ।  
 अनुरुद्ध । १२७, १३०, १३१ ( का बुद्धका ) ; २७१ ( नलकप्रान्तमें ) ; ४९० ( आवस्तीमें ) ; ५२३ ( आवस्तीमें ) ; ५३१ ।  
 अनोमनिकम । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 अन्धवन । ९२, ५९५ ( आवस्तीमें ) ।  
 अपराजित । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 अ-प्रमाण-शुभ । ४९९ ( देव ) ।  
 अप्रमाणाम । ( देवता ) , १७०, ४९९ ।  
 अभय राजकुमार । २३४-३६ ( राजगृहमें बुद्धसे संवाद, निर्गुण माल-मुक्तका भूतपूर्व शिष्य ) ।  
 अभिभू । ३ ( देवता ) ।  
 अम्बलट्टिक । २४५ ( राजगृहमें ) ।  
 अरिट्ट । गंधवाधि-पुत्र-—८४ ( की बुरी धारणा ) ।  
 अरिट्ट । ( देखो अरिट्ट ) ।  
 अरिट्ट । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 अवन्तिपुत्र । माधुर—३२० ( मधुराका राजा ) , ३४३ ( बुद्धनिर्वाणके बाद बौद्ध हुआ ) ।  
 अवरपुर-वन-संड । ४४ ( वैशालीमें ) ।

अ-विभ । ( देवता ) १७०, ४९९ ।

अरवजित् । १३८ ( अशुष्मान् ) ;

अरवजित् । २७५ ( कोटागिरिमें ),

अरवपुर । १६१, १६५ ( अंगदेशमें ) ।

अष्टम । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

असित । ( देखो देवल भी ) ।

असित । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

असेत्थ । ४८४ ( प्रत्येक बुद्ध ) ।

आकाश-मोच । ( देखो संजय ) ।

आकाशानन्त्यायतन । ( देवता ) ३, १७०, ४९९ ।

आकिचन्त्यायतन । ( देवता ) ३, १७०, ४९९ ।

आजीवक । १०७ ( -संप्रदायके तीन आचार्य )

२८०, ३०३ ( -संप्रदायके भार्याद्वयके

ये—मन्द-वात्स्य, कृष्ट सत्कृत्य और मन्त्रलि

गोपाल ) ।

आतप्य । १७० ( देवता ) ।

आनन्द । ( आशुष्मान् ) ७३, १०२,

१३० ( भगवान्के उपस्थाका सुकाव ),

२०८ ( का वैशालीमें उपदेश ), २३०

( का उपदेश, बुद्धकी आज्ञासे ), २५४-५६,

२७१ ( नलकपानमें ), २९९, ३०४, ( का

सन्धुको उपदेश ), ३२५-२९, ३३८-३९

( को उपदेश ), ३६१-६३ ( का प्रसेनजित्-

को उपदेश ) ३७० ( का विहुडम सेनापतिसे

संलाप ), ३७१ ( को प्रसेनजित् द्वारा

प्रशंसा ), ४४१ ( सामगाममें ), ४५५

( निर्वाणके बाद राजगृहमें ), ४९०, ५०१;

५०४ ( कपिलवस्तुमें ) ५०९, ५२३, ५४५,

५५५, ५७९ ( कपिल वस्तुमें ), ५८२ ( की

प्रजापतीके लिये वकालत ); ६०५ ( कज-

मलामें ) ।

आनन्द । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

आपण । २१४ ( अंगुत्तरापदेशमें कथा ),

२१४, २६२, ३०१ ।

आभ । ( देवता ) १७०, ४९९ ।

आभास्वर । ( देवता ) ३, १७०, १९५,

१९६, ४९९ ।

आमलकोवन । २६७ ( वातुनामें ) ।

आलार कालाम । १०४ ( के पाव सिद्धार्थका

जाना ), १०४, ३७५, ४२२ ।

आरवलायन । ३८६ ( आश्वत्थी-निवासी सिद्धान्

सुंझित तरुण ब्राह्मण ), ३८७-२० ( बुद्धके

साथ संलाप ) ।

इच्छार्नगल । ४०९ ( में, चंकि, तादृक्,

आनुसोणि, सांदेश्य, वाशिष्ठ, भारद्वाज ) ।

इन्द्र । ( देखो शक ) ।

इसिगिरि । ४८३ ( = कर्पिगिरि, राजगृहमें ) ।

उकट्टा । ( में सुभगवन ) ३, १९४ ।

उक्कापेल । १३६ ( कज्जीदेशमें, संभवतः वर्त-

मान सोनपुर या झांसीपुर, बिहार ) ।

उग्गाहमारण । ( देखो समण भौटिका-पुत्र ) ।

उच्चांगमय । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

उजुका । ( = उजुब्बा = उरुब्बा ) । ३६८

( राष्ट्र और नगरमें प्रसेनजित् रानियों

सहित, में गणसत्त्वक सुगदाव ) ।

उज्जय । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

उत्तर । ३०३ ( मिथिलामें ब्राह्मण ब्राह्मणका

शिष्य ), ३७४-७५ ( द्वारा बुद्धकी परीक्षा ),

४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

उत्तर माणवक । ६०३ ( पद्मासवित्र ब्राह्मणका

शिष्य कर्त्तगलामें ) ।

उत्पल । ४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

उदायो । २३० ( आशुष्मान् ), २६२-६६ ( को

उपदेश ) । ३९१ ( आशुष्मान्का वाराणसीमें

घोटेमुख ब्राह्मणको उपदेश ), ५५६

( राजगृहमें ) ।

उदायी । सकुल - ३०५-१३ ( राजगृहमें परि-

भाजक ), ३१८, ३२२ ( - परिभाजकको,

राजगृहमें उपदेश ), ३२२ ( को बुद्धका

शिष्य होनेमें बाधा ) ।

उद्दक रामपुत्र । ३४६ ( सिद्धार्थका गुरु ),

४२२ ।

उट्टक रामपुत्र । १०५, १०७ ।

उप-अरिष्ट । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

उप-शुषम । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

उपक आजीवक । १०७ ( बुद्धसे मुलाकात ) ।



उपकाश । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 उपतिष्ठ । ४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 उपनन्द । ४५० ( अगधका सेनापति ) ।  
 उपनन्द । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 उपनीत । ४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 उपनेमिष । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 उपशिली । ४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 उपालि । २२३ ( बालक-क्रोणकार निवासी  
 गृहपति ), २२४-२३ ( का बुद्धसे संवाद ) ।  
 उपासम । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 उपोसथ । ४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 उरुवेला । १०५ ( = बोधगया सेनानी निगम ),  
 १४६ ( में सेनानी निगम, अगधमें ),  
 ३४६ ( अगधदेशमें सेनानी निगम ) ।  
 ऋषिगिरि । ५९ ( राजगृहमें ) ४८३ ( = इस्-  
 गिलि, राजगृहमें ) ।  
 ऋषिदत्त । ३६६ ( बुद्ध-भक्त, तथा राजा  
 प्रसेनजित्का नौकर ) ।  
 ऋषिपतन । १०३, १०८ ( वाराणसीमें ),  
 ३२६ ( में काश्यप बुद्ध ), १०३, ५३८ ।  
 एकपुंडरीक । १४८ ( इन्द्रका उद्यान ) ।  
 एकपुंडरीक । ३६१ ( राजा प्रसेनजित्का हाथी ) ।  
 ओपसाद । ३९४ ( कोसलमें ब्राह्मणग्राम,  
 जिसके उत्तरमें देववनका स्वामी चंकि  
 ब्राह्मण ) ।  
 औपमन्यव पौष्करसाति । ४१३ ( सुभगवन-  
 निवासी ) ।  
 ककुत्स्थ ( देखो ककुत्स्थ ) ।  
 कजंगला । ६०३ ( में भुवेषुवन ) ।  
 कण्णत्थलक । ३६८ ( बहुकामें ) ।  
 कण्णमुंड-वृक्ष । २१४ टि० ।  
 कन्दरक । २०५ ( चण्णामें परिब्राजक ) ।  
 कपिलवस्तु । [ ५०, ७० ( शाक्यदेशमें, जहाँ  
 न्यग्रोधाराम था ) ], २१० ( में न्यग्रोवा-  
 राम, में संस्थागार ), ५०४, ५५० ( शाक्य-  
 देशमें, न्यग्रोधाराम ), ५७९ ।

कपिन । महा—४९० ( आवस्तीमें ) ।  
 कम्बोज । ३८३ ( देशमें आर्य और दास दो  
 ही वर्ण ) ।  
 कम्मासदम्भ ३५ ( कुरुदेशमें निगम, देखो  
 बुद्धचर्या, पृष्ठ ११८ ), २९२, ४४९ ( कुरु-  
 देशमें कल्या ) ।  
 कलन्दक-निवाप । ९४ ( राजगृहमें ), ( देखो  
 राजगृह वेशुवन ) ।  
 कलार जनक । ३३९ ( मिथिलाका राजा ) ।  
 कलिगारलय । २२६ ।  
 कलमापदम्भ । ( देखो कम्मासदम्भ ) ।  
 कात्यायन । ( देखो वेक्षणस ) ।  
 कात्यायन । प्रक्रुध—( देखो प्रक्रुध ) ।  
 कात्यायन । महा—७१ ( बुद्धद्वारा प्रशंसित ),  
 ३४० ( का उपदेश अवन्तिपुत्रको ), ४९०  
 ( आवस्तीमें ), ५४३ ( राजगृह तपोदाराम-  
 में ), ५६४-६६ ( का उपदेश आवस्तीमें ) ।  
 कात्यायन । सभ्य—५२४, ५२६ ( आयुष्मान्,  
 आवस्तीमें ) ।  
 कापथिक । ३९६ ( माणवक, चंकि ब्राह्मणका  
 विद्वान् शिष्य, गोमते भारद्वाज ), ३९९  
 ( बुद्धोपासक ) ।  
 कारायण । दीर्घ—३६४ ( प्रसेनजित्का समात्य ) ।  
 काल । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 काल-कूट । २१४ टि० ।  
 काल-शिला । ५२ ( राजगृहमें, ऋषिगिरिके  
 पास ) ।  
 कालाम । ( देखो आलार ) ।  
 काली । ८० ( वैदेहिका गृहपत्नीकी दासी,  
 आवस्ती-वासिनी ), १९८ ( दूसीमारकी  
 पहिन ) ।  
 काशी । २७५ ( में कीटागिरि ),  
 ३२६ ( - में वाराणसी ), ३६० ( देवाका  
 राजा प्रसेनजित् ) ।  
 काश्यप । ३२६-२९ ( बुद्ध ) ।  
 काश्यप । अचेल—५१२ ( राजगृहमें ) ।  
 काश्यप । कुमार—९२ ( भिक्षु ) ।  
 काश्यप । पूर्ण—( देखो पूर्ण काश्यप ) ।

काश्यप । महा—१३०, १३१ ( का विचार ),  
४९० ( आवस्तीमें ) ।

किर्कि । ३२६-२७ ( काशिराज, काश्यप बुद्धका  
सेवक ) ।

किम्बिल । १२०, २७१ ( नलकपानमें ) ।

कीटागिरि । २७५ ( काशीदेशमें ) ।

केरिय जटिल । ३८१ ( आपण-निवासी ) ।

केतुमान् । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

केतुम्पराग । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

केवट्ट-युत्त । साति ( देखो साति ) ।

केशकम्बली । अजित—( देखो अजित ) ।

कुक्कुटाराम । २०८ ( पाटलिपुत्रमें ) ।

कुणाल-दह । २१४ टि० ।

कुण्डधान । २७१ ( नलकपानमें ) ।

कुरु । ३५, २९२ ( -देशमें कम्मासदम्म कत्वा ),

३३० ( -देशमें युल्लकोट्टित करवा, यहो-

राजधानी ), ४४९ ( देशमें कम्मासदम्म ) ।

कुसोनारा । ४३८ ( में बलिहरण वन ) ।

कुरा सांकुत्त । १०७ टि० ३०३ ( आजोवको-

का आचार्य ), १४४ ( अचेलक ) ।

कुपण । ४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

कैलाश-कूट । २१४ टि० ।

कोकनद-प्रासाद । ३४४ ( सुसुमारगिरिमें

बोधि राजकुमारका ) ।

कोट्टित । महा—( देखो कोट्टिल ), ४९० ।

कोलि । २३१ ( -देशमें हलिहवसन कत्वा ) ।

कोलिय-युत्त । ( देखो पूर्ण ) ।

कोट्टिल । महा—१७३ ( = महा कोट्टित )

१७८ ।

कोसम्बी । ( देखो कौशाम्बी ) ।

कोसल । ( -देशकी राजनीतिक अवस्थाके लिये

देखो प्रसेनजित् भी ) । ९६ ( -देशमें

आवस्ती, साकेत ), १६८, २३९ ( में शाला

ब्राह्मण ग्राम ), २७१ ( में नलक-पान ),

३२५, ३६० ( देशका राजा प्रसेनजित् ),

३९४ ( -देशमें ओपसाद ब्राह्मण-ग्राम,

जिसके उत्तममें देववन ), ४१६ ( -देशके

महापाल ब्राह्मण—चंकि, ठाकुर, पौष्कर-

साति, जालुओणि, सौदेव्य ), ४२१ ( -देश  
में मंडलकप्य ), ६०३ ( में वगरविन्देव्य  
ब्राह्मण-ग्राम ) ।

कोसी । ४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

कौरल्य । ३३४ ( कुरु-देशका राजा ) ।

कौशान्वो ( कोसम्बी ) १९१, ( में बोधिताराम ), २९९ ( में बोधिताराम और ब्रह्म-

गुहा और देवकट-सोम ), ३५२ ( के

बोधिताराममें बोधि राजकुमारके गर्भमें

रहते समय माताका बुद्धको अभिवादन

करना ), ४२७ ।

कौरिक । १४९ ( = इन्द्र ) ।

कौसल्य ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

कुकुच्छन्द ( = ककुसंध ) । ( बुद्ध ), १९८

१९९, २०० ।

कैम्पाभिरत्त । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध )

खेमिय-अम्बवन ३९१ ( वाराणसीमें ), ।

गम्वारा । २०५ ( चम्पामें पुष्करिणी ) ।

गंगानदी । ८२, २३४ टि०; २८६ ( समुद्र-

निष्ठा ) ।

गणक मोगलान । ४५२ ( आवस्तीमें ) ।

गंधबाधि-मुच्च अरिट्ट । ( देखो अरिट्ट ) ।

गंधमादन-कूट । २१४ टि० ।

गंधार । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

गया । १०७ ।

गाम्भ्ये । ( देखो तंगुलिभाल ) ।

गिजकावसथ । १२७ ( नादिकामें, वज्जीमें ) ।

गोदवन । ३४० ( मधुरामें ) ।

गुप्तजित् । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

गुलिस्सानि । २७३ ( राजगृहमें आरपथक

भिन्नु ) ।

गृध्रकूट । ५९ ( राजगृहमें ), २८९ ( पर

शुकर-खाता ), ( राजगृहमें पर्वत ), ४८३,

४८५ ।

गोपक मोगलान । ४५५ ( राजगृहमें ) ।

गोर्जतिक । २३१ ( देखो कोलिय-युत्त पूर्ण ) ।

गोसिग सालवन । १२७, १३० ( नादिकामें ) ।

गौतम । ( = बुद्ध ), १३, १६, ४४, ५३, १३९-



३३, १६८, १६६ ( देवता ), २८३, ३२३,  
( देखो बुद्धो ) ।  
गौतमी । ( देखो प्रजापती )  
घटाय । ५०४ ( -आवका विहार कथिलवस्तुमें ) ।  
घटिकार । ३२५ ( कुम्भकार वेहलिगमें काश्यप  
बुद्धका सेवक ) ।  
घोटमुख । ३९१ ( -आवका वाराणसीमें उदायी  
से संवाद ), ३९३ ( निर्वाण-प्राप्त बुद्धका  
शरणगत, का घाटलिपुत्रके कुक्कुटाराममें  
घोटमुखी उपस्थान-शाला धनवाना ) ।  
घोटमुखी । ३९३ ( बुद्धनिर्वाणके बाद, घाटलि-  
पुत्रके कुक्कुटाराममें घोटमुख आवका द्वारा  
धनवाई उपस्थान-शाला ) ।  
घोषिताराम । ( कौशाम्बीमें ), १९१, २९९,  
५२० ।  
घंकि । ( कोसल देशका आवका महाशाल ),  
३९४ ( -आवका, प्रसेनजित्द्वारा प्रदत्त  
ओपसाद-आवका-ग्रामका स्वामी ), ३९६  
( का शिष्य कापसिक मानवक ), ४०९  
( इच्छानंगलमें, आवका ) ।  
चन्दन । ५५० ( देव-पुत्र ) ।  
चम्पा । २०५ ( में गंगरा पुष्करिणी ) ।  
चातुमा । २६० ( में आमलकीवन, शार्ङ्गोंका  
गणतंत्र ) ।  
चातुमहाराज । ४६ ( एक देवता-समुदाय ) ।  
चातुमहाराजिक । १०० ( देवता ), ३९८ ।  
चित्रकूट । २१४ टि०  
चुन्द । महा—२७, २९, ४९० ( आवस्तीमें ),  
५८५ ( राजगृहमें ) ।  
चुन्द समणुहेस । ४४१ टि० ( साधुजका  
भाई, सामगाममें ) ।  
छहन्त-दह । २१४ टि० ।  
छत्र । महा—५८५ ( राजगृहमें ), ५८६  
( की आत्महत्या ) ।  
जनक । ( देखो कलार ) ।  
जम्बूद्वीप । २१४ टि० ( विस्तार से ) ।  
जयन्त । ४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
जयसेन । ५१५ ( विजयारका पुत्र, राजगृहमें ),

५२० ( राजकुमार, राजगृहमें ) ।  
जागुस्सोणि । १११ ( = जागुओणि आवका,  
आवस्तीका ) ।  
जानुओणि । १३ ( आवस्तीका आवका ), १६  
( उपासक ), ४१६ ( कोसल देशका आवका  
महाशाल ), ४२० ( आवस्तीमें बडवा  
रवपर ), ४०९ ( इच्छानंगलमें आवका ) ।  
जाली । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
जित् । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
जीवक कौमारभृत्य । २२० ( राजगृहमें ) ।  
जेत । ४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
जेतवन । ( देखो आवस्ती ) । ५८४ ( की  
महिमा, अनावर्षिद्विक देवपुत्र द्वारा ) ।  
जोतिपात । ३२५ ( कश्यप बुद्धका शिष्य ) ।  
तगरसिन्धी । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
तत । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
तपोदाराम । ५४६ ( राजगृहमें ) ।  
तारुक्ख । ४०९ ( इच्छानंगलमें आवका ) ।  
तारुत्त । ४१६ ( कोसल-देशका आवका-  
महाशाल ) ।  
तिन्दुकाचौर । ३१४ ( आवस्तीमें ) ।  
तिष्य । ४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
तुषित । १०० ( देवता ) ४९८ ।  
तोदेव्य । ( देखो तौदेव्य भी ), ४०९ ( इच्छा-  
नंगलमें आवका ) ।  
तोदेव्यपुत्त । ( देखो शुभ ), ५५२ ( शुभ  
मानव ) ।  
तौदेव्य । ४१० ( कोसलके आवका महाशाल,  
का पुत्र शुभ मानवक ), ४२० ( भारद्वाज-  
गोत्री ) ।  
त्रयस्त्रिंश । ४६ ( देव-समुदाय ), १४८ ( देव-  
लोक ), १०० ( देवता, ३३८ में सुवर्मा-  
सभा ), ४९८, ५५० ( में पांडु-कम्यल-  
शिला ) ।  
शुल्लकोट्टित । ३३० ( कुक्षदेशकी राजधानी, यही  
के राष्ट्रपाल ), ३३२, ३३४ ( में राजा  
कौरव्य, में भिगा-चौर उद्यान ) ।  
दक्षिणागिरि । ४०४ ( राजगृहके पास ) ।  
दण्डकारण्य । २२६ ।

दण्डपाणि शाक्य । ७० ( कपिलवस्तुका शाक्य ) ।

द्विल । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

दसम गहपति । २०८-९ ( अट्टक नागर ) ।

दीर्घकारायण । ( देखो कारायण ) ।

दीर्घतपस्वी । २२२ ( निगंठ नात-पुत्तका शिष्य ), २२७ ।

दीर्घनख । २८९-९१ ( राजगृहमें परित्राजक, जज्ञिदेश गोत्रीको उपदेश ) ।

दीर्घपरजन । १२९ ( पक्ष = देवता वर्गीमें ) ।

दुरन्वय । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

दुमुंख लिच्छवि-पुत्र । १४१ ( वैशालीका ) ।

दूसी । १८९ ( अम्हाको बहिन काली ) १९९, २०० ।

देवकट सोवम । २९९ ( कौशाम्बीमें ) ।

देवदत्त । २२१ ( -का निकल जाना ) ।

देवदह । ४२७ ( शाक्यदेवतामें कत्वा ), ४२७ टि० ( के पासमें लुम्बिनीवन ) ।

देवल । असित—३८९-९० ।

देववन । ३९४ ( जोषसाद आह्वान-ग्रामके उत्तर ओर घालवन ) ।

देवासुर-संग्राम । १४९ ( में देव विजयी ) ।

धम्मदित्रा । १७९-८३ ( -मिथुणीका उपदेश ), १८३ ( की बुद्ध-मुण्डसे प्रशंसा ) ।

धानंजानि । ४०४ ( राजगृहमें आह्वान ), ४०८ ( की सत्यु ) ।

नगरक । ३६४ ( आबलीके पाल, जहाँ राजा प्रसेमजिष्ठा उद्यान था और जहाँसे भेत-लूप कत्वा ३ योजनपर था ) ।

नगर विदेय । ६०३ ( कोसलमें आह्वान-ग्राम ) ।

नन्द । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

नन्दक । ५९०, ९४ ( आयुष्मान्, मिथुणियों को उपदेश ) ।

नन्द वात्स्य । १०७, ( आजीवकोंका आचार्य ), १४४ ( लच्छक ), ३०३ ( आजीवकोंका नायक ) ।

नन्दि । १२७, २०१ ( नलकपानमें ) ।

नलकपान । २७१ ( कोसलमें, यहाँ पलासवन ) ।

नलकारगाम । ७१९ ( आबलीके समीप ) ।

नागसमाल । ( आयुष्मान् ) ५२ ।

नात-पुत्त । २२२ ( जैनतीर्थंकर ), २१८ ( सर्वज्ञ, सर्वदर्शी ) ।

नाथ-पुत्त निगंठ । ५९ ( = जैनतीर्थंकर महा-वीरका माहात्म्य, ( देखो नात-पुत्त भी ) ) ।

नादिका । १२७ ( वजीदेशमें संभवतः वर्तमान जेधरडीह, मल्लख, जि० खारन, में गिज-कावस्थ ) ।

नालन्दा । २२२ ( में प्राचारिक-आश्रयन ) ।

नालोर्जध । ३५९ ( आह्वान, अशिकादेवी का संदेश-वाहक ) ।

निगंठ नात-पुत्त । ( देखो नात-पुत्त ), १२४ ( जैनतीर्थंकर ), १२८, १४७ ( कुपित ), २३४ ( का अमरराज कुमारको बुद्धसे शास्त्रार्थ करनेके लिये भेजना ), ३०१ ( अकृत विधवादी, सर्वज्ञ सर्वदर्शी ), ४२८ ( सर्वज्ञ ), ४४१ ( की सत्यु पत्न्यामें ) ।

निमि । ३३८ ( मिथिलाका राजा ) ।

निर्माणरति । १७० ( देवता ) ४९८ ।

नीध । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

नेमिप । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

नैवसंज्ञानासंज्ञायतन । ( देवता ) ३, १७१, ४९९ ।

न्यग्रोधाराम । ( देखो कपिलवस्तु भी ) ५७, ७०, २१०, ५०४ ( कपिलवस्तु में ) ।

पंगुपुत्त आजीवक । २० ।

पंचकांग थपति । ३१४-१७ ( को आबलीमें उपदेश ), २३७ ( आबलीमें ) ।

पंचवर्गीय । ( मिथु ) १०७, १०८, ३५० ( - मिथुओंको उपदेश ) ।

पद्म । ४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

पद्मोत्तर । ४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

पब्बजितद्वित । ५८६ ( वज्रीमें गाँव ) ।

परनिमित्तवशवर्ती । ( देवता ) १७०, ४९८ ।

परीत्तशुभ । ४९९ ( देवता ) ।

परीत्ताम । ( देवता ) १७०, ४९९ ।

पर्वत । ४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।



पलासवन । २०१ ( ललकपानमें ) ।  
 परयो । ४८४ ( प्रत्येकपुत्र ) ।  
 पादलिपुत्र । २०८ ( में कुक्कुटाराम ), ३९३  
 ( के कुक्कुटाराममें घोड़मुखी उपस्थान-  
 शाला, जो बुद्ध-निर्वाणके बाद गयी ) ।  
 पांडव-नवत । ४८३ ( राजगृहमें पर्यंत ) ।  
 पांडुकन्वल-शिला । ५५० ( आर्यस्त्रिंश देव-  
 लोकमें ) ।  
 पारासविष । ५०७ ( ब्राह्मणका सिध्द उत्तर  
 भागवतका बाद ) ।  
 पावा । ४४१ ( में निगण्ड नातपुत्तकी मृत्यु ) ।  
 पिगलकोच्छ्र । १२४ ( आर्यस्त्रीका ब्राह्मण )  
 १२६ ।  
 पिडोल । ४८४ ( प्रत्येकपुत्र ) ।  
 पिलोतिक । ११३ ( परित्राजक, वात्स्यायन ) ।  
 पुकुसाति । ५०२ टि० ( मिथु, पहिले तल-  
 झिलाका राजा ), ५०० ( की रापसे मृत्यु ) ।  
 पुनर्वसु । २०५ ( कीटानिर्मित ) ।  
 पुराण स्थपति । ३६६ ( बुद्ध-भक्त तथा राजा  
 प्रसेनजित्का नौकर ) ।  
 पूर्य । ५८८-८९ ( की उपदेश, का सुनापरान्त-  
 गमन ) ।  
 पूर्णकारयप । १२४ ( तीर्थंकर ), १४० ( कोष ) ।  
 ३०० ( जक्रियावादी ) ।  
 पूर्ण कोलिय-पुत्त । २३१ ( गोमतिक ) ।  
 पूर्ण मैत्रायणी-पुत्र । ९४-५५-९६ = प्रहंसा,  
 का सारिपुत्रसे संवाद ) ।  
 पूर्णिका । ४१६ ( दासी, सुभगवनिक औपमन्यव  
 पौष्करसाति ब्राह्मणकी ) ।  
 पूर्वकोष्ठक । १०२ ( आवलीमें ) ।  
 पूर्वोराम । ( देखो सुगारमाता-प्रासाद भी ),  
 १०२ ( आवलीमें सुगारमाताका प्रासाद ),  
 १०२, ३६१, ४५२, ४६०, ४६३, ५०१,  
 ( हाथी-गाथ आदिसे ग्रन्थ ) ।  
 पेस्स । २०५ ( धग्पा-निवासी ), २०६ ( महा  
 भाज, बुद्ध-मुत्तसे ) ।  
 पोतलि-मुत्त । ५५५ ( -परिव्राजक, राजगृहमें ) ।  
 पोतलिय । २१४ ( आपणमें गृहपति उपासक ) ।

पौष्करसाति । ३९५ ( -ब्राह्मणके पुत्र बुद्ध ),  
 ४१६ ( कोसल देशका ब्राह्मण महाप्राज्ञ ),  
 ४१६ ( औपमन्यव, सुभगवन-निवासी,  
 की दासी पूर्णिका ),  
 प्रक्रुध कात्यायन । १२४ ( तीर्थंकर ), १४०  
 ( कुपित ) ।  
 प्रजापति । ( देवता ), ३, १२६ ।  
 प्रजापती । महा—५०९ ( गौतमी, वज्रदान ),  
 ५९० ( आवलीमें ) ।  
 प्रद्योत । ४५५ ( राजा, बुद्ध-निर्वाणके श्रोत्रही  
 समय बाद, राजगृहपर इसलाकरना चाहता  
 था ) ।  
 प्रयाग । २६ ( सरस्वतीके पास ) ।  
 प्रवक्ता । ४८४ ( प्रत्येकपुत्र ) ।  
 प्रावारिक-अभ्रवन । २२२ ( सारंदामें ) ।  
 प्रसेनजित् । ९६ ( कोसल-राजकी आवलीसे  
 साकेतकी धात्रा ), १४० ( कोसल-राज ),  
 ३५३ ( के राज्यमें अंगुलिमाल वाक् ),  
 ३५४ ( के पड़ोसी भागध विधिसार और  
 वैशालीके लिच्छवि ), ३५८ ( की रानी  
 मल्लिका ), ३५९ ( का मल्लिकाको ताना,  
 की एकलौती पुत्री वजिरी ), ३६० ( की  
 प्रिया रानी वासभ लक्ष्मि, का प्रिय  
 पुत्र विह्वल, की प्रिया मल्लिका, के प्रिय  
 काशी-कोसल, की भगवान्से अज्ञा ),  
 ३६१ ( -कोसलका एकपुत्रीक हाथी ),  
 ३६२ ( की अज्ञातपुत्रका भेजा वाहोतिक  
 वक्त्र ), ३६४ ( शाक्योंके मेलतल नगरमें  
 गया ), ३६५ ( मृगोभिषिक्त राजा ),  
 ३६६ ( के नौकर कपिल और पुराण,  
 स्थपति ), ३६६ ( -के बुद्धके साथी कपि-  
 दत्त और पुराण, कोसलक अस्त्री वर्षका ),  
 ३६७ टि. ( की राजगृहके द्वारपर मृत्यु ),  
 ३६८ ( के राज्यमें उलुका ), ३९४  
 ( -कोसलके बंकि ब्राह्मणकी ओपसात् भ्राम  
 प्रदान किया था ), ३९५ ( के पुत्र बुद्ध ),  
 ४२० ।  
 प्रियदर्शी । ४८४ ( प्रत्येकपुत्र ) ।

अक्षगुहा । २९९ ( औशाम्बीमें ) ।  
 अगुण । मोलिय । ७९ ( का भिक्षुणियोंके  
 साथ संसर्ग ) ।  
 फल्गु । २६ ( पवित्र नदी ) ।  
 फलमुकारि । १०० ( धावली-निवासी ब्राह्मण ),  
 ४०१-३ ।  
 अन्धमान् । ४८४ ( प्रत्येकदुष्ट ) ।  
 बलिहरण । ४३८ ( कुसीनारामें वनपण्ड ) ।  
 बालक-लोणकार । २२३ ( -गौतमका ज्वाली  
 गृहपति बालन्वामें ) ।  
 बाहुका । २६ ( सुपवित्र नदी ) ।  
 बाहुमती । २६ ( पवित्र नदी ) ।  
 बाहुलिका । २६ ( पवित्र नदी ) ।  
 विचसार । ६० ( मगध-राज ), ३५४ ( ब्राह्मण,  
 प्रसेनजित्का पहोसी राजा ) ।  
 बुद्ध । १३ ( बोधिसत्व-जीवन ), ४८-५१ ( की  
 तपस्यामें ), १३-१६ ( बोधिसे पहिले जन्म-  
 मृत, और बोधि ), ७४ ( बोधसे पहिले  
 क्षिप्तकी अवस्था ) ९० ( पर वैमर्षिक =  
 जन्मेदवादी Materialist होमेका दोष,  
 देखो गौतम भी ), ४ जीवनी, ४४ (-गुण ),  
 ४८ ( -तपस्या ), ४९-५१ (-रक्षाचार-  
 अनुकम्पा, प्रविवेक, आदि ), ९० ( के  
 विषयमें लग्नति ), १०३-१० ( तत्त्वकी  
 खोज, बालार कालाम, और उदक राम-  
 पुत्रकी शिष्यता, बुद्धत्व-प्राप्ति, और धर्म-  
 चक्र-प्रवर्तन ), १०४ ( बालार कालामके  
 पास जाना ), १०५ ( उदक रामपुत्रके  
 पास जाना ), १४६-४७ ( -तप ), ३४३  
 (-निर्वाणके बाद ), ३४९ ( वाल्म कास्ममें  
 बुद्धोद्भवके क्षेत्रपर आमुनके बीच सभाधि-  
 प्राप्ति ), २३४-३६ ( राजगृहमें अमर  
 राजकुमारसे संवाद ), ३४५-५१ ( का  
 संन्यास-जीवन, धर्मचक्र-प्रवर्तन तक ),  
 ३४५ ( का पाँचवेपर चलनेसे इन्कार ),  
 ३६६ ( बुद्धकी प्रज्ञा ), ३७५-७६ ( का  
 रूप, गमन, घरमें प्रवेश, और भोजनका  
 ङंग ), २९६ ( के गृहस्थमें तीन प्रस्ताव ),

३०६-९ ( के गुण ), ३६९ ( का मत—  
 एकही बार सर्वज्ञ कोई नहीं हो सकता ),  
 ३८६ ( चतुर्वर्णां मुक्ति माननेवाले ), ३९५  
 ( के गुण, प्रसेनजित्के पूज्य, ब्राह्मण पौष्कर-  
 सातके पूज्य ), ४१४ ( विभज्यवादी ),  
 ४२२ ( -जीवनी, गृहत्याग, बालार कालाम  
 और उदक राम-पुत्रके पास ),

बेहत्फल । ( देवता ), १००, १९५, २९९ ।  
 बोधि । १०० ( = बोधगया ) ।  
 बोधि । ४८५ ( प्रत्येकदुष्ट ) ।  
 बोधि राजकुमार । ३४४-५२ ( की उपदेश ),  
 ३४४ ( का भगवद्देशके सुंसुमारगिरिमें  
 कोकनद-प्रासाद ), ३५२ ( की गर्भकती  
 मातासे ही पुत्रको बुद्धका शरणागत कराया;  
 सुंसुमारगिरिमें इसकी धाँसे भी शरणागत  
 कराया, तीसरी बार स्वयं शरणागत ) ।  
 ब्रह्मकार्यिक । १०० ( देवता ) ।  
 ब्रह्मा । ( देवता ) ४६, १००, १९६, २०१  
 ( की लम्बा, सुधर्मा ), ४९८ ( साहस ),  
 ४९९ ( दिसाहस, चतुःसाहस, पंच-साहस,  
 दश-साहस, द्वाद-साहस ) ।  
 ब्रह्मा । वक्र—१२४, १९६ ।  
 ब्रह्मा । सहापति-१०६ ( की बुद्धसे प्रार्थना ) ।  
 ब्रह्मायु । २०३ ( मिथिलाका बुद्ध विद्वान्  
 ब्राह्मण ), ३७७-८० ( का बुद्धसे संलाप  
 और बुद्धधर्म-स्वीकार ) ।  
 भद्रालि । २५०-६१ ( की उपदेश ) ।  
 भर्ग ( = भग्ना ) । ( -देवकी सीमा, में सुंसु-  
 मारगिरि ) ३१, १९८, ३४४ ( -के सुंसुमार  
 गिरिमें उदयन-पुत्र बोधि राजकुमारका  
 महल ) ।  
 भारद्वाज । ( देखो कार्ष्णिक भी ), ४२२  
 ( देखो संसारव ), ४०९-१३ ( हृच्छानंगलमें,  
 तारुण्य ब्राह्मण का शिष्य ) ।  
 भारद्वाज । ( प्रत्येकदुष्ट ), ४८४, ४८५ ।  
 भारद्वाज-गोत्र । २९२ ( ब्राह्मण, कुर्म ) ।  
 भारद्वाज । सुन्दरिक—२६ ( की प्रमत्तता और  
 अहंत्व ) ।



भार्गव । ५०२ ( राजगृहमें कुम्भकार ) ।  
 भावितारमा ( = भावितार ) । ४८४ ( प्रत्येक  
 बुद्ध ) ।  
 भिग । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 भिग । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 भूमिज । ५२० ( आयुष्मान्, राजगृहमें, यह  
 राजकुमार जयसेनके भासा थे ) ।  
 भृगु । २७१ ( नलकपानमें ) ।  
 भैसकलावन । ( देखो सुंसुमारगिरि ), ६१  
 ( सुंसुमारगिरि = सुवार में ), २०१ ( में  
 महामौद्गल्यायनका मारको झट्टना ) ।  
 भवस्त्रालिगोसाल । १०७ दि० ( आजीवकोंका  
 आचार्य ), १२४ ( सीधैकर ), १४३, ( अने-  
 क ), १४७ ( कुपित ), ३०१ ( संसार-  
 बुद्धि-वादी ), ३०३ ( आजीवकोंका  
 नाटक ) ।  
 भस्मादेव । ३३८ ( मिथिलाका राजा ) ।  
 भस्मादेव-आश्रयन । ३३८ ( मिथिलामें ) ।  
 भराव । १०६ ( में मलिन घर्म ), १४६, १३६  
 ( से संगापार विदेह ), ३४६ ( - देशमें  
 उखेला ), ४५७ ( का सेनापति उपनन्द ),  
 ५०२ ( में राजगृह ) ।  
 भगव-महामात्य । ४५५ ( जलकार ) ।  
 भंगल । ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 भंडलकप । ४२१ ( कोसलमें गाँव, जहाँ बुद्ध-  
 भक्त धर्मजानो आश्रणी रहती थी ) ।  
 भतुल । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 भधुरा । ३४० ( = भधुरामें सुंदवन ) ।  
 मनोमय । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 मन्दाकिनी । २१४ दि० ।  
 मल्ल । १४० ( नैका संघ = प्रजातंत्र ) ।  
 मल्लिकाराम । ३१४ ( आश्रयस्थीमें तिन्दुका-  
 चीरमें ) ।  
 मल्लिका देवी । ३५८ ( प्रसेनजित्की रानी ),  
 ३५९ ( बुद्धोपासिकाकी पुत्री वजिरी ) ।  
 महानाम । ४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 महानाम शाक्य । ५७ ( कपिलवस्तु-निवासी )  
 २१०-१३ ।

महावन । ७० ( कपिलवस्तुमें ) ।  
 महावन कूटागारशाला । ( वैशालीमें ),  
 १३८, १४४, २७९, ४४५, ४५८ ।  
 मही । २१४ दि० ( = गंडक ) ।  
 मागन्दिप । २९२-२८ ( परित्राजको उपदेश  
 कम्मासरम्ममें ), २९८ ( जहाँ ) ।  
 मातंग । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 मातङ्गारण्य । २२६ ।  
 माधुर । ( देखो अवन्तिपुर ) ।  
 मानच्छिन्त । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 मानसाध्य । ४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 मार । ४६ ( देवता, जिसका स्थान ब्रह्माणे नीचे  
 और आर्यशिश देवगणसे ऊपर है ), ७६  
 ( = घुराहर्षी ), १९६, १९७, १९८ ।  
 मालुक्क-पुत्त । २५१-५३ ( को उपदेश ) ।  
 मिथिला । ३३८ ( में भस्मादेव आश्रयन ), ३०३  
 ( विदेह देशमें ), ३७७ ( में बुद्ध ) ।  
 मृगदाव । ( देखो अक्षिपतन, गोसिंग, कण्ण-  
 स्थलक ) ।  
 मृगार-भाताका आसाव ( = पूर्वाराम, आश्रय-  
 में ) १०२, १४८, २०१, ( देखो पूर्वाराम ) ।  
 मेतलुम्प । ( देखो मेतलुप ) ।  
 मेतलुप । ३६४ ( शाक्य देशमें तिगन, मगरकसे  
 तीन जोजनपर ) ।  
 मेध्यारण्य । ( = मेज्जारण्य ) ।  
 मेरु । महा—२०१ ।  
 मैत्रायणी-पुत्र । ( देखो अंगुलिमाल ) ।  
 मैत्रायणी-पुत्र । पूर्ण—( देखो पूर्ण ) ।  
 मोग्गलान । ( देखो मौद्गल्यायन ) ।  
 मोग्गलान । गणक—४५२ ( आश्रयस्थीमें ) ।  
 मोग्गलान । गोपक—४५५ ( राजगृहमें ) ।  
 मोग्गलान । महा—( देखो मौद्गल्यायन ) ।  
 मोरनिवाप । ३०५ ( राजगृहमें परित्राजका-  
 राम ) ।  
 मोलिय । ( देखो फग्गु ) ।  
 मौद्गल्यायन । महा—१७, २० ( अश्रयस्थान ),  
 १३०, १३१ ( का बुद्धाव ), १४८-५०  
 ( शकको चमत्कार प्रदर्शन, वैजयन्त प्रा-

सादका कपाना ), १९८ ( भारतजन  
चमत्कार ), २०१ ( के चमत्कार, सुगार-  
माताके प्रासादको हिलाना, वैजयन्त-प्रासाद-  
को हिलाना, सुषर्मा-सभामें मझाने प्रश्न,  
सेरु-शिखरको छुना, पूर्व विदेहके गुरुपोंका  
छुना ), २६७ ( को हटाना ), २७४, ४९०  
( श्रावस्तीमें ), ५७८ ।

यमुना । २१४ टि० ।

यवन । ३८७ ( -देशमें आर्य और दास दो ही  
वर्ण ) ।

यशस्वी । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

याम । ३९८ ( देश ) ।

रक्षित । ४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

रक्त-पाणि । २२४ ।

रथकार-दह । २१४ टि० ।

रम्यक आहारका आराम । १०२ ( श्रावस्ती  
में ) ।

राजकाराम । ५९० ( श्रावस्ती नगरके भीतर  
मिथुणियोंका आराम ), ५९३ ।

राजगृह । ५९ ( में गृहकृत; में ऋषिगिरि काल-  
शिला ), ९३ ( में कलन्दक-निवाप वेणु-  
वन ) ९८, १७९, २२०, २३४, २४५,  
३७३, ३७५, ३९८, ४०४, ४५५, ५३२,  
५१५, ५२०, ५५३, ५८५, ६०५,  
( में गृहकृत पर्वत ), २८९, ५८५;  
३०५ ( में मोरनिवाप ), ४५३ ( श्रावस्ती  
से जानेवाला मार्ग ), ४८३ ( में ऋषिगिरि  
पर्वत, पांडव-पर्वत, वैकुण्ठ-पर्वत, गृध्रकूट  
पर्वत ), ५४६ ( में तपोदारास ), ५७२  
( मगधमें ),

राम । ( देखो उद्गफ रामपुत्र ) ।

रामपुत्र । ( देखो उद्गफ ) ।

राष्ट्रपाल । ३३०-३७ ( कुरु देशकी राजधानी  
हुलकोट्टिके निवासियोंकी प्रव्रज्या आदि ) ।

राहुल । २४८-५० ( को श्रावस्तीमें उपदेश ),  
२४५-४७ ( को उपदेश ) । ५९५ ( को  
अन्धवनमें उपदेश ), ५९६ ( अहंत्व ) ।

रेवत । १३०, १३१ ( का ह्नुकाप ), २७१

( मल्लकपावमें ), ४९० ( श्रावस्तीमें ) ।

लिच्छवि । १३८- ( वैशालीके प्रजातंत्री ),  
३५४ ( प्रसेनजित्के पक्षीसी ) ।

लुम्बिनीवन । ४२७ टि० ( शाक्यदेशमें, देवदह  
कस्बेके पास ) ।

लोमसकंगिय । ५५० ( आयुष्मान् शाक्यदेशमें ) ।  
लोमहर्ष । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

वक्र ब्रह्मा । ( देखो ब्रह्मा ) ।

वकुल । ५१२ ( राजगृहमें ) ।

वंग । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

वजिरो । ३६० ( प्रसेनजित्की पकलीती बेटी ) ।

वज्रो । १२९ ( की नादिकामें दीर्घपरजन मल ),  
१३६ ( में उद्गावेर ), १४० ( संघ =  
प्रजातंत्री ) ५८६ ( देशमें पञ्चजितद्वित  
गौच ) ।

वज्रपाणि । १४० ( यक्ष = देवता ) ।

वत्स-गोत्र । २७९ ( परिभाजक वैशालीमें ),  
२८१ ( श्रावस्तीमें ), २८४ ( राजगृहमें ),  
२८६ ( मिथु ), २८७ ( अहंत्व ),  
२८८ ( वैकिट ) ।

वर्षकार । ४५५ ( देखो वत्सकार ) ४५८ ।

वत्सकार । ४५५ ( मगध-महामाल्य ) ।

वात्स्य । नन्द- ( देखो नन्द वात्स्य ) ।

वात्स्यायन । १११ ( पिलीतिक परिभाजकका  
गोत्र ) ।

वामक । ३९६ ( संवकता ऋषि ) ।

वाराणसी । १०९ ( में ऋषिपत्तन ), १०७,  
१०८, ५७८ ; ३०९ ( का वक्ष ), ३२६  
( -का राजा किकि, काश्यप बुद्धका सेवक ),  
३९१ ( में सोमिय-अन्धवन ) ।

वारिष्ठ । ४०९-१२ ( इच्छानगलमें, दीक्ष-  
स्तातिका शिष्य ) ।

वासम सुत्रिया । ३६० ( प्रसेनजित्की प्रिया  
रानी ) ।

वाहीत । ३६२ ( -देशका वक्ष ) ।

विजित । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

विज्ञानानन्त्यायतन । ( देवता ) ३, १७०,  
४९९ ।



विहङ्गम । ( सेनापति, प्रसेनजित्का पुत्र ),  
 ३६०, ३७०, ३६९ ( प्रसेनजित्के साथ  
 डलुकामें ) ३७१ ( का आनन्दसे संकाप ) ।  
 विदेह । १३६ ( देश, मगधसे संग्राम पार ),  
 ३७३ ( देशमें मिथिला ), ३७४ ।  
 विदेह । पूर्व— २०१ ।  
 विधुर । १९८ ( ककुत्स्थान्द बुद्धके शिष्य ) ।  
 विमल । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 विमुक्त । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 विरज । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 विराट् । १७९-८३ ( इपालक ) ।  
 वेत्थगुप्त । ( गैलानस ) । ३२३ ( परिभाषकको  
 आवस्तीमें उपदेश ) ।  
 वेणुवन । ( देखो राजगृह ) । १७९, २३४,  
 २४५, २७३, ४५५ ।  
 वेरजक । १७९ ( वेरजाके ब्राह्मण ) ।  
 वेताट्टि-पुत्त संजय । ( देखो संजय ) ।  
 वेहलिंग । ३२५ । ( कांसकमें ) ।  
 वैजयन्त । १४९ ( असुरोंके विजयके बाद  
 इन्द्रने बनवाया,—की सोभा, को महा  
 भद्गुलत्वायनने कैपा दिया ), २०१ ( देख-  
 प्रसाद ) ।  
 वैदेहिका । ८० ( आवस्ती-वासिनी गृहपत्नीकी  
 दासी काली ) ।  
 वैपुल्य । ४८३ ( राजगृहमें पर्वत ) ।  
 वैशाली । ४४ ( में अश्वपुरवन-वर्ष ), १३८  
 ( में महावन ), १४४, २०८ ( में बेलु-  
 ग्रामक ), ( में महावन कृतागार-शाला ),  
 २०९, ४४५, ४५८, ३५४ ( के लिच्छवि  
 प्रसेनजित्के पक्षीसौ ) ।  
 वैश्वरग । १४९ ( महाराज, देवता ) ।  
 व्यामार्ग । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 शक्र । ( देवोंका इन्द्र ), १४८, १४९, २०१  
 ( ने असुरोंके विजयके बाद वैजयन्त प्रसाद  
 बनवाया ) ।  
 शाक्य । ( देश ) । ( में कपिलवस्तु ) ५७, ७०,  
 २१०, ५०४, ५५०, ५७९; २६७ ( का गण  
 संघ चातुर्मा ), ३६४ ( देशमें मेतल्ल्य

कस्वा, में वेत्थके कोशलराज प्रसेनजित्का  
 स्थपर जाना ), ४२७ ( देशमें देवदह  
 कस्वा ), ४४१ ( देशमें सामगाव ) ।  
 शाक्यपुत्र । १९६ ( देवता ), ३७७ (= बुद्ध ) ।  
 शाला । १६८ ( ब्राह्मण-ग्राम कोसलदेशमें ),  
 १७१, १६८, २३९, २४४ ।  
 शास्ता । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 शिखरी । ४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 शिखो । १८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 शुद्धावास । ५१ ( देवता ) ।  
 शुद्धोदन शाक्य । ३४९ ( बुद्धके पिता ) ।  
 शुभ । १७० ( देवता ) । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 ५५२, ४१४-२० । ५५२ ( तोदेव्यवृत्त,  
 जेतवनमें ) । ४२० ( मारहाज-मोत्र ) ।  
 शुभ । अप्रमाण—१७० ( देवता ) ।  
 शुभ । परित्त—१७० ( देवता ) ।  
 शुभकृत्स्न ( सुभकिण्ह ) । ( देवता ), ३,  
 १७०, १९५, ४९९ ।  
 शुभगवन । ( देखो सुभगवन ),  
 शुम्भ । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 शुकर-खाता । २८९ ( राजगृहके गृहपट्टपर्वत  
 पर ) ।  
 शैल । ( देखो सैल ) ।  
 शोभित । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।  
 श्रद्ध । १८४ ( प्रत्येकबुद्ध ), ६, १०, १३ ।  
 आवस्ती ( जेतवन ) । १७, २२, २४, २७, ३०,  
 ४१, ५३, ६५, ६८, ७४, ७७, ७९, ८४, ९२, ९४,  
 ९८, १०२, १११, ११७, १२४, १३३, १५१,  
 १७२, १७३, १८४, १८६, १८९, १९४, २३७,  
 २४८, २५१, २५४, २५७, २७५, २८१,  
 २१४, ३१४, ३२३, ३३२, ३५३, ३५८, ३५९,  
 ३६१, ३८६, ४००, ४१४, ४३३, ४६६, ४६९,  
 ४७१, ४७५, ४७९, ४८६, ४९४, ४९८, ५०९,  
 ५३२, ५३९, ५४३, ५४५, ५५०, ५५२,  
 ५६०, ५६४, ५६९, ५८२, ५८८, ५९०,  
 ५९५, ५९७, ६०१; २५८, ८० ( में वैदे-  
 हिका और काली ); ९२ ( में अंधवन ),  
 ( में पूर्वाराम ) १०२, १४८, ( में

रम्यक बाष्पाणका आराम ), १०२ ( में पूर्वकोष्ठक ), ३१४ ( में तिम्रुकाचीर मल्लिकाराम ), ( एवाराम ) ४५२, ४६०, ४६३, ४९०, ५०१ ।

श्रीवर्द्ध । ( देखो सिरिवद्ध ) ।

श्रुतवान् । ४५४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

सकुल-उदायी । ( देखो उदायी ) ।

संगारव । ४२१ ( कोसलके मंडलकम्पका रहने वाला विद्वान् बाष्पाण करुण, भारद्वाज गोत्री ) ।

संघ । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

सब्बक निर्गठ-पुत्त । १३८, १४३ ( लिच्छवियों का आचार्य, वैशाली-निवासी, अग्निवेश-गोत्री ), १४४-१४७ ( से विवाद ) ।

संजय आकाश-नोत्र । ३६९ ( प्रसेनजित्का दूतारी ), ३७१ ।

संजय वेलाट्टि-पुत्त । १३४ ( तीर्थंकर ), १४७ ( कुपित ) ।

संजिका-पुत्र । ३४४ ( माणवक, सुसुमारगिरि में बोधिराजकुमारका मित्र ) ।

संजीव । १९८ ( ऋक्षकुन्दके शिष्य ), १९९ ।

सत्य । ४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

सनत्कुमार । २१३ ( मल्ला ) ।

सन्दक । २९९-३०४ ( पश्चिमाजफको कौशाम्बी-में उपदेश ) ।

सर्भंग । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

सम्य कात्यायन । ५२४, ५२६ ( आबस्तीमें ) ।

समण-मंडिका-पुत्त । ३१४ ( आबस्तीमें परि-भाषक ) ।

समयप्रवादक तिम्रुकाचीर । ( देखो तिम्रुका-चीर ) ।

समिद्धि । ( = समृद्धि ) । ( आयुष्मान्, राज-गृहमें ), ५४६, ५५५ ।

सरभू । २१४ टि० ( सरयू, घाघरा ) ।

सरस्वती । २६ ( पवित्र नदी ) ।

सहापति ब्रह्मा । १०६, १०७ ।

साकेत । ९६ ( कोसल देशमें नगर, जो आबस्तीसे

७ पड़ावपर था, वर्तमान जयोध्या ) ।

सांकृत्य । कुरा—( देखो कुरा ) ।

सात्ति केवट्ट-पुत्त । १५१-५२ ( कीकुरी धारणा ) ।

सामगास । ४४१ ( शाक्य देशमें ) ।

सामिति यानकारपुत्त । २० ।

सारिपुत्र । ( उपदेश ) १०-२०, ३४, ४४-५२,

२३३-३४, ४४५-४८, ३०, ९४-९६, ११७,

१३१-३२, १३३-३८, ९४-९६ ( का पूर्णसे

संवाद ), ९७ ( का नाम उपतिष्य ) १३०,

१३१ ( का सुकाव ) १२६७ ( को हठाना ),

३०४ ( दक्षिणा गिरिमें ), ४६६ ( पंडित

महाप्रज्ञ ), ४९०, ५०८, ५८२, ५८५, ५८७,

६०५-६ ।

साला । ( देखो शाला ) ।

सिरिवद्ध । ३६१ ( = श्री वर्द्ध, प्रसेनजित्का महामातृ ) ।

सिहप्पपातक । २१४ टि० ।

सुकुला । ३६८ ( प्रसेनजित्को रानी, बुद्धो-पासिका, सोमाकी बहिन ) ।

सुदर्श । ४९९ ( देव ) ।

सुदर्शन । १७० ( देवता ), ४८४ ( प्रत्येक-बुद्ध ) ।

सुदर्शन कूट । २१४ टि० ।

सुदर्शी । ( देवता ), १७०, ४९९ ।

सुदाठ । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

सुधर्मा । २०१ ( मल्लाकी सभा ), ३३८ ( प्राय-स्त्रिंश देवोंकी सभा ) ।

सुनत्तत्त-लिच्छवि-पुत्त । ४४ ( गृहस्थ हो गया लिच्छवि ), ४४५-४८ ( वैशाली-निवासीको उपदेश ) ।

सुनकत्र । ( देखो सुनक्खत्त ) ।

सुन्दर । ४८५ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

सुन्दरिक भारद्वाज । ( देखो भारद्वाज ) ।

सुन्दरिका । २६ ( पवित्र नदी ) ।

सुप्रतिष्ठित । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

सुबाहु । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

सुभगवन । ३ ( उक्कट्टामें ), १९४ ( में शाल-



राज ), ४१६ ( का लीपमन्थव यौधरसाति  
प्राध्वण ) ।

सुभूति । ५७१ ( अरण-प्रतिपदापर आरुह ) ।

सुमंगल । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

सुमेध । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

सुवेणुवन । ६०७ ( कजंगलामें ) ।

सुमुमारगिरि । ( = सुतार, मर्गदेशमें, जहाँ  
भैरवकलावन मृगदाव था ) ६१, १५८, ३४४  
( में उदयन-पुत्र बोधि राजकुमारका कोक-  
नद-प्रासाद ), ३५२ ( के भैरवकलावनमें  
धाईका शिष्ट बोधि राजकुमारको गोदमें ले  
भगवान्के पास जाना ) ।

सूनापरान्त । ५८८ ( में पूर्णका जाना ) ।

सेनानी निगम । ( भगवके उरुवेलामें ),  
१०५, १४६, ३४६ ।

सेनिय । कुक्कुर व्रतिक अचेल—१३१ ( हलि-  
हस्तनमें ) ।

सेल । ३८२ ( आपण-निवासी बाध्वण ), ३८४  
( की प्रमन्या और जर्ह्व ) ।

सोरत । ४८४ ( प्रत्येकबुद्ध ) ।

सोना । ३६८ ( प्रसेनजित्की रानी, बुद्धोपा-  
सिका, मुकुलाकी बहिन ) ।

स्थपति । पंचकांग—५२३ ( आवलीमें ) ।

हिमवान् । २१४ टि० ।

हरिद्रवसन । ( देखो हलिद्रवसन ) ।

हलिद्रवसन । २३१ ( कोलियदेशमें कथा ) ।

### ३-शब्द-अनुक्रमणी

अ-कनिष्ठ । ४९९ ।

अ-कालिक । २५ ( = कालान्तरमें नहीं, सद्यः  
फलप्रद ), २२२ ।

अ-किञ्चित् । १७५ ( = कुछ नहीं है ) ।

अ-किञ्चिन् । १७७ ( = कुछ नहीं है ) ।

अ-कुशल । ४२७ ( = बुरे ) ।

अ-कुशल धर्म । १५, ७१ ( = बुराईयाँ ) ।

अ-कुच्छ-लाभो । ४५७ ( = बिना कठिनाई  
के प्राप्त ) ।

अ-कृतविध । ३०१ ( = अकृत ) ।

आकृत्यकारी । ४०१ ( = पापकारी ) ।

अ-क्रियवाद । ४८९ ।

अक्षरप्रभेद । ३७३ ( = शिक्षा-निरुक्त ) ;  
३८६, ४२१ ।

अक्षि । २२८ ( = आँख ) ।

अक्षिकूप । ५० ( = आँखका मण्डप ) ।

अग्नि-परिचर्या । ५१ ( = हवन ) ।

अग्नि-स्कंध । ३२० ( = आगका ढेर ) ।

अग्निहोत्र । ३८४ ।

अग्र । ३७७ ( = श्रेष्ठ ) ।

अग्र-पिंड । १९ ( = प्रथम परोसा ) ।

अंग । ४८६ ( = घात ) ।

अंगण । १७ ( = चित्त-मल ) १८ ( = राग,  
द्वेष, मोह ), ४७० ।

अंगगत । ३३ ( = वधः प्राप्त ) ।

अंगारका । २१७ ( = भस्म, अग्निपूर्ण ) ।

अचेल । ५१५ ( = जान ) ।

अचेलक । ४८ ( = तन्म, के घत ), १६५  
( = वस्त्र-रहित ) ।

अजपददंड । ८६ ( = साँप पकड़नेका ईंछा ) ।

अजिन । ४९ ( = सृण चर्म ) ।

अजिन-निप । ४९ ( = सृणचर्मका खंड ) ।

अंजन-नाली । ३३४ ।

अंजलि-कर्म । ३६९ ( = हाथ जोड़ना ) ।

अब्बा । २७८ ( = बाबा ) ।

अद्वित । ४२२ ( = उत्तम ) ।

अद्व । २२८ ( = अद्वकोश ) ।

अद्वज-योनि । ४६ ।

अ-तप्य । ४९९ ।

अतिकाल । २७३ ( = अतिप्रातः ) ।

अतिदिवा । २७३ ( = बहुत पहिले ही ) ।

अतिमानो । ३२ ( = अभिमानो ) ।

अतिमुक्तक । २१ ( = भोंगरा कुल ) ।

अति-लोन-वोर्ये । ५३० ( = अतिलोनवोरिय ) ।

अतिसार । ५७० ( = धावना, बिलगाव ) ।

अत्यध । ५७६ ( = अपराध ) ।

अदत्तादान । ३२० ( = बिना दिया लेना ) ।

अदत्तादायी । ४०१ ( = चोर ) ।

अदिन्नादायी । १६८ ( = चोर ) ।

अद्भुतधर्म । ८६ ( बुद्धोपदेश ) ।

अधिकरण । ५४ ( = विषय ), ५८ ( समता ),  
७९ ( = संघ के सामने अभियोग ) ।

अधिमुक्त । ४४६ ( = जगुरासी ), ५६३  
( = मूक ) ।

अधिमुक्ति । ४५ ( = स्वभाव ) ।

अधिमोक्ष । ४६६ ( = बुकाव ) ।

अधिवासन । ६ ( = स्वीकार ) ।

अधोभाव । २९ ( = अधोगति ) ।



अध्ययन । ४५६ ( = पाठ ) ।  
 अध्यवक्राशिक । ३०० ( सदा चौड़ेमें रहनेवाले ) ।  
 अध्यवसान । २८९ ( = ग्रहण ) ।  
 अध्येषणा । १९५ ( = प्रार्थना ) ।  
 अध्यात्म । ११४ ( = अपनेमें ), २४८ ( शरीर के भीतर ) ।  
 अध्यायक । ३८९ ।  
 अध्वगत । ५१ ( = पूछ ) ।  
 अनपायिनो । ३०४ ( = न छोड़ने वाली ) ।  
 अनय । १०९ ( = बुराई ) ।  
 अनवय । ३८८ ( = मिथुन ) ।  
 अनागामी । ४९१ ( उस लोकसे यहाँ न आने वाले ) ।  
 अनागारिक । ३४२ ( = बेघर ) ।  
 अनात्मा । १३८ ( = आत्मा नहीं ), २९०, ४६२ ।  
 अनार्य-सुख । ५६९ ।  
 अनावृत्तिधर्मा । ९१ ( = अनागामी ) ।  
 अनुमह । १५७ ( = सहायता ) ।  
 अनुचक्रमण । १३८ ( = अनुचक्रण ) ।  
 अनुजात । ३८३ ( = पीछे उत्पन्न ) ।  
 अनुज्ञा । ३३१ ( = स्वीकृत ) ।  
 अनुत्तर । १०३ ( = सर्वोत्तम ), १४६० ( = अद्वितीय = अनुपम ) ।  
 अनुत्तरीय । १४२ ( = अनुपम पदार्थ ) ।  
 अनुधर्म । ४६९ ( = नियम, प्रकृति ) ।  
 अनुनय । १२० ( = आलस्य = रुचि ) ।  
 अनुपदधन्मविसेस । ४६६ ( = अनुपद-धर्म-विशेष ) ।  
 अनुपादान । ५६६ ( = अपसिग्रह ), ४३६ ( = आग्रह-रहित ) ।  
 अनुपरयो । ३८ ( = अनुभव करनेवाला ) ।  
 अनुपहार । २८३ ( = न मिलने ) ।  
 अनुपेक्षित । ५०० ( = विचारित ) ।  
 अनुबुद्ध । १९६ ( = ज्ञानी ) ।  
 अनुबोध । ३९७ ( = बोध ) ।  
 अनुभव । ४१८ ( = उपभोग ), ४९१ ( = संवेदन ) ।

अनुभाव । ३६० ( = वरकृत ) ।  
 अनुभूत । १९६ ( = प्राप्त ) ।  
 अनुमान । ६३ ( = समझना ) ।  
 अनुमोदन । ७२ ( = अभिनन्दन ), ३७६ ( = भोजन सम्बन्धी अनुमोदन ) ।  
 अनुयुक्त । ५६८ ( = लग्न ) ।  
 अनुयोग । ५० ( = सम्बन्ध ) ।  
 अनुरुद्ध । ४२ ( = प्रतिविरुद्ध ) ।  
 अनुवाद । ४२९ ( = वाद ) ।  
 अनुवाद-अधिकरण । ४४३ ।  
 अनुविचार । ७४ ( = विचार ) ।  
 अनुव्यंजन । १६९ ( = चिन्ह ), १३४ ( = पहिचान ), ४५८ ।  
 अनुराय । ८८ ( = मल ), १३० ( = चिपमल ), १८२, २५४ ( = संस्कार ), २२८ ( = वित्त-दोषों ) ।  
 अनुरायोका विनाश, दुःखका विनाश । ५९९ ।  
 अनुशयोको उत्पत्ति । ५९९ ।  
 अनुशासन । २९ ( = उपदेश ), ५३० ( = शासन ) ।  
 अनुश्रव । ( = श्रुति ) ३९७, ४२८, ४३५ ।  
 अनुसंयान । ५३६ ( = निरोक्षण ) ।  
 अनुसोत । ५४१ ( = धार की ओर ) ।  
 अनुस्मृति । २५ टि० ( = स्मरण ) ।  
 अनेक-विध । ३१७ ( = नाना प्रकार ) ।  
 अन्-अध्यवसित । ५७५ ( = अनिश्चित ) ।  
 अन्-अभिरत । ३६५, ( = बेमन ) ।  
 अन्-आख्यात । ४५५ ( = न-कहा ) ।  
 अन्-आत्म । २४४ ।  
 अन्-आविल । ३१२ ( = स्पष्ट ) ।  
 अन्-उपनाही । ४३९ ( = कीना न-रखने वाला ) ।  
 अन्-उप-व्रज्य । ५८७ ( = पुनर्जन्म रहित ) ।  
 अन्त । ५६७ ( = अति ) ५६७, ५६८ ।  
 अंतर्गुण । ५४१ ( = अंतर्ही ) ।  
 अन्तःपुर । ९६ ( = राजमहल वाला भीतरी दुर्ग ) ।  
 अन्तराय । ८४ ( = विघ्न ) ।

अन्तरायिक । ८४ (= विज्ञकारक ) ।  
 अन्तराष्ट्रक । ५० (= साधके अन्तर्की चार,  
 और कागुलके आरम्भ की चार रातें ) ।  
 अन्तर-धर । ३७६ (= गृहस्थका घर ) ।  
 अन्तर्धान । २८२ (= छुप्त ) ।  
 अन्तानन्तिक-वाद । ४३५ ।  
 अन्वयैगु-परंपरा । ३९० (= अर्थोंके लक्ष्यकी  
 तर्ता), ४१६ (= लगातार अर्थोंकी पौती) ।  
 अन्व-वीथिक । २९६ (= दूसरे अंतवाले ) ।  
 अन्वयात्त्व । ३५८ (= तारापी ) ।  
 अन्वय । १९० (= प्रकार ) ।  
 अन्वयता । २९० (= संबन्धी भाव ) ।  
 अप-गत । ३५७ (= दुरागत ) ।  
 अपचित । ३९५ (= पूजित ) ।  
 अपवपा । २६२ (= संकोष ) ।  
 अपत्रपी । २११ (= संकोची ) ।  
 अपदान । ६२ (= साथ छोड़ना ) ।  
 अपर-अन्त । १५६ (= डोर=आगे आनेवाला  
 समय), ३१८ (= दूसरे डोर ) ।  
 अपरान्त । ४३३ (= अरमेके बाद ) ।  
 अपरान्त-कपिलक । ४३५ (= अपरान्तालुष्टि),  
 ४३३ (= अरमेके बादकी अवस्था ) ।  
 अपरान्त-दृष्टि । ४३३ ।  
 अपरिशेष । ५९ (= सारा ) ।  
 अपरलंक । २३९ (= अपगणक), २३९ (=  
 दुविधा-रहित), ५२३ ।  
 अपश्रयण । ५१३ (= छाट ) ।  
 अपसादित । ३७६ (= गिराना ) ।  
 अपहृत । ७५ (= शिथिल ) ।  
 अपापुरण । ५१३ (= कुंजी ) ।  
 अपाय । ४७ (= दुर्गति ) ।  
 अप्रत्यय । ६२ (= नाराजगी), २५९ (=  
 असन्तोष ) ।  
 अप्रसक्त । ३५९ (= उद्योगी), ४०४ (=  
 प्रमाद-रहित ) ।  
 अप्रमाण । ३०९ (= बहुत भारी), ४३४  
 (= अतिविशाल ) ।  
 अप्रमाणाभ । १००, ४९९, ५२४ ।

अप्रमाण-शुभ । ४९९ ।  
 अप्रमाणा-चेतोविमुक्ति । ५२४ ।  
 अप्रमाद ५५७ (= बाफलत-वगैर ) ।  
 अप्रमेय । ५८० (= प्रमाण-रहित ) ।  
 अप्रसादन ५६८, ५७० (= नाराज करना ) ।  
 अप्भोकासि । २५८ (= खुली जगह ) ।  
 अप्भोकासिक । ३०७ (= सदा चौकैमें रहने-  
 वाले ) ।  
 अप-भय-आभास ५५९ (= डुरेकी तरह  
 दिखाई देनेवाला ) ।  
 अभिक्रान्त । ३०७ (= सुन्दर ) ।  
 अभिक्रांततर । ३१९ (= चमकीला), २९४  
 (= उत्तम ) ।  
 अभिक्रान्तवर्ण । ९२ (= प्रकाशमय ) ।  
 अभिधम्म । (= अभिधम्मे), १३९, १३९  
 (= धर्मसंबंधी), २७४ (= धर्ममें,  
 बुद्धोपदेशमें), ४३८ (= धर्मके विषयमें),  
 ४३९ (= अभिधम्म शब्द, धर्म-विषयक  
 (= सूत्र-विषयक) ) ।  
 अभिधर्मापिटक । ४३९ (= सूत्रोंमें हो जाये  
 गंभीर संक्षिप्त दार्शनिक वाक्यावालयोंको  
 लेकर ईसा पूर्व तीसरी शताब्दीके बाद  
 बना ) ।  
 अभिजाति । २७२ (= जन्म), ३०१, ५२९,  
 ४३२ ।  
 अभिज्ञा । १०५ (= दिव्य ज्ञान), २५३  
 (= लोकोत्तर ज्ञान), २८७, ५०५, ३४६  
 (= दिव्य शक्ति ) ।  
 अभिज्ञात । १४ (= समानित), ४९०  
 (= प्रसिद्ध ) ।  
 अभिज्ञा-परायण । ४१३ ।  
 अभिध्या । ११४ (= लोभ ) ।  
 अभिध्या-रहित । १७० (= निर्लोभी ) ।  
 अभिध्यालु । (= लोभी ) ।  
 अभिध्यालुता । अन्—१४ (= निर्लोभिता ) ।  
 अभिनन्दन । ५३ (= अनुमोदन), २४३  
 (= लिप्सा), २६८ (= अभिवादन—स्वी-  
 कार ) ।



- अभिनिर्दिष्ट । ५४०, १७५, २४७ (= स्वामत) ।  
 अभिनिवेश । ८४ (= आग्रह ), १४८ (= राग ), २६९ (= ममता ), ५२४ (= बाह ), ५७० (= जिह्वा ), ५७१ (= दुराग्रह ) ।  
 अभिनील-नेत्र । ३७५ (= अतसी पुष्प जैसी नीली आँखों वाले ) ।  
 अभिप्रसन्न । ४२१ (= अन्नालु ) ।  
 अभिभूत । ४३० (= पीड़ित ), ४४९ (= वशमें ) ।  
 अभिरुद्ध । (= सन्तुष्ट ) ।  
 अभिरूप । ३९५ (= दर्शनीय ) ।  
 अभिलक्षित । ९४ ( संमानित ) ।  
 अभिवर्द्धित । ४५१ ( अभिनिर्दिष्ट ) ।  
 अभिविनय । २७४ (= विनयमें भिक्षु निवस ) ।  
 अभिवंग । ३१ (= बाह ) ।  
 अभिसम्पराय । २३१ (= जन्मान्तर फल ), ३७९ (= गति ) ।  
 अभिसंबुद्ध । ५ ( बुद्ध ) ।  
 अभिसंलेख । ५०५ (= मानस तप ) ।  
 अभिसमय । ९ (= दर्शन ) ।  
 अभिसंस्कार । १७७ (= संस्कार ) ।  
 अभिहृत । ४८ (= अपने लिये बनाई गई भिक्षा ) ।  
 अभूत । २७९ (= अ-सत्य ) ।  
 अभ्याख्यान । ८४ (= शठ लगाना ), २२० (= इस्लाम ) । २७९ (= निन्दा ) ।  
 अभ्यास । २३१ (= भाषना ) ।  
 अमनसिकार । (= सममें न शङ्ककरना ) ५३० ।  
 अमर । ४३५ ।  
 अ-मन्ददृष्टि । ४३९ (= समझदार ) ।  
 अ-मूढ़-विनय । ४४३ ।  
 अमृत । २५६ (= निर्वाण ), २९५ ।  
 अमृत-दुन्दुभि । ४८२ ।  
 अ-योनिशः । ५२० (= कार्य ) ।  
 अयोनिस्तो मनसिकार । ३ (= वे ठीकसे मन में धारण करना ) ।  
 अद्वया । १७९ (= आर्वा ), ३५२ (= आख्या ) ।  
 अ-रथा । ५७०, ५७१ (= दुष्प्रवर्तित ) ।  
 अरणा-विमर्ग । ५६७ ।  
 अरति । २७१ (= असंतोष ) ।  
 अरूप-संज्ञो । ५६३ (= रूपका ब्याज न रखने वाला ) ।  
 अरोग । ३१९ (= अ-विनाशी ) ।  
 अर्क । २५२ (= मदार ) ।  
 अर्गल । १९८ (= किवाड़ ), १२० (= जंजीर ),  
 अर्चिमान् । ३८८ (= लौपाला ) ।  
 अर्थ । २७४ (= वस्तु ), ४४८ (= घात ) ।  
 अर्थ-युक्त । अन—२३५ (= पदार्थ ) ।  
 अर्थ-वेद । २५ (= अर्थ-ज्ञान ), २९३ ।  
 अर्हन् । १५८, १६४, २३ (= श्रोणाग्र ), २७७, ३०३ (= मुक्त ) ।  
 अल-आर्य-दर्शन-विशेष । २५८ (= लोकोत्तर-ज्ञात, दिव्य शक्ति ) ।  
 अलगद् । २६ ( सौंप ) ।  
 अलमार्य-ज्ञान-दर्शन । ५१ (= उत्तम दर्शनको पराकाष्ठा ) ।  
 अलात । ४३१ (= अंगारा ) ।  
 अलावू । ५० (= लौका ) ।  
 अल्प-आतङ्की । ३५१ (= जलप रोगी ) ।  
 अल्प-उत्सुकता । १०६ (= उदासीनता ) ।  
 अल्प-फल । ४१५ (= अ-फल ) ।  
 अल्प-भोग । ५५३ (= दग्ध ) ।  
 अल्पमात्रक । ४४२ (= छोटा ) ।  
 अल्प-श्रुत । ४६३ (= अज्ञ ) ।  
 अल्पातङ्क । ३७७ ।  
 अल्पावाधा । ३६८ (= आरोग्य ) ।  
 अल्पेच्छ-कथा । ९४ (= निर्लोभीपनके उपदेश ) ।  
 अवकारा । ४६३ (= गुंजाइश ) ।  
 अवदात । १८९ (= शुद्ध ), ४९६ (= श्वेत ) ।  
 अवदातवसन । २८५ (= श्वेत वस्त्रधारी ) ।  
 अवध । अ—३६२ ( सवोध ) ।  
 अवनायन । ३७५ (= नवाना ) ।

अवभास । ५३० ( = प्रकाश ) ।  
 अवबरभागीय । २०८ ( = ओरभागीय ) ।  
 अवबर-भागीय-संयोजन । २३, ९०, १३७, ३८० ।  
 अववाद । ४५३ ( = उपदेश ), ५८६, ५६७  
 ( = बात ) ।  
 अववादक । ९४ ( = उपदेशक ) ।  
 अवलम्ब-विलम्ब । ५० ( = जिसकी, अलगा-  
 विलगी ) ।  
 अवस्रव । १२७ ( = विपाक ) ।  
 अवहित-भार । ४ ( भारको फेंक चुका पुरुष ) ।  
 अवविद्या । ३४, ४३, १५५ ।  
 अवविद्या-अनुशय । ५९९ ।  
 अवविद्या-आस्रव । ७ ( = अज्ञान रूपी मल ),  
 १६ ।  
 अविभ । १७०, ४९९ ।  
 अ-शारवत । ४३५ ( = सादि ) ।  
 अशुचि । ५३४ ( = गन्द ) ।  
 अ-शुभ । २४९ ( = सभी भोग खुरे हैं ) ।  
 अश्रुतवान् । ५६५ ( = अज्ञ ) ।  
 अश्वतर । ३८८ ( = स्वर ) ।  
 अश्वरत्न । ३६२ ( = श्रेष्ठ घोड़ा ), ४३६ ।  
 अष्टांगिक मार्ग । ३१, ३२, १८० ( = कृत ),  
 २९५, ३०९, ४३८, ४४२, ४९१ ।  
 असंज्ञी । ४३३ ( = अचेतन ) ।  
 असंज्ञोवादी । ४३४ ।  
 असंग्रहण । ४५४ ( = अचेत ) ।  
 असि-चर्म । ५८ ( = शाल-तलवार ) ।  
 असिचर्म । ५४ ( = शाल-तलवार ), २५३ ।  
 असित । २३० ( = शुद्ध ) ।  
 असिपत्र-वन । ५४१ ।  
 असिसूना । ९२ ( = पशु मारनेका पीड़ा ),  
 २१६ ( = हड्डी ) ।  
 अस्तंगमन । ५९९ ( = विनाश ) ।  
 अस्थान । ४८१ ( = असंभव ) ।  
 अस्मिमान । २४९ ( = अहंकार ), ५०६ ( =  
 यह मैं हूँ, यह ज्ञान ) ।  
 अस्तासेन्तो । ३४५ ( = सहारते ) ।

अहेतुवाद । ४८९ ।  
 आकल्प । २३१ ( = तौरसरीका ) ।  
 आकार । २७९ ( = शरीर आकृति आदि ) ।  
 आकार । ३१२ ( = आकृति ) ।  
 आकार-परिवर्तक । ४२८, ४३५ ।  
 आकारवती । ३२० ( = सविलर ) ।  
 आकाश-च्छदन । ३२८ ( = आकाश ही  
 जिसकी छत है ) ।  
 आकाश-घातु । ५७४ ।  
 आकाशानन्त्यायतन । ३ ( = अनन्त आकाश-  
 वाला स्थान ), १७०, ४६७, ४७३, ४९९,  
 ५०२, ५६२, ५७५; २७८ ( = छाति-  
 विहार ) ।  
 आकाशिक । ५० ( = तारा ) ।  
 आकिंचन्व । ४३४, ( = नहीं-कुछ-पन ) ४३४,  
 ४६७, ५०२ ।  
 आकिंचन्व-आयतन । १०५ ( = दिव्यस्थान ),  
 १७१, ४३६, ४५०, ४७४, ४९९, ५०५ ।  
 आक्रोश । ५८८ ( = निन्दा ) ।  
 आगति-नाति । ५८६ ( = आवागमन ) ।  
 आपात । ४४० ( = सुरामाव ) ।  
 आपाम । ४९ ( = मौड़ ) ।  
 आचार-नोचर । २२ ( = चर्माचरण ), ४५२  
 ( = सदाचार ) ।  
 आचार्यक । १०४ ( = विशेषज्ञता ), २९७  
 ( = धर्म ), २७२, ३१९ ( = मत ) ।  
 आचार्य-धन । २०९ ( = आचार्यको देनेलायक  
 पूजा द्रव्य ) ।  
 आचिरण । २२२ ( = कायदा ) ।  
 आजानीय । २१८ ( = परिशुद्ध, शुद्ध जातिका ) ।  
 आजानुवाहु । ३७४ ( = खड़े, बिना कुके  
 दोनों जोंघोंको अपने हाथके तलवोंमे दूने  
 वाला ) ।  
 आजानेय । ४९७ ( = अच्छी जातिका ) ।  
 आजोव । ४४२ ( = जीविका ) ।  
 आजीवक । २८० ।  
 आज्ञा । ४० ( = अहंत्व ), ४५ ( = मौड़ ),



४६९ (= जहत्-पद-प्राप्ति), २८४ (= परमज्ञान), २६० (= उत्तम ज्ञान), ४४४, ५३३ ।  
 आणापान-सति । २४८ (= प्राणापान) ।  
 आणी । ७४ ।  
 आतप । ४३६ (= धूप) ।  
 आतप्य । ६५ (= तीव्र उद्योग) ।  
 आतापी । ७४ (= उद्योगी) ।  
 आत्मन्तप । ३९२ ।  
 आत्मन्तप-अपरन्तप । ३९२ ।  
 आत्मभाव । ४०५ (शरीर) ।  
 आत्मवाद । ४३ (= आत्मा कोई नित्य वस्तु है, यह सिद्धान्त) ।  
 आत्म-व्यावाचा । ७५ (= आत्म-पीडा) ।  
 आत्मा । ७ (के नित्यत्व आदिका खंडन), १८०, ४३३, ४७०, ५६६ ।  
 आत्मोत्कर्ष । २४० (= उत्कर्ष) ।  
 आत्मोत्कर्षक । ६१ (= अपनी उन्नति का प्रवर्धन का चाहनेवाला) ।  
 आदर्श । ६४ (= दर्पण) ।  
 आदि । ३६० (= शुरु) ।  
 आदिनव । ७७ (कारण, दुष्परिणाम), २८२ (= बुराई) ।  
 आदि-ब्रह्मचर्य । ४२२ (= शुरु-ब्रह्मचर्य) ।  
 आर्य-स्तव । ३९ टि० (चार) ।  
 आर्यम । ५४१ (= ज्वलित) ।  
 आपानमाही । ६२ (= हठी) ।  
 आध्यात्मिक । ५०५ (= भीतरी), ११९ (= धारीमेंकी) ।  
 आनन-संज्ञा । ४५० (= आननपदका व्याख्यान) ।  
 आनापान-सति । ४९१ (= प्राणापान) ।  
 आनिज्य । ४४६ (= सुख-दुःखसे परेकी समाधि), ५०५ (= चित्तकी एकाग्रता) ।  
 आनिसद । ३४८ (= कृष्ण) ।  
 आनुब्रविक । ३०२, ४२८ (= अनुभवको माननेवाला) ।  
 आनुशायिक । ३३६ (= साथ रहनेवाला) ।  
 आनुरास्य । ७५ (= सुपरिणाम), २४०

(= गुण), ४९७ (= लाभ) ।  
 आनन-सत्प्राय । ४४९ (आनन-सत्प्राय-आनन) ।  
 आनिज्य । ४३४ (= निजल) ।  
 आपण । १९ (= दूकान) ।  
 आपत्ति । (= कष्ट), ४४३ (= दोष), ४५६ (= पाप) ।  
 आपत्ति-अधिकरण । ४४३ ।  
 आपानोय कांस्य । ४४८ (= आवल्लोरा) ।  
 आपायिक । २३, ४ (= दुर्गतिमें जानेवाला) ।  
 आपोवातु । ५०३ ।  
 आवाचा । २५५ (= पीडा), २९० (= घोमारी) ।  
 आभ । ४९९, (= जामा) १००, ५९२ (= प्रकाश) ।  
 आभास्वर । १००, १९५, १९६, ४९९ ।  
 आभिचेतसिक । २१२ (= शुद्ध चित्तवाले), ४५७ (= चित्तसम्बन्धी) ।  
 आमिष । २१६ (= विषय), २७८ (= धन, भोग) ।  
 आमिषगुरु । २७८ (= धन, भोगमें बड़ा) ।  
 आमिष-दायाद । ४६७ (धनका दायाद) ।  
 आयतन । ३२ (= इन्द्रिय), ३८ टि० (८): १८२ (= स्थान), २८३ (= आश्रय), ३०३ (= जगह), ४४९ (= स्थान), ४७०, ४७९, ४९७ (= स्थान), ५०२ (= अधिकरण), ५६० (= इन्द्रिय), ५६२ (= अवस्थान), ५९२, ४९७ ।  
 अयत-पार्ष्णि । ३७४ (= चौकी बुट्टी वाले) ।  
 आयु । १०६ ।  
 आयुध । १६५ (= हथियार) ।  
 आरचारी । १५९ (= दूर रहनेवाला) ।  
 आरामिक । ३०६ (= जाराम सेवक) ।  
 आरख्यक । ३०७ (= सदा भरणमें रहने वाला), ४७२ (= जनवासी) ।  
 आरख्यवीर्य । ४६४ (= उद्योगी) ।  
 आरम्भण ४९६, ८२ (= लक्ष्य, आलंघ्य) ।  
 आराधित ८० (प्रसन्न) ।

आराम । १९ (= आश्रम ) ।  
 आरूप्य । २४२ (= रूपरहित देवताओंके लोक ) ।  
 आर्य । १५९ (= निर्दोष ), १६४, १९२  
 (= निर्मल ), ३८७, ५७९ (= उत्तम ),  
 ६९८ (= सुकृ ) ।  
 आर्य-अष्टांगिक-मार्ग । ५६८ ( देखो अष्टांगिक  
 मार्ग भी ) ।  
 आर्यभट्टा । ९३ (= उत्तम ज्ञान ), ५१ ।  
 आर्य-विनय । २७ (= आर्यधर्म ), १४५  
 (= सुव-धर्म ), १४५, २५८, ५७६  
 (= सत्पुरुषोंकी रीति ) ।  
 आर्य-विमोक्ष । ४५१ ।  
 आर्य-शील । ११४ (= निर्दोष सदाचारकी ) ।  
 आर्यश्रावक । ७ (= सम्भारोंपर आरुढ़ पुरुष ),  
 १९२ (= सत्पुरुष शिष्य ) ।  
 आर्यसत्त्व । १६ ( चार ), ५७८ ।  
 आर्या । ८० (= अर्या, सामिनी ) ।  
 आर्योके दर्शनसे अभिज्ञ । २५५ ।  
 आर्यभ । ४५ (= उत्पद्य ) ।  
 आर्यभी । ५११ (= महती ) ।  
 आलय । ३२ (= छीन होना ), १०३ (= काम-  
 तृष्णा ), १२० (= रुचि ), ४१२  
 (= तृष्णा ) ।  
 आली । ४२७ (= बाँध ) ।  
 आलोक-संज्ञा । १६० (= रोशन स्थान ) ।  
 आवर्त । २६९ (= भँवर ) ।  
 आवर्तनी गाथा । २२७ ।  
 आवसथ । ३६७ (= स्त्राय ), ५३५ (= निवास  
 स्थान ) ।  
 आवास । ४४३ (= मठ ) ।  
 आवाससे शुद्धि । ५१ ।  
 आधिजन । ५२१ (= बृहन् ) ।  
 आवुस । ११ (= स्नेह-सूचक संशोधन जो  
 पहिले मर्दे के लिये भी प्रयुक्त किया जाता  
 था, किन्तु बुद्ध-निर्वाणके बाद छोटीके  
 लिये ही रह गया ) ।  
 आवेश । २०० (= मरमाया ) ।

आशीविष । १४२ (= सर्व ), ४७८ (= सर्व ) ।  
 आश्रव । ४७४ (= चित्तमल ) ।  
 आरवास । ३८७ (= चल ), ४९१ (= श्वास  
 लेना ), २५० (= साँस छोड़ना ) ।  
 आरवास-प्ररवास । १८१ (= साँस लेना  
 छोड़ना ) ।  
 आरवासिक । अन्—३०२ (= मनको संतोष  
 न देनेवाला ) ।  
 आसन । ५९५ (= निर्पीडन ) ।  
 आसन-कुराल । २७३ (= चतुर ) ।  
 आसादिक । ३३३, १३३ (= काली मन्त्रिणों ) ।  
 आसीतिक । ५० (= गम्भीरी वर्षका बूढ़ा ),  
 ३४८ (= वनरूपति विशेष ) ।  
 आस्तिकवादी । २४० ।  
 आस्रव । ६ (= मल ), ३३ (= चित्त-मल ) ३,  
 ३३, ५९, ६८, १७३, १९७, २७७, २९१,  
 २०८, २५६, २६०, ३०३, ४३१, ४६२,  
 ४६७, (= चित्त दोष ) १६६, २१५,  
 २१८, ३८० (= राग द्वेष आदि ), ५९६  
 (= जन्म मरणके कारणभूत चित्त-मल ) ।  
 आस्रवका जय । २५९ ।  
 आस्रवका नाश । ७, ९ ( विस्तारसे ) ।  
 आस्रव-त्रय-ज्ञान । १६ ( तृतीय-विद्या ) ।  
 आस्वाद । ४६१ (= स्वाद ) ।  
 आहार । ३१ (= आघार ), ३१ ( के भेद ४ ),  
 १५३ (= स्थितिके आहार ) ।  
 आहार-शुद्धि । ५१ ।  
 आहार-समुदय । ३१ (= आहारकी उत्पत्ति ) ।  
 आहुरण्य । ५१८ ।  
 इतरजाति । ३२६ (= नीच कुल ) ।  
 इतिवृत्तक । ८६ ( बुद्धोपदेश ) ।  
 इन्द्रिय । १५१ (= शरीर ), २६५ (= मन  
 का अनुभव ), ३२४ (= ज्ञान ), ३५८  
 (= चेष्टा ), ४३८, ४४२, ४९१ ।  
 इन्द्रिय आत्मा नहीं । ५९८ ।  
 इन्द्रिय-परिपाक । ३२ (= इन्द्रिय-विकार ) ।  
 इभ्य । ३९९ (= बीच ) ।  
 इशुकार । ४३१ (= धाण बनानेवाला छोहार ) ।



ईर्ष्या । ५१ ( = आचार ) ।  
 ईर्ष्यापथ । ३६ टि०, ७८ ( = पारिरीक गति ),  
 ३७४ ( = चाल दाल ) ।  
 ईश्वर । ४२९, ४३२ ।  
 ईश्वर-निर्माण । ४३१ ।  
 ईश्वर-निर्माण-हेतु । ४२९ ( = ईश्वरके बनाने  
 के कारण ) ।  
 सुकुटुटिप्पधान । ३०० ( = उकड़ू तप ) ।  
 उम । ११० ( = ओष्ठ ) ।  
 उमराब्द । ३२१ ( = कोलाहल ) ।  
 उच्चार । ३६ ( = पारधाना ) ।  
 उच्चावच । १९३ ( = छोटे बड़े ) ।  
 उच्छ्रय । २१८ ( = उत्सर्ग = खोईडा ) ।  
 उच्छेद । ११ ( = निवाधा = विनय ), ४३३ ।  
 उच्छ्रवत । ३०७ ( = दासा घीन कर खानेवाला ) ।  
 उट्टान । १८१ ( = उठना ), १९३ ।  
 उत्कर्ष । २८९ ( = प्रशंसा ), ३९३ ( = तारीफ ) ।  
 उत्तिष्ठ-परिष । ९० ( = उपेसे मुक्त ) ।  
 उत्तम-श्रंग । २१ ( = शिर ) ।  
 उत्तम-श्रव्य । ५७८ ( = ० यदायं = निर्वाण ) ।  
 उत्तर । अन्-२३ ( = अनुपम ) ।  
 उत्तर । स-२३ ( = जिससे बढ़कर भी कोई  
 हो ) ।  
 उत्तरच्छद । ४८ ( = ऊपरसे ढाँकने की चदर ) ।  
 उत्तर-मनुष्यधर्म । ( = दिव्य शक्ति ), ४४,  
 ५१, १०८, ११८, २७४ ( = खोडोत्तर  
 शक्ति ), २५८ ( = मानव स्वभावसे परे ),  
 ४१६ ( अलौकिक शक्ति ), ४१६ ( जलमाय  
 ज्ञान-दर्शन-विशेष ) ।  
 उत्तरारण्यी । ३७६, ३८८, ५२१ ।  
 उत्तरासंग । २२९ ( = चहर ), २६८ ( = ऊपर  
 की चहर ), ३६० ( = चहर ), ( = उपरना )  
 ४२०, ४७६ ।  
 उत्तान । ९१ ( = विवृत = प्रकाशित ), २०६  
 ( = सुला, सरल ) ।  
 उत्तानीकरण । ५७८ ( = स्पष्टीकरण ) ।  
 उत्थान । ३९८ ( = उद्योग ) ।  
 उत्पत्ति । ५८८ ( = समुदय ) ।

उत्पल । १०७ ( = मौलकमल ) ।  
 उत्पत्तिनी । ३१० ( = उत्पल-समूह ), ४९५ ।  
 उत्सव । २०० ( = एक उपनयन ) ।  
 उत्सव । सप्त-३७५ ( = सातों अंगोंमें पूर्ण  
 आकारवाले ) ।  
 उत्सादन । ९३ ( = हटाना ), ५०० ( = सुप्त  
 करना ) ।  
 उत्सादित । ५६८ ( = प्रसन्न ) ।  
 उत्सोहि । ६७ ( = उत्साह ) ।  
 उदककृत्य । ५११ ( = प्रक्षालन, स्नान आदि ) ।  
 उदक-तारा । ३४८ ( = पानीका तारा ) ।  
 उदकहृद् । ३१० ( = दह ), ३१३  
 ( = जलपाय ), ४९५ ( = जल कुण्ड ) ।  
 उदकावरोहक । १६५ ( = जलवासी ) ।  
 उदयान । ( = जलापाय ), २३, ५० ।  
 उदय-न्यय । ५०६ ( = उत्पत्ति-विवादा ) ।  
 उदान । ८६ ( सुबोपदेश ), ११२, ( = जाल-  
 दोहासमें निकली पाक्यापली ), ३२३,  
 ३७७, ४२० ।  
 उदार । ( = वना ) १११, ३०३, ५१० ( =  
 महान् ) ।  
 उदेश । ( = नाम ) २१८, २७५, ३१२,  
 ५४३ ।  
 उन्नत । २० ( = अभिमानी ) ।  
 उन्नासन । ३७५ ( = ऊपर उठाना ) ।  
 उपकारी । ( = प्राकारों = शहर-पनाह ) ५४,  
 ५८ ।  
 उपकुञ्ज । ३४९ ( = सहारा कर ) ।  
 उपक्रम । ४२८ ( = साधना ) ।  
 उपक्लेश । ५७ ( = मल ), ११५ ( अंगण =  
 मल ), ३०३ ( = चित्त-मल ), ( = मल )  
 ३२२, ४००, ११४१ ।  
 उपलिष्ट । ३९५ ( = निन्दित ) ।  
 उपधि । २६४ ( = भोग इच्छा, भोग संग्रह ),  
 २७८ ( = गुरु ), ( = विषय-संग्रह ), ४८६,  
 ५७६ ( = स्कन्ध, वाय, क्लेश, कर्म ) ।  
 उपनयन । १९७ ( = धर्म-नार्थपर ले जाना ) ।  
 उपनाह । ( = पाखण्ड ) १२, २४, ३१५

( = द्रोण ) ।

उपनाही । ३४२ ( = पाषाणही ) ।

उपनिषद् । ४८६ ( = रहस्य ) ।

उपनील । ३३५ ( = ले जाया जा रहा ), ३८९

( = उपनयन द्वारा मुझे पास प्राप्त ), १५३

( = पहुँचाया ) ।

उपपरोक्षा । २५९ ( = जाँच ), ३९९ ( = अर्थका  
परीक्षण ) ।

उपपाद् । ५८६ ( = उत्पत्ति ) ।

उपपन्नत्व । ५८३ ( जाने-जानेके संसर्गवाला ) ।

उपपील । ५३० ( = उच्छिष्ट = उत्पीडा =  
विह्वलता ) ।

उपमा । ( = दृष्टान्त ), २० ।

उपवाद । २४९ ( = शिक्षा ) ।

उपवादक । ११५ ( = निन्दक ) ११५, ३१२ ।

उपविचार । ५६१ ( = विचार ) ।

उपशम । ( = शांति ) १६६, २८१, ३४६,  
५०४ ( = समाधि ), ५०६ ( = शमन,  
शान्त होना ) ।उपशम-संवर्तनिक । ४२ ( = शांतिको प्राप्त  
करानेवाला ), ४४१ ( = शान्ति-नासी ) ।

उपशान्त । २९३ ( = शांत ) ।

उपशय । ५१३ ( = निवास ) ।

उपसम्पदा । ५१३ ।

उपसंपन्न । ३४५ ( = प्राप्तकर )

उपसम्पन्न । ( = मिश्र ) २८६, ३२६,

३३२ ( = मिश्र होना ) ।

उपस्याक । ३२५ ( = सेवक ), ५८५ ।

उपस्थान । ५८५ ( = सेवा ) ।

उपस्थान-शाला । ३९३ ( = समान-गृह ) ।

उपस्थित-स्मृति । २७३ ( = होश रखनेवाला ),  
४६४ ( = बाहोश ) ।

उपहर्ता । २६२ ( = लानेवाले ) ।

उपहार । ३६५, ( = समान ) ।

उपादान । ४२ ( = आग्रह, ग्रहणचार )

४२, ४३ ( चार, = प्रकलन ), ९६

( = परिग्रह ), १४८ ( = रागवृत्त ग्रहण )

१५५ ( = ग्रहण या ग्रहण करनेकी इच्छा ),

१६० ( = रागवृत्त ग्रहण ), २१६

( = ग्रहण, स्वीकार ), २१७ ( = ग्रहण ),

( = आग्रह, दुराग्रह ), ४३६, ४३७, ४५१

( = ग्रहणकी इच्छा, वास्तविक ), ४८०,

( = ग्रहण ) ५९३, ५९३ ।

उपादान । सं-४१ ( = घटोरनेवाला ) ।

उपादान-स्केध । ३१ ( = विषयके तौरपर ग्रहण  
करने योग्य स्कंध ), ११७ ( पाँच ), १२०,  
१७९, १८०, ४६०, ४६९ ।उपाधि । १०३ ( = भोग-पदार्थ ), २५५  
( = विषय ) ।

उपाय । ४६९ ( = उपादान ) ।

उपावास । ३१ ( = परेशानी ) ।

उपावास-बहुल । ५५३ ( = परेशान रहने  
वाला ) ।उपारम्भ । ८६ ( = प्रवृत्त ), ८६ ( = सहा-  
यता ), ३६१ ( = निन्दित ) ।

उपासना । ३३४, ( = सत्संग ) ३६४, ५८३ ।

उपेक्षा । १६६, १७७, २१२, २४९ ( = समुत्की  
रावृत्तकी उपेक्षा ), ५२४ ।

उपेक्षा-भावना । २५, ४९१ ।

उपेक्षा-संबोधन । ५९३ ।

उप-पास्य । ३३८ ( = उपवास भक्त ), ४५६  
( = अमावास्या ), ५३६ ।उपमृष्टक । ४९ ( = छोसरी ) १६५ ( = सदा  
खड़े रहनेवाले ) ।

उभयोभाग-विमुक्ति । २५८ ( = अर्द्ध ) ।

उभंग । ५५६ ।

उकृत्तम । १४४ ( = जाघोंका कठिया जाना ) ।

लुका । ८२ ( = लुकारी ), २१७ ( = मशाल,  
लुकारी ), ५७४ ( = बंगोटी ) ।लुकामुख । २५ ( = झट्टीकी छड़िया ), ४९९  
( = झट्टी ), ५७७ ( = बंगोटी ) ।उष्णीषशीर्ष । ३०५ ( = पगड़ी जैसे चारों ओर  
समानाकार शिरवाले ), ५७४ ( = गर्मी ),

१७६ ( = उष्णता, शरीर की गर्मी ) ।

उत्सीकृत । ८५ ( = छूतक गया ),

१५२ ( = अवगाहन कर पाया ) ।



उत्सर्गपाद । ३७४ (= गुल्फ ऊपर अवस्थित है, जिस पादमें ) ।

ऊर्णा । ३७५ (= रोम-राखी ) ।

ऊर्ध्वाम्लोमा । ३७४ (= उनके अंजन समान नीले तथा प्रदक्षिणासे धार्यसे वहिनी और ) ।

ऊर्ध्वविरोधन । २९७ (= उल्टी आगेकी दवा ) ।

ऊर्ध्वसर । ४३५ (= आगेकी लोकवाशाको अनुसरण करनेवाला ) ।

उर्मि । २६९ (= लहर ) ।

उर्मि-भय । २६९ ।

अनु-यतिपन्न । २५ (= सरल मार्ग पर आरुह ) ।

अनु-प्रत्यनीक । २३९ (= विरुद्ध ) ।

अद्वि । ३२५ (= समृद्ध ) ।

अद्विपाद । ६६, ६७, ३०८, ४३८, ४४२, ४९१ ।

अद्विमान् । १५ (= होशियार ), ५३६ ।

अद्विविध । ३११ (= योग चमत्कार ) ।

अद्वयनुभाव । १८ (= चमत्कार ) ।

अपम । ४१३ (= श्रेष्ठ ) ।

एक-चारिका । ७६ (= जाल ) ।

एकागारिक । ४९ (= एक ही घरमें निवा करनेवाला ), ५७ (= चोरी ), ५८ (= चोरी = एक घरको घेर कर चुराना ) ।

एकान्त-मुख । ३२० (= मुख-भय ) ।

एकायन मार्ग । ४७ (= एक मात्र मार्ग ) ।

एकांश । २३५ (= सर्वथा=विना अपवादके ), ३९७ (= खोलहो जाना ) ।

एकांशवादी । ५१४ (= विभाग करके लच्छेको अन्धा, डुरेको घुरा कहनेवाला ; न कि एक ही छाठीसे सबको हाँकनेवाला ) ।

एकाहिक । ४९ (= एक दिनमें एक बार ) ।

एङ्गमूक । ४५४ (= भेड़ और गैंड़े जैसा ) ।

एणांजंघ । ३७४ (= सुग जैसा पेंडुली वाला भाग जिसका हो ) ।

एक-वार्तिका । ५५, ५९ (= ईँड ) ।

एषणा । ५० (= ह्वा ) ।

एहिपत्निक । २५ (= यही दिखाई देने

वाला ) ।

ऐरोयक । ५५, ५९, ( ईँड ) ।

ओज । ८० (= रस ) ।

ओदन । ३७५ (= भात ) ।

ओदन-कुलमाप । २९० (= दाल-भात ) ।

ओलिंगल । २६३ (= गवही ), ९ (= गंदी गवही ), ५३४ ।

ओलुग्ग-विलुग्ग । ३४८ (= अँहण, घँहण = अलगा-विलगी ) ।

ओषधिनारा । ३२० (= शुकतारा ) ३१० ।

ओद्धस्य-कौकृत्य । (= उद्धतपथा-हिच-किचाहट ), १६०, १७५, १९२, ४१७, ४५८, २७१ (= उद्धृतकला ), ३८ (= उद्धस्य कुक्कुत्स्य ), ( उद्देग, खेद ), ५२६ (= उद्धतपथा ) ।

औपनयिक । २५ (= निर्वाणके पास ले जाने वाला ) ।

औपपातिक । २३ ( दिव्ययोनिमें उत्पन्न ), (= आयोनिज देव ), ९१, १३६, २०८, २५६, २८५, ३८७ (= देवता ) ; ३२८ ।

औपपातिक-योनि । ४६ ।

औपपातिक सत्व । १६९ ( अयोनिज प्राणी = देवता लोग ) ।

औरभिक । २०७ (= भेड़ मारनेवाला ) ।

औरस । ४६८ (= हृदय या मनसे उत्पन्न ) ।

कर । ४९ (= एक प्रकारका मृण ) ।

कठला । ९३ ( ठोकरा ), ८३, १४१ ।

कठिन चीवर । ५१३ ।

कण । ४९ (= खेतमें छूटा दाना ) ।

कथा । ५०७ (= बात ) ।

कथावस्तु । २२३ (= बात, विषयका विषय ), ३५८ (= चर्चा ), ३६९ (= बात ), ६७१ ।

कथं-कथी । १५७ (= कहने-सुननेवाला ) ।

कमनोय । १५८ (= कान्त ) ।

कम्मकरण । ५४ (= ईँड ), ५९, ५३२ ।

करका । ३२२ (= मरुकी ) ।  
 करण । ५१७ (= शिक्षा ) ।  
 करवीर पत्र । २५२ (= करेरुके पत्रकी भोलि  
 भोजवाला ) ।  
 करीष । ११७ (= उदरका मल ) ।  
 करुणा । १६६, १७७, ५२४ ।  
 करुणा-भावना । २५, ४९१ ।  
 कर्म । ५०४ (= मिश्र वस्त्रकी सिलाई ) ।  
 कर्म-कारणा । ५४० (= दंड ) ।  
 कर्म-स्थान । ४१४ (= कर्म पैसा ) ।  
 कर्मान्त । १३ ( कापिक कर्म ), २८, १३९  
 (= काम ), १६२ (= खेती ), ४०५  
 (= पैसा ), ४५५ (= कारवार ) ।  
 कर्मरिपुत्र । ४९९ (= सुनार ) ।  
 कलिग्रह । ५३५ (= दाव ), ५३८ (= दाव,  
 पासा ) ।  
 कलोपी । ३२८ (= वर्तन ) ।  
 कलिगर । २६३ (= वस्तुओंके गलेमें बाँधनेका  
 काष्ठ ) ।  
 कल्प । ११५, ३७३ (= केटुम ), ३८६ (= निघटु-  
 केटुम ), ५९१ (= युक्त ) ।  
 कल्पस्थ । २३४ (= कल्प भर गरकमें रहने-  
 वाला ) ।  
 कल्पित कर । ३६५ (= बनवा ) ।  
 कल्प्य । ५-२२१ (= अनुचित ज-विहित ) ।  
 कल्प्य । २२१ (= उचित, विहित ) ३६२,  
 ३९३ ।  
 कल्याण-कीर्ति । २३४ (= सुयश ) ।  
 कल्याण-धर्मा । (= पुण्यात्मा ) ३४२, ५९० ।  
 कल्याण-मित्र । २७७ (= सुमित्र ) ।  
 कवलिकार । ३१ ( घ्रास करके खाया जाने  
 वाला ) ।  
 कवलीकार । १५४ (= कवल, कवल करके  
 जाने योग्य ) ।  
 कष्टकारी । ८७ (= दुःख उठानेवाला ) ।  
 कसट । २०६ (= मूल ) ।  
 काकपेया । २५५ (= करारपर बैठे बैठे काँसेके  
 पीने योग्य ), ४९६ (= जिसके ऊपर

कौआ बैठ आसानीसे ) ।  
 काज । ५२४ ( यहाँगी ) ।  
 काण्ड । २५२ (= शर ) ।  
 कादलिसूत्र । ४८ (= समूरी चर्म ) ।  
 कान्त । ३२७ (= सुन्दर ) ।  
 कान्तार । १६३ (= रेगिस्तान ) ।  
 काम । ३१ (= इन्द्रिय-संभोग ), ४२, ५३  
 (= भोग ), ५७, ८४, १३३ (= भोग-  
 वासना ), १६०, १६३, १६९ (= खो-  
 संभोग ), १८९, १९०, २८४ (= खो-  
 प्रसंग ), २९३ (= विषय भोग ), २९४,  
 ३३७, ४४९, ४८७ (= विषय ), ५६७ ।  
 काम-अन्न । ३२४ ( भोग भोग ) ।  
 काम-आश्रय । ९, १६ (= काम-वासना-रूपी  
 आश्रय ), ५०२ (= भोगेच्छा सम्बन्धी चित्त  
 कालुष्य ) ।  
 कामगुण । १०९ (= काम भोग ), ९३, ९९,  
 १५१, २९९, २९४, (= विषय भोग ) २६५,  
 २९५, ३२४, ४१७, ४४५, ५१० ।  
 कामच्छन्द । ३७ (= कामुकता ), ९३  
 (= भोगोत्से राग ), १७५, २५४, २५५,  
 ४१७ ।  
 कामभोगी । २८५ (= उचित विषय भोगी ) ।  
 काममिथ्याचारी । १८७, ३२० (= ध्यमिचारी ) ।  
 काम-मूर्ख । ३४७ (= काम पिपासा काम-  
 रुचि = कामस्नेह ) ।  
 कामराग । १९२ (= भोग इच्छा ), ४५८  
 (= विषय कामना ) ।  
 काम-वितर्क । ९ (= कामवासना-सम्बन्धी-  
 संकल्प-विकल्प ), ५१२ (= काम सम्बन्धी  
 विचार ) ।  
 काम-संज्ञा । ५१२ (= कामका ख्याल ) ।  
 काम-संयोजन । ४३६ (= विषय बन्धन ) ।  
 काय । ३२ (= समुदाय ), ३३, १९६ (= योनि ), ५९७ (= निकाश ) ।  
 कायगता-सति । ४९४ (= कायगत स्मृति ) ।  
 काय-दण्ड । २२२ ।  
 काय-दुश्चरित । २३९ (= कापिक दुष्कर्म ) ।



कायवल । ३०५ (= शरीर फैलना ) ।  
 काय-साक्षी । २५८ ।  
 काय-संस्कार । १८१, १०६ (= कायिक  
 कियों ), १०६ ( शारीरिक गति ) ।  
 काया । ३९ (= ठंडा-गर्म जाननेकी शक्ति ) ।  
 कायानुपश्यना । ३५-३७ ( चौदह ) ।  
 कायानुपश्यी । ३९२ ।  
 कायिक-अधर्माचरण । १६८ ।  
 कायिक धर्म । १८१ (= कियों ) ।  
 कारण । २६० (= कसूर चेकसूरका निर्णय ),  
 २६१ (= शिष्टा ), ५३० (= हेतु ) ।  
 कार्पापणक । ५५, ५९ ( दंड ) ।  
 काल-क्रिया । ३२ (= मरण ) ।  
 कालज्ञ ५६९ (= काल देखकर कहनेवाला ) ।  
 काल-वादो । ११३ (= समय देखकर बोलनेवाला ) ।  
 कापाय-कंठ । ५८० (= कापाय-मात्र-पारी ) ।  
 काष्ठहारक । ४९ (= लकड़हारा ) ।  
 कांक्षा । ५९० (= संदेह ) ।  
 कांक्षा-वितरण-विशुद्धयर्थ । १५ (= सन्देह  
 दूर करनेके लिये ) ।  
 किन्ति । ४३९ (= क्या ) ।  
 किल्ल । १३९ (= उल्ला ) ।  
 किशोर । ३८८ (= बच्चा ) ।  
 किशुराल । १०४ (= क्या उत्तम है ) ।  
 किशुराल-गवेधी । ३४५ (= क्या अच्छा है कि  
 गवेधना करनेवाला ) ।  
 कीर्तिशब्द । ३४० (= यश ) ।  
 कुक्कुट-पोतक । ६० (= चूजे ) ।  
 कुक्कूल निरय । ५४१ ( नरक ) ।  
 कुत्ति । ३४८ (= पैर ) ।  
 कुड्य । २८६ (= अन्तर्धान हो सीतके पार  
 चला जाना ) ।  
 कुनार । २२९ (= घन्चे ) ।  
 कुम्भी । ४९ (= घड़ा ), ३२८ (=   
 हैंडिया भात पकानेके बड़े बर्तन का  
 नाम है ) ।  
 कुम्भीर । २६९ (= मगरका ) ।  
 कुम्भीर-भय । २६९ ।

कुल्माष । ३३२ (= दाल ), ३२८ (= कुलपी ),  
 ३४९ (= मात-दाल ), ५३४ (= अन्न ) ।  
 कुल्लूपम । ८७ (= बेड़ेके समान ) ।  
 कुराल । ३० (= मलाई ), १०, ४६, ११४  
 (= उत्तम ), ३४६, ३१७, ३५६, ४३५,  
 ४४२ ।  
 कुराल । अ-३० (= बुराई ), १०, १३६ (=   
 नावाकिय ) २८४ (= बुराई, पाप ) ।  
 कुराल-व्यकुराल । २८४ ( मलाई बुराई ) ।  
 कुराल-धर्म । अ- २९ (= बुरेकाम ) ।  
 कुराल धर्म । ३१६ (= मलाई ), ४०२  
 (= निर्घाण ) ।  
 कुराल-मूल । ३०, ३१ ( सीन ) ।  
 कुराल मूल । अ- ३० ( सीन ) ।  
 कुराल-संयुक्त । ११८ (= निर्मल ) ।  
 कुराल-स्थान । २४१ (= भले काम ) ।  
 कुसीती । २० (= आलसी ) ।  
 कुसीदी । ४५४ (= आलसी ) ।  
 कुहना । ४८८ (= पाखंड द्वारा बचना ) ।  
 कूट । १९१ (= शिखर ) ।  
 कूटागार । ४८ (= ऊपरी तलका भवन ),  
 ३०७ (= कोठी ), ४७९ (= महल ) ।  
 कूर्म । १२ (= कछुवा ) ।  
 कृतकर्म । २६३ (= अपना काम जिसने कर  
 लिया है ) ।  
 कृत-परप्रवाद । ३६६, (= प्रीत साक्षार्थी ) ।  
 कृत्स्न । ४३४ ।  
 कृत्स्नायतन । ३१० ।  
 कृषि । ४१५ ।  
 कृष्ण । २३२ (= बुरा ) ।  
 केटुभी । २० (= पाखंडी ), ९९, ३८२ (=   
 कल्प ), ४२१ ।  
 केवल । ६० (= एकांत ), १२२, १५५  
 (= आलस्य ) ।  
 केवली । ३७८ (= वन-भरण जिसका मष्ट  
 हो गया, वृक्षचर्च ) ।  
 कैटुभी । ४५४ ।  
 कोदण्ड । २५२ ।

कोष्य । ५७५ ( = चल ) ।  
 कोषाच्छादित । ३७८ ।  
 कोसक । ३०७ ( = पुखा ) ।  
 कौकृत्य । ७० ( = कन्देह ), २५७ ( = चिन्ता ) ।  
 कौमुदी । ७९० ( = चौदनी; पूर्णिमा ) ।  
 कौमुदी चातुर्मासी । ४९० ( = कार्तिक  
 पूर्णिमा ) ।  
 कंसपातो । १७ ( = घाली ) ।  
 क्रकचोपम । ८३ ( आरके इष्टोक्तवाले ), ११८  
 ( = आरके समान ) ।  
 क्रिया । २७१ ।  
 क्रियावादी । २८० ( = कर्मवादी ) ।  
 कोशित । ५५५ ( = निन्दित ) ।  
 किष्ट । ५२५ ( = मल-युक्त ) ।  
 क्लेश । उप—२४ ( = मल ) ।  
 क्लेश । २७२ ( = मल ) ।  
 क्लृप्ता । ३९४ ( = माहात्म्य ) ।  
 क्लृप्त । १२९ ।  
 क्लृप्त-ब्राह्मण-वैश्य-शूद्र । ३८८ ।  
 क्षम । ६२ ( = समर्थ ) ।  
 क्षम-धर्मा । २९० ( = क्षम स्वभाववाला ) ।  
 क्षान्तिक । ३२४ ( = रुचिक ) ।  
 क्षारोदका नदी । ५४१ ( = खारे पानीवाली  
 नदी ) ।  
 क्षीणवाद । ५६९ ( = जीने बोलनेकी बात ) ।  
 क्षीणास्त्रव । ४ ( = राग आदिसे मुक्त ), ४६  
 ( = अर्हत् ), १७७ ( = चित्तमलों ( से  
 मुक्त ) अर्हत् ), ४१३ ( = रोगादि-रहित ),  
 ५१९ ( = अर्हत् ) ।  
 क्षीर-पर्णी । २५२ ( = बुधिया जड़ी ) ।  
 क्षेम । २९५ ( = भोग ) ।  
 स्वमता । ३९१ ( = रुचता ) ।  
 स्वर्मात । २८९ ( = पसन्द ) ।  
 स्वमनीय । ५२८ ( = डीक ) ।  
 स्वलोपी । ४९ ( = पथरी ) ।  
 स्वारापनच्छिद्रक । ५५, ५९ ( दंड ) ।  
 स्वाङ्कित्य । ३२ ( = दाँत टूटना ) ।  
 खिलजात । ६५, ६६ ( कटिला ) ।

खुरकाय । २६१ ( = मिश्रवदनति ) ।  
 खेलपिंड । ६०८ ( = चूक-कफ ) ।  
 गण । १०४ ( = सम्वासियोंकी जमात ),  
 १०५ ( = मित्रुओंकी जमावत ), ५०४  
 ( = जमात ) ।  
 गणना । ५४ ।  
 गणी । ३०५ ( = संघ पति ) ।  
 गति । ४७ ( = पाँच ), ४१३ ( = पहुँच ) ।  
 गह्वरीय । ३६९ ( = निदनीय ) ।  
 गर्हा । २७९ ( = निवा ) ।  
 गहनता । २०५ ( = दुरुह ) ।  
 गाथा । ८२ ( कुक्षोपदेश ) ।  
 गीता । सु—( = उचित कथन ) २१३ ।  
 गुप्त-द्वार । २७३ ( = संवन्धी ), ४५८ ( = संयत-  
 इन्द्रिय ), १८ ( = संयम-युक्त ) ।  
 गुप्ति । ३४२ ( = रक्षा, वरण ) ।  
 गुरुक । ४४३ ( = वही ) ।  
 गुरुकार । १९, ५५३ ( = पूजा ) ।  
 गुरुकृत । ३९५ ( = आनित ) ।  
 गुल्फ । ३०५ ( = छुट्टी ) ।  
 गृध्र-निरय । ५४१ ( = बिछाका नरक ) ।  
 गृध्रलोभ । अ- २१५ ( = निर्लोभ ) ।  
 गृहपति । ५३७ ( = वैश्य ), ४९८, ११२, ३९७  
 ( = गृहस्थ ) ।  
 गृहपति-चौवर । ५१२ ।  
 गृही-प्रतिसंयुक्त । ४४४ ( = गृहस्थ-संवन्धी ) ।  
 गेध । ५६१ ( = लोभ ) ।  
 गेध-संवन्धी । ५६१ ।  
 गेय । ८६ ( बुद्ध-उपदेश ) । ५०६ ।  
 गोघातक । ३६ ।  
 गो-घातक सूना । २१६ ( = मांस काटनेके पीदे ) ।  
 गोचर । १७६ ( = विषय ), १९७, ९ ( =  
 विचरण-स्थान ), ४४९ ( = लक्ष्य ), ३३  
 ( = चरागाह ) ।  
 गोचरभाम । ३४६ ।  
 गोत्रभू । ५८० ( = नाम-धारी ) ।  
 गोपन । ५४ ( = रक्षा ) ।  
 गो-पद्म । ३७५ ( = नाय जैसी फलकवाले ) ।



गोपानसो । ५३९, ३४८ ( = टोपे = कवियों ) ।

गोपालक । ४९ ( = माला ) ।

गोपालन । ५४ ।

गोमय । ४०२ ( = डफले ), १५३ ( = कंडे ) ।

गोमंडल । ५० ( चर्वाहा ) ।

गोरक्ष । ४०१ ( = गोपालन ) ।

गो-विकर्त्तन । २६३, ३४८ ( = कुत्ता ) ।

गोष्ठ । ४०४ ( = बवान ) ।

गंड । ४३४ ( = फोड़ा ) ।

गंधकुटी । ३२८ ।

गंधर्व । ३८९ ( = उत्पन्न होनेवाला सत्त्व ) ।

ग्रहणो । ३५१ ( = प्रकृति ), ५३७ ( = पाचन-शक्ति ) ।

ग्राम्य । ५६७ ( = निकट ) ।

ग्रीष्मक । २९३ ।

ग्लान । ५७९ ( = रोगी ) ।

ग्लान-प्रत्यय । ३४२ ( = पथ ) ।

ग्लान-प्रत्यय-भौषज्य । ६८ ( = रोगीके पथ-औषध ) ।

ग्लान-प्रत्यय-भौषज्य-परिष्कार । २२ ( = रोगी के पथ और औषधकी चीजें ) ।

घटिक । १५७ ( = घविषा ) ।

घटित । ५२ ( = रण ), ३७५ ( = रणवृत्ता ) ।

घटौची । ४९६ ।

घाम । ४७ ( = धूप ) ।

घास-आच्छादन । ५३५ ( = मरना कपड़ा ) ।

घोष । ३४१ ( = हला ), ३८२ ( = आवान ) ।

घ्राण । ३९ ( = सूंघनेकी शक्ति ) ।

चक्रवर्ती । ५३५ ।

चक्षुर्विज्ञान । ४७० ( = चक्षु द्वारा मिलनेवाले ज्ञान ) ।

चतुरविज्ञान । ५७३ ।

चतुः परिवर्त । ४८२ ।

चतुर्दशी । १४ ( = समावास्या ), ३३८, ५९३ ।

चन्दनिका । ९ ( = गणहा ), २६३, ५३४ ।

चरण । २१२ ( = पद या आचरण ) ।

चरण-सम्पन्न । २१३ ।

चाण्डाल । ३८८, ५३५ ।

चातुर्वर्णी सुद्धि । ३८६ ( = चारों वर्णोंकी सुद्धि ) ।

चातुर्मासभूतिक । ३०० ( = चार मृतोंका वना ) ।

चातुर्मासराजिक । ११९, १२९, १७०, ४९८ ।

चातुर्याम-संवर । २२५ ।

चातुर्वर्णी सुद्धि । ३७१ ( = चारों वर्णोंकी सुद्धि ), ३८६, ( केवल ब्राह्मणोंको नहीं, चारों वर्णोंकी ध्यान आदिसे पाप-सुद्धि ) ।

चारिका । ९४ ( = रासत ), १०७, १०८ ( = ब्राह्मा ), २५७ ( = पर्यटन ) ।

चिगुलक । १५८ ( = चिगुली ) ।

चितान्तरास । ३७५ ( = दोनों कर्णोंका विचला भाग जिसका चित = पूर्ण है ) ।

चित्त । ७५ ( = ब्याल ), ४६९ ( = मन ) ।

चित्त-उत्पाद । ४७५ ( = चित्त या चित्तारोंकी उत्पत्ति ) ।

चित्त-विमुक्ति । २१२ ( = सुद्धि ) ।

चित्त-विशुद्धि । ९५ ।

चित्त-संस्कार । १७६, १८१ ।

चित्तानुपरयना । ३० टि० ।

चित्तानुपरयी । ४९२, ५१८ ।

चीरक-वासिका । ( ईड ) ५५, ५९ ।

चीवर । ८ ( = वस्त्र ), २२, १९९, २०९ ( = मिथुके तीन वस्त्र—सङ्गाटी, उत्तरासंग, अन्तर्वास ), ४३८, ५७६ ( = अन्तर वासक = लुंगी, उत्तरासङ्ग ) ( = इफहरी कपड़ लेनेकी चादर, सङ्गाटी ) ( = दुहरा उत्तरासङ्ग सदीके लिये और एक भिक्षा पात्र एक मिथुके लिये जरूरी है ) ।

चीवर-कर्म । २५७ ( = वस्त्र सीना ) ।

चूर्णक । ३३४ ( = पौडर ) ।

चेतक । ७३ ( = होशियार ) ।

चेतना । ३३ ( = संज्ञाके अगतर मनकी अवस्था ), २३३ ( मानस कर्म ), ४६६ ( = चित्तना ) ।

चेतना । सं—३१ ( = ब्याल ) ।

चेतसिक । ६०१ ( = मानस ) ।

चेतसिक धर्म । १८१ ।  
 चेतसोधिनिर्वन्ध । ६५ ( = चित्त-वन्धन ), ३६१ ।  
 चेतः समाधि । ५०२ ।  
 चेतोखिल । ६५ ( = चित्तके कील ) ।  
 चेतो विमुक्ति । १७५, २५६ ( = छूटे चित्त-  
 मलों ), ४१९ ( = भावना ) ५०४ ५२३,  
 ५५३ ।  
 चेतो विमुक्ति अक्रोप्या । १७८ ।  
 चेतोविमुक्ति-अप्रमाणा । १७३ ।  
 चेतोविमुक्ति आकिचन्या । १७७ १७८ ।  
 चेतोविमुक्ति-आनिमिता । १७७, १७८ ।  
 चेतोविमुक्ति-शून्यता । १७७ ।  
 चेतो-विमुक्ति समापत्ति । १७७ ।  
 चैलण्डुक । ९७ ( = अंगोठा ) ।  
 चैत्य । १३ टि० ( = देवताओं और मूर्तियों  
 चोरे ) ।  
 चैलपत्ति । ३४५ ( = पाँवदे ) ।  
 चोदना । ५३९ ( = अभियोग ) ।  
 चोर । ३५३ ( = डाकू ) ।  
 चोर-घातक । २०७ ।  
 चंकम । ३९१ ( = टहलनेके चक्करे ), ५०५  
 ( = टहलना ) ।  
 चंगवार । ५२ ( = चंगौरा = टोकरा ) ।  
 च्युत । ३१२ ( = छूट ) ।  
 च्युति । १५ ( = सृष्टि ) ५८६ ।  
 च्युति-उत्पाद-ज्ञान । १५ ( = प्राणियोंके जन्म-  
 मरणका ज्ञान ), ११५ ।  
 छन्द । २९० ( = राग ), ४३०, ३९८ ( = रुचि ),  
 ४६० ।  
 छम्मितत्त्व । ५३० ( = स्तम्भितत्व ) ।  
 छवि । ५४० ( = ऊपरी चमका ) ।  
 छविचरण । १७७ ( = कांति ), १४६ ( = चमके  
 का रंग ) ।  
 छिद्र । १६१ ( = दोष ) ।  
 छटिलक । १६६ ।  
 जनपद । २२९ ( = देश ), ३३८ ( दीहात ) ।  
 जनपद-कल्याणी । ३१९ ( = सुन्दरियोंकी  
 रानी ), ३२३ ( देशकी सुन्दरतम स्त्री ) ।

जनपद-भाषा । ५७१ ।  
 जन्तापर । ( = स्नान-पर ) ।  
 जन्म । ४४५, ( = आवागमन ), ४६२, ५२६ ।  
 जरा । ३२ ( = बुढ़ापा ) ।  
 जराधर्मा । १०३ ( = बुढ़ापा होता ) ।  
 जरायुज-न्योमि । ४६ ।  
 जात । १५७ ( = सन्तान ) ।  
 जातक । ८६ ( बुढ़ोपदेश ) ।  
 जातरूप । २१५ ( = सोमा ) ।  
 जाल-इस्त-याद । ३७४ ( = अंगुलियोंके बीच  
 धतकके पंजेकी भाँति चमका ) ।  
 जाति । ३१ ( = जन्म ), १५५, १६०, २६९,  
 २७९, २९७, ३३२ ।  
 जातिधर्मा । १०३ ( = जन्मनेके स्वभाववाला ) ।  
 जातिभूमि । ९४ ( = कपिल-वस्तु ) ।  
 जाति-संस्कार । ९० ( = जन्म दिवानेवाले पूर्व-  
 कृत कर्मोंके चित्त-प्रवाहपर पड़े संस्कार ) ।  
 जानपद । ५०७ ( = दिहाती ) ।  
 जायिका । २६४ ( मेहरिया ) ।  
 जालिनी । ४८५ ( = कृष्णा ) ।  
 जीवित । ५७५ ( = जीवन ) ।  
 जुगुप्सु । ४८ ( = असुकंपा रखनेवाला ), ४९  
 ( = बलवर्धका जंग ) ।  
 जयाविहार । ७०, १४४ ( = टहलना ), २१४  
 ( = चङ्क-कदमी ), ३८२ ।  
 ज्या । २५२ ।  
 ज्योतिर्मातिका । ५५ ( = ईश ), ५९ ।  
 ज्ञाति । ३३५ ( = जाति ) ।  
 ज्ञाति-दासी । ३३२ ( = जातिवालोंकी दासी ) ।  
 ज्ञाति-सलोहित । ४७५ ( = जाति-माइयों ) ।  
 ज्ञान । ७० ( = संख्या ) ।  
 ज्ञानदर्शन । २७९ ( = ज्ञानके साक्षात्कार  
 करने ) । ३०७ ( = ज्ञानका मनसे ग्रहण  
 करना ) ।  
 तद्वहुपादियण । ११८ ( = कृष्णमें कैसा ) ।  
 तत्पापीयसिका । ४४३ ( = तत्स पापीयसिका ) ।  
 तथागत । ५ ( = जैसे अन्य बुद्ध संसारमें भाये,  
 भाते हैं, या आवेंगे, वैसे ही जो आया ),



- १५८, २५३ ( = शुक्ल पुरुष ), १८९ ( = लोकगुरु ) ।  
 तथागत-उत्पत्ति । ११३ ।  
 तथागत-बल । ४४ ( दश ) ।  
 तथाभूत । २३२ ( = स्मृत = जैसे ) ।  
 तन्दी । २९१ ( = आलस्य ) ।  
 तप । ४१५ ।  
 तपस्वी । ४८-४९ । ( महावर्षका अंग ) ।  
 तरुण । ५० ( = बहुत छोटा ) ।  
 तरुणवत्सा । ५२१ ( = धेनु ) ।  
 तर्कावचर । अ-३९८ ( = तर्कसे अप्राप्य ) ।  
 तल । ३४९ ( = आसन ) ।  
 तस्स पापोयसिका । ४४४ ( = उसकी और भी कहीं आपत्ति ) ।  
 तात्कालिकी । ५०४ ( = सामयिक ) ।  
 ताम्रलोह । ५४१ ( = ताँबे ) ।  
 तिष्ठत्प्राकार । ४४३, ४४४ ( = घाससे ढाकने जैसा ) ।  
 तिरच्छाया-कथा । ३१८ ( = व्यर्थ कथा ) ।  
 तिरः प्राकार । २८६ ( = अन्तर्धान हो प्राकार के पार हो जाना ) ।  
 तिरीट । ४९ ( = एक वृक्षकी छाँट ) ।  
 तिरोभाव । २८६ ( = अन्तर्धान होना ) ।  
 तिर्यग् । ४७ ( = पशु पक्षी आदि ), २३१, ( = पशु ), ४०६, ४६४, ५३४ ।  
 तिलक । ५३९ ( = दाग ) ।  
 तिल-पिष्ट । ५२१ ( = तिलकी लुगदी ) ।  
 तीर्ण-विचिकित्स । ४७९ ( = संशय-रहित ) ।  
 तीर्थ । २९ ( = नदीका घाट ), २०९ ( = मत ), २५८, १३३ ( = नदीका उतार ) ।  
 तीर्थायतन । २८० ( = पंथ ) ।  
 तीर्थिक । ५०५ ।  
 तीर्थिक । अम्य-२३८ ( = पंथाई ) ।  
 तुष । १५३ ( = भूमी ) ।  
 तुषित । १००, ५०९ ।  
 तुषित-काय ( तुषित देवता ) । १२९, ४९८, ५८३ ( = तुषित-देव-लोक ) ।  
 तुषोदक । ४९ ( = चावलकी शराब ) ।  
 तुल्य-उत्पत्ति-समान । ८४ ।  
 तुल्यहारक । ४९ ( = घसिद्वारा ) ।  
 तुष्टा । ३१ ( तीन ), ४३, १५४ ।  
 तुष्टा-क्षय-विमुक्ति । १५० ।  
 तुष्टा-संज्ञय-विमुक्ति । १६० ( = तुष्टाके विनाशसे होनेवाली मुक्ति ) ।  
 तेज । ३४० ( = मुक्ति ) ।  
 तेजन । ४३१ ( = बाणफल ) ।  
 तैथिक । ४१ ( = दूसरे मतवाले ), २२४, २२६ ( = पंथाई ) ।  
 तोमर । ५१७ ( = माला ) ।  
 त्रयस्त्रिंश । ४९८, ५५० ।  
 त्रायस्त्रिंश । १००, २९४ ।  
 त्रैचोवरिक । १३१ ( = सिर्फ तीन वर्षोंको पासमें रखनेवाला ) ।  
 त्रैविद्य । २७९, २८८, ३७८ ( = तीन विद्याओं का जाननेवाला ), १२९ ४०९, ३२८ ( = तीनों वेदोंका अनुयायी ) ।  
 तत्पापोयसिका । ४४३ ।  
 त्वक् । ३६ ( = चमड़ा ) ।  
 धम्भ । १२ ( = जवता ) ।  
 थीन-मिद्ध । ( देखो स्थान-सूच ) ।  
 दक्षिणेश । २५ ( = दान देने योग्य ) ।  
 दत्तो । ४५ ( = कलकी ) ।  
 ददुल । ४९ ( = कोधो ) ।  
 दन्तकार ३११ ( हाथोंके दाँतका काम करनेवाला ) ।  
 दन्तप । ३८३ ( नाग ) ।  
 दन्त-विकृति । ३११ ( = दाँतकी घनी चीजें ) ।  
 दंधा । २६५ ( = धीरे-धीरे ) ।  
 द्रव्य । ६०१ ( = डर, खेद ) ।  
 दर्भजातिक । ७३ ( = कुमाय-बुद्धि ) ।  
 दर्विग्राहक । ३९० ( = रसोईदार ) ।  
 दर्शन । ६ ( = विचार ), १०६ ( साक्षात्कार ), ४२८ ( = ज्ञान ) ।  
 द्रव । १६२ ( = मसली ), ४४४ ( = सहसा ) ।  
 द्रु । ४२७ ( = पुष्करिणी ) ।  
 दहर । ५१ ( = तरुण ), ६४ ( = कमलित ), २२९ ( = नव-वयस्का ), ३४५ ( = नवव-

यस्य ) ।

दान्त । २१३, ( = संवत् ), ५१६ ( = विनीत ),  
५१६ ( = शिक्षित ) ।

दान्त । अ-२९ ( = उनके संवत्से रहित ) ।

दान्त-भूमि । ५१६ ( = शिक्षित-जगत्स्था ) ।

दायाद । ३३२ ( = दास्य ) ।

दावपालक । १२७ ( = वनपाल ), ५२८ ।

दास । १६३ ।

दिट्ठिनिष्मानकस्य । ३९७ ( = दृष्टि निष्पानाश ) ।

दिनादान । अ-११३ ( चोरी ) ।

दिनादायी । १५९ ( = दियेका लेनेवाला ) ।

दिया । २६२ ( = सम्पाद ) ।

दिव्य-न्त्र । १५ ( द्वितीय विद्या ) २५९, २८७,  
४३१, ४५७ ।

दिव्य-श्रोत्र । २९२, ३११, ४५७ ।

दिव्य-श्रोत्र-धातु । २९६ ( = काव ) ।

दीर्घ-रात्र । ५७ ( = बहुत समय ), २६९  
( = चिरकाल ) ।

दुःख । ३१, ३७५ ।

दुःख-निरोध ८ ( = दुःखका विनाश ) ।

दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद । ४०, ( दुःख-  
स्कांध ) १२१ ( = दुःख पुंल ), १५५ ।

दुःख-विपाक । ७७, ३६२ ( = अंतमें दुःख  
देनेवाला ) ।

दुःख-समुद्य । ५३० ( = दुःखोत्पत्ति ) ।

दुःख-समुद्य । ८ ( = दुःखका कारण ),  
१७३ ।

दुःख-स्कांध । ५८ ( = दुःखोका पुंल ), २९७ ।

दुःख-स्पर्श । २९४ ( = दुःखके साथ होने  
लायक ) ।

दुःख-अनुबोध । २८२ ( = बुझें ) ।

दुर्गत । १९० ( = कुमार्गारूढ ) ।

दुराख्यात । ४२ ( ठीकसे नहीं व्याख्यात  
किया गया ) ।

दुर्गृहीत । ४३८ ( = उल्टा समझा हुआ ) ।

दुर्दृश । ३९ ( दुर्बोध ) ।

दुर्भाविना । १०९ ( = पाप ) ।

दुर्मनस्कता । १२१ ( = दुःख ) ।

दुर्बर्ण । ५५२ ( = कुरूप ) ।

दुश्चरित । ५५ ( = पाप ), ५३३ ।

दुःश्रुत । ४७४ ( = न सुनने योग्य ) ।

दुष्कर-कारक । २३१ ( = मुश्किल करने  
वाला ) ।

दुष्कर-कारिका । ५१ ( = तपस्या ), ४२८ ।

दुष्कर-क्रिया । ५९ ( = तपस्या ) ।

दुष्प्रज्ञ । ५५२ ( = निर्बुद्धि ) ।

दुष्प्रतिनिस्सर्गी । ४३९ ( = मुश्किलसे छोड़ने  
वाला ) ।

दुष्प्रति-मंज्य । २८६ ( = वाद करनेमें  
दुष्कर ) ।

दुष्प्रवेदित । ४२ ( ठीकसे न जाना गया ),  
४३१ ( = ठीकसे न साम्राज्यकार किये  
गये ) ।

दुस्स-युग । २०९ ( = धूँकेका जोका, वान  
जोका ) ।

दृष्ट । ३ ( = देखा ), १५४ ( = दर्शन, ज्ञान ) ।

दृष्ट । सु-१५४ ( = अच्छा दर्शन ) ।

दृष्ट-धर्म । २६८ ( = इसी जन्ममें ) २९१  
( = जिसने धर्मको देख लिया ), ४३३  
( इसी शरीरमें ) ।

दृष्ट-धर्म-अभिज्ञा-व्यवसाय-पारमो-प्राप्त । ४२८  
( = इसी शरीरमें जानकर, निर्वाणको  
प्राप्त ) ।

दृष्ट-धर्म-मुखविहार । २७ ( = इसी जन्ममें  
मुखपूर्वक विहार करना ) ।

दृष्ट-वादिता । ४६९ ( = देखा हुआ कहना ) ।

दृष्टि । ७ ( = वाद, मतके छः भेद ), २७  
( = दर्शन, मत ), ३८ टि. ( = धारणा,  
मत ), ४२ ( = धारणा ), ८७, ८८, १००,  
१८४, ४६४, २११ ( = दर्शन ), ३००  
( = वाद ), ४३६, ५२०, ४४४ ( = सिद्धान्त ),  
२८१ ( = मत ) ।

दृष्टिक । ३२४ ( = मत रखने वाला ) ।

दृष्टि-कान्तर । ७ ( = दृष्टिको अश्रुति ), २८१  
( = मतका रेगिस्तान ) ।

दृष्टि-नात । ७ ( = मत-वाद ), १११ ( = धारणा



में स्थित तथ्य ), २८१ ( = दृष्टि ), २८२ ।  
 दृष्टि-माह्न । ७ ( = दृष्टिका घना जंगल ),  
 दृष्टि-निश्चाय-ज्ञान्ति । ४२८, ४३५ ।  
 दृष्टि-निश्चय । ८९ ( = धारणाके विषय ) ।  
 दृष्टि-प्राप्त । २५८, ४८० ( = सच्चे दर्शन ) ।  
 दृष्टि-मान । ३१ ( = धारणाका अभिमान ) ।  
 दृष्टि-विशुद्धि । ९५ ( सिद्धान्त ठीक करने ) ।  
 दृष्टि-विशूक । ७ ( = दृष्टिका कौटा ), २८१  
 ( = ० कौटा ) ।  
 दृष्टि-विस्फन्दित । २८१ ( = ० को चंच-  
 लता ) ।  
 दृष्टि-सम्पन्न । १९३ ( = आर्य दर्शन युक्त ) ।  
 दृष्टि-संयोजन । ७ ( = दृष्टिका कौटा ), २८१  
 ( = सतका बंधन ) ।  
 दृष्टि-स्थान । ८९ ।  
 देव । १६३ ( = दृष्टि ), ४०७ ।  
 देवता । ३ ( देव, प्रजापति, ब्रह्मा, आभास्कर,  
 शुभ कुम्भ, वृहत्फल, अभिभू, आकाशा-  
 नन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आदि-  
 चन्दायतन, नैव संज्ञान्ता संज्ञायतन ),  
 १९० ( = भेद ) ।  
 देवदूत । ५३९ ।  
 देवनिर्वाण । ६६, ५२५ ( = देवसमुदाय, देव-  
 योनि ) ।  
 देशाना । १०७ ( = उपदेश ), ३७९, १९३  
 ( = अपराध निवेदन ) ।  
 देशता । ४८३ ( = यतलाता ) ।  
 दौर्मनस्य । १५ ( = चित्त-सन्ताप ), ३१, ५४  
 ( = दुःख ), १०७ ( = चित्त-सन्ताप ),  
 १८३ ( = चित्त-सन्ताप ), ४३६ ( = चित्त-  
 खेद ), ५०५ ( = पुत्रा मम होना ), ५६१  
 ( = खेद ) ।  
 दौष्टुल्य । २५५ ( = चंचलता ) ।  
 दौस्थ्यल्य । ५२६ ।  
 द्वारकोष्ठक । १०२ ( = फाटक ), ३४४  
 ( = गौवतणाना ) ।  
 द्वारशाला । २२८ ( = शास्त्रान ) ।

द्वेषा । ७४ ( = दोहक ) ।  
 दुःपट्टिक । ४९ ( = दो दिनमें एक बार ) ।  
 धनुकलाप । ४०१ ( = शस्त्र-शिक्षण ) ।  
 धनुक । १५८ ( = धनुही ) ।  
 धनुष-कलाप । ५८ ( = धनुष-लक्षणी ) ।  
 धम्मकोस । ३०६ ( = धिक्कार ) ।  
 धर्म । ६, ३९, १२५, १३८, १४८, १३९, १७४,  
 १७५, ( = पदार्थ ); ९ ( = विचार );  
 ११, ५७, ६१, ( = बात ), ३२ ( = मन  
 इन्द्रियका विषय ); ३७, ३९, ( = स्वभाव );  
 ३९ ( = मनका विषय ); ८४ ( = कार्य );  
 ८६, ( = उपदेश ); १७६, १८१, १८६,  
 ( = पदार्थ ), १८९ ( = पुण्य ), १८१  
 ३४५, २७८, ३५७, ४८६, ५४३, ५२३  
 ( = बात ), २११, ४५७, ( = उपदेश );  
 २५४ ( = मानसिक विचार ); २६०  
 ( = काम ); २२४ ( = पदार्थ ); २९०  
 ( = स्वभाव ); ४३९, ४४० ( = बात,  
 दोष ); ४५५ ( = गुण ); २६७ ( = चित्त-  
 प्रवाहका एक रूप ); ४७०, ५३२ ( =  
 दुर्योग ); ५४८, ५९५, ६०३ ( = विचार ) ।  
 धर्म-कुशल । १८९, ( = पुण्य आचरण ) ।  
 धर्मका अनुस्मरण । २५ ।  
 धर्म-अन्वय । ३६५, ( = धर्म-दर्शन ), ३६५,  
 ( = धर्म-आवृत्ति ) ।  
 धर्म-कथिक । ४७२ ( = व्याख्याता ) ।  
 धर्म-न्याय । ४६८ ( = धर्म ) ।  
 धर्म-वस्तु । ५९६ ।  
 धर्मचर्या । ५३५ ( = धर्माचरण ) ।  
 धर्मता । १९० ( तथ्य ), १९३ ( = स्वभाव,  
 गुण ) ।  
 धर्मदायाद । १० ( = धर्मकी वरासत पानेवाला ),  
 ४६७ ( = धर्मका वारिस ) ।  
 धर्मदेशना । ५६८ ( = धर्मका उपदेश ) ।  
 धर्म-धर । १३४ ।  
 धर्मवातु । २३६ ( मतका विषय ) ।  
 धर्म्मनिश्चयानात् । ३९९ ।  
 धर्मनेत्री । ४४३ ( = धर्म रूपी स्त्री ) ।

धर्मपर्याय । ५२ (= धर्मोपदेश ) ; ७३, ४७५,  
५२६ ।

धर्म-विचय । ९ टि० (= धर्म-अन्वेषण ), ३९  
४८६, ५९३ ।

धर्म-विचय-संवाध्यंग । ४९२ ।

धर्म-विनय । ४२ (= मत ), ४५, (= बुद्ध-  
धर्म ), १०४, ( धर्म ), १३३, (= बुद्ध-  
धर्म ), १५२, ४४३ (= धर्म ), १९३,  
२३३, ४०२, ४२८, ४५२ ।

धर्म-वेद । (= धर्म-ज्ञान ), ४३९ ।

धर्मसमादान । १८४ (= ४ धर्मोंकी स्वीकृतिपूर्व ),  
१८५, १८६, १८७ ।

धर्मादर्श । ४८२ ।

धर्मानुपश्यता । ३७ टि० ।

धर्मानुपश्यी । ४९२, ५१८ ।

धर्मानुसारी । २५८ ।

धातो । ३५२ (= धाई ) ।

धातु । ३६ (= धूल ), ४५ (= मट्ठाड ),  
२५६ (= पद ), ४५७ (= इन्द्रिय ),  
४७०, ४७९, ५०३, ४८० (= लोक ),  
४८० (= चित्त ), ५०३ ।

धातु-विमर्ग । ५०३ ।

धारोप । ५०० ।

धुरा । २० (= जुआ ) ।

ध्याते । १९९ (= ध्यान लगाने हैं ) ।

ध्यान । ३२५, २५६, २५९, २६५, ३३०,  
३९२, ४३३, ४५३, ४५८, ४६६, ४७३,  
४९५, ५६५ ।

ध्यान । अ-रूप—३, २७-२८ ।

ध्यान । चतुर्थ—७५, १६३ ।

ध्यान । तृतीय—७५, १६३ ।

ध्यान । द्वितीय—७५, १६३ ।

ध्यान-अथम । ७५, १६३, १७५ ( पाँच अंगोंसे ) ।

ध्यान । रूप—१६ ।

ध्यायी । ४५८ (= ध्यानशील ) ।

ध्रुव । ३३७ ( स्थिर ) ।

धीर । ३३७ (= धीकृत ) ।

न-पहिमदन्तिक । ४८ (= बुलाई मिश्रका

लागी ।

नंगदु । २६ (= रूँछ ) ।

नति । (= तुष्ट्या ) ।

न-तिष्ठ भवन्तिक । ४८ (= ठहरिये—कह दो  
गई मिश्रका लागी ) ।

नन्दो । ५ (= तुष्ट्या ), १५८, १६०, १९६,  
५८८, ६०१, ९३ (= राग ), ४१३  
(= कोप ) ।

नल । ४७५ (= तरकट ) ।

नवनीत । ५२३ (= मक्खन ) ।

नसंक्षी-नासंक्षी । ४३४ (= नचेतन-नाचेतन ) ।

नहापक । ( महलमेवाला ), ४९५ (= नापित ) ।

नहापति । ३१० (= नापित, महलमेवाला ) ।

नहारू । ११७ (= स्नायु ), २५२ (= तौत ) ।

नाग । ३६१ (= हाथी ), २५३ (= हाथीका  
पट्टा ), ३८५ (= पाप-रहित ) ।

नाग-वर्निक । १११ (= हाथीके जंगलका  
आदमी ) ।

नाग । महा—१२ ( महावीर ) ।

नागवर्निक । ५१७ (= हाथीके जंगलके राजा ) ।

नानाकरण । ५३ (= अन्तर ), ३००  
(= भेद ) ।

नामात्त्व । ४ ( अनिकपन ), ३७० (= भेद ) ।

नाम । ३३ (= विज्ञान, Mind ) ।

नामरूप । ४३, १५५, ४६१, ४८० ।

नाराच । २५२ (= बड़के दौतकी तरह ) ।

नास्तिकवाद । ४८९ ।

नास्तिकवादी । २४० ।

निकाय । ५९७ (= समुदाय ) ।

निक्षिप्त-धुर । अ-२१२ (= जुआ न उतार  
फेंकनेवाला ) ।

निक्षेप । ३२ (= पतन ) ।

निखिल-ज्ञान-दर्शन-ज्ञाता । ३१८ ।

निगम । ८ ( कल्या ), २२९, २१४, ३३०,  
३६४, ३८१ ।

निर्घटु । ४२१ ।

नित्यकल्प । ५८६ (= सनातन ) ।

निदर्शण । अ-८६ ( अ-दर्शन ) ।



निर्देशन । अ- ( = चक्षुषा अविषय ) १९६ ।

निदान । ४३ ( = कारण ), ५४ ।

निधि-मुख । २०९ ( = खजानेका मुँह ) ।

निध्यायन । १९१ ( = समताना ), २०८ ( = निदिध्यासन ) ।

निध्यापितत्व । ५३० ।

निर्णोसिकता । ४८८ ( = जाङ्गरी ) ।

निःप्रोक्तिक । ५३१ ( = बिना प्रोक्तिवाली ) ।

निमित्त । १५९ ( = आकृति आदि ), १३४,

१८० ( = धिङ् ), २१५ ( = लिङ् ), ४५२,

४७० ( = आकृति आदि ), ४६१ ( = लिङ्-

आकार आदि ), ५३१ ( = विशेषता ),

५०२ ( = लिङ् आदि ), ५०५ ( = लिङ्,

आकृति आदि ), ५३२ ( = लक्षण ),

५६४ ( = लिङ्, रस आदि ) ।

निमित्त । ७७ ( = आकार ) ।

निम्न । ४९ ( = खड्ड ) ।

निरय । १५ ( = नरक ), ४७, ५५, ५३४ ।

निरयपाल । ५३३ ( = नरकपाल ), ५४१  
( = यम-नृत्त ) ।

निरवध । ५५४ ( = निर्दोष ) ।

निरांतक । ५३७ ( = निरोग ) ।

निरामिष । ४३६ ( = निर्बिषय ) ।

निरुद्ध । ( = नष्ट ) १५३, ३१५ ।

निरोग । ३७९, ४३३ ( = नित्य ) ।

निरोध । ८८ ( = राग आदिका नाश ), १०६

( = दुःख-निरोध ), १४८ ( = नाश ),

२५० ( = विनाश ), ४८० ( = नाश ),

५८९ ( = विवश्वरता ) ।

निरोध-धर्म । ३७९ ( = वाचप्रान् ) ।

निवात । ८१ ( = निष्कलह ) ।

निर्गन्ध । २३२ ( = जैन साधु ), २२५ ( =  
जैन साधु ) ।

निर्जीण । ४२८ ( = नष्ट ) ।

निर्नादो । ३०६ ( = सनखन ) ।

निर्भेद । २१२ ( = तब तक पहुँचने ) ।

निर्मायरति । ( देवता ) १७०, ४९८,  
१२९ ।

निर्वाता । ३०३ ( = भारी प्र-दर्शक ) ।

निर्युद्ध । १४९ ( = खंड ) ।

निर्वाण । ४, १९६, २३० ( = ब्रह्म ), २५५,  
२९६ ।निर्वाण-निम्न । २८६ ( = निर्वाणकी ओर  
जातेवाली ) ।

निर्वाण-प्राप्ति । ६०० ।

निर्विण्ण । ४४१ ( = विरक्त ) ।

निर्वृत । ४३६ ( = निर्वाण-प्राप्त ) ।

निर्वृति । १९२ ( = सुख ) ।

निर्वेद । ६७ ( = वैराग्य ), ९० ( = उदा-  
सीनता ), २४३ ( = वैराग्य ) ।निवेधिक । २१२ ( = वस्तुके तब तक पहुँचने  
वाली ), ४६६ ( = तब तक पहुँचने  
वाला ) ।

निर्व्युद्ध । ५१० ( = आच्छादित ) ।

निवाता । ८० ( = निष्कलह ) ।

निवासन । २१४ ( = पोसाक ) ।

निवृत्त । ४१७ ( = डँका ), ५९३ ( = निवृत्त ) ।

निवृत्ति । ५९३ ( = निवृत्त ) ।

निवेसन । ३४४ ( = घर ) ।

निःशब्द । ३१४ ( = अव्ययशब्द ), ३८३ ( =  
अव्ययशब्द ) ।

निःश्रय । ५१३ ( = गुरु धनना ) ।

निश्चित । ४५१ ( = लिप्त ), ५९६ ( = धृष्ट ) ।

निषाद । ३८८, ५३५ ।

निषोदन । ४९५ ( = आसन ) ।

निष्क । २६४ ( = अशक्तिपूर्वी ) ।

निष्काम । ७४ ( = काम-रहित ) ।

निष्कामता-संबंधी । ५६१ ( = नेकत्व-समिति ) ।

निष्ठा । ३९६ ( = श्रद्धा ) ।

निसर्ग । २३० ( = उत्तम ) ।

निस्तार । २६ ( = पार जाना ) ।

निस्सरण । ५२ ( = निवास ), २९३ ( = निष्क-  
लनेके उपाय ), ५९९ ( = निष्कलनेका  
रास्ता ) ।निस्सर्गी । दुष्प्रति ६२ ( = न त्यागनेवाला ) ।  
मोत । ७ ( = प्राप्त ) ।

नीवरण । ३७ टि० ( पाँच ), २३ (= आवरण ), १६३, ( उक्कल ), १०५, २१५, ४१७, ४५३ ।

नीवार । ४९ (= तिब्बी ) ।

नेमि । ३७४ (= छट्टी ) ।

नैमित्तिकता । ४८८ (= न्योतिषीका पेशा ) ।

नैरयिक । २३४ (= नरकगाम्भी ) ।

नैर्याणिक । ४२ (= पार करानेवाला ) ४४४  
( = उसके अनुसार करनेवाले को दुःख-  
क्षयको ले जानेवाला ) ।

नैवसंज्ञा-नासंज्ञा । ४३४ (= सचेतन-माचेतन ) ।

नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतन । ( ज्ञात विहार ), २८,  
१७१, ४४६, ४५१, ४६७, ४७४, ४९५,  
५०२, ५७५ ।

नैवापिक । ९८ (= ग्रहेलिया ) ।

नैष्काम्य । ३१७ (= कामना-रहित होना ) ।

न्यग्रोध-परिमंडल । ३७५ (= जितनी काया  
उसके अनुसार व्यापाम = जितनी चौड़ाई  
उतनी काया ) ।

न्याय । ४० (= सत्य ), ३०० ( निर्वाण );  
४३१ (= धर्म ), ५१८ ।

पक्खलेत्त्वा । ४२१ (= पकव कर ) ।

पक्षाजात । २० (= नीच कुल ) ।

पंचदशी । १४ (= पूर्णमासी ), ४६०  
( = पूर्णिमा ) ।

पंच-विध-बंधन । ५३३, ५४० ।

पटलिक । ४८ (= मिळीता ) ।

पटिक । ४८ (= गलीचा ) ।

परा । २७८ (= बाजी ) ।

परणव । ५१८ ।

परणामना । २६७, २६८ (= निकालना ) ।

पंडित-वेदनीय । २८२ (= पंडितों द्वारा जानने  
लायक ) ।

पंडुमुदिक । ३२९ ।

पत्ति । ३३७ (= पैसल ) ।

पत्रयान । ४१० ।

पद । ३०० (= चिन्ह ), ५४९ (= वाक्य ) ।

पदक । २३० (= कवि ), ३८६ ।

पद्म । ४२१ ।

पद्मन । ३९८ (= पराक्रम ) ।

पदान । ५३२ ।

पन्त-ध्वज । ९० (= जिसकी राग आदि रूपी  
ध्वजा गिर गई है ) ।

पन्त-भार । ९० (= जिसका भार गिर गया  
है ) ।

पन्थन्त । ११९ ( महाभारत ) ।

पमुट । ३०१ (= गौंड ) ।

परस्व-अपरस्व । ४५ (= प्रचलता-दुर्चलता ) ।

परद-वृत्ति । २६३ (= दूसरेके दिवे से वृत्ति  
करनेवाला ) ।

परनिर्मित । १०० ।

परनिर्मितवशावर्ती । ४९८, ३२९, ४९८ ।

परंतप । ३९२ ।

परम । ३२३ (= उत्तम ) ।

परम-वर्ण । ३१९ ।

परमवर्ण-पुष्कलता । ५३७ (= परमसौन्दर्य ) ।

परि-अवदात । ३४९ (= सफेद, मोरा ) ।

परि-उत्थान । ३९२ (= चंचलता ) ।

परि-उपासन । ३९८ (= सेवन ) ।

परिच्छीण । ६८ (= बूढ़ ) ।

परिच्छीण-भवसंयोजन । ९१ (= जिसके भव-  
सागर में डालनेवाले बंधन बूढ़ हो गये हैं ) ।

परिग्रह । ८८ (= ग्रहण करनेकी वस्तु ) ।

परिमहसु । ८८ (= ग्रहण ) ।

परिघ । ४११ (= वृष्ट ) ।

परिघ-परिवर्तिक । ५५, ५९ ( वृद्ध ) ।

परिचरण । ४००, ५८५ (= सेवा ) ।

परिचरणीय । ४०० (= सेवनीय ) ।

परिच्छिन्न । ५३१ (= क्षय ) ।

परिज्ञा । ( = त्याग ) ४२, १८४ ।

परिज्ञात । ६०६ (= ज्ञात ) ।

परिज्ञेय । १७४ (= ज्ञेय ), ६०२ (= जानने  
योग्य ) ।

परिणायक । ५३७ ।

परित्रास । ३०५ (= चंचलता ) ।



परिदाह । ६०३ ( = जलन ) ।  
 परिदेव । ३१ ( = रोना-काँटना ), ८८ ( कलप-  
 कर रोना ), ५९९ ( = विलाप ) ।  
 परिधारण । २६८ ( = देखरेख ) ।  
 परिनिर्वाण । १४२ ( = निर्वाण ), १४८  
 ( = दुःखका सर्वथा अभाव ) ।  
 परिनिर्वाणो । ४५० ( निर्वाण प्राप्त करनेवाला ) ।  
 परिनिर्वृत । २९ ( = निर्वाणको प्राप्त ) ।  
 परिपन्थ । ५४, ५८ ( = रहजनी ) ।  
 परिपूर्णकारिता । ३१ ( = पूरा करनेवाला  
 होना ) ।  
 परित्राजिका । १८४ ( = साधुनी स्त्री ) ।  
 परिभाषण । ४२१ ( = निवृत्त ), ५८८  
 ( कृपाच्य ) ।  
 परिभाषते । ९० ( = निवृत्ते ) ।  
 परिषंग । ३२८ ( = दास आदि सुष पकाने  
 कायक वर्तन ) ।  
 परिवास । २८६ ।  
 परिलुब्धाम् । ५२६ ।  
 परिषद् । ४६ ( आठ ), ३९२ ( = मंडल ) ।  
 परिष्कार । ४८६ ( = सहायक सामग्री ) ।  
 परिस्फुरण । ३१० ( परिपूर्ण ) ।  
 परीत । ५३१ ( = जलप ) ।  
 परीत्तशुभ । १७०, ४९९ ।  
 परीत्ताम् । ५२४, ५२५ ।  
 पर्यकुटी । ३८९ ।  
 पर्यवनद्ध । ४१० ( = चारों ओरसे बंधा ) ।  
 पर्यवदात । १५ ( = शुद्ध ), १४६ ( = सफेद  
 = गोरा ) ।  
 पर्यवसान । ५९७ ( = अन्त ) ।  
 पर्यादान । २८३ ( = सत्तम कर लेने ) ।  
 पर्याय । १७० ( = मतलब ), ६१ ( = प्रकार ),  
 ५९० ( = वारी ), ४२२ ( = कथन ),  
 ४७९ ( = विक्षय ) ।  
 पर्याय-भक्तिक । १६५ ( = बीच बीचमें निरा-  
 हार रह, भोजन करनेवाले ) ।  
 पर्युत्थान । ८८ ( उठना, उपजना ) ।  
 पर्युत्थित । ४५८ ( = आस ) ।

पर्युपासन । ५४१ ( = मत्संग ) ।  
 पर्येषण । १०३ ( = खोज ), ५१६ ( = फिक ) ।  
 पर्येषित । ८७ ( = खोजा ) ।  
 पर्व । ५० ( = पोर ) ।  
 पलगण्ड । ७७ ( = राव, मेमार ) ।  
 प्रलाल-पीठक । ५५, ५९ ( बूँद ) ।  
 पलासी । ४४२ ।  
 पल्लोम । १३ ( = डत्साह ) ।  
 पल्वल । ७६ ( = जलाशय ) ।  
 पश्चान्निपातिनी । ५३७ ( = पीछे सोनेवाली ) ।  
 पस्साव । ३६ ( = पेशाव ) ।  
 पडितता । ७४ ( = भाष्य-संयमी ) ।  
 पांडु । ५१० ( = नारंगी का रंग ) ।  
 पांडु-कंबल । ( = लाल-द्रोशाला ) ३१९, ४५९ ।  
 पाती । ५७० ।  
 पात्र । ४४ ( = मिश्रा-पात्र ) ।  
 पात्र-आडक । १५८ ( = तराजूका खिलाँना ) ।  
 पादकठलिका । १०८ ( = पैर रगड़नेकी लकड़ी ) ।  
 पादपीठ । १०८ ( पैरका पीछा ) ।  
 पादोदर । ४१० ।  
 पानीयकांस्थ । १८८ ( आबतौरा ) ।  
 पापक । १८, २० ( = बुराई ) ।  
 पापदृष्टि । २८९ ( = बुरी धारणा ) ।  
 पापधर्मा । ३८९ ( = पापी ) ।  
 पापिका । ६१ ( = बुरी ) ।  
 पापेच्छु । १६५ ( = बदनीयत ) ।  
 पाप्मा । ७६ ( = मार = बुराईपूर्ण ) ।  
 पाराजिक-समान । ४४३ ।  
 पालित्य । ३२ ( = बाल पकना ) ।  
 पांसुकूल । ४९ ( = फेंका कपड़ा ) ।  
 पांसुकूलिक । ( = फेंके चिबड़ोंको पहननेवाला ) ।  
 पांसु-पिराचक । ३१९ ( = जुईल ) ।  
 पारा-राशि । १०९ ( = जालका डेर ) ।  
 पाहुणेष । ५१८ ( पहनाई ) ३८९, ५१८ ।  
 पिटक । ३९४ ( = वचन समूह ), ५२४  
 ( = टोकरी )  
 पिटकसंप्रदाय । ३०२ ( = ग्रंथ-प्रमाण ) ।  
 पिड । २२७ ( = मिश्रा ), १०२ ( = मिश्रा-

- चार ), २६२ (= मधुकरी माँगना ) ।  
 पिडपात । १६५ (= मिला ) ।  
 पिडपातिक । १३१ ( मधुकरी माँगनेवाला ) ।  
 पिययाक । ४९ (= खली ) ।  
 पिलोतिकच्छिन्न । ९१ (= आवरण-रहित ) ।  
 पिशाच । २६३ ।  
 पुकस । ५३५ ।  
 पुटोली । ३६ (= डेहरी ) ।  
 मुंडरीक । १०७ (= श्वेतकमल ) ।  
 पुत्रक । ३५८ (= पुतळा ) ।  
 पुद्गल । १३९ (= पुरुष ), २४३ ( चार ),  
 ४७८ (= व्यक्ति ) ।  
 पुद्गल । अ-प्रति—२३० (= अतुलनीय ) ।  
 पुनर्भव । १७५ (= पुनर्जन्म ), ५११ (= आवा-  
 गमन ) ।  
 पुरुष-पुद्गल । आठ—२५ (= स्त्री-पुरुष भेदसे  
 खोत आपन्न आदि आठ ) ।  
 पुरुष-पुगल । २५ ( खोत आपन्न, सकृदागामी,  
 अनागामी, अर्हत् ) ।  
 पुरुष-दम्ब । ५६३ (= सीखा पुरुष ) ।  
 पूग । १६९ (= पंचायत ) ।  
 पूजा । १३३ (= भोजनादि प्रदान ) ।  
 पूति । २६३ (= पोष ), ।  
 पूतिक । २६३ (= सहा ) ।  
 पूतिमुत्त । १८८ (= गोमूत्र ), १८८  
 (= गोमूत्र ) ।  
 पूर्व-अन्त । ३१८ (= आरम्भ ),  
 पूर्व-अथायो-पश्चात्-निपाती ३४०, (= मालिक  
 के सो जानेके बाद सोनेवाला नौकर ) ।  
 पूर्वकोष्ठक । १०२ ।  
 पूर्व-निवास । (= पूर्वजन्म ) २३, २१२, २७९,  
 २८७, ३१२, ३१९, ३५०, ४३३, ४५७, ।  
 पूर्वनिवासानुस्मृति । १५ (= पूर्व जन्मोंकी  
 स्मृति, प्रथम-विद्या ), ७५, ११५ ।  
 पूर्वान्ति । ३२४ (= आरम्भका छोर ) ।  
 पूर्वोत्थायिनी । ५३७ (= पहले जागनेवाली ) ।  
 पुद्गजन । ३ (= अमाही ), ३, १८०, ९६  
 (= निर्वाणका अनधिकारी ), २३४ (=
- अक्षरसारी जीव ), २६५, २९६, ४८७,  
 ५६५ ।  
 पृथिवी-धातु । ३६ (= पृथिवी महाभूत ),  
 २४९, ५६३ ।  
 पोरिसा । ४७ (= पुरुष भर ), ११९ ( पुरुष-  
 परिमाण ) ।  
 पौनर्भविक । ५०७ (= आवागमन देनेवाला ) ।  
 पौर । ११३ (= नागरिक, सग्य ) ।  
 प्रजा । ४७८ (= जनता ) ।  
 प्रजातंत्र । १४० (= संघ ) ।  
 प्रजानन । १७५ (= अच्छी तरह जानना ) ।  
 प्रजापति । १९६ ।  
 प्रज्ञा । १७४, ५७५, ६ ०२ ।  
 प्रज्ञानिरोधक । ७४ (= ज्ञानका नाशक ) ।  
 प्रज्ञापन । ४६१ (= जतलावा ) ।  
 प्रज्ञा-विमुक्ति । १७५, २५८ ।  
 प्रज्ञा-वेदित-निरोध । ३७९, (= चम्पावेदयित-  
 निरोध ) ।  
 प्रज्ञा-स्कन्ध । ३०८ (= उत्तम ज्ञान समुदाय ) ।  
 प्राणधान । ६६ (= इह कामना ), ५४८  
 (= आपन्न ) ।  
 प्रणीततर । ३१९ (= उत्तमतर ) ।  
 प्रतिक्रोश । ५३ (= प्रतिवाद ) ।  
 प्रतिक्रोशन । ४६९ (= निन्दन ) ।  
 प्रतिक्रिप्त । २५१ (= जिनका डर रोक दिया  
 गया ) ।  
 प्रतिग्रहण । ११३ (= लेना ) ।  
 प्रतिघ । ३८ टि० ( प्रतिहिंसा ), १८२ ।  
 प्रतिज्ञा । १६५ (= दवा ) ।  
 प्रतिज्ञात-करण । ४७३ (= स्वीकार = Con-  
 fession ) ।  
 प्रतिदेशना । ४७३ (= निवेदन ) ।  
 प्रतिनिस्सर्ग । २९० (= त्याग ) ।  
 प्रतिपत्ति । ४१४ (= विश्वास ), ४७१ ।  
 प्रतिपदा । ५९८ ( मार्ग ) ।  
 प्रतिपद् । ३२० (= मार्ग ) ।  
 प्रतिपन्न । २०५ (= बनाया ), ३१६  
 (= सागौंछ ), ४५० (= समझने



- बाळा ) ५४९ ( = संलगा ) ।  
 प्रतिपृच्छ । ५९० ( = पूछ पूछकर ) ।  
 प्रतिषिद्ध । २११ ( अवगाहित ) ।  
 प्रतिषेध । २८६ ( = तब तक पहुँचना ) ।  
 प्रतिभाग । १८३ ( = विपक्षी ) ।  
 प्रतिमंत्र । २३० ( = वाद-द्वन्द्व ) ।  
 प्रतिमान । ३५७ ( = ज्ञान ) ।  
 प्रतिराज । ५३६ ( = आधीन राजा ) ।  
 प्रतिरूप । ५८५ ( = योग्य ) ।  
 प्रतिचाण-रूप । ४९१ ।  
 प्रतिवेदित । ४६७ ( = अनुभव-गम्य ) ।  
 प्रतिशरण । ५०६ ( = अशक्त्य ), १०६ ( आश्रय ) ।  
 प्रतिसंख्यान । ८ ( = ठीकसे जानना ), ४१७ ( = सोच समझ ) ।  
 प्रतिसंज्ञयन । १७३ ( = एकान्त चिन्तन, ध्यान ), २६२, २५१ ( विचार-मग्न होना ) ।  
 प्रतिसंवेदन । ३७५ ( = अनुभव ) ।  
 प्रतिसेवन । ६ ( = सेवन ) ।  
 प्रतिस्फुरण । ६९, ६२ ( = प्रतिहिंसा ) ।  
 प्रतीत्य-समुत्पाद । १२० ( = कार्य कारण से सभी चीज़ों की उत्पत्ति ), १५१ ( = कार्य कारणसे उत्पन्न ), ४१३, ३७९, ४८० ।  
 प्रत्यय । ३६१ ( = कारण ) निमित्त, १५१ ( = हेतु ), १७६ ( = आश्रय ) ।  
 प्रत्यवेक्षण । १५१ ( = परीक्षण ), ३७६ ( = विचार ), ३४६ ( = ऐक्यभाज ), ४९९ ( = निहार ) ।  
 प्रत्यस्तरण । ४८ ( = लिहाफ ) ।  
 प्रत्यात्म । २७८ ( = प्रति शरीर में ), ५७५ ( = दूसरी शरीर में ) ।  
 प्रत्युत्पन्न । ५४८ ( = वर्तमान ) ।  
 प्ररन । ५०७ ( = पुछार ) ।  
 प्रश्नचक्र । ४९३ ( = शीत ) ।  
 प्रश्नचि । ९ टि० ( = चाति ), ३९ टि० ( = चाति ), ५८६ ( = एकाम्रता ) ।  
 प्रश्नचि-संघोष्यंग । ५९३ ।  
 प्रश्नच । ४९ ( = खाट ) ।  
 प्रश्नास । २५० ( = सौँस लेना ), ४९१ ( = स्वास छोड़ना ) ।  
 प्रसन्न । १७६ ( = निर्मल ), ३८१ ( = अद्भुत ) ।  
 प्रसन्नता । ११५ ( = चित्तकी एकाम्रता ) ।  
 प्रसाद । ४१ ( = अद्भुत ) ।  
 प्रसादनीय । ४५७ ( = अद्भुत उत्पादन करने वाला ) ।  
 प्रहाण । ५६ ( = स्थान ), ६३ ( = नाश ) ।  
 प्रहातव्य । ६ ( = स्थानमे योग्य ) ।  
 प्रहीण । १५१ ( = गह ), १७५ ( = छूट गया ) ।  
 प्राग्भार । १८१ ( = पहाड़ ), ५०५ ( = विवेक ) ।  
 प्राणातिपात । १८७ ( = हिंसा ) ।  
 प्राणातिपाती । ५५२ ( = हिंसक ) ।  
 प्राणायाम । ३५ टि० ।  
 प्राति-पुद्गलिक । ५८० ( = व्यक्तिगत ) ।  
 प्रातिमोक्ष-वर्देश । ३०७ ( = अथराष्ट-स्वीकार ), ४३९, ४४२ ( = मिश्र-नियम ), ४४२, ४५८, ४५६ ।  
 प्रातिमोक्ष-संवर । ४५७ ( = मिश्र-नियम संयम ) ।  
 प्रान्तरागनासन । ३०७ ( = बलीसे दूर कुटी-वाले ) ।  
 प्रामोद्य । २५ ( = प्रमोद ), ६३ ( = खुशी ) ।  
 प्रासादिक । ५५३ ( = सुन्दर ) ।  
 प्राशु-विहार । ८०, ३७७ ( = सुखपूर्वक विहरना ) ।  
 प्रियजातिक । ३५८ ( = प्रिय-उत्पन्न ) ।  
 प्रीति । २५ ( = संतोष ), २४३ ( = प्रमोद ), ४१८ ( = आनन्द ), ४६६ ( = हर्षका सारे शरीर और चित्त पर प्रभाव ) ।  
 प्रीति-संघोष्यंग । ५९३ ।  
 प्रीतिसुख । ३२८ ( = प्रसन्नताका सुख ) ।  
 प्रेत्य-विषय । ४७ ( = प्रेत ) ।  
 प्रेमलीय । ५१७ ( = हृदयंगम ) ।  
 प्रदर्शित-ग्राही । ६१ ( = उत्साही ) ।  
 प्रदाश ( = पलास ) । १२, २७ ( = निष्ठुरता ) ।

प्रदाशी । ६२ (= निष्ठुर) ।  
 प्रधान । ६५ (= रङ्ग उपयोग ), १४६ (= साधन ),  
 २७८ (= सम्पाधि ), ३४६, ३५१ (= निर्वाण साधन ), ३९८ (= प्रयत्न ),  
 ४२२ (= ध्यान तत्परता ), ४२८ ।  
 प्रधानात्म । २७८ (= समाहित-चित्त) ।  
 प्रपात । ३९५ (= लम्ब) ।  
 प्रप्रजित । ३४२ (= संख्यासी) ।  
 प्रप्रज्या । २३३ (= संन्यास) ।  
 प्रभव । ४३ (= उत्पत्ति) ।  
 प्रभूत-निष्ठ । ३७५ (= लम्बी बीमवाले) ।  
 प्रमाण । अ—१७८ ।  
 प्रमाद । २७७ (= आलस्य, मूल ), ४५१ (= गफलत) ।  
 प्रमादस्थान । ३२७ (= नशीली चीज़) ।  
 प्रमोद । १३४ (= सुखी) ।  
 प्रलोप । ४९० (= शोर-गुल) ।  
 प्रलोक । २५५ (= नाशमान) ।  
 प्रवण । १८१ (= झुका) ।  
 प्रवाद । १८८ (= मत) ।  
 प्रविचयन । ४९२ (= प्रीतिमान) ।  
 प्रवेदित । ४४१ (= जाना गया) ।  
 प्रवक्ता । ४१५ (= अभ्यापक) ।  
 प्रवचन । २८३ (= उपदेश) ।  
 प्रवण । ५०५ (= विवेक) ।  
 प्रवाद । ४१ (= मत) ।  
 प्रवारित । ५९१ (= तुष्ट) ।  
 प्रविचिक्त । ९४ (= एकान्त-चिन्तन-शील) ।  
 प्रविवेक । ४९ (= एकान्तमेव, ब्रह्मचर्यका  
 जंग ), ( देखो विवेक भी ) ।  
 प्रवेदित । ४६६ (= अनुभव गम्य ), ४२  
 (= जाना गया) ।  
 फरति । ४३६ (= पकड़ती है, पंजाबी कदना) ।  
 फलंग । ८० (= सधनता) ।  
 फल्लु । १२१ (= हीर और छिलकेके बीचका  
 काष्ठ, गुदा) ।  
 फणित । १८८ (= फाँट) ।  
 फेणु । २५५ (= गुदा) ।

बडिसमंसिका । ५५, ५९ (= दर्श) ।  
 वण्य । अ—३०१ (= कूटस्थ) ।  
 बन्धनागार । १६३ ।  
 बन्धनागारिक । २०७ (= जेलर) ।  
 बंधुवीषिक । ३१० (= वैडहुलका फूल) ।  
 बन्धुक्र-रोग । ३१५, (= कुल-रोग) ।  
 बम्भन । २४० (= विन्दा) ।  
 बल । ३०९ ( पाँच ), ४११, ४४२, ४९१ ।  
 बलता । १९३ (= सामर्थ्य) ।  
 बलाहक । ५३६ ।  
 बलि । ५०१ (= शिकन) ।  
 बलि-त्वक्ता । ३२ (= झुरी चढ़ना) ।  
 बहुकरणाव । ३५५ (= बहुत कामवाला) ।  
 बहुकार । ३९८ (= उपकारी) ।  
 बहुधातुक । ४८२ ।  
 बहुलीकरण । ४९१ (= भावना ), ५९३  
 (= अभ्यास) ।  
 बहुश्रुत । २६०, ४७२ ।  
 बाल । ३३७ (= मूल ), ५२७ (= अज्ञ) ।  
 बालप्रभे । ८९ (= बच्चोंकी सी बात) ।  
 बालभूमि । ५३५ ।  
 बाहुलिक । १०८ ( बहुत जमा करनेवाले) ।  
 बिनयधर । ४७२ (= मित्रुर्बन्धि नियमोंका  
 जानकार) ।  
 बिब । ३३३ (= आकार) ।  
 बिलंग-भालिक । ( राजदंड ) ५४, ५९ ।  
 बीज । २६८ ।  
 बुद्ध । २४ (= जानी ), ३०८ (= सारे धर्मोंका  
 धारणत) ।  
 बुद्धका अनुस्मरण । २४ ।  
 वृक्षमूल । ६०९ (= वृक्षके नीचेकी भूमि) ।  
 ब्रह्मफल । १००, ४९९ ।  
 बोधि । २११, ३५१ (= परम ज्ञान ), ३६९  
 (= बुद्धज्ञान) ।  
 बोधि । सं—२३ (= परमज्ञान) ।  
 बोधि पाथिक । ४३८ ।  
 बोधिसत्त्व । १३ टि०, (= आगे चलकर बुद्ध  
 होनेवाला) ।



- बोधग । ( देखो सम्बोधन भी ), ३९ दि०,  
( सात ), ३०९, ४३८, ४४२, ४९३, ४९२ ।  
ब्रह्मकायिक देवता । ३१९, ३७० ।  
ब्रह्मचक्र । ४५ ( = धर्मचक्र ) ।  
ब्रह्मचर्य । ४८ ( के चतुरंग ), ३०० ( = साधु-  
पन ) ।  
ब्रह्मचर्य-वास । ३०० ( = संन्यास ), ३०२  
( = पंथ ), ४१५ ।  
ब्रह्मचर्यका अन्त । २६ ( = निर्वाण ) ।  
ब्रह्मचर्य-वास । २५१ ( = शिष्यता ) ।  
ब्रह्मभूत । ३१, २०६ ( = विमुक्त ), ३८४ ।  
ब्रह्मा । १९४ ( = ईश्वर, अभिभू = विजेता,  
कर्ता, निर्माता, भूत-मध्य प्राणियोंके पिता ),  
४९९ ।  
ब्रह्म-अनु-गात्र । ३७५ ( = सम्ये अकुटिल  
शरीरवाले ) ।  
ब्राह्मण । २४० ( = सन्त ), १६४, ३२३,  
३७८ ।  
ब्रीहि । ३६ ( = घान ) ।  
भदेकरत्त । ५४३ ( = अकेले अच्छेमें अनुरक्त ) ।  
भद्र । ३६४, ( = सुन्दर ) ।  
भद्रक । ५३६ ( = बहिया ) ।  
भद्रमुख । ४२१ ।  
भद्रक-रक्त । ५४३ ।  
भद्र्य । ४८९ ( = मण्य ) ।  
भंडन । ४४१ ( = कलह ) ।  
भन्ते । ३२९ ( = स्वामी ), ४०६ ।  
भय । २६८ ( = कतरा ) ।  
भव-भोरव । १३ ( = भव और मौषणता, भूत-  
प्रेत ) ।  
भव-भोग । ६८ ( = मयपूर्ण भोग ) ।  
भव । ३१ ( = जन्म ), ४२ ( = संसार ), १७५  
( = लोक ), १०९ ( = जन्म-तृष्णा ),  
२४३ ( = जन्ममरण ), ५७५ ( =  
वर्तपत्ति ) ।  
भव-धातुव । ७ ( = जन्मनेकी इच्छारूपी  
मल ), १६, ५०२ ।  
भवनिरोध । २४३ ( = जन्म मरणका अन्त ) ।  
भव-राग । ३८ ( = आवागमन-प्रेम ) ।  
भव-समुदित । १०६ ( = सबसे उत्पन्न ) ।  
भव-संयोजन । २७४, ५३९ ( = अवस्थान ) ।  
भवती । २२९ ( = आप ) ।  
मध्य-चित्त । ३७९ ( = मधु-चित्त ) ।  
मत्वा । ८३ ( = खाल ) ।  
भावता । ९ ( = चिन्तन, ध्यान ), २४८  
( = ध्यान ), २८६ ( = लेखन ), ४८६,  
( = अभ्यास ), ३१६, ४८६ ।  
भावित-काय । १४५ ( = शरीरकी साधना  
जिसने की है ) ।  
भावित-चित्त । १४५ ( = चित्तकी साधना  
जिसने की है ) ।  
मिश्र । ११३ ( = फूटे ) ।  
मुन-भू । २९२ ।  
भूत । २३२-३ ( = भूत-प्रेत ), ३१ ( = प्राणी ),  
११३ ( = यथार्थ ), २३५ ( = सब =  
तत्त्व ) ।  
भूत । अ-२७९ ( = असत्य ) ।  
भूत । अ- ( = असत्य ) २३५, २७९ ।  
भूत-महा-१३३ ( = पृथ्वी, वायु, जल, तेज ) ।  
भूत-ग्राम । १३९ ( = प्राणि-समुदाय ) ।  
भूमि वासी देवता । १२९ ।  
भूरि । २३० ( = बहुत ) ।  
भृङ्गार । ५३५ ( = झारी ) ।  
भेद । ३२ ( = विद्योग ) ।  
भेरी । ५१८ ।  
भैषज्य । २९४ ( = चिकित्सा ), ३४२ ( =  
दवा ) ।  
भो । ३५३ ( = जी ) ।  
भोग । ८६ ( = देह ), ४०१ ।  
भोगवान् । १६३ ।  
भोज राजा । ३८३ ( = मंडलिक राजा ) ।  
भ्रमकार । ३५ ( = खरादकार ) ।  
सज्जिता पटिपदा ५७० ( = मण्यन सारां ) ।  
मणिका । ४९६ ( = मटका ) ।  
मत्सरी । ४४२ ।  
मत्स्य-धातक । २०७ ।

मधु-पिण्ड । ३३ ( = लवङ्ग ) ।  
 मध्यमा प्रतिपत् । १२ ( = बीचका मार्ग,  
 विलार पूर्वक ) ।  
 मन इण्ड । २२२ ।  
 मनस्कार । १७५ ( = मूलपर विचार करना ) ।  
 मनःसंचेतना । १५४ ( = मनसे विषयका क्याल  
 करके तृप्ति लाभ करना ) ।  
 मनसिकार । ३३ ( = मनपर संस्कार ) ।  
 गनसिकार । प्रतिकूल—३६ टि० ।  
 मनसिकार घातु । ३६ टि० ।  
 मनसिकरणीय । ६ ( = मनमें धारण करने  
 योग्य ) ।  
 मनाप । ३३१ ( = प्रिय ) ।  
 मनापचारी । ३४० ( = मनके अनुकूल करने  
 वाला ) ।  
 मनोपविचार । ५६० ( = मन-उपविचार ),  
 ५७३ ।  
 मनोपदेश । ३८१ ( = मानसिक दुर्भाव ) ।  
 मनोभावनीय । ५८३ ( = भावनामें तत्पर ) ।  
 मन्द-दृष्टि । ४३९ ( = मन्दबुद्धि ) ।  
 मंत्र । ( = वेद ) ३२२, ४२५ ।  
 मंत्र-अध्यायक । १६६ ( = वेद-पाठ ) ।  
 मंत्रणा । २२६ ( = वाद ) ।  
 मंत्र-पद । ३९६ ( = वेद ), ४१५ ( = वेद-  
 वचन ) ।  
 मरनेके बादकी कल्पना करनेवाला । ४३५ ।  
 मर्षी । १६५ ( = आर्ष = अमरत्व ), ४४२ ।  
 मलिनधर्म । १८९ ( = पाप ) ।  
 महद्गत । २३ ( = विशाल ), ३७ ( = महा  
 परिमाण ) ।  
 महद् गता चेतोविमुक्ति । ५२४ ।  
 महद्दिक । ३११ ( = तेजस्वी ), २८८ ( = महा-  
 सुभाव ), २८८ ( = जड़ि-प्राप्त ) ।  
 महद्दिकता । ३७९ ( = दिव्य शक्ति ) ।  
 महल्लक । ३७७ ( = वृद्ध ) ।  
 महा-श्लोक । ३५६ ( = बड़ी बात ) ।  
 महानिरय । ५३४ ( = महामरक ), ५४० ।  
 महापुरुष । ३७८ ।

महापुरुष-लक्षण । ३२३, ३७३ ( = सामुद्रिक  
 शास्त्र ) । ३७४, ३८२ ( = सामुद्रिक  
 शास्त्र ), ३८६, ४२१ ।  
 महाभूत । ४३३ ( पृथ्वी+जल+तेज+वायु ) ।  
 महाभात्य । ४५८ ( = महासत्री ) ।  
 महानृत्तांस । २२ ( = महाफल ) ।  
 महाशब्द । ३२१, ३५४ ( = कोलाहल ) ।  
 महाशाल । ४९८ ( = महाधनी ) ।  
 महिषी । २०० ( = घटरानी ) ।  
 महेशास्त्र । ५५३ ।  
 महेशस्त्र । ५१० ( = महाप्रतापी ) ।  
 माणव । ४२१ ( = तरुण ब्राह्मण वंशज ) ।  
 माणविका । २२९ ( = तरुण ब्राह्मणी ) ।  
 मार्तण्ड । ५२८ ( = मार्ग ) ।  
 मातृ-धाम । ५१३ ( = स्त्रियों ) ।  
 मात्राः । २०८ ( = कुछ मात्राओं ) ।  
 मात्रा । २७३ ( = परिमाण ), ४५३ ( परि-  
 माण ) ।  
 मात्रिका । ४३९ ।  
 मात्रिका-धर । १३४ ।  
 मात्सर्य । ( = कंदूली ) १२, २४ ।  
 मान । ३९ टि० ( = अभिमान ), ५७६  
 ( मन्यता ), १५९ ( = मन, मेर आदि  
 लौला ) ।  
 मानसिक । ४६९ ( = मनमें करना ) ।  
 मानाऽभिसमय । ९ ( = अभिमानका दर्शन ) ।  
 माया । १२ ( = धोखा देना ), २४ ( = वंचना ) ।  
 मार । ५३ ( = प्रजापति देवता ), १३६, १३७,  
 १९० ( = पापी ), ३८४ ( = रागादि  
 शत्रु ), ४७८ ( = प्रजापति ), ५३, १९०,  
 ४८१ ।  
 मारुव । २५२ ( = मरुवा ) ।  
 मार्ग । ३७९ ।  
 मार्ग-अमार्ग-ज्ञानका दर्शन । ९५ ( = समझ,  
 साक्षात्कार ) ।  
 मार्गविक । २०७ ( मृग मारनेवाला ) ।  
 मार्गारुण्यायी । ४५४ ( = मार्ग बतलानेवाला ) ।  
 मार्ष । १९४ ।



मालुङ । १८४ ( = लता ) ।  
 मांसपेशी । ८४, ९२ ( = मांसका टुकड़ा ) ।  
 मित्र । ३३१ ( = सहायक ) ।  
 मित्र-आमात्य । ४०५ ( = यार दोस्त ) ।  
 मिथ्या । २८४ ( = झूठी धारणा ) ।  
 मिथ्या-आजीव । २८ ( = अनुचित रीतिसे  
 रोजी कमानेवाला ) ।  
 मिथ्याकर्मन्त । ४८७ ( = अनुचित कर्म ) ।  
 मिथ्याचार । ३४१ ( = बुराचार ) ।  
 मिथ्या-दृष्टि । १५ ( = मिथ्या मत रखने-  
 वाले ) । १९९, १८७ ( = झूठी धारणा-  
 वाला ) । २३१, ४०१ ।  
 मिथ्या-प्रतिपदा । ५६८ ( = झूठा मार्ग ) ।  
 मिथ्या प्रतिपन्न । ५६८ ( = मिथ्या मार्गपर  
 चालू ) ।  
 मिथ्या-मार्ग । ७६ ।  
 मिथ्यावादी । १६९ ।  
 मोह-मुख । २६५ ( = काम-मुख ), २६५ ( =  
 विषय मुख ) ।  
 मोमांसक । ३०२ ( = तार्किक ) ।  
 मुक्ताचार । ४८ ( = खरमंग ) ।  
 मुख । ३८४ ( = मुख ) ।  
 मुख्याधान । २६१ ( = लगाम लगाना आदि ) ।  
 मुढोली । ३६ ( = बेहरी ) ।  
 मुदिता । १६६, १७७, २२१, २४९ ( = मुली  
 देख प्रसन्न होना ) । ५२४ ।  
 मुदिता-भावना । २५, ४९१ ।  
 मुद्रा । ५४ ।  
 मुनि । ३७८, ( = जो पूर्व जन्मको जानता है,  
 स्वर्ग-नरकको जानता है, और जो जन्मके  
 क्षयको प्राप्त है ) ।  
 मुपित-स्मृति । ४६३ ( = बेहोश ) ।  
 मुहूर्त । ३६१ ( = मिनट ) ।  
 मुह । ४४३ ( = बेहोश ) ।  
 मूत्रकरीष । ५० ( = मूत्र ) ।  
 मूर्खित । १०० ( = बेसुध ), १०९ ( गल ),  
 ४३० ( = हुवा ), ४१७ ( = बेहोश ) ।  
 मूर्धा । ३४८ ( = शिर ) ।

मूर्धाभिषिक्त । ५१ ।  
 मूलगंध । ४५४ ( = जड़ोंमें होनेवाले सुगन्धित  
 द्रव्य ) ।  
 मृग-दाव । १०७ ।  
 मृद । १४ ( = आनसिक आलस्य ) ६६ ।  
 मेरय । ४९ ( = कबो शराब ) ।  
 मैत्री । १६६, १७७, २४९ ( = सबको मित्र  
 समझना ) ५२४ ।  
 मैत्रीभावना । २५, ४९१ ।  
 मैत्रीविहारी । २२० ( तदा सबको मित्र मानते  
 देखनेवाला ) ।  
 मोक्षचिक । १५७ ( = मुँहका छद्द ) ।  
 मोघ । ५५५ ( = निष्फल ) ।  
 मोघपुरुष । ४४ ( = फूलका आदमी ) ४४,  
 २५२, ४६२, ८५ ( = मोघिया ), २७८  
 ( = बालायक ) ।  
 मोमुह । ३०२ ( = जतिमूह ) ।  
 मोघधर्मा । ५७५ ( = नायामान ) ।  
 मोह । ४७१ ।  
 मौलि । १८४ ( जूना ) ।  
 म्रत्त । ( = अमरत्व ) । १२, २४ ।  
 यज्ञ । १२९ ( देवता ), २३७ ( = पुत्रवोष ) ।  
 यजन । ३८४ ( = पूजा ) ।  
 यज्ञ । १४८ ( = देव ) ।  
 यज्ञसे मुक्ति । ५१ ।  
 यथाकाम । १२७ ( = मौजसे ), ५२८ ।  
 यथाभूत । ३१ ( = जैसा है वैसा ), ५५  
 ( = उसके स्वरूपको यथार्थसे ), १२२  
 ( = यथार्थ ) ।  
 यद्भूयसिक । ४४३ ।  
 याचितकोपम । ८४ ( = संगनोंके आसुषणके  
 समान ) ।  
 यातना । ५४१ ( = कर्म-कारणा ) ।  
 यान । ५३६ ( = खारी ) ।  
 यापनीय । ५२८ ( = अच्छी गुजरती ) ।  
 याम देवता । १२९, ४९८ ।  
 युगमात्र । ३७५ ( = चार हाथ ) ।  
 युगाधान । २६१ ( = जुना खींचना ) ।

युग्यार्थ । ३९३ (= रविवार )

योग । २८२ (= संबंध ) ।

योग-वेम । ४ (= कल्याणकारी पद ), ६२  
(= निर्वाण ), १०३, २०८, २१२, २७७,  
४५३, (= संवलमय ), १४८ (= कल्याण ),  
४५३ (= चित्त-मल-त्रिमुक्त ) ।

योनि । ४६ (= चार ), ३०१ ।

योनिशः । ५२१ (= कार्य-कारणका काल  
करके ) ।

योनिशः मनसिकार । ६ (= ठीकसे मनमें  
धारण करना ) ।

रक्तज्ञ । १३३ (= अक्षुरक्त ) ।

रज । ६४ (= रस ) ।

रजक-पुत्र । २२९ (= रंगरेजका पुत्र ) ।

रजत । २१५ (= चाँदी ) ।

रजोजल्लिक । १६५ (= कीचड़वासी साधु ) ।

रति । ४-२२ (= उपाट ) ।

रत्न । ५३५ ।

रथक । १२८ (= खिलाँनेकी गाड़ी ) ।

रथकार । ५३५, ३२८ ।

रथ-विनीत । ९७ (= डाक ), (= रथकी  
डाक ) ।

रथ्या । ५३२ (= सवक ) ।

रम्यक । १०२ (= रम्यक ) ।

रम्भक माहाय । १०२ ।

रव । ४४४ (= प्रभाव ) ।

रवार्थ । २६१ (= हिमहिमनेकी शिखर ) ।

रस । ४१९ ।

रसमा-समी । ३०५ (= सुन्दर शिखाओं  
वाले ) ।

राजगुण । २६१ (= एकगीता ) ।

राजन्य । ३८८ (= राजसत्ता ) ।

राज-पोरिस । ५४ (= राजाकी नौकरी ), ५८  
(= नौकरी ) ।

राजवंश वणिज्य । २६१ (= एक गीत ) ।

रात्रिहभाव । २६० (= विश्वात्मसे अवस्थिति ) ।

राहुमुख । ५५ (= रस ), ५२१ ।

राष्ट्रपिण्ड । ५३३ ।

रिक्त । १२६ (= खाली, निरर्थक ), २५८  
(= तुच्छ ), ३२४ ।

रुचाचार । ४९ ( मन्त्रार्थका अंग ) ।

रुचाचारी । ४८, ४९ ( मन्त्रार्थका अंग ) ।

रुचि । ३८३ (= कान्ति ), ४२८ ।

रुद्र । ३० (= भयंकर ) ।

रूप । (= Matter ) ३३, ८७, ४६७, ५४४,  
८२ (= चित्त ), ११९ (= स्मृति = शरीर ),  
२९७, ४६०, ४६१ (= पृथिवी + जल +  
लेव + वायु ), ५०४ (= पदार्थ ) ।

रूपवान् । ५४४ (= Material ) ।

रूपसंज्ञा । २८३ (= रूपके नामसे ) ।

रूपसंज्ञी । ३०९ (= रूपके ब्याख्याता ) ।

रूपी । ४३३ ।

सत्तुण । १३३ (= चिह्न ), १३३ (= कारण ) ।

लघु-उत्थान । ३०४ (= शरीरकी कार्यक्षमता ),  
३६८ (= फुर्ती ) ।

लघुकिता । २६३ (= गौरव्या ) ।

लपना । ४८८ (= बात बोलना ) ।

लय । (= निरुद्ध ) ।

लयन । १४० (= आध्वन-स्वात ) ।

लसिका । ११८ (= कर्ण-मल ) ।

लाभी । २२०, २२१ (= घाबेवाला ) ।

लोक । ३३५ (= संसार ) ।

लोक-धातु ४८१ (= लोक ) ५११ ।

लोकाभिष । ५६१ ( लौकिक भोग ) ।

लोकायत । ३८६ ।

लोकायत-शास्त्र । ४२१, ३७३ (= सामुद्रिक  
शास्त्र ), ४२१ ।

लोमहर्षण-पर्याय । ५२ ।

लोह । ५३४ (= लोह ); १ ।

लोह-कुम्भी । ५३४ ।

लोहित । १२४, ३१० (= लाल ), १५७ (= लाल ) ।

लोहित-पाणि । १६८, ३५७, ४७५, ५५३ (=  
लाल रंगे हाथोंवाला ) ।

वचन-दण्ड । २२२ ।

वचन-पथ । ८९ (= वचन कहनेके मार्ग ) ।

वचन-संस्कार । १८१ ।



वट्टनामली । ५० ( = रस्सीकी छेड़न ), ३४८  
( = पाँती ) ।  
वत्स-दन्त । २५२ ( = बछड़ेके दाँतकी तरह ) ।  
वद्य । ४५२ ( = दोष ) ।  
वन-कर्मिक । ४९ ( = वनमें काम करनेवाला ) ।  
वनपत्न्य-परियाय । ६८ ( = नामक उपदेश ) ।  
वनप्रस्थ । ४८ ( = जंगल ) ।  
वर्षित । ३८६ ( = सुगन्धित ) ।  
वयः प्राप्त । ५१ ( = बूढ़ ) ।  
वर्ण । २३० ( = गुण ), १३३ ( = रूप ),  
३१९ ( = रङ्ग ), ३२० ( = तारीफ ),  
३६२ ( = प्रशंसा ) ।  
वर्णवान् । ३४८ ( सुन्दरवर्ण ), ९८ ( = सुन्दर ) ।  
वर्णित । ४५८ ( = प्रशंसित ) ।  
वर्त्म । ३३८ ( = मार्ग ) ।  
वर्षाकालिक । २९३ ।  
वर्षिका । ४५४ ( = बूढ़ी ) ।  
वरावर्ती । १०० ।  
वशित्व-प्राप्त ४६० ( = अधिकार प्राप्त ) ।  
वसा । ३६, ११८ ( = घर्षी ) ।  
वस्तिगुह्य । ३३८ ।  
वस्त्रा । ४११ ( = कृष्णा रूपी रस्सी ) ।  
वस्स । ४८९ ( = वर्ष ) ।  
वाचिक अभिर्माचरण । १६९ ।  
वाण-अस्त्र । ५३ ।  
वाणिज्य । ५४, ४१५ ।  
वाद । ५० ( = मत ), १११ ( = शास्त्रार्थ ),  
१९० ( = सिद्धान्त ), ३०० ( = दृष्टि ),  
३००, ४२९, ४५४ ( = मत ) ।  
वाद-प्रतिहार । ४२८ ( = उत्तर ) ।  
वादानुवाद । ३६९ ( = कथन ) ।  
वामको । ११२ ( = बँवनी ) ।  
वायु-धातु । ५०४ ।  
वारणसी । १०७ ।  
वाहुलिक । ४५४ ( = बढोकर ) ।  
विकाल । ११३, १५९ ( = रातको उपरत  
= विकाल = अग्रयात्रोत्तर ), २६३  
( = अपराह्न ) ।

विज्ञेयिकवाद । ४३५ ।  
विघात । ५३ ( = दोष ), २१६, २८१ ( = पीड़ा ),  
५६६ ( = प्रतिहिंसा ) ।  
विघातगर्भा । ३५५ ( = भरे गर्भवाली ) ।  
विघातपक्षिक । ७४ ( = हानिके पक्षका ) ।  
विचार । १७५, ४६६ ( = सूक्ष्मावस्था ) ।  
विचिकित्स । ४५४ ( = संशयात्मा ) ।  
विचिकित्सा । ( = संसय, सन्देह ), ८, ३८,  
९३, ११४, १६०, १७५, १९२, २५४, २७१,  
४१७, ४५८, ५३०, ६६ ( = ८ कक्षा ) ।  
विचिकित्सी । १४ ( = संशयालु ) ।  
विचीर्ण । अ— ३०६ ( = न किया ) ।  
विजनवात । ४५८ ( = आदमियोंकी ) ।  
विजित । ४२० ( = राज्य ) ।  
विज्ञ । ३४५ ( = जानकार ) ।  
विज्ञात । ३, ४ ( = जाना गया ) ।  
विज्ञातव्य । ५८६ ( = जानने योग्य ) ।  
विज्ञान । ४३, १५५, १७३, १७४, २९७, ४६० ( =  
चेतना ), १५१, १५४, ३०९, ३११, ४५०  
( = जीवन ), ४५१ ( = जित-प्रवाह ),  
५४७, ५४८, ५६४, ५८३ ( = चित ) ।  
विज्ञान-आनन्त्य-आचतन । ४६७, ४७३ ।  
विज्ञान-काय । ३३ ( छः ), ५९७ ।  
विज्ञान-कृत्स्न । ३१० ( = चेतनामय ) ।  
विज्ञान-धातु । ५०४ ।  
विज्ञान-संस्करण । १५१ ( = जन्म-मरणमें  
जाना ) ।  
विज्ञानस्कन्ध । ४६१ ।  
विज्ञानानन्त्याचतन । ३ ( = अनन्त विज्ञान-  
वाला स्थान ), २८ ( शान्तविहार ), १७०,  
४९९, ५०२ ( = अन्त-रहित-विज्ञानके आव  
सन ), ५६२, ५७५ ।  
विज्ञापन । ७६ ( समझाना ) ।  
विज्ञेय । ५८ ( = जानने योग्य ) ।  
वितर्क । ९, ७७-७९ ( = बवाल ), १७५, ४६६  
( = चिपकड़ी स्थूलावस्था ) ।  
वित्त । ५७० ।  
वित्त-उपकरण । १६९ ( = धन सामान ) ।

विद्या । १५, १६, ११५, २१२, ३५० (वीन),  
४१३ ।

विहसु । ४२ (= ज्ञानी) ।

विहसु । अ-४२ (= अ-ज्ञानी) ।

विधुर । १९८ (= अ-समान) ।

विनय । ४३९ ।

विनय । अ- (= अनौति) ।

विनय । घर-१३४ ।

विनयन । ५१८ (= शिखण) ।

विनामन । ३७५ (= द्विधाता) ।

विनायक । ३५१ (= नेता) ।

विनाश । ११३ (= समारम्भ) ।

विनिपात । ४४ (= दुर्गति), ५९, १८४, ४८१

(= निरय = मर्क), २४० (= घतन),

४६ (= मोचे गिरनेवाले) ।

विनिपातिक । २३३ (= मीच ओजिके प्रणी) ।

विनीत । अ-३, १८० (= न पहुँचे), ३३६,

(= विनय-युक्त) ।

विनीदन । ३, ९ (= हटाना) ।

विन्दु । ३७६ (= सारयुक्त) ।

विपरिणत । ५६१ (= विकार-प्राप्त), ५६६

(= विकृत) ।

विपरिणाम । ५६, ५६६ (= विकार) ।

विपरिणामधर्मा । ७, ८९, ४६२ (= परिवर्तन-

शील) ।

विपरिणामधर्मा । अ-८७ (= निर्विकार) ।

विपरयना २२ (= प्रज्ञा), १३१ (= सशब्द-

कार करना), १७५ (= अन्तर-ज्ञान),

२८६ (= ज्ञान), २८६-६०६ (= प्रज्ञा),

६०२ ।

विपाक । २२५ (कल), २३२ (= डुरे परि-

णाम), ३४३ (= भोग) ।

विप्रतिपक्ष । २७८ (= अमार्गार्ह) ।

विप्रतिसार । २५७ (= उदासी) ।

विभज्यवादो । ४१४ (= विभज्यवाद) ।

विभव । ३१ (= घन), ४२ (= अ-संसार),

५७५ (= विनाश) ।

विभाजन । ५७८ (= विवरण) ।

विभंग । ५७३ (= विमान) ।

विमति । ५९३, ५९० (= ज्ञम) ।

विमर्ष । ४४ (= चित्त) ।

विमर्शक । ३०२ (= तार्किक), ४७९ (=

पण्डित), ४७९ (= श्रीमालक), ४२२

(= तार्किक) ।

विमल । ५९२ ।

विमुक्ति । २३, ९०, १००, १४२, १५८, २०८ (=

मुक्ति), २८० (= जड़ी), ३१६ (=

वेतो), (= प्रज्ञा), ४५७ (= मुक्ति),

(देखो मुक्ति) ।

विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-सम्पन्न । ९४ (= मुक्तिके

ज्ञाया साक्षात्कार जिससे कर लिया) ।

विमोक्ष । २२ (= मुक्ति), ४५, ३०९ (आठ),

२०१ (= ध्यान), ४३७ (= मोक्ष, मुक्ति)

५६२ ।

विरक्त । १९५ (= व्यक्त) ।

विरज । ५९३ (= निर्मल धर्म-वस्तु), ५९६,

(= निर्मल) ।

विराग । ४६९ (रागके अव्योम्य) ।

विरुद्धि । ४३४ (= वृद्धि) ।

विलिप्त । ५९२ ।

विलेपन । ३६० (= उच्छेदन) ।

विचर । ३०१ (= खाली जगह) ।

विचरण । १६३ (= प्रकट करना, उत्तानीकरण

करता है) ।

विवर्त । ११५ (= चूटो) ।

विवर्त-कल्प । १५, ३१२ (सृष्टि-कल्प) ।

विवाद-अधिकरण । ४४२ ।

विधृत । १३४ (= सोला) ।

विवेक । ११-१६३ (= एकान्त-चिन्तन),

५०५ (एकप्रता) ।

विवेक । अ-१३ (= एकान्त-रमण) ।

विवेकन । ३४९ (= एकान्तसे उत्पन्न) ।

विशाल । ८२ (= आग्रमाण) ।

विशुद्धि । ९० ।

विशेष । ५३ (= भेद), ३५१ (= निर्वाणपर) ।



विपर्ययता ४६६ (= दिलकी आँखसे देखना ) ।

विषम । ४७ (= प्रतिकूल ) ।

विसक्तिक । (= अनासक्त ) ।

विसारि । अ-३७६ (= ज-कट ) ।

विमृष्ट (= विक्षिप्त ) ।

वि-संयुक्त । ९७ (= राग आदिले विभुक्त ),

५७५ (= विभुक्त ) ।

विहार । ११ (= कुटी ), ७१ (= कोठरी ),

१३९ (= ध्यान प्रकार ), १९८ (=

कोठरी ), २०९ (= रहनेकी कोठरियाँ ),

२३१ (= निवास ), ३९१ (= कोठरी ),

३९३ (= निवास-स्नान ) ।

विहिंसा । ७४ (= हिंसा ), २४९ (= पर-

पौड़ा-करण-इच्छा ) ।

विहिंसा-वितर्क । ९ (= हिंसाका व्याख्यान ) ।

बोधी । १३३ (= इगार ) ।

बीर । १०४ (= उद्योग ) ।

बीर्य । (= उद्योग ) ९, १५, ११८, १४६, ३४८,

४६६, ३७० ।

बीर्यारम्भ । १०, ३१६ (= उद्योग ) ।

बृक्ष फल समान । ८४ ।

बृक्षमूल । ५२५ (= वृक्ष काष्ठा ) ।

बृक्षमूलिक । १६५, ३०७, ४७२ (= सदा वृक्ष

के नीचे रहनेवाले ) ।

बृषभ । १३३, १३६ (= साँव ) ।

बृषल । ३८९ (= अश्व ) ।

बृहत्फल । १९५ ।

वेत्खणस । ३२३ (= वैखानस ) ।

वेणु । ३८८ (= बसोर ) ।

वेणुकार । ५३५ ।

वेदगु । १६४, ३७८ ।

वेदन । ७२, १७४, ५५५ (= अनुभव ) ।

वेदन-काय । ५९७ ।

वेदना । ८ (= पीड़ा ), ३२ (= अनुभव,

महसूस करना, पहचान ), ३३ (= इन्द्रिय

और विषयके संयोगसे उत्पन्न मनपर

प्रथम प्रभाव ) । ३५ टि० ( तीन ), ४७

(= बातना ), १५४, १६२ (= भोग ),

१७४, १८१, १८२, २१३, २३७, २९०

(= अनुभव ), ३७१ (= भोग ), २९७,

४३०, ४६६ (= स्वयंके वाद विषयके

संख्यका जो सुख, दुःख आदि रूपमें

अनुभव ), ५०६, ५११ (= अनुभव ),

५७४, ५८३ (= इन्द्रिय और विषयके

संस्पर्श होनेपर जो मनकी दुःखमय,

सुखमय या अनुभव-असुखमय अवस्था होती

है, कहते हैं ) ५९२ ।

वेदना-काय । ५९७ ।

वेदानुपरयना । ३७ टि० ।

वेदनोप । १७६ (= अनुभवका विषय ), ४२९

(= भोगा जानेवाला ), ४२९ (= भोगाले

वाला ) ।

वेदानुपरयो । ४९२ ।

वेदित-निरोध । १७६ ।

वेदी । २०७ । (= बहिर्ष ) ।

वेस्स । २५२ (= वैश्य ) ।

वैदल्य । ८६ ( बुद्धोपदेश ) ।

वैदूर्यमणि । ३११, ४९९, ५१० (= हीरा ) ।

वैनयिक । ९० (= बिना या 'नही' के वाद

को माननेवाला ) ।

वैपुल्य । ४३४ ।

वैसत्य । ४६० (= वैसत्ता ) ।

वैयाकरण । ३८६, ४२१ ।

वैशारद्य । ४५, ४६ (= विशारदपना,

चार ) ।

वैशारद्य-प्राप्त । २९१ (= मर्मज्ञ ), ३७९

(= निपुण ) ।

वैश्य । ३२३ ।

वैचक । १५७ (= वंका ) ।

वैचक । १६५ (= मायावी ) ।

व्रण । १३३, ४२८ (= घाव ) ।

व्रण-मुख । ४४७ (= घाव ) ।

व्रत । ५४, ५५ ।

व्रतोंके भेद । १९ ।

व्यक्त । ३४०, ५३७ (= प्रकृत ) ।

व्यक्त । अ—३६२ (= सूत्र ) ।  
 व्यक्ता । ४२० (= प्रज्ञा ) ।  
 व्यंजन । ३२४, ३९५ (= तियन ) ।  
 ३०७ (= सरकारी ), ३५७ ।  
 व्यतिक्रम । ४५६ (= कसूर ) ५२६ ।  
 व्यय । ३६, ३८ (= लघु, विनाश ) ।  
 व्यर्पणा । ४८७ (= सम्प्रयत्ना ) ।  
 व्यवकीर्ण । ३२१ (= शिथिल ) ।  
 व्यवदान । ४५ (= निर्मल करना ) ।  
 व्यवदानपत्र । २४० (= शुद्धता ) ।  
 व्यवसर्ग । ४९३ (= त्याग ) ।  
 व्यवहार । २१५ (= व्यापार, वाणिज्य ) ।  
 व्यवहार-उच्छेद । २१५ ।  
 व्यवसन । ४३४ (= क्षय ) ।  
 व्याकरण । ८६ (= सुशोधित ), ५०६,  
 ५९६, ६०० (= उपदेश ) ।  
 व्याकृत । २५३ (= कवित; कथनके विषय ) ।  
 व्याकृत । अ—२५१ (= अक्षप्रतीक ), २५३  
 (= वचनके अविषय ) ।  
 व्याख्यात । ५४७ (= विमान ) ।  
 व्यापन्न । २८ (= हितक ) ।  
 व्यापन्न । अ—१०० ।  
 व्यापन्नचित्त । १६५, १६९, १८७, ४०६  
 (= हेपी ) ।  
 व्यापाद । ३०, १९९ (= प्रतिहिता ), ३८,  
 ११४, १६०, १६५, १७५, १९२, २४८  
 (= द्रोह ), ९३ (= पर पीडा करण ),  
 १३३, २३२ (= परपीडा ), २४९, ३१६,  
 ४०२, ४१६, ४३१, ४३७, ४४९, ४५८,  
 ४७७, ५१२, ५५६ (= द्वेष ), २५४  
 (= उत्पीडनेच्छा ), २८४ (= पीडा ),  
 ४७६ ।  
 व्यापादवान् । २२१ (= द्वेषी, उत्पीडक ) ।  
 व्यापाद-वितर्क । ९ ( द्रोहका व्याल ) ।  
 व्यापादी । अ—८९ (= द्रोहरहित ) ।  
 व्यापाद्य । स—३६२ (= हिसाबुक ) ।  
 व्यावाचा । ५५ (= पीडा पहुँचाना ) ।  
 व्यायाम । २८, ४८७ (= प्रयत्न ) ।

शकलिका । ४०२ (= पैली ) ।  
 शक्ति । २३८, ५१८, ५२७ (= हथियार ), ५३३  
 (= कोषा ) ।  
 शक्तिशाली । १९५ (= महोत्सव ) ।  
 शकुनि । ३११ (= पक्षी ) ।  
 शंकु । ५४१ (= शंकु ) ।  
 शंख । ५१८ ।  
 शंखधमक । ३११ ( शंख बजानेवाला ) ।  
 शंखमुंडिका । ५५, (= मुँड ) ।  
 शंखसूचिका । ५९ ।  
 शंखलिखित । ३३० (= छिले शंखकी तरह  
 निर्मल स्वेत ) ।  
 शठ । ३२४, ३६९ (= सायाजी ) ।  
 शयन । ४४४ (= कलम ) ।  
 शब्द । ४१७ ।  
 शमथ । १०५, २८६, ६०६ (= समाधि ), १९२  
 (= शान्ति ), ४४३ (= उपवास ),  
 ६०२ ।  
 शमन । १६४ (= समन = श्रमण ) ।  
 शयनासन । ८ (= निवास गेह ), १३  
 (= कुटिया ), १४, २२ (= वासस्थान ),  
 २५९, ५०७ (= निवास ) ।  
 शरण-नामन । १६ ।  
 शरणागत । ३९३ ।  
 शराव । ५७० ।  
 शल्य । २५२, ४४७ (= वाणका फल ), २९०,  
 २९७ (= फर, काँटा ) ।  
 श्लोक । १२१ (= प्रशंसा ) ।  
 शस्यहार । ५८७ ( आत्म-हत्या ) ।  
 शस्त्रहारक । ५८५, ५८९ ( आत्महत्या करने-  
 वाला ) ।  
 शिचापद । ५१८ (= मिथु नियम ) ।  
 शाकुन्तिक । २०७ ।  
 शास्त्र । १२ (= गठना ) ।  
 शान्त । २५९ (= तै ), २७१ ( सुप्त ) ।  
 शांतविहार । २०, २८ ( अरूप-ध्यान ) ।  
 शान्ति । (= उपदेश ) ।  
 शाल । ८०, १८४, २८३, ३७० (= साम् ) ।



शाली । ३२९ ।  
 शारवत । २८१ ( = मित्य ) ४३५ ( = अमाधि ) ।  
 शारवत । अ— २८१ ( = मित्य ) ।  
 शारवतवाद । ४३५ ।  
 शासन । ९७, ११८, २२४, ५६३ ( = उपदेश ),  
 १४२, ३८४, ( = धर्म ), २७८ ( = धन ),  
 २९१ ( = बुद्धधर्म ), ५०७ ( = आदेश ) ।  
 शासनकर । ८३, १४२ ( = उपदेशानुसार  
 चलनेवाला ), २८५ ( = अववाद प्रतिष्ठा ),  
 २८५ ( = धर्मानुसार चलनेवाला ) ।  
 शास्ता । ५, १०, १९, २४, ९७, १५२, १५७, १९०,  
 २१३, ३८४ ( = उपदेष्टा, बुद्ध ), ११, १०७,  
 १५०, १९८, २२३, २७८, ४४२, ४५१, ५०२  
 ( = गुरु ), ६५ ( = आचार्य ), ३००  
 ( गुरु, पंच चलानेवाला ) ।  
 शास्ता-के-शासन । २५७ ( बुद्ध धर्म ) ।  
 शिल्पाणा । ५१३ ।  
 शिचा । २५८, २६१ ( = करण ), ४४२,  
 ४५४ ( मिश्र-नियम ) ।  
 शिचा-पद । ४५२, २६० ( = मिश्र-नियम ),  
 ४५६ ( = नियम ), १२२ ( = आधार-  
 नियम ), २११ ( = सदाचार-नियम ),  
 २६०, ५१७ ।  
 शिरकटा ताड़ । २८३ ।  
 शिल्प । ५४, ३५० ( = कला ) ।  
 शिल्पुमार । ५३४ ( मगर ) ।  
 शील । ( = सदाचार ) १२१, १७५, १९२, २११,  
 २५४, ४०१, ४४४ ( = आधार ), ४६७ ।  
 शीलवान् । ( = सदाचारी ) १२२, १९९, ३४२ ।  
 शीलविशुद्धि । ९५ ( = आधार-शुद्धि ) ।  
 शील-व्रत-परामर्श । ( = शील और व्रतका  
 ब्याख ) ८, ३८, ३९, ३५४ ।  
 शील-समय । ३१६ ( शीलमिमांसी ) ।  
 शील-सम्पन्न । ४५, ९४ ( = सदाचारी ) ।  
 शील-सम्बन्ध । ३०७ ( = आधार समुदाय ),  
 १५९ ( = सदाचार-समुह ) ।  
 शुचि । २४९ ( = पवित्र वस्तु ) ।  
 शुद्धावास । ५१ ( देवता ) ।

शुभ । ११७ ।  
 शुभकीर्ण । १९५ ।  
 शुभकृत्स्न । ४९९ ( शुभकृत्स्न देवता ), २३२ ।  
 शुभनिमित्त । १८ ( = वस्तुके एक तरफा सौंदर्य  
 की ओर अधिक झुकाव ) ।  
 शुल । २३१ ( = लच्छा ) ।  
 शुकरिक । २०७ ।  
 शुद्र । ३९९ ( = ब्रह्माके पैरसे उत्पन्न ) ।  
 शूरी । ३२३ ।  
 शृंगाटक । २३४ ( बाँसी ) ।  
 शौच्य । ४ टि०, ४ ( = जिसको अभी सीखनेको  
 बाकी है ), २८६ ( = अनु अर्हत् ),  
 ( = किन्तु निर्वाण-मार्गपर दृढ़ आरुह ) ।  
 शौच्य । अ— ४९, ३१७ ( = अर्हत् ) ।  
 शौण्डिका । १३९ ( = मट्टी ) ।  
 शौण्डिका-किलंज । २३४ ( = मट्टीके छप्पे ) ।  
 शौण्डिक-कर्मकर । २२४ ( = सराय बनाने  
 वाला ) ।  
 श्मशान । ३७ टि० ।  
 श्मशानिक । ४७३ ( = श्मशानमें रहनेवाला ) ।  
 श्यामाक । १०० ( = सर्वा ) ।  
 श्रद्धानुसारी । २५८ ।  
 श्रद्धावान् । २३२, ३८२ ( = प्रसन्न ) ।  
 श्रद्धाविशुद्धि । २५८ ।  
 श्रमण । ४१, १५७, २३६ ( = संन्यासी ),  
 महात्मा ), ११२ ( = प्रव्रजित ), १६७,  
 २७७ ( = मिश्र ), ४४६ ।  
 श्रमण-प्रसाद । २१९ ( = श्रमणोंके प्रति  
 प्रसन्नता ) ।  
 श्रमण-भाव । २४५ ( = साधुता ), २६४  
 ( = संन्यास होना ) ।  
 श्रमण-सामीची प्रतिपदा । १६५ ( = श्रमण  
 को सब करनेवाले मार्ग ) ।  
 श्रमणोद्देश । ५१५ ( = समणुद्देश ) ।  
 श्रेय । ४०० ( = हित ), ४०५ ( = अच्छा ) ।  
 श्रवण-समीची-प्रतिपद । १६६ ।  
 श्रमण्य । २० ( = संन्यासका आदर्श ), १६५  
 ( = श्रमणता ), १६५ ( = साधुपन ),

३००, ३०१ (= संन्यास ), ३३७ ( भिक्षु-  
पत्र ), ४५४ (= भिक्षुके कर्तव्य ) ।  
आभोगेरी । ५३३ ।  
आवक । १०, १९०, १९८, २२६, २७८, ३३६,  
४४१ (= शिष्य ) ।  
आवक-युगल । १९८ (= शिष्योंकी जोड़ी ) ।  
आवक-संघ । २५ (= शिष्य-संघ ) ।  
आविका । २८५ (= शिष्या ) ।  
श्रुत । ३ (= सुना ), १०५ (= धर्मोपदेश  
अवधान ), ४०१ (= ज्ञान ), ४९८ (= विद्या ) ।  
श्रुतधर । ४५७ (= परेकी धारण करनेवाला ) ।  
श्रुतवान् । ८७ (= ज्ञानी ), २९० (= बहुश्रुत ) ।  
श्रुतवान् । अ-३ (= अज्ञ ) ।  
श्रुतसंचयी । १३० (= सुनी शिक्षार्थीका संचय  
करनेवाला ) ।  
ओत्र-अवधान । ३९९ (= कान लगावा ) ।  
ओत्रिय । १६४, ३७८ ।  
रलेष्मा । ११८ (= कफ ) ।  
ध्वज । २९९ (= अगमरूप ) ।  
आस-रहित-ध्यान । १४६ ।  
यद् आयतन । ३३ (= चक्षु, श्रोत्र, घ्राण,  
विज्ञा, काय और मन—यह छः इन्द्रिय ),  
४३, ४८७, १५५ ।  
सकणिकांग । ३३२ (= सर्वोप अंग ) ।  
सकृदागामी । २३ ( तीन संयोजनोंके क्षयसे ) ।  
९१ (= सकृद् = एक बार ), १३७, ४९१ ।  
सकृद् एव । ३६९ (= एक बार ) ।  
संकट । ३६० (= विपरिणाम ) ।  
संकल्प । २६४, २४० (= कल्पना ) ।  
संकार । १५३ (= कृपा ) ।  
संकिन्ती । ७९ (= चेदा लगाकर घनाई ) ।  
संकीर्ण-परिस्थ । ९० (= सखी पार ) ।  
संकिष्ट । अ-१०४ (= निर्मल ) ।  
संकिष्टाभ । ५२७ ।  
संक्लोरा । ४५ (= अल ), १०३, ७५ (= मेल ),  
१०६, २४० (= पाप, मल ), ३०१  
(= चित्तमाश्रित्य ) ।  
संक्लेशिक । १४७, ५०७ (= मलिन करनेवाला ) ।

संचित । (= एकाग्र ) २३, २८७ ।  
संस्तति । २६३ (= सुन्दर पाक ) ।  
संख्यान । ५४, ४५२ (= गणना ) ( Ac-  
count ) ।  
संख्या-समुदाचरण-प्रज्ञप्ति । ७२ (= ज्ञानके  
उपचारका जानना ) ।  
संगणिका । ५०४ (= जमात-बंदी ) ।  
संगति । ४२९ (= साथी ) ।  
संग्रह । १९२ (= मेल ) ।  
संघ । २६४ ।  
संघ-अनुस्मरण । २५ ।  
संघ-भेद । ४८३ (= संघमें फूट ) ।  
संघाट । १२८ (= जाल ) ।  
संघाटी । १६५ (= भिक्षु-यक ), २१०  
(= भिक्षुकी ऊपरी दोहरी चद्दर ), ३०७  
(= भिक्षुका ऊपरका दोहरा कल ) ।  
संघातक । १९२ (= समूह प्रधान ) ।  
सच-वज्र । ३०१ (= सचापन ) ।  
संज्ञानन । १७४ (= पहिचान ) ।  
संजीवित । १९९ (= जीवित ) ।  
संज्ञा । ३ (= बोध ), २७ (= विचार ), ३३  
(= वेदनाके अनन्तर प्रमत्ती अवस्था ), ७०  
(= सोच ) १७४, १८३; (= क्याल ) २०९,  
२१०, २९७, ३१६, ४३४, ४६७, ४५०,  
(= होश ), ४६० ४६६, (= संज्ञानवा,  
समझना ), ५०६, २९५ ( धारणा ) ।  
संज्ञावेदित-निरोध । ११०, १२५, १७६ (=  
ज्ञान ), १८१, १९९ ( समाधि ), २६६,  
४६७ (= जिस समाधिमें संज्ञा और वेदना  
का अभाव होता है ), ४७४, ५६३ ।  
संज्ञी । ४३३ (= बाहोश ), ४३४ (= चेतन ) ।  
संलयन । ६०१ (= छः आवधान ) ।  
सत्काय । १०९, २५४ (= आत्म-वाद ) ४५१,  
४३५ (= नित्य आत्म मानना ) ।  
सत्काय-दृष्टि । ८ (= कावाके भीतर एक नित्य  
आत्माकी सत्ताको मानना ), ४६१  
(= नित्य आत्माकी धारणा ) ।  
सत्काय-निरोध । १०९ (= आत्माके क्यालका



नाश ) ।  
 सत्काय-निरोध-गामिनी प्रतिपद । १८० ।  
 सत्काय-वाद । ५९८ ।  
 सत्काय-वाद-संभन । ५९९ ।  
 सत्त्व । ५७५, ६२७, ५७५ ।  
 सत्यान-मृद्ध । १९२ ( = कायिक मानसिक-  
 गालस्य ) ।  
 सत्त्वानुपत्ति । ३९८ ( = सत्त्व प्राप्ति ) ।  
 सत्यानुरक्षा । ३९७ ( = सत्यकी रक्षा ) ।  
 सत्त्व । ( = प्राणी ) ०, ४५, ५२, ३३६ ( =  
 व्यक्ति ), १५७, ११५ ( = जीव ), ९०,  
 ११५, ४३५ ( = चेतन-सन्तति ) ।  
 सत्त्वप्रतिष्ठ । ५३९ ( = बहादुर ) ।  
 संतुष्ट । ४९० ( = सोमस्य ) ।  
 सद्व । २७२ ( = समय ) ।  
 सद्व-वर्ध । ४५३ ( = निर्वाण ) ।  
 सद्धर्म । २११ ( सात ) ।  
 संदर्शित । २१० ( = समादपित ), ५४५ ( =  
 सुशाना ) ।  
 संभावन । १५१ ।  
 सन्नामन । ३०५ ( = सुमाना ) ।  
 सन्निवात । १२० ( = समवाय ), ५०१ ( =  
 जमाववा ) ।  
 संदान् । ७११ ( = ६२ प्रकारके मतरूपी पगहे ) ।  
 सपदान-चारी । ३०९ ( = विरन्तर चलते रह,  
 भीष्म मार्गनेवाले ) ।  
 सप्पाय । ४३० ( = अनुकूल ), ४३७, ५८५,  
 ४४७ ( = पक्ष ) ।  
 संपन्न । २४ ( परिपूर्ण ) ।  
 संपराय । ४२९ ( = दूसरा जन्म ) ।  
 संपुटित । ( = विचुका ) ५०, ३४८ ।  
 संप्रजम्ब्य । ३६ टि०, ११४ ( = जानकर करना )  
 ११४, १५९, १६० ( = होश ) १६२, ४५३ ।  
 संप्रज्ञान । १४ ( = सूत ) ।  
 संप्रज्ञाप । २८४ ( = बकवाद ) ।  
 संप्रवारित । ३७९ ( = संतर्पित ) ।  
 संप्रवेपित । १४९ ( संप्रकम्पित = संकम्पित =  
 कम्पित ) ।

संप्रसाद । ४५०, ४६६ ( = विषयमें वित्तका  
 अल्प होना ) ।  
 संप्रसादन । ३४९ ( = प्रसन्नता = वित्तकी  
 एकाग्रता ) ।  
 सत्त्वासव । ६, ९ ( = सारे आसव ) ।  
 सत्रज्ञाचारी । ९ ( = एक जैसे मतपर आरुढ़,  
 गुरुनाई ), १९ ( = एकमतके मती ),  
 १२२, १२७, १५०, २४६ ( = गुरु भाई ),  
 १९१ ( = सधर्म ) ।  
 संबुद्ध । सम्यक्-२४ ( = परमज्ञानी ) ।  
 संबोध । ७४ ( = बुद्धत्व-प्राप्ति ), २१२ ( परम-  
 ज्ञान ) ।  
 संबोधि । १३ ( = परमज्ञान ), ३३९ ( = बुद्ध-  
 ज्ञान ) ।  
 संबोध्व्यंग । ९ ( टिप्पणी भी देखो ) ।  
 संभव । ४४९ ( = जगह ) ।  
 संभावना । ४६२ ( = स्थान ) ।  
 समग्र । ११३ ( एकता ), ३६५ ( = एकाग्र ) ।  
 समंगीभूत । ३३९ ( = युक्त ) ।  
 समचर्या । ६०३ ( = धर्माचरण ) ।  
 समनुमाज्जन । ४४३ ( = परीक्षण ) ।  
 समन्वाहार । ११९ ( = मनसिकार-पूर्ण विषय-  
 ज्ञान ) ।  
 समन्वेपण । १८९ ( सहस्रीकात ), १९० ( =  
 अन्वेपण ) ।  
 समय । २५८ ( = कपाल ) ।  
 समवर्त-स्कंध । ३७५ ( = समान परिमाणके  
 कंधेवाले ) ।  
 सम-विषम । ( = बुरा, भला ) ।  
 सम-सम । ३४१ ( = बराबर ) ।  
 समाचार । ३६२ ( = आचरण ), ३९८, ४७५  
 ( = कर्म ) ।  
 समादपित । ५४५ ( = सुशाना ) ।  
 समाधि । ९ टि० ( = चित्तकी एकाग्रता ),  
 ४६०, ६०२ ।  
 समाधि-निमित्त । १४७ ( = चित्त-एकाग्रताके  
 आकार ) ।  
 समाधि-संबोध्व्यंग । ५९३ ।  
 समापचि । ४६७, ५५५ ( = समाधि ) ।

समाहित । १ (= एकाग्र ), १५, १६६, २०३ (= एकाग्र-चित्त ), २८७ (= समाधि-प्राप्त ) ।

समुच्छ्वस । अ—६५ (= नकटे ) ।

समुदय । (= उत्पत्ति ) ३१, ३६, ३८, ३९, २९३, ३९७, ४३७, ५९८, ६५ (= कारण ) ।

समुदय-धर्म । ३७९ (= उत्पन्न होनेवाला ) ।

समुदाचार । ५०६ (= संघर्ष ) ।

समुदाचारित । ५१७ (= प्रेरित ) ।

समुदाय । ३७९ ।

समुद्रनिष्ठा । २८६ (= समुद्र-प्रवण ), २८६ ( समुद्रकी ओर जानेवाली ) ।

समुद्रप्रवणा । २८६ (= समुद्र-प्रवणा ) ।

संमुख-विमय । ४४३ ।

संमुखीभूत । ५४७ (= विद्यमान ) ।

संमूह । १४६ (= मूढ ) ।

संमोदन । २६७ (= कुशल प्रश्न पूछना ), ३६५ (= एक दूसरेसे मुद्रित ) ।

संमोह । १७ (= Hypnotization ), १४७ (= मूर्छा ), २८२ (= भ्रम ) ।

सम्पन्न । (= देखो संपन्न ) ।

सम्पत् । ३२२ (= अवस्था ) ।

सम्पन्न । ४५२ (= युक्त ) ।

सम्प्रहर्षक । ९४ (= उत्साह देनेवाला ) ।

सम्प्रज्ञान । ४५४ (= सचेत ) ।

सम्प्रायण । अ—६२ (= अ-स्वीकार ), सम्बोध । १०३ (= कुशल-प्रश्न ) ।

सम्बोधि । ३४६ (= परमज्ञान ) ।

सम्भावित । ९४ (= प्रतिष्ठित ) ।

सम्मोदन । २३८ (= सुखी ), ३८३ (= कुशल-प्रश्न ) ।

सम्मोप । अ—३०८ (= न भूलना ) ।

सम्यक्-प्रतिपदा । ५६७ (= सीकमार्ग ) ।

सम्यक्-प्रतिपत्ति । ३०६ (= सत्य-बालुद ) ।

सम्यक्-प्रधान । ३०८, ४३८, ४४२, ४९१ ।

सम्यक्-संमुद्र । ५ (= यथार्थ-ज्ञानी ), १८२ ।

सम्यक्-संबोधि । ५ (= यथार्थ परम-ज्ञान ) ।

सम्यक्-समाधिकी । ४८६ ।

सम्यग् । २६१ ।

सम्यग्-आविमुक्त । ९१ (= यथार्थ-ज्ञानसे जिनकी मुक्ति हो गई है ) ।

सम्यग्गत । ४२, ४३ (= ठीक स्थानमें ), ३०० (= सत्यकी प्राप्त ) ।

सम्यग्-दृष्टि । १५ (= सच्चे सिद्धान्तवाले ), (= समादिष्टि ), ३० (= ठीक सिद्धान्त-वाला ), १७०, ३४१ (= ठीक धारणा-वाला ), १८० ।

संयत । २११ (= गुल-द्वार ) ।

संयमी । ४११ (= दान्त ) ।

संयोजन । ८, ९ (= फंदा, बंधन ), २३ (= मात-सिक्त बंधन ), ३८ ( दण्ड ), ३९ टि० ( दण्ड ), २१५, २३०, २६६, २८०, ४११ (= बंधन ), २५४, ५६४ ।

सरण । ५१३ (= चित्तमल ) ।

सरागता । अ—२४३ (= वैराग्य ) ।

सरोमृप । ८ (= साँप-विच्छेद ) ।

सर्व (= सारा ) १९६ ।

सर्वज्ञ । ३१८ ।

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी । ४२८ ।

सर्वदर्शी । ५९ (= सर्वज्ञ ), ३१८ ।

सस्य । ७५ (= फलमल ) ।

संवर्त-कल्प । १५ (= प्रलयकल्प ) ।

संकायतन विभंग । ५६० (= छः जायतनों का विभंग ) ।

सलोहित । २९४ (= साह-वेष ) ।

सल्लेख । (= सप ) ११, २७, २८ ।

सल्लेख-परियाय । २९ ।

स-विज्ञानक । ४७० (= जोचित ) ।

संवर । ६, १३४ (= रोक ), ८ (= डाँकना, संयम करना ), ११४, १९३, २११, २५८ (= रक्षा ) ।

संविभ्र । २९३ (= रोमांचित ) ।

संविस्वन्दन्ती । ३६३ (= सब कर पड़ती हुई ) ।

संवृत । ५९ (= पाप ), २२१ (= रक्षित ), २२५, २९३, ५१८ (= गोपित, रक्षित ), ४१७ (= लोक सम्मति ) ।

संवेग । ११८ (= बड़ासी ) ।



- संसार । ५१, ७१२ ( = जन्म-मरण ), ३३७  
( = भवसागर ) ।  
संस्पृष्ट । १०४ ( = मिले-झुले ) ।  
संस्पृष्ट । अ-९४ ( = अनासक्त ) ।  
संस्कार । ३३, ३५ ( = क्रिया, गति, चीन हैं ),  
४३, ८८ ( = विलपर प्रभाव ), १३९ ( =  
गति ), १५५, १८१, २८२, २९७, ४३४  
( = क्रिया ), ४३४ ( = कृत, बना हुआ ),  
४६०, ४८० ( = क्रिया, कृति ), ५०६ ।  
संस्कार-उत्पत्ति । ४९८ ( संस्कारोत्पत्ति ) ।  
संस्कृत । २०८, २१०, ४८०, ५०२, ६०८ ( =  
कृत, कृत्रिम ) ।  
संस्कृत । अ-१८० ।  
संस्कार-अवशेष । ४३५ ( = संस्कारसे बची )  
संस्थागार । १३८ ( = प्रजातन्त्र भवन ), २०७  
( = यज्ञशाला ), २१० ( = गणसंस्थाका  
आगार ), २६७ ( = प्रजातन्त्र-भवन ) ।  
संस्थान । ७८ ( = आकार ) ।  
सस्नेह । ३४९ ( = भीगे ) ।  
संस्पर्श । ३२, ११८ ( = स्पर्श, योग ), ११८  
( = सम्बन्ध ), ५८३, ५९५ ( = विषय और  
इन्द्रियका समागम ) ।  
सह-धार्मिक । २७९ ( = धर्मात्मुक्त ) ।  
सहज्य । ४१९ ( = सरूपता ), ५२४ ( =  
समानता ), ५३४ ( = योग ) ।  
सहाय । ४६३ ( = मित्र ) ।  
स-हेतुक । ४०५ ( = फलदायक ) ।  
साक्षात्कार । १३० ( = दृष्टि ), १४२ ( = दर्शन ),  
१७५ ( भावना आदिकी प्रक्रियाके जानने  
के लिये अभिप्रेते बातोंका ) ।  
साक्षात्कृत । २८२ ( = दृष्ट ), ३२२ ( = प्रत्यक्ष ) ।  
साक्षी । २८७ ( = साक्षात्कार करनेवाला ) ।  
सातत्य । ३५ ( = निरन्तर अभ्यास ) ।  
साधु । २१३ ( = शाबास ), २८४ ( = अच्छा ),  
४६९ ( = ठीक ) ।  
सांपरायिक । ३६९ ( = परलोक के सम्बन्धमें )  
सामग्री । १९२, ४४४, ४५६ ( = एकता ) ।  
सामीची । ५७९ ( = अज्ञान जोड़ना ) ।  
सामीची-कर्म । ३६९ ( = हाथ जोड़ना ) ।  
सामीची-प्रतिपक्ष । २५ ( = ठीक मार्गपर  
आवृत्त ) ।  
साम्परायिक । ३७८ ( = परलोक संबंधी ) ।  
सार । १२१ ( = हीर ), १४१, ५०८ ।  
साराणीय । १९२, ४४४ ।  
सारत्व । ३९२ ( = धन आदि ) ।  
सारव । अ-१५ ( = स-व्यय ), ११८ ( =  
अ-वंचल ) ।  
सारम्भ । १२, २७ ( = हिंसा ), ४४९ ( = पीड़ा ) ।  
सार्थक । ३०६ ( = सहित ) ।  
सार्वकालिक । ५०४ ( = अनामयिक ) ।  
सालोहित । ३३५ ( = रक्त संबंधी ) ।  
सावय । ७७ ( = दोष-मुक्त ) ।  
सावित्री । ३८४ ।  
साहस्र । ४९८ ।  
सांष्टिक । २५ ( = इसी शरीरमें फल देने  
वाला ), ३८४ ( = प्रत्यक्ष फलप्रद ) ।  
साहुल-चीवर । २९७ ( = काली भेषके बालके  
कपड़े ) ।  
साहस्री-लोकधातु । ४९८ ( = एक हजार  
ब्रह्मांड ) ।  
सिद्धलि-वन । ५४१ ।  
सिद्ध-हनु । ३०५ ( = सिद्ध समान पूर्ण ठोकी  
वाले ) ।  
सुख-विनिश्चय । ५६९ ।  
सुख-वेदना । १४५ ( सुखका अनुभव ) ।  
सुख-वेदनीय । ४२९ ( = सुख भोग करनेवाला ) ।  
सुगत । ७१ ( = बुद्ध ), १९० ( = सम्मार्गा-  
रूढ़ ), ११ ( = बुद्ध ), २४, ४१२ ( =  
सुंदर गतिको प्राप्त ) ।  
सुगृहीव । १४९ ( = सु-मनसीकृत ), ४३९  
( = ठीक समझा हुआ ) ।  
सुचरित । १५ ( = सदाचार ), २९४, ५३८  
( = सुकर्म ) ।  
सुजात । ३८३ ( = सुन्दर जन्मवाले ), ३९५  
( = कुलीन ) ।  
सुशिसा । ११८ ( = बह ) ।

सुत । २९२ ( सूत्र, सूक्त ) ।  
 सुह । २५२ ( = शुद्ध ) ।  
 सुदर्शी । १७०, ४९९ ।  
 सुदर्शन । १७० ।  
 सुदान्त । ५१६ ( = सुसिद्धि ), ३७० ( = अच्छी प्रकार सिखलाया ) ।  
 सुपरिकर्म । ३११ ( = पालिका ) ।  
 सुपरिकर्मकृत । ५३६ ( = पालिका की ) ।  
 सुप्रति-निस्सर्गी । ४३९ ( आशानीसे त्यागने-वाला ) ।  
 सुप्रतिपन्न । १११ ( = सुन्दर प्रकारसे राखेपर-लगा ), २५, ३६५ ( = सुमानोरूप ) ।  
 सुप्रति-प्रश्रव । ( = अच्छी तरह शांत ) ।  
 सुप्रतिविद्ध । ४५७ ( सुविदित ), ५०७ ( = तब तक पहुँच कर समझा गया ) ।  
 सुप्रतिष्ठित-पाद । ३७४ ( = जिसका पैर जमीन पर बराबर बैठता हो ) ।  
 सुप्रहीण । ३४७ ( = अच्छी तरह छूट गया ) ।  
 सुभरता । ११ ( = सुगमता ) ।  
 सु-भाषित । २९५ ( = ठीक कहा ), ३६२ ( = सुन्दर-कथन ) ।  
 सुभूमि । ८० ( जगत् ) । ४९७ ( = धाग ) ।  
 सुवच-न्तर । ४३८ ( = अधिक मजुर भाषी, अधिक सुवक्ता ) ।  
 सुवर्णमाला । ५७५ ।  
 सु-विनीत । ३७० ( = अच्छी प्रकार सिख-लाया ) ।  
 सुरा । ४९ ( = जर्क उतारी शराब ) ।  
 सुरा-भोरय । ५७९ ( = कभी शराब ) ।  
 सु-श्रुत । १४९ ( = अच्छी प्रकार सुना ), ३०२ ( = ठीक सुना ) ।  
 सुसंयत । ४४९ ( = सु-भाषित ) ।  
 सुसुका । २६९ ( = तरमही मत्स्य ) ।  
 सुसुका-भय । २०० ।  
 सूक्ष्म । २८२ ( = निपुण ) ।  
 सूक्ष्म-श्रुति । ३७४ ( = छवि, ऊपरी चमका ) ।  
 सूची । ८२ ( = फिलाई ) ।  
 सूची-मुख । ५४१ ( = सूई जैसे तेज़ मुँहवाला

प्राणी ) ।

सूप । २० ( = दाढ़वादि तिर्यङ्ग ) ३२८ ।  
 सूत्र । ८६, ५६१ ।  
 सेख । ( देखो दीक्ष ) ।  
 सेवितव्य । ४७५ ( = सेवन-योग्य ) ।  
 सेतिसिनाति । ३२५ ( = ज्ञान-पूर्ण-पिंड ), ४०२ ।  
 सौमनस्य । १५, ५६, ११७ ( = चित्तोद्दाम ), ५८ ( = दिलकी सुग्री ), १३० ( = चित्त-तुष्टि ), २३८ ( = सुख ), ३५८ ( = ध्यानम् ) ।  
 सौरता । ८० ( = सुरत ) ।  
 सौवचस्यता । ( = सुदुर्भाषिता ) ।  
 स्कंध । ३८ टि०, १७९ ( पॉच ), ११४ ( = राशि ) ।  
 स्तूप । ४४१ ।  
 स्तव्य । ६२ ( = जब ) ३३ ।  
 स्तम्भ । २४ ( = जड़ता ) ।  
 स्तम्भितत्व । ५३० ( = जड़ता ) ।  
 सत्यान । ( = धीन ) १४ ( = शारीरिक आलस्य ) ।  
 सत्यान-मृदु ( = धीन-मिदु ), ३८, ९३, ४१७, ४५८ ( = शरीर और मनका आलस्य ), ११४ ( = मनके आलस्य ), १६०, १७५, ५२६, ( = आलस्य ) ।  
 स्वपति । ३१४ ( = यवई ), ३६३, ( = फौल-तान् ) ।  
 स्वपति । ( = यवई ) २३७ ( = राज, स्वपति ) ।  
 स्वविर । १०४, २५८, २७३ ( = शुद्ध ) ।  
 स्वविर-वाद । ३४५ ( = बुद्धोंका सिद्धान्त ) ।  
 स्थान । ४२ ( = यात ), २८७, ४८० ( = संभव ), ४२२, ४३४, ५१५ ( कारण ) ।  
 स्थान-अस्थान । ४८१ ।  
 स्थानशः । २३६ ( = क्षण ) ।  
 स्थापित । २५१ ( = जिसका उत्तर रोक दिया गया ) ।  
 स्थाम । ३०१ ( = इष्टता ) ।  
 स्थालीपाक । १४२ ( = सीपा ), ५२०



( = भोजन ) ।

स्थित । ३५३ ( = बसा ) ।

स्थूल-वध । ४४४ ( = बड़ा दोष ) ।

स्नात । २५ ( = नहाया ) ।

स्नातक । १६४, ४१३ ।

स्नायु । ५९२ ( = तन ) ।

स्नेह । १६३ ( = शीलापन, लमी ) ।

स्पर्श । ३२, ३३ ( = इन्द्रिय और विष-

यका, संयोग ) ; ४३, ७२, १५४, ( =

आहार ) ; २३२ ( = कर्म-विषय ) ,

३३२ ( = भोग ) , ४६६ ( = इन्द्रिय-

विषयका संपर्क ) , ४८७, ४९७ ( = व्या-

घात ) , ५९२, १८१ ( = अनिमित्त ) ,

१८१ ( = शून्यता ) ।

स्पर्श-आयतन । ४३७ ( = धनु, ओष, प्राण,  
विह्वा, काय और मनके विषय ) ।

स्पर्श-काय । ५६०, ५९७ ।

स्पर्श-यतन । ५७३ ।

सृष्ट । ३५७ ( = लगा ) ।

सृष्टल्य । ३२ ( = त्वक् इन्द्रियका विषय ) ,

३९ ( = ठंडा गर्म आदि ) , १५३ ( = छूने

जाने वाले विषय ) , ४१७ ।

स्मृत । ३२५ ( = समूह ) ।

स्मित । ३२५ ( = मुस्कराहट ) ।

स्मृत । ३ ( = बादमें लाया ) ।

स्मृति । १५८, १६२, २६५, २६९, ३७६, ४६७

( = होश ) , २१२ ( = याद ) , ४५३ ।

स्मृति-पारिशुद्धि । २१८ ( स्मरणको शुद्ध  
करनेवाली उपेक्षा ) ।

स्मृति-ग्रन्थान । ३५, ५१, २०५, ३०८, ४३९,

४७२, ४९१, ५६०, ५६३, ४० ( का

ग्रन्थान्त्र ) ।

स्मृति-विनय । ४४३ ।

स्मृति-संबोधन ५९३ ।

स्मृति-संप्रजन्य । १५ ( = होश और अनुभव ) ,

१४७, ४५३ ( = होश-वैत ) , ४९९ ।

स्रोत आपत्ति । ५८० ( = स्रोतापत्ति ) ।

स्रोत आपन्न । ४९१ ।

स्वक । अ—३३६ ( = अपना नहीं ) ।

स्वप्न समान । ८४ ।

स्वर्गपरायण । ९१ ( = स्वर्गनामी ) ।

स्वाख्यात । २५ ( = सुन्तर रीतिसे कहा गया ) ,

९१, १९० ( = अच्छी तरह व्याख्यान किया ) ,

३८४ ।

स्वाख्यात-पन । ३५१ ( = उत्तम वर्णन ) ।

स्वागत । २६५ ( = स्वीकार ) ।

स्वेद । ११८ ( = पसीना ) ।

स्वेदज-योनि । ४६ ।

स्वस्ति । २०९, ३८८ ( = संगल ) ।

स्वैरी । २७३ ( = स्वेच्छान्वारी ) ।

हृत्पत्थर । ३३४ ( = गलीचे ) ।

हृत्प-चिलंचक । ५२९ ( = हाथका संकेत ) ।

हरीसिक। अज्यूट—९० ( = जो हलकी हरीस

जैसे दुनियाके भारोंको नहीं उठावे ) ।

हस्त-प्रत्योतिका । ५५ ( = दंड ) , ५५ ।

हस्ताऽपलेखन । ४८ ( = हाथ-चट्टा ) ।

हस्ति-दमक । ५१७ ( = हाथोंको सिंघाने

वाले ) , ५६३ ( = महापत ) ।

हस्ति-पद । १११, ११७ ( = हाथोंके पैर ) ।

हस्ति-पद-उपमा । १७२ ।

हृत्प-पदोपम । ११६ ।

हिरण्य । ३६३, ३६६, ५३७ ( अमर्फी ) ।

हिरुताण । ५३२ ( = सलज कर्म ) ।

हीन । ३४० ( = मोच ) ।

हीन-वीर्य । ४५४ ( = अनुद्योगी ) ।

हीना । १७ ( = नीच ) ।

हेतु । १६८ ।

हेतु-रूप । ३७० ( = ठीक ) ।

हेमन्तिक । १२, ९३ ।

हो । १६१, १६२ ( = कला-संकोच ) ।

हीमान् । २११ ( लज्जाशील ) ।







Archaeological Library,

8736

Call No. BPA3

May 1991

Author—

Rajul Santayaksh

Title— Ma Jie in a

Nikaya

Borrower No.

Date of Issue

Date of Return

"A book that is shut is but a block"

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY  
GOVT. OF INDIA  
Department of Archaeology  
NEW DELHI

Please help us to keep the book  
clean and moving.